महापुराण

भाग 1

ग्रन्थकर्त्ता
महाकवि पुष्पदन्त जी

अनुवादक
श्री देवेन्द्रकुमार जैन

सम्पादक
श्री पी. एल. वैद्य

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया
लोदी रोड, नई दिल्ली–110003

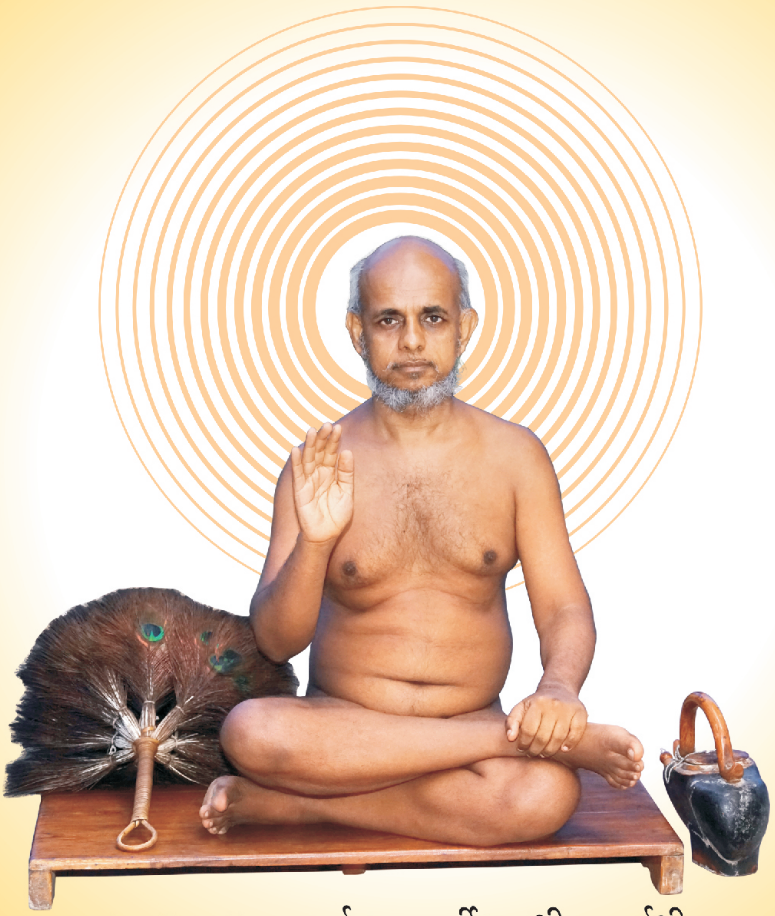

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी–महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

* जन्मदिवस 19–03–1971 * मुनिदीक्षा–11–05–1989 * आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणाः–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

(परम्परानायक)

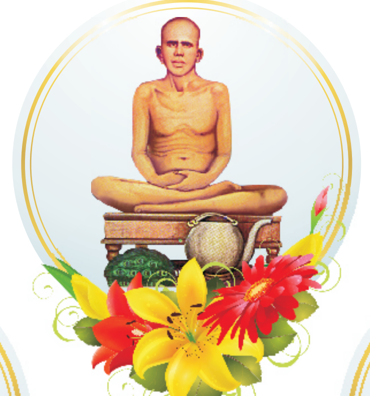

परम पूज्य चारित्र–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)

परम पूज्य तीर्थभक्त–शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)

परम पूज्य सिद्धान्त–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

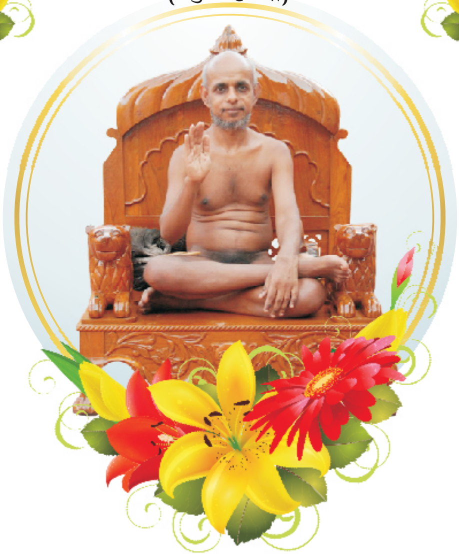

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्रायः होता है। फलतः उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तुत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि–परिवार

ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला : अपभ्रंश ग्रन्थांक–१५

महाकवि पुष्पदन्त विरचित

महापुराण

भाग–१

[नाभेयचरिउ पूर्वार्ध]

हिन्दी अनुवाद, प्रस्तावना तथा अनुक्रमणिका सहित

मूल-सम्पादक

डॉ. पी. एल. वैद्य

अनुवादक

डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन, एम. ए., पी-एच. डी.

प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय

इन्दौर (म० प्र०)

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

वीर नि० संवत् २५०५ : वि० संवत् २०३६ : सन् १९७९

प्रथम संस्करण : मूल्य–अड़तीस रुपये

स्व. पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें
स्व. साहू शान्तिप्रसाद जैन द्वारा संस्थापित
एवं
उनकी धर्मपत्नी स्वर्गीया श्रीमती रमा जैन द्वारा संपोषित

भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालाके अन्तर्गत प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड़, तमिल आदि प्राचीन भाषाओंमें उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन-साहित्यका अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उसका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदिके साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन-भण्डारोंकी सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, कला एवं स्थापत्य, विशिष्ट विद्वानोंके अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन साहित्य-ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमालामें प्रकाशित हो रहे हैं।

●

ग्रन्थमाला सम्पादक

सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री
डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन

●

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
प्रधान कार्यालय : बी/४५–४७, कॅनॉट प्लेस, नयी दिल्ली–११०००१
मुद्रक : सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी–२२१००१

●

स्थापना : फाल्गुन कृष्ण ९, वीर नि० २४७०, विक्रम सं० २०००, १८ फरवरी १९४४
सर्वाधिकार सुरक्षित

JÑĀNAPĪTHA MŪRTIDEVĪ GRANTHAMĀLĀ : Apabh. Grantha No. 15

MAHĀKAVI PUṢPADANTA'S

MAHĀPURĀNA

VOL. I

NĀBHEYACARIU]

With
Introduction, Hindi Translation and Index of the verses etc.

Text Edited by

Dr. P. L. VAIDYA

Translated by

Dr. DEVENDRA KUMAR JAIN, M. A., PH. D.
Professor, Department of Hindi, Govt. Arts
and Commerce College,
INDORE

BHARATIYA JNANPITH PUBLICATION

VĪRA NIRVĀNA SAMVAT 2505 : V. SAMVAT 2036 : A. D. 1979
First Edition : Price Rs. 38/–

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA

MŪRTIDEVĪ JAIN GRANTHAMĀLĀ

FOUNDED BY

LATE SAHU SHANTI PRASAD JAIN

IN MEMORY OF HIS LATE MOTHER SHRIMATI MURTIDEVI

AND

PROMOTED BY HIS BENEVOLENT WIFE

LATE SHRIMATI RAMA JAIN

IN THIS GRANTHAMĀLĀ CRITICALLY EDITED JAINA ĀGAMIC, PHILOSOPHICAL, PURĀṆIC, LITERARY, HISTORICAL AND OTHER ORIGINAL TEXTS AVAILABLE IN PRAKRIT, SANSKRIT, APABHRAṀŚA, HINDI, KANNAḌA, TAMIL, ETC., ARE BEING PUBLISHED IN THEIR RESPECTIVE LANGUAGES WITH THEIR TRANSLATIONS IN MODERN LANGUAGES.

ALSO

BEING PUBLISHED ARE

CATALOGUES OF JAINA-BHAṆḌĀRAS, INSCRIPTIONS, STUDIES ON ART AND ARCHITECTURE BY COMPETENT SCHOLARS AND ALSO POPULAR JAINA LITERATURE.

●

General Editors

Siddhantacharya Pt. Kailash Chandra Shastri
Dr. Jyoti Prasad Jain

●

Published by

Bharatiya Jnanpith

Head Office : B/45–47, Connaught Place, New Delhi–110001

●

Founded on Phalguna Krishna 9, Vira Sam. 2470, Vikrama Sam. 2000, 18th Feb., 1944

All Rights Reserved.

प्रधान सम्पादकीय

भगवान् ऋषभदेव

"जैन परम्परा ऋषभदेवसे अपने धर्मकी उत्पत्ति होनेका कथन करती है जो बहुत-सी शताब्दियों पूर्व हुए हैं। इस बातके प्रमाण पाये जाते हैं कि ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दीमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेवकी पूजा होती थी। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जैनधर्म वर्धमान और पार्श्वनाथसे भी पहले प्रचलित था। यजुर्वेदमें ऋषभदेव, अजितनाथ और अरिष्टनेमि इन तीन तीर्थंकरोंके नामोंका निर्देश है। भागवत पुराण भी इस बातका समर्थन करता है कि ऋषभदेव जैनधर्मके संस्थापक थे।"

भारतके भूतपूर्व राष्ट्रपति तथा प्रसिद्ध दार्शनिक स्व. डॉ. राधाकृष्णन्ने अपने भारतीय दर्शनमें उक्त विचार प्रकट किये हैं। भागवतमें इस बातका भी उल्लेख है कि महायोगी भरत ऋषभदेवके सौ पुत्रोंमें ज्येष्ठ थे और उन्हींसे यह देश भारतवर्ष कहलाया—

> "येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठ गुण आसीत्।
> येनेदं वर्षं भारतमिति व्यपदिशन्ति।" —भागवत ५-४-९

वायुपुराण 33/51-52 और मार्कण्डेय पुराण 53/39-40 में भी इसी प्रकार की अनुश्रुति पायी जाती है। ये उद्धरण जैन अनुश्रुतिकी ऐतिहासिकता सूचित करते हैं।

सिन्धु घाटीमें भी दो नग्न मूर्तियाँ मिली हैं इनमेंसे एक कायोत्सर्ग मुद्रामें स्थित पुरुषमूर्ति है। कुछ जैनेतर विद्वान् भी पुरुष मूर्तिकी नग्नता और कायोत्सर्ग मुद्राके आधारपर ऐसी प्रतिमा समझते हैं जिसका सम्बन्ध किसी तीर्थंकरसे रहा है।

सिन्धु घाटीके उत्खननमें योगदान करनेवाले श्रीरामप्रसाद चन्दाका एक लेख कलकत्तासे प्रकाशित पत्रिका माडर्न रिव्युके जून 1932 के अंकमें प्रकाशित हुआ था। उसमें उन्होंने लिखा है, "मोहेंजोदड़ोसे प्राप्त पत्थरकी मूर्ति, जिसे मि. मैंके पुजारीकी मूर्ति बतलाते है, योगीकी मूर्ति है और वह मुझे इस निष्कर्षपर पहुँचनेके लिए प्रेरित करती है कि सिन्धु घाटीमें योगाभ्यास होता था और योगीकी मुद्रामें मूर्तियाँ पूजी जाती थीं। सिन्धु घाटीसे प्राप्त मोहरोंपर बैठी अवस्थामें अंकित देवताओंकी मूर्तियाँ ही योगकी मुद्रामें नहीं हैं किन्तु खड़ी अवस्थामें अंकित मूर्तियाँ भी योगकी कायोत्सर्ग मुद्राको बतलाती हैं। मथुरा म्युजियममें दूसरी शतीकी कायोत्सर्गमें स्थित एक वृषभदेव जिनकी मूर्ति है। इस मूर्तिकी शैलीसे सिन्धुसे प्राप्त मोहरोंपर अंकित खड़ी हुई देवमूर्तियोंकी शैली बिलकुल मिलती है।"

'ऋषभ या वृषभका अर्थ होता है बैल। और वृषभदेव तीर्थंकरका चिह्न भी बैल है। मोहर नं. 3 से 5 तककी ऊपर अंकित देवमूर्तियोंके साथ बैल भी अंकित है जो ऋषभका पूर्वरूप हो सकता है। शैवधर्म और जैनधर्म जैसे दार्शनिक धर्मोंके प्रारम्भको पीछे ठेलकर ताम्रयुगीन कालमें ले जाना किन्हींको अवश्य ही एक साहसपूर्ण कल्पना प्रतीत होगी, किन्तु जब एक व्यक्ति ऐतिहासिक और प्राग्-ऐतिहासिक सिन्धु-घाटी सभ्यता के बीचमें एक अगम्य झाड़ी-झंखाड़ होनेकी उससे भी साहसपूर्ण कल्पना करनेके लिए तैयार है तो यह अनुमान, कि सिन्धु मोहरोंपर अंकित बैठी हुई और खड़ी हुई देवमूर्तियोंकी शैलीमें घनिष्ठ सादृश्य है, उस सुदूर कालमें योगके प्रसारको सूचित करता है।'

इस तरह डॉ. चन्दाने आचार्य जिनसेन रचित महापुराणके 18वें पर्वमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेवके ध्यानके वर्णनके आधारपर अपना उक्त अभिमत प्रस्तुत किया था।

डॉ. राधाकुमुद मुकुर्जीने अपनी 'हिन्दूसभ्यता' नामक पुस्तकमें डॉ. चन्दाके उक्त अभिमतको मान्यता देते हुए लिखा है—'श्री चन्दाने 6 अन्य मुहरोंपर खड़ी हुई मूर्तियोंकी ओर भी ध्यान दिलाया है। फलक

12 और 118 आकृति 7 (मार्शल कृत मोहेंजोदड़ो) कायोत्सर्ग नामक योगासनमें खड़े हुए देवताओंको सूचित करती हैं। यह मुद्रा जैन योगियोंकी तपश्चर्यामें विशेष रूपसे मिलती है जैसे मथुरा संग्रहालयमें स्थापित श्री ऋषभदेवकी मूर्तिमें। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, ऋषभका अर्थ है बैल जो आदिनाथका लांछन है; मुहर संख्या एफ. जी. एच. फलक दोपर अंकित देवमूर्तिमें एक बैल ही बना है। सम्भव है, यह ऋषभका ही पूर्व रूप हो। यदि ऐसा है तो शैवधर्मकी तरह जैनधर्मका मूल भी ताम्रयुगीन सिन्धु सभ्यतातक चला जाता है। इससे सिन्धु सभ्यता एवं ऐतिहासिक भारतीय सभ्यताके बीचकी खोयी हुई कड़ीका भी एक उभय साधारण सांस्कृतिक परम्पराके रूपमें कुछ उद्धार हो जाता है।' (हिन्दू सभ्यता, पृ. 23-24)

ऋषभ और शिव

डॉ. मुकर्जीके 'उभय साधारण सांस्कृतिक परम्परा' शब्द बड़े महत्त्वके हैं। उभय शब्दसे यदि जैन-धर्मके प्रवर्तक ऋषभ और शैवधर्मके आधार शिवको लें तो हमें उन दोनोंके मध्यमें एक साधारण सांस्कृतिक परम्पराका रूप दृष्टिगोचर होता है : क्योंकि दोनोंमें कुछ आंशिक समता है। ऋषभदेवका चिह्न बैल है जो मोहेंजोदड़ोसे प्राप्त सील नं. 3 से 5 तकपर अंकित है तथा कायोत्सर्ग मुद्रामें स्थित आकृतियोंके साथ भी बना है। उधर शिवके साथ भी नन्दि है। इधर ऋषभदेवका निर्वाण कैलास पर्वतसे माना जाता है उधर शिव भी कैलासवासी माने जाते हैं। डॉ. भण्डारकरने शिवके साथ उमाके सम्बन्धको उत्तरकालीन बतलाया है। इसी तरह महाभारत अनुशासन पर्वमें महादेवके नामोंमें शिवके साथ ऋषभ नाम भी गिनाया है। यथा—

'ऋषभ त्वं पवित्राणां योगिनां निष्कलः शिवः।'

अध्याय 14, श्लोक 18

इस परसे यह शंका हो सकती है कि दोनोंका मूल एक तो नहीं है अथवा एक ही मूल पुरुष दो परम्पराओंमें दो रूप लेकर तो अवतरित नहीं हुए हैं ?

डॉ. आर. जी. भण्डारकरके मतानुसार 250 ई. के लगभग पुराणोंका पुनर्निर्माण प्रारम्भ हुआ और गुप्तकालतक यह जारी रहा। इस तरह उपलब्ध पुराण गुप्तकालकी रचना है। श्रीमद्भागवतमें जो ऋषभावतारका पूरा वर्णन है, उसमें स्पष्ट लिखा है कि वातरशन (नग्न) श्रमणोंके धर्मका उपदेश करनेके लिए उनका जन्म हुआ था। तथा जन्महीन ऋषभदेवजी का अनुकरण करना तो दूर रहा, अनुकरण करनेका मनोरथ भी कोई अन्य योगी नहीं कर सकता, क्योंकि जिस योगबल (सिद्धियों) को असार समझकर ऋषभदेवने स्वीकार नहीं किया, अन्य योगी उन्हींको पानेकी चेष्टा करते हैं।

यह सब जानते और मानते हैं कि भगवान् महावीर अन्तिम जैन तीर्थंकर थे और पुराणोंकी रचना उनके बहुत पश्चात् हुई है। फिर भी उनके पूर्वज ऋषभदेवको नग्न श्रमणोंके धर्मका उपदेष्टा बतलाना यह प्रमाणित करता है कि ऋषभदेव अवश्य ही ऐतिहासिक व्यक्ति होने चाहिए।

जैन महापुराण

चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ नारायण, नौ प्रतिनारायण और नौ बलभद्र—इन्हें जैन धर्ममें त्रेसठ-शलाका- पुरुष कहते हैं। इनका वर्णन करनेवाला ग्रन्थ महापुराण कहलाता है। इससे उसे त्रेसठ-शलाका-पुरुष-पुराण भी कहते हैं। आचार्य जिनसेनने अपने महापुराणके प्रारम्भमें कहा है, 'मैं त्रेसठ प्राचीन महापुरुषोंके पुराणको कहूँगा।' उन्होंने महापुराण नामकी सार्थकता भी बतलायी है। उनका महापुराण संस्कृतके अनुष्टुप् छन्दमें रचा गया है। वह उसे अधूरा ही छोड़कर स्वर्गवासी हो गये थे। उनके पश्चात् उनके शिष्य गुणभद्रने उसको पूर्ण किया था।'

जिनसेनाचार्यके पश्चात् ही पुष्पदन्तने अपभ्रंश भाषामें अपना महापुराण रचा। महापुराणका प्रथम भाग, जिसमें भगवान् ऋषभदेवका चरित वर्णित है, आदिपुराण कहा जाता है और शेष भाग उत्तरपुराण

कहा जाता है। जिनसेनरचित आदिपुराणमें सैंतालीस पर्व हैं जिनमेंसे आदिके तेंतालीस पर्व जिनसेनरचित हैं। और पुष्पदन्तके आदिपुराणमें सैंतीस सन्धियाँ है।

कविने अपने महापुराणकी उत्थानिकामें जिन अनेक दार्शनिकों, कवियों और ग्रन्थकारोंको स्मरण किया है उनमें केवल तीन जैन है—अकलंक, चतुर्मुख और स्वयंभू। इनमेंसे अन्तिम दो अपभ्रंश भाषाके महाकवि हैं। इनकी रचनाओंमें आगम सिद्धान्त ग्रन्थ धवल जयधवलका स्मरण भी किया है। यथा

'णऊ बुज्झिउ आयम सद्दधामु, सिद्धंतु धवलु जयधवलु णाम।'

षट्खण्डागम सिद्धान्तपर वीरसेन स्वामीने धवला टीका रची थी और कसायपाहुडपर उन्होंने जयधवला टीका रची थी। इसे उनके शिष्य जिनसेनने पूर्ण किया था। यही जिनसेन संस्कृत महापुराणके रचयिता हैं। अतः धवल जयधवलसे परिचित पुष्पदन्त द्वारा जिनसेनका महापुराण भी देखा होना चाहिए। क्योंकि उनके महापुराण की भी कथावस्तु तो एक ही है और शायद उसीसे उन्हें अपभ्रंशमें महापुराण रचनेकी प्रेरणा मिली हो। किन्तु उन्होंने उसका कोई संकेततक नहीं किया है।

दोनों पुराणोंको तुलनात्मक दृष्टिसे देखनेपर दोनोंके वर्णनक्रममें कोई समानता प्रतीत नहीं होती। जिनसेनके महापुराणमें पर्व 4 से 11 तक भगवान् ऋषभदेवके पूर्व भवोंका वर्णन है। उसके पश्चात् उनके गर्भ, जन्म, दीक्षा आदिका वर्णन है। किन्तु पुष्पदन्तके महापुराणमें प्रारम्भसे ही ऋषभदेवके कल्याणकोंका वर्णन है। उसी प्रसंगमें प्रारम्भमें कुलकरोंका वर्णन है तथा बीसवीं सन्धिसे उनके पूर्वभवोंका वर्णन है।

जिनसेनका महापुराण तो जैनोंका महाभारत जैसा है। उसमें वर्ण व्यवस्था, कुलाचार, सप्त परमस्थान, तिरपन क्रियाएँ, क्षत्रियधर्म, राजनीति आदिका वर्णन है जो अन्यत्र नहीं है। पुष्पदन्तके महापुराणमें यह सब नहीं है। वह तो अपभ्रंश भाषाका एक महाकाव्य है। अपभ्रंश भाषामें भी इतनी सुललित पदावलीपूर्ण सरस रचना हो सकती है जो संस्कृत रचनाके माधुर्यसे प्रतिद्वन्द्विता कर सकती है, यह उसको देखकर ही जाना जा सकता है। उसकी पदावलीमें कादम्बरीके गद्य-जैसा शब्द विन्यास दृष्टिगोचर होता है और वह उससे कम दुरूह नहीं है। प्राकृत भाषाके पण्डितको भी पुष्पदन्तके इस महाकाव्यको हृदयंगम करनेमें कठिनताका अनुभव हो सकता है। अतः जिनसेनके महापुराणकी अपेक्षा पुष्पदन्तके महापुराणका हिन्दी अनुवाद कठिन है।

महापुराणका सम्पादन एवं हिन्दी अनुवाद

स्व. डॉ. पी. एल. वैद्यके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करना हमारा कर्तव्य है जिन्होंने मूल अपभ्रंश ग्रन्थका संशोधन-सम्पादन किया और संसारको इस कृतिके महत्त्वसे परिचित कराया।

डॉ. देवेन्द्रकुमार जैनने इस महाग्रन्थका हिन्दी अनुवाद किया है। अनुवादकी दृष्टिसे सम्पूर्ण ग्रन्थ छह भागोंमें प्रकाशनार्थ नियोजित है। इस साहसपूर्ण कार्यके लिए हम उनकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। अनुवादमें यत्र-तत्र कुछ सैद्धान्तिक त्रुटियाँ रह गयी हैं। उन्होंने अपनी इस कठिनाईको अनुभव करके ही अपने कृतज्ञता-ज्ञापनमें अनुवाद सम्बन्धी त्रुटियोंकी सूचना देनेका पाठकोंसे अनुरोध किया है। ग्रन्थमें 'भूल-सुधार' पत्रक भी दे दिया गया है। पाठक उससे लाभान्वित होंगे।

प्रसन्नताकी बात है कि भारतीय ज्ञानपीठको जो सांस्कृतिक-साहित्यिक आधार संस्थापक स्व. श्री साहू शान्तिप्रसादजी और उनकी विदुषी धर्मपत्नी स्व. रमा जैनने दिया उसका संवर्धन करनेमें श्री साहू श्रेयांसप्रसादजी (साहूजीके ज्येष्ठ भ्राता) और श्री अशोककुमारजी (साहूजीके ज्येष्ठ पुत्र) दत्तचित्त हैं। भविष्यमें इन सत्प्रयत्नोंका प्रवाह अक्षुण्ण रहेगा, ऐसी आशा सारे विद्वज्जगत्‌की सार्थक होगी।

कैलाशचन्द्र शास्त्री

11 मार्च 1979

ज्योतिप्रसाद जैन

पुरोवाक्

जैन पुराण साहित्यका श्रमण संस्कृतिमें वही महत्त्व है जो वैदिकोत्तर भारतीय संस्कृतिमें रामायण और महाभारतका। महापुराणमें श्रमण संस्कृतिके मूलाधार जैनोंके त्रेसठ-शलाका-पुरुषोंके चरितोंका वर्णन है। 'प्रथम महापुराण' संस्कृतमें है तथा इसके दो भाग हैं, पहला आचार्य जिनसेन द्वारा रचित आदिपुराण और दूसरा उत्तरपुराण, जिसके रचयिता आचार्य गुणभद्र हैं, जो आचार्य जिनसेनके शिष्य हैं। आदि पुराणमें जैनोंके प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथका वर्णन है। वे भोगमूलक समाज व्यवस्था (देव संस्कृति) के समाप्त होने-पर कर्ममूलक संस्कृति (मानव संस्कृति) के नियामक थे।

महाकवि पुष्पदन्तकृत महापुराण अपभ्रंश भाषामें है जो सभी आधुनिक भारतीय भाषाओंकी ऐतिहासिक कड़ी है। यह कृति काव्यानुभूतिके साथ जैन तत्त्वज्ञान और आचारशास्त्रकी प्रामाणिक जानकारी देती है तथा इसकी भाषा परिनिष्ठित है। इसकी शैलीका परवर्ती विकास हिन्दीकी दोहा चौपाईवाली लोकप्रिय शैलीमें देखा जा सकता है। इस ग्रन्थमें कर्ममूलक संस्कृतिका उद्भव इतने काव्यात्मक ढंगसे वर्णित है कि मैं निम्नलिखित शब्दोंको उद्धृत करनेका लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूँ—

"सुरतरुवरविणासि सुच्छाया
कम्मभूमिभूरुह संजाया।"
(2.14.9)

[कल्प वृक्षोंके नष्ट होनेपर सुन्दर छायावाले कर्मभूमिके वृक्ष उत्पन्न हो गये]

महाकवि पुष्पदन्तके महापुराणका सम्पादन डॉ. प. ल. वैद्यने तीन खण्डोंमें (1939-1942 के बीच प्रकाशित) किया था। यह आश्चर्यकी बात है कि अभीतक इस साहित्यक और सांस्कृतिक महत्त्वके ग्रन्थ-का अनुवाद किसी भारतीय भाषामें नहीं हुआ। यह हर्षकी बात है कि हिन्दी साहित्यके जाने-माने विद्वान् डॉ. देवेन्द्रकुमार जैनने इसका हिन्दीमें अनुवाद किया है। भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा सात खण्डोंमें प्रकाशित होनेवाले इस महत्त्वपूर्ण और गुरुतर कार्यका यह प्रथम खण्ड है। मुझे आशा और विश्वास है कि पाठक इसका स्वागत करेंगे तथा इसके द्वारा हिन्दी साहित्यमें शोधके नये क्षितिज खुलेंगे और राष्ट्रीय एकताको प्रोत्साहन मिलेगा।

देवेन्द्र शर्मा
कुलपति, इन्दौर विश्वविद्यालय इन्दौर
एवं भूतपूर्व कुलपति, गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर

3-3-1979

स्वर्गीय सेठ जिनवरदासजी फौजदार

होशंगाबाद (मध्य प्रदेश)

की पुण्य स्मृति को

जो, मेरे लिए सम्बन्धी होने से अधिक आत्मीय मित्र थे। सम्पन्न होते हुए भी जिनका निजी एवं सार्वजनिक जीवन सादा और साफ-सुथरा था, जो अड़तालीस वर्ष की वय में ८ फरवरी १९७७ को अचानक, भरा-पूरा परिवार छोड़कर इस दुनिया से विदा हो गये।

—देवेन्द्रकुमार जैन

PREFACE

Out of the three works of the poet Puṣpadanta, the *Jasaharacariu* was edited by me in 1931, the second edition of which with Hindi translation by the late Dr. Hiralal Jain was recently published. The second work, the *Ṇāyakumāra-cariu,* edited by Dr. Hiralal Jain was published in 1933, the second edition with Hindi translation was also recently published. The third work, the *Mahāpurāṇa* is the biggest, and it was edited by me in three volumes, 1937–1941. I spent over ten years, 1932–41 in its preparation. This is its second edition with Hindi translation by Dr. Devendra Kumar Jain, and published by the Bharatiya Jnanpith. I feel particularly happy that the above institution undertook its publication and thus made the work available to scholars. The lovers of Apabhraṁśa literature are very grateful to the Bharatiya Jnanpith.

I expected that some young scholars of Apabhraṁśa would come forward to undertake some studies on this epoch-making publication. In 1964, my friend and pupil the late Dr. A. N. Upadhye introduced to me a young lady who obtained her doctorate degree on the Desī words in the Mahāpurāṇa. I am sorry I do not remember her name and whereabouts. There is yet another subject, I suggest, relating to an analysis of metres used by the poet in his works which also is a necessity. Let me hope that some young scholar would come forward to undertake the problem.

The reader should note that poet Puṣpadanta belonged to the Digambara sect of the Jainas, while its editor is neither Digambara nor Śvetāmbarā. In interpreting the philosophical doctrine, he may have committed some mistakes because his knowledge of Jainism is from books. I, therefore, allow the reader to correct the editor's mistakes, if any, in the critical Notes.

Poona,
11th May, 1974.

—*P. L. Vaidya*

कृतज्ञता-ज्ञापन

महाकवि पुष्पदन्त भारतके उन इने-गिने कवियोंमें-से एक हैं जिन्होंने अपने सृजनमें मानवी मूल्योंकी गरिमाको धूमिल नहीं होने दिया। वाणी, जिनके हृदयका दर्पण है। उनकी कुल तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं। उनमें-से 'जसहरचरिउ' का सम्पादन १९३१ में डॉक्टर पी. एल. वैद्यने किया था। दूसरी रचना 'णायकुमार चरिउ' का सम्पादन १९३३ में स्वर्गीय डॉक्टर हीरालाल जैनने किया। ये दोनों रचनाएँ, दुबारा सम्पादित होकर हिन्दी अनुवाद सहित, हाल हीमें प्रकाशित हुई हैं, इनके पुनः सम्पादनका श्रेय स्वर्गीय डॉक्टर हीरालाल जैनको है। ये भारतीय ज्ञानपीठसे प्रकाशित हैं। महापुराण महाकविका मूल और मुख्य काव्य है जिसे हम अपभ्रंश साहित्यका आकर ग्रन्थ कह सकते हैं। इसकी रचनामें कविको लगभग छह वर्ष लगे, जबकि सम्पादनमें डॉक्टर पी. एल. वैद्यको (१९३१ से ४२ तक) दस वर्ष। उनके सतत अध्यवसाय और अपभ्रंशके प्रति समर्पित भावनासे महापुराण, तीन जिल्दोंमें १९३९ से १९४२ के बीच प्रकाशित हुआ। लेकिन खेद है कि ३८ वर्षकी लम्बी अवधिमें भी, किसी भी भारतीय आर्यभाषामें इसका अनुवाद नहीं हुआ। १९५० के बाद भारतीय विश्वविद्यालयोंमें अपभ्रंशके अध्यापनका जितना विस्तार हुआ, अपभ्रंश भाषा और साहित्यके वस्तुनिष्ठ अनुसन्धानका उतना ही संकोच हुआ।

'णाभेयचरिउ' महापुराणका एक भाग है जो आचार्य जिनसेनके आदिपुराणके समकक्ष है, शेष भागको हम उत्तरपुराण कह सकते हैं। इस प्रकार अपभ्रंशमें जैनोंके समस्त शलाका-पुरुषोंके चरित्रोंका काव्यात्मक भाषामें वर्णन कर पुष्पदन्तने बहुत बड़ा काम किया। उन्होंने सिद्ध कर दिया कि कवि अपनी प्रतिभा और विराट् संवेदनाके बलपर किसी भी भाषामें महान् चरित्रोंकी अवतारणा कर सकता है। १९३७ के आस-पास उत्तरपुराणके एक खण्ड (८१ से ९२वीं सन्धि तक) हरिवंशपुराणका सम्पादन, जर्मन विद्वान् लुडविग आल्सडोर्फने किया था, (देवनागरी लिपि संस्करण, अँगरेजी भूमिकाके साथ) परन्तु वह भारतमें नहीं छप सका। महाकवि स्वयम्भूके पउमचरिउके हिन्दी अनुवाद (जो भारतीय ज्ञानपीठसे प्रकाशित है) के बाद मैंने अनुभव किया कि हिन्दी अनुवादके बिना न केवल महापुराणका, प्रत्युत समूचे अपभ्रंश साहित्यका वस्तुपरक मूल्यांकन नहीं हो सकता। अपभ्रंश भाषाके स्वरूप, प्रकृति, रचनाप्रक्रिया, देशी शब्द प्रयोग आदिके विषयमें सही विश्लेषणके लिए पुष्पदन्तका महापुराण ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है। सही और प्रामाणिक अनुवादके अभावमें एक हिन्दी विद्वान्ने 'समीरइ' का अर्थ किया है, हवा में। (कृष्ण हवामें बछड़ेको उछालते हैं?) पूरा प्रसंग है—

"महिस सिलंबउ हरिणा धरियउ
ण करणिबन्धणाउ णीसरिउ
दोहउ दोहणत्थु समीरइ
मुइ मुइ माहव्व कीलिउं पूरइ"

कृष्णकी बाललीलाका चित्रण है कि "भैंसके बच्चेको हरिने पकड़ लिया, वह उनके हाथकी पकड़से नहीं छूट सका, दोहन जिसके हाथमें है ऐसा दुहनेवाला (ग्वाल) कृष्णको प्रेरित करता है कि हे माधव! छोड़ो-छोड़ो, खेल हो चुका।" यहाँ समीरइ क्रिया है, वर्तमानकाल अन्य पुरुष का एक वचन। समीरका अधिकरणका एक वचन नहीं।

१९७५ में मैंने भारतीय ज्ञानपीठको महापुराणके अनुवादका प्रस्ताव भेजा, जिसे स्वीकार कर लिया गया। यह अनुवाद उसीका प्रतिफल है। अनुवाद करनेमें (खासकर अपभ्रंश काव्यके अनुवादमें) सबसे बड़ी कठिनाई अपभ्रंशके शब्दों और रचना प्रक्रिया को पहचाननेकी है, अपभ्रंश कवियोंकी सांकेतिक कथन-पद्धति भी बहुत बड़ी बाधा है, मूल अर्थ तक पहुँचनेमें। मैंने अनुवादको मूलगामी, सरल और मुहावरेदार बनानेका भरसक प्रयास किया है, परन्तु फिर भी यह दावा मैं नहीं करता कि वह एकदम निर्दोष है। पाठकोंसे निवेदन है कि उनके ध्यानमें जो त्रुटियाँ आयें, वे उनकी सूचना मुझे देने का कष्ट करें, उनका कष्ट निष्फल नहीं होगा, वह अनुवाद को शुद्ध बनानेमें सहायक होगा।

महापुराणके अनुवादकी कुल पाँच जिल्दें हैं। पहली सामने है। दूसरी जिल्द छप रही है। इस अवसरपर मैं एक प्रकारकी रिक्तताका अनुभव करता हूँ। भारतीय ज्ञानपीठके संस्थापक साहू दम्पती (श्री शान्तिप्रसादजी और श्रीमती रमारानी) अब हमारे बीच नहीं हैं। मैं उन्हें भारतीय ज्ञानपीठकी स्थापनाके दिनसे जानता हूँ, मिला कभी नहीं। श्रीमती रमाजी ज्ञानपीठकी प्रत्येक गतिविधिमें अभिरुचि रखती थीं। मूर्तिदेवी ग्रन्थमालाके सम्पादक श्रद्धेय डॉ. हीरालाल जैन और डॉ. ए. एन. उपाध्येका भी निधन हो गया। कालके आगे किसीकी नहीं चलती। आवागमन संसारका शाश्वत धर्म है। परन्तु उन्होंने अपभ्रंश भाषा और साहित्यके क्षेत्रमें जो कार्य किया है वह जहाँ उनका सच्चा स्मारक है, वहीं हमारे लिए पथ-प्रदर्शक भी। इस अवसरपर उक्त विशिष्ट व्यक्तित्वोंका पुण्यस्मरण करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ।

ग्रन्थमालाके वर्तमान सम्पादक श्रद्धेय पण्डित कैलाशचन्द्रजी और डॉ. ज्योतिप्रसादजीका भी मैं अनुगृहीत हूँ कि उन्होंने प्रस्तुत अनुवादको स्वीकृति दी। आदरणीय भाई लक्ष्मीचन्द्रजी जैनके प्रति भी मैं हृदयसे अनुगृहीत हूँ, उनकी रचनात्मक पहलके बिना, इसका इतने जल्दी छपना सम्भव नहीं था। इसके संयोजन और प्रकाशनमें क्रमशः सर्वश्री डॉ. गुलाबचन्द्रजी और सन्तशरण शर्माने जिस निष्ठाका परिचय दिया उसके लिए वे भी धन्यवाद और प्रशंसाके पात्र हैं।

अन्तमें श्रद्धेय डॉ. पी. एल. वैद्यके प्रति अपनी कृतज्ञता निवेदित करता हूँ कि उन्होंने महापुराणके अपने सम्पादित संस्करणका हिन्दी अनुवाद करनेकी अनुमति दी। भूमिकामें उन्होंने इसके लिए अपनी प्रसन्नता भी व्यक्त की है। मुझे भी इस बातकी प्रसन्नता और गर्व है कि महाकवि पुष्पदन्तके महापुराणका प्रथम अनुवाद देशकी सम्पर्क-भाषा हिन्दीमें हुआ। इससे डॉ. वैद्यकी यह आशा भी पूरी होगी कि विद्वान् पुष्पदन्तके साहित्यके विविध पक्षोंपर शोध-कार्य करें।

११४ उषानगर,
इन्दौर

—देवेन्द्रकुमार जैन

INTRODUCTION

[To the Old Edition]

The Mahāpurāṇa or Tisaṭṭhimahāpurisaguṇālaṃkāra is the earliest and the largest of the three known works of Puṣpadanta in Apabhraṃśa. Of the two smaller works, the Jasaharacariu was edited by me and published in the Kāranjā Jaina Series, Vol. I, 1931. The Ṇāyakumāracariu was edited by Professor Hiralal Jain and published in the Devendrakīrti Jaina Series, Vol. I, Kāranjā, 1933. I am now presenting to the reader the first volume of Puṣpadanta's Mahāpurāṇa comprising the Ādipurāṇa, and hope to complete the work in two more volumes. When I announced in my introduction to Jasaharacariu that I had undertaken the edition of the Mahāpurāṇa I did not realise how enormous the task before me was, and what financial and other difficulties the editor and the publishers might be involved into, but I am glad, after six long years of waiting, to offer to the linguists and the students of the Jain culture the first volume of this great work, and now I can assure the reader that if no further difficulties arise, I would offer the rest of the work within the next two or three years' time, so that all the three extant Apabhraṃśa works of Puṣpadanta will have been brought to light.

This Volume contains the first thirty-seven Saṃdhis out of the total of one hundred and two of the entire work. This portion is popularly known as the Ādiparva or Ādipurāṇa, and describes the lives of Risaha or Ṛṣabha, the first Tīrthaṃkara, and of Bharata, the first Cakravartin. The second volume will begin with the thirty-eighth saṃdhi and end with the eightieth, and the third volume will cover all the remaining saṃdhis. Dr. Ludwig Alsdorf of Hamburg, Germany, has just published in Roman characters a portion of the Mahāpurāṇa under the title "Harivaṃśapurāṇa, Ein Abschnitt aus der Apabhraṃśa Welthistorie, Mahāpurāṇa Tisaṭṭhimahāpurisaguṇālaṃkāra von Puṣpadanta, Hamburg, 1936", which contains saṃdhis 81–92 of the work. This portion will be re-edited in Devanāgarī characters and incorporated in the third volume, so that the entire work will now be made available to the public in a uniform edition. Besides as we now possess more Mss. than Dr. Alsdorf was then able to get, improvement on his work may be possible.

The text of the entire Mahāpurāṇa will cover approximately 2000 pages of the royal size, of which the present volume contains 600. It is clear that the whole of the Mahāpurṇā could not be conveniently issued in one volume. I therefore propose to include in each volume an Introduction, dealing chiefly with the problems which concern the text of that volume only, reserving larger questions arising out of entire text for the Introduction to the third and the last volume. Moreover, Introductions to Jasaharacariu and Ṇāyakumāracariu already contain some information about the author, the language of his works, metres etc., which the reader is presumed to possess.

THE CRITICAL APPARATUS

The text of the Ādipurāṇa or of the present volume of the Mahāpurāṇa is based upon the following five Mss. fully collated.

1. G. This Ms. consists of 503 leaves measuring 11" × 5". It has 8 lines to a page and about 29 letters to a line. It was written at Ghoghā Mandir, is dated 1575 of the Saṃvat era, or 1441 of the Śaka era, corresponding to 1518 A. D. It uses pṛṣṭhamātrās and has brief marginal gloss. It is a well-preserved Ms., belongs to the Balātkāra Gaṇa Mandir at Kāranjā, Berar, and bears No. 524 of their list (No. 7752 of the Catalogue). It was secured for my use by Professor Hiralal Jain. It begins :—॥ ओं नमः सिद्धेभ्यः ॥ सिद्धिवहूमणरंजणु etc., and ends :—इय महापुराणे तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारे महाकइपुप्फयंतविरइए महाभव्वभरहाणुमण्णिए महाकव्वे सगणहररिसहणाहभरहणिव्वाणगमणं णाम सत्ततीसमो परिच्छेओ समत्तो ॥ ३७ ॥ आइयं पव्वं समत्तं ॥ शुभं भवतु संघस्य ॥ स्वस्ति श्री सं० १५७५ वर्षे शाके १४४१ प्र० दक्षणायने ग्रीष्मऋतौ द्वि... ष्ठवदि ७ रवौ घोघामंदिरे श्रीमूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्रीमत्कुंदकुंदाचार्यान्वये भट्टारकश्रीपद्मनंदिदेवाः तत्पट्टे भट्टारकश्रीदेवेन्द्रकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भट्टारकश्रीविद्यानन्दिदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीमल्लिभूषणदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीलक्ष्मीचंद्र तच्छिष्य मुनीश्रीनेमिचंद्र। देशावूंबडज्ञातीयगांधी श्रीपति तस्यांगना बाई सभू तयोः पुत्र गांधी कारुआ गांधी सांतां। तेषां मध्ये बा० सभू तया लिखाप्य प्रदत्तमिदमादिपुराणशास्त्रं मुनिश्रीनेमिचंद्रेभ्यः ॥ शुभं भवतु ॥ श्रीरस्तु ॥ ग्रं० ८००० ॥ भ० लक्ष्मीचंद्रेभ्यः प्रदत्तं ॥ चिरं नंदतु ॥ शुभं भूयात् ॥

This is one of the best and the most authentic of the Mss. of the work that I possess. My text therefore is based mainly on this Ms. There have been a few—indeed very few—occasions when I had to adopt a reading other than the one given in it, but I feel confident that there were sufficient reasons for doing so on every such occasion.

2. K. This is a paper Ms. containing 732 pages measuring 16" × 4". Of these 732 pages, 288 are covered by the Ādipurāṇa or Ādiparva as it is called there. Each page contains 8 lines with about 50 letters to a line. The Ms. is carefully written and has copious marginal gloss. The words of the text are separated by a vertical stroke between words to be separated. Occasional

use of pṛṣṭhamātrās is noticed. The Ms. is decorated with thick red lines indicating the margin and there are three dots in red ink of the size of a four-anna silver coin, two in margins and one in the centre of the page where a square blank space is left. It seems that these dots represent the holes of a palm leaf Ms. from which this Ms. may have been copied. I secured this Ms. through my friend and pupil, Professor A. N. Upadhye of the Rajaram College, Kolhapur, who obtained it from his friend Mr. Tatyasaheb Patil of Nandni, near Kolhapur. It begins :—॥ ओं नमो वीतरागाय ॥ सिद्धिवहूमणरंजणु etc., and the Ādipurāṇa portion ends :—इय महापुराणे तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारे महाकइपुप्फयंतविरइए महाभव्वभरहाणुमण्णिए महाकव्वे सगणहररिसहनाहभरहणिव्वाणगमणं णाम सत्ततीसमो परिच्छेउ समत्तो ॥ आइपव्वं समत्तं ॥. It adds in a different hand : भ० श्रीवीरचंद्रास्तत्पट्टे भ० लक्ष्मीचंद्रास्तत्पट्टे भ० ज्ञानभूषणास्तत्पट्टे भ० श्रीप्रभाचंद्राणां पुस्तकं ॥ The Uttarapurāṇa portion ends :—इय महापुराणे तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारे महाभव्वभरहाणुमण्णिए महाकव्वे वीरजिणिदणिव्वाणगमणं णाम दुत्तरसयपरिच्छेयाणं महापुराणं समत्तं ॥ छ ॥ ग्रंथाग्रं ॥ श्लोकसंख्या २०००० (?) ॥ शुभं भवतु ॥ We find on the final blank leaf :—भ० लक्ष्मीचंद्रास्तत्पट्टे भ० श्रीवीरचंद्रास्तत्पट्टे भ० श्रीज्ञानभूषणास्तत्पट्टे भ० श्रीप्रभाचंद्राणां पुस्तकं ॥ It adds further in a different hand : भ० श्रीवादिचंद्रास्तत्पट्टे भ० श्रीमहीचंद्रास्तत्पट्टे भ० श्रीमेरुचंद्राणां पुस्तकं ॥

The entire work seems to be written in one hand; in fact this is the only Ms. of the whole of the Mahāpurāṇa, i. e., Ādipurāṇa and Uttarapurāṇa, written in one hand, that I have so far discovered. This Ms. seems to preserve the text as in G described above, but seems to be corrected to the version represented by the M B P group of Mss., in a different hand. This Ms. thus represents a mixed text. It is however easy to decipher what the original reading might have been. The gloss in the margin is more copious than in the Ṭippaṇa of Prabhācandra, (for which see below). There is no indication of the age of the Ms. although its original, probably a palm-leaf Ms., represents the older of the two recensions of our text. The corrections made therein to make it agree with a later recension of our text represented by the M B P group are made in a different hand, perhaps after about three generations of monks who owned it.

3. M. This Ms. consists of 470 leaves measuring $11'' \times 4\frac{1}{2}''$. It has 8 lines to a page and about 33 letters to a line. It is written in Mathurā, in 1883 of the Saṃvat era, i. e. in 1826 A. D. It is written in good modern hand and has some gloss in the margin, but not so copious as in K. or in the Ṭippaṇa of Prabhācandra. It belongs to the Deccan College Collection, now deposited at the Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona, and bears No. 1050 of 1887–91. It begins :—ओं नमो वीतरागाय ॥ सिद्धिवहूमणरंजणु etc. and ends :—इय महापुराणे तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारे महाकइपुप्फयंतविरइए महाभव्वभरहाणुमण्णिए महाकव्वे सगण-

हररिसहणाहभरहणिव्वाणगमणं णाम सत्ततीसमो परिच्छेओ समत्तो ॥ संधि ३७ ॥ संवत् १८८३ का मित्ती वैशाख शुक्ल ३ बुधवासरे ॥ शुभं भवतु ॥ लिखितं श्रीमथुरापुरीमध्ये ब्राह्मण स्यामलाल ॥ श्रीजिनधर्मप्रतिपालक श्रीमहाराजाधिराजश्रीकुमरजी चंपारामजी पठनार्थं वा परोपकारार्थं ॥ शुभं दीर्घायुर्भवति पुत्रवृद्धिर्भवति ॥ श्रीजिनधर्मप्रवर्तनं करोति ॥ श्री आदिनाथेभ्यो नमः ॥ समासोयं आदिपुराणः ॥ शुभं ॥

4. B. This Ms. consists of 306 leaves measuring 11″ × 5″. It has 9 lines to a page and about 33 letters to a line. It belongs to the Balātkāra Gaṇa Mandir at Kāranjā, Berar, and bears No. 523 of their list (No. 7753 of the Catalogue). It was secured for my use by Prof. Hiralal Jain of Amraoti. It was written at Yoginīpura, i. e., Delhi, in 1659 of the Saṃvat era, i. e., 1602 A. D. The Ms. is worn out, and its margins are decayed. It is an indifferently written Ms., omits portions mechanically while copying from its original, and has no gloss at all. I was at one time inclined to stop collating it, but did not do so for the simple reason that I thought I might find in it a version not influenced by the marginal gloss. I was however disappointed to see that the Ms. was very indifferently prepared. It begins:—ओं नमो वीतरागाय ॥ सिद्धिवहूमणरंजणु etc., and ends:—इय महापुराणे तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारे महाकइपुप्फयंतविरइए महाभव्वभरहाणुमण्णिए महाकव्वे सगणहररिसहनाहभरहनिव्वाणगमणं णाम सत्ततीसमो परिच्छेओ समत्तो ॥ संधि ३७ ॥ आदिपुराण खंडद्वयेन जात ॥ श्लोकमानेनाष्टसहस्राणि अंकतो ग्रंथ ८००० ॥ अक्षरमात्रपदस्वरहीनं व्यंजनसंधिविवर्जितरेफं ॥ साधुभिरेव मम क्षमितव्यं को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे ॥ योगिनीपुरदुर्गस्थाने जलालदीनसाहिअकबरराज्ये अथ संवत्सरेस्मिन् श्रीविक्रमादित्यराज्ये संवत् १६५९ पौषसुदि ४ बुधवासरे श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुंदकुंदाचार्यान्वये भट्टारकश्रीसिंघकीर्तिदेवा..............

5. P. This Ms. is incomplete and has lost a portion at the end. The available portion of it consists of 305 leaves measuring 11½″ × 5″. It has 9 lines to a page and about 30 letters to a line. It belongs to the Deccan College Collection, now deposited at the Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona, and bears No. 370 of 1879–80. It seems to be a very old Ms., edges of leaves being worn out. There is a profuse marginal gloss. The pṛṣṭhamātrās are used. The available portion ends with a part of the third kaḍavaka of the 28th saṃdhi (see foot-note 8 on this kaḍavaka on page 433 of our edition). This Ms. preserves a recension which is metrically correct, i. e., it uses इ, ए, उ and ओ as they are required for their correct metrical value almost uniformly. I found it therefore very convenient to follow it for this purpose, and hence have not recorded variants like पणविवि and पणवेवि where पणविवि represents the metrically correct form. It begins :—स्वस्ति ॥ ओं नमः ॥ सिद्धेभ्यः ॥ सिद्धिवहूमणरंजणु etc., and ends with चामर° in XXVIII. 3. 11.

In addition to these five Mss. fully collated, I came across three more Mss. of the Ādipurāṇa. Of these one is deposited in the Sena Gaṇa Mandir at Kāranjā, (No. 7754 of Rai Bahadur Hiralal's Catalogue of Mss. in C. P. &

Berar). I examined it on the spot during my visit to that place in 1927. This Ms. was got copied at her own cost by a lady ancestor of the famous Chaware family of Kāranjā and presented by her to the Bhaṭṭāraka 'of the temple. It is dated Wednesday the 8th of the dark half of Kārtika of 1591 of the Saṃvat era, i. e., 1534 A.D. As I could not secure it for full collation, I prepared some trial collations from it, but as they did not reveal any difference in the variants other than those found in M B P, I dropped the idea of incorporating them in my apparatus. The two other Mss. belong to the Deccan College collection, now deposited at the Bhandarkar Oriental Research Insitute, Poona. One of them bears No. 1140 of 1891-96. It is incomplete and carelessly written. It contains the first 19 saṃdhis only, and is dated the 5th day of the bright half of Jyeṣṭha of 1848 of the Saṃvat era, i. e., 1791 A. D. I made some trial collations from this Ms. but found the variants agreeing with those of M B P and hence did not collate it further. The other Ms. from the Bhandarkar Oriental Research Institute bears No. 1139 of 1891–95. It is dated Wednesday, the 10th of the bright half of Phālguna of 1925 of the Saṃvat era. i. e., 1868 A. D. This Ms. consists of three parts written in three different hands and on two different kinds of paper. The first part consists of 142 leaves and contains the text of the first sixteen saṃdhis. The second part contains 177 leaves which are numbered from 1 to 177, and not from 143. The third part contains the remaining 33 pages, numbered from 178, but written by a different person. I made some trial collations from this Ms. also, but did not find variants different from those found in M B P, and hence did not collate it further. This Ms. puts dots at places where the writer was unable to decipher his original either because it was illegible or damaged. Besides, these last named Mss. are considerably modern and could, on that account too, be ignored.

By far the most important aid for fixing the text and preparing the critical apparatus was obtained from the Ṭippaṇa of Prabhācandra (T in the Critical Apparatus). I secured a Ms. of this Ṭippaṇa on the Ādipurāṇa portion from the Deccan College collection, now deposited at the Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona, which bears No. 563 of 1876–77. This Ms. measures $13\frac{1}{2}'' \times 5\frac{1}{2}''$, has 51 leaves, with 13 lines to a page and 45 letters to a line. The script used is peculiar in that words like द्वितीय are written like द्वितांय. There is no indication as to its age, but from appearance it seems to belong to the 16th century A. D. It begins :—ओं णमो वीतरागाय ।। प्रणम्य वीरं विबुधेन्द्र-संस्तुतं निरस्तदोषं वृषभं महोदयम् । पदार्थसंदिग्धजनप्रबोधकं महापुराणस्य करोमि टिप्पणम् ॥१॥ सिद्धीत्यादि सिद्धिरनन्तचतुष्टयप्राप्तिः सैव वधूस्तस्या मनोरञ्जनश्चित्तरञ्जकः । It ends:—इति सप्तत्रिंशत्तमसंधि

समाप्ताः ॥ समस्तसंदेहहरं मनोहरं प्रकृष्टपुण्यं प्रभवं जिनेश्वरम् । कृतं पुराणे प्रथमे सुटिप्पणं सुखावबोधं निखिलार्थदर्पणम् ॥ इति श्रीप्रभाचन्द्रविरचितमादिपुराणटिप्पणकं पंचासश्लोकहीणं सहस्रद्वयपरिमाणं परिसमाप्ता ॥ शुभं भवतु ॥

I also examined a Ms. of Prabhācandra's Ṭippaṇa on the Uttarpurāṇa which I obtained, through the kindness of Professor Hiralal Jain, from Master Motilal Sanghi of Jaipore. This Ms. measures $12'' \times 5\frac{1}{2}''$, has 57 leaves with 13 lines to a page and about 31 letters to a line. It begins:—ओं नमः सिद्धेभ्यः ॥ बंभहो परमात्मनः । It ends :—श्रीविक्रमादित्यसंवत्सरे वर्षाणामशीत्यधिकसहस्रे महापुराणविषमपदविवरणं सागरसेनसैद्धान्तान् परिज्ञाय मूलटिप्पणकां चालोक्य कृतमिदं समुच्चयटिप्पणं अज्ञपातभीतेन श्रीमद्बला ....रगणश्रीसंघाचार्यसत्कविशिष्येण श्रीचन्द्रमुनिना निजदोर्दण्डाभिभूतरिपुराज्यविजयिनः श्रीभोजदेवस्य ॥१०२॥ इति उत्तरपुराणटिप्पणकं प्रभाचन्द्राचार्यविरचितं समाप्तम् ॥ अथ संवत्सरेस्मिन् श्रीनृपविक्रमादित्यगताब्दः संवत् १५७५ वर्षे भाद्रवासुदि । बुद्धदिने । कुरुजांगलदेशे । सुलितानसिकंदरपुत्रु सुलितानब्राहिमु राज्यप्रवर्तमाने श्रीकाष्ठासंघे मथुरान्वये पुष्करगणे । भट्टारकश्रीगुणभद्रसूरिदेवाः । तदाम्नाये जैसवाल्लु चौ. टोडरमल्लु । इदं उत्तरपुराणटीका लिखापितं ॥ सुभं भवतु ॥ मांगल्यं ददाति लेखकपाठकयोः ॥ This Ms. is dated Saṃvat 1575, i. e. 1578 A. D.

On examining the colophon of the author of the Ṭippaṇa we learn some very important and interesting particulars about the manner of its composition. We learn that the Ṭippaṇa was composed in the year 1080 of the Vikrama era, i.e., 1023 A. D., i. e., within sixty years of the completion of the Mahāpurāṇa by Puṣpadanta; we also learn that king Bhoja of Dhārā was then ruling in Malva; that Prabhācandra consulted the works of Sāgarasena for his Ṭippaṇa; that he also consulted the orginal Ṭippaṇa, probably of Puṣpadanta himself (मूलटिप्पणकां चालोक्य), and prepared a collected Ṭippaṇa (समुच्चयटिप्पणं) on the Mahāpurāṇa, embodying the original Ṭippaṇa. An author's writing a Ṭippaṇa on his own work may appear somewhat strange, but it is not altogether impossible; for I had an occasion to examine Mss. written by the authors of the 18th century in their own hand bearing also a gloss in their own hand, and I feel certain that these authors must have borrowed the mentality of writing a gloss on their own works from their forefathers. I therefore think that Puṣpadanta must have written a short gloss on the difficult words of his work; this gloss must have been amplified by Prabhācandra, and that the process of amplification must have continued still further down. The gloss found in Mss. of our text is not identical with the Ṭippaṇa of Prabhācandra, but is one which is either abriged or amplified.

Professor Hiralal Jain, in his Introduction (LXIII—LXIV) to the Ṇāyakumāracariu refers to the colophon of a Ms. of the Ṭippaṇa of Prabhācandra which he came across, and says that Prabhācandra lived in the reign of Jayasiṃhadeva of Dhārā (*circa* 1055 A. D.) But in view of the express men-

tion of the date, 1080 of the Vikrama era, i. e., 1023 A. D. and of the reign of King Bhoja in our Ms., we must regard that reference to a subsequent copy of the work, perhaps by Prabhācandra himself. Our Ms. of the Ṭippaṇa again does not contain the stanza तत्वाधारमहापुराण etc. Prabhācandra might have added this stanza in a subsequent copy of his work at a later date, which assumption may also explain the reference to king Jayasiṃhadeva.

The critical apparatus described above divides the Mss. into two groups, one comprising G and K, and the other M, B and P, not only because of the general agreement of the variants noted, nor on account of additions or omissions to the original text in a particular group (see page 514), but also on the strength of the agreement of the Praśasti stanzas found at the beginning of several saṃdhis. I have already alluded to this topic in my Introduction to Jasaharacariu (page 21), but I think it is necessary to discuss it in detail as it throws considerable light on the Ms. tradition of the works of Puṣpadanta and also the principle on which I have grouped the Mss. and valued them.

THE PRAŚASTI STANZAS OF THE MAHĀPURĀṆA[1]

When I had an occasion to study the manuscript material for my edition of Jasaharacariu, I discovered that certain Mss. contained, at the commencement of a saṃdhi, stanzas in praise of the poet's patron, Nanna, while others did not record them. In the course of the collation of Mss. I also discovered the fact that those Mss. which contained these praśasti stanzas agreed very closely in one set of variants, while those Mss. which did not contain these stanzas agreed very closely in equally another set of variants. On further examination I found that those Mss. which did not give the praśasti stanzas presented an older recension of the text, while those that contained these stanzas presented a later and amplified recension. In the case of the Jasaharacariu the amplified passages were located and their author and his date found out. As that interpolator, who lived four centuries after the poet, had nothing to do with the poet's patron, I was convinced that the poet himself must have composed these praśasti stanzas, and was forced to advance a hypothesis that the poet himself, with the help he obtained from his patron, must have got made two or three sets of copies of his work, in one of which he wrote, at leisure, at first in the margin perhaps, some stray stanzas glorifying his patron, while other set or sets had already gone out of his hand without the addition of these stanzas. This hypothesis, briefly enunciated on

1. Some of the Praśasti stanzas are put together by Pandit Nathuram Premi in his article on Puṣpadanta in Jain Sāhitya Saṃśodhaka, Vol. II, No. I, 1923.

page 21 of the Introduction to Jasaharacariu, enabled me then to fix up that Mss. S and T of the work presented an older version. I had there an occasion to test the correctness of the hypothesis by referring to one of the Praśasti stanzas of the Mahāpurāṇa, viz.,

> दीनानाथधनं सदाबहुजनं प्रोत्फुल्लवल्लीवनं
> मान्याखेटपुरं पुरंदरपुरीलीलाहरं सुन्दरम् ।
> धारानाथनरेन्द्रकोपशिखिना दग्धं विदग्धप्रियं
> क्वेदानीं वसतिं करिष्यति पुनः श्रीपुष्पदन्तः कविः ॥

which puzzled the historian in respect of the fixing of the date of the composition of the Mahāpurāṇa, in as much as the plunder of Mānyakheṭa, a well-ascertained historical event of 972 A. D., was referred to by the poet in the middle of the work in the above mentioned stanza found in the Kāranjā Ms. at the beginning of the 50th saṃdhi, while the completion of the Mahāpurāṇa in the Krodhana year, i. e., in 965 A. D. was an equally certain event. I found that the stanza did not occur in my Ms. K. This fact coupled with the absence of praśasti stanzas in my best Mss. of the Jasaharacariu enabled me to advance the hypothesis set out above, which further examination of a large number of Mahāpurāṇa Mss. fully corraborates. The Ṇāyakumāracariu of Puṣpadanta, which was then being prepared for the Press by my friend Professor Hiralal Jain, did not contain any praśasti stanzas in any of his Mss., and hence I could not test the accuracy of my hypothesis there. I therefore proceeded to collate the praśasti stanzas occurring at the beginning of the saṃdhis of the Mahāpurāṇa. I have not so far discovered a Ms. of the Mahāpurāṇa which has no praśasti stanzas : at the same time I have found that Mss. do not agree in giving them all. I have however found that groups of Mss. agree amazingly in giving a stanza at a particular place or omitting it altogether. A smaller number of stanzas was found in my Mss. G and K of the Ādipurāṇa, while the remaining Mss. gave a much larger number of them. I therefore regard that G and K preserve an older, if not the oldest, recension of the text of the Ādipurāṇa. I think that these stanzas do not form an integral part of the text and hence they are relegated to notes in the Critical Apparatus. I however believe that they were composed by the poet himself as nobody could be interested in glorifying Bharata to such extent. I also believe that the poet composed these stanzas long after he had completed the composition of the Mahāpurāṇa. At any rate the stanza दीनानाथधनं etc. he could not have written before 972 A. D., i. e., seven years after the completion of the Mahāpurāṇa. As the question of these stanzas is important for the manuscript tradition and as they throw considerable light on the relation of

the poet with his patron Bharata and allied topics, I give them all arranged in groups, i. e., (a) those found in G and K; (b) those found in other Mss. of the Ādipurāṇa; (c) those found in Poona, Kāranjā and K of the Uttarapurāṇa portion; and (d) those found exclusively in the Jaipore Ms. I have also numbered them consecutively for easy reference in the next section.

(a) 1. (i) आदित्योदयपर्वतादुरुतराच्चन्द्रार्कचूडामणे-
रा हेमाचलतः कुशेशनिलयादा सेतुबन्धाद् दृढात् ।
आ पातालतलादहीन्द्रभवनादा स्वर्गमार्गं गता
कीर्तिर्यस्य न वेद्मि भद्र भरतस्याभाति खण्डस्य च ।

This stanza states that the fame of Bharata, the patron and friend of Khaṇḍa, i. e., the poet himself, has pervaded the entire universe. The stanza is found at the commencement of the 3rd saṃdhi in G and K, but at the beginning of the 2nd saṃdhi in the remaining Mss. (See foot-note on page 18 and also note the variants.)

2. (ii) सौभाग्यं शुचिता क्षमा भुजबलं शौर्यं वपुः सुन्दरं
सत्यं सर्वजनोपकारकरणं वृत्तं स्वकं सन्मतम् ।
हे विद्वन् भरतस्य भूतिजननं विद्यार्थिनामाशु य-
स्यैकैकं गुणमङ्गमूर्जितधियां पुंसामचिन्त्यं भुवि ॥

This stanza mentions some of the qualities which Bharata the poet's patron, possessed. This stanza is found exclusively in G and K at the beginning of the fourth saṃdhi.

3. (iii) भ्रूलीलां त्यज मुञ्च संगतकुचद्वन्द्वादिकं वक्षसा
मा त्वं दर्शय चारुमध्यलतिकां तन्वङ्गि कामाहता ।
मुग्धे श्रीमदनिन्द्यखण्डसुकवेर्बन्धुर्गुणैरुन्नतः
स्वप्नेऽप्येष पराङ्गनां न भरतः शौचेनेदधिर्वाञ्छति ॥

This stanza states that Bharata, the poet's friend and patron, is so virtuous that he would never think of the wife of another person. The stanza is found at the beginning of the 5th saṃdhi in G and K, and in other Mss. also at the same place. (See footnote on page 72 and also note the variants.)

4. (iv) एको दिव्यकथाविचारचतुरः श्रोता बुधोऽन्यः प्रियः
एकः काव्यपदार्थसंगतमतिश्चान्यः परार्थोद्यतः ।
एकः सत्कविरन्य एष महतामाधारभूतो विदां
द्वावेतौ सखि पुष्पदन्तभरतौ भद्रे भुवो भूषणम् ॥

This stanza brings out the characteristics of the poet and his patron, both of them adorning the earth, The stanza is found in G and K at the beginning of the eighth saṃdhi, but in all others at the beginning of the 9th saṃdhi.

5. (v) जगं रम्मं हम्मं दीवओ चन्दबिम्बं
धरित्ती पल्लंको दो वि हत्था सुवत्थं ।
पिया णिद्दा णिच्चं कव्वकीला विणोओ
अदीणत्तं चित्तं ईसरो पुप्फदन्तो ॥

This stanza states that the poet Puṣpadanta is a king in as much as he has the nobility of mind : the whole world is his fine mansionhouse, the moon the lamp, the ground his bed-stead, his arms his clothing, sleep his beloved and poetry his pastime. The stanza is found in G and K, and in all other Mss. at the beginning of the tenth saṃdhi, and also at the beginning of the fiftieth saṃdhi of the Uttarapurāṇa in Poona, Jaipore and Kāranjā Mss.

6. (vi) णाइन्दसुरिन्दणरिन्दवन्दिया जणियजणमणाणन्दा ।
सिरिकुसुमदसणकइमुहणिवासिणी जयइ वाईसी ॥

7. (vii) तन्त्रीवाद्यैरनिन्द्यैर्वरकविरचितैर्गद्यपद्यैरनेकैः
कान्तं कुन्दावदातं दिशि दिशि च यशो यस्य गीतं सुरौघैः ।
काले तृष्णाकराले कलिमलमलितेऽप्यद्य विद्याप्रियो यां
सोऽयं संसारसारः प्रियसखि भरतो भाति भूमण्डलेऽस्मिन् ॥

Of these the first stanza glorifies the poetic genius of Puṣpadanta and the second glorifies Bharata, the poet's patron, for his appreciation of learning in the Kali age. These stanzas are found in G and K at the beginning of 30th saṃdhi and in MBP and others of this group at the beginning of 29th saṃdhi.

8. (viii) प्रतिगृहमटति यथेष्टं बन्दिजनैः स्वैरसङ्गमावसति ।
भरतस्य वल्लभासौ कीर्तिस्तदपीह चित्रतरम् ॥

The stanza notes that it was strange on the part of Bharata still to cherish love for fame, conceived as his wife, when she wanders wantonly in every house and freely dallies with bards. This stanza is found in G and all Mss. of the other group, but is missing in K. The want of agreement in G and K in this respect, however, strengthens my hypothesis that these stanzas do not form an integral part of the text, but were composed by the poet at a later stage and added in the margin of some of the copies of his work that he still had with him.

The agreement existing between G and K regarding the location of the above-mentioned praśasti stanzas led me to believe that they formed a group by themselves. This belief of mine was confirmed by a general agreement of the variants and also by non-inclusion of a long passage, found in Mss. of the other group and noted by me in the Critical Apparatus on page 514 of the printed text. Further, the fact that the number of praśasti stanzas in the other group is much larger than in this group indicates that this group of

Mss. represents an older recension than the other one. Occasional disagreement between G and K is due to the fact that K represents a mixed version, the text in it being corrected on the model of the text in the MBP group at numerous places. I have noted all such places in the Critical Apparatus where I was able to read the original and the corrected variants, but at places the pigment or the ink was applied rather thick which made it difficult for me to decipher the Ms. correctly.

The second group of Mss. in my Critical Apparatus is represented by M, B and P. Besides these, I had an occasion to consult three more Mss., one from the Seṇa Gaṇa Bhāṇḍāra at Kāranjā and two from the Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona. All the Mss. of this group contain the Praśasti stanzas, (i) and (iii–viii) given above. Over and above this they also contain the following ;—

(b) 9. (i) बलिजीमूतदधीचिषु सर्वेषु स्वर्गितामुपगतेषु ।
संप्रत्यनन्यगतिकस्त्यागगुणो भरतमावसति ॥
(Found at the beginning of the third saṁdhi.)

10. (ii) आश्रयवशेन भवति प्रायः सर्वस्य वस्तुनोऽतिशयः ।
भरताश्रयेण संप्रति पश्य गुणा मुख्यतां प्राप्ताः ॥
(Found at the beginning of the fourth saṃdhi.)

11. (iii) श्रीर्वाग्देव्यै कुप्यति वाग्देवी द्वेष्टि संततं लक्ष्म्यै ।
भरतमनुगम्य सांप्रतमनयोरात्यन्तिकं प्रेम ॥
(Found at the beginning of the sixth saṃdhi.)

12. (iv) हंहो भद्र प्रचण्डावनिपतिभवने त्यागसंख्यानकर्ता
कोऽयं श्यामः प्रधानः प्रवरकरिकराकारबाहुः प्रसन्नः ।
धन्यः प्रालेयपिण्डोपमधवलयशोधौतधात्रीतलान्तः
ख्यातो बन्धुः कवीनां भरत इति कथं पान्थ जानासि नो त्वम् ॥
(Found at the beginning of the seventh saṃdhi.)

13. (v) मातर्वसुंधरि कुतूहलिनो ममैत-
दापृच्छतः कथय सत्यमपास्य शाठ्यम् ।
त्यागी गुणी प्रियतमः सुभगोऽतिमानी
किं वास्ति नास्ति सदृशो भरतार्यतुल्यः ॥
(Found at the beginning of the eighth saṃdhi,)

14. (vi) सूर्यात्तेज (?) गभीरिमा जलनिधेः स्थैर्यं सुराद्रेर्विधोः
सौम्यत्वं कुसुमायुधात्सुभगतां त्यागं बलेः संभ्रमान् ।
एकीकृत्य विनिर्मितोऽतिचतुरो धात्रा सखे सांप्रतं
भरतार्यो गुणवान् सुलक्ष्मयशसः खण्डः (?) कवेर्वल्लभः ॥
(Found at the beginning of the eleventh saṃdhi.)

15. (vii) तीव्रापद्दिवसेषु बन्धुरहितेनैकेन तेजस्विना
संतानक्रमतो गतापि हि रमा कृष्टा प्रभोः सेवया ।
यस्याचारपदं वदन्ति कवयः सौजन्यसत्यास्पदं
सोऽयं श्रीभरतो जयत्यनुपमः काले कलौ सांप्रतम् ॥

(Found at the beginning of the thirteenth saṃdhi and also at the beginning of the thirty-fourth saṃdhi.)

16. (viii) केलासुब्भासिकन्दा धवलदिसिगउग्गिण्णदन्तङ्कुरोहा
सेसाहीबद्धमूला जलहिजलसमुब्भूयपिण्डीरवत्ता ।
बम्भण्डे वित्थरन्ती अमयरसमयं चन्दबिम्बं फलन्ती
फुल्लन्ती तारओहं जयइ नवलया तुज्झ भरहेस कित्ती ॥

(Found at the beginning of the fourteenth saṃdhi.)

17. (ix) त्यागो यस्य करोति याचकमनस्तृष्णाङ्कुरोच्छेदनं
कीर्तिर्यस्य मनीषिणां वितनुते रोमाञ्चचर्चं वपुः ।
सौजन्यं सुजनेषु यस्य कुरुते प्रेम्णोऽन्तरां निर्वृतिं
श्लाघ्योऽसौ भरतः प्रभुर्बत भवेत्काभिर्गिरां सूक्तिभिः ।

(Found at the beginning of the fifteenth saṃdhi. It is also found at the beginning of the 95th saṃdhi of the Uttarapurāṇa in K, and in Poona and Jaipore Mss.)

18. (x) वलिभङ्गकम्पिततनु भरतयशः सकलपाण्डुरितकेशम् ।
अत्यन्तवृद्धिगतमपि भुवनं वि (बं ?) भ्रमति तच्चित्रम् ॥

(Found at the beginning of the seventeenth saṃdhi. It is also found at the beginning of the 102nd saṃdhi of the Uttarapurāṇa in K, and in Poona and Jaipore Mss.)

19. (xi) शशधरबिम्बात्कान्तिस्तेजस्तपनाद्गभीरतामुदधेः ।
इति गुणसमुच्चयेन प्रायो भरतः कृतो विधिना ॥

(Found at the beginning of the eighteenth saṃdhi. It is also found at the beginning of the thirty-ninth saṃdhi of the Uttarapurāṇa in K, and in Poona and Jaipore Mss.)

20. (xii) श्यामरुचि नयनसुभगं लावण्यप्रायमङ्गमादाय ।
भरतच्छलेन संप्रति कामः कामाकृतिमुपेतः ॥

(Found at the beginning of the nineteenth saṃdhi.)

21. (xiii) फणिनि विमुह्यतीव मेचकरुचि कचनिचयेषु योषिता-
मलकिषु मूर्च्छतीव हसतीव तमालतलेषु पुञ्जितम् ।
मदमुचि माद्यतीव लोलालिनि वरकरिगण्डमण्डले
दिशि दिशि लिम्पतीव पिबतीव निमीलयतीव खड्गणे (?) ॥

(Found at the beginning of the twentieth saṃdhi.)

22. (xiv) यस्य जनप्रसिद्धमत्सरभरमनवमपास्य चारुणि
प्रतिहतपक्षपातदानश्रीरुरसि सदा विराजते ।

वसति सरस्वती च सानन्दमनाविलवदनपङ्कजे
स जयति जयतु जगति भरतेश्वर सुखमयममलमङ्कुलः ॥

(Found at the beginning of the twenty-first samdhi).

23. (xv) मदकरिदलितकुम्भमुक्ताफलकरभरभासुराननना
मृगपतिनादरेण यस्या धृतमनघमनर्घमासनम् ।
निर्मलतरपवित्रभूषणगणभूषितवपुरदारुणा
भारतमल्ल सास्तु देवी तव बहुविधमम्बिका मुदे ॥

(Found at the beginning of the twenty-second samdhi).

24. (xvi) अङ्गुलिदलकलापमसमद्युति नखनिकुरम्बकर्णिकं
सुरपतिमुकुटकोटिमाणिक्यमधुव्रतचक्रचुम्बितम् ।
विलसदनुप्रतापनिर्मलजलजन्मविलासि कोमलं
घटयतु मङ्गलानि भरतेश्वर तव जिनपादपङ्कजम् ॥

(Found at the beginning of the twenty-third samdhi).

25. (xvii) हिमगिरिशिखरनिकरपरिपाण्डुरधवलितगगनमण्डलं
पुलकमिवातनोति केतकतरुवरतरुकुसुमसंकरे ।
विकसितफणिफणासु सुरसरितो मणिरुचिगतमधः क्षिते-
रिदमतिचित्रकारि भरतेश्वर जगतस्तावकं यशः ॥

(Found at the beginning of the twenty-fourth samdhi).

26. (xviii) उन्नतातिमनुमात्रपात्रता (?) भाति भद्र भरतस्य भूतले ।
काव्यकीर्तिघण्टारवो गृहे यस्य पुष्पदन्तो दिशागजः ॥

(Found at the beginning of the twenty-fifth samdhi).

27. (xix) घनधवलताश्रयाणामचलस्थितिकारिणां मुहुर्भ्रमताम् ।
गणनैव नास्ति लोके भरतगुणानामरीणां च ॥

(Found at the beginning of the twenty-sixth samdhi).

28. (xx) गुरुधर्मोद्भवपावनमभिनन्दितकृष्णार्जुनगुणोपेतम् ।
भीमपराक्रमसारं भारतमिव भरत तव चरितम् ॥

(Found at the beginning of the twenty-seventh and thirty-seventh samdhis).

29. (xxi) मुखनलिनोदरसद्मनि गुणधृतहृदया सदैव यद्वसति ।
चोज्जमिदमत्र भरते शुक्लापि सरस्वती रक्ता ॥

(Found at the beginning of the twenty-eighth samdhi).

30. (xxii) बम्भण्डाहुण्डलखोणिमण्डलुञ्छलियकित्तिपसरस्स ।
खण्डेण समं समसीसियाइ कइणो न लज्जन्ति ॥

(Found at the beginning of the thirty-second samdhi).

31. (xxiii) विनयाङ्कुरशातवाहनादौ नृपचक्रे दिवमीयुषि क्रमेण
भरत तव योग्यसज्जनानामुपकारो भवति प्रसक्त एव ॥

(Found at the beginning of the thiry-third saṃdhi. It is also found at the beginning of the fortieth saṃdhi of the Uttarapurāṇa in Poona and Jaipore Mss., but is missing in K).

32. (xxiv) इति भरतस्य जिनेश्वरसमर्थैकशिरोमणेर्गुणान्वक्तुम् ।
मातुं च वार्धितोयं चुलुकैः कस्यास्ति सामर्थ्यम् ॥

(Found at the beginning of the thirty-fifth saṃdhi).

It will thus be seen that the MBP group of Mss. which I fully collated for my work and at least three more Mss., one from Seṇa Gaṇa Bhāṇḍāra at Kāranjā and two from Poona, contain as many as twenty-four more stanzas at exactly the same point in the Ādipurāṇa portion. Some of these are repeated in some Mss. of the Uttarapurāṇa, no doubt, still the evidence strongly supports me to group them together. The variants in the text that they give justify the above view.

The above conclusion led me to see if similar groups of Mss. existed for the Uttarapurāṇa also. Unfortunately the number of the available Mss. of the Uttarapurāṇa is very small, viz., four. Of these one is my K, the second comes from the Bhandarkar Institute, Poona, the third from Jaipore and the fourth from the Balātkāra Gaṇa Bhāṇḍāra at Kāranjā. On examination I found that Poona and Kāranja Mss. agree in putting certain stanzas at a place, particularly those four that are given at the beginning of the 50th saṃdhi, while K omits these very stanzas there and the Jaipore Ms. distributes them over four different saṃdhis from 50th onwards. I give below these stanzas with their location in the four Mss. mentioned above.

(c) 33. (i) वरमकरोदपारतरविवरमहिकिरणेन्दुमण्डलं
यदपि च जलधिवलयमधिलंघ्य विधेस्तदन्तरं दिशः ।
विगलितजलपयोदपटलद्युति कथमिदमन्यथा यशः
प्रसरदमादमल्लकदनाभारत भुवि भरत सांप्रतम् ॥

(Found in the Poona and Kāranjā Mss. at the beginning of the 41st and the 47th saṃdhis. The Jaipore Ms. has it only at the 41st. K does not give it anywhere).

34. (ii) भास्वानेककलावतोऽस्य च भवेद्यन्नाम तन्मङ्गलं
सर्वस्यापि गुरुर्बुधः कविरयं चक्रे अयं च (?) क्रमः ।
राहुः केतुरयं द्विषामिति दधत्साम्यं ग्रहाणां प्रभुः
संप्रत्योदय (?) मातनोति भरतः सर्वस्य तेजोधिकः ॥

(Found in the Poona and Kāranjā Mss. at the beginning of the 50th along with two following and जगं रम्मं हम्मं etc. (see stanza 5 above). The Jaipore Ms. gives this stanza alone at the 50th, and K does not give it anywhere).

35. (iii) सया सन्तो वेसो भूसणं सुद्धसीलं
सुसंतुट्ठं चित्तं सव्वजीवेसु मेत्ती ।
मुहे दिव्वा वाणी चारुचारित्तभारो
अहो खण्डस्सेसो केण पुण्णेण जाओ ॥

(Found in the Poona and Kāranjā Mss. at the 50th, the Jaipore Ms. gives it at 49th, and K does not give it anywhere).

36. (iv) दीनानाथधनं सदाबहुजनं प्रोत्फुल्लवल्लीवनं
मान्याखेटपुरं पुरंदरपुरीलीलाहरं सुन्दरम् ।
धारानाथनरेन्द्रकोपशिखिना दग्धं विदग्धप्रियं
क्वेदानीं वसतिं करिष्यति पुनः श्रीपुष्पदन्तः कविः ॥

(Found in the Poona and Kāranjā Mss. at the 50th, in the Jaipore Ms. at 52nd, and K does not give it anywhere).

37. (v) अत्र प्राकृतलक्षणानि सकला नीतिः स्थितिश्छन्दसा-
मर्थालंकृतयो रसाश्च विविधास्तत्त्वार्थनिर्णीतयः ।
किं चान्यद्यदिहास्ति जैनचरिते नान्यत्र तद्विद्यते
द्वावेतौ भरतेशपुष्पदशनौ सिद्धं ययोरीदृशम् ॥

(Found in all the four Mss. at the beginning of the 59th saṃdhi).

38. (vi) बन्धुः सौजन्यवार्धेः कविकुलधिषणाध्वान्तविध्वंसभानुः
प्रौढालंकारसारामलतनुविभवा भारती यस्य नित्यम् ।
वक्त्राम्भोजानुरागक्रमनिहितपदा राजहंसीव भाति
प्रोद्यद्गम्भीरभावा स जयति भरते धार्मिके पुष्पदन्तः ॥

(Found in all the four Mss. at the beginning of the 63rd saṃdhi).

39. (vii) आखण्डोड्डमरारवं डमरुकं चण्डीशमाश्रित्य यः
कुर्वन् काममकाण्डताण्डवविधिं डिण्डीरपिण्डच्छवेः ।
हंसाडम्बरडिण्डमण्डललसद्भागीरथीनायकं
वाञ्छन्नित्यमहं कुतूहलवती खण्डस्य कीर्तिः कृतेः ॥

(Found in all the four Mss. at the beginning of the 64th saṃdhi).

40. (viii) आजन्मं (?) कवितारसैकधिषणासौभाग्यभाजो गिरां
दृश्यन्ते कवयो विशालसकलग्रन्थानुगा बोधतः ।
किं तु प्रौढनिरूढगूढमतिना श्रीपुष्पदन्तेन भोः
साम्यं बिभ्रति (?) नैव जातु कविता शीघ्रं ततः प्राकृते ॥

(Found in all the four Mss. at the beginning of the 65th saṃdhi).

41. (ix) यस्येह कुन्दामलचन्द्ररोचिःसमानकीर्तिः ककुभां मुखानि ।
प्रसाधयन्ती ननु बंभ्रमीति जयत्वसौ श्रीभरतो नितान्तम् ॥

42. (x) पीयूषसूतिकिरणा हरहासहार-
कुन्दप्रसूनसुरतीरिणिशक्रनागाः ।

क्षीरोदशेषबलसत्तम (?) हंस (?) चेव
कि खण्डकाव्यधवला भरतः स यूयम् (?) ॥

(Both these stanzas are found in all the four Mss. at the beginning of the 66th saṃdhi).

43. (xi) इह पठितमुदारं वाचकैर्गीयमानं
इह लिखितमजस्रं लेखकैश्चारु काव्यम् ।
गतवति कविमित्रे मित्रतां पुष्पदन्ते
भरत तव गृहेऽस्मिन् भाति विद्याविनोदः ॥

(Found in all the four Mss. at the beginning of the 67th saṃdhi).

44. (xii) चञ्चच्चन्द्रमरीचिचञ्चुरचुराचातुर्यचञ्चोचिता
चञ्चन्ती विचटच्चमत्कृतिकविः प्रोद्दामकाव्यक्रियाम् ।
अञ्चन्ती त्रिजगन्ति कोमलतया बान्धुर्यधुर्या रसैः
खण्डस्यैव महाकवेः सभरतासित्यं कृतिः शोभते ॥

(Found in all the four Mss. at the beginning of the 68th saṃdhi).

45. (xiii) लोके दुर्जनसंकुले हतकुले तृष्णाकुले नीरसे
सालंकारवचोविचारचतुरे लालित्यलीलाधरे ।
भद्रे देवि सरस्वति प्रियतमे काले कलौ सांप्रतं
कं यास्यस्यभिमानरत्ननिलयं श्रीपुष्पदन्तं विना ॥

(Found in all the four Mss. at the beginning of the 80th saṃdhi).

The following three stanzas are found only in the Jaipore Ms.

(d) 46. (i) सोऽयं श्रीभरतः कलङ्करहितः कान्तः सुवृत्तः शुचिः
सज्ज्योतिर्मणिराकरो प्लुत इवानर्घ्यो गुणैर्भासते ।
वंशो येन पवित्रतामिह महामत्राह्वयः प्राप्तवान्
श्रीमद्वल्लभराज—कटके यस्याभवन्नायकः ॥

(Found at the beginning of the 42nd saṃdhi).

47. (ii) वापीकूपतडागजैनवसतीस्त्यक्त्वेह यत्कारितं
भव्यश्रीभरतेन सुन्दरधिया जैनं सुराणां (पुराणं ?) महत् ।
तत्कृत्वा प्लवमुत्तमं रविकृतिः (?) संसारवार्धेः सुखं
कोऽन्यत् (?) त्रसहृसो ? स्ति कस्य हृदयं तं वन्दितुं नेहते ॥

(Found at the beginning of the 45th saṃdhi).

48. (iii) संजुडियजाणुकोप्परगीवाकडिबन्धणावयवो ।
अणुहवइ वेरियं तुज्झ जं पावइ लेहओ दुक्खं ॥

(Found at the beginning of the 58th saṃdhi).

It will be seen from the account of these praśasti stanzas that even the Uttarapurāṇa Mss. preserve three different recensions, K representing the oldest, the Poona and Kāranjā Mss. the middle and the Jaipore Ms. the

youngest. Leaving the question of the genealogy of the Mss. of the Uttarapurāṇa for the time being, I present below in genealogical form the relation of the different Mss. of the Ādipurāṇa :—

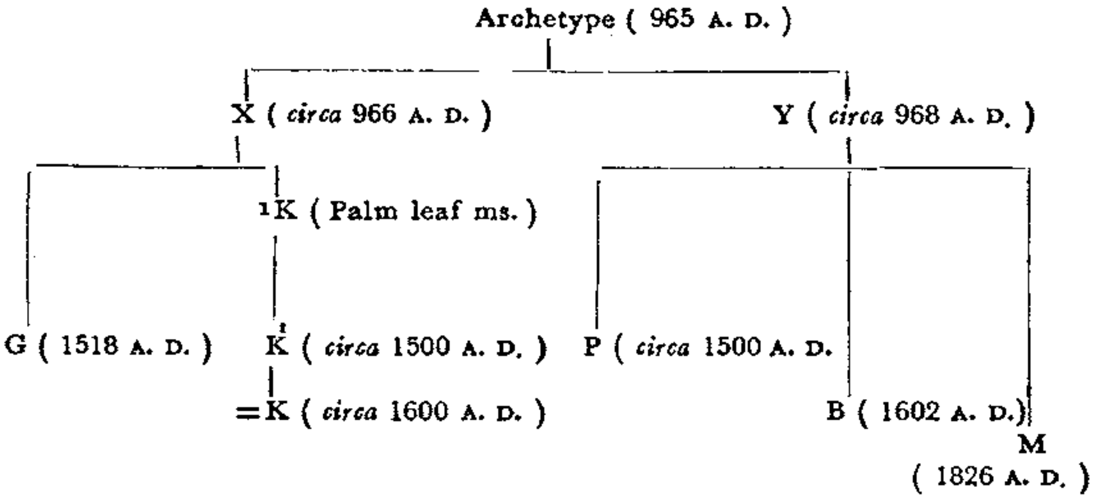

BHARATA, THE PATRON OF PUṢPADANTA

There are in all 48 praśasti stanzas found in the Mss. of the Mahāpurāṇa. Of these stanzas, six, viz., 5, 6, 16, 30, 35 and 48 are in Prakrit and the remaining are in Sanskrit. The Prakrit of these stanzas is grammatically correct and graceful, but we cannot say the same about the Sanskrit of the same. Prakritisms occur there pretty often (e. g. चोज्जं in 29). The subject matter of these stanzas covers topics such as homage to the goddess of learning (वाईसी, 6) and Ambikā (23), the poet Puṣpadanta himself (5, 30, 36, 39, 40, 45), the poet and his Mahāpurāṇa (37), the relation between Bharata, the patron, and the poet (1, 4, 14, 26, 35, 37, 38, 42, 43, 44), and the glorification of Bharata, the poet's patron (remaining stanzas). Bharata is mentioned and glorified in the body of the work (I. 3–8. XXXVII. 3–5; CII. 13) and also in the Ghattā lines and the puṣpikā at the end of each saṃdhi (महाभव्वभरहाणुमण्णिए महाकव्वे) of the Mahāpurāṇa. There are three stanzas in Sanskrit in some Mss. of the Jasaharacariu glorifying Nanna, Bharata's son and successor in office; and a long praśasti at the end of the Ṇāyakumāracariu (page 112) gives some details about the same. On the strength of the information supplied by these it is possible to construct a short biography of Bharata to whose generosity the world owes this epic poem in Apabhraṃśa.

1. The asterics indicate conjectural Mss.

We have now an excellent account of the *Rāṣṭrakūṭas and their Times* by Dr. A. S. Altekar (Poona, 1934). We find that a few pages (115–123) are devoted there to the political events of Kṛṣṇa III (939–968 A. D.). We also have there a section dealing with education and literature (Chapter XIV) of the period. And yet, we do not find any reference in the book to Bharata, the minister of Kṛṣṇa III, nor do we find any reference to the Poet. On the contrary we read on page 412 a remark to the effect that there is hardly any output of Prakrit Literature during the period. Puṣpadanta, under the patronage of Bharata and his son Nanna, composed three works in Apabhraṃśa, which covering as they do over 2000 pages of the size of the present volume, cannot be easily ignored, nor can Bharata, the patron of learning, be neglected, who constantly urged on the poet to make the best use of his gifts. It will not therefore be out of place to construct the story of the life of Bharata, the forgotten patron of Prakrit Literature, from out of the material like the references in the works of Puṣpadanta and the praśasti stanzas.

Kṛṣṇa III is known in Puṣpadanta's works by three names : Tuḍiga, Suhatuṅgarāya (Sk. Subhatuṅgarāja) कृष्णराज and Vallabhanṛpa. He came to the throne in 939 A. D., and ruled up to 968 A. D. In this year he was succeeded by his younger brother Khoṭṭigadeva. It was during the reign of Khoṭṭigadeva, in 972 A. D., that Mānyakheta, the capital of the later Rāṣṭrakūṭas, was plundered by the king of Dhārā. Bharata was the minister of Kṛṣṇa III. Nanna, Bharata's son, also, is mentioned as a minister of Suhatuṅgarāya, i. e., Kṛṣṇa III. Bharata however was still living when Puṣpadanta's Mahāpurāṇa was completed, i. e., upto 965 A. D. As Kṛṣṇa III died in 968 A. D., we have to suppose that Bharata must have died between 965 and 968 A. D., so that his son, Nanna, could succeed his father by 968 A. D. After the death of Bharata, Nanna extended his patronage to Puṣpadanta and induced him to write Jasaharacariu and Ṇāyakumāracariu.

Bharata seems to have come from the family of Koṇḍella gotra (Sk. Kauṇḍiṇya). This was a rich family and held the office of ministers (महामत्राह्वय: वंश:, 46), but had become poor. There are references which indicate that Bharata regained the lost wealth of his family by devoted service to his master (संतानक्रमतो गतापि हि रमा कृष्टा प्रभोः सेवया). His grandfather's name was Annaīya or Annayya. His father's name was Aiyaṇa or Airaṇa and his mother was called Devi. Bharata had no brother or near relative (बन्धुरहितेन, 15). He was married to Kundavvā and had seven sons, viz., Devalla, Bhogalla, Ṇaṇṇa, Sohaṇa, Guṇavamma, Dangaiya and Santaiya. Ṇaṇṇa is mentioned as the son of Kundavvā and it is not unlikely that Bharata had more wives

than one. All the seven sons of Bharata were still living in 965 A. D., while Ṇaṇṇa is stated to have succeeded his father already in 968 A. D. We have therefore to presume that his two elder brothers died following the death of their father or that Ṇaṇṇa had some special qualification to supercede his brothers in the office of his father.

Bharata is described by Puṣpadanta as possessing dark complexion (श्याम: प्रधान:, 12; श्यामरुचि, 20). He had a beautiful figure and is likened to the god of love (20). He had a good physique (भारतमल्ल, 23), and held the office of a general in the army of Kṛṣṇa III (वल्लभराज....कटके यश्चाभवन्नायक:, 46). He also held the portfolio of the minister of charities in the royal household (प्रचण्डावनिपतिभवने त्यागसंख्यानकर्ता, 12). He had a gentle dress and courteous manners and speech (सया सन्तो वेसो, मुहे दिव्वा वाणी, 35). He was fond of learning (विद्याप्रिय:, 7). He combined in him wealth and learning (श्रीरुरसि, सरस्वती वदनपङ्कजे, 22). It was impossible to count his virtues as it is impossible to count the waters of the sea (11 ; 12) He had a pure character (स्वप्नेप्येपराङ्गनां न वाञ्छति, 3). He was in fact a rendzvous of all virtues, most striking among them being his generosity. Poems were being recited in his house, copyists prepared copies of works. Thus, since Puṣpadanta became the friend of Bharata, his house became a meeting place of the learned (43). He was always generous to the needy and so held a place amongst generous persons of the past such as Bali, Jīmūtavāhana, Dadhīci, Vinayāṅkura and Śātavāhana (9, 31). His fame travelled far and wide (1). He had countless virtues as he had countless enemies (27), who experienced the same miseries as copyists experienced while toiling (48). One graceful act on his part was to induce Puṣpadanta to write the Mahāpurāṇa and to offer him the necessary help for this purpose. In fact, instead of spending his wealth in building wells, lakes, ponds and Jain temples, he used it on the preparation and propagation of the Jain epic with the help of which he would cross the ocean of saṃsāra with comfort (47).

The Poet Puṣpadanta came of a Brahmin family of Kāśyapa gotra. His father's name was Keśava and mother's name was Mugdhādevī. Both of them were devotees of Siva, but were later converted to Jainism. Puṣpadanta had a dark complexion and a lean body. He does not seem to have married. He was in extreme poverty, had neither property nor house, and yet he possessed a lord's noble mind (5). He seems to have been in the court of a king named Bhairava or Vīrarāja, and written a poem on him, but being insulted there, left his court, and came to Mānyakheṭa, modern Malkhed, which was then the capital of the Rāṣṭrakūṭas, and very prosperous (36). There he

stayed in a grove of trees, outside the town; two citizens, Indrarāja and Annaiya by name, saw him there and persuaded him to go to the house of Bharata where he would have a good reception. The poet was at first unwilling because of his bitter experiences of the wicked world in the past. He was however assured by these men that Bharata was a man of a different type, that he was so kind and noble. The poet thereupon went to him, had a good reception, as assured. After a few days' rest Bharata requested him to write the Mahāpurāṇa so that his poetic gifts could be rightly used. It was in this way that the poet began his Mahāpurāṇa in the house of Bharata in the Siddhārtha year of the Śaka era, i. e. in 959 A. D. The poet was out of mood after he had completed his Ādipurāṇa, i. e., the first thirty-seven saṃdhis, and halted there for some time. The goddess of learning appeared before him and encouraged him to resume the work. Bharata also induced him to complete the work. The poet thereupon finished his work in the Krodhana year of the Śaka era, i. e., in 965 A. D. He seems to have been highly pleased with his performance, and out of satisfaction and just pride he wrote—

अत्र प्राकृतलक्षणानि सकला नीतिः स्थितिश्छन्दसा-
मर्थालंकृतयो रसाश्च विविधास्तत्त्वार्थनिर्णीतयः ।
किं चान्यद्यदिहास्ति जैनचरिते नान्यत्र तद्विद्यते
द्वावेतौ भरतेशपुष्पदशनौ सिद्धं ययोरीदृशम् ॥ (37)

in the same spirit which prompted Vyāsa of the Mahābhārata to say—

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित् ।

For the Mahapurāṇa is as sacred to the Jains as the Mahābhārata is to the Hindus. The poet attributed the successful completion of the work as much to his genius as to the generosity of Bharata. His fame as poet travelled far and wide as that of Bharata for his generosity. It appears that Bharata died within three years of the completion of the Mahāpurāṇa, Nanna succeeded him in the office, extended his patronage to Puṣpadanta and asked him to write two more poems in Apabhraṃśa, Jasaharacariu and Ṇāyakumāracariu. The glory of the Rāṣṭrakūṭas, however, soon came to the end. Their capital, Mānyakheṭa, was plundered in 972 A. D., and the poet became destitute once more (क्वेदानीं वसतिं करिष्यति पुनः श्रीपुष्पदन्तः कविः, 36)

WHAT IS A MAHĀPURĀṆA ?

The Digambara Jains hold that their sacred literature consisting of Pūrvas and Aṅgas is lost; they do not therefore accept the authority of the Canon of the Śvetāmbaras. The Canon, according to the Digambaras, consists of four divisions : (i) Prathamānuyoga, lives of Tīrthaṃkaras

and other great men of the faith; in other terms, the kathā literature; (ii) Karaṇānuyoga, description of the geography of the universe; (iii) Caraṇānuyoga, rules of conduct for monks and laymen; and (iv) Dravyānuyoga, philosophical categories or philosophy. According to this classification works like the present text fall under the category of Prathamānuyoga.

The Mahāpurāṇa is a term peculiar to the Jain literature and means a great narrative of the ancient times. There are purāṇas or old tales in the Jain Literature, but they narrate the life of a single individual or holy person. The Mahāpurāṇa, on the other hand, describes the lives of sixty-three prominent men of the Jain faith. Jinasena uses the term Mahāpurāṇa as a synonym for Triṣaṣṭilakṣaṇa, while Hemacandra calls his work on the theme as Triṣaṣṭiśalākāpuruṣacarita, i. e., the lives of sixty-three promiment men (Salākāpuruṣa). Puṣpadanta uses the term Mahāpuraṇa to alternate with Tisaṭṭhimahāpurisaguṇālaṃkāra, Adoration of the Virtues or qualities of Sixty-three Great Men. The term purāṇa is defined in the Hindu Literature as follows :—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥

The purāṇa deals with the five topics, viz., the creation, the dissolution or secondary creation, dynasties, epochs between the Manus and the history of the dynasties. This definition is applicable to our Mahāpurāṇa as well; for we do find the five topics mentioned above in our work. Still it is interesting to see how the Jains themselves interpret the term. Jinasena who is a predecessor of Puṣpadanta in the writing of a Mahāpurāṇa says :—

तीर्थेशामपि चक्रेशां हलिनामर्धचक्रिणाम् ।
त्रिषष्टिलक्षणं वक्ष्ये पुराणं तद्द्विषामपि ॥
पुरातनं पुराणं स्यात्तन्महन्महदाश्रयात् ।
महद्भिरुपदिष्टत्वान्महाश्रेयोनुशासनात् ॥
कवि पुराणमाश्रित्य प्रसृतत्वात्पुराणता ।
महत्त्वं स्वमहिम्नैव तस्येत्यन्यैर्निरुच्यते ॥
महापुरुषसंबन्धि महाभ्युदयशासनम् ।
महापुराणमाम्नातमत एतन्महर्षिभिः ॥ 1. 20–23.

"I shall recite the narrative of sixty-three ancient persons, i. e. of the Tīrthaṃkaras, of the Cakravartins, of Baladevas, of half-Cakravartins (i. e. Vāsudevas) and of their opponents (i. e., of Prati-Vāsudevas). The work is called 'purāṇa' because it is a narrative of the ancients. It is called 'great' because it relates to the great (Persons), or because it is narrated by the

great (sages) or because it teaches (the way to) great bliss. Other writers say that, because it originated with the old poet it is called 'purāṇa' and it is called 'great' because of its intrinsic greatness. The great sages have called it a Mahāpurāṇa because it relates to great men and because it teaches the bliss." A Ṭippaṇa on I. 9. 3 of our text seems to make a distinction between *aihāsa* and *purāṇa* and says that *aihāsà* means the narrative of a single individual while *purāṇa* i. e. Mahāpurāṇa means narratives of sixty-three great men (अइहास एकपुरुषाश्रिता कथा; पुराण त्रिषष्टिपुरुषाश्रिताः कथाः पुराणानि). The Mahāpurāṇa therefore is a work on the lives of sixty-three great men of the Jain faith, and thus occupies the same place of importance as the Mahābhārata or the Rāmāyaṇa in Hinduism. The Mahāpurāṇa however lacks the unity of the Mahābhārata or of the Rāmāyaṇa and therefore cannot be called and epic in the strictest sense of the term.

The sixty-three great men whose lives are described in a Mahāpurāṇa are classified under five heads. I give their names below for ready reference :—

(a) The Tīrthaṃkaras (24) : (1) वृषभ or ऋषभ; (2) अजित; (3) शंभव or संभव; (4) अभिनन्दन; (5) सुमति; (6) पद्मप्रभ; (7) सुपार्श्व (8) चन्द्रप्रभ; (9) पुष्पदन्त or सुविधि; (10) शीतल; (11) श्रेयांस; (12) वासुपूज्य; (13) विमल; (14) अनन्त; (15) धर्म; (16) शान्ति; (17) कुन्थु; (18) अर; (19) मल्लि; (20) सुव्रत; (21) नमि; (22) नेमि; (23) पार्श्व; and (24) महावीर.

(b) The Cakravartins (12) : (1) भरत, (2) सगर; (3) मघवन्; (4) सनत्कुमार; (5) शान्ति; (6) कुन्थु; (7) अर; (8) सुभौम or सुभूम; (9) पद्म; (10) हरिषेण; (11) जयसेन or जय; and (12) ब्रह्मदत्त.

(c) The Vāsudevas (9) : (1) त्रिपृष्ठ; (2) द्विपृष्ठ; (3) स्वयंभू; (4) पुरुषोत्तम; (5) पुरुषसिंह; (6) पुरुषपुण्डरीक; (7) दत्त; (8) नारायण; and (9) कृष्ण.

(d) The Baladevas (9) : (1) अचल; (2) विजय; (3) भद्र; (4) सुप्रभ; (5) सुदर्शन; (6) आनन्द; (7) नन्दन; (8) पद्म; and (9) राम (बलराम).

(e) The Prati-Vāsudevas (9) : (1) अश्वग्रीव; (2) तारक; (3) मेरक; (4) मधु; (5) निशुम्भ; (6) बलि; (7) प्रह्लाद; (8) रावण; and (9) मगधेश्वर or जरासंध.

It is to be noted that Sānti, Kunthu and Ara Tīrthaṃkaras as well as Cakravartins.

WORKS ON SIXTY-THREE GREAT MEN

The oldest known published work on sixty-three great men is the Mahāpurāṇa or more accurately Ādipurāṇa of Jinasena (*circa* 850–875 A. D.) Jinasena calls his work Triṣaṣṭilakṣaṇamahāpurāṇasaṃgraha, and thus seems to have planned a complete Mahāpurāṇa. He was however unable to complete it, probably on account of his death. We get from his hand forty-two parvans only of the Ādipurāṇa, the remaining five parvans of the Ādipurāṇa and the

whole of the Uttarapurāṇa being written by his disciple Guṇabhadra and completed in 820 of the Saka era, i. e., in 898 A. D., at Vaṅkāpura, under the patronage of Lokāditya, a feudatory of Akālavarṣa *alias* Kṛṣṇa II (880-914 A. D.) This Mahāpurāṇa is written in Sanskrit, and printed twice, first at Kolhapur with a Marāthi translation by Kallappa Niṭve and again at Indore with a Hindi translation by Pandit Lalaram Jain. It is written from the point of view of the Digambara Jains.

The second known work on the subject is the present work and belongs to the Digambara sect of the Jains.

The third work is the Triṣaṣṭiśalākāpuruṣacarita by Hemacandra. It is a Śvetāmbara work and is written in Sanskrit. It is one of the last works of Hemacandra and so may have been written about 1170–72 A. D. It was published by the Jaina Dharma Prasāraka Sabhā of Bhavnagar in 1905–9, and a reprint of it is being issued at present.

The Jain Granthāvalī published in 1965 of the Vikrama era, i. e. in 1907–8 records three works named Mahāpuruṣacarita on page 229. One of them is by Sīlācārya (*circa* 925 of the Vikrama era, i. e. 888 A. D.), is written in Prakrit and its Mss. are said to be deposited in the famous Patan Bhandar No. 4 and also at Jesalmer Bhandar. The same book mentions another work on the subject in Prakrit by Amarasūri on the authority of Bṛhaṭṭippaṇikā. It mentions a third work in Sanskrit on the theme by Merutuṅga, Mss. of which are deposited in two Bhandars at Patan and also at Ahmedabad.

THE GLOSS ON THE CONSTITUTED TEXT

The reader will notice that the bottom portion of the printed text is divided into two part. The first part, separted from the text by a wavy line gives the variants found in the Mss. or recorded in the margin of Mss, and also in the Ṭippaṇa of Prabhācandra. The second part, separated from the first part by a double line, gives a short gloss on the text in Sanskrit. I have culled it from the marginal notes in Mss. G, K, M and P, and also from the Ṭippaṇa of Prabhācandra. In selecting the gloss for this purpose I have kept in mind the difficulties which a reader is likely to meet with while going through the text, and I hope that if the reader is equipped with a good knowledge of the Sanskrit language and literature and some elementary knowledge of the grammar of the Prakrit and Apabhraṃśa dialects, he wil be able to understand the text easily with the help of this gloss. Extracts from Prabhācandra's Ṭippaṇa, where they appeared to be interesting but rather extensive to be accommodated at the bottom of the text are given in the notes at the end. I hope this method

of supplying the gloss at the bottom of the page will be appreciated by the reader as it taxes him less, and helps me to reduce the volume of notes. It should be noted that I have not retouched the text of the gloss, but have retained it as it was found in Mss. even though I felt at times tempted to improve upon uncouth Prakritisms or unwarranted historical allusions (see for example, the gloss on कइवइ विहियसेउ on page 8).

ACKNOWLEDGMENT OF OBLIGATIONS

It now remains for me to perform the pleasant duty of thanking all those who, one way or another, assisted me in the production of the present volume. I must thank in the first place the Trustees and the Secretaries of the Manikchand Digambara Jaina Granthamālā who were kind enough to find the necessary fund for the preparation and publication of this volume, and I feel sure they will also find the necessary funds to complets the work. The poetic genius of Puṣpadanta required the benevolent encouragement of his patron Bharata in the 10th century. After the plunder of Mānyakheta in 972 A. D. the poet became desolate and remained uncared for about a thousand years, and had it not been for the help that the Trustees of the Series offered to the Elitor, his efforts to bring the poet out of oblivion would have been of no avail. The spirit of Puṣpadanta will thus take a special delight in having once more discovered the spirit of his former patron regenerated in the Trustees of the Series. The Editor hopes that the same spirit will find a few thousand rupees more to enable him to complete the task that he has undertaken to rescue from oblivion this monumental work of the Poet.

To Professor Hiralal Jain of King Edward College, Amraoti, I owe a special debt of gratitude. He moved heaven and earth to find the funds for this publication. He has helped me in various other ways, in securing the loan of Mss. from Kāranjā and Jaipore, and in sending me bits of information that he came across. To Pandit Nathuram Premi, the veteran savant of Jain literature and an adventurous publisher of Jain works, I also tender my heartfelt thanks.

I would like to record here my sense of high appreciation of the services which Mr. R. G. Marathe, M. A., formerly my pupil and now professor of Ardha-Māgadhī at the Willingdon College, Sangli, rendered me in the preparation of this work. He did a lot of copying work for me and helped me at the time of collation as well.

Nowrosjee Wadia College, Poona
August 1937

—*P. L. Vaidya*

भूमिका

कवि पुष्पदन्तकी तीन रचनाओंमेंसे, जसहरचरिउका मैंने 1931 में सम्पादन किया था जिसका दूसरा संस्करण, स्व. डॉ. हीरालाल जैन द्वारा कृत हिन्दी अनुवादके साथ, हाल ही में प्रकाशित हुआ है। दूसरी रचना 'णायकुमारचरिउ' का सम्पादन स्व. डॉ. हीरालाल जैनने किया जो हिन्दी अनुवादके साथ 1933 में प्रकाशित हुआ। तीसरी रचना 'महापुराण' सबसे बड़ी है जिसका मैंने तीन जिल्दोंमें सम्पादन किया, 1937 से लेकर 1941 तक। इसकी तैयारीमें मुझे 1932 से 1941 तक, कुल दस वर्षका समय लगा। यह दूसरा संस्करण है, जो डॉ. देवेन्द्रकुमार जैनके हिन्दी अनुवादके साथ, भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित है। मैं विशेष रूपसे प्रसन्न हूँ कि उक्त संस्थाने इसका प्रकाशन किया और इस प्रकार विद्वानोंको उक्त ग्रन्थ उपलब्ध कराया। अपभ्रंश साहित्यके प्रेमी भारतीय ज्ञानपीठके अत्यन्त कृतज्ञ हैं।

मैंने आशा व्यक्त की थी कि अपभ्रंशके कुछ युवा अनुसन्धायक आगे आयेंगे और इस युगान्तरकारी रचनाका अध्ययन करेंगे। 1964 में मेरे मित्र और शिष्य स्व. डॉ. ए. एन. उपाध्येने एक युवतीसे मेरा परिचय कराया था कि जिसने महापुराणके देशी शब्दोंपर पी-एच. डी. डिग्री प्राप्त की थी। मुझे खेद है कि उसके नाम और जीवनके बारेमें मुझे कुछ भी स्मरण नहीं है। अब भी एक विषय है, जिसका मैं सुझाव देता हूँ, जो कवि द्वारा प्रयुक्त छन्दोंके विश्लेषणसे सम्बन्धित है। यह भी एक आवश्यकता है। मुझे आशा करना चाहिए कि कतिपय युवा अनुसन्धायक आगे-आगे आकर इस समस्यापर काम करेंगे।

पाठक देखेंगे कि कवि पुष्पदन्त जैनों के दिगम्बर सम्प्रदायसे सम्बद्ध थे जबकि उसका सम्पादक न दिगम्बर है और न श्वेताम्बर। अतः सम्भव है कि दार्शनिक सिद्धान्तोंकी व्याख्यामें उससे कुछ गलतियाँ हो गयी हों, क्योंकि मेरा जैनधर्म सम्बन्धी ज्ञान किताबी है। इसलिए मैं अपने पाठकोंको सम्पादककी गलतियोंको ठीक करनेकी अनुमति देता हूँ यदि टिप्पणियोंमें गलतियाँ हों तो।

पुणे
11 मई 1974

—पी. एल. वैद्य

परिचय

[प्राचीन संस्करण]

महापुराण या त्रिषष्टिमहापुरुषगुणालंकार पुष्पदन्तके तीन ज्ञात अपभ्रंश ग्रन्थोंमें-से सबसे प्राचीन और बड़ा है। दो छोटी रचनाओंमें-से जसहरचरिउका सम्पादन मैंने किया था जो कारंजा जैन सिरीज जिल्द 1, 1931 में प्रकाशित हुई। णायकुमारचरिउका सम्पादन प्रोफेसर डॉ. हीरालाल जैनने किया जो देवेन्द्रकीर्ति जैन सीरिज जिल्द 1 कारंजा से 1933 में प्रकाशित हुआ, मैं अब पाठकोंके सम्मुख महापुराणका पहला खण्ड प्रस्तुत कर रहा हूँ जो आदिपुराणके समकक्ष है, और आशा करता हूँ दो और जिल्दोंमें इसे पूरा कर सकूँगा। जब मैंने जसहरचरिउकी भूमिकामें यह घोषणा की थी कि मैंने महापुराणके सम्पादनका काम अपने हाथमें लिया है, उस समय मैंने कल्पना तक नहीं की थी कि यह कितना कठिन कार्य है, और यह कि सम्पादक और प्रकाशकोंको आर्थिक तथा दूसरी कितनी कठिनाइयाँ होंगी। परन्तु मैं प्रसन्न हूँ कि प्रतीक्षाके लम्बे छह वर्षोंके बाद भाषाविज्ञानके अध्येताओं और जैनसंस्कृतिके विद्यार्थियोंको उस महान् कार्यका पहला खण्ड भेंट कर सका। अब मैं पाठकोंको यह विश्वास दिला सकता हूँ कि यदि दूसरी कठिनाइयाँ नहीं आयीं तो मैं आगामी दो या तीन वर्षोंमें शेष भाग भेंट कर सकूँगा जिससे पुष्पदन्तके अपभ्रंशके तीन महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशमें आ सकें।

इस जिल्दमें कुल 102 सन्धियोंमें-से 37 सन्धियाँ हैं। यह खण्ड प्रसिद्धितः आदिपर्व या आदिपुराणके रूपमें ज्ञात है, और यह ऋषभ जीवनका वर्णन करता है, जो पहले तीर्थंकर हैं, और भरतका जो पहले चक्रवर्ती हैं। दूसरी जिल्द अड़तीसवीं सन्धिसे प्रारम्भ होती है और अस्सीवीं सन्धिमें समाप्त होती है। तीसरी जिल्दमें शेष सन्धियाँ पूरी होंगी। डॉ. लुडविग अल्सफोर्ड (हमबर्ग जर्मनी) ने हालमें रोमन लिपिमें, महापुराणके एक भागका 'हरिवंशपुराण' नामसे प्रकाशन किया है, जिसमें 81 से 92वीं तक सन्धियाँ हैं। इस भागका देवनागरी लिपिमें सम्पादन किया जायेगा, जो तीसरे भागमें सम्मिलित किया जायेगा, जिससे समूचा काव्य जनताको एकरूपमें उपलब्ध हो सके। इसके सिवाय हमारे पास इतनी अधिक पाण्डुलिपियाँ हैं, (उसकी तुलनामें जो डॉ. अल्सफोर्डके समय उपलब्ध थीं) इनसे उनके कार्यमें कुछ सुधार होना सम्भव है।

महापुराणका सम्पूर्ण पाठ लगभग रायल आकारके दो हजार पृष्ठोंमें समाप्त होगा, उनमें-से यह जिल्द 600 पृष्ठोंकी है। इससे स्पष्ट है कि समस्त महापुराण एक जिल्दमें सुविधाजनक ढंगसे नहीं आ सकता था। इसलिए मेरा विचार है कि प्रत्येक जिल्दमें भूमिका दी जाये, जिसमें उस जिल्दसे सम्बन्धित समस्याओंका विचार हो। जहाँ तक सम्पूर्ण रचनासे सम्बन्धित बड़े प्रश्नोंका सम्बन्ध है, मैं उनका विचार तीसरी और अन्तिम जिल्दके लिए सुरक्षित रखता हूँ। इसके अतिरिक्त जसहरचरिउ और णायकुमारचरिउकी भूमिकाओंमें कवि पुष्पदन्तकी भाषा छन्द आदिके विषयमें कुछ जानकारी दी है, आशा की जाती है कि पाठक उसे वहाँसे प्राप्त कर लेंगे।

दी क्रिटीकल एपेरेटस पृष्ठ 14 से 19 तक अर्थ स्पष्ट है, इसमें आधारभूत पाण्डुलिपियोंका विवरण है।

महापुराणके प्रशस्ति छन्द

जब मुझे जसहरचरिउके सम्पादनके सिलसिलेमें पाण्डुलिपि सामग्रीके अध्ययनका अवसर मिला तो मैंने पाया कि कुछ पाण्डुलिपियोंमें सन्धिके प्रारम्भमें कविके आश्रयदाता नन्नकी प्रशंसामें कुछ छन्द हैं,

जबकि कुछ पाण्डुलिपियोंमें इनका उल्लेख नहीं है। पाण्डुलिपियोंकी तुलनाके प्रसंगमें इस तथ्यका पता लगा कि जिन पाण्डुलिपियोंमें ये प्रशस्तिपरक छन्द हैं, उनमें पाठोंकी विभिन्नतामें घनिष्ठ समानता है, जिन पाण्डुलिपियोंमें उक्त प्रशस्तियाँ नहीं हैं उनमें विभिन्नताओंका दूसरा रूप है। और आगे परीक्षा करनेपर मैंने पाया कि जिन पाण्डुलिपियोंमें प्रशस्ति छन्द नहीं है उनमें पाठोंका प्राचीनतम रूप है। जसहरचरिउके प्रसंगमें बहुत-से अबतक उनके लेख और डेट पहचान ली गयी हैं। चूँकि उक्त पाण्डुलिपिकारको जो कविके चार सौ साल बाद हुआ, कविके आश्रयदातासे कुछ नहीं लेना-देना था। मुझे यह विश्वास हो गया कि इन प्रशस्तियोंकी रचना कविने स्वयं की होगी, और उसे यह परिकल्पना बढ़ानेके लिए बाध्य होना पड़ा कि कविको स्वयं आश्रयदातासे जो सहायता मिली, उससे उसने अपने काव्य की दो-तीन प्रतियाँ करायीं उनमें-से एकमें प्रमादसे हाशियामें कुछ फालतू छन्द लिखने पड़े। कि जिनमें आश्रयदाताकी प्रशंसा थी, जब कि दूसरी प्रति या प्रतियाँ इन प्रशस्तियोंके बिना ही, उनके हाथसे बाहर चली गयीं। संक्षेपतः इस परिकल्पना से कि जो पृष्ठ 21 (जसहरचरिउकी भूमिका) पर अंकित है, मैं यह तय कर सका कि पाण्डुलिपियाँ एस और टी, प्राचीन रूपका प्रतिनिधित्व करती हैं। और तब मुझे इस बातका अवसर मिला कि मैं महापुराण की एक प्रशस्तिका हवाला देकर इसे बताऊँगा।

'दीनानाथधनं सदाबहुजनं प्रोत्फुल्लमानं वनं
मान्याखेटपुरं पुरंदरपुरी लीलाहरं सुंदरम्।
धारानाथनरेन्द्रकोपशिखिनादग्धविदग्धप्रियं
क्वेदानीं वसतिं करिष्यति पुनः श्रीपुष्पदंतः कवि॥"

इस प्रशस्तिने विद्वानोंको महापुराणकी रचनाकी तिथि तय करनेमें बहुत परेशान किया, और इसी प्रकार मान्यखेटके लूटे जानेके विषयमें। कविने प्रशस्तिके बीच जिस प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटनाका उल्लेख किया है (जो 972 ए. डी. में घटी) वह कारंजाकी प्रति में मिलती है, पचासवीं सन्धिके अन्तमें जब कि महापुराणकी समाप्तिकी निश्चित तिथि क्रोधन संवत्सर (965 A D) है। मैंने पाया कि उक्त प्रशस्ति मेरी प्रति (K) में नहीं है, यह तथ्य मेरी जसहरचरिउकी प्रति (जो सबसे अच्छी है) से भी मेल खाता है। इससे मैं उक्त परिकल्पनाका खण्डन कर सका, यह बात महापुराणकी दूसरी पाण्डुलिपियोंके परीक्षणसे सिद्ध है। उस समय पुष्पदन्तकी एक रचना णायकुमारचरिउकी जो प्रेसकापी मेरे मित्र डॉ. हीरालाल जैन द्वारा तैयार की जा रही थी उसमें ये प्रशस्तियाँ नहीं थीं, इसलिए मैं अपनी परिकल्पनाकी उसे पुष्टि नहीं कर सका। तब मैंने उन प्रशस्तियोंकी तुलना करनेके लिए आगे बढ़ा कि जो महापुराणकी सन्धियोंके प्रारम्भमें हैं। मुझे अभी तक एक भी पाण्डुलिपि ऐसी नहीं मिली जिसमें प्रशस्तियाँ न हों, इसके साथ मैंने यह भी पाया कि सभी पाण्डुलिपियोंकी प्रशस्तियोंमें समानता नहीं है। फिर भी मैंने यह देखा कि एक वर्गकी पाण्डु-लिपियाँ कुछ प्रशस्तियोंको आश्चर्यजनक ढंगसे एक जगह रखने या उन्हें नहीं रखनेके पक्षमें हैं। मेरी आदि-पुराणकी जी. और के. पाण्डुलिपियोंमें भी थोड़ी संख्यामें प्रशस्तियाँ हैं, परन्तु दूसरी पाण्डुलिपियोंमें वे बड़ी संख्यामें हैं। इसलिए मैं जी. और के. पाण्डुलिपियोंको अधिक प्राचीन मानता हूँ भले ही वे अधिक पुरानी न हों। मेरी धारणा है कि ये प्रशस्तियाँ महापुराणके पाठके गठनात्मक अंग नहीं हैं इसलिए उनका समाहार आलोचनात्मक टिप्पणियोंमें किया गया है। फिर भी मेरा विश्वास है कि इनकी रचना कविने स्वयं की होगी, कोई दूसरा इनकी रचना नहीं कर सकता, क्योंकि उसका इस सीमा तक भरतकी प्रशंसा करनेमें दिलचस्पी नहीं हो सकती थी। मैं यह भी विश्वास करता हूँ कि कवि रचनाओंको पूरा करनेके बहुत बाद इनकी रचना की होगी। किसी भी हालतमें, 'दीनानाथ धन' प्रशस्ति छन्द कवि 972 A. D. के पहले नहीं लिख सकता था, जो महापुराणके पूरा होनेके सात वर्ष बादकी घटना है। इन छन्दोंका प्रश्न पाण्डुलिपियोंकी

परम्पराके विचारसे महत्त्वपूर्ण है और इसलिए भी क्योंकि इससे कविके आश्रयदाता भरतसे सम्बन्ध और दूसरे सम्बद्ध प्रकरणोंपर प्रकाश पड़ता है। मैंने इन पाण्डुलिपियोंका विभाजन निम्नलिखित वर्गोंमें किया है :

(1) वे प्रशस्तियाँ जो 'जी' और 'के' प्रतियोंमें हैं।

(2) जो आदिपुराणकी दूसरी प्रतियोंमें हैं।

(3) वे जो पुणे, कारंजा और उत्तरपुराण (के) में हैं।

(4) वे जो केवल जयपुरकी प्रतिमें हैं।

इसी क्रममें मैंने क्रमांक दिया है जिससे कि आगेके विभागोंमें सुविधासे सन्दर्भ दिया जा सके।

(a) 1. (i) आदित्य.......

इस छन्दमें भरतके यशका वर्णन है, जो कविका मित्र और आश्रयदाता है। कविका कहना है कि भरत और उसका यश समूचे विश्वमें व्याप्त है। यह प्रशस्ति तीसरी सन्धिके प्रारम्भमें है, 'जी' और 'के' प्रतियोंमें, परन्तु बाकी दूसरी पाण्डुलिपियोंके दूसरी सन्धियोंमें है।

2. (ii) सौभाग्यं...

यह छन्द भरतकी कुछ विशेषताओंका वर्णन करता है। यह 'जी' और 'के' पाण्डुलिपियोंकी चौथी सन्धिके प्रारम्भमें है।

3. (iii) भ्रूलीला....

इसमें कविता है कि भरत इसलिए भी गुणी है कि वह कभी दूसरेकी पत्नीके विषयमें नहीं सोचता, यह 'जी' और 'के' पाण्डुलिपियोंकी पाँचवीं सन्धिके प्रारम्भमें पाया जाता है।

4. (iv) एको दिव्य....

इसमें कवि और उसके आश्रयदाता भरतकी विशेषताओंका उल्लेख है; यह 'जी' और 'के' आठवीं सन्धिमें है, जब कि दूसरी पाण्डुलिपियोंमें नौवीं सन्धिके अन्तमें है।

5. (v) जगं रम्मं....

इस छन्दमें कवि स्वयंको ईश्वर बताता है। राजा होते हुए भी उसके चित्तमें उदारता है।

6. (vi) स्पष्ट है

7. (vii) स्पष्ट है

8. (viii) स्पष्ट है।

छन्द viii यह अंकित करता है कि यह आश्चर्यकी बात है जो कीर्ति हर घर भ्रमण करती है और चारणोंके साथ स्वेच्छासे रहती है, वह अब भी भरतकी वल्लभा है। यह छन्द 'जी' प्रतिके साथ दूसरी सब प्रतियोंमें है। परन्तु 'के' में नहीं है। इस प्रकार 'जी' और 'के' पाण्डुलिपियोंमें असमानताका यह अभाव मेरी इस स्थापनाको दृढ़ करती है कि उक्त प्रशस्तियाँ महापुराणकी अनिवार्य अंग नहीं हैं; फिर भी बादमें कविने इसकी रचना की है। 'जी' और 'के' प्रतियोंमें प्रशस्तियोंके स्थानको लेकर जो एकरूपता और समानता है उससे मेरी इस धारणाको बल मिलता है कि वे एक वर्गकी हैं। दूसरे वर्गोंमें प्रशस्तिकी संख्या अधिक है।

(b) 9. (i)

10, 11, 12, 13, 14, 15, 16, 17, 18, 19, 20, 21, 22, 23, 24, 25, 26, 27, 28, 29, 30, 31, 32, 33, 34, 35, 36, 37, 38, 39, 40, 41, 42, 43, 44, 45, 46, 47, 48 प्रशस्तियोंकी टिप्पणियाँ स्पष्ट हैं।

भरत, पुष्पदन्तका आश्रयदाता

इस प्रकार पुष्पदन्तके महापुराणमें कुल 48 प्रशस्तियाँ हैं इनमें 6 क्रमांक 5, 6, 16, 30, 35 और 48 प्राकृतमें हैं और शेष संस्कृतमें हैं। उक्त छन्दोंकी प्राकृत शुद्ध और शालीन है। परन्तु यही बात संस्कृतके विषयमें नहीं कही जा सकती। कभी-कभी उसमें बीचमें प्राकृत आ जाती है (जैसे चोज्जें, 29वाँ छन्द) इन छन्दोंमें सरस्वतीकी वन्दना (22), अम्बिका (23) आदिका वर्णन है। कवि स्वयं अपने (1, 4, 14, 26, 27, 35, 38, 42, 43, 44) और अपने आश्रयदाता भरतके गौरवके विषयमें कहता है। इसके अतिरिक्त (3–8 XXXVII, 3–5,13) और घत्ता पंक्तियों और पुष्पिकाओंमें भरतका उल्लेख है। जैसे (महाभव्य भरत द्वारा अनुमत इस काव्यमें)।

जसहरचरिउकी कुछ पाण्डुलिपियोंमें भी संस्कृतमें तीन छन्द हैं जिनमें भरतके पुत्र नन्न और उत्तराधिकारीका वर्णन है। णायकुमारचरिउके अन्तमें एक लम्बी प्रशस्ति है जिसमें नन्नके बारेमें विशेष जानकारी है। इन सूचनाओंके आधारपर भरतकी जीवन रेखा प्रस्तुत की जा सकती है कि जिसकी उदारताके कारण विश्वको अपभ्रंश महाकाव्य मिल सका।

अब हमारे पास राष्ट्रकूटों और उनके समयका शानदार लेखा है (डॉ. ए. एस. आल्टेकर द्वारा लिखित) जिसमें कुछ पृष्ठों (115–123) में कृष्ण तृतीय (939–964 A. D.) के समयकी राजनीतिक घटनाओंका उल्लेख है। उसके एक अध्याय (XIV) में राष्ट्रकूटोंकी शिक्षा और साहित्यके बारेमें वर्णन है। फिर भी उसमें भरतका सन्दर्भ नहीं है, जो कृष्ण III का मन्त्री था। इसके विपरीत पृ. 412 में यहाँ तक उल्लेख है कि आलोच्यकालमें शायद ही किसी प्राकृत साहित्यकी रचना हुई हो, जबकि पुष्पदन्तने मन्त्री भरत और उसके पुत्र नन्नके आश्रयमें तीन अपभ्रंश काव्योंकी रचना की जो दो हजार पृष्ठोंके बराबर है। कवि और उसके आश्रयदाताओंको न तो भुलाया जा सकता है और न उपेक्षा की जा सकती है। इसलिए यहाँ-पर प्राकृत साहित्यके विस्मृत आश्रयदाताके जीवनकी संक्षिप्त रूपरेखा देना अप्रासंगिक न होगा, उस सामग्रीके आधारपर जो प्रशस्तियोंके रूपमें उपलब्ध है।

पुष्पदन्तके साहित्यमें कृष्ण III के तीन नाम हैं तुडिग, सुह तुंगराय (शुभ तुंगराज) कृष्णराज और वल्लभनृप। वह 939 A. D. में गद्दीपर बैठा और 968 A. D. तक उसने शासन किया। इसके बाद उसका छोटा भाई खुटिग देव गद्दीपर बैठा, जिसके शासनकालमें 972 में राष्ट्रकूटोंकी राजधानी मान्यखेट धारा नरेशके द्वारा लूटी गयी। भरत कृष्ण III के मन्त्री थे। भरतके पुत्र नन्नको भी शुभतुंगरायका मन्त्री बताया गया है। जब पुष्पदन्तने अपना महापुराण पूरा किया, उस समय भरत जीवित थे, यानी 965 A.D. तक और चूँकि कृष्ण III की मृत्यु 968 में हुई, इससे यह अनुमान करना पड़ता है कि भरतका निधन 965 से 968 के बीच हुआ, इसीलिए उसका पुत्र नन्न उत्तराधिकारी बना 968 में। नन्नने पुष्पदन्तको अपना संरक्षण दिया और जसहरचरिउ तथा णायकुमारचरिउ लिखनेकी प्रेरणा दी।

भरत कौंडिल्ल गोत्रके मालूम होते हैं। यह एक सम्पन्न परिवार था जिसके सदस्य मन्त्री बनते थे (महामंत्राह्वयः), परन्तु वह दरिद्र हो गया था। इस बातके संकेत और प्रमाण हैं कि भरतने अपने वंशके गौरव और समृद्धिको फिरसे स्थापित किया, अपने स्वामीकी एकनिष्ठ सेवा कर। (संतानक्रमतो गतापि हि रमा कृष्टा प्रभोः सेनया) उनके पितामहका नाम अन्नय्या था और उनकी माँका नाम देवी था। भरतका कोई भाई या सगा-सम्बन्धी नहीं था। (बंधुरहितेन), उसका विवाह कुन्दव्वासे हुआ था, और उसके सात पुत्र थे। देविल्ल, भोगिल्ल, नन्न, सोहन, गुणवम्मा (वर्मा), दंगइया और संतइय्या। नन्नको कुन्दव्वाका पुत्र बताया गया है और यह असामान्य नहीं है कि भरतकी और पत्नियाँ रही हों। भरतके सातों पुत्र इस समय तक (965) जीवित थे। लेकिन जब 968 में नन्न भरतका उत्तराधिकारी बना,

तो हमें यह कल्पना करनी पड़ती है कि या तो उसके दो बड़े भाई मर चुके थे या फिर उसमें कोई विशेष योग्यता थी कि जिससे उसने अपने दो बड़े भाइयोंको वरिष्ठताका अतिक्रमण किया और वह पिताकी जगह मन्त्री बना।

पुष्पदन्त के अनुसार भरतका रंग साँवला था, परन्तु आकृति सुन्दर थी और वह प्रेमके देवताके समान था। वह कृष्ण III के समय सेनापति थे। उनका स्वास्थ्य अच्छा था। वह दान और राजकीय भवन-के मन्त्री थे। उनकी वेशभूषा सुन्दर थी, आदतें सुसंस्कृत थीं। वह विद्याव्यसनी थे। उनका चरित्र पवित्र था। उनमें अगणित गुण थे और अगणित उदारता थी।

महाकवि पुष्पदन्त ब्राह्मण परिवारके थे। इनका गोत्र कश्यप था। पिताका नाम केशव और माताका मुग्धादेवी। ये दोनों शिवके भक्त थे। बादमें उन्होंने जैनधर्म ग्रहण कर लिया। उनका रंग काला और शरीर दुबला-पतला था। शायद वह अविवाहित थे। वह अत्यन्त गरीब थे, उनके पास घर-जायदाद कुछ भी नहीं था। फिर भी उनकी प्रतिभा दिव्य थी। वह पहले किसी शैव राजा (भैरव या वीर राजा) के दरबारमें थे, और सम्भवतः उन्होंने उनपर कविता लिखी थी, परन्तु वहाँ उनका अपमान हुआ और वह मान्यखेट चले आये, आधुनिक मलखेड़ा, जो उस समय राष्ट्रकूटोंकी राजधानी थी, और बहुत उन्नत थी। वहाँ वह नगरके बाहर वृक्षोंके उद्यानमें रहे। इन्द्रराज और नागैया दो विद्वानूने उन्हें मनाया और भरतके पास चलनेका अनुरोध किया। उन्हें यह आश्वासन दिया गया कि भरत बहुत शालीन व्यक्ति हैं। कुछ दिन ठहरनेके बाद भरतने महाकविसे काव्यरचना करनेकी प्रार्थना की। पहले तो उसने अपनी अनिच्छा व्यक्त की परन्तु बादमें उसने भरतका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया क्योंकि भरतके अनुसार इसीमें उसकी काव्यप्रतिभाका उपयोग था। उसने सिद्धार्थ वर्ष (959 A. D.) में भरतके घरमें काव्यरचना शुरू की। आदिपुराणकी रचना करनेके बाद कविका मन उचाट हो गया। लेकिन उसे सपनेमें सरस्वती दिखीं और उसने काव्य-रचनाकी प्रेरणा दी। तब कविने अपना काव्य पूरा किया। इस कार्यके सम्पादनसे कविको सन्तोष और गर्व दोनों थे। जैसा कि उसकी निम्नलिखित पंक्तियोंसे स्पष्ट है :

अत्र प्राकृतलक्षणानि सकला नीतिः स्थितिश्छन्दसां
अर्थालंकृतयो रसाश्च विविधास्तत्त्वार्थनिर्णीतयः।
किं चान्यद्यदिहास्ति जैनचरिते नान्यत्र तद्विद्यते
द्वावेतौ भरतेशपुष्पदशनौ सिद्धं ययोरीदृशम्।

यह वही भाव है जिसमें व्यासने कहा था—

"यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्"

इसलिए यह महापुराण जैनोंके लिए उतना ही पवित्र है जितना हिन्दुओंके लिए महाभारत। कवि महापुराणको पूर्ण करनेका श्रेय एक ओर अपनी प्रतिभाको और दूसरी ओर भरतकी उदारताको देता है। जिस तरह उसका यश दूर-दूर तक फैला, उसी प्रकार भरतकी उदारता भी दूर-दूर प्रसिद्ध हो गयी। ऐसा अनुमान है कि महापुराण समाप्त होनेके तीन वर्षके भीतर भरतका निधन हो गया। भरतके स्थानपर नन्न उत्तराधिकारी बना और उसने महाकविको आश्रय प्रदान किया, तथा अपभ्रंशमें और काव्य रचनेकी प्रेरणा दी। कविने जसहरचरिउ और णायकुमारचरिउकी रचना की। उसके बाद राष्ट्रकूटोंके गौरवका अन्त हो गया कि जब 972 में मान्यखेट धारानरेश द्वारा लूट लिया गया, और कवि आश्रयविहीन होकर कहता है, क्वेदानीं वसतिं करिष्यति पुनः श्री पुष्पदन्तः कविः। (36)

महापुराण क्या है ?

दिगम्बर जैनोंका कहना है कि उनका पवित्र साहित्य (पूर्व और अंग) खो गया है। इसलिए वे श्वेताम्बरोंके शास्त्रोंके प्राधिकार (अथोरिटी) को नहीं मानते। दिगम्बरोंके अनुसार शास्त्रके चार भाग हैं। (१) प्रथमानुयोग, जिसमें तीर्थंकरों और अन्य जैन महापुरुषोंकी जीवनियाँ होती हैं, तथा कथा साहित्य होता है। (२) करणानुयोग, इसमें विश्वका भूगोल होता है। (३) चरणानुयोग—इसमें मुनियों और गृहस्थोंके आचरणके नियम रहते हैं। (४) द्रव्यानुयोग—जो दार्शनिक श्रेणीका होता है। इस विभाजनके अनुसार यह कृति प्रथमानुयोगमें आती है।

महापुराण, जैन साहित्यमें एक विशेष शब्द है जिसका अर्थ है प्राचीन समयका महान् वर्णन। परन्तु वह एक व्यक्तिगत या पवित्र जीवन का वर्णन करते हैं। जब कि महापुराण त्रेसठ प्रमुख जैन व्यक्तियोंके जीवनका वर्णन करता है। इसका दूसरा नाम त्रिषष्टिशलाकापुरुष है जब कि हेमचन्द्र इसे त्रिषष्टिशलाका चरित कहते हैं। पुष्पदन्त त्रिषष्टी पुरुष गुणालंकारके विकल्पमें 'महापुराण' नाम रखते हैं। यानी गुणोंका अलंकरण या त्रेसठ महापुरुषोंके गुण। पुराण शब्दकी हिन्दू साहित्यमें यह परिभाषा है।

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥

पुराण पाँच प्रकरणोंका विचार करते हैं; उत्पत्ति, प्रलय, वंश और मन्वतर मनु और वंशोंका इतिहास। यह परिभाषा हमारे महापुराणपर भी लागू होती है। क्योंकि इन पाँच प्रकरणोंको हम इसमें पाते हैं। फिर यह देखना दिलचस्प होगा कि जैन इस शब्दकी किस प्रकार व्याख्या करते हैं। जिनसेन, जो पुष्पदन्तके पूर्ववर्ती हैं, अपने पुराण में लिखते हैं—

मैं त्रेसठ प्राचीन महापुरुषोंके पुराणको कहूँगा। इसमें तीर्थंकरों, चक्रवतियों, वासुदेवों, बलभद्रों तथा प्रतिवासुदेवोंका वर्णन है। यह रचना पुराण इसलिए है क्योंकि इसमें प्राचीनोंका इतिवृत्त है। यह महान् इसलिए है क्योंकि इसमें महापुरुषोंका वर्णन है। अथवा इसका वर्णन ग्रेट (महान्) मुनियोंके द्वारा किया गया है। अथवा यह इसलिए महान् है क्योंकि यह महान् शिक्षा देता है। दूसरे लेखक कहते हैं चूँकि इसका प्रारम्भ पुराने कवियोंसे हुआ है, इसलिए यह पुराण है, और यह 'महान्' इसलिए कहलाता है, क्योंकि इसमें आन्तरिक महानता है। महान् मुनियोंने इसे महापुराण इसलिए कहा है क्योंकि इसका सम्बन्ध महापुरुषोंसे है, और यह महान् शिक्षा देते हैं। हमारे टेक्स्टके छन्द 1,9.3 के टिप्पण में इतिहास और पुराण का अर्थ स्पष्ट किया गया है। उसके अनुसार, इतिहास एक व्यक्तिके वर्णनको कहते हैं जब कि महापुराणमें त्रेसठ शलाका पुरुषोंका वर्णन होता है। (अद्दहास एकपुरुषाश्रया कथा, पुराण = त्रिषष्टिपुरुषाश्रिता कथा पुराणानि)। इसलिए, जैनधर्मके त्रेसठ महापुरुषोंके जीवनोंका वर्णन करनेवाला काव्य महापुराण है, और इसलिए जैनोंमें महापुराण महत्त्वका वही स्थान रखता है, जो महाभारत या रामायण हिन्दुओंमें। फिर भी इसे एपिक काव्य नहीं कहा जा सकता, इस शब्दके सही अर्थमें, क्योंकि इसमें रामायण या महाभारतकी तरह एकता (unitiy) की कमी है। जिन त्रेसठ महापुरुषोंका वर्णन महापुराणमें है, वे पाँच वर्गोंमें विभक्त हैं। तात्कालिक सन्दर्भके लिए मैं उनके नाम नीचे दे रहा हूँ।

नाम देवनागरी लिपिमें हैं। 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 वासुदेव, 9 प्रतिवासुदेव, 9 बलदेव (बलराम)

इनमें शान्ति, कुन्थु और अर्ह तीर्थंकर और चक्रवर्ती दोनों थे।

त्रेसठ महापुरुषोंपर कार्य

त्रेसठ महापुरुषोंपर प्रकाशित सबसे प्राचीन महापुराण, अथवा अधिक सही नाम आदिपुराण है जो जिनसेन द्वारा रचित है। (880-875 A. D) जिनसेनने अपनी रचनाको "त्रिषष्टि लक्षण महापुराण संग्रह" कहा है और इस प्रकार उन्होंने सम्पूर्ण महापुराणकी योजना बनायी होगी परन्तु किसी प्रकार वह इसे पूरा नहीं कर सके, सम्भवतः अपनी मृत्युके कारण। उनके द्वारा रचित आदिपुराणके कुल 42 पर्व हैं, बाकी बचे हुए पाँच पर्व तथा समूचा उत्तरपुराण उनके शिष्य गुणभद्रने 820 शक संवत् (898) में पूरा किया, बंकपुरामें, लोकादित्यके संरक्षणमें। लोकादित्य, अकालवर्ष एलियाज कृष्ण II का (880-914 ई. सं.) सामन्त था। यह महापुराण संस्कृतमें लिखित है, और जो दो बार प्रकाशित हुआ। पहला कोल्हापुरमें कल्लप्पा नितवेके मराठी अनुवादके साथ, दूसरी बार इन्दौरसे हिन्दी अनुवादके साथ (अनुवादक पं. लालाराम जैन)। यह दिगम्बर जैनोंके दृष्टिकोणसे लिखित है। दूसरा ज्ञात महापुराण इस विषयपर यह है। और यह भी दिगम्बर जैन दृष्टिकोणसे लिखा गया है। तीसरा महापुराण है 'त्रिषष्टि लक्षण पुरुष चरित' जो हेमचन्द्र द्वारा लिखित है। यह श्वेताम्बर महापुराण है और संस्कृतमें लिखित है। यह हेमचन्द्रकी रचनाओंमें अन्तिम है। इसलिए यह 1170-72 के बीच लिखा गया होगा। यह जैनधर्म प्रसारक सभा, भावनगर द्वारा 1905 में प्रकाशित हुआ और इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। 1965 में प्रकाशित जैन ग्रन्थावलीमें (1907-8) में तीन महापुराणोंके नाम हैं (पृ. 229) उनमें पहला शीलाचार्यका है (888 A. D.), यह प्राकृतमें लिखित है और इसकी पाण्डुलिपियाँ प्रसिद्ध पाटन भण्डारमें सुरक्षित हैं, ऐसा कहा जाता है। इसकी सं. 4 है और जैसलमेर भण्डारमें है। इस महापुराणमें ही यह उल्लेख है कि इस विषय पर दूसरा प्राकृत महापुराण अमरसूरि द्वारा लिखित है On the authority of बृहत् टिप्पणिका। यह तीसरे महापुराणका उल्लेख करती है जो संस्कृतमें है, जो मेरुतुंगकी थीमपर है। इसकी पाण्डुलिपियाँ अमरपाटन और अहमदाबादमें सुरक्षित हैं।

पाठक देखेंगे कि मुद्रित ग्रन्थके नीचेका हिस्सा दो भागोंमें विभक्त है। पहले भागको एक लकीरके द्वारा मूल ग्रन्थसे अलग कर दिया गया है। इसमें पाठान्तर हैं और प्रभाचन्द्रकी टिप्पणियाँ हैं। दूसरा भाग पहले भाग से अलग है, उसमें संस्कृतमें मूल ग्रन्थके सरल पर्यायवाची शब्द दिये गये हैं जिन्हें मैंने जी. के. एम. और पी. पाण्डुलिपियोंके किनारोंपर लिखी गयी टिप्पणियों और प्रभाचन्द्रके टिप्पणोंसे चुना है। सरल पर्यायवाची शब्दोंके इस चयनमें मैंने इस बातका ध्यान रखा है कि मूल सम्पादित ग्रन्थको पढ़ते समय पाठकोंको क्या कठिनाइयाँ आ सकती हैं। मुझे आशा है कि यदि पाठकको संस्कृत भाषा और साहित्यका अच्छा ज्ञान है, तथा उसे प्राकृत व्याकरण और अपभ्रंशका मामूली ज्ञान है तो इन पर्यायवाची शब्दोंकी सहायतासे वह आसानीसे मूल पाठको समझ सकता है। जहाँ प्रभाचन्द्रके टिप्पणोंका सारभूत अंश रुचिकारक मालूम होनेके बजाय विस्तृत प्रतीत हुए उन्हें, टिप्पणियोंके रूपमें अन्तमें दे दिया गया है। मैं आशा करता हूँ पृष्ठके नीचे सरल पर्यायवाची शब्दोंको देनेकी यह पद्धति पाठकोंके द्वारा सराही जायेगी क्योंकि इससे उन्हें कम श्रम होगा, और मुझे इस जिल्दका विस्तार कम करनेमें सहायता मिलेगी। यह ध्यानमें रखना चाहिए कि मैंने पर्यायवाची शब्दोंके पाठको नहीं छुआ है, बल्कि उसको उसी रूपमें सुरक्षित रखा है, जिस रूपमें वह पाण्डुलिपियोंमें उपलब्ध है। यद्यपि कई बार मुझे इस बातका प्रलोभन हुआ है कि मैं अधकचरे प्राकृत प्रयोगों और अनावश्यक ऐतिहासिक उल्लेखोंको सुधारूँ, (उदाहरणके लिए देखिए पृष्ठ 8 कइवइ विहियसेउका सरल पर्यायवाची)।

कृतज्ञता ज्ञापन

अब उन सबके प्रति आनन्ददायक धन्यवाद देनेका कर्तव्य पूरा करना मेरे लिए शेष रहता है कि जिन्होंने किसी न किसी रूपमें इस जिल्दको पूरा करनेमें मदद की है। सबसे पहले मैं माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमालाके न्यासधारियों और मन्त्रियोंको धन्यवाद देता हूँ कि जिन्होंने इस जिल्दको तैयार करने और प्रकाशित करनेके लिए आवश्यक धनराशि जुटायी। और मुझे पूरा विश्वास है कि वे इस कार्यको पूरा करनेके लिए और धनराशि उपलब्ध करायेंगे। पुष्पदन्तकी काव्य प्रतिभाको, दसवीं सदीमें अपने आश्रयदाता भरतके उदार प्रोत्साहनकी जरूरत थी। ई. सं. 972 में मान्यखेटके विध्वंस और लूटके बाद कवि निराश हो गया और एक हजार वर्ष तक उपेक्षित रहा, और यदि ग्रन्थमालाके न्यासधारियोंने इस सम्पादककी सहायता न की होती तो इस महाकविको विस्मृतिके गर्तसे निकालनेका उसके प्रयत्न निरर्थक सिद्ध होते।

पुष्पदन्तकी आत्माको इस प्रकार विशेष आनन्द होगा कि उन्होंने एक बार फिर अपने पूर्व आश्रयदाताकी आत्माकी खोज पुस्तकमालाके न्यासधारियोंमें कर ली। इस सम्पादकको आशा है कि वही आत्मा कुछ हजार रुपयोंको उपलब्ध करायेगी कि जिससे उसने (सम्पादकने) जो काम हाथमें लिया है उसे वह पूरा कर सके, जिससे कविके अविस्मरणीय काव्यको नष्ट होनेसे बचाया जा सके।

प्रोफेसर हीरालाल जैन किंग एडवर्ड कालेज अमरावतीके प्रति मैं कृतज्ञताका विशेष ऋण अनुभव करता हूँ। उन्होंने इस जिल्दके प्रकाशनके लिए आकाश पाताल एक कर दिया। उन्होंने दूसरे अन्य रूपोंमें भी मेरी सहायता की, जैसे कि पाण्डुलिपियोंको कारंजा और जयपुरसे उधार दिलाने और उन छोटी सूचनाओंको मुझ तक पहुँचानेमें कि जो उनको ज्ञात हुईं। जैन ग्रन्थोंके साहसी प्रकाशक और जैन साहित्यके अनुभवी विद्वान् पण्डित नाथूराम प्रेमीको भी मैं हृदयसे धन्यवाद देता हूँ।

अपने भू. पू. शिष्य और अब विलिंगडन कालेज सांगलीमें अर्धमागधीके प्रोफेसर श्री आर. जी. मराठेके प्रति मैं यहाँ अपनी प्रशंसाके उच्चभावको व्यक्त करता हूँ कि उनकी उस सेवा और निष्ठाके लिए जो उन्होंने इस काममें मुझे दी। मेरे लिए उन्होंने प्रतिलिपि करनेका बहुत बड़ा काम किया और मिलान करनेके समय भी मेरी सहायता की।

नौरोसजी वाडिया, कालेज
पूना
अगस्त 1937

—पी. एल. वैद्य

प्रस्तावना

अपभ्रंश कवि पुष्पदन्त और उनका णाभेयचरिउ

मान्यखेटका उद्यान

पुष्पदन्त—अपभ्रंशके ही नहीं—अपितु भारतके महान् कवियोंमें-से एक हैं। कल्पना कीजिए दसवीं सदीके मध्योत्तर कालकी। एक व्यक्ति लम्बा रास्ता पार कर, राष्ट्रकूट राजाओंकी राजधानी 'मान्यखेट'के उद्यानमें पहुँचता है। वह थका हुआ है और चाहता है कि विश्राम कर ले। इतनेमें दो आदमी आते हैं और कविसे कहते हैं कि आप नगरमें चलकर विश्राम करें। सम्भ्रान्त व्यक्तियोंका यह अनुरोध आगमें घीका काम करता है। कवि आगबबूला होकर कहता है—"पहाड़की गुफामें घास खा लेना अच्छा परन्तु दुर्जनोंके बीच रहना अच्छा नहीं। यह अच्छा है कि आदमी माँकी कोखसे जन्म लेते ही मर जाये, परन्तु यह अच्छा नहीं कि सवेरे-सवेरे वह किसी दुष्ट राजा का मुख देखे।" अनुरोध करनेवाले व्यक्ति जिद्दी हैं और वे कविको मन्त्री भरतके पास ले जानेमें सफल हो जाते हैं। यह व्यक्ति ही, अपभ्रंशके महाकवि पुष्पदन्त हैं।

भरत और पुष्पदन्त

मन्त्री भरत कविके स्वभाव और पूर्व इतिहाससे परिचित है। वह अत्यन्त नम्रतासे कहता है—"हे कविवर, तुम्हारा नाम चन्द्रमासे लिखित है (यशस्वी है), तुमने वीर शैव राजाकी प्रशंसामें काव्य लिखकर मिथ्यात्वका जो बन्ध किया है, वह तभी मिट सकता है कि जब तुम प्रायश्चित्त करो। तुम भव्य-जनोंके लिए देवकल्प हो, अतः आदिनाथके चरितभारको काव्य-निबद्ध करनेके लिए अपने कन्धोंका सहारा दो। वाणी कितनी ही अलंकृत, सुन्दर और गम्भीर हो, वह तभी सार्थक है कि जब उसमें कामदेवका संहार करनेवाले प्रथम जिन ऋषभके चरितका वर्णन किया जाये।"

उदासी

कवि भरतका अनुरोध टाल तो नहीं पाता, लेकिन वह जानता है कि उस-जैसे अत्यन्त भावुक सांसारिक क्षुद्रताओंके कटु आलोचक और फक्कड़ व्यक्तिके लिए इसका निर्वाह करना कितना कठिन है? वह जब महापुराणकी सैंतीस सन्धियाँ पूरी कर चुकता है तो उसका मन अचानक उचाट हो जाता है, अकारण एक गहरी उदासी उसे कई दिनों तक घेरे रहती है। कविके अनुसार सरस्वतीके हस्तक्षेप करनेपर ही उसकी यह उदासी टूटती है। कविके शब्दोंमें—

"किसी कारण मनमें कुछ असुन्दर घटित हो जानेपर यह महाकवि कई दिनों तक उदास रहता है। एक रात सपनेमें सरस्वती उससे कहती हैं—"कवि, तुम पुण्य वृक्षके लिए मेघके समान हो, तुम अरहन्तको नमस्कार करो," वह मुड़कर देखता है, तो वहाँ पूर्णचन्द्रमाके प्रकाशके सिवाय कुछ नहीं था। वह चारों ओर देखता है, परन्तु उसे कुछ भी नहीं दिखाई दिया। यह देखकर कवि विस्मित है, और अपने कक्षमें चुपचाप उधेड़-बुनमें है। इतनेमें मन्त्री भरत आता है और कविसे कहता है—"कविवर, तुम उदास क्यों हो? क्या तुम्हें प्रेत लग गया है? काव्य सृजनमें अपना मन क्यों नहीं लगाते? क्या मुझसे कोई अपराध हो गया है, या किसीने तुमसे भला-बुरा कह दिया है? तुम जो-जो कहोगे वह सब मैं करूँगा। और जबतक तुम कुछ नहीं कहते तबतक मैं हाथ जोड़कर यहीं बैठा रहूँगा। तुम अस्थिर और असार जीवनमूल्योंके लिए

अपनी आत्माको मोहकी कीचड़में क्यों सानते हो ? तुम्हें वाणीरूपी कामधेनु सिद्ध है उससे नवरसरूपी दूध क्यों नहीं दुहते ?"

कविका उत्तर है—"यह कलियुग पापोंसे मलिन और विपरीत है; निर्दय, निर्गुण और अन्यायकारी, इसमें जो-जो दिखाई देता है, वह अन्यायजनक है। सूखे हुए वनकी तरह, फलहीन और नीरस। दुनियाके लोगोंका राग (स्नेह) सन्ध्याकालके रागके समान है, मेरा मन धनमें प्रवृत्त नहीं होता। भीतर अतिशय उद्वेग बढ़ रहा है, एक-एक पदकी रचना करना भारी जान पड़ता है। फिर मैं जो कुछ कहूँगा उसमें दोष ढूँढ़ा जायेगा; मैं यह नहीं समझ पाता कि यह दुनिया सज्जनोंके प्रति खिची-खिची क्यों रहती है ? उसी तरह कि जिस तरह धनुष पर चढ़ी हुई डोरी।" कवि के इस उत्तरसे उसकी उदासीका कारण छिपा नहीं रहता। पैसा कमाना जिसके सृजनका उद्देश्य न हो, और जो स्वार्थजन्य क्षुद्र कुटिलताओंसे घृणा करता हो, उसके लिए सृजनका एकमात्र उद्देश्य आत्माकी शान्ति और मनकी पवित्रता ही हो सकती थी। वह कहता है—

मज्झु कइत्तणु जिणपयभत्तिहि
पसरइ णउणिय जीविय-वित्तिहि ॥

कवि मन्त्री भरतसे कहता है कि मैं अकारण स्नेहका भूखा हूँ, इसी कारण वह उसके घरमें रहा है। क्या इसका अर्थ यह निकाला जाये कि कविकी उदासीका कारण शायद यह था कि सैंतीसवीं सन्धि तक पहुँचते-पहुँचते उसे भरतसे वह अकारण स्नेह नहीं मिल रहा था जिसके लिए उसने यह महान् उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया था।

दुर्जन-निन्दा

कविको दुर्जनोंसे जितनी चिढ़ थी उतनी शायद ही किसी दूसरे कविको रही हो ! इक्यासवीं सन्धि में वह फिर दुर्जनोंको आड़े हाथों लेता है, परन्तु अबकी बार उसकी मुद्रा भिन्न है। इसका कारण सम्भवतः यह है कि अबतक अपने कविकर्ममें उसे काफी यश मिल चुका था। वह लिखता है—

"मैं काव्यका रचयिता और पण्डित हूँ, अनेक सुजनोंका प्यारा। परन्तु दुष्टका स्वभाव ही दूसरोंके दोषोंको ग्रहण करना है। इसलिए मैं उसका प्रतिकार नहीं करता। मेरा काम काव्य करना है, दुर्जनका काम निन्दा करना। वह अपना काम करे, मैं अपना काम करूँ। दोनोंका नतीजा पण्डित ही जानेंगे। मेरी विमल कीर्ति अपने कोमल और सरस पद दुष्टोंके गलों और कपोलोंपर रखती हुई तीनों लोकोंमें विचरण करेगी।" 81/12।

आत्मविनय

गर्वोक्तियोंके बावजूद कविमें गहरी आत्मविनय थी। वह लिखता है—"मैं निर्दय और पापकर्मा हूँ, आज भी मैं कुछ भी धर्म नहीं जानता। मेरा विवेक मिथ्यात्वके सौन्दर्यसे रंजित है, मैं जिनवरके वचनोंसे अपरिचित हूँ। अभी तक मैं ऐसे कथान्तरोंकी रचना करता रहा हूँ जो शृंगार-चेतनासे निरन्तर भरपूर थे, पर लो मैं अब महापुराणकी रचना करता हूँ। लो मैं अपने हाथोंसे सूर्यको ढक रहा हूँ। लो मैं समुद्रको कलशसे उलीच रहा हूँ।"

प्राचीन परम्पराका उल्लेख करते हुए वह कहता है—"मन्त्री भरतने मुझसे इस काव्यकी रचना करवायी। यद्यपि मैं पण्डित नहीं हूँ, व्याकरण, छन्द और देशी नहीं जानता, जो कथा विश्ववन्द्य आचार्यों द्वारा सम्मानित है उसे मैं किस प्रकार प्रारम्भ करूँ ? मैं अकलंक कणचर, कपिल, वेदपाठी, सुगत और चार्वाकके अभिप्रायोंको नहीं जानता। मैंने पातंजलके महाभाष्यके जलको नहीं पिया। मैं अत्यन्त पवित्र इतिहास और

पुराणोंको भी नहीं जानता, भावोंके राजा भारवि, भास, व्यास, कोमलगिरि कालिदास, चतुर्मुख, स्वयंभू, श्रीहर्ष, द्रोण, कवि ईसान और बाणको भी मैंने नहीं देखा। धातु, लिंग, समास, गण, कर्म, करण, क्रिया, सन्धि, कारक, पद समाप्ति और विभक्तियोंको मैं नहीं जानता। शब्दधाम, आगमको भी मैं नहीं जानता कि जिनके नाम सिद्धान्तधवल और जयधवल हैं। जड़ताका नाम करनेवाले चतुर रुद्रट और उनके अलंकार-सारको मैंने नहीं देखा। मैंने पिंगल प्रस्तार नहीं पढ़ा। यश जिनका चिह्न है, और जो लहरोंसे निरन्तर अभिषिक्त है, ऐसा सिन्धु (सेतुबन्ध काव्य) मेरे चित्तपर नहीं चढ़ा। न मैंने कलाकौशलमें मन लगाया। मैं विचारोंकी दुनियामें जन्मजात मूर्ख हूँ। निरक्षर और चर्म रुक्ष। यह सब होते हुए भी मैं मनुष्यके रूपमें घूमता हूँ। महापुराण अत्यन्त दुर्गम होता है। घड़ेसे समुद्रको कौन माप सकता है। अमरों, सुरों और गुरुजनोंके लिए सुन्दर जिस महापुराणको रचना बड़े-बड़े मुनियोंने की है, मैं भी उसका कुछ वर्णन करता हूँ।"

आत्मपरिचय

पुष्पदन्तका जीवन संघर्षोंसे भरा हुआ था। यह सोचना गलत है कि जो लोग भौतिक आवश्यकताओंसे मुँह मोड़कर निःस्पृह हो जाते हैं उनके जीवनमें संघर्ष नहीं होता। पुष्पदन्त निःस्पृह थे, परन्तु अत्यन्त भावुक और स्वाभिमानी होनेसे उन्हें मानसिक तनाव बहुत झेलना पड़ा। महापुराणकी अन्तिम प्रशस्तिमें अपना परिचय उन्होंने इस प्रकार दिया है—

"अमीरों और गरीबोंके प्रति समदृष्टि रखनेवाला मैं मुक्तिरूपी वधूका दूत हूँ। माँ मुग्धादेवी और पिता केशवभट्ट। गोत्र कश्यप। सरस्वतीके साथ विलास करनेवाला। पापपटलसे दूर रहनेवाला। सूने घरों और मन्दिरोंमें निवास करनेवाला। पुराने वल्कल और चीवरोंको धारण करनेवाला। न घर-बार और न स्त्री। नदियों, बावड़ियों और तालाबोंमें नहा लेना, और दुर्जनोंसे दूर रहना। धूल-धूसरित शरीर, धरतीका बिछौना और हाथोंका आच्छादन। सदैव संन्यास मरणकी इच्छा रखनेवाला। अर्हत्‌के ध्यानका योगी, और भरतके आश्रयमें रहनेवाला। अपने सृजनसे लोगोंको पुलकित करनेवाला। कविकुलतिलक अभिमान मेरु।"

वह कितने अपरिग्रही और स्वाभिमानी थे, यह उन छन्दोंसे स्पष्ट है, जो उनकी पाण्डुलिपियोंमें यत्र-तत्र बिखरे हुए हैं। एक उदाहरण देखिए—

"जगं रम्मं हम्मं दीवओ चन्दविम्बं
धरित्ती पल्लंको दो वि हत्था सुवत्थं
पियाणिद्दा णिच्चं कव्वकीला विणोओ
अदीणत्तं चित्तं ईसरो पुप्फदन्तो"

छन्द कहता है कि पुष्पदन्त ईश्वर है, सुन्दर संसार उसका घर है, चन्द्रबिम्ब दीपक है, धरती पलंग है, और दो हाथ वस्त्र हैं, नित्य आनेवाली नींद प्रिया है, काव्यक्रीड़ा विनोद है, चित्त अदीन है।

एक राजा क्रूर हिंसाके द्वारा ऐश्वर्यके साधन जुटाता है फिर भी सुख-शान्तिसे नहीं रह पाता। कवि पुष्पदन्त आत्माकी स्वाधीनता और मनकी कल्पनामें उसे यदि पा लेता है तो उसके ईश्वरत्वको चुनौती कौन दे सकता है?

जिन सज्जनोंने मान्यखेट नगरके उद्यानमें ठहरे हुए कविकी भेंट भरतसे करायी थी, उनके नाम थे इन्द्रराज और अन्नइया। कविको मन्त्री भरतके शुभतुंग भवनमें ठहराया गया। भरतके अनुरोधपर कविको महापुराणकी रचनामें सिद्धार्थ संवत्सरसे लेकर क्रोधन संवत्सर तक (959 ई. से 965) कुल छह वर्ष लगे। संस्कृत महापुराण (जिनसेनका आदिपुराण और गुणभद्रका उत्तरपुराण) इस दृष्टिसे ईसवी 898 से पूर्वका सिद्ध होता है। महापुराण 102 सन्धियों 1907 कड़वकोंमें पूरा हुआ है। इसका दूसरा नाम तिसट्ठि महा-

पुरुषगुणालंकार (त्रिषष्टि महापुरुषगुणालंकार) है। कविकी तीसरी रचना 'जसहरचरिउ' है जिसकी चार सन्धियोंमें कुल 138 कड़वक हैं। दूसरी रचना है 'णायकुमारचरिउ'। स्वर्गीय डॉक्टर हीरालाल जैनने लिखा है (णायकुमारचरिउकी भूमिका पृ. 17) कि सिद्धार्थ और क्रोधन 60 वर्षीय संवत् चक्रके विशेष वर्षोंके नाम हैं। इनमें क्रोधन संवत्सर सिद्धार्थ संवत्सरके पीछे आता है। णायकुमारचरिउमें कृष्णराज और नन्नका उल्लेख है। णायकुमारकी रचनाके समय कवि नन्नके घरमें रह रहा था।

"मुद्धई केसव भट्टपुत्तु
कासवरिसिगोत्ते विसालचित्तु
णण्णहो मंदिरि णिवसंतु संतु
अहिमाण मेरु गुणगण महंतु"—१/२

अपने शिष्य नाइल्ल और शीलभट्टके अनुरोधपर कवि कहता है—

"पडिवज्जमि णण्णु जि गुण महंतु"

स्वीकार करता हूँ कि नन्न गुणोंसे महान् हैं। १।५

'णायकुमारचरिउ' की अन्तिम प्रशस्तिसे स्पष्ट है कि नन्न भरत मन्त्रीका पुत्र था। जसहरचरिउ इसके बादकी रचना है।

आश्रयदाता भरत

इसमें सन्देह नहीं कि काव्य मनुष्यकी उदात्त और स्वतन्त्र अभिव्यक्ति तथा सृजन शक्तिका सर्वोत्तम माध्यम है। इसके साथ, इसमें भी सन्देह नहीं कि भारतीय कविको अपने सृजनके लिए किसी न किसी आश्रयकी खोज करनी पड़ी है। इसलिए भारतमें जो भी काव्य (आर्ष काव्यको छोड़कर) लिखा गया वह राजनीति या धर्मके आश्रय और प्रेरणासे ही लिखा गया। स्वतन्त्र भारतमें भी यही स्थिति है। देशमें मिश्रित अर्थ व्यवस्था की तरह 'सृजन' भी दो क्षेत्रोंमें विभक्त है। एक सरकारी क्षेत्रमें और दूसरा व्यक्तिगत क्षेत्रमें। आर्थिक दृष्टिसे स्वतन्त्र लेखन द्वारा स्तरीय जीवन जीनेकी परिस्थितियाँ इस समय देशमें नहीं हैं, वे निकट भविष्यमें होंगी इसकी कोई सम्भावना कम से कम मुझे तो नहीं दिखाई देती। स्वतन्त्रता पानेके बाद भारतीय लेखकने अभिव्यक्तिकी स्वतन्त्रताका हनन स्वयं किया और अब अपनी चरित्र हत्याका दोष वह दूसरोंपर मढ़ना चाहता है। ऐसा वह कभी प्रतिबद्धताके नामपर करता है, और कभी 'मुखौटा' का नारा लगाकर और कभी प्रयोगवादके नामपर। काव्यमूल्यों और जीवनमूल्योंमें गहरी खाई—प्रयोगवादी और नयी कविताकी सबसे बड़ी दुर्बलता है जिसे वह प्रतीकों और बिम्बोंमें छिपाकर कलात्मक चमत्कार उत्पन्न करना चाहता है। उसका सबसे बड़ा चरित्र है कलामें आम आदमीकी बात करना और जीवनमें 'खास आदमीका जीवन जीना।' लेकिन इसके लिए अकेला सर्जक ही दोषी नहीं है, जिस देशके पूरे कुएँमें भाँग पड़ी हो, उसमें किसी एक वर्गको यह दोष देना कि कम से कम उसे नशेमें नहीं होना था, न्यायसंगत नहीं है। फिर भी कुछ व्यक्तित्व मिल जायेंगे कि जिन्होंने जीवनमूल्य और काव्यमूल्यको एक साथ जिया। कायदेसे मुझे इस प्रसंगको नहीं कुरेदना था, परन्तु यह सृजन और आश्रयके प्रश्नसे शाश्वत रूपसे जुड़ा हुआ है, अतः यह देख लेना जरूरी था कि उसका हल खोजा जा सका है या नहीं। जहाँ तक पुष्पदन्तका सम्बन्ध है, उनकी जीवनकी आवश्यकताएँ थोड़ी थीं। आश्रयदाता भरत और उसके बाद, उसीके पुत्र नन्नने अपनी प्रशस्ति लिखवानेके लिए नहीं, अपितु 'नाभेयचरित' की रचनाके लिए कविसे आतिथ्यकी अभ्यर्थना की थी। बीच-बीचमें उसका मन उचटा भी, परन्तु भरतने चतुराईसे काम लिया। पुष्पदन्तने गौरवके साथ भरतके नामका उल्लेख अपने काव्यमें किया है; प्रत्येक सन्धिके अन्तमें उसे महाभव्य विशेषण दिया है, भरत कौडिन्य

गोत्रके थे। इनके पितामहका नाम अन्नय था और पिताका ऐयण। माँका नाम था देवी। पत्नी कुंदव्वासे भरतके सात पुत्र हुए—देवल्ल, भोगल्ल, नन्न, सोहन, गुणवर्म, दंगय्य और संतय्य। भरत श्यामशरीर और दृढ़ व्यक्तित्ववाले थे। उन्होंने अपने कुलका उद्धार किया। बादमें वह राष्ट्रकूट नरेश कृष्णराज III के मन्त्री, सेनानायक और दानविभागके अधिष्ठाता बने। भरतके बाद कवि नन्नके आश्रयमें था, जो थोड़ा नामका लोभी था। उसके निकटके लोगोंने कविसे काव्यमें सर्वत्र नन्नके नामका उल्लेख करनेका अनुरोध किया। कृष्णराज III के बाद उसका पुत्र खुट्टिगदेव गद्दीपर बैठा। उसके समय धारानरेश श्री हर्षदेवने आक्रमण करके मान्यखेटको धूलमें मिला दिया। यह 972 ईसवीकी बात है। णायकुमारचरिउकी रचनाके समय कृष्णराज III का ही शासनकाल था। महापुराणकी रचना कन्नू पिल्लईके एफेमेरिसके अनुसार (जसहरचरिउ द्वि. सं. की भूमिका पृ. 21) 11 जून 965 में समाप्त हो चुकी थी। लगता है इसके बाद मन्त्री भरतका निधन हो गया और उसका पुत्र नन्न महामन्त्री पदपर प्रतिष्ठित हुआ। 'णायकुमारचरिउ' में कविका उल्लेख है—

सिरिकण्हरायकरयल-णिहिय असिजलवाहिणि दुग्गयरि
धवलहरसिहरि-हय मेहउलि पविउल मण्णखेडणयरि।

काव्यके प्रारम्भमें सरस्वतीके प्रसादकी कामना करता हुआ कवि मान्यखेड नगरीको श्रीकृष्णराजकी हाथमें स्थित तलवाररूपी नदीसे दुर्गमतर[1] बताता है और कहता है कि उसके धवलगृहके शिखरोंसे मेघकुल आहत हो उठते हैं। यहाँ कृष्ण और उनकी तलवारका पानी है, परन्तु कविसे काव्यरचनाका अनुरोध करनेवाला भरत नहीं है, उसकी जगह उसका पुत्र नन्न है। भरतके नामकी अनुपस्थितिका कारण उनका निधन ही हो सकता है। दक्षिणके राष्ट्रकूट वंश और मालवाके परमार वंशमें जो आक्रमण और प्रत्याक्रमणका सिलसिला चला, उसका अन्त परमार सीयक (श्रीहर्षदेव) ने 972 में मान्यखेडके ध्वंसके रूप में किया। यह ऐतिहासिक सत्य है। स्व. डॉ. हीरालाल जैनका कहना है कि पुष्पदन्तने मान्यखेडकी इस लूटको अपनी आँखों देखा था, और सम्भवतः उस ध्वंसका चित्रण जसहरचरिउकी अन्तिम प्रशस्तिमें किया है। प्रशस्तिका वास्तविक अंश इस प्रकार है—

"जणवयणीरसि दुरियमलीमसि
कइणिंदायरि दुस्सह दुहयरि
पडिय कवालइ णर कंकालइ
बहु रंकालइ अइ दुक्कालइ
पवरागारि सरसाहारि
सण्हिं चेलि वर तंवोलि
महु उवयारिउ पुण्णि पेरिउ
गुणभत्तिल्लउ णण्णु महल्लउ
होउ चिराउसु वरिसउ पाउसु"

—जनपद नीरस और दुरितोंसे मलिन है। कवियोंकी निन्दा करनेवाला और असह्य दुखोंको करनेवाला जिसमें कपाल और नरकंकाल पड़े हुए हैं, अनेक दरिद्रोंके घर अत्यन्त अकाल फैला हुआ है।"

---

१. स्व. डॉ. जैनने दुग्गयर शब्दका मूल दुर्गम माना है। परन्तु दुग्गयर, दुर्गमतरसे बना है। व्युत्पत्ति होगी दुग्ग अ अर दुग्गय् →अरदुग्गयर। उक्त नगरी खाईसे घिरी होनेके कारण दुर्गम थी, परन्तु तलवारवाहिनीसे दुर्गमतर हो उठी।

मेरी विनम्र धारणामें यह जनपदके लोगोंकी संवेदनशून्यता, पापवृत्ति और अकालसे उत्पन्न होनेवाली गरीबी एवं विनाशका सामान्य कथन है। यह तो इस देशकी सनातन नियति है, वह महापुराणकी समाप्तिके समय थी। गोस्वामी तुलसीदास जब अपना रामचरितमानस समाप्त कर रहे थे तब भी वह थी। अतः उसका सम्बन्ध—सीयक द्वारा की गयी मान्यखेटकी लूटसे उत्पन्न विनाशसे जोड़ना तर्कसंगत नहीं है। जिस देशमें (विशेषतः दक्षिण में) भयंकर गरीबी रही हो, उसमें कोई कविको सम्मान और सम्पन्नतासे रखे, तो उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना उसका कर्तव्य हो जाता है। जैसा कि आगे कवि कहता है कि ऐसे विषम, अशान्त और मरणधर्मा समयमें नन्नने मुझे बड़े भवनमें रखा, सरस भोजन दिया, सुकुमार चिकने रेशमी वस्त्र और बढ़िया पान दिया, इस प्रकार उसने पुण्यप्रेरित होकर कविका उपकार किया—गुणोंका भक्त नन्न सचमुच महान् है, वह चिरजीवी हो, पावस खूब बरसे—4। 3। (जसहरचरिउ)।

पुष्पदन्त ई. 559 से मान्यखेड नगरके शुभतुंग भवनमें महामन्त्री भरतके समयसे रह रहे थे, नन्नने भी उन्हें रखकर अपने पिताकी परम्पराका निर्वाह किया। सीयकके आक्रमणसे उत्पन्न परिस्थितिके कारण नहीं। पुष्पदन्तने राष्ट्रकूटोंकी राजधानी मान्यखेट को लुटते देखा था, यह उनकी इस प्रशस्तिसे स्पष्ट है :

"दीनानाथधनं सदा बहुजनं प्रोफुल्ल-वल्लीवनं,
मान्यखेटपुरं पुरंदरपुरी-लीलाहरं सुन्दरम्।
धारानाथनरेन्द्र-कोप-शिखिना दग्धं विदग्धं प्रियं,
क्वेदानीं वसतिं करिष्यति पुनः श्रीपुष्पदन्तः कविः ॥"

इसमें जहाँ एक ओर मान्यखेटको दीन-अनाथोंका धन-जनसंकुल, पुष्पित लता-वनवाला और इन्द्रपुरीकी लीलाका अपहरण करनेवाला बताया गया है, वहीं दूसरी ओर धारा नरेशको कोपज्वालामें ध्वस्त भी। कविके सम्मुख प्रश्न है कि वह अब कहाँ रहेगा ?

महापुराणकी कुछ पाण्डुलिपियोंमें इस श्लोकके प्रक्षिप्त होनेके कारण, महाकविके कालनिर्णयके विषयमें बहुत बड़ी समस्या खड़ी हो गयी थी। परन्तु डॉ. पी. एल. वैद्यने उसे प्रक्षेप मानकर उसका हल कर दिया। मेरा अनुमान है कि 'जसहरचरिउ' की रचना समाप्त करनेके कुछ समय बाद ही धारानरेशने मान्यखेटपर आक्रमण किया होगा, और तब कविके सम्मुख रहनेका संकट खड़ा हुआ होगा। नहीं तो 'जसहरचरिउ' में वह अवश्य इसका प्रत्यक्ष उल्लेख करते। इस प्रकार कविके दोनों आश्रयदाता भरत और नन्न (दोनों बाप-बेटे थे) राजपुरुष थे परन्तु, उन्होंने कविको पूरा सम्मान और अकारण स्नेह दिया जिससे वह त्रेसठ शलाका पुरुषोंके चरित गूँथनेके बाद णायकुमारचरिउ और जसहरचरिउकी रचना कर सके तथा एक ही आश्रयमें लगातार १३ वर्ष रहकर वह काव्य रचना करते रहे।

काव्यका उद्देश्य

क्रोधन संवत् (11 जून 965) आसाढ़ सुदी दसवींके दिन महापुराणको समाप्त करते हुए आजसे एक हजार वर्ष पहले विश्वके मंगलकी कामना करता हुआ कवि कहता है—"मेघ प्रचुर धाराओंसे बरसे, यह धरती अनेक धान्योंसे खूब पके, देश खुश हो, सुभिक्ष खूब बढ़े, लोगोंका व्यक्तित्व अच्छा हो, उनका दुहरा व्यक्तित्व दूर हो, भरतको शान्ति मिले कि जिसने अपने वचनका पूरी तरह निर्वाह किया है।" (102/4) काव्यके अनन्त श्रमके अनन्तर कविकी यही कामना है :

'इह दिव्वहु कव्वहु तणउ फलउ लहु जिणणाहु पयच्छउ
सिरि भरहहु अरुहहु जहिं गमणु पुप्फयंतु तहिं गच्छउ।"

—इस दिव्य काव्य-सृजनका फल जिन भगवान् मुझे यही दें कि जहाँ चक्रवर्ती भरत और अरहन्त भगवान्‌का गमन हुआ है, वहीं मेरा गमन हो।

संसारमें दुःखके अनेक कारणोंमें सबसे बड़ा कारण है विषमताकी प्रतीति, जो चित्तकी अशान्तिका सबसे बड़ा कारण है। दुःखमें मानव चित्त अशान्त देखा ही जाता है परन्तु सुखमें वह इससे भी अधिक अशान्त रहता है। ऐसे लोग भी, जो सामाजिक, राजनीतिक या आध्यात्मिक दृष्टिसे ऊँचे पदोंपर हैं, मानसिक दृष्टिसे घोर अशान्त हैं।

तुलसीदासने कहा है :

"अस विचार रघुबंस मनि हरहु विसम भवपीर"

भवपीर, दुनियाकी पीड़ा विषमता है, विषमताजन्य यह पीड़ा समताके बोधसे ही दूर की जा सकती है। इसी प्रकार जैन कवियोंके चरितगानका उद्देश्य भी वही है जो तुलसीदासके रामचरितके गानका।

रघुबंस भूसन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं।
कलिमल मनोमल धोइ बिनु श्रम रामधाम सिधावहीं॥

काव्य सम्बन्धी विचार

कवि पुष्पदन्त सरस्वतीकी वन्दना करते हुए जो कुछ कहते हैं, एक तरहसे वह उसका काव्यके प्रति अपना दृष्टिकोण है। कविने लिखा है—"देवी सरस्वती हर्षजनक सुन्दर और मधुर बोलती है, वह अपने कोमल पद-विलासके साथ रखती है, वह अत्यन्त प्रसन्न गम्भीर और स्वर्ण शरीरवाली है। चन्द्ररेखाके समान कान्तिमयी और कुटिल है, अलंकारोंसे युक्त वह छन्दके अनुसार चलती है। वह अनेक शास्त्रोंके गौरवको धारण करती है, वह चौदह पूर्वों और बारह अंगोंसे परिपूर्ण है। सात भंगिमाओंवाली वह जिनवरके मुखकमलसे पैदा हुई है। ब्रह्माके मुखमें निवास करनेवाली, शब्दसे उत्पन्न, कल्याणकी विधात्री और सौन्दर्य (शोभा) की खान है। महायोद्धाकी तरह सुन्दर पदयोजनावाली है, जो महाकवियोंको यश प्रदान करनेवाली है।" पुष्पदन्तका कहना है कि काव्यका आश्रय महान् होना चाहिए, इससे उसका महत्त्व बढ़ जाता है, उसी प्रकार, जिस प्रकार कमलिनीपर स्थित पानीकी बूँदें मोती-सी चमकती हैं। जो अनुभूति महान् आश्रयको लेकर चलती है, वह पूर्ण गौरव धारण करती है। महान् आश्रयको प्रबन्ध-काव्यका विषय बनानेमें एक सुविधा यह भी है कि उसमें नाना रसोंकी अभिव्यक्तिका अवसर मिल जाता है।

पुराण, महापुराण और चरित काव्य

पुष्पदन्तने काव्यके अन्तमें स्पष्ट रूपसे स्वीकार किया है कि उसने भरतके अनुरोधपर नाना रस-भावसे युक्त पद्धडियामें महापुराणकी रचना की। इससे स्पष्ट है 'पद्धडिया' उस युगमें अपभ्रंश काव्योंकी विशेष लोकप्रिय शैली थी, इसीलिए उन्होंने उसे अपनाया। वह मूलतः कवि थे, और जैनधर्म उन्होंने बादमें स्वीकार किया था। अतः यह स्वाभाविक हो था कि महापुराणको काव्यका रूप देते हुए वे उसमें परिवर्तन करते। आर्हती वाणीसे क्षमा माँगते हुए वह लिखते हैं—"गणधरोंके द्वारा निर्दिष्ट इस काव्यकी रचना करते समय मुझ बुद्धि-विहीनने जिनेन्द्रके मार्गमें जो कुछ कम-अधिक कहा है, उसके लिए अर्हत् वचनोंसे उत्पन्न होनेवाली आदरणीय सरस्वती (जिनवाणी) मुझे क्षमा करे।" सैद्धान्तिक दृष्टिसे महा-पुराण काव्यके अधिकांश नायक कामदेवके अवतार हैं, जो कामचेतना (रागचेतना) का संहार करनेवाले

हैं। परन्तु कामचेतनाका संहार करना इतना आसान नहीं है। खासकर काव्य प्रक्रियामें काम-संहारकी अभिव्यक्ति और भी कठिन है। क्योंकि रागचेतनाको जबतक अनुभूतिके स्तरपर संप्रेषणीय नहीं बनाया जाता, तबतक उसकी व्यर्थता या नश्वरतामें-से विकसित होती हुई वीतरागता अनुभूतिका विषय नहीं बन सकती। 'महापुराण' कई चरित काव्योंका संकलन है, प्रत्येक चरित काव्य अपनेमें स्वतन्त्र है। उनके सभी नायक प्रतिष्ठित, सम्पन्न और कुलीन हैं। अन्य महापुराणोंकी तरह पुष्पदन्तका महापुराण भी कई चरित काव्योंकी मणिमाला है। इसमें मुख्य रूपसे तीर्थंकर आदिनाथका चरित महत्त्वपूर्ण और आकारमें बड़ा है। यह उसका पहला खण्ड है।

पुष्पदन्तके पहले संस्कृतमें इस प्रकारके प्रबन्ध-काव्यको पुराण-काव्य कहनेकी प्रथा थी। आदिपुराण, पद्मपुराण, हरिवंशपुराण इत्यादि। परन्तु विमलसूरिने अपने प्राकृत काव्यको 'पद्मपुराण' न कहकर पउमचरिअ कहा, जब कि अपभ्रंश कवि स्वयंभूने 'पउमचरिउ'। आचार्य गुणभद्रके अनुकरणपर पुष्पदन्तने त्रेसठशलाकापुरुषोंके चरित मणियोंसे महापुराणरूपी महाहार जिनभक्तिके धागेसे गूँथकर भक्तजनोंके लिए समर्पित किया है। 'महापुराण' से कविका अभिप्राय क्या था, इसके बारेमें वह भरतके प्रश्नके उत्तरमें ऋषभनाथसे कहलवाता है—

"महापुराण वह है जिसमें त्रिलोक, देश, नगर, राज्य, तीर्थ, तप, दान, शुभ प्रशस्त आठ स्थानोंका कथन हो। (2 । 1)। यहाँ ऋषभने महापुराणकी जिन विशेषताओंका उल्लेख किया है, वे सब पुष्पदन्तके इस नाभेयचरिउमें है। फिर भी वह अपने काव्यको नाभेय पुराण न कहकर नाभेयचरित कहता है। परन्तु उनके संकलनको महापुराण कहता है। इससे स्पष्ट है कि अपभ्रंश कवियोंका अपने काव्यको चरितकाव्य या महापुराण कहनेमें कोई विशेष आग्रह नहीं है। ऐतिहासिक दृष्टिसे भारतीय काव्यमें प्रबन्ध काव्यकी दो धाराएँ हैं—(१) पौराणिक चरितोंपर लिखे गये काव्य, (२) सांसारिक व्यक्तियोंके चरितोंपर लिखे गये काव्य। बुद्ध और महावीर यद्यपि ऐतिहासिक व्यक्ति हैं, राम-कृष्ण पौराणिक व्यक्ति हैं।

फिर भी अन्य भारतीय राजाओंकी तुलनामें उनके चरित लोकोत्तर चरित हैं। बुद्ध और महावीरका प्रभाव आध्यात्मिक है। आध्यात्मिक उपलब्धियोंके कारण ही उनके व्यक्तित्वकी छाप भारतीयोंके हृदयपर है। इसलिए प्रसिद्ध संस्कृत कवि अश्वघोषने बुद्धचरित लिखकर चरित काव्यकी नींव डाली। इसके विपरीत कालिदासने रघुवंशकी रचना की। जिसमें रघुवंशकी कई पीढ़ियोंके राजपुरुषोंका वर्णन है। लेकिन बाणभट्टने हर्षचरित लिखकर, अश्वघोष द्वारा स्थापित चरितकाव्यकी परम्पराको तोड़ दिया। उत्तर राजपूत कालमें रासो काव्य-परम्परा चली, जिसके प्रवर्तनका श्रेय चन्दवरदायीको है। ये रासो काव्य उस अवट्ठ भाषामें है, जो अपभ्रंशकी परवर्ती विकास हैं, कुछ लोग इसे उत्तरकालिक अपभ्रंश भी कहते हैं। इन रासो काव्योंके नायक समकालीन राजन्य वर्गके शासक हैं, जिन्हें सामन्ती चरित्रके ह्रासोन्मुख अवशेषके रूपमें स्वीकार किया जाना चाहिए। उनमें जो ऐश्वर्य और ओज है, वह कवियोंका दिया हुआ है। शैलीके विचारसे ये रासो काव्य पद्धड़िया शैलीकी तुलनामें बहु छन्दवाली शैलीको अपनाते हैं, हालांकि उसमें बहुत-से छन्द प्राकृत परम्पराके भी हैं। अपने समयके प्रबन्ध-काव्य शैलियोंको स्पष्ट करते हुए संस्कृत समीक्षक राजशेखरका कहना है कि इतिहास भी पुराणका एक भेद है। उसके दो भेद हैं : परक्रिया और पुराकल्प।

"परक्रिया पुराकल्प इतिहासगतिर्द्विधा
स्यादेकनायका पूर्वा द्वितीया बहुनायकाः।"

परक्रियामें एक नायक प्रधान होता है—जैसे रामायण। पुराकल्पमें अनेक नायक होते हैं, जैसे महाभारत। इस दृष्टिसे रघुवंश पुराकल्प है जबकि बुद्धचरित परक्रिया। पुराणकी परिभाषा राजशेखरने इस प्रकार की है—

"सर्गः प्रतिसंहारः कल्पो मन्वतराणि वंशविधिः ।
जगतो यत्र निबद्धं तद्विज्ञेयं पुराणमिति ।"

(१) व्यापक सृष्टि, (२) अवान्तर सृष्टि, (३) प्रलय मन्वन्तर और वंश वर्णन ।

ऊपर ऋषभदेवके हवाले पुष्पदन्तने पुराणकी जो परिभाषा दी है, उसकी कई बातें इससे मिलती-जुलती हैं। राजशेखरका यह कथन महत्त्वपूर्ण है कि इतिहास भी पुराणका एक भेद है। रामायण और महाभारतको देखते हुए राजशेखरका कथन सटीक है। जैन चरित काव्योंका विकास भी पुराणोंसे हुआ। पुष्पदन्तका महापुराण केवल इस अर्थमें पुराकल्प है क्योंकि उसमें कई चरित-काव्योंका संकलन है, परन्तु वे एक दूसरेमें गुँथे हुए नहीं हैं। यह सच है कि रासो काव्योंमें अपभ्रंश चरित काव्योंकी पद्धड़िया पद्धतिका अनुसरण नहीं है, परन्तु रामचरित मानस और पद्मावतमें उसका परवर्ती विकास स्पष्ट रूपसे देखा जा सकता है। रासो काव्योंके नायकोंकी प्रशंसासे कुढ़कर ही तुलसीदासने लिखा है—

"कीन्हें प्राकृत जन गुणगाना
सिर धुनि लाग गिरा पछिताना"

अवतारी रामकी लोकलीलाओंके कारण लोगोंको उनके व्यक्तित्वमें प्राकृत जनका भ्रम न हो जाये इसके लिए अपने समूचे काव्यमें तुलसीदास सावधान करते चलते हैं। श्रीमद्भगवद्गीताके अनुसार अवतार धर्मकी स्थापनाके लिए होता है जबकि जैनोंका विश्वास है कि लोककल्याणकी भावनासे पूर्व जन्ममें कोई जीव तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध करता है, फिर स्वर्गसे च्युत होकर तीर्थंकरके रूपमें अवतरित होता है, तीर्थंकर यद्यपि पूर्ण मनुष्य हैं, परन्तु पुराणोंमें उनका जो वैभवसे पूर्ण और अतिरंजित वर्णन मिलता है, वह उन्हें अवतारी बना देता है। तीर्थंकरोंसे कुछ हलके स्तरपर बलभद्रों, नारायणों और प्रतिनारायणोंकी कल्पना की गयी है, इन सबके चरितों को आधार बनाकर ही अपभ्रंशके जैन चरित-काव्य रचित हैं, जिन्हें कथाकाव्य भी कहा जा सकता है। धनपालकी 'भविसयत्तकहा' को कुछ आलोचकोंने चरित-काव्यसे भिन्न माना है। परन्तु शिल्प-शैली और विषयकी दृष्टिसे ऐसा मानना किसी भी प्रकार उचित नहीं। यहाँ एक बात विचार कर लेना भी प्रसंग प्राप्त है। कुछ विद्वानोंकी धारणा है कि अपभ्रंश जैन चरित काव्योंमें केवल उनके नायकोंके दीक्षा, तप और मोक्षका वर्णन है, वस्तुतः ऐसा नहीं है। पुष्पदन्तने प्रत्येक सन्धिके अन्तमें लिखा है—"त्रेसठ महापुरुषोंके गुणालंकारोंसे युक्त इस महापुराण में"। यहाँ अलंकारका अर्थ है भौतिक ऐश्वर्य; और गुणका अर्थ है आध्यात्मिक ऐश्वर्य। इस प्रकार उनके जीवनमें प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनोंका समन्वय है।

अपभ्रंश कथा-काव्य और हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य

एक शोध प्रबन्धका शीर्षक है "अपभ्रंश कथा-काव्य और हिन्दी प्रेमाख्यानक," इससे यह भ्रम हो सकता है कि अपभ्रंश चरित-काव्यसे अपभ्रंश कथाकाव्य अलग है, और उनका हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्यसे सम्बन्ध है। एक तो तात्त्विक दृष्टिसे अपभ्रंशमें चरित-काव्य और कथाकाव्यमें अन्तर नहीं है, दूसरे प्रेमाख्यानक काव्यसे तथाकथित अपभ्रंश काव्यका कोई सम्बन्ध नहीं। सम्भवतः यह भ्रम प्रेमकाव्य और प्रेमाख्यानक काव्यमें अन्तर न समझनेके कारण उत्पन्न हुआ प्रतीत होता है। प्रेमकाव्य प्रेमकथापर आधारित विशुद्ध लौकिक काव्य है; इस प्रकारके लोकप्रेमका वर्णन अपभ्रंश काव्योंमें भी है। परन्तु प्रेमाख्यानक काव्य वे सूफी काव्य हैं जिनमें प्रेमकहानीको माध्यम बनाकर, आध्यात्मिक प्रेमकी अभिव्यक्ति की जाती है। इश्क-मजाजीसे इश्कहकीकीको पानेका प्रयास किया जाता है। सूफी-साधनामें सूफियोंका यह दर्शन है कि सृष्टि खुदाका जलवा है, जर्रे-जर्रेमें उसका नूर व्याप्त है, अतः दुनियावी प्रेमको प्रतीक मानकर वियोगकी गहन

अनुभूतिके द्वारा काव्यमें उसका मानसिक प्रत्यय ही 'प्रेमाख्यानक' काव्य है। उसमें प्रेमाख्यान एक साधन है, जिसमें प्रसंग या प्रकृतिके प्रत्यक्ष संकेतों द्वारा अज्ञातके प्रति प्रेमका प्रत्यय कराया जाता है। इस प्रकारकी प्रेमसाधना भी जैनदर्शन-जैसे वीतराग-दर्शनपर आधारित अपभ्रंश चरित-काव्योंमें कल्पना तक नहीं की जा सकती। मुझे विश्वास है कि नव-अनुसन्धानकर्ता ऊपरी-ऊपरी तुलनाके बजाय गहराईसे काव्यगत प्रवृत्तियों और प्रेरणाओंकी छान-बीन करेंगे। जहाँ तक पुष्पदन्तका प्रश्न है, उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें लिखा है कि उनका यह नाभेयचरित धर्मके अनुशासनके आनन्दसे भरा हुआ है। राग संवेदनाओंका उनके काव्यमें चित्रण है, परन्तु उसका उद्देश्य अज्ञातके प्रति राग संवेदना पैदा करना नहीं है।

एक कविके रूपमें पुष्पदन्तने राजसत्ताकी खुली और कड़ी आलोचना की है। परन्तु यह भी नियतिका क्रूर व्यंग्य समझिए कि उन्हें राजपुरुषके आश्रयमें रहना पड़ा। एक जगह वर्णन है कि राजलक्ष्मीसे क्या, जहाँ चामरोंकी हवासे गुण उड़ा दिये जाते हैं। सज्जनता अभिषेक-जलसे धुल जाती है। राजलक्ष्मी दर्प और अविवेकसे भरी हुई है, मोहसे अन्धी और स्वभावसे दूसरोंकी हत्या करनेवाली है, सप्तांग राज्यके भारसे भरित है, पिता और पुत्र दोनोंके साथ एक साथ रमण करती है, कालकूटसे जन्मी है। वह मूर्खोंमें अनुरक्त है और विद्वानोंसे विरक्त है। अपने समयके राजन्यवर्गको परिभाषित करते हुए बाहुबलि कहता है—

"जो बलवान् चोर है वह राजा है, दुर्बलको और प्राणहीन बनाया जाता है। पशुके द्वारा पशुके मांसका अपहरण किया जाता है और मनुष्यके द्वारा मनुष्यका धन। रक्षाकी इच्छाके नामपर लोग एक समूह बनाते हैं, और किसी एक राजाकी आज्ञाका पालन करते हुए निवास करते हैं। मैंने तीनों लोकोंको देख लिया है कि सिंह कभी भी झुण्ड बनाकर नहीं रहते। हे दूत, मुझे यही अच्छा लगता है कि मान भंग होने पर मर जाना अच्छा; जिन्दा रहना अच्छा नहीं?"

"जो बलवंतु चोरु सो राणउ णिव्वलु पुणु किज्जइ णिप्पाणउ
हिप्पइ मिगहु मिगेण हि आमिसु हिप्पइ मणुयहु मणुएण वसु
रक्खाकंखइ जूहु रएप्पिणु एक्कहु केरी आण लएप्पिणु
ते णिवसंति, तिलोइ गविट्ठउ सीहहु केरउ वंदु ण दिट्ठउ"

यह कथन यद्यपि बाहुबलिका है जो जैन पौराणिक काल गणनाके अनुसार करोड़ों वर्ष पूर्व हुए। फिर भी वास्तविकता यह है कि उसमें कविके समयकी सामन्तवादी मनोवृत्तिका चित्रण है। यह युग (१०वीं सदी) स्वदेशी सामन्तवाद (आभिजात्यवाद) के ह्रासका युग था। राज्य हथियानेके लिए देशमें व्यापक मारकाट और लूटपाट मची हुई थी। बाहुबलि अपने पिताके द्वारा दिये गये राज्यसे सन्तुष्ट है, परन्तु उसका सन्तोष उस समय आक्रोशमें बदल जाता है कि जब दूत उससे बड़े भाई भरतकी अधीनता मान लेनेका प्रस्ताव करता है, वह कहता है—

"केसरि केसरु वरसइ थणयलु सुहडहु सरणु मज्झु धरणीयलु
जो हत्थेण छिवइ सो केहउ किं कियंतु कालाणलु जेहउ"

सिंह की अयाल, वरसतीका स्तन, सुभटकी शरण और मेरी धरती, जो हाथसे छूता है, मैं उसके लिए कालानल और यमके समान हूँ। पुष्पदन्तके समय आभिजात्य वर्गमें तीन ही बातें प्रमुख थीं—स्त्रीकी कुलीनता, भूखण्ड और शरणागतकी रक्षा।

रागचेतना

'नाभेयचरिउ' से यदि धर्मके अनुशासनको निकाल दिया जाये, तो पूरा काव्य रागचेतनासे भरा हुआ प्रतीत होगा। यह रागचेतना विशुद्ध मानवी रागचेतना है। रागचेतनाका अभिप्राय यहाँ मानवी प्रणयसे है, जिसके मूलमें रति है। रतिकी व्यंजना, व्यक्तिगत दृष्टिसे यद्यपि सम विषम है, परन्तु सामाजिक दृष्टिसे एकदम विषम है। पुष्पदन्त भारतीय सामन्तवादके क्षयकालमें जन्मे थे, जिसमें बहुपत्नीप्रथा विकृतरूपमें प्रचलित थी। सत्ताके विस्तार के साथ, अनेक स्त्रियोंका संग्रह, आज भले ही बुरा माना जाये, परन्तु सामन्तवादी युगमें आध्यात्मिक दृष्टिसे इसका औचित्य यह कहकर सिद्ध किया जाता था कि यह पुण्यका फल है। 'नाभेयचरिउ' में कुछ स्वतन्त्र आख्यान हैं जिनके नायक रागचेतनाके एक-एक क्षणको भोगनेके बाद ही दीक्षा ग्रहण करते हैं :

संयोगकी और भी लीलाएँ देख लीजिए :—

'काहि वि विरहसिहिं पउलिउ पलु   धवलु वि कमलु दुवइ णीलुप्पलु
सहइ कामु महु समयागमणें   णिहय कावि पिय समयागमणें
मउलिय फुल्लिय मल्लिय काणणि   मंडणु देइ पुरंधि ण काणणि
णिग्गय-पल्लव-णवसाहारहु   मुयइ तित्ति विरहिणि साहारहु
पइं मेल्लेप्पिणु लवइ व कोइल   सुहयत्ते किर भूसइ को इल
मुहमरु परिमल मिलिय सिलीम्मुह   जे ते णं कंदप्प सिलिम्मुह
का वि चवइ पिय हउं तुह रत्ती   अज्जु गइय महु दुक्खें रत्ती ॥
का वि भणइ पिय करि केसग्गहु   वियलउ मालइ-कुसमपरिग्गहु।
का वि कहइ लइ चुंवहि वयणउं   अवरु म देहि किं पि पडिवयणु'
घत्ता—'णउ मेल्लइ कवि बोल्लइ म करहि काइं वि विप्पिउ"
धरु वित्तु वि णिय चित्तु वि सयलु वि तुज्झु समप्पिउ ॥

किसीका मांस विरहकी ज्वालासे पक जाता है और सफेद कमल नीला हो जाता है, वसन्तका समय आ जानेपर भी वह कामको सहन करती है, और प्रियका समय आ जानेपर आहत हो उठती है। वनमें बन्द मल्लिका खिल उठती है परन्तु, वह अपने कानमें उसका अलंकार धारण नहीं करती। नव आम्र वृक्षोंमें पल्लव निकल आये हैं, परन्तु, विरहिणी सहकारमें तृप्त होना छोड़ देती है : पतिको छोड़कर वह कोयलकी तरह बोलती है, आहत होनेपर कौन धरती को अलंकृत करता है। मुख पवनके सौरभसे जो भ्रमर इकट्ठे हो रहे थे, कामदेवके बाणोंके समान थे, कोई कहती है—हे प्रिय, मैं तुममें अनुरक्त हूँ, आजकी रात, दुःखमें कटी है। कोई कहती है—हे प्रिय, तुम मेरे बालोंको बाँध दो। मेरा मालतीके फूलोंसे बँधा हुआ चूड़ापाश गिर रहा है। कोई कहती है, 'लो मेरा मुँह चूम लो और किसी दूसरेको प्रति वचन मत दो'। कोई उन्हें नहीं छोड़ती है, और कहती है कि कुछ भी बुरा मत करना। मैंने अपना घर, धन और चित्त सब कुछ तुम्हें सौंप दिया।

कामदेव बाहुबलिके प्रति नगर-वनिताओंके ये उद्गार, हमें भी प्रसिद्ध हिन्दी कवि सूरदासकी गोपियोंकी याद दिला देते हैं, कि जब वे कृष्णकी वंशी की टेर सुनकर, आर्यपथकी जरा भी परवाह न करते हुए, चल देती हैं। इसमें सन्देह नहीं यह स्पष्टतः आर्यमर्यादाका उल्लंघन था। परन्तु सामाजिक दृष्टिसे जो मर्यादाएँ उचित होती हैं आध्यात्मिक दृष्टिसे वे कभी-कभी त्याज्य हो उठती हैं। यहाँ गोपियाँ, आत्माकी प्रतीक हैं, और कृष्ण ब्रह्म के। दोनोंकी लीलाके गानका उद्देश्य मनुष्य रागचेतनाको भावनाके स्तर पर आन्दोलित कर व्यापक बनाना है। कृष्णकी यह विशेषता है कि वे लीलाओंमें भाग लेते हुए भी तटस्थ हैं।

बाहुबलिको देखकर नगर-वनिताएँ अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करती हैं, पर वह स्वयं तटस्थ हैं। यह राग-चेतनाके आलम्बनका चित्रण है, इसके आधारपर यह नहीं कहा जा सकता कि नगर-वनिताएँ हीन चरित्र की थीं। हिन्दी कवि जायसी रतनसेन और पद्मावतीके जिस प्रेमाख्यानको अपने काव्य 'पद्मावत' का आधार बनाते हैं उसका अपभ्रंश कथा-काव्योंके उद्देश्य और रचना प्रक्रियासे कोई सम्बन्ध नहीं।

जिनभक्ति

'नाभेयचरित' का सबसे प्रमुख स्वर है 'जिनभक्ति'। जब कवि कहता है कि उसका यह चरित-काव्य धर्मके अनुशासनसे भरा हैं, तो इस धर्म अनुशासनमें भक्तिका स्थान महत्त्वपूर्ण है। यह भक्ति कविका अपना आविष्कार नहीं है, वह परम्परासे प्राप्त है फिर भी उसमें अभिव्यक्तिकी मौलिकताके साथ कविकी निजी अनुभूति भी है। मंगलाचरण और स्तुतिके अवतरणोंका उल्लेख न करते हुए—यहाँ केवल कविकी अनुभूतिसे सम्बद्ध भक्तिके प्रसंगोंका विचार किया जायेगा।

शेषनाग धरणेन्द्र, "आदिनाथके विभिन्न नामोंकी व्याख्या करता हुआ कहता है :—

'भव विणासी भवो सिष पयासी सिवो
चित्ततमहोइणो दोस विजयी जिणो
पावहारी हरो तं पराणं परो
देव देवो तुमं ताहि दीणं ममं
णिग्गुणो णिद्धणो दुम्मई णिग्घिणो
परहरावासओ गहिय परगासओ
माणओ मेच्छहो रोहिओ रिच्छओ
जाय ओ हे भवे णारओ रउरवे
तुम्ह पडिकूलिमा जा कया सा कमा
एम भुत्ता भए आसि काले गए ॥' 8/8

हे आदि जिन, आप भव (संसार) का नाश करनेवाले भव हैं। शिवको प्रकाशित करनेवाले शिव हैं, चित्तके अन्धकारके लिए सूर्य हैं, दोषोंको जीतनेवाले जिन हैं, पापोंका हरण करनेवाले हर हैं, तुम श्रेष्ठोंमें श्रेष्ठ हो, हे देवदेव, मुझ दीनको बचाओ, निर्गुण निर्धन दुर्मति निर्घृण, मैं, पर गृहमें निवास करनेवाला, और दूसरोंका अन्न खानेवाला। मैं जन्मान्तरोंमें मनुष्य म्लेच्छ रोहित, और रीछ हुआ हूँ, मैं संसार और रौरव नरकमें गया हूँ। हे देव, मैंने जो तुमसे प्रतिकूल आचरण किया है, उसका फल मैंने पा लिया है बीते समयमें।

धरणेन्द्र पाताल लोकका स्वामी है, और वह ऋषभके दोनों सालोंको विजयार्द्ध पर्वतकी समृद्ध श्रेणियाँ प्रदान करता है। ऐसी स्थितिमें उसका यह कहना कि मैं दूसरेके घरमें रहता हूँ, दूसरेका दिया खाता हूँ, "तो यह कविके जीवनका निजी सन्दर्भ है, जिसे वह धरणेन्द्रके मुखसे कहलाता है। इस समय कवि मन्त्री भरतके घरमें रह रहा है।"

दार्शनिक दृष्टिसे जैनधर्ममें भक्तिका महत्त्व दूसरे स्थान पर है, क्योंकि सृष्टि अनादि निधन है, जीव स्वयं अपना कर्त्ता-भोक्ता है, तीर्थंकर उसमें कुछ नहीं कर सकते। इस तथ्यसे जैन दार्शनिक परिचित थे, फिर भी यदि वे भक्ति करते हैं तो उसका कारण यह है कि ऐसा करना उनका स्वभाव है!

जो पइं सेवइ तहु होइ सोक्खु तुह पडिकूलहु संभवइ दुक्खु
तुहुं पुणु दोहिं मि मज्झत्थभाउ इह एहउ फुडु वत्थुहि सहाउ

णिंदिज्जइ रवि पित्ताहिएहिं	चंदु वि वाएण विवाइएहिं
ते दोण्णि वि एयहं किं करंति	ससहावें णहयलि संचरंति
ससि सूरोसहि संधाउ जेम	भुवणो वयारि जिण तुहुं मि तेम।
सरु दूसिवि जो ण वि पियइ वारि	तहु तण्हइ णिवडइ तिव्वमारि"
जो रसइ तासु तिसणासु सज्जु	सरवरहु ण एण ण तेण कज्जु"
जिह 'गरुलमंतु' गरलंतयारि	तिह तुहुं वि सहावें दुरियहारि ॥"10/1

इन्द्र कहता है—"हे स्वामी, जो तुम्हारी सेवा करता है, उसे सुख होता है, तुमसे जो प्रतिकूल है उसको दुःख होता है। परन्तु आप दोनोंमें मध्यस्थ हैं। इस संसारमें यही वस्तुका स्वभाव है।

पित्तकी अधिकतावाले सूर्यकी निन्दा करते हैं और वायुविकारसे पीड़ित लोग चन्द्रमा की। लेकिन ये दोनों (सूर्य और चन्द्रमा) इनका क्या करते हैं ? वे तो स्वभावसे आकाशमें विचरण करते हैं। चन्द्रमा और सूर्यके औषधि-संघातकी तरह, हे जिन आप भुवनका उपकार करते हैं। लेकिन जो सरोवरको दोष लगाकर उसका पानी नहीं पीता वह प्याससे तड़पकर मर जाता है। परन्तु जो पानी पी लेता है, उसकी प्यास शीघ्र मिट जाती है। सरोवरका न इससे मतलब और न उससे। जिस प्रकार गरुड़मन्त्र स्वभावसे विषका अपहरण करता है, उसी प्रकार हे जिन, आप स्वभावसे पापका अपहरण करनेवाले हैं।" इस प्रकार यद्यपि जिन भगवान्, सुख-दुखके प्रति मध्यस्थ हैं। उन्हें दुनियावालोंके सुख-दुखसे कुछ नहीं लेना-देना, फिर भी यदि उनके प्रति अनुकूलता रखनेवाले सुख और प्रतिकूलता रखनेवाले दुःख पाते हैं, तो ऐसा नहीं है कि इससे उनकी मध्यस्थता भंग होती है, और ऐसा भी नहीं है कि लोगोंको सुख-दुखकी सापेक्ष अनुभूति नहीं होती। कवि सूर्य-चन्द्रमा और सरोवरके उदाहरणोंके द्वारा दोनोंमें (आराध्यकी तटस्थता और आराधककी सुख-दुख प्राप्तिके बीच) तारतम्यका सूत्र स्थापित करता है। यह सूत्र है स्वभाव। चन्द्रमा-सूर्य और सरोवरका काम है प्रकाश और पानी देना; इसके अतिरिक्त यदि लोग उनसे कुछ और ग्रहण करते हैं तो यह उनका स्वभावगत दोष है। प्रश्न है कि जब मनुष्यका स्वभाव ही उसके सुख-दुखके लिए उत्तरदायी है तो फिर जिनवरकी भक्ति करनेसे क्या लाभ ? स्वभावकी भक्ति करनी चाहिए ? बात ठीक है ? स्वभावकी भक्तिके लिए भी उसकी पहचान जरूरी है। जिनवरका स्वरूप आत्माके इसी सहज स्वभावकी पहचान कराता है। यहाँ सुखका तात्पर्य आत्म-सुख है ? जिनभक्तिसे भौतिक सुखकी आशा करना व्यर्थ है। जिनेन्द्रका स्वभाव पापोंका अपहरण करना है, पापोंके अपहरणका अर्थ है रागचेतनासे अलिप्तता। जब व्यक्ति रागचेतनासे दूर होता है तो उसकी पुण्य-पापकी भौतिक इच्छाएँ स्वतः शान्त हो जाती हैं और वह आत्माके सहज स्वरूपको जान सकता है ? इस प्रकार भक्ति—सहज आत्म-स्वरूपकी पहचानका निमित्त कारण है। पुत्र, भरत चक्रवर्ती, अपने पिता ऋषभ जिनकी भक्ति करता हुआ कहता है कि जीवनकी सार्थकता जिनेन्द्रभक्तिमें है।

जय भासिय एयाणेय भेय	जय णग्ग णिरंजण णिरुवमेय
सकमत्थइं कम कम लाइं ताइं	तुह तित्थु पसत्थु गयाइं जाइं
णयणाइं ताइं दिट्ठोसि जेहिं	सो कंठु जेण गायउ सरेहिं
ते धण्ण कण्ण जे पइं सुणन्ति	ते कर जे तुह सेसणु करंति ॥
ते णाणवन्त जे पइं मुणन्ति	ते सुकइ सुयण जे पइं थुणन्ति
तं कव्वु चेव जं तुज्झु रइउ	सा जीह जाइ तुह णाउं लइउ
तं मणु जं तुह पयपोम लीणु	तं धणु जं तुह पूयाइ खीणु।
तं सीसु जेण तुहुं पणविओसि	ते जोइ जेहिं तुहुं झाइयोसि।

तं मुहुं जं तुह संमुहउं थाइ   विवरंमुहुं कुच्छिय गुरुहुं जाइ
तेल्लोक्क ताय तुहुं मज्झु ताउ   धण्णेहिं कहिं मि कह कह विणाउ। 10/7

एकानेक भेदोंको बतानेवाले आपकी जय हो; हे नग्न निरंजन और अनुपमेय आपको जय हो; वे ही चरणकमल हैं जो आपके प्रशस्त तीर्थ तक जाते हैं? वे ही नेत्र सफल हैं जिन्होंने आपको देखा है; वही कण्ठ कण्ठ हैं जिसने आपका गान किया है। वे ही कान धन्य हैं जो आपको सुनते हैं; वे ही हाथ हाथ हैं, जो आपकी सेवा करते हैं। वे ही ज्ञानी हैं जो आपको गुनते हैं, वे ही सुजन कवि हैं जो आपकी स्तुति करते हैं; हे देव, वही काव्य है जो आपके लिए रचित है, वही जीभ है जिसने तुम्हारा नाम लिया, वह मन है जो तुम्हारे चरण कमलोंमें लीन है। वही धन है जो तुम्हारी पूजामें क्षीण है। वही शिष्य है जिसने तुम्हें प्रणाम किया है; वे ही योगी हैं जिन्होंने तुम्हारा ध्यान किया है; वही मुख है जो आपके सम्मुख स्थित है। गुरुसे विमुख मुख कुत्सित हो जाता है।

हे त्रिलोकपिता, तुम मेरे पिता हो; मैं धन्य हूँ कि किसी प्रकार आपका नाम ले पाता हूँ? 'धण्णे हिं' की जगह, धण्णों हं, पाठ उचित है।

इस प्रकारके उद्‌गार, यद्यपि पुष्पदन्तके पूर्व मिलते हैं, परन्तु यहाँ इनका उल्लेख, महापुराणमें वर्णित भक्तिके समग्र स्वरूपको देखनेके लिए है।

जिनके नामकी महिमा बताता हुआ भरत चक्रवर्ती कहता है:

"हे आदिजिन, आप सिद्ध, मन्त्र और सिद्धौषधि हो, तुम्हारा नाम लेनेसे साँप नहीं काटता; आपके नामसे मतवाला हाथी भाग जाता है। आपके नामसे आग नहीं जलाती; शत्रुसेना अस्त्ररहित होकर डर जाती है, तुम्हारा नाम लेनेसे शत्रुओंको सन्तुष्ट करनेवाली शृंखलाएँ टूट जाती हैं। तुम्हारे नामसे नर समुद्र तर जाता है, और क्रोध और दर्पकी ज्वाला शान्त हो जाती है, हे केवल किरण रवि, तुम्हारे नामसे रोगसे पीड़ित नीरोग हो जाते हैं।" 10/8

ये उद्‌गार आराध्य की महिमा और लोकोत्तर महिमामूलक विश्वास पैदा करनेके लिए हैं, यह विश्वास आत्म-विश्वासका जनक है, यही वह विश्वास है जो व्यक्तिको शक्ति, उत्साह और प्रेरणा देता है।

छोटे छन्दमें एक स्तुति देखिए:

जय सयल   भुवणयल।
मल हरण   इसि सरण।
वर चरण   समधरण।
भव तरण   जरमरण।
परि हरण   जय वरुण। 1/37

प्रकृतिचित्रण

प्रकृतिचित्रणके स्वरूप और उसके प्रकारोंके विषयमें हिन्दी आलोचकोंकी धारणा भ्रमपूर्ण है। काव्यका मुख्य उद्देश्य मनुष्यकी अनुभूतियोंको अभिव्यक्त करना है। प्रकृति भी मनुष्यकी अनुभूतियोंको प्रभावित करती है। कभी प्रत्यक्ष रूपमें और कभी अप्रत्यक्ष रूपमें। कभी वह, सीधे भावोंको जन्म देती है, और कभी उत्पन्न भावोंको संचरित करती है। वैसे तो मनुष्य प्रकृतिकी गोदमें खेल-कूदकर बड़ा होता है, लेकिन जहाँ तक काव्यका सम्बन्ध है, मनुष्य और प्रकृतिको जोड़नेवाला तत्त्व है 'समय'। समयके विभिन्न प्रभाव और प्रतिक्रिया प्रकृतिमें विविध दृश्योंकी रचना करते हैं और मनुष्य-हृदयमें विविध भावोंकी। समयका यह प्रभाव ही कविके भावसे प्रकृतिके दृश्यको जोड़ता है। उक्त कारणोंसे प्रकृतिके दो रूप स्पष्ट हैं—एक आलम्बन

और दूसरा उद्दीपन। कभी-कभी यथातथ्य और अलंकृत रूपमें भी प्रकृतिका चित्रण होता है। अलंकार या नारीकरण रूपमें प्रकृतिचित्रण, प्रकृतिका वर्णन नहीं माना जा सकता। महापुराणमें देशकी भौगोलिक स्थितिके वर्णनके साथ प्रकृतिका अलंकृत और यथातथ्य वर्णनके रूपमें प्रकृतिका चित्रण मिलता है।

जैसे मगधदेशके परिचयमें उसकी प्राकृतिक स्थितिका चित्रण है :

"जहाँ नवपल्लवोंसे सघन कुसुमित और फलित नन्दन वन है, जहाँ घूमती हुई काली कोयल ऐसी मालूम होती है, मानो वनलक्ष्मीके काजलका पिटारा हो। उड़ती हुई भ्रमरमाला ऐसी प्रतीत होती है जैसे श्रेष्ठ इन्द्रनीलमणिकी मेखला हो, सरोवरमें उतरी हुई हंसपंक्ति ऐसी मालूम होती है, मानो सज्जन पुरुषकी चलती-फिरती कीर्ति हो, हवासे प्रेरित जल ऐसे मालूम होते हैं जैसे रविके द्वारा सोखे जानेके भयसे काँप रहे हों। जहाँ कमलोंका लक्ष्मीके साथ स्नेह है और चन्द्रमाके साथ विरोध है, यद्यपि वे दोनों समुद्रसे उत्पन्न हुए हैं, परन्तु जड़ (जल) लोग इस तथ्यको नहीं जानते।"

"अंकुराइं णवपल्लवघणाइं कुसुमिय फलियइं णंदणवणाइं।
जहिं कोयल हिंडइ कसण पिंडु वण लच्छिहे णं कज्जल करंडु।
जहिं उड्डिय भमरावलि विहाइ पवरिंदणील मेहलिय णाइ।
ओयरिय सरोवरि हंसपंति चलधवलवाइं सप्पुरुष किंत्ति।
जहिं सलिलइं मारुय पेल्लियाइं रवि सोस भएण व हल्लियाइं।
जहिं कमलहं लच्छिइ सहुं सणेहु सहुं ससहरेण बड्ढउ विरोहु।
किर दो वि नाइं महणुब्भवाइं जाणंति ण तं जणु संभवाइं।" 1/12

मगध देशकी प्रकृतिका यह वर्णन, अलंकृत शैलीमें है। उसमें प्रकृतिके सौन्दर्यका वर्णन प्रकृतिके उपकरणोंके द्वारा ही है। यदि सरोवरमें तैरती हुई हंसपंक्ति सज्जनकी कीर्तिकी तरह है, तो वहीं, पानी इसलिए काँप रहा है कि सूर्य अभी उसे सोख लेगा। जड़ लोगोंका स्वभाव यह है कि वे अपने मतलबसे प्यार करते हैं, लक्ष्मी और चन्द्रमा दोनों समुद्रसे उत्पन्न हैं, परन्तु कमलोंका लक्ष्मीसे स्नेह है और चन्द्रमासे विरोध।

डूबते हुए 'सूरज' का कवि उत्प्रेक्षाके द्वारा यह बिम्ब उभारता है :

रवि अत्थ सिहरि संपत्तु ताम
रत्तउ दीसइ णं रइहि णिलउ णं वरुणासा वहु घुसिण तिलउ
णं सग्ग लच्छि माणिक्कु ढलिउ रत्तुप्पलु णं णह-सरहु घुलिउ
णं मुक्कउ जिणगुणमुद्धएण णिय राय पुंजु मयरद्धएण
अद्धद्धउ जलणिहि जलि पइट्ठु णं दिसि कुंजर कुंभयलु दिट्ठु IV/15

इतनेमें सूर्य अस्ताचलपर पहुँच गया, वह ऐसा लगता है मानो रतिका घर हो, मानो पश्चिम दिशा-रूपी वधूका केशर तिलक हो, मानो स्वर्गकी लक्ष्मीका माणिक्य ढल गया हो। मानो आकाशके सरोवरसे रक्तकमल गिर गया हो, मानो जिनवरके गुणोंमें अनुरक्त होकर कामदेवने अपना रागसमूह छोड़ दिया हो, मानो समुद्रके जलमें आधे डूबे हुए दिशारूपी हाथीका कुंभस्थल हो।

ठीक सूर्यास्तके बाद चन्द्रमा उगता है :

णं पोमाकर यलल्हसिउ पोमु णं तिहुयण सिरि लायण्णधामु
सुर उब्भव विषम समावहारु तरुणि थल विलुलिय सेयहारु
णं अमिय बिंदु-संदोहु कंदु जस वेल्लिहि केरउ णाइं कंदु IV/16

मानो लक्ष्मीके हाथसे कमल छूट पड़ा हो, मानो त्रिभुवनकी लक्ष्मीके सौन्दर्यका घर हो, मानो सुरतिसे उत्पन्न विषम श्रमका परिहार हो, मानो युवतीजनोंके स्तनपर आन्दोलित श्वेतहार हो। मानो अमृत बिन्दुओं-का सुन्दर समूह हो, मानो यशरूपी लताका अंकुर हो।

पुष्पदन्तको प्रकृतिका ऐसा संश्लिष्ट चित्रण बहुत पसन्द है जिसमें प्रकृतिकी पृष्ठभूमिमें जिनवर ऋषभ तपस्या कर रहे हैं, इसमें श्लेषका चमत्कार है :—

गिरि सोहइ चुय महु आसवेहिं   जिणु सोहइ रुद्धहिं आसवेहिं
गिरि सोहइ वियलियणिज्झरेहिं   जिणु सोहइ कम्महुं णिज्जरेहिं 37/19

किसी अशुभ प्रसंगके प्रारम्भका आभास कवि सूर्यास्तसे देता है। भरत बाहुबलिमें सन्धिवार्ता असफल होनेपर दोनों पक्षोंमें युद्धकी तैयारी होने लगती है, इसी बीच सूर्य घपसे डूब जाता है :

कविकी कल्पनाः—

ता परिल्हसिउ दिणमणी णं सिरोमणी गयणकामिणीए।
अत्थं पडिणिवेइओ रुइ विराइओ णाइ जामिणीए॥

तब दिनमणि (सूर्य) इस प्रकार खिसक गया जैसे आकाशकी लक्ष्मी यामिनीने कान्तिसे युक्त अपना शिरोमणि अस्तको निवेदित कर दिया हो। दिवसके प्रवेशका निषेध कर दिया गया।

"मा वेसहि भणेवि अइरत्तउ   दिवसहु दिण्णु दीवु सिहितत्तउ
णं चउ पहरहिं वणु अहिकंतिहि   जायउ लोहियद्दु णहदंतिहि
णाइं पवाल कुंभु दिसणारिइ   धरिवि मुक्कु दिक्करिणियारिइ
पउलिवि तलिवि दलिवि दलवट्टिवि   जीवरासि जगभायणि घट्टिवि।
उग्घाडिवि ससहर मुह णिद्धहि   संमुहियहि तियसासामुद्धहि
णं सिंदूर करंडु झसच्छिइ   दाविउ लवण जलहि जललच्छिइ।
मयरंदुल्लोलु व जगकमलहु   णिउ वाएण वरुणमुहकमलहु
गोमिणीइ हरिरइरसभरिउ   पोमरायवत्तु व वीसरिउ।
अत्थमियउ जाइवि अवरासइ   रत्तु मित्तु णंगिलियउ वेसइ॥

पुणु दीसइ संझारायएण भुवणु असेसु वि रत्तउ
सहुं गिरि दरिसरि णंदणवणहिं लक्खारसिणं घित्तउ" ॥23॥

तुम प्रवेश मत करो ऐसा कहकर मानो दिवसके लिए अत्यन्त रक्त और शिखाओंसे सन्तप्त दीप दे दिया गया। मानो अत्यन्त कान्तिवाले आकाशरूपी गजके चारों प्रहर (प्रहार और प्रहर) के कारण वन रक्तसे लाल हो गया, मानो दिग्गजकी पत्नी दिशारूपी नारीके द्वारा प्रवालघट ग्रहण कर छोड़ दिया गया है, मानो विश्वरूपी पात्रमें जीवराशिको (कि जो दण्डविहीन जनोंके लोहूसे आरक्त है) काटकर, तलकर, कूट-पीसकर दिशापथोंमें उसी प्रकार छितरा दिया गया जैसे कालके द्वारा अण्डा फेंक दिया गया हो। जिसकी आँखें मछलीके समान हैं, लवण समुद्रकी ऐसी लक्ष्मीको अपना सिन्दूरका पिटारा दिखाया हो मानो विश्वरूपी कमलके परागके उच्छलनकी वायु ले गया हो, मानो गोमिनीके द्वारा फेंका गया कृष्णके क्रीड़ारससे भरा हुआ पद्मराग मणिका पात्र हो। सूर्य पश्चिम दिशामें जाकर डूब गया, मानो अपने अनुरक्त मित्रको वेश्याने निगल लिया हो। फिर अशेष भुवन सन्ध्यारागसे आरक्त हो गया॥

'सन्ध्याराग' के प्रति कविका विशेष मोह रहा है। इस शब्दका उल्लेख उसने कई बार किया है। सन्ध्याराग कविकी कल्पना कई रंगोंमें रँगती है।

संझारायजलणु जो भमियउ सो तमजल कल्लोलहिं समियउ
संझाराय घुसिणु जं संकिउ तं तमोह मयणाहें ढंकिउ
संझारायविडंवि जो फुल्लिउ सो तमसंवेरवइ पेल्लिउ
चंदमइंदें तमकरि भग्गउ किं जाणहुं सो तासु जि लग्गउ ।
मयणिहेण दीसइ सुहयारउ तप्पवेसु वइरिहिं भल्लारउ
विसइ गवक्खहिं थणचलि घोलइ वहुहारु व ससि लेउ णिहालइ
रंधायारु वियउ अंधारइ दुद्ध संक पयणइ मज्जारइ
रइ-पासेय बिंदु तेणोज्जलु दिट्ठ भुयंगहिं णं मुत्ताहलु ।
दिट्ठउ कत्थइ दीहायारउ घरि पइसंतउ किरणुक्केरउ
मोरें पंडरु सप्पु वियप्पिवि मुद्धें कह व ण गहिउ झडप्पिवि । 6/24

पश्चिम दिशामें जो सन्ध्याराग (सान्ध्य लालिमा) की आग लगी थी उसे अन्धकाररूपी जलने शान्त कर दिया, जो सन्ध्यारागरूपी केशरकी शंका की गयी थी उसे तम-समूहरूपी सिंह ने नष्ट कर दिया। सन्ध्यारागरूपी जो वृक्ष खिला हुआ था उसे अन्धकाररूपी गजराजने उखाड़ फेंका। चन्द्रमारूपी सिंहने अन्धकाररूपी गजको भगा दिया, क्या वही उसके घुटनोंमें लग गया ? मृगके बहाने वह सुन्दर दिखाई देता है, सफेद रूपमें वह शत्रुओंको सुन्दर दिखाई देता है, वह गवाक्षोंसे प्रवेश करता है, स्तनतलपर व्याप्त होता है और इस प्रकार शशिका प्रकाश वधूहारकी तरह जान पड़ता है। अन्धकारमें वह रन्ध्राकार दिखाई देता है, बिल्लीके लिए दूधकी आशंका उत्पन्न होती है, चाँदनीसे उज्ज्वल, पसीनेकी बूँद ऐसी मालूम होती है मानो साँपका मुक्ताफल हो। कहीं घरमें प्रवेश करता हुआ किरण-समूह सर्पके समान दिखाई देता है। भोला मयूर उसे सफेद साँप समझकर किसी प्रकार झटपट उसे पकड़ता भर नहीं।

उक्त अवतरणमें प्रकृति सौन्दर्य और अलंकार सौन्दर्य मिला हुआ है। सन्ध्यारागका आग बनना, अन्धकारका जल बनना, सन्ध्यारागपर केशरकी शंका, तो अन्धकारका सिंहकी भूमिका ग्रहण करना, सन्ध्यारागका वृक्षके रूपमें खिलना और अन्धकारका उसे गज बनकर उखाड़ना, यहाँ तक तो सन्ध्याराग और अन्धकारका संघर्ष है। उसके बाद जब चन्द्ररूपी सिंह अन्धकारके महागजको परास्त कर देता है, फिर अन्धकार और चन्द्रके मिले-जुले रूपके चित्र कवि अंकित करता है। अन्तमें चन्द्रमाका उद्दीपन रूप आता है। जो भ्रान्ति उत्पन्न करता है, सचेतन मानवोंको ही नहीं, पशुवर्गको भी।

इसके ठीक बाद दूसरा दृश्य प्रभातका है :

"ताम उग्गमिउ सूरु पुव्वासइ रइ-रंगु व दरिसिउ कामासइ
किंसुय कुसुम पुंजु णं सोहिउ णं जगभवणि पईउ पवोहिउ
चारु सूरु वंसहु णं कंदउ लोहिउ ससिरोसेण दिणिंदउ
मज्झु परोक्खइ आवइ पाविय कमलिणि वेल्लि भणिवि संताविय
एम भणंतु व गयणि व लग्गउ णं रयणियरहु पच्छइ लग्गउ ।" 16/26

इतनेमें पूर्व दिशामें सूर्य उग आया, कामाशाने उसे रतिरंगके समान देखा। वह ऐसा शोभित था जैसे टेसूके खिले हुए फूलोंका समूह हो। मानो विश्वरूपी भवनमें दीप प्रज्वलित कर दिया गया हो। मानो सुन्दर सूर्यवंशका अंकुर हो। दिनेन्द्र चन्द्रके रोषसे नाराज होकर लाल है कि यह पापी मेरे परोक्षमें आया तथा कमलिनीको बेल समझकर इसने सताया। ऐसा कहता हुआ वह उस चन्द्रमाके पीछे लग गया। चन्द्र और सूर्यके बीच टक्करके मूलमें सामन्तवादी रागचेतना है। जब पुराण युगके उदात्त नायकों (कुछ अपवाद छोड़कर) के वर्ग सुन्दर स्त्रीके लिए झगड़ते रहे हैं, तो आखिर सूर्य-चन्द्रमा भी प्रकृतिके उदात्त

नायक हैं। कवि भी प्रकृतिके कार्यकलापोंपर उसी भावनासे आरोप करता है जो उसके मनमें होती है, उसका मन भी युगमानसकी उपज होता है।

भरत-बाहुबलि संवाद और द्वन्द्व

भरत-बाहुबलि संवाद नाभेयचरितका सबसे अधिक हृदयस्पर्शी अंश है। बड़ा भाई भरत दिग्विजयके बाद अयोध्या लौटता है। उसका चक्र नगरीमें प्रवेश नहीं करता। क्योंकि अभी भरतकी दिग्विजय अधूरी है, अधूरी होनेका कारण बाहुबलि सहित उसके शेष निन्यानबे भाइयोंका भरतकी अधीनता न मानना है। भरत अपना दूत भेजता है। दूसरे भाई अधीनता माननेके बजाय जिनदीक्षा ग्रहण कर तप करने चले जाते हैं, परन्तु बाहुबलि अधीनता माननेसे इनकार कर देता है। द्वन्द्वका मूल कारण यही है। सेनाओंमें टकराहटको रोककर वृद्ध मन्त्री द्वन्द्व युद्धकी सलाह देते हैं। भरत युद्धमें हार जाता है। जीतकर भी बाहुबलि धरतीका भोग नहीं करता, वह जिनदीक्षा ग्रहण कर लेता है। कविने समूचे प्रसंगका सुकुमार और मार्मिक वर्णन किया है। भाषा अनुभूतिमयी और प्रसंगके अनुकूल है। चक्र अयोध्याकी सीमापर ठहर गया है, भरत चकित है कि ऐसा क्यों हुआ।

अक्क मियक्कउ बाहिरि थक्कउ णावइ दइवें खीलिवि मुक्कउ
णउ पइसइ पुरि चक्कु णिरुत्तउ सुहघरि णं अण्णाय विढत्तउ
माया णेह णि बंधणि मित्तु व पत्र दाणि पाविट्ठहु चित्तु व

"जैसे अतिक्रान्त सूर्य रुक गया, मानो देवने कीलकर छोड़ दिया, निश्चय ही चक्र नगरीमें प्रवेश नहीं करता। उसी प्रकार जिस प्रकार पवित्र घरमें अन्यायकी बढ़ती प्रवेश नहीं करती, जिस प्रकार परपुरुषसे अनुराग करनेमें सतीका चित्त प्रवेश नहीं करता।

इन चीजोंका प्रवेश जिस प्रकार असम्भव है, उसी प्रकार उस चक्रका प्रवेश असम्भव हो गया।

भरत दूत भेजता है, और वह बाहुबलिकी प्रशंसा करता है :

जय कुसुमाउह रइ रमणीवर अलि माला जीया संधिय सर
पई पेच्छिवि धोलइ उप्परियणु वियलइ णारिहि णीवीबंधणु
चिहुरभारु दिढबंधु वि पसिढिलु हवइ रयंघु सवइ सोणीयलु
रंभा णव रंभा इव डोल्लइ रइवाएं आहल्ल वि हल्लइ
देव तिलोत्तम तिलतिल खिज्जइ विरहें उव्वसि उव्वेज्जइ
मेणइ मीणि व थोवइ पाणिइ पिय संतप्पइ रवियर माणिइ

"हे रति रमणीके वर, हे अलिमालाकी प्रत्यंचापर सरका सन्धान करनेवाले कामदेव आपको देखकर स्त्रियोंके दुपट्टे हिल उठते हैं। स्त्रियोंकी नीवीकी गाँठ खुल जाती है, अच्छी तरह बँधा हुआ चिकुरभार ढीला पड़ जाता है, शुक्र निकलने लगता है और कटितल टपकने लगता है, नेत्रयुगल चलता और मुड़ता है; शरीरमें पसीना बढ़ने लगता है। रंभा नव-कदली वृक्षकी तरह काँप उठती है, और रतिकी हवासे वह अधिक हिल उठती है। हे देव! तिलोत्तमा आपके कारण तिल-तिल खिन्न हो उठती है। विरहमें उर्वशी उद्विग्न है। मेनका उसी प्रकार तड़प रही है जिस प्रकार थोड़े पानीमें मछली तड़प उठती है, भले ही वह पानी सूर्य-किरणोंसे सम्मानित हो!" इसके बाद जब दूत सन्धिकी बात करता है तो बाहुबलि भड़क जाता है :

बाहुबलिका दो-टूक उत्तर है—

"संघट्टमि लुट्टमि गयवडहु दलमि सुहड रणमग्गि ।
पहु आवउ रावउ महाबलु महु बाहुबलिहि अग्गइ ॥"

"मैं युद्ध करूँगा। महागजघटाको लोट-पोट करूँगा और युद्धके मार्गमें सुभटका संहार करूँगा।"

दूत लौटकर भरतसे कहता है :—

"विसमुदेउ बाहुबलि णरेसरु णेहु ण संधइ संधइ गुणि सरु
कज्जु ण बंधइ बंधइ परियरु संधि ण इच्छइ इच्छइ संगरु
पइं ण पेच्छइ पेच्छइ भुयबलु आण ण पालइ पालइ णिय छलु ।
माणु ण छंडइ छंडइ भयरसु दयवु ण चिंतइ चिंतइ पोरुसु
संति ण मण्णइ मण्णइ कुलकलि पुहइ ण देइ देइ बाणावलि ।" 26/21.

"हे देव ! बाहुबलि विषम राजा है, वह आपसे स्नेह नहीं जोड़ता, डोरीपर तीर जोड़ता है, वह काम नहीं साधता परिकर साधता है, सन्धि नहीं चाहता, युद्ध चाहता है, आपको नहीं देखता, अपने बाहुबलको देखता है, वह तुम्हारी आज्ञा नहीं पालता, अपना छल पालता है। वह मान नहीं छोड़ता भयरस छोड़ देता है, वह दैवकी चिन्ता नहीं करता, पौरुषकी चिन्ता करता है, वह शान्तिको नहीं मानता, कुलकलहको मानता है।"

दूतके इस प्रतिवेदनमें बाहुबलिके चरित्रके साथ पुष्पदन्तकी भाषाका चरित्र भी मुखरित है।

अपने हाथों अपने भाईकी पराजय देखकर बाहुबलि आत्मग्लानिसे भर उठता है, अपनेको कोसता हुआ वह कहता है :—

"चक्कवट्टि णियगोत्तहु सामिउ जेण महंत भाइ ओहामिउ
हा किं किज्जइ भुयबलु मेरउ जं जायउ सुहिदुण्णयगारउ
महि पुण्णालि व केण ण भुत्ती रज्जहु पडउ वज्जु समसुत्ती
रज्जहु कारणि पिउ मारिज्जइ बंधवहुं मि विसु संचारिज्जइ"

जिसने अपने गोत्रके स्वामी अपने बड़े भाईको पराजित किया (ऐसा मैं नीच हूँ) हा ! क्या किया जाये जो मेरा बाहुबल सज्जनके प्रति अन्यायकारी हुआ। इस धरतीरूपी वेश्याका भोग किसने नहीं किया, राजपर गाज गिरे, यह कहावत बिलकुल ठीक है, राज्यके लिए पिताको मार दिया जाता है, और भाइयोंको विष दे दिया जाता है, राज्यसत्ताके लिए पिता और भाइयोंकी हत्या केवल सामन्तवादकी ही विशेषता नहीं थी। वह प्रजातन्त्रमें भी है और रूप बदलकर चरित्र-हत्याके रूपमें जीवित है। बाहुबलिका दीक्षा-ग्रहण करना उनकी व्यक्तिगत समस्याका हल है, राष्ट्रीय समस्याका नहीं। भरत और बाहुबलिका द्वन्द्व उनका घरेलू मामला था। जबतक समाज और राष्ट्र है, तबतक राज्यका होना जरूरी है। क्योंकि अराजक जनपदमें मत्स्य न्यायका बोलबाला होता है। फिर भी बाहुबलिका दीक्षा-ग्रहण इस तथ्यका प्रतीकात्मक संकेत है कि राजनीतिक मूल्योंसे मानवीय मूल्योंका महत्त्व अधिक है। राज्यका उद्देश्य ऐसी व्यवस्था उत्पन्न करना है कि जिससे समाजमें मानवी मूल्योंकी प्रतिष्ठा हो। यहाँ एक प्रश्न यह उठता है कि अपने पिता ऋषभके जीवित रहते हुए भरतका सत्ता-विस्तारके लिए दिग्विजय करना, दूसरोंका राज्य हड़पना कहाँ तक उचित था ? भरत, ब्राह्मणवर्णकी स्थापना करनेके बाद जब ऋषभजिनसे यह पूछता है कि उसने यह उचित किया या अनुचित, तो ऋषभ उसके इस कार्यको बुरा बताते हैं, वे ब्राह्मणवर्णकी स्थापनाको नैतिक मूल्यों-के हितमें नहीं मानते। परन्तु वे भरतसे साम्राज्य विस्तारके लिए कुछ नहीं कहते। लेकिन जब 'बाहुबलि'

कहता है कि कुछ बलवान् उचक्के जनसुरक्षाके नामपर व्यूह बनाते हैं और एकको नेता बनाकर राष्ट्रका शोषण शुरू कर देते हैं—तो प्रश्न उठता है, बाहुबलि अपने भाईसे यह कह रहा है या 'पुष्पदन्त' अपने समयकी राजनीतिक लूट-खसोटकी आलोचना कर रहे हैं ? भरत जब हिमवान् पर्वतकी 'वृषभ' चोटीपर जाता है, तो उसपर वह अनेक राजाओंके नाम खुदे हुए देखता है।

मनुष्योंके द्वारा लिखित अक्षरों और दिवंगत राजाओंके हजारों नामोंसे वह वृषभ पर्वत चारों ओरसे आच्छादित था। भरत जहाँ देखता है, वहाँ वह पर्वत शिखरको नाम सहित पाता है। भरत सोचता है कि मैं अपना नाम कहाँ लिखूँ ?

"अण्णण्णहिं रायहिं भुत्तियइ इह एयइ वसुमइ धुत्तियइ
वोलाविय के के णउ णिवइ भोइंधहु मुज्झइ तो वि मइ
धण्णु परमेसरु एक्कु पर जो हुउ पव्वइयउ मुएवि धर" ॥ 15/6

एकके बाद एक राजाके द्वारा भोगी गयी इस धूर्त धरतीके द्वारा कौन-कौन राजा अतिक्रान्त नहीं हुए, फिर भी मोहसे अन्धे व्यक्तिकी मति भ्रमित होती है, लेकिन एक परमेश्वर ऋषभ धन्य है कि जिसने धरतीका त्याग कर संन्यास ग्रहण किया। पुरोहित भरतसे कहता है :

"परु फेडवि जिह घेप्पइ पुहइ तिह णामु वि फेडिज्जइ णिवइ" ॥ 15

हे राजन् ! जिस प्रकार दूसरेको नष्ट कर धरती ग्रहण की जाती है, उसी प्रकार नाम भी नष्ट कर (अपना नाम लिखा जाता है) भरत और पुरोहितका यह संवाद विश्वके राजनीतिक इतिहासका प्रतीक विश्लेषण है। भारतीय सन्दर्भमें देखा जाये तो हिमालय पर्वतके वृषभ पर्वतपर अंकित नामाक्षरोंसे लेकर दो साल पूर्व लाल किलेमें गाड़े गये कालपात्र तक एक ही प्रवृत्ति सक्रिय दिखाई देती है—सत्ता और नाम-की भूख। जैन पौराणिक दृष्टिसे ऋषभ और भरतके बीच राजाओंके होनेका प्रश्न नहीं उठता। हाँ, पुष्पदन्तके समय तक भारतीय इतिहासमें कई राजवंशोंका उत्थान-पतन हो चुका था। अतः भरतके उक्त उद्‌गारोंको वस्तुतः पुष्पदन्तके समकालीन राजनीतिक और सामाजिक परिवेशमें देखा जाना चाहिए।

विषय-सूची

सन्धि १ ... २–२१

(१) ऋषभ जिनकी वन्दना। (२) सरस्वतीकी वन्दना। (३) कविका मान्यखेटके उद्यानमें प्रवेश और आगन्तुकोंसे संवाद। (४) राज्यलक्ष्मीकी निन्दा। (५) भरतका परिचय। (६) भरत द्वारा कविकी प्रशंसा और काव्य रचनाका प्रस्ताव। (७) कवि द्वारा दुर्जन निन्दा। (८) भरतका दुबारा अनुरोध और कविकी स्वीकृति। (९) कवि द्वारा अल्पज्ञताका कथन और परम्पराका उल्लेख। (१०) गोमुख यक्षसे प्रार्थना। (११) अज्ञानकी स्वीकृतिके साथ कवि द्वारा महापुराण लेखनका निश्चय। जम्बूद्वीप भरतक्षेत्र और मगध देशका चित्रण। (१२-१६) राजगृहका वर्णन। (१७) राजा श्रेणिकका वर्णन। (१८) उद्यानपालकी सूचना वीतराग परम तीर्थंकर महावीरके समवसरणका विपुलाचलपर आगमन और राजा श्रेणिकका वन्दना भक्तिके लिए प्रस्थान।

सन्धि २ .... २२–४५

(१) नगाड़ेका बजना और नगरवनिताओंका विविध उपहारोंके साथ प्रस्थान। (२) राजाका पहुँचना और देवों द्वारा समवसरणकी रचना। (३) राजा द्वारा जिनेन्द्रकी स्तुति, गौतम गणधरसे महापुराणकी अवतारणाके विषयमें पूछना। (४-८) गौतम गणधर द्वारा पुराणकी अवतारणा करते हुए काल द्रव्यका वर्णन। (९-११) प्रतिश्रुत कुलकरका जन्म। (१२) नाभिराज कुलकरकी उत्पत्ति, भोगभूमिका क्षय और कर्मभूमिका प्रारम्भ। (१३) मेघवर्षा, नये धान्योंकी उत्पत्ति। (१४) कुलकरका प्रजाको समझाना और जीवनयापनकी शिक्षा देना। (१५-१६) मरुदेवीके सौन्दर्यका वर्णन। (१७) नाभिराज और मरुदेवीकी जीवनचर्या, इन्द्रका कुबेरको आदेश। (१८) नगरके प्रारूपका वर्णन। (१९) कर्मभूमिकी समृद्धि। (२०) समृद्धिका चित्रण। (२१) नगरके वैभवका वर्णन।

सन्धि ३ .... ४६–६९

(१) इन्द्र द्वारा छह माह बाद होनेवाले भगवान्‌के जन्मकी घोषणा। (२) सुरबालाओंका जिनमाताकी सेवा और गर्भशोधनके लिए आगमन। (३) देवांगनाओं द्वारा जिनमाताका रूप चित्रण। (४) जिनमाताकी सेवा। (५) माताका स्वप्न देखना। (६) मरुदेव द्वारा भविष्य कथन। (७) रत्नोंकी वर्षा। (८) जिनका जन्म। (९) देवोंका आगमन और स्तुति। (१०) विभिन्न सवारियों पर बैठकर देवोंका अयोध्या आगमन। (११) माताको मायावी बालक देकर इन्द्राणीका बालकको बाहर निकालना; बालकको देखकर इन्द्रकी प्रशंसा। (१२) इन्द्रके द्वारा स्तुति; सुमेरुपर्वतपर ले जाना; पाण्डुशिलाके ऊपर सिंहासनपर विराजमान करना। (१३) सुमेरु पर्वत द्वारा प्रसन्नता व्यक्त करना। (१४) नाना वाद्योंके

साथ देवोंके द्वारा अभिषेक। (१५) स्नानके बाद अलंकरण। (१६) जिनका वर्णन। (१७) गन्धोदककी वन्दना। (१८) सामूहिक उत्सव (१९) स्तुति। (२०) विभिन्न वाद्योंके साथ इन्द्रका नृत्य; उसकी व्यापक प्रतिक्रिया। (२१) जिनशिशुको लेकर अयोध्या आना; उनका वृषभ नामकरण।

सन्धि ४ .... ७०–९१

(१) देवियों द्वारा बालकका अलंकरण; विद्याभ्यास और समस्त शास्त्रों और कलाओंका ज्ञान। (२) जिनका यौवनवय प्राप्त करना। (३) जिनकी स्तुति। (४-५) शैशव क्रीड़ा। (६) नाभिराज द्वारा विवाहका प्रस्ताव। (७) पुत्रकी असहमति और कामक्रीड़ा और विषयसुखकी निन्दा। (८) चारित्रावरण कर्मके शेष होनेके कारण ऋषभदेवकी विवाहकी स्वीकृति; कच्छ और महाकच्छकी कन्याओंसे विवाहका प्रस्ताव। (९) विवाहकी तैयारी। (१०) मण्डपका निर्माण। (११) वाद्यवादन; कंकणका बाँधा जाना। (१२) वरवधू। (१३) कामदेवका धनुष तानना; वाद्य-वादन; कन्यादान। (१४) दोनों कन्याओंका पाणिग्रहण। (१५) सूर्यास्त होना। (१६) चन्द्रोदयका वर्णन। (१७) नाट्य प्रदर्शन। (१८) विभिन्न रसोंका नाट्य। (१९) सूर्योदय। ऋषभ जिन राज्य करने लगे।

सन्धि ५ .... ९२–११५

(१) यशोवतीका स्वप्न देखना। (२) स्वप्नफल पूछना। (३) गर्भवती होना; पुत्रजन्म। (४) चूड़ाकर्म और अलंकरण। (५) बालकका बढ़ना; सौन्दर्यका वर्णन; सामुद्रिक लक्षण। (६) रूप चित्रण और ऋषभ द्वारा प्रशिक्षण। (७-८) नीतिशास्त्रका उपदेश। (९-१०) क्षात्रधर्मकी शिक्षा। (११) राजनीतिशास्त्र। (१२) राज्य-परिपालनकी शिक्षा। (१३) अन्य पुत्रोंका जन्म। (१४) बाहुबलिका जन्म और यौवनकी प्राप्ति। (१५) प्रथम कामदेव बाहुबलिके नवयौवन और सौन्दर्यकी नगरवनिताओं पर प्रतिक्रिया। (१६-१७) नगर-वनिताओंकी चेष्टाएँ। (१८) ब्राह्मी और सुन्दरीको ऋषभ जिनका पढ़ाना। (१९) कल्प-वृक्षोंकी समाप्ति; ऋषभके द्वारा असि मसि आदि कर्मोंकी शिक्षा। (२०) उस समयकी समाज व्यवस्थाका चित्रण। (२१) गोपुरोंकी रचना। (२२) ऋषभ द्वारा धरतीका परिपालन।

सन्धि ६ .... ११६–१२७

(१-२) ऋषभ राजाके दरबार और अनुशासनका वर्णन। (३-४) इन्द्रकी चिन्ता कि ऋषभ जिनको किस प्रकार विरक्त किया जाये। (५-९) नीलांजनाको भेजना और संगीत शास्त्रका वर्णन। नीलांजनाका नृत्य करना और अन्तर्धान होना।

सन्धि ७ .... १२८–१५७

(१-१४) बारह उत्प्रेक्षाओंका कथन। (१५-१९) आत्मचिन्तन और लौकान्तिक देवों द्वारा सम्बोधन। (२०-२१) दीक्षाका निश्चय, और भरतसे राजपाट सम्हालनेका प्रस्ताव; प्रतिरोध करनेके बावजूद भरतको राजपट्ट बाँध दिया गया। (२२) सिंहासनपर आरूढ़ भरत और ऋषभनाथ। (२३) वाद्य गान और उत्सवके साथ अभिषेक। (२४) ऋषभ भगवान् द्वारा दीक्षा-ग्रहणके लिए प्रस्थान। (२५-२६) सिद्धार्थवनका वर्णन; दीक्षा ग्रहण करना।

सन्धि ८ ... १५८–१८१

(१) छह माहका कठोर अनशन। (२) दीक्षा लेनेवालोंका दीक्षासे विचलित होना। (३) उनकी प्रतिक्रियाओंका वर्णन। (४) दिव्यध्वनि द्वारा चेतावनी। (५) जिन दीक्षाका त्याग व अन्य मतोंका ग्रहण; कुछ घर वापस लौट आये। कच्छ और महाकच्छके पुत्रोंका आगमन; ध्यानमें लीन ऋषभ जिनसे धरतीकी माँग। (६) धरणेन्द्रके आसनका कम्पायमान होना। (७) धरणेन्द्रका आकर ऋषभ जिनके दर्शन करना; नागराज द्वारा स्तुति। (८) नागराज द्वारा ऋषभ जिनका मानव जातिके लिए महत्त्व प्रतिपादित करना; नागराजकी चित्तशुद्धि। (९) नागराजकी नमि-विनमिसे बातचीत। (१०) नागराज उन्हें विजयार्ध पर्वतपर ले गया। (११) विजयार्ध पर्वतका वर्णन। (१२) नमि-विनमिको विद्याओंकी सिद्धि। (१३) नागराजने विजयार्ध पर्वतकी एक श्रेणी नमिको प्रदान की। (१४) दूसरी श्रेणी विनमिको प्रदान की। (१५) पुण्यकी महत्ताका वर्णन।

सन्धि ९ .... १८२–२१७

(१) ऋषभ द्वारा कायोत्सर्गकी समाप्ति। (२) विहार। (३) श्रेयांसका स्वप्न देखना। (४) अपने भाई राजा सोमप्रभसे स्वप्नका फल पूछना। (५) ऋषभ जिनके आनेकी द्वारपाल द्वारा सूचना; दोनों भाइयोंका ऋषभ जिनके पास जाना। (६) श्रेयांसको पूर्वजन्मका स्मरण और आहारदानकी घटनाका याद आना। (७) विभिन्न प्रकारके दानोंका उल्लेख, (८) उत्तम पात्रके दानकी प्रशंसा। (९) राजा द्वारा ऋषभ जिनको पड़गाहना। (१०) इक्षुरसका आहार दान, (११) पाँच प्रकारके रत्नोंकी वृष्टि। (१२) भरत द्वारा प्रशंसा; आदि जिनका विहार; ज्ञानोंकी प्राप्ति (१३) पुरिमतालपुरमें ऋषभ जिनका प्रवेश। (१४) पुरिमतालपुर उद्यानका वर्णन। (१५) ऋषभ जिनका आत्म-चिन्तन। (१६) केवलज्ञानकी प्राप्ति। (१७-१८) इन्द्रका आगमन; ऐरावतका वर्णन। (१९) विविध सवारियोंके द्वारा देवोंका आगमन। (२०) देवांगनाओंका आगमन। (२१-२२) समवसरणका वर्णन। (२३) समवसरणमें आनेवाले विभिन्न देवोंका चित्रण। (२४) धूम्ररेखाओंसे शोभित आकाशका वर्णन। (२५) ध्वजोंका वर्णन। (२६) परकोटाओं और स्तूपोंका चित्रण; नाट्यशालाका वर्णन। (२७) सिंहासन और वन्दना करते हुए देवोंका वर्णन। (२८) आकाशसे हो रही कुसुमवृष्टिका चित्रण। (२९) देवों द्वारा जिनवरकी स्तुति।

सन्धि १० .... २१८–२३५

(१) इन्द्र द्वारा जिनवरकी स्तुति। (२) सिंहासनपर स्थित ऋषभ जिनवरका वर्णन; दिव्यध्वनि और गमनका वर्णन। (३) केवलज्ञान प्राप्त होनेके बाद ऋषभ जिनके विहारके प्रभावका वर्णन; मानस्तम्भका वर्णन। (४) विविध देवांगनाओंका जमघट। (५-८) ऋषभ जिनकी स्तुति। (९) ऋषभ जिनवर द्वारा तत्त्वकथन; जीवोंका विभाजन। (१०) जीवोंके भेद-प्रभेद; पृथ्वीकायादिका वर्णन। (११) वनस्पतिकाय और जलकाय जीवोंका वर्णन। (१२) दोइन्द्रिय-तीनइन्द्रिय आदि जीवोंका कथन। (१३) द्वीप समुद्रोंका वर्णन। (१४) जलचर प्राणियोंका वर्णन।

सन्धि ११ ... २३६–२७३

(१) संज्ञीपर्याप्त जीव। (२) विभिन्न योनियोंके जीव; उनकी आयु (३) भरत आदि क्षेत्रोंका वर्णन। (४) हरिक्षेत्रादि वर्णन। (५) हिमवत् पद्म सरोवरका वर्णन। (६) पद्म-महापद्म आदि सरोवरोंका वर्णन। (७) जम्बूद्वीपके बाहरके अन्तर्द्वीप और उनके जीवोंका वर्णन। (८) भवनवासी आदि देवोंका वर्णन। (९) पन्द्रह कर्मभूमियोंका वर्णन, मरणयोनिका वर्णन। (१०) कौन जीव कहाँसे कहाँ जाता है, इसका वर्णन। (११) जीवोंके एक गतिसे दूसरी गतिमें जानेका वर्णन। (१२) नरकवासका वर्णन। (१३) नरकोंके विभिन्न बिलोंका कथन। (१४-२०) नरककी यातनाओंका वर्णन। (२१-२२) पाँच प्रकारके देवोंका वर्णन। (२३) स्वर्गविमानोंका वर्णन। (२४) विविध प्रकारके देवोंका वर्णन। (२५) देवोंकी ऊँचाई आदिका चित्रण। (२६) विभिन्न स्वर्गोंमें कामकी स्थितिका वर्णन। (२७) सर्वार्थसिद्धिके देवोंका वर्णन। (२८) नरक देवभूमियोंमें आहारादिका वर्णन। (२९) योगवेद और लेश्याओंके आधारपर वर्णन। (३०) कर्मप्रकृतिके आधारपर ऊँच-नीच प्रकृतिका वर्णन। (३१) कषायोंकी विभिन्न स्थितियोंका चित्रण। (३२) पाँच प्रकारके शरीरोंका वर्णन। (३३) मोक्षका स्वरूप, आत्माकी सही स्थितिका चित्रण। (३४) सच्चे सुखके स्वरूपका वर्णन; वृषभसेन द्वारा शुभ भावका ग्रहण।

सन्धि १२ ... २७४–२९७

(१) भरतकी विजय यात्रा, शरद् ऋतुका वर्णन। (२) प्रस्थान। (३) राजसैन्यके कूचका वर्णन। (४) सैन्य सामग्रीका वर्णन, चौदह रत्नोंका उल्लेख। (५-७) भरतका प्रस्थान; सेनाके साथ जानेवाली स्त्रियोंकी प्रतिक्रिया; गंगानदीका वर्णन। (८) नदीको देखकर भरतका प्रश्न; सारथिका उत्तर, सेनाका ठहरना। (९) पड़ावका वर्णन। (१०) रात्रि बिताना, प्रातः पूर्व दिशाकी ओर प्रस्थान। (११) गोकुल बस्तीमें प्रवेश, वहाँकी वनिताओं पर प्रतिक्रिया। (१२) शबरबस्तीमें। (१३) भरतका दर्भासनपर बैठना। (१४) समुद्रका समर्पण। (१५) समुद्रका चित्रण। (१६) भरतका बाण। (१७) मागध देवका क्रुद्ध होना। (१८) मागधदेवका आक्रोश। (१९) भरतके बाणके अक्षर पढ़कर क्रोध शान्त होना। (२०) मागधदेवका समर्पण।

सन्धि १३ .... २९८–३११

(१) भरतका वरदाम तीर्थके लिए प्रस्थान। (२) उपसमुद्र और वैजयन्त समुद्रके किनारे राजाका ठहरना, सैन्यका श्लेषमें वर्णन, राजा द्वारा उपवास, कुलचिह्नों और प्रतीकोंकी पूजा। (३) सूर्योदय, धनुषका वर्णन। (४) धनुषका श्लिष्ट वर्णन। (५) वरतनुका समर्पण (६) भरत द्वारा बन्धनमुक्ति और पश्चिम दिशाकी ओर प्रस्थान, सिन्धुतटपर पहुँचना। (७) सिन्धुनदीका वर्णन (श्लेष में); भरतका डेरा डालना। (८) सन्ध्या और रातका वर्णन, सूर्योदय। (९) भरत द्वारा उपवास और प्रहरणोंकी पूजाके बाद लवण समुद्रके भीतर जाना; बाणका सन्धान करना, प्रभासका आत्मसमर्पण। (१०) विजयार्द्ध पर्वतकी ओर प्रस्थान; म्लेच्छोंपर विजय; विभिन्न जनपदोंको जीतकर विजयार्द्ध पर्वतके शिखरपर आरूढ़ होना; विजयार्द्धकी पराजय। (११) सेनाका पड़ाव; विन्ध्याके गजका नाश।

सन्धि १४ ३१२–३२७

(१) शशिशेखर देवका आगमन और निवेदन; भरत द्वारा गुहाद्वार खोलनेका आदेश; दण्डरत्नका प्रक्षेप। (२) गुहाद्वारका उद्घाटन होना; गुहाका वर्णन। (३-४) गुहादेवका पतन; भरतका चक्र भेजना और उसके पीछे सेनाका चलना। (५) गुहामार्गमें सूर्य-चन्द्रका अंकन, विभिन्न जातिके नागोंमें हलचल। (६) समुन्मग्ना और निमग्ना नदियोंके तटपर पहुँचना और सेतु बाँधना; सैन्यका पानी पार करना। (७) म्लेच्छकुलके राजाओंका पतन। (८) म्लेच्छ राजा द्वारा विषधरकुल नागोंके राजाको बुलाना। (९) म्लेच्छ राजाका प्रत्याक्रमणका आदेश, नागों द्वारा विद्याके द्वारा अनवरत वर्षा। (१०) चर्मरत्नसे रक्षा। (११) सेनाके घिरनेपर भरत द्वारा स्वयं प्रतिकार। (१२) मेघोंका पतन।

सन्धि १५ .... ३२८–३५१

(१) सिन्धु विजयके बाद राजाका ऋषभनाथके दर्शनके लिए जाना; हिमवन्तके लिए प्रस्थान। (२) हिमवन्तके कूटतलमें सेनाका पड़ाव। (३) भरत पक्षके द्वारा प्रक्षिप्त बाणको देखकर राजा हिमवन्त कुमारकी प्रतिक्रिया। (४) बाणमें लिखित अक्षर देखकर उसका समर्पण। (५) भेंट लेकर उसे विदा किया जाना। (६) भरतका वृषभ महीधरके निकट जाना; उसका वर्णन; उस पर्वतके तटपर अनेक राजाओंके नाम खुदे हुए थे; राज्यकी निन्दा। (७) भरतकी यह स्वीकृति कि राजा बननेकी आकांक्षा व्यर्थ है, फिर भी अपने नामका अंकन। (८) हिमवन्तसे प्रस्थान और मन्दाकिनीके तटपर ठहरना। (९) गंगाका वर्णन। (१०) गंगा देवी द्वारा भरतका सम्मान। (११) गंगाका उपहार देकर वापस जाना। (१२) सेना और नदीका श्लिष्ट वर्णन। (१३) विजयार्ध पर्वतकी पश्चिमी गुहामें प्रवेश। (१४) किवाड़का विघटन। (१५) मन्त्रियों द्वारा वहाँके शासक नमि-विनमिका परिचय। (१६) दोनों भाइयोंके द्वारा अधीनता स्वीकार। (१७) नमि-विनमि द्वारा निवेदन; भरत द्वारा उनकी पुनः स्थापना। (१८) सैन्यका प्रस्थान; गुहाद्वारमें प्रवेश; सूर्य-चन्द्रका अंकन। (१९) पर्वत गुफासे निकलकर कैलास गुफापर पहुँचना। (२०-२१) कैलास पर्वतका वर्णन। (२२) कैलासपर आरोहण। (२३) ऋषभ जिनके दर्शन। (२४) ऋषभ जिनकी स्तुति।

सन्धि १६ .... ३५२–३७९

(१) साकेतके लिए कूच, सैन्य के चलनेकी प्रतिक्रिया, अयोध्याके सीमाद्वारपर पहुँचना, स्वागतकी तैयारी। (२) चक्रका नगर सीमामें प्रवेश नहीं करना। (३-४) इस तथ्यका अलंकृत शैलीमें वर्णन; भरतके पूछनेपर राजाका इसका कारण बताना। (५) बाहुबलिके बारेमें मन्त्रियोंका कथन। (६) बाहुबलिकी अजेयताका वर्णन; भरतकी प्रतिक्रिया। (७) दूतका कुमारगणके पास जाना; कुमारगणकी प्रतिक्रिया। (८) भौतिक पराधीनताकी आलोचना। (९) भौतिक मूल्योंके लिए नैतिक मूल्योंकी उपेक्षा करनेकी निन्दा। (१०) कुमारोंका ऋषभके पास जाना, स्तुति और संन्यास ग्रहण; बाहुबलिकी अस्वीकृति। (११) दूतका भरतको यह समाचार देना; भरतका आक्रोश। (१२) भरतका दूतको सख्त आदेश। (१३) दूतका बाहुबलिके आवासपर जाना; पोदनपुरका वर्णन। (१४) दूतकी बाहुबलिसे भेंट। (१५) दूतके द्वारा बाहुबलिकी प्रशंसा; बाहुबलिका भाईके कुशल-क्षेम पूछना। (१६) दूतका उत्तर

और युक्तिसे भरतकी अधीनता माननेका प्रस्ताव। (१७) दूतके द्वारा भरतकी दिग्विजयका वर्णन। (१८) दिग्विजयका वर्णन, बाहुबलिका आक्रोश। (१९) बाहुबलिका आक्रोशपूर्ण उत्तर। (२०) दूतका उत्तर और भरतका अपराजेयताका संकेत। (२१) बाहुबलि द्वारा राजाकी निन्दा। (२२) दूतका भरतसे प्रतिवेदन। (२३) सूर्यास्तका वर्णन। (२४) सन्ध्याका चित्रण। (२५) रात्रिके विलासका चित्रण। (२६) विलासका चित्रण।

सन्धि १७ .... ३८०–३९७

(१) युद्धका श्रीगणेश; बाहुबलिका आक्रोश। (२) वनिताओंकी प्रतिक्रिया। (३) रणतूर्यका बजना; योद्धाओंका तैयार होना। (४) भरतके आक्रमणकी सूचना; बाहुबलिका आक्रोश। (५) बाहुबलिकी सेनाकी तैयारी। (६) योद्धाओंकी गर्वोक्तियाँ। (७) संग्राम भेरीका बजना। (८) मन्त्रियोंका हस्तक्षेप। (९) मन्त्रियोंका द्वन्द्व युद्धका प्रस्ताव। (१०) दृष्टि, जल और मल्ल युद्धके लिए सहमति। (११) दृष्टि युद्ध; भरतकी पराजय। (१२) जलयुद्ध; सरोवरका वर्णन। (१३) भरतकी पराजय। (१४) भरतका आक्रोश। (१५) बाहुयुद्ध; भरतकी हार। (१६) बाहुबलिकी प्रशंसा।

सन्धि १८ ... ३९८–४१५

(१) बाहुबलिका पश्चात्ताप। (२) राजसत्ता; संघर्षकी निन्दा; आत्मनिन्दा; संसारकी नश्वरता। कालसर्पका वर्णन। (३) भरतका उत्तर; भरत द्वारा बाहुबलिकी प्रशंसा। (४) भरतका पश्चात्ताप। (५) बाहुबलिका पश्चात्ताप। (६) बाहुबलिका ऋषभ जिनके दर्शन करने जाना; ऋषभ जिनकी संस्तुति; जिन दीक्षा और पाँच महाव्रतोंको धारण करना। (७) परिषह सहन करना। (८) घोर तपश्चरण। (९) भरतका ऋषभ जिनकी वन्दनाभक्तिके लिए जाना; स्तुतिके बाद बाहुबलिसे पूछना; भरतका बाहुबलिसे क्षमायाचना करना। (१०) बाहुबलिका आत्मचिन्तन और तपस्या; दश उत्तम धर्मोका पालन। (११) चारित्र्यका पालन; केवलज्ञानकी प्राप्ति। (१२) देवोंका आगमन। (१३) भरतका अयोध्या नगरीमें प्रवेश। (१४) भरतकी उपलब्धियाँ और वैभव। (१५) भरतकी ऋद्धिका चित्रण। (१६) विलास वर्णन।

●

कथासार

सन्धि १

आवश्यक मंगलाचरण, प्रारम्भिक परिचय और प्रतिज्ञाके अनन्तर कवि बताता है कि अन्तिम तीर्थंकर महावीरका समवसरण राजगृहके विपुलाचल पर्वतपर आता है। मगधराज श्रेणिक महावीरकी वन्दनाभक्ति करनेके लिए जाता है।

सन्धि २

समवसरणमें वन्दनाभक्तिके बाद राजा श्रेणिक गौतम गणधरसे पूछता है कि महापुराणकी अवतारणा किस प्रकार हुई। गौतम गणधर सृष्टिका संक्षिप्त वर्णन करते हुए बताते हैं कि भोगभूमिका क्षय होनेपर कर्मभूमि प्रारम्भ होती है। क्रमशः चौदह कुलकरोंका जन्म हुआ। अन्तिम कुलकर नाभिराज और मरुदेवीसे प्रथम तीर्थंकर ऋषभ जिनके जन्मके समय इन्द्रके आदेशसे कुबेरने अयोध्या नगरीकी रचना की।

सन्धि ३

अतिशय और चमत्कारोंके बीच ऋषभ जिनका जन्म होता है। इन्द्रके नेतृत्वमें देव सुमेरु पर्वतपर शिशु जिनका अभिषेक करते हैं। अनेक उत्सवोंके बाद शिशु माताको सौंपकर देवता चले जाते हैं।

सन्धि ४

धीरे-धीरे ऋषभ जिन शैशव क्रीड़ाएँ समाप्त करते हैं। पिताके अनुरोधपर ऋषभसे कच्छ और महाकच्छकी कन्याओं यशोवती और सुनन्दाका विवाह हुआ।

सन्धि ५

यशोवतीसे भरतका जन्म। बड़े होनेपर ऋषभ उसे ज्ञान-विज्ञान और कलाओंमें दीक्षित करते हैं। यशोवतीसे सौ पुत्र उत्पन्न हुए और एक कन्या ब्राह्मी। सुनन्दासे कामदेव, बाहुबलि और सुन्दरी। ऋषभ धरतीका सुशासन करते हैं। चूँकि उन्होंने कर्मभूमिके प्रारम्भमें इक्षुरसका पान करना सिखाया था अतः उनका कुल इक्ष्वाकुकुल कहलाया।

सन्धि ६

इन्द्र सोचता है कि ऋषभ भोग-विलासमें लीन हैं, यदि उन्होंने दीक्षा ग्रहण कर धर्मका उपदेश नहीं किया तो जैनधर्मका उच्छेद हो जायेगा। वह नीलांजनाको ऋषभके दरबारमें नृत्य करनेको भेजता है। नर्तकी नाचते-नाचते मृत्युको प्राप्त होती है। ऋषभ जिनको वैराग्य उत्पन्न हो जाता है।

सन्धि ७

वह बारह भावनाओंका चिन्तन करते हैं। भरतको शासन-भार देकर और परिवारसे विदा लेकर अनेक राजाओंके साथ दीक्षा ग्रहण करते हैं।

सन्धि ८

ऋषभ जिन छह माहका कठोर तपश्चरण करते हैं। उनके साथ जिन राजाओंने दीक्षा ग्रहण की थी वे उससे डिग गये। ऋषभ जिनके साले तथा महाकच्छ एवं कच्छ पुत्र नमि-विनमि जो कार्यवश बाहर गये हुए थे, आये और तलवार लेकर प्रतिमायोगमें स्थित ऋषभ जिनके सम्मुख खड़े हो गये। उनका कहना था कि उन्हें कुछ नहीं मिला जब कि दीक्षा लेते समय ऋषभ जिनने सारी धरती अपने पुत्रोंको बाँट दी। पाताल लोकमें धरणेन्द्रका आसन काँपता है, और वह वहाँ आकर ऋषभ जिनकी वन्दनाभक्ति करता है। बादमें धरणेन्द्र उन्हें विजयार्ध पर्वतपर ले जाकर उत्तर और दक्षिण श्रेणियाँ प्रदान करता है। वे दोनों विद्याधर श्रेणियाँ थीं। नमि-विनमि इसे ऋषभ जिनकी भक्तिसे उत्पन्न पुण्यका परिणाम मानते हैं।

सन्धि ९

छह माहके बाद ऋषभ जिन आहार ग्रहण करने जाते हैं। हस्तिनापुरका राजा श्रेयांस स्वप्न देखता है, वह अपने बड़े भाई कुरु राजा सोमप्रभसे स्वप्नका फल पूछता है। सोमप्रभ बताते हैं कि तुम्हारे घर कोई महान् आदमी आयेगा। द्वारपाल ऋषभ जिनके आनेकी सूचना देता है, दोनों भाई दर्शनके लिए जाते हैं। उसे पूर्वजन्मके स्मरणसे आहार देनेकी विधि ज्ञात हो जाती है। वह इक्षुरसका आहार देता है। देव रत्नोंकी वृष्टि करते हैं। ऋषभ जिन पुरिमताल उद्यानमें पहुँचकर तप करते हैं। उन्हें केवलज्ञान प्राप्त होता है। इन्द्र समवसरणकी रचना करता है।

सन्धि १०

ऋषभ जिन धर्मका कथन करते हैं। भरत समवसरणमें उपस्थित होता है।

सन्धि ११

ऋषभ द्वारा तिर्यंच जीवोंका कथन।

सन्धि १२

भरतका दिग्विजयके लिए प्रस्थान। उसे चौदह रत्नोंकी प्राप्ति होती है। वह गंगा नदीके तटपर पहुँचता है। गंगासे उपहार प्राप्त कर भरत पहाड़ोंके अन्तरालमें बसी घोष बस्तीमें जाता है। वहाँसे आगे बढ़ता है।

सन्धि १३

मगधराजको जीतकर वह दक्षिण द्वारके वरदामा तीर्थके लिए प्रस्थान करता है। वरतनुको जीतता है। सिन्धुनदीकी ओर कूच करता है।

सन्धि १४

विजयार्ध पर्वतकी विजय। म्लेच्छ मण्डलका पतन। आवर्त और किलातकी हार।

सन्धि १५

हिमवन्त पर्वतके लिए कूच। भरत महीधरपर अपना नाम अंकित करता है। उसमें उसने यह लिखा—"मैं कामका क्षय करनेवाले प्रथम तीर्थंकर ऋषभ जिनका पुत्र हूँ, नामसे भरत, जो धरतीका श्रेष्ठ भरताधिपति माना जाता है। मैंने हिमवन्तसे लेकर समुद्र पर्यन्त धरतीको स्वयं जीता है।" नमि और विनमि राजाओंसे भेंट। कैलास पर्वतपर जाकर वह ऋषभ जिनसे भेंट करता है।

सन्धि १६

दिग्विजयके उपरान्त भरत चक्रवर्ती अयोध्या वापस आता है। परन्तु उसका चक्र नगर सीमाके भीतर प्रवेश नहीं करता। कारण यह था कि बाहुबलि सहित भरतके सौ भाई उसके अधीन नहीं थे। भरत अपना दूत भेजता है। उसके सगे भाई, सांसारिक सुखोंके लिए अधीनता स्वीकार करनेके बजाय ऋषभ जिनसे दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। बाहुबलि न तो भरतकी अधीनता स्वीकार करता है और न दीक्षा ग्रहण करता है।

सन्धि १७

दोनोंमें युद्ध छिड़ता है। मन्त्री सेनाओंके युद्धको रोककर द्वन्द्व युद्धकी सलाह देते हैं। भरत तीनों युद्धोंमें हार जाता है।

सन्धि १८

बाहुबलि अपने बड़े भाईकी पराजयसे दुःखी हो उठते हैं। अनुतापके साथ वे भरतको समझाते हैं और उनसे क्षमा माँगते हैं। वह ऋषभ जिनके पास जाकर दीक्षा ग्रहण करते हैं। भरत राजपाट सँभालते हैं। कुछ समय बाद भरत ऋषभ जिनवरकी वन्दना करने जाते हैं। वह उनसे बाहुबलिको केवलज्ञान न होनेका कारण पूछते हैं। ऋषभ जिन बताते हैं कि मानकषायके कारण बाहुबलि मुक्तिसे वंचित है। भरत जाकर अपने भाईसे क्षमा याचना करते हैं। बाहुबलिको केवलज्ञान प्राप्त होता है। भरत अयोध्या वापस आकर अपना राज-काज देखते हैं।

●

शुद्धि-पत्र

	संधि	पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१.	२.१६.७	३९	४	कुम्भस्थलके समान	कुम्भस्थलपर
२.	९.१५.१४	१०८	३	हृदयका अपहरण	सुन्दर आँखोंवाली स्त्रियोंके हृदयका अपहरण
३.	,,	,,	९	शान्तिका	तृप्तिका
४.	,,	,,	१०	कोयल	कोयलकी तरह
५.	७.६.९	१३३	३	बारबार	खाया, धुना, घायल किया और गिराया जाता है बारबार
६.	१०.३.१२	२२१	९	भापाओं	भाषाओं
७.	११.३५.१५	२७३	१	जिसमें रत नक्षत्र पल्य ये लोग भरतके द्वारा पूज्य भी हैं	भरतके द्वारा पूज्य ग्रहनक्षत्र, जिन भगवान्‌में रत हैं
८.	१३.६.४	३०३	११	पूरित रहता है नाशका क्या वर्णन करूँ ?	पूरित किया करता है विस्तारका क्या वर्णन करूँ ?
९.	१३.११.१२	३११	१	उस अवसपर	उस अवसरपर
१०.	१४.८.१३	३२१	१	गिरिघाटी	गिरिघाटियों
११.	१४.१२.९	३२५	१	स्वयं बोध	स्वयं बोध लिया
१२.	१६.२५.१२	३७७	६	क्या जाने वह उसीको लग गया	क्या वही उसके जानुओं (घुटनों) को लग गया।

□

हिन्दी अनुवाद के कुछ संशोधन

कृपया सुधार कर पढ़ें

पृष्ठ पंक्ति	
२६–४–१०	सम्मत्त वियक्खड्डु—सम्यक्त्व से विचक्षण (सम्पन्न) ।
२२९–९–१५	आहारक शरीर किन्हीं विशेष मुनियोंके होता है ।
२३१–११–५	ये पर्याप्तक अपर्याप्तक तथा सूक्ष्म और स्थावर होते हैं'''साधारण प्रकार के वनस्पति जीवोंका श्वासोच्छ्वास और आहार साधारण होता है और प्रत्येक जीवोंका अलग-अलग होता है ।
२३३–१३	जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड, पुष्करवरद्वीप, वारुणीद्वीप, क्षीरवरद्वीप, घृतवरद्वीप, मधुइवर-द्वीप, नन्दीश्वरद्वीप, अरुणवरद्वीप, अरुणाभास, कुण्डलद्वीप, शंखवरद्वीप, रुचकवरद्वीप, भुजगवरद्वीप, कुशगवरद्वीप, क्रौंचवरद्वीप'''साधिक एक हजार योजनका विस्तारवाला पद्म (कमल) है । दो इन्द्रिय (शंख) बारह योजन लम्बा देखा गया है । तीन इन्द्रिय (चिऊँटी) तीन कोसका है । चार इन्द्रिय (भौंरा) एक योजन प्रमाणवाला है ।
२३५–१४	गंगा आदि नदियोंके प्रवेश मुखमें नौ योजनके होते हैं, तथा कालोद समुद्रमें नदी प्रवेश मुखमें १८ योजन और मध्य समुद्रमें छत्तीस योजन लम्बे होते हैं ।''''''
२३५–१४	जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा कही गई अवगाहना एक वालिस्त की होती है ।'''अंगुलके असंख्यातवें भाग होती है ।
२३७–	मनुष्य और तिर्यंचोंके छहों संस्थान होते हैं । मन्थर गमन करनेवाली चन्द्रमुखी स्त्री रत्नोंके शंखावर्तक योनि होती है ।
२३९–३	दक्षिण भरतका विस्तार पाँच सौ छब्बीस योजन है, उत्तरमें इतना ही विस्तार ऐरावत क्षेत्रका है । घत्ता—क्षेत्रसे चौगुना क्षेत्र और पर्वतसे चौगुना पर्वत है ।
२४१–५	उसके ऊपर पद्म सरोवरसे तीन रूपसे दुगुणा महापद्म नामका सरोवर है अर्थात् उसकी लम्बाई-चौड़ाई-गहराई पद्मसे दुगुनी है ।
२४३–४	रुचकगिरि और इष्वाकारगिरि हैं ।
२४३–७	घत्ता—वहाँ कोई एकऊरु धारी है ।
२४३–८–६	मरकर भवनवासी और व्यन्तर होते हैं ।
२४३–८–१२	कल्पवासी देवोंमें उत्पन्न होते हैं ।
२४५–१०–७	भार धारण करनेवाले अभव्य उपरिम ग्रैवेयकमें देव होते हैं ।
२४७–११–४	मच्छ और मनुष्य सातवें नरक तक जाते हैं ।
२४७–११–७	मनुष्य और तिर्यंच'''शलाका पुरुष नहीं हो सकते ।
२४९–१३–७	वहाँ मिथ्यादृष्टियोंका विभंगज्ञान होता है और जो जिनमतमें दक्ष सम्यग्दृष्टि होते हैं उन्हें सम्यक् अवधिज्ञान स्वभावसे होता है ।

पृष्ठ पंक्ति	
२५३–१९–२	पाँचवीं भूमिमें एक सौ पच्चीस धनुष ऊँचा शरीर होता है। इस प्रकार शरीर बढ़ता जाता है और आपत्ति भी भीषण होती जाती है।
२५५–२०–२	सर्वत्र उत्तम आयुसे शब्दसे उत्कृष्ट आयु जानना चाहिये।
२५५–२०–	घत्ता······दो कल्पोंमें गृहोंकी ऊँचाई छह सौ योजन है।
२५५–२३–	उससे ऊपरके दो कल्पोंमें घरोंकी ऊँचाई पाँच सौ योजन, उससे ऊपरके दो कल्पोंमें साढ़े चार सौ योजन, उससे ऊपरके दो कल्पोंमें चार सौ योजन, उससे ऊपरके दो कल्पोंमें साढ़े तीन सौ योजन, उससे ऊपरके दो कल्पोंमें तीन सौ योजन और उससे ऊपरके चार कल्पोंमें अढ़ाई सौ योजन देवगृहोंकी ऊँचाई है। उससे ऊपर तीन अधो-ग्रैवेयकोंमें दो सौ योजन, उससे ऊपर तीन मध्यग्रैवेयकोंमें डेढ़ सौ योजन, उससे ऊपर तीन उपरिम ग्रैवेयकोंमें सौ योजन, ऊपर-ऊपर अनुदिशोंमें पचास योजन और अनुत्तरोंमें पचीस योजन ऊँचाई है।
२६१–२६–११	फिर सौधर्मादि प्रत्येक स्वर्गमें क्रमसे सौधर्ममें पाँच पल्य, ऐशानमें सात पल्य, सानत्कुमारमें नौ पल्य, माहेन्द्र स्वर्गमें ग्यारह पल्य, ब्रह्म स्वर्गमें तेरह पल्य, ब्रह्मोत्तरमें पन्द्रह पल्य, लान्तवमें सतरह पल्य, कापिष्ठमें उन्नीस पल्य, शुक्रमें इक्कीस पल्य, महाशुक्रमें तेईस पल्य, शतारमें पचीस पल्य, सहस्रारमें सत्ताईस पल्य, आनतमें चौंतीस पल्य, प्राणतमें इकतालीस पल्य, आरणमें अड़तालीस पल्य और अच्युतमें पचपन पल्य आयु होती है।
२६१–२६	घत्ता···उससे ऊपर एक-एक सागर अधिक।
२६३–७	ज्योतिष देवोंका अवधिज्ञान संख्यात योजन होता है। यह जघन्य क्षेत्र है।
२६३–२८–७	अट्ठाईस, इस प्रकार एक-एक घटाते हुए सौलहवें स्वर्गमें देव बाईस हजार वर्षोंमें आहार (मानसिक) ग्रहण करते हैं।
२६५	घत्ता—नारकियोंके चार गुणस्थान होते हैं और देवोंके भी चार होते हैं।
२६७	घत्ता—अनन्तानुबन्धी क्रोध···
२६७–३१–२	संज्वलन क्रोध···
२७१–३४–२	धर्म, अधर्म, आकाश और कालके साथ रूपसे रहित हैं····धर्म और अधर्म समस्त त्रिलोकमें व्याप्त हैं।···परमाणु अशेष अविभाज्य हैं।
२७१–३४–	घत्ता—पुद्गलके छह प्रकार हैं—सूक्ष्मसूक्ष्म, सूक्ष्म, सूक्ष्मस्थूल, स्थूलसूक्ष्म, स्थूल, स्थूलस्थूल।

□

महापुराण

पुप्फयंतविरइयउ महापुराणु

संधि १

१

सिद्धिवहूमणरंजणु परमणिरंजणु भुवणकमलसरणेसरु ।।
पणविवि विग्घविणासणु णिरुवमसासणु रिसहणाहु परमेसरु ।।ध्रु०।।

१

सुपरिक्खिय रक्खियभूयतणुं पंचसयधणुण्णयदिव्वतणुं ।
पयडियसासयपयणयरवहं परसमयभणियदुण्णयरवहं ।
सुहसीलगुणोहणिवासहरं देविंद[1]थुयं दिव्वासहरं ।
जुइणिज्जियमंदरमेहलयं पविमुक्कहारमणिमेहलयं ।
सोहंतासोयरमियविवरं उव्वासियबहुणारयविवरं ।
सुरणाहकिरीडपहिट्ठपयं अइपवरपसायपहिट्ठपयं ।
णवतरणिसमप्पहभावलयं णिरुदुस्सहदुम्म[2]यभावलयं ।
हरिमुक्ककुसुमचित्तलियणहं अ[3]रुहंतमणंतजसं अणहं ।
सीहा[4]सणछत्तत्तयसहियं उद्धरियपरं सकिवं सहियं ।
दुंदुहिसरपूरियभुवणहरं बंधूअफुल्लसंणिहणहरं ।
पुरु[5]एवजिणं जियकामरणं दूरुज्झियजम्मजरामरणं ।
विरयं वरयं णियमोहरयं उद्धूयभीमणियमोहरयं ।
पण[6]मामि रविं केवलकिरणं मत्तासमयं भणियं किरणं ।

घत्ता—अवरु वि पणविवि सम्मइं विणिहयदुम्मइं कोवपावविद्धंसणु ।
जासु तित्थि मइं लद्धउ णाणसमिद्धउ णिम्मलु[7] सम्मद्दंसणु ।। १ ।

२

णिम्महियमाणमायामयाहं जिणसिद्धसूरिसुय[1]देसयाहं ।
साहूण वि चरणंभोरुहाइं णहं[2]दरिसियसुरणयमुहाइं ।
कयहरिसु सरसु सुमहुरु चवंति कोमलपयाइं लीलाइ दिंति ।
गंभीर पसण्ण सुवण्णदेह कंतिल्ल कुडिल णं चंदरेह ।
सालंकारी छंदेण जंति बहु[3]संस्थअत्थगारव वहंति ।

---

१. १. B देविंदथुवं । २. M °दुम्मह° । ३. MBP अरहंत° । ४. MBP सिंहासण° । ५. MB पुरएव° । ६. T notes पणयामिरविं as *p* and explains it as पणयामीति पाठे पणयो मोहः स एव यामी नाम रात्रिस्तस्या रविं स्फेटकम् । ७. M णिम्मल° ।

२. १. M °जिणदेवयाहं, but सुयदेवयाहं in the margin । २. MBG णहे दरिसिय° । ३. M बहुअत्थगारवं संवहंति, but adds सत्य in margin; P बहुअत्थगंथगारव वहंति ।

पुष्पदन्त-विरचित महापुराण

(हिन्दी अनुवाद)

सिद्धिरूपी वधूके मनका रंजन करनेवाले, अत्यन्त निरंजन (पापोंसे रहित), विश्वरूपी कमल-सरोवरके सूर्य, विघ्नोंका नाश करनेवाले, तथा अनुपम मतवाले ऋषभनाथको मैं प्रणाम करता हूँ।

१

जो अच्छी तरह परीक्षित हैं, जिन्होंने पृथ्वी-जलादि पाँच महाभूतोंके विस्तारकी रक्षा की है, जिनका शरीर दिव्य और पांच सौ धनुष ऊँचा है, जिन्होंने शाश्वत पदरूपी (मोक्ष) नगरका पथ प्रकट किया है, जिन्होंने परमतोंके एकान्त प्रमाणोंका नाश किया है, जो शुभशील और गुण-समूहके निवास-गृह हैं, जो देवोंके द्वारा संस्तुत और दिशारूपी वस्त्र धारण करनेवाले (दिगम्बर) हैं, जिन्होंने अपनी कान्तिसे मन्दराचलकी मेखलाको जीत लिया है, जिन्होंने हार और रत्न-मालाओंका परित्याग किया है, जो क्रीड़ारत श्रेष्ठ पक्षियोंसे युक्त अशोकवृक्षसे शोभित हैं, जिन्होंने अनेक नरकरूपी बिलोंको उखाड़ दिया है, जिनके चरण देवेन्द्रोंके मुकुटोंसे घर्षित हैं, जिन्होंने प्रचुर प्रसादोंसे प्रजाओंको आनन्दित किया है, जिनका प्रभामण्डल नवसूर्यकी प्रभाके समान है और जो (प्रमाणहीन होनेके कारण) अत्यन्त असह्य, मिथ्यागमके भावोंका अन्त करनेवाले हैं, जिनके कारण इन्द्रके द्वारा बरसाये गये पुष्पोंसे आकाश पुष्पित और चित्रित है, जो अनन्त यशवाले पापसे रहित अर्हंत् हैं, सिंहासन और तीन छत्रोंसे युक्त हैं, जो मिथ्यावादियोंका नाश करनेवाले कृपालु तथा हितकारी हैं, जो दुन्दुभियोंके स्वरसे विश्वरूपी घरको आपूरित करनेवाले हैं, जिनके नख दुपहरिया पुष्पोंके समान आरक्त हैं, जो कामदेवसे युद्ध जीत चुके हैं, जिन्होंने जन्म, जरा और मृत्युको दूरसे छोड़ दिया है, जो मलसे रहित और वरदाता हैं, जो नियमों (व्रतों) के समूहमें लीन हैं, जिन्होंने अपनी मोहरूपी भीषण रजको नष्ट कर दिया है, और जो मत्तासमय (मात्रा परिग्रह-को शान्त करनेवाले—मात्रा समय छन्द) कहे जाते हैं, ऐसे केवलज्ञानरूपी किरणोंसे युक्त सूर्य, जिन भगवान्‌को मैं प्रणाम करता हूँ।

घत्ता—और भी मैं (कवि पुष्पदन्त), जिन्होंने दुर्गतिका नाश कर दिया है ऐसे, तथा क्रोधरूपी पापका नाश करनेवाले सन्मतिनाथको प्रणाम करता हूँ कि जिनके तीर्थकालमें ज्ञानसे समृद्ध पवित्र सम्यग्दर्शनको मैंने प्राप्त किया ॥१॥

२

मान, माया और मदरूपी पापोंका नाश करनेवाले, अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुओंके आकाशमें देवताओंके मुखोंको प्रणत दिखानेवाले चरणकमलोंमें मैं कवि (पुष्पदन्त) प्रणाम करता हूँ। जो (सरस्वती) हर्ष उत्पन्न करनेवाला सरस और मधुर बोलती हैं, जो अपने कोमलपदों (चरणों, पादों) से लीलापूर्वक चलती हैं, जो गम्भीर, प्रसन्न और सोनेके समान शरीरवाली हैं, मानो कान्तिमयी कुटिल चन्द्रलेखा हो; चन्द्रलेखा कान्तिसे युक्त और कुटिल होती है सरस्वती भी स्वर्ण देहवाली होनेसे कान्तिमयी एवं कुटिल (वक्रोक्ति संयुक्त) है। जो अलंकारोंसे युक्त और

चोद्दहपुव्विल्ल दुवालसंगि जिणवयणविणिग्गय सत्तभंगि।
चउमुहमुहवासिणि सद्दजोणि णीसेसहेउ सा सोहछोणि।
दुक्खक्खयकारिणि सोक्खखाणि पणवेवि सरासइ दिव्ववाणि।
धम्माणुसासणाणंदभरिउ पुणु कहमि णिरहु णाहेयचरिउ।

घत्ता—जेण सुएण सुहोहइं तिहुयणखोहइं होंति चारुकल्लाणइं॥
उप्पज्जंति पसत्थइं मुणियपयत्थइं मणुयहो पंच वि णाणइं॥२॥

३

तं कहमि पुराणु पसिद्धणामु सिद्धत्थवरिसि भुवणाहिरामु।
उव्वद्धजूडु भूभंगभीसु तोडेप्पिणु चोडहो तणउ सीसु।
भुवणेक्करामु रायाहिराउ जहिं अच्छइ तुडिगु महाणुभाउ।
तं दीणदिण्णधणकणयपयरु महि परिभमंतु मेपाडिणयरु।
अवहेरियखलयणु गुणमहंतु दियहेहिं पराइउ पुप्फयंतु।
दुग्गमदीहरपंथेण रीणु णवयंदु जेम देहेण खीणु।
तरुकुसुमरेणुरंजियसमीरि मायंदगोंछगोंदलियकीरि।
णंदणवणि किर वीसमइ जाम तहिं विण्णि पुरिस संपत्त ताम
पणवेप्पिणु तेहिं पवुत्तु एम्व भो खंड गलियपावावलेव।
परिभमिरभमररवगुमगुमंति किं किर णिवसहि णिज्जणवणंति।
करिसरवहिरियदिक्चक्कवालि पइसरहि ण किं पुरवरि विसालि।
तं सुणिवि भणइ अहिमाणमेरु वरि खज्जइ गिरिकंदरि कसेरु।
णउ दुज्जणभउँहावंकियाइं दीसंतु कलुसभावंकियाइं।

घत्ता—वर णरवरु धवलच्छिहे होउ म कुच्छिहे मरउ सोणिमुहणिग्गमे॥
खलकुच्छियपहुवयणइं भिउडियणयणइं म णिहालउ सूरुग्गमे॥३॥

४

चमराणिलउड्डावियगुणाइ अहिसेयधोयसुयणत्तणाइ।
अविवेयइ दप्पुत्तालियाइ मोहंधइ मारणसीलियाइ।
सत्तंगरज्जभरभारियाइ पिउपुत्तरमणरसयारियाइ।
विससहजम्मइ जडरत्तियाइ किं लच्छिइ विउसविरत्तियाइ।
संपइ जणु णीरसु णिव्विसेसु गुणवंतउ जहिं सुरगुरु वि वेसु।
तहिं अम्हह लइ काणणु जि सरणु अहिमाणें सहुं वरि होउ मरणु।

४. M चौद्दह°; P चउदह°; T चोद्दस°। ५. T मुणि°। ६. M °विणग्गय°। ७. P सद्दत्थजोणि।
८. P तिहुयणु खोहइं।

३. १ MP ओवद्ध° and gloss in M उत्कृष्टकेशपाशम्; B नबद्धजूड। २. M वंदीण°। ३. MP मेवाडि°; B मेवाड°। ४. K मायंदगोंदगोंदलिय°। ५. MBP खज्जउ। ६. M हउँहावंकियाइँ; BP भउहावंकियाइं।

४. १. MBP देसु।

छन्दके द्वारा चलती है, जो बहुत-से शास्त्रोंके अर्थगौरवको धारण करती है, जो चौदह पूर्वों और बारह अंगोंसे युक्त है, जो जिनमुखसे निकली हुई सप्तभंगीसे सहित है, जो ब्रह्माके मुखमें निवास करनेवाली एवं शब्दयोनिजा है, जो निश्रेयस् की युक्ति और सौन्दर्य की भूमि है, जो दुःखोंका क्षय करनेवाली और सुखकी खदान है, ऐसी दिव्यवाणी सरस्वती देवीको प्रणाम कर मैं धर्मानुशासनके आनन्दसे भरे हुए, तथा पापसे रहित नाभेय चरित (आदिनाथके चरित) का वर्णन करता हूँ।

घत्ता—जिस (आदिपुराण) चरित्रको सुननेसे मनुष्यको सुखोंके समूह और त्रिभुवनको क्षुब्ध करनेवाले सुन्दर पाँच कल्याण प्राप्त होते हैं, तथा पदार्थोंको जाननेवाले प्रशस्त पाँचों ज्ञान उत्पन्न होते हैं ॥२॥

३

मैं विश्वमें सुन्दर प्रसिद्ध नाम महापुराणका सिद्धार्थ वर्षमें वर्णन करता हूँ। जहाँ (मेलपाटी नगरमें) चोलराजाके केशपाशवाले भ्रूभंगसे भयंकर सिरको नष्ट करनेवाला, विश्वमें एकमात्र सुन्दर राजाधिराज महानुभाव तुडिग (कृष्ण तृतीय) राजा विद्यमान है। दीनोंको प्रचुर स्वर्णसमूह देनेवाले ऐसे उस मेलपाटि नगरमें धरतीपर भ्रमण करता हुआ, खलजनोंकी अवहेलना करनेवाला, गुणोंसे महान् कवि पुष्पदन्त कुछ ही दिनोंमें पहुँचा। दुर्गम और लम्बे पथके कारण क्षीण, नवचन्द्रके समान शरीरसे दुबला-पतला वह, जिसके आम्रवृक्षके गुच्छोंपर तोते इकट्ठे हो रहे हैं और जिसका पवन वृक्ष-कुसुमोंके परागसे रंजित है ऐसे नन्दनवनमें जैसे ही विश्राम करता है वैसे ही वहाँ दो आदमी आये। प्रणाम कर उन्होंने इस प्रकार कहा—"हे पापके अंशको नष्ट करनेवाले कवि खण्ड (पुष्पदन्त कवि), परिभ्रमण करते हुए भ्रमरोंके शब्दोंसे गूँजते हुए इस एकान्त उपवनमें तुम क्यों रहते हो ? हाथियोंके स्वरोंसे दिशामण्डलको बहरा बना देनेवाले इस विशाल नगरवरमें क्यों नहीं प्रवेश करते ?" यह सुनकर अभिमानमेरु पुष्पदन्त कवि कहता है—"पहाड़की गुफामें घास खा लेना अच्छा, परन्तु कलुषभावसे अंकित, दुर्जनोंकी टेढ़ी भौंहें देखना अच्छा नहीं।"

घत्ता—अच्छा है श्रेष्ठ मनुष्य, धवल आँखोंवाली उत्तम स्त्रीकी कोखसे जन्म न ले, या गर्भसे निकलते ही मर जाये, लेकिन यह अच्छा नहीं कि वह टेढ़ी आँखोंवाले, दुष्ट और भद्दे प्रभु-मुखोंको सवेरे-सवेरे देखे ॥३॥

४

जो चामरोंकी हवासे गुणोंको उड़ा देती है, अभिषेकके जलसे सुजनताको धो देती है, जो अविवेकशील है, दर्पसे उद्धत है, मोहसे अन्धी और दूसरोंको मारनेके स्वभाववाली है, जो सप्तांग राज्यके भारसे भारी है जो पुत्र और पिताके साथ रमणरूपी रसमें समानरूपसे आसक्त है, जिसका जन्म कालकूट (विष) के साथ हुआ है, जो जड़ोंमें अनुरक्त है और विद्वानोंसे विरक्त है, ऐसी लक्ष्मीसे क्या ? सम्पत्तिमें मनुष्य सब प्रकारसे नीरस होता है, जहाँ गुणवान् तक द्वेष्य होता है, वहाँ हमारे लिए तो, वन ही शरण है। (कमसे कम) स्वाभिमानके साथ मृत्युका

अम्मयइइंदराएहिं तेहिं आयण्णिवि[2] तं पहसियमुहेहिं ।
गुरुविणयपणयपणवियसिरेहिं पडिवयणु दिण्णु णायरणरेहिं ।

घत्ता—जणमणतिमिरोसारण[3] मयतरुवारण णियकुलगयणदिवायर ॥
भो भो केसवतणुरुह णवसररुहमुह कव्वरयणरयणायर ॥४॥

५

बंभंडमंडवारूढकित्ति अणवरयरइयजिणणाहभत्ति ।
सुहतुंगदेवकमकमलभसलु णीसेसकलाविण्णाणकुसलु ।
पाययकइकव्वरसावउद्धु[1] संपीयसरासइसुरहिदुद्धु ।
कमलच्छु अमच्छरु सच्चसंधु रणभरधुरधरणुग्घुट्ठखंधु[2] ।
सविलासविलासिणिहिययथेणु[3] सुपसिद्धमहाकइकामधेणु ।
काणीणदीणपरिपूरियासु जसपसरपसाहियदसदिसासु ।
पररमणिपरंमुहु सुद्धसीलु उण्णयमइ सुयणुद्धरणलीलु ।
गुरुयणपयपणवियउत्तमंगु [4]सिरिदेवियंबगब्भुब्भवंगु ।
अण्णइयतणयतणुरुहु पसत्थु हत्थि व दाणोल्लियदीहहत्थु ।
महमत्तवंसधयवडु गहीरु लक्खणलक्खंकियवरसरीरु ।
दुव्वसणसीहसंघायसरहु ण वियाणहि किं णामेण भरहु ।

घत्ता—आउ जाउ[5] तहो मंदिरु णयणाणंदिरु सुकइकइत्तणु जाणइ ॥
सो गुणगणतत्तिल्लउ[6] तिहुयणि भल्लउ णिच्छउ पइं संमाणइ ॥५॥

६

जो विहिणा णिम्मिउ कव्वपिंडु तं णिसुणिवि सो संचलिउ खंडु ।
आवंतु दिट्ठु भरहेण केम वाईसरिसरिकल्लोलु जेम ।
पुणु[1] तासु तेण विरइउ पहाणु वरु आयहो अब्भागयविहाणु ।
संभासणु[2] पियवयणेहिं रम्मु णिम्मुक्कडंभु णं परमधम्मु ।
तुहुं आयउ णं गुणमणिणिहाणु तुहुं आयउ णं पंकयहो भाणु ।
पुणु एवं[3] भणेप्पिणु मणहराइं पहरीण[4]झीणतणुसुहयराइं ।
वरण्हाणविलेवणभूसणाइं दिण्णइं[5] देवंगइं णिवसणाइं ।
अच्चंतरसालइं भोयणाइं गलियाइं जाम कइवयदिणाइं ।
देवीसुएण कइ भणिउ ताम भो पुप्फयंत ससिलिहियणाम ।

---

२. MBP आयण्णिय; G आयण्णवि । ३. MB तिउरोसारण ।

५. १. MBPK °बलुद्धु, but G °रसायउद्धु and marginal gloss रसावबुद्धः; T also रसावउद्धु and explains it as परिज्ञातरसः । २. MBP °धरणुग्घिट्ठखंधु । ३. MP °घेणु । ४. P सिरिअम्बदेवि° B सिरिदेविअम्ब° । ५. M आउज्जाहं । ६. P °भत्तिल्लउ though marginal gloss °चिन्तकः ।

६. १. B omits this line । २. B omits *a* of this line । ३. M पुणु एण; P पुणु एम ।
४. MBP पहखीणरीणतणु° । ५. B दिण्णाइं देवगइणिवसणाइं ।

होना अच्छा। यह सुनकर अम्मइया और इन्द्रराज दोनों नागरनरोंने हँसते हुए तथा भारी विनय और प्रणयसे अपने सिरोंको झुकाते हुए यह प्रत्युत्तर दिया— ।

घत्ता—जनमनोंके अन्धकारको दूर करनेवाले, मदरूपी वृक्षके लिए गजके समान, अपने कुलरूपी आकाशके सूर्य, नवकमलके समान मुखवाले, काव्यरूपी रत्नोंके लिए रत्नाकर, हे केशव-पुत्र (पुष्पदन्त) ॥४॥

५

जिसकी कीर्ति ब्रह्माण्डरूपी मण्डपमें व्याप्त है, जो अनवरत रूपसे जिनभगवान्‌की भक्ति रचता रहता है, जो शुभ तुंगदेव (कृष्ण) के चरणरूपी कमलोंका भ्रमर है, समस्त कलाओं और विज्ञानमें कुशल है, जो प्राकृत कृतियोंके काव्यरससे अवबुद्ध है, जिसने सरस्वतीरूपी गायका दुग्ध पान किया है, जो कमलोंके समान नेत्रवाला है, मत्सरसे रहित, सत्य प्रतिज्ञ, युद्धके भारकी धुराको धारण करनेमें अपने कन्धे ऊँचे रखनेवाला है, जो विलासवती स्त्रियोंके हृदयोंका चोर है, और अत्यन्त प्रसिद्ध महाकवियोंके लिए कामधेनुके समान है, जो अकिंचन और दीनजनोंकी आशा पूरी करनेवाला है, जिसने अपने यशके प्रसारसे दसों दिशाओंको प्रसाधित किया है, जो परस्त्रियोंसे विमुख है, जो शुद्ध स्वभाव और उन्नत मतिवाला है, जिसका स्वभाव सुजनोंका उद्धार करना है, जिसका सिर गुरुजनोंके चरणोंमें प्रणत रहता है, जिसका शरीर श्रीमती अम्बादेवीको कोखसे उत्पन्न हुआ है, जो अम्मइयाके पुत्रका पुत्र है, प्रशस्त जो हाथीके समान, दान (दान और मदजल) से उल्लसित दीर्घ हस्त (सूँड़ और हाथ) वाला है, जो महामन्त्री वंशका गम्भीर ध्वजपट है, जिसका शरीर श्रेष्ठ लक्षणोंसे अंकित है, जो दुर्व्यसनरूपी सिंहोंके संहारके लिए श्वापदके समान है, ऐसे भरत नामके व्यक्तिको क्या आप नहीं जानते ?

घत्ता—आओ उसके घर चलें, नेत्रोंको आनन्द देनेवाला वह सुकवियोंके कवित्वको अच्छी तरह जानता है। गुणसमूहसे सन्तुष्ट होनेवाला वह, त्रिभुवनमें भला है और निश्चय ही वह तुम्हारा सम्मान करेगा ॥५॥

६

जिसे विधाताने काव्यशरीर बनाया है, ऐसा खण्डकवि पुष्पदन्त यह सुनकर चला। आते हुए भरतने उसे इस प्रकार देखा जैसे सरस्वतीरूपी नदीकी लहर हो। फिर उसने घर आये हुए उस (पुष्पदन्त) का प्रमुख अतिथि-सत्कार विधान किया तथा प्रिय शब्दोंमें सुन्दर सम्भाषण किया—"तुम मानो दम्भसे रहित परमधर्म हो, तुम आये अर्थात् गुणरूपी मणियोंका समूह आ गया, तुम आ गये अर्थात् कमलोंके लिए सूर्य आ गया।" इस प्रकार पथसे थके और दुर्बल शरीरके लिए शुभकर सुन्दर वचन कहकर, उसने (भरतने) उन्हें उत्तम स्नान, विलेपन, भूषण, देवांग वस्त्र तथा अत्यन्त स्वादिष्ट भोजन दिया। जब कुछ दिन बीत गये, तो देवीसुत (भरत) ने कहा—'चन्द्रमाके समान प्रसिद्ध नाम हे पुष्पदन्त, अपनी लक्ष्मी विशेषसे देवेन्द्रको

णियसिरिविसेसणिज्जियसुरिंदु गिरिधीरु वीरु भइरवणरिंदु ।
पइं मणिउ वण्णिउ वीरराउ उप्पण्णउ जो मिच्छत्तराउ ।
पच्छित्तु तासु जइ करहि अज्जु ता घडइ तुज्झु परलोयकज्जु ।
तुहुं देउ को वि भव्वयणबंधु पुरुएवचरियभारस्स खंधु ।
अब्भत्थिओ सि दे देहि तेम णिव्विग्घें लहु णिव्वहइ जेम ।
घत्ता—अइललियए गंभीरए सालंकारए वायए ता किं किज्जइ ॥
जइ कुसुमसरवियारउ अरुहु भडारउ सब्भावें ण थुणिज्जइ ॥६॥

७

सियदंतपंतिधवलीकयासु ता जंपइ वरवायाविलासु ।
भो देवीणंदण जयसिरीह किं किज्जइ कव्वु सुपरिससीह ।
गोवज्जिएहिं णं घणदिणेहिं सुरवरचावेहि व णिग्गुणेहिं ।
मइलियचित्तहिं णं जरघरेहिं छिद्दण्णेसिहिं णं विसहरेहिं ।
जडवाइएहिं णं गयरसेहिं दोसायरेहिं णं रक्खसेहिं ।
आचक्खियपरपुट्ठीपलेहिं वरकइ णिंदिज्जइ हयखलेहिं ।
जो बालवुड्ढसंतोसहेउ रामाहिरामु लक्खणसमेउ ।
जो सुम्मइ कइवइ विहियसेउ तासु वि दुज्जणु किं परि म होउ ।
घत्ता—णउ महु बुद्धिपरिग्गहु णउ सुयसंगहु णउ कासु वि केरउ बलु ॥
भणु किह करमि कइत्तणु ण लहमि कित्तणु जगु जि पिसुणसयसंकुलु ॥७॥

८

तं णिसुणिवि भरहे वुत्तु ताव भो कइकुलतिलय विमुक्कगाव ।
सिमिसिमिसिमंतकिमिभरियरंधु मिल्लेवि कलेवरु कुणिमगंधु ।
ववगयविवेउ मसिकसणकाउ सुंदरपएसि किं रमइ काउ ।
णिक्कारुणु दारुणु बद्धरोसु दुज्जणु ससहावें लेइ दोसु ।
हयतिमिरणियरु वरकरणिहाणु ण सुहाइ उलूयहो उइउ भाणु ।
जइ ता किं सो मंडियसराहं णउ रुच्चइ वियसियसिरिहराहं ।
को गणइ पिसुणु अविसहियतेउ भुक्कउ छणयंदहु सारमेउ ।
जिणचरणकमलभत्तिल्लएण ता जंपिउ कव्वपिसल्लएण ।
घत्ता—णउ हउं होमि वियक्खणु ण मुणमि लक्खणु छंदु देसि ण वियाणमि ।
जा विरइय जयवंदहिं आसि मुणिंदहिं सा कह केम समाणमि ॥८॥

६. B वीरभइरव । ७. MBPK °भाउ, but GT मिच्छत्तराउ and gloss °रागः ।
८. M पुरएव° । ९. M जय ।
७. १. T जरहरेहिं । २. PC ण ।
८. १. MBP सुहाय । २. P उयउ । ३. P छणइंदहु । ४. P पयासमि but marginal gloss कथं समानयामि वर्णयामि ।

जिसने जीता है, ऐसा गिरिकी तरह धीर और वीर भैरवराजा हैं। तुमने उस वीर राजाको माना है और उसका वर्णन किया है (उसपर किसी काव्यकी रचना की है) इससे जो मिथ्यात्व उत्पन्न हुआ है। यदि तुम आज उसका प्रायश्चित्त करते हो तो तुम्हारा परलोक-कार्य सध सकता है। तुम भव्यजनोंके लिए बन्धुस्वरूप कोई देव हो। तुमसे अभ्यर्थना की जाती है (मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ) कि तुम पुरुदेव (आदिनाथ) के चरितरूपी भारको इस प्रकार बँधा दो जिससे वह बिना किसी विघ्नके समाप्त हो जाये।

घत्ता—उस वाणीसे क्या? अत्यन्त सुन्दर गम्भीर और अलंकारोंसे युक्त होनेपर भी जिससे, कामदेवका नाश करनेवाले आदरणीय अर्हत्की सद्भावके साथ स्तुति नहीं की जाती ॥६॥

७

तब, अपनी सफेद दन्त पंक्तिसे दिशाओंको धवलित करनेवाला और वरवाणीसे विलास करनेवाला पुष्पदन्त कवि कहता है—"विजयरूपी लक्ष्मीकी इच्छा रखनेवाले पुरुषसिंह देवीनन्दन (भरत) काव्यकी रचना क्यों की जाये? जहाँ हत दुष्टोंके द्वारा श्रेष्ठ कविकी निन्दा की जाती है, जो मानो (दुष्ट) मेघदिनोंकी तरह गो (वाणी/सूर्यकिरणों) से रहित हैं, (गो वर्जित) जो मानो इन्द्रधनुषोंकी तरह निर्गुण (दयादि गुणों/डोरीसे रहित) हैं, जो मानो जाटोंके घरोंकी तरह मैले चित्तोंवाले हैं। जो मानो विषधरोंकी तरह छिद्रोंका अन्वेषण करनेवाले हैं, जो मानो जड़वादियोंकी तरह गतरस हैं, जो मानो राक्षसोंकी तरह दोषोंके आकर हैं, तथा दूसरोंकी पीठका मांस भक्षण करनेवाले (पीठ पीछे चुगली करनेवाले) हैं, जो (प्रवरसेन द्वारा विरचित सेतुबन्ध काव्य) बालकों और वृद्धोंके सन्तोषका कारण है, जो रामसे अभिराम और लक्ष्मणसे युक्त है, और कइवइ (कपिपति = हनुमान्—कविपति = राजा प्रवरसेन) के द्वारा विहितसेतु (जिसमें सेतु—पुल रचा गया हो) सुना जाता है ऐसे उस सेतुबन्ध काव्यका क्या दुर्जन शत्रु नहीं होता? (अर्थात् होता ही है)।

घत्ता—न तो मेरे पास बुद्धिका परिग्रह है, न शास्त्रोंका संग्रह है, और न ही किसीका बल है, बताओ मैं किस प्रकार कविता करूँ? कीर्ति नहीं पा सकता, और यह विश्व सैकड़ों दुष्टजनोंसे संकुल है" ॥७॥

८

यह सुनकर, तब महामन्त्री भरतने कहा—"हे गर्वरहित कविकुलतिलक, बिलबिलाते हुए कृमियोंसे भरे हुए छिद्रोंवाले सड़ी गन्धसे युक्त शरीरको छोड़कर, विवेकशून्य स्याहीको तरह काले शरीरवाला कौआ, क्या सुन्दर प्रदेशमें रमण करता है? अत्यन्त करुणाहीन, भयंकर और क्रोध बाँधनेवाला दुर्जन स्वभावसे ही दोष ग्रहण करता है। अन्धकारसमूहको नष्ट करनेवाला और श्रेष्ठ किरणोंका निधान, तथा उगता हुआ सूर्य यदि उल्लूको अच्छा नहीं लगता तो क्या सरोवरोंको मण्डित करनेवाले तथा विकासकी शोभा धारण करनेवाले कमलोंको भी वह अच्छा नहीं लगता? तेजको सहन नहीं करनेवाले दुष्टकी गिनती कौन करता है? कुत्ता चन्द्रमापर भौंका करे।" तब जिनवरके चरणकमलोंके भक्त काव्यपण्डित (पुष्पदन्त) ने कहा—

घत्ता—"मैं पण्डित नहीं हूँ, मैं लक्षणशास्त्र (व्याकरण शास्त्र) नहीं समझता। छन्द और देशीको नहीं जानता और जो कथा (रामकथा) विश्ववन्द्य मुनीन्द्रोंके द्वारा विरचित है उसका मैं किस प्रकार वर्णन करूँ? ॥८॥

९

अकलंककविलकणयरमयाइं　　दियसुगयपुरंदरणयसयाइं ।
दत्ति[1]लविसाहिलुद्धारियाइं　　णउ णायइं भरहवियारियाइं ।
णउ पीयइं पायंज[2]लजलाइं　　अइहासपुराणइं णिम्मलाइं ।
भावाहिउ भा[3]रवि भासु वासु　　कोहलु कोमलगिरु का[4]लियासु ।
चउमुहु सयंभु सिरिहरिसु दोणु　　णालोइउ[5] कइ ईसाणु बाणु ।
णउ धाउ ण लिंगु ण गण[6] समासु　　णउ कम्मु[7] करणु किरिया[8]णिवेसु ।
णउ संधि ण कारउ पयसमत्ति　　णउ जाणिय मइं एक्क वि विहत्ति ।
णउ बुज्झिउ आयमु[9] सद्दधामु　　सिद्धंतु धवलु[10] जयधवलु णामु ।
पडु रुद्दडु जडणिण्णासयारु　　परियच्छिउ [11]णालंकारसारु ।
पिंगलपत्थारु समुद्दि पडिउ　　ण [12]कया वि महारइ चित्ति चडिउ ।
जसइंधु सिंधु कल्लोससित्तु　　ण कलाकोसलि हियवउ णिहित्तु ।
हउं बप्प णिरक्खर कुक्खिमुक्खु　　णरवेसें हिंडमि चम्मरुक्खु ।
अइदुग्गमु होइ महापुराणु　　कुडएण मवइ को जलणिहाणु ।
अमरासुरगुरुयणमणहरेहिं　　जं आसि [13]कियउ मुणिगणहरेहिं ।
तं हउं मि कहमि भत्तीभरेण　　किं णहि ण भमिज्जइ महुयरेण ।
एहु विणउ पयासिउ सज्जणाहं　　मुहि [14]मसिकुंचउ कउ[15] दुज्जणाहं ।

घत्ता—घरे घरे भमउ[16] असारउ दुण्णयगारउ विवरोक्खए किं अक्खइ ।
[17]लइ मइं सो [18]मोक्कल्लिउ खलु दुब्बोल्लिउ लेउ दोसु जइ पेक्खइ ॥९॥

१०

चारणावासकेलाससेलासिओ　　किंणरीवेणुवीणाझुणितोसिओ ।
सामवण्णो सउण्णो पसण्णो सुहो　　आइदेवाण देवाहिभत्तो बुहो ।
गोम्मु[1]हो संमुहो होउ जक्खो महं　　चिंतयंतस्स एयं अमेयं कहं ।
विग्घविद्दावणी चारुचक्केसरी　　सत्थसारंभकल्लोलमालासरी ।
वेरिणिद्दा[2]रिणी सुंभणी थंभणी　　आसि जम्मंतरे होंतिया बंभणी ।
साहुदाणेण संजाइया जक्खिणी　　णाणसम्मत्तवंती गुणावेक्खिणी ।
उज्जयंतत्थलीकाणणावासिणी　　सव्वभासासमूहं समुब्भासिणी ।
सुंदरे मंदरे कंदरे [3]कीलिरी　　तुंगणग्गोहपारोहहिंदोलिरी[4] ।
पिक्कमायंदगोच्छेणं[5] डिंभं णियं　　संथवंती हसंती चवंती पियं ।
खुद्दवाईविवेयावहा वाइणी　　अंबिया गोरि गंधारि सिद्धाइणी ।

---

९. १. B दत्तिल्ल° । २. MBP पायंजलि° । ३. M भारहिं; B भारहभासु । ४. MBP कालिदासु । ५. MP णालोयउ । ६. BP गुण । ७. M कम्म । ८. MBP किरियाविसेसु । ९. M आयम° । १०. MBP धवलजयधवलणामु । ११. M णालंकारु सारु । १२. B कयाइ । १३. K कहिउ । १४. MB कुच्चउ । १५. M किउ । १६. G भमइ । १७. MB लहु । १८. MB. मोकल्लिउ ।

१०. १. MBP गोमुहो । २. MB °णिद्धारणी; P °णिद्दारणी । ३. P कीलिणी । ४. P °हिंदोलिणी । ५. MBP °गोंछेण ।

९

अकलंक (जैनाचार्य), कपिल (सांख्यदर्शनके प्रवर्तक), कणयर (कणाद—वैशेषिक दर्शन-के प्रवर्तक) के मतों, द्विज (वेदपाठी-कर्मकाण्डी), सुगत (बौद्ध) और इन्द्र (चार्वाक) के सैकड़ों नयों, दत्तिल और विसाहिलके द्वारा रचित संगीतशास्त्र और भरत मुनिके द्वारा विचारित नाट्य-शास्त्रको मैंने ज्ञात नहीं किया। पतंजलिके भाष्यरूपी जलको मैंने नहीं पिया। निर्मल इतिहास और पुराण, भावाधिप भारवि, भास, व्यास, कोहल, कोमलवाणीवाले कालिदास, चतुर्मुख, स्वयम्भू, श्रीहर्ष, द्रोण, कवि ईशान और बाणका भी मैंने अवलोकन नहीं किया। न मैंने धातु, लिंग, गण, समास, न कर्म, करण, क्रियानिवेश, न सन्धि, कारक और पद समासिका, और न ही मैंने एक भी विभक्तिका ज्ञान प्राप्त किया। शब्दोंके धाम, सिद्धान्त ग्रन्थ धवल और जयधवल आगमोंको भी मैंने नहीं समझा। जड़ताका नाश करनेवाले कुशल रुद्रट और उनके अलंकारसारको भी मैंने नहीं देखा। न मैं पिंगल प्रस्तारके समुद्रमें पड़ा। और न ही कभी यशसे चिह्नित लहरोंसे सिक्त सिन्धु मेरे चित्तपर चढ़ा। और न मैंने कलाकौशलमें अपने मनको लगाया। मैं बेचारा जन्मजात मूर्ख हूँ। चर्मसे आच्छादित वृक्ष (ठूँठ)-सा मनुष्यके रूपमें घूम रहा हूँ। महापुराण अत्यन्त दुर्गम होता है, घड़ेसे समुद्रको कौन माप सकता है ? देवों, असुरों और गुरुजनोंके लिए सुन्दर मुनियों एवं गणधरोंने जिस महापुराणकी रचना की है, मैं भी भक्तिभावसे भरकर उसकी रचना करता हूँ। क्या आकाशमें भ्रमरके द्वारा न घूमा जाये (क्या वह भ्रमण न करे) ? यह विनय मैंने सज्जन लोगोंके प्रति की है, दुर्जनोंके मुखपर तो मैंने स्याहीकी कूँचो ही फेरी है।

घत्ता—घर घरमें घूमता हुआ असार दुर्नय करनेवाला दुष्ट परोक्षमें क्या कहता है ? खोटे बोलनेवाले दुष्टको लो मैं मुक्त करता हूँ। यदि उसे दोष दिखाई देता है तो वह उसे ग्रहण करे ॥९॥

१०

जो मुनीश्वरोंके निवासस्थान कैलास पर्वतके शिखरपर निवास करता है, किन्नरियोंकी वेणु-वीणाओंकी ध्वनियोंसे सन्तुष्ट होता है, जो श्यामवर्ण पुण्यात्मा प्रसन्न शुभ है, आदिदेव ऋषभका देवाधिभक्त और बुध है, ऐसा वह गोमुख यक्ष इस अप्रमेय कथाका चिन्तन करते हुए मेरे सम्मुख हो। जो विघ्नोंका नाश करनेवाली, शास्त्रोंके साररूपी जलोंकी कल्लोलमालाओं-पर चलनेवाली, शत्रुओंका विदारण करनेवाली, जन्मान्तरमें हिंसा करनेवाली और स्तम्भन विद्यावाली ब्राह्मणी थी, जो साधुदानके कारण, सम्यक्दर्शन और ज्ञानसे युक्त, गुणोंकी अपेक्षा करनेवाली यक्षिणी हुई। जो गिरिनार पर्वतपर निवास करनेवाली सर्वभाषासमूहको प्रकाशित करनेवाली, ऊँचे वटवृक्षोंपर निवास करनेवाली हँसती हुई और प्रिय बोलनेवाली है। जो क्षुद्र-वादियोंके विवेकका अपघात करनेवाली, वादिनी, अम्बिका, गौरी, गान्धारी, सिद्धायनी तथा

पोमवत्ताहवत्ता पवित्ता सई णायचूडामणी देवि पोमावई ।
कव्वविस्थारदुत्तारमग्गे सही ठाउ मज्झं मुहे देवया भारही ।
होउ बुद्धी महासत्थसामग्गिणी एरिसो छंदहो भण्णए सग्गिणी ।
घत्ता—मइं णिम्मियहो उयारहो सद्दगहीरहो जो णरु भसइ णिबंधहो ॥
जणदुव्वयणहिं दड्ढहो तहो दुवियड्ढहो दुज्जसु होउ मयंधहो ॥१०॥

११

अहवा हउं णिग्घिणु पावयम्मु ण वियाणमि अज्ज वि किं पि धम्मु ।
मिच्छाहिरामरंजियविवेउ ण वियाणमि जिणवरवयणभेउ ।
उग्गायरसभावणिरंतराइं अलियाइं जि कहमि कहंतराइं ।
लइ हत्थें झंपमि णहु सभाणु लइ कलसि समप्पमि जलणिहाणु ।
लइ तुच्छबुद्धि णिण्णट्ठणाणु लइ अक्खमि एउ महापुराणु ।
लइ णिंदउ दुज्जणु मच्छरेण लइ कहमि कव्वु किं वित्थरेण ।
करिमयरमीणजलयरबमालि चललवणजलहिवलयंतरालि ।
दोचंदसूरपयडियपईवि जंबूतरुलंछणि जंबुदीवि ।
खारंभोणिहिसामीवसंगि सुरसिहरिहि संठिउ दाहिणंगि ।
सरिगिरिदरितरुपुरवरविचित्तु एत्थत्थि पसिद्धउ भरहखेत्तु ।
तहु मज्झि परिट्ठिउ मगहदेसु जं वण्णहुं सक्कइ णेय सेसु ।
मुहि घुलइ जासु जीहासहासु जसु णाणि णत्थि दोसावयासु ।
घत्ता—सीमारामासीमहिं पविउलगामहिं गज्जंतहिं धवलोहहिं ॥
सोहइ हलहरजत्थहिं दाणसमत्थहिं णिच्चं चिय णिल्लोहहिं ॥११॥

१२

अंकुरियइं णवपल्लवघणाइं कुसुमियफलियइं णंदणवणाइं ।
जहिं कोइलु हिंडइ कसणपिंडु वणलच्छिहे णं कज्जलकरंडु ।
जहिं उड्डिय भमरावलि विहाइ पवरिंदणीलमेहलिय णाइ ।
ओयरिय सरोवरि हंसपंति चल धवल णाइं सप्पुरिसकित्ति ।
जहिं सलिलइं मारुयपेल्लियाइं रविसोसभएण व हल्लियाइं ।
जहिं कमलहं लच्छिइ सहुं सणेहु सहुं ससहरेण वड्ढउ विरोहु ।
किर दो वि ताइं महणुब्भवाइं जाणंति ण तं जडसंभवाइं ।
जहिं उच्छुवणइं रसगब्भिणाइं णावइ कव्वइं सुकइहिं तणाइं ।

---

६. B omits this foot. ७. BP उवयारहो and gloss in P उपकारस्य उदारस्य वा ।
८. K होइ ।

११. १. M पावकम्मु । २. MB मिच्छाहिमाण°; P मिच्छाहिमाण but gloss मिथ्याभिराम° । ३. M उग्गव° and gloss उत्कट । ४. MBP अइतुच्छ° । ५. MBP करमि । ६. M पुरवरु । ७. B मगहएसु । ८. M वुलय । ९. MB °रामहिं; P °रामारम्महिं ।

१२. १. M अवयरइ; BPT उवयरइ । २. MBP कमलहुं सहुं । ३. P °गब्भिराइं ।

कमलपत्रोंके समान मुखवाली, पवित्र सती, ज्ञानकी चूड़ामणि, पद्मावतीदेवी पवित्र सती हैं, ऐसी वह, मेरे काव्य विस्तारके इस दुस्तर मार्गमें सहायक हो, देवी भारती मेरे मुखमें स्थित हो। मेरी बुद्धि महाशास्त्रोंकी सामग्रीसे सहित हो। इस प्रकारका छन्द सगिणी छन्द कहा जाता है।

घत्ता—मेरे द्वारा रचित उदार शब्दसे गम्भीर निबन्ध (महाकाव्य) की जो मनुष्य निन्दा करता है, जनताके दुर्वचनोंसे दग्ध उस मदान्ध दुर्विदग्धको (दुनियामें) अपयश मिले ॥१०॥

११

अथवा मैं अदय और पापकर्मा हूँ, मैं आज भी कुछ भी धर्म नहीं जानता। मिथ्यात्वके सौन्दर्यसे रंजित विवेकवाला मैं जिनवरके वचनोंके रहस्यको नहीं जानता। मैं अनवरत रसभाव उत्पन्न करनेवाले झूठे कथान्तरोंको कहता रहा हूँ। लो मैं सूर्यसे सहित आकाशको अपने हाथसे ढँकना चाहता हूँ। लो मैं समुद्रको घड़ेमें बन्द करना चाहता हूँ। मैं तुच्छ बुद्धि और नष्टज्ञान हूँ, (फिर भी) लो यह महापुराण कहता हूँ। लो दुर्जन ईर्ष्यासे निन्दा करे। लो मैं काव्य करता हूँ। विस्तारसे क्या ? जलगजों, मगरों, मत्स्यों और जलचरोंके कोलाहलसे व्याप्त चंचल लवण समुद्रके वलयमें स्थित, दो-दो सूर्यों और चन्द्रोंसे आलोकित होनेवाले तथा जम्बुवृक्षोंसे शोभित जम्बूद्वीप है। उसमें सुमेरुपर्वतके, लवणसमुद्रकी समीपता करनेवाले, दक्षिणभागमें, प्रसिद्ध भरत क्षेत्र है, जो नदियों, पहाड़ों, घाटियों, वृक्षों और नगरोंसे विचित्र है। उसके मध्यमें मगध देश प्रतिष्ठित है, शेषनाग भी उसका वर्णन नहीं कर सकता, यद्यपि उसके मुँहमें हजार जीभें चलती हैं, और उसके ज्ञानमें दोषके लिए जरा भी गुंजाइश नहीं है।

घत्त—वह मगध देश, सीमाओं और उद्यानोंसे हरे-भरे बड़े-बड़े गाँवों, गरजते हुए वृषभ-समूहों, और दान देनेमें समर्थ लोभसे रहित कृषकसमूहोंसे नित्य शोभित रहता है ॥११॥

१२

जिसमें अंकुरित, नये पत्तोंसे सघन फूलों और फलोंवाले नन्दनवन हैं। जिसमें काले शरीरवाला कोकिल घूमता है मानो जो वनलक्ष्मीके काजलका पिटारा हो, जहाँ उड़ती हुई भौंरों-की कतार ऐसी शोभित होती है। जैसे इन्द्रनील मणियोंकी विशाल मेखला हो। सरोवरोंमें उतरी हुई हंसोंकी कतार ऐसी मालूम होती है जैसे सज्जन पुरुषकी चलती-फिरती चंचल कीर्ति हो। जहाँ हवासे प्रेरित जल ऐसे मालूम होते हैं जैसे सूर्यके शोषणके डरसे काँप रहे हों। जहाँ कमल लक्ष्मीसे स्नेह करते हैं लेकिन चन्द्रमाके साथ उनका बड़ा विरोध है। यद्यपि दोनों समुद्रमन्थनसे उत्पन्न हुए हैं लेकिन जड़ (जड़ता और जल) से पैदा होनेके कारण वे इस बातको नहीं जानते। जहाँ ईखोंके खेत रससे परिपूर्ण हैं, मानो जैसे सुकवियोंके काव्य हों। जहाँ लड़ते हुए भैंसों और बैलोंके उत्सव होते रहते हैं, जहाँ मथानी घुमाती हुई गोपियोंकी ध्वनियाँ होती रहती हैं, जहाँ

जुज्झंतमहिसवसहुच्छवाइं मंथामंथियमंथणिरवाइं ।
च[४]वलुद्धपुच्छवच्छाउलाइं कीलियगोवालइं गोउलाइं ।
जहिं चउरंगुल कोमलतणाइं धणकणकणिसालइं करिसणाइं ।
घत्ता—तहिं छुहधवलियमंदिरु णयणाणंदिरु णयरु रायगिहु रिद्धउ ।।
कुलमहिहरथणहारिए वसुमइणारिए भूसणु णं आइद्धउ ।।१२।।

१३

संकेयागयविरहीयणाइं सासोयपवड्ढियकंचणाइं ।
बहुलोयदिण्णणाणाफलाइं णावइ कुलाइं धम्मुज्जलाइं ।
जहिं महुगंडूसहिं सिंचियाइं विंभरियाहरणहिं अंचियाइं ।
सीमंतिणिपयपोमाहयाइं विय[१]संतविडववुड्ढीगयाइं ।
पियमणिणयसुहवाणासणाइं जहिं संदरिसियबाणासणाइं ।
पडिखलियसूरभावियरणाइं उज्जाणइं णं भावियरणाइं ।
उक्कलियो[२]लइं णवजोव्वणाइं णिरु सच्छइं णं सज्जणमणाइं ।
जहिं सीयलाइं असमाणियाइं परकज्जसमाणइं पाणियाइं ।
जहिं जण[३]लुंचणु कंटयकरालु जलि णलिणें लिहक्कावियउ णालु ।
बाहिरि णिहियउ वियसंतु कोसु भणु को वण ढंकइ गुणहिं दोसु ।
जहिं भमरु तहिं जि संठिउ सुहाइ संगहु सिरिणयणंजणहु णाइं ।
घत्ता—कुसुमरेणु जहिं मिलियउ प[४]च्चुल्ललियउ कणयवण्णु महु भावइ ।।
दिणयरचूडामणियइ णहकामिणियइ कंचुउ परिहिउ णावइ ।।१३।।

१४

जहिं कीलागिरिसिहरंतरेसु कोमलदलवेल्लिहरंतरेसु ।
सिक्खंति पक्खि दरदावियाइं विडमणियमम्मणुल्लावियाइं ।
जहिं पिक्कसालिछेत्तें घणेण छज्जइ महि णं उप्परियणेण ।
पंगुत्तें दीहें पीयलेण णिवडंतरिंछपल्लवचलेण ।
जहिं संचरंति ब[१]हुगोहणाइं जव कंगु मुग्ग ण हु पुणु त[२]णाइं ।
गोवालबाल जहिं र[३]सु पियंति थलसररुहसेज्जायलि सुयंति ।
मायंदकुसुममंजरि सुएण हयचंचुएण कयमण्णुएण ।
जहिं समयल सोहइ वाहियालि वाहणपयहय वित्थरइ धूलि ।
हरि भामिज्जंति कं[४]सासणेहिं अण्णाणिय णाइं कुसासणेहिं ।
णिज्जंति णाय कण्णारएहिं णाय व्व णायकण्णारएहिं ।
रुज्झंति गयासा ईरिएहिं सीस व्व गयासाईरिएहिं ।

---

४. M धवलुद्धपुच्छ° ।

१३. १. P वियसंति but gloss विकसित । २. M उक्कलिवालइं । ३. PK जणुलुंचणु । ४. MBP उद्धुल्ललियउ and gloss in P उच्छलित ।

१४. १. MP गाईहणाइं । २. MBP तिणाइं । ३. MBP महु; gloss in M मिष्टरसम् but in P इक्षुरसम् । ४. MBPK कुसासणेहिं but gloss in K तर्जनकेन ।

चपल पूँछ उठाये हुए बच्छोंका कुल है, और खेलते हुए ग्वालबालोंसे युक्त गोकुल हैं। जहाँ चार-चार अंगुलके कोमल तृण हैं और सघन दानोंवाले धान्योंसे भरपूर खेत हैं।

घत्ता—उस मगध देशमें चूनेके धवल भवनोंवाला नेत्रोंके लिए आनन्ददायक राजगृह नामका समृद्ध नगर है, जो ऐसा लगता है मानो कुलाचलरूपी स्तनोंको धारण करनेवाली वसुमती-रूपी नारीने आभूषण धारण कर रखा हो ॥१२॥

१३

जिसके उद्यान-वन, कुलोंके समान, संकेतागत विरहीजन [संकेतसे जिनमें विरहीजन आते हैं / पक्षमें जिनमें संकेतसे विरहीजन नहीं आते], साशोकप्रवर्द्धितकंचन [जिनमें अशोक वृक्षोंके साथ चम्पक वृक्ष बढ़ रहे हैं / पक्षमें, हर्षके साथ स्वर्ण बढ़ रहा है], बहुलोक दत्त नाना फल (बहुत लोकोंमें नाना प्रकारके फल देनेवाले) और धर्मोज्ज्वल (धर्म/अर्जुन वृक्षसे उज्ज्वल, धर्मसे उज्ज्वल) हैं। जहाँ उद्यान, मधु (पराग और मद्य) के कुल्लोंसे सिंचित भावी रणके समान हैं। जो विभरित (विस्मृत और विस्मित कर देनेवाले) आभरणोंसे अंचित हैं, जो सीमन्तिनियोंके चरणकमलोंसे आहत हैं, जो बढ़ते हुए वृक्षोंसे वृद्धिको प्राप्त हो रहे हैं, जिनमें (उद्यानोंमें) कोयलोंके द्वारा मान्य सुभग 'आण' शब्द किया जा रहा है, (रण में) प्रियाओंके द्वारा मान्य सुभग आज्ञा शब्द (गजमुक्ता लाओ, युद्ध जीतकर आना इत्यादि) किया जा रहा है, जहाँ (उद्यानोंमें) बाण और अर्जुन वृक्ष दिखाई दे रहे हैं, जहाँ (रण में) धनुष और बाण दिखाई दे रहे हैं। जहाँ (उद्यानों और युद्धमें) सूर्य एवं शूरवीरोंकी प्रभाका विचरण अवरुद्ध हो रहा है, जहाँका जल नवयौवनकी तरह उत्कलित (कल्लोलमालासे शोभित और कलि रहित) है, जो सज्जनोंके मनोंकी तरह अत्यन्त स्वच्छ है, मत्स्योंके द्वारा मान्य जो जल दूसरोंके कार्यके समान शीतल है। जहाँ (सरोवरोंमें) कमलने अपना काँटोंसे भयंकर, लोगोंको नोचनेवाला नाल पानीमें छिपा लिया है, तथा विकासको प्राप्त होता हुआ कोश बाहर रख छोड़ा है, बताओ कौन गुणोंसे अपने दोषको नहीं ढकता। जहाँ-जहाँ भ्रमर है, वहाँ-वहाँपर वह लक्ष्मीके नेत्रोंके अंजनके संग्रहके समान शोभित होता है।

घत्ता—पवनसे उड़ता हुआ, सुनहला, मिश्रित कुसुम-पराग मुझ कवि (पुष्पदन्त) को ऐसा लगता है, मानो सूर्यरूपी चूड़ामणिवाली आकाशरूपी लक्ष्मीने कंचुकी—वस्त्र पहन रखा हो ॥१३॥

१४

जहाँ क्रीड़ापर्वतोंके शिखरोंके भीतर कोमल दलवाले लतागृहोंमें पक्षीगण थोड़ा-थोड़ा दिखना, और विटोंके द्वारा मान्य कामकी अव्यक्त ध्वनि करना सीख रहे हैं। जहाँ पके हुए धान्यके खेतोंसे भूमि ऐसी शोभित है मानो उसने उपरितन वस्त्रके प्रावरण (दुपट्टे) को ओढ़ रखा हो। जो (प्रावरण) लम्बा, पीला और गिरते हुए शुकोंके पंखोंके समान चंचल है। जहाँ अनेक गोधन जौ, कंगु और मूँग खाते हैं, फिर घास नहीं खाते। जहाँ गोपालबाल रसका पान करते हैं और गुलाबके फूलोंकी सेजपर सोते हैं। जहाँ क्रोध करनेवाले शुकने अपनी चोंचसे आम्रकुसुमकी मंजरीको आहत कर दिया है। जहाँपर समतल राजमार्ग शोभित है। उसपर वाहनोंके पैरोंसे आहत धूल फैल रही है। जहाँ सईसोंके द्वारा घोड़े घुमाये जा रहे हैं, जैसे खोटे शासकोंसे अज्ञानीजनोंको घुमाया जाता है। महावतोंके द्वारा हाथी वशमें किये जा रहे हैं, जैसे सपेरोंके द्वारा

आसयर दिंति सिक्खावयाइं णं मुणिवर गुणसिक्खावयाइं ।
कप्पूरविमीसु पवासिएहिं जहिं पिज्जइ सलिलु पवासिएहिं ।

घत्ता—ससिपहपायारहिं[5] गोउरदारहिं जिणवरभवणसहासहिं ॥
मढदेउलहिं विहारहिं घरवित्थारहिं वेसावासविलासहिं ॥१४॥

१५

जं सोहइ जहिं अविहंडियाइं गयणं[1] व केउसयमंडियाइं ।
सिरि[2] णिहियकणयकलसइं घराइं णावइ अहिसित्तजिणेसराइं ।
अवियाणियकरदप्पणविसेसि माणिक्कखइभित्तीपएसि ।
दीसइ सबिंबु महुमत्तियाहिं मण्णिवि सवत्ति हम्मइ तियाहिं ।
जहिं अलिउलु अलयावलि मिलंतु णिद्धाडिउ सासाणिलि घुलंतु ।
अंगणवावीसयदलहु जाइ जलकीलिरबालावयणि ठाइ ।
संजणियबहलमयरंदरंगु जहिं सररुहु संबोहइ पयंगु ।
तं चेय खुडइ मत्तउ विहंगु सिरिहरहो असुंदरु दुट्ठसंगु ।

घत्ता—जहिं दीसइ तहिं भल्लउ णयरु णवल्लउ ससिर[3]विअंतविहूसिउ ॥
उवरिविलंबियतरणिहे सग्गें धरणिहे णावइ पाहुडु पेसिउ ॥१५॥

१६

जहिं मणहरु सोहइ हट्टमग्गु बहुसंथउ णं जडचट्टवग्गु ।
जहिं णेहहो भरिउ विहाइ माणु पूरिउ पत्थेण[1] कणेहिं दोणु ।
कामिणिकमवियलियकुंकुमेण णिल्हसइ जंतु जहिं जणु कमेण ।
कणिरे[2]णियसुकिंकिणिणीसणेहिं गुप्पइ णिवडंतहिं भूसणेहिं ।
खुप्पइ गयमयहयफेणपंकि तंबोलुग्गालइ जणियसंकि ।
जहिं राउलु रेहइ रयणजडिउ णं अमरविमाणु णहाउ पडिउ ।
जहिं धूवधूमकयसणवियार जलहरभंतिएं णच्चंति मोर ।
जहिं विजयवडहदुंदुहिसरेहिं सुव्वइ[3] ण किं पि णारीणरेहिं ।
णवदिणयरकरतंबिरइ गोसि वित्थिण्णइ जहिं पंगणपएसि ।

घत्ता—झेंदुउ जयसिरिसारहिं रायकुमारहिं चलचोवाणहिं ताडिउ ॥
जणियजणाणूरायहिं परकइवायहिं णायइ लोउ भमाडिउ ॥१६॥

१७

तहिं सेणिउ णामें अत्थि राउ गारुडगुरु व्व विण्णायणाउ ।
कज्जेसु दच्छु संजायवेउ रिउवंसडहणि णं जायवेउ ।

---

५. MBP जलपरिहापायारहिं ।

१५. १. MBP गयणंयलि । २. M सिरणिहिय° । ३. M °रविअंति विहूसिउ ।

१६. १. P पत्थेहिं । २. MBP कणिरणियकिंकिणी° । ३. P सुम्मइ ।

साँप वशमें किये जाते हैं। सवारोंके द्वारा हाथी और घोड़े रोके जा रहे हैं, जैसे निराश आचार्यों द्वारा शिष्योंको रोक लिया जाता है। खच्चरोंको शिक्षा शब्द कहे जा रहे हैं, मानो मुनिवर गुणव्रतों और शिक्षा व्रतोंको दे रहे हैं। जहाँ प्याउओंपर ठहरे हुए प्रवासियोंके द्वारा कपूरसे मिला हुआ पानी पिया जाता है।

घत्ता—जिनके परकोटे चन्द्रमाकी प्रभाके समान हैं ऐसे, गोपुर द्वारवाले हजारों जिन-मन्दिरों, मठों, देवकुलों, विहारों, गृह विस्तारों, वेश्याओंके आवासों और विलासोंमें-से ॥१४॥

१५

जो उसी प्रकार शोभित हैं कि जिस प्रकार निरन्तर सैकड़ों ग्रहोंसे आकाश। जिनके अग्र-भागपर स्वर्णकलश रखे हुए हैं, ऐसे घर इस प्रकार मालूम होते हैं, मानो उन्होंने जिनभगवान्‌का अभिषेक किया हो। जिनमें हाथके दर्पण विशेष ज्ञात नहीं होते, माणिक्योंसे रचित ऐसी दीवारोंमें, मदिरासे मत्त स्त्रियोंको अपना बिम्ब दिखाई देता है, सौत समझकर वह उनके द्वारा पीटा जाता है, जहाँ भ्रमर समूह अलकावलीसे घुल-मिल गया है, लेकिन चक्राकार घूमते हुए उसे श्वासके पवनने निकाल दिया है। वह आँगनकी बावड़ीके कमलोंपर जाता है, और पानीमें क्रीड़ा करती हुई बालाके शरीरपर बैठता है वहाँ, जिसे प्रचुर पराग प्रेम उत्पन्न हो गया है ऐसे कमलको सूर्य सम्बोधित करता है, (उसे खिलाता है) उसीको मतवाला हंस खुटक लेता है। श्रीधर (कमल और धनवान्) का दुष्ट साथ असुन्दर होता है।

घत्ता—वह नगर जहाँ देखो वहीं भला तथा चन्द्रकान्त-सूर्यकान्त मणियोंसे भूषित नया दिखाई देता है। जिसके ऊपर सूर्य विलम्बित है ऐसी धरतीके लिए मानो स्वर्गने उसे उपहारके रूपमें भेजा हो ॥१५॥

१६

जहाँ मनोहर हाट-मार्ग शोभित हैं, जो मानो बहुसंस्तृत (रत्नमणि आदि वस्तुओं / अनेक शस्त्रोंवाला) मूर्ख शिष्यवर्ग हो। जहाँ मान, (तेल मापनेका पात्र), स्नेह (तेल) से भरा हुआ शोभित है। जहाँ प्रस्थ (अन्न मापनेका पात्र) के द्वारा द्रोण इस प्रकार भर दिया गया है जिस प्रकार बाणोंसे द्रोणाचार्य आच्छादित कर दिये गये थे। स्त्रियोंके पैरोंसे विगलित कुमकुमसे युक्त मार्गसे जाता हुआ मनुष्य फिसल जाता है। रुनझुन करती हुई किंकिणियोंके स्वरों-वाले गिरते हुए गहनोंसे वह गिर पड़ता है। गजोंके मद और घोड़ोंके फेनोंकी कीचड़में और शंका उत्पन्न करनेवाले ताम्बूलोंकी पीकमें खप जाता है। जहाँ रत्नोंसे विजड़ित राजकुल ऐसा लगता है मानो आकाशसे अमरविमान आ टपका हो। जिन्हें धूपके धुएँसे मनमें शंका उत्पन्न हो गयी है ऐसे मयूर जहाँ मेघोंकी भ्रान्तिसे नृत्य करते हैं, जहाँ विजय नगाड़ोंकी दुन्दुभियोंके स्वरोंके कारण नर-नारियोंको कुछ भी सुनाई नहीं देता। जहाँ प्रांगण प्रदेशमें नवदिनकर की किरणोंसे आरक्त प्रभातके फैलनेपर—

घत्ता—विजयश्रीमें श्रेष्ठ राजकुमारोंके द्वारा चंचल चौगानोंसे प्रताड़ित गेंद ऐसी मालूम होती है, मानो लोगोंमें अनुराग उत्पन्न करनेवाले, परमतके वादी कवियों द्वारा लोगोंको भ्रमित कर दिया गया हो ॥१६॥

१७

उसमें श्रेणिक नामका राजा है जो गारुड़ गुरु (गरुड़ विद्याका जानकार) के समान, विज्ञातणाय (नागोंका जानकार / न्यायका जानकार) है जो कार्योंमें कुशल फुरतीबाज और

सीयामणु व्व रामाहिरामु सूरो इव परदुल्लंघधामु ।
णियसमयणिसेवियइट्ठकामु पावणि व पयंडुद्दामथामु ।
पविदंडो इव णिद्दलियलोहु मयमारउ व्व णासियमओहु ।
वयधारि व गुरुयणि मुक्कमाणु सुरवरकरि व्व अविहंडदाणु ।
जोईसरु व्व हयरोसहरिसु णं खत्तधम्मु थिउ होवि पुरिसु ।
जाणइ विग्गह[1] संधाण ठाणु णं वेयायकरणु[2] महापहाणु ।
सत्तंगु वि पालइ रज्जु केम पयईणिबद्धु णियदेहु जेम ।
पवणो इव फेडियमंदमेहु गोवालु व कयमहिसीसणेहु ।
मंडलियमउडपरिहिट्ठचरणु जिणणाहु व णिहिलणिरायसरणु ।
घत्ता—णवरेक्कहिं[3] दिणि राणउ सो आसीणउ[4] सिंहासणि दोहरकरु ॥
चेल्लिणिदेविहि[5] मंडिउ णं अवरुंडिउ वल्लरीइ सुरतरुवरु ॥१७॥

१८

अतुलियबल[1]खलकुलपलयकालु जामच्छइ मेइणिसामिसालु ।
तामायउ तहिं उज्जाणवालु सिरसिहरचडावियबाहुडालु ।
अणवरयविहियसामंतसेव सो पभणइ भो भो णिसुणि देव ।
कुसुमसरपसरपसमणसमत्थु णीसेसमंगलासउ पसत्थु ।
अहिमयरखयर[2]णरणमियपाउ तेल्लोक्कणाहु जिणु वीयराउ ।
आहंडलणिम्मियसमवसरणु चउदेवणिकायाणंदकरणु ।
चउतीसातिसयविसेसवंतु अरहंतु[5] महंतु अणंतु संतु ।
परमप्पउ परमु महाणुभाउ तित्थयरु वीरु देवाहिदेउ ।
उप्पाइयकेवलु[3] विमलणाणु अट्ठविहपाडिहेराहिहाणु ।
जगदुरियतिमिरणिहणेक्कभाणु विउलइरि[4] पराइउ वड्ढमाणु ।
तं णिसुणिवि दुज्जणहिययसल्लु परपुरदावाणलु सुहडमल्लु ।
परिवड्ढियजिणधम्माणुराउ आसणु मुएवि रायाहिराउ ।
लहु पणविउ सत्तपयाइं गंपि एहउ थुइवयणु करंतु किं पि ।

---

१७. १. MBP विग्गहु संधाणु ठाणु । २. MBP वइयाकरणु । ३. MBP अवरेक्कहिं । ४. P सह आसीणउ । ५. M चेल्लणदेवी°; B चेल्लिणि° P चेल्लणदेविहि ।

१८. १. B °बलु । २. M °खयरणिव° । ३. MB °केवलविमल° । ४ M विउलइर । ५. MBP कहंतु । MBP have at the commencement of this Samdhi the following stanza in praise of the poet and his patron :—

आदित्योदयपर्वताद्गुरुतराच्चन्द्रार्कचूडामणे–
रा हेमाचलतः कुशेशनिलयादा सेतुबन्धाद् दृढात् ।
आ पातालतलादहीन्द्रभवनादा स्वर्गमार्गं गता
कीर्तिर्यस्य न वेद्मि भद्र भरतस्याभाति खण्डस्य च ॥

GK give it at the beginning of the third Samdhi and havc उरुतरात् for गुरुतरात्; चूलामणेः for चूडामणेः and कीर्तिः कस्य न वेत्ति for कीर्तिर्यस्य न वेद्मि ।

मानो शत्रुओंके वंशको जलानेमें अग्नि। सीताके मनके समान, जो रामाभिराम (जिसे राम और रामा सुन्दर है), है जो सूर्यके समान दूसरोंके द्वारा अलंघ्य है। जो अपने समयके अनुसार कार्योंको सम्पादित करनेवाला है, जो हनुमान्‌के समान अपना स्थैर्य प्रकट करनेवाला है, वज्रदण्डकी तरह, जिसने लोह (लोहा / लोभ) को नष्ट कर दिया है, जो व्याधाकी तरह मयसमूह (मद / मृग समूह) को नष्ट करनेवाला है, व्रतधारीकी तरह जो गुरुजनोंके प्रति विनीत है, ऐरावत गजकी भाँति जो अखण्डित[1]दानवाला है, योगीश्वरके समान, क्रोध और हर्षको नष्ट करनेवाला है, मानो क्षात्रधर्म ही पुरुष रूपमें स्थित हो गया हो। वह विग्रह और सन्धिके स्थानको जानता है, मानो वह महामुख्य वैयाकरण हो। वह सप्तांग राज्यका पालन इस प्रकार करता है, जैसे प्रकृतियों[1]से निबद्ध उसकी देह हो। पवनके समान जिसने मन्दमेह (मन्द मेघ / मेधा—बुद्धि) को नष्ट कर दिया है। गोपालके समान जो महिषी (पट्टरानी और भैंस) से स्नेह करनेवाला है। जिनके चरण माण्डलीक राजाओंके मुकुटोंसे घर्षित हैं ऐसा वह जिनेन्द्रनाथके समान निखिल मनुष्य राजाओंकी शरण है।

घत्ता—एक दिन लम्बी बाँहोंवाला वह राजा अपने सिंहासनपर बैठा हुआ था। चेलना देवीसे शोभित वह ऐसा जान पड़ता था मानो नवलताओंने कल्पवृक्षको आलिंगित कर लिया हो ॥१७॥

१८

अतुलित बलवाला, शत्रुकुलके लिए प्रलयकालके समान, धरतीका श्रेष्ठ स्वामी वह राजा जब बैठा हुआ था कि इतनेमें, जिसने सिररूपी शिखरपर अपनी बाहुरूपी डालें चढ़ा रखी हैं,[2] ऐसा उद्यानपाल वहाँ आया। अनवरत सामन्तोंकी सेवा करनेवाला वह कहता है—"हे देव, सुनिए, कामदेवके बाणोंके प्रसारको शान्त करनेमें समर्थ, समस्त मंगलोंके आश्रय, प्रशस्त, सूर्य, विद्याधर और मनुष्योंके द्वारा वन्दनीय-चरण, त्रिलोक स्वामी जिन, वीतराग, इन्द्रके द्वारा जिनका समवसरण बनाया गया है, जो चारों निकायोंके देवोंको आनन्द देनेवाले चौंतीस अतिशय विशेषोंसे युक्त हैं, ऐसे अर्हत् महान् अनन्त सन्त परमात्मा परम महानुभाव वीर तीर्थंकर देवाधिदेव जिन्हें केवलज्ञान उत्पन्न है, ऐसे विमलज्ञानवाले, आठ प्रातिहार्योंके चिह्नोंवाले, विश्वके पापरूपी अन्धकारको दूर करनेके लिए एकमात्र सूर्य, स्वामी वर्धमान विपुलाचलपर आये हैं। यह सुनकर, शत्रुओंके हृदयोंके लिए शल्यके समान, शत्रुनगरके लिए दावानल, सुभटोंमें मल्ल, तथा जिसका जिनधर्मके लिए अनुराग बढ़ रहा है ऐसे उस राजाधिराजने आसन छोड़कर, शीघ्र सात पैर चलकर, निम्नलिखित स्तुति वचन कहते हुए प्रणाम किया।

---

१. सप्तधातुओंसे। २. लम्बे हाथोंवाला।

घत्ता—जय पयपणमियसुरगुरु जय तिहुयणगुरु सामिय सयलपयाहिय ॥
जय णिहयणियामय भरहणियामय पुप्फयंततेयाहिय ॥१८॥

इय महापुराणे तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारे महाकइपुप्फयंतविरइए महाभव्वभरहाणुमण्णिए महाकव्वे सम्मइसमागमो णाम पढमो परिच्छेओ समत्तो ॥ १ ॥

॥ संधि ॥ १ ॥

घत्ता—बृहस्पति जिनके चरणोंमें प्रणत हैं ऐसे हे त्रिभुवन गुरु और समस्त प्रजाका हित करनेवाले, आपकी जय हो। अपने समस्त रोगोंका नाश करनेवाले तथा भरतक्षेत्रके नियामक सूर्य और चन्द्रसे भी अधिक तेजवाले जिन, आपकी जय हो ॥१८॥

इस प्रकार त्रेसठ महापुरुषोंके गुणालंकारवाले महापुराणमें महाकवि पुष्पदन्त
द्वारा विरचित तथा महाभव्य भरत द्वारा अनुमत महाकाव्यका सन्मति
समागम नामका पहला परिच्छेद समाप्त हुआ ॥१॥

संधि २

पणिवोंउ[1] करेवि पसण्णमणु भत्तिरायरह[2]सुच्छलिउ ॥
सो णरवइ सहुं णियपरियणिण पासु जिणिंदहु संचलिउ ॥ ध्रुवकं ॥

१

पहयाणंदभेरि बलु चल्लिउ   पुरणारीयणु ह[3]रिसुप्पेल्लिउ ।
भाविणि का वि देवँ[4]गुणभाविणी   चलिय सँ[5] कमलहत्थ णं गोमिणि ।
का वि सचंदण सहइ महासइ   णं मलयइरिणियंववणासइ ।
कुवलउ का वि लेइ जसधारिणि   णं वररायवित्ति रिउदारिणि ।
रुप्पयथालु का वि घुसिणालउ   ससिबिंबु व संझारायालउ ।
पवरकसणगंधोहकरंवउ   उवरज्झंतु व णं[6]वरबिंबिंवउ ।
कणयवत्तु काइ वि करि धरियउ   इंदणीलमउ मोत्तियभरियउ ।
णावइ णहयलु उडुविप्फुरियउ   गुरुचरणारविंदु संभरियउ ।
का वि ससंख समुद्दसही विव   का वि सकलस णिहाणमही विव ।
का वि सदप्पण वेसावित्ति व   का वि सरस कइकव्वपउत्ति व ।
का वि जिणिंदभत्तिपब्भारें   णच्चइ भरहभाववित्थारें ।
काहि वि विट्ठउ पयडु थणत्थलु   णाइं णिरंगकुंभिकुंभत्थलु ।
मयणंकुसवणरेहा[7]रुणियउ   समवंतेण पिएँ[8]ण ण गणियउ ।
काहि वि घुलइ[9] हारु मणिमंडिउ   णावइ कामें पासउ मंडिउ ।
झल्लरिपडहमुइंगसहासहिं   वज्जंतहिं जयजयणिग्घोसहिं ।

घत्ता—आरूढउ[10] महिवइ मत्तगइ मयजलघुलियचलालिगणे ॥
णं महिहरि केसरि खरणहरु पवणुल्ललियतमालवणे ॥१॥

२

चोइउ कुंजरु कमसंचारें   गंडालीणभमरझंकारें ।
चामरचवलें छत्त[1]धारें   गच्छमाणु सहुं[2] णियपरिवारें ।
पत्तु णरेसरु तियसरवण्णउं   दिट्ठउ समवसरणु वित्थिण्णउं ।
णिम्मिउं सइं सोहम्मपहाणें   ठियउ एक्कजोयणपरिमाणें ।
माणखंभमणितोरणदामहिं   कप्पियकप्पपायवारामहिं ।
जलखाइयधूलीपायारहिं   तियससरासणवण्णवियारहिं ।

---

१. १. M पणवाउ । २. MB °रयसु° । ३. MBP रहसुप्पेल्लिउ । ४. MBP देवगुरुभाविणी । ५. MBP सहत्थकमल । ६. P णं रवि° । ७. MBP °वणियउ । ८. BP पिएण व । ९. MBP घुलिय । १०. MBP आरूढु महीवइ ।

२. १. M छत्तें धारें; P छत्ताधारें । २. P णिय सह परिवारें ।

सन्धि २

प्रणाम कर प्रसन्न मन, भक्तिराग और हर्षसे उछलता हुआ वह राजा अपने परिजनके साथ जिनेन्द्र भगवान्‌के पास चला।

१

आनन्दकी भेरी बजाकर सेना चली। नगरका नारी-समूह हर्षसे प्रेरित हो उठा। देवके गुणोंकी भावना करनेवाली कोई भामिनी हाथमें कमल लेकर इस प्रकार चली, मानो लक्ष्मी हो। चन्दन सहित कोई महासती ऐसी शोभित होती है मानो मलयपर्वतके ढालकी वनस्पति हो। कोई यशस्विनी कुवलय (नीलकमल) को लेती है, वह ऐसी मालूम होती है, मानो शत्रुका विदारण करनेवाली श्रेष्ठ राजाकी वृत्ति हो। कोई केशरसे युक्त चाँदीका थाल लेती है जो सन्ध्यारागसे युक्त चन्द्रबिम्बके समान लगता है। श्रेष्ठ काली गन्ध (कालागुरु) के समूहसे सहित वह (थाल) ऐसा प्रतीत होता है मानो राहुसे ग्रस्त नवसूर्य बिम्ब हो। किसीने स्वर्णपात्र अपने हाथमें ले लिया, इन्द्रनील मणियोंवाला और मोतियोंसे भरा हुआ जो नक्षत्रोंसे विस्फुरित आकाशके समान जान पड़ता है। किसीने गुरुके चरण-कमलोंका स्मरण किया। शंखसे युक्त कोई समुद्रकी सखीके समान जान पड़ती है। कलशसे सहित कोई खजानेकी भूमिके समान है। कोई वेश्यावृत्तिके समान दर्पण सहित है। कोई कविकी काव्य-उक्तिके समान सरस है। कोई जिनेन्द्रकी भक्तिके प्रभारके कारण भरतमुनिके संगीतके विस्तारके साथ नृत्य करती है। किसीका खुला हुआ स्तन-स्थल कामदेवरूपी महागजके कुम्भ-स्थलकी तरह दिखाई दे रहा है। मदनांकुश (नखों) के घावोंकी रेखासे लाल होनेपर भी उस (स्तन-स्थल) पर उपशमभावसे युक्त प्रियने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। किसीका मणिमण्डित हार ऐसा प्रतीत होता था, मानो कामदेवने अपना पाश मण्डित कर लिया हो। बजते हुए हजारों झल्लरी, पटह और मृदंग आदि वाद्यों तथा जय-जय शब्दोंके साथ—

घत्ता—मदजलके कारण मँडराते हुए चंचल भ्रमरोंसे युक्त मत्तगजपर राजा ऐसा सवार हो गया, मानो पवनसे आन्दोलित तमालवनवाले पहाड़पर तीव्र नखवाला सिंह आरूढ़ हो गया हो ॥१॥

२

महावतने पैरोंके संचालनसे हाथीको प्रेरित किया। गण्डस्थलमें लीन भ्रमरोंकी झंकार तथा चमरोंसे चपल, तथा छत्रोंकी छायावाले अपने परिवारके साथ जाता हुआ राजा वहाँ पहुँचा और उसे देवोंसे रमणीय विस्तृत समवसरण दिखाई दिया। जिसे सौधर्म्य स्वर्गके इन्द्रने स्वयं निर्मित किया था और जो एक योजन प्रमाण क्षेत्रमें स्थित था। जो मानस्तम्भों और मणियोंके वन्दनवारों, कल्पित कल्पवृक्षोंके उद्यानों, जलपरिखाओं और धूलिप्राकारों, चैत्यगृहों, नाना

[३]वेल्लीवणपरिभमियमरालहिं चेईहरणाणाणडसालहिं ।
सुरणरविसहरथोत्तवमालहिं खयरुच्चाइयकु[४]सुमोमालहिं ।
गंभीरहिं भुवणयलाऊरहिं वज्जंतहिं बहुमंगलतूरहिं ।
स रि ग म प ध णी सरसंघायहिं तुंबुरुणारयगेयणिणायहिं ।
उव्वसिरंभाणच्चणभावहिं कणरणंतआलावणिरावहिं ।
जं रेहइ तहिं राउ पइट्ठउ परमेसरु सवडंमुहु दिट्ठउ ।

घत्ता—सी[५]हासणसिहरासीणु जिणु णिम्मलु ज[६]णजणणत्तिहरु ॥
पारद्धउ थुणहुं णराहिविण भुवणंभोरुहदिवसयरु ॥२॥

३

जय सयल- भुवणयल-।
मलहरण इसिसरण ।
वरचरण- समधरण ।
भवतरण ज[१]रमरण-।
परिहरण जय वरुण-।
वइसवण- जमपवण-।
दणुदमण- सिरिरमण-।
दिवसयर- फणिखयर-।
ससिजलण- सिरणमण-।
मउडयल- मणिसलिल-।
धु[२]यविमल- कमकमल ।
जय णिहिल- विहिकुसल ।
णयमुसल- हयपवल-।
सुयसबल- दियकविल-।
सिवसुगय- क[३]इकुणय-।
वहदलण म[४]यमलण ।
सवरहिय दु[५]हरहिय ।
मुणिमहिय महमहिय ।
सुरहिरस- विससरिस ।
कुसुमसर- अणवसर ।
जय दुरह- हरिसरह ।
बुहतिलय सुहणिलय ।
रइविलय जुइवलय ।
जियतरणि जय करुणि ।

---

३. M वल्लिय° । ४. MBP सुकुसुममालहिं । ५. MBP सिंहासण° । ६. B जिणु जणणत्ति° ।

३. १. B जलमरण । २. BP धुवविमल । ३. MBP कयकुणय° but GK कइकुणय and T कविकुनय° ।
४. MBP मयमहण । ५. B omits दुहरहिय ।

नाट्यशालाओं, सुरों, नटों और विषधरोंके स्तोत्रों, कोलाहलों, विद्याधरोंके द्वारा उठायी गयी पुष्पमालाओं, भुवनतल आपूरित करनेवाले बजते हुए मंगलवाद्यों, सा रे ग म प ध नी स आदि स्वरोंके संघातों, तुम्बुरु और नारदके गीतविनोदों, उर्वशी और रम्भाके नृत्यभावों तथा बजती हुई वीणाओंके स्वरोंसे शोभित था। ऐसे समवसरणमें राजाने प्रवेश किया और सामने परमेश्वरको देखा।

घत्ता—सिंहासनके शिखरपर आसीन, पवित्र, लोगोंकी जन्मपीड़ाका हरण करनेवाले, विश्वरूपी कमलके लिए सूर्यके समान वीर जिनेन्द्रकी राजाने स्तुति प्रारम्भ की ॥२॥

३

समस्त भुवनतलका मल दूर करनेवाले, आपकी जय हो। ऋषियोंके शरणस्वरूप श्रेष्ठ चरण तथा समता धारण करनेवाले, भवसे तारनेवाले, बुढ़ापा और मृत्युका हरण करनेवाले, यम, पवन और दनुका दमन करनेवाले, लक्ष्मीसे रमण करनेवाले, मुकुटतलके मणियोंके जलसे जिनके पवित्र चरणकमल धोये गये हैं ऐसे हे समस्त विधानमें कुशल, आपकी जय हो (मुनिधर्म और गृहस्थ धर्मकी रचनामें)। न्यायरूपी मूसलसे प्रबलोंको आहत करनेवाले, शास्त्रोंसे सबल, द्विज, कपिल, शिव और सुगतके कुनयोंके पथको नष्ट करनेवाले, मदका नाश करनेवाले, स्वपर भावसे शून्य तथा दुःखसे रहित, मुनियोंसे पूज्य महामहनीय, दुग्धरस और विषके रसमें समानभाव रखनेवाले, कामदेवकी पहुँचसे परे, हे देव आपकी जय हो। पापरूपी सिंहके लिए अष्टापदके समान, पण्डितोंमें प्रवर, सुखके निवास, रतिका विलय करनेवाले, द्युतिके मण्डल, सूर्यको जीतनेवाले हे करुण, आपकी

जडदमिर- मणभमिर-।
घणतिमिर- हरमिहिर।
जय सुमुह जय समह।
जय सुमण जय[6] गयण-।
चुयसुमण- पहँ[7]गमण।
जय[8] चलियघमरिरुह जय ललियसुरकुरुह।
जय[9] गहिरमहुरझुणि जय चरमपरमसुणि।
जय विसयविसिगरुल जयधवल जसधवल।
जय रसियजसवडह गयगरुह जय अरुह।
घत्ता—सीहासणछत्तालंकरिय उत्तारेप्पिणु चउगइहे ॥
[10]जय मयमयणिवहमयाहिवइ मइं णेज्जसु पंचमगइहे ॥३॥

४

इय [1]वंदिवि जिणु पालियरट्ठउ पयारहमइ कोट्ठि णिविट्ठउ।
संभवंतभव[2]भारभयंगउ भूवइ भत्तिभारणवियंगउ।
पुच्छइ महिवइ संजमधारा अक्खहि गोत्तमसामि भडारा।
पावणासु चउवग्गाइण्णउं जेम महापुराणु अवइण्णउं।
तं णिसुणिवि आघोसइ गणहरु वासारत्ति पत्ति णं जलहरु।
सुणि सेणिय मयमोहविहीणहिं अरहंतावलीहिं वोलीणहिं।
णाइ णंतु भाविणिहिं णिरुत्तउ एहउ वीरजिणिंदें वुत्तउ।
पढमु समासमि कालु अणाइउ सो अणंतु जिण[3]णाणें जोइउ।
जगपरिणामहु सो सहयारिउ अरसु अगंधु अरूउ अभारिउ।
मुणइ को वि सम्मत्तवियक्खणु णिच्छयकालु पवत्तणलक्खणु।
घत्ता—भो मुणिपयपंकयभमर णिव तच्चु ण कासु वि हउं रहमि ॥
ववहारकालु परमेट्ठिमुहिं जिह णिसुणिउं तिह तुह कहमि ॥४॥

५

अणुअंतरयरु समउ भणिज्जइ आवलि तेहिं असंखहिं किज्जइ।
ऊसासु[1] वि आवलिहिं दु संखहिं सत्तूसासहिं थोवउ लेक्खहिं[2]।
सत्तहिं थोवएहिं लँवु[3] भणियउं इह पियकारिणितणएं मुणियउं।
होंति महामुणिचित्तावडियहि सड्ढ जि अट्ठतीस लव घडियहि।

---

६. MBP गयणयल° । ७. B णहगमण । ८. B omits this line. ९. B omits this line.
१०. MB जय जय मयणिवह° ।

४. १. MBP वंदिय । २. MBP भवभाव°; K भवभाव° but corrects in to भवभार°; T भवभाव° but explains it as संसारे परावर्ताः प्रचुराः । ३. MBP जिणणाहें ।

५. १. M ओसासु । २. MBP लक्खहिं । ३. MBP लउ ।

जय हो। जड़ोंका दमन करनेवाले, मनको भ्रमित करनेवाले, सघन अन्धकारके लिए सूर्य, हे सुमुख और सम दृष्टि रखनेवाले आपकी जय हो। हे सुमन! आपकी जय, जिनके लिए आकाशसे सुमनोंकी वर्षा की जाती है ऐसे हे आकाशगामी, आपकी जय हो। जिनपर चमर ढोरे जाते हैं, ऐसे आपकी जय। हे सुन्दर कल्पवृक्ष, आपकी जय। हे गम्भीर मधुर ध्वनि, आपकी जय। हे अन्तिम तीर्थंकर आपकी जय। हे विषयरूपी सर्पके लिए गरुड़, विश्वके लिए मंगलस्वरूप यशसे धवल आपकी जय हो। जिनके यशके नगाड़े बज रहे हैं ऐसे हे अनिन्द्य अर्हन्त आपकी जय हो।

घत्ता—सिंहासन और छत्रोंसे अलंकृत तथा मदरूपी मृगोंके लिए सिंहके समान आपकी जय हो। चार गतियोंसे उद्धार कर, आप मुझे पाँचवीं गति (मोक्ष) में ले जायें ॥३॥

४

राष्ट्रका पालन करनेवाला राजा श्रेणिक, इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान्की वन्दना कर, ग्यारहवें कोठेमें जाकर बैठ गया। उत्पन्न होते हुए विश्वभारके भयसे डरकर वह भक्तिके भारसे विनत शरीर हो गया। राजाने पूछा—"संयमको धारण करनेवाले आदरणीय गौतम, बताइए कि पापका नाशक तथा चार पुरुषार्थोंसे परिपूर्ण महापुराण किस प्रकार अवतरित हुआ।" यह सुनकर गौतम गणधरने इस प्रकार घोषणा की कि जैसे पावस ऋतु आनेपर मेघ गरज उठे हों। उन्होंने कहा—'हे श्रेणिक, सुनो। मद और मोहसे रहित अरहन्तोंकी समाप्त हो रही परम्पराका न आदि है, और न होनेवाली परम्पराका अन्त है। वीर भगवान्ने निश्चयरूपसे यह कहा है। सबसे पहले संक्षेपमें बताता हूँ कि काल अनादि और अनन्त है जिसे जिनभगवान्ने अपने केवलज्ञानसे देखा है। इस विश्वके परिणमनमें वही सहायक है, वह अरस, अगन्ध, अरूप एवं भारहीन है। संसारके प्रवर्तनके कारणस्वरूप इस निश्चयकालको, सम्यक्त्वसे विलक्षण कोई विरला मनुष्य ही जान सकता है।

घत्ता—मुनियोंके चरणकमलोंके भ्रमर हे राजन्! मैं किसी भी तत्त्वको छिपा नहीं रखूँगा। परमेष्ठी भगवान्के मुखसे जिस रूपमें व्यवहार कालको मैंने सुना है वह, मैं वैसा ही तुम्हें बताता हूँ ॥४॥

५

एक अणु जितने समयमें आकाशके एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशमें जाता है, उसे समय कहते हैं, असंख्य समयोंकी एक आवली कही जाती है। संख्यात आवलियोंसे एक उच्छ्वास बनता है। सात उच्छ्वासोंका एक स्तोक समझना चाहिए। सात स्तोकोंका एक लव कहा जाता है—ऐसा प्रियकारिणी त्रिशलाके पुत्र महावीरने समझा है। महामुनियोंके चित्तमें आनेवाली नाड़ीमें साढ़े

घडियहिं दोहिं मुहुत्तहु अवसरु   तीसहिं तेहिं जाइ णिसिवासरु ।
तेत्तियहिं जि दियै[4]सहिं विरइज्जइ   मासु महारिसिणाहहिं गिज्जइ ।
बिहिं मासहिं उडु[5]माणु णिबद्धउ   उडुहिं तीहिं पुणु अयणु पसिद्धउ ।
बिहिं अयणिहिं संवच्छरु वुच्चइ   पंचहिं वच्छरेहिं जुगु वुच्चइं[6] ।
बिहिं जुगेहिं दसवरिसइं जायइं   दहगुणियइं सयसंखइ आयइं ।
सउ दहेहिं ताडिज्जइ जामहिं   आवइ अइसहासु वि तावहिं ।

घत्ता—सो सहसु वि दहहउ दससहसु[7] होइ समासिउ मइं णिउणु ॥
ते दह वि दहहिं जइ गुणइ गुणि तो उप्पज्जइ लक्खु पुणु ॥५॥

६

संखाणाणिहिं णिम्मिउं चंगउ   चउरासीलक्खहिं पुव्वंगउ ।
जाणिज्जइ फुडु अक्खियमेत्ती   लक्खसएण जि कोडि पउत्ती ।
पुव्वंगें पुव्वंगु णिहम्मइ   जइ तो इह अवरु वि अवगम्मइ ।
वरिसहं सत्तरि कोडिउ लक्खहं   छप्पण्णेव ताउ संहसंखहं[1] ।
परमागमि जं देवें बद्धउ   पुव्वपमाणु[2] एउ तं लद्धउ ।
पव्वु णउदु कुमुदु वि पउमक्खउ   णलिणु कमलु तुडियउ वि ससंखउ ।
अडडु अममु हाहा हूहू तिह   जाणहि जिणवरेण जाणिउं जिह ।
मउलय लय वि महालइयंगउ   पुणु वि महालयणामपसंगउ ।
सीसपकंपिउ हत्थपहेलिउ[3]   अचलप्पु वि वीरें उम्मीलिउ ।
णाणाणामपमाणहिं भेज्जउ   एत्तिउ कालु होइ संखेज्जउ ।

घत्ता—परमाणु अट्ठ जइ मेलवहिं तो तसरेणु समुब्भवइ ॥
अट्ठहिं तसरेणुहिं पिंडयहिं एक्कु जि रहरेणुउ[4] हवइ ॥६॥

७

अट्ठहिं रहरेणुयहिं समग्गहिं   चिहुरग्गउ अट्ठहिं चिहुरग्गहिं ।
लिक्ख[1] भणिय पुणु अट्ठहिं लिक्खेंहिं[2]   सियसिद्धत्थु कहिउ णिहयक्खहिं ।
अट्ठहिं सरिसवेहिं परिमाणिउ   जवपमाणु देवागमि आणिउं[3] ।
परमप्पयदिट्ठउ को दूसइ   अट्ठजवंगुल सूरि समासइ ।
छंगुलु पाउ विहत्थि दुवाई   दोहिं ताहिं किर रयणि वि हूई ।
चउरयणिलु दंडु भणि भावहि   दंडहिं अट्ठसहासिहिं पावहि ।
जोयणु तं पि सयहिं गुणिज्जइ   पंचहिं[4] पुणु लोयहु दंसिज्जइ ।
एम महाजोयणु वक्खाणिउं   जं जगमाणकरणु अहिमाणिउं ।
तस्स पमाणें खम्मइ खोणी[5]   परिवट्टुलिय सपरियर[6]तिउणी ।

---

४. MBP दिवसहिं । ५. MBP रिउमाणु । ६. MBP सुच्चइ । ७. MBP दससहस ।

६. १. K सहसक्खहं । २. M पुव्वे पमाणु । ३. B हुत्यपहिल्लउ; P °पहिल्लिउ । ४. MBP रहरेणू ।

७. १. MBP लिहिक्ख । २. MBP लिहिक्खहिं । ३. M जाणिउ । ४. MBP पंचहिं लोयहु पुणु वरिसिज्जइ । ५. MBP खोणी । ६. TP सपरिरय and adds सपरिरयेति पाठेऽप्ययमेवार्थः ।

अड़तालीस लव होते हैं। दो घड़ियोंसे मुहूर्तका अवसर बनता है और तीस मुहूर्तोंका दिन-रात होता है। दिनोंसे मास बनता है ऐसा, महाऋषि—नायके द्वारा कहा गया है। दो माहोंसे ऋतुमान बनता है, तीन ऋतुमानोंसे फिर अयन प्रसिद्ध होता है। दो अयनोंसे एक वर्ष बनता है और पाँच वर्षोंका युग कहा जाता है। और दो युगोंसे दस वर्ष बनते हैं। उनमें दसका गुणा करनेपर सौ साल होते हैं। जब १०० में दसका गुणा किया जाता है तो एक हजार वर्ष होते हैं।

घत्ता—दससे आहत होनेपर वह हजार दस हजार होता है, थोड़ेमें मैंने ऐसा गुना है। उन दस हजारका भी जब दससे गुणा किया जाये तो एक लाख उत्पन्न होते हैं ॥५॥

६

संख्याज्ञानियों (गणितज्ञों) ने यह अच्छी तरह जाना है कि चौरासी लाख वर्षोंका एक पूर्वांग होता है। कथन मात्रसे यह जान लिया जाता है कि सौ लाखका एक करोड़ कहा जाता है। जब पूर्वांगसे पूर्वांगका गुणा किया जाये तो और भी संख्या जानी जाती है, सत्तर करोड़ एक लाख छप्पन हजार वर्षोंका एक सह संख्य होता है। परमागम में देव (जिनेन्द्र) ने जैसा निबद्ध किया है, उस पूर्वके प्रमाणको यहाँ जान लिया। पूर्व नियुत कुमुद, पद्म, नलिन, संख सहित तुट्य, अट्ट, अमंग, ऊहांग और ऊहाको उसी प्रकार जानो कि जिस प्रकार जिन भगवान्‌ने कहा है। और भी मृदुलता, लता, महालतांग और फिर महालता नामका प्रसंग आता है। शिर:प्रकम्पित, हस्तप्रहेलिका और अचल काल हैं, उसे महावीर प्रभुने प्रकाशित किया है। इस प्रकार नाना नाम और प्रमाणोंसे विभाजित इतना संख्यात काल होता है।

घत्ता—यदि आठ परमाणुओंको मिला दिया जाये, तो एक त्रसरेणु उत्पन्न होता है और आठ त्रसरेणुओंके मिलनेपर एक रथरेणुकी उत्पत्ति होती है ॥६॥

७

आठ रथरेणुओंके मिलनेपर एक बालाग्र बनता है, आठ बालाग्रोंकी एक लीख कही जाती है। आठ लीखोंसे एक सफेद सरसों बनता है, ऐसा महामुनियोंने कहा है। आठ सरसोंको इकट्ठा करनेपर एक जौका आकार बनता है ऐसा जिनागममें कहा गया है। परमपदमें स्थित लोगोंके द्वारा जो देखा जाता है उसमें कौन दोष लगा सकता है? मुनि लोग संक्षेपमें आठ जौका एक अंगुल बताते हैं। छह अंगुलोंका एक पाद होता है, दो पादकी एक वितस्ति, दो वितस्तियोंका एक रत्नी, चार रत्नियोंका एक दण्ड मनमें भाता है। हजार दण्डोंका एक योजन होता है, उस योजनको आठ हजारसे गुणित किया जाये और फिर उसे भी पाँच सौसे गुणा किया जाये, और फिर लोकको दिखाया जाये। इस प्रकार महायोजन कहा जाता है और जिसे जगको मापनेका आधार समझा जाता है। उसके प्रमाणसे धरती खोदी जाये, अपनी परिधिसे तीन गुनी अधिक गोल-गोल।

कत्तरियहिं अँविहायहिं सुहुमुहुं　　सा पूरिज्जइ सिसुअविरोमहुं ।
होउ पहुचइ लेक्खें म गणहि　　संवच्छरसइ एक्कु जि अवणहि ।
जइयहुं रोमरासि सा खिज्जइ　　तइयहुं पलिओवमु ध्रुवुं पुज्जइ ।
तेहिं असंखिहिं उद्धारुल्लउ　　दीवसमुद्दपमाण परुल्लउ ।
तं पि असंखगुणिउं अद्धारउ　　भवठिदिआउपमाणाधारउ ।
होइ समुद्दोवमु चुअणाडिहिं　　पल्लोवमदहकोडाकोडिहिं ।
घत्ता—तेत्तियहिं जि सायरसमहिं फुडु कालचक्कु मइं लक्खियउ ॥
लइ एउ वि अवरु वि पुणु भणमि केवलणाणें अक्खियउ ॥७॥

८

सुसेमसुसमु अण्णेक्कु वि सुसमउ　　सुसमेंदुसमु पुणु दुस्समेंसुसमउ ।
दुस्समु अइदुस्समु पविहँत्ता　　इय छकाल वीरपण्णत्ता ।
ए ओहामियदावियइड्ढिहिं　　परिभमंति जगि हाणिपवुड्ढिहिं ।
भुयबलविहवसरीरिसरीरहिं　　धम्मणाणगंभीरिमधीरहिं ।
वड्ढंतेहिं होइ उच्छप्पिणि　　ओहट्टंतएहिं अवसप्पिणि ।
सायराहं विभियगिव्वाणहिं　　चउतिदुकोडाकोडिपमाणहिं ।
तीहिं मि कालहिं तिण्णि विहत्तइं　　दहविहविडविपसाहियखेत्तइं ।
दरिसियमाणवदेहारोयइं　　इच्छासंणिहमाणियभोयइं ।
छेंचउदुधणुसहाससरीरइं　　वोरक्खामलमेत्ताहारइं ।
तिण्णिदुएक्कपल्लथियजीवइं　　रयणाहरणविहूसियगीयइं ।
उत्तिमभज्झिमाइं णिकिट्ठइं　　भोयभूमिचिंधाइं पइट्ठइं ।
घत्ता—णउ सत्तु असेसु वि मित्तु तहिं सीहु गइंदें सहुं वसइ ॥
लायण्णवण्णविब्भमभरिउ जणवयजोव्वणु णउ ल्हसइ ॥८॥

९

बहुवोलीणइ तइयइ कालइ　　थियपल्लोवमट्ठभायालइ ।
अट्ठारहधणुसयतणु थिरजसु　　पलिओवमदहमंसु चिराउसु ।
पडिसुइ णामें जायउ कुलयरु　　पुणु तेरहसयचावपईहरु ।
अममियाउ राउ मंथरगइ　　अवरु वि हूवउ णामें सम्मइ ।
पुणु णं माणुसवेसु अणंगउ　　अट्ठसयाइं सरासणतुंगउ ।
अडडपमाणियाउ खेमंकरु　　संभूयउ सुभूयखेमंकरु ।
सत्तसयाइं पंचसत्तरि धणु　　उक्किछउ अण्णु वि उप्पण्णउ मणु ।
खेमंधरु णामें णं दिग्गउ　　तुडियद्दइं जीवेप्पिणु सो मेंउ ।
सयसत्तउ पंचासेंहिं जुत्तउ　　गैत्तपमाणउ जासु पउत्तउ ।
कमलजीवि सीमंकरु भण्णइ　　तहु चरित्तु जइ सुरगुरु वण्णइ ।

---

७. MBP अविभायहिं । ८. MP धुउ; B धुवु । ९. MBP हवइ तियआउ° ।

८. १. MP सुसमुसुसमु । २. MBP सुसमुदुसमु । ३. MBP दुस्समुसुसमउ । ४. P पवहंता but gloss प्रविभक्ताः पृथग्गुणिताः । ५. MBP छचउदुवणुसहास° । ६. MBP विहूसियगीवहिं ।

९. १. MP मुउ । २. MBP पण्णासहिं । ३. MBP गत्तमाणु जगि जासु पउत्त उ ।

और जो कैंचीसे न काटे जा सकें ऐसे सूक्ष्म मेषके बच्चोंके रोमोंसे उसे भरा जाये। जब वह भर जाये तो उसे गिनो मत। सौ सालमें एक बाल निकालो, जब वह रोमराजि समाप्त हो जाये तब निश्चयसे एक व्यवहार पल्य पूरा होता है। उन असंख्य पल्योंसे एक उद्धारपल्य बनता है, और असंख्यात उद्धारपल्योंसे एक द्वीप समुद्र प्रमाण काल बनता है। उसमें भी असंख्यातका गुणा करनेपर एक अद्धा पल्य बनता है जो जन्म, स्थिति, आयु और प्रमाणका धारक होता है। दस करोड़ पल्योंके बराबर घटिकाओंके समाप्त होनेपर एक सागर प्रमाण समय होता है।

घत्ता—इतने ही सागरोंके बराबर कालचक्रको मैंने लक्षित किया है, लो मैं वैसा ही बताता हूँ कि जैसा केवलज्ञानीने कहा है ॥७॥

८

सुषमा-सुषमा एक और सुषमा, सुषमा-दुखमा फिर दुखमा-सुषमा, दुखमा, अति दुखमा भगवान् महावीरके द्वारा विज्ञप्त, ये छह काल विभाजित हैं। यह कालचक्र क्रमशः ऋद्धिको घटाता बढ़ाता हानि और वृद्धिको करता हुआ लोकमें घूम रहा है। जब बाहुबल, वैभव, मनुष्य, शरीर, धर्म, ज्ञान, गाम्भीर्य और धैर्य बढ़ते हैं, तो उत्सर्पिणी काल होता है, और जब ये चीजें घटती हैं तब अवसर्पिणी काल होता है। देवताओंको चकित करनेवाले इन कालोंका समय, क्रमशः तीन, चार और दो कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण होता है, तीनों काल तीन प्रकारसे विभक्त हैं। इनमें दस प्रकारके कल्पवृक्षोंसे प्रसाधित क्षेत्र हैं। मनुष्यके शरीर नीरोग दिखाई देते हैं। इच्छाके अनुसार भोगोंको प्राप्त करते हैं। मनुष्योंके शरीर क्रमशः छह, चार और दो हजार धनुष प्रमाण होते हैं, उनका आहार क्रमशः बेर, बहेड़ा और आँवलेकी मात्राके बराबर होता है। उनकी आयु क्रमशः तीन, दो और एक पल्यकी होती है। शरीर रत्नों और अलंकारोंसे विभूषित होते हैं। इस प्रकार भोगभूमिके चिह्न प्रकट हुए—उत्तम, मध्यम और जघन्य।

घत्ता—जहाँ कोई शत्रु नहीं होता। सभी मित्र हैं। सिंह हाथीके साथ रहता है, तथा लोगोंका लावण्य रंग और विलाससे परिपूर्ण वय और यौवन नष्ट नहीं होते ॥८॥

९

तीसरा काल बीतनेपर, जब पल्योपमके आठवें भाग बराबर समय रह गया, तब प्रतिश्रुति नामका दीर्घायुवाला कुलकर उत्पन्न हुआ, स्थिर यशवाला जो अठारह सौ धनुष प्रमाण शरीरका था उसकी आयु पल्योपमके दसवें भागके बराबर थी। फिर तेरह सौ धनुष प्रमाण शरीरवाला अमितायु और मन्थर गतिवाला सन्मति नामका कुलकर उत्पन्न हुआ। फिर कामदेवके समान तथा आठ सौ धनुष प्रमाण शरीरवाला अडड बराबर आयुसे युक्त प्राणियोंका कल्याण करनेवाला क्षेमंकर कुलकर उत्पन्न हुआ। फिर सात सौ पचहत्तर धनुष प्रमाण शरीरवाला एक और मनु हुआ, उसका नाम क्षेमन्धर था और वह दिग्गज था, जो एक तुट्य वर्ष प्रमाण जीवित रहकर मर गया। फिर जिसका शरीर सात सौ पचास धनुष प्रमाण कहा जाता है ऐसे सीमंकर-

णलिणाउसु किर को णउ मण्णइ बाणासणहं सरीरसमुण्णइ ।
सत्तसयइं पंचुत्तरवीसइं जासु जिणिंदें भडारउ भासइ ।
सिरिकरपल्लवलालियकंधरु सो संजायउ पुणु सीमंधरु ।
पणुवीसुज्झिएहिं दिहिगारउ कोदंडहं सएहिं गरुयारउ ।
तेत्तिएहिं पुणु गुणमणिमंडिउ विमलबाहु हुउ पंडापंडिउ ।
एक्कु वि पोमु जासु संजीविउ मुउ सुहकम्में सुरहरु पाविउ ।
छहसयपणहत्तरिइ पसाहिय जासु देहउच्छेहु पसाहिय ।
कम्मुयाहं कामिणिकयविंभउ णामें सुपसिद्धउ चक्खुब्भउ ।
पउमंगाउ महीयलि अच्छिउ पच्छा खयकालेण णियच्छिउ ।
पुणु वि जसस्सि पुण्णचंदाणणु उप्पण्णउ पत्थिवपंचाणणु ।

घत्ता—उडुमाणइं सयइं कँणासणहं पण्णासाहियाइं गंणमि ॥
तहु देहुंद्धत्तणु एत्तडउ जीविउ कुमुदु एक्कु[10] भणमि ॥९॥

१०

एयहु अक्खियाइं जेत्तियइं जि पंचवीसरहियइं तेत्तियइं जि ।
पुणु जायहु बलतुलियगइंदहु धणुसयाइं अहिचंदणरिंदहु ।
कुमुयंगाउणिबद्धपमाणहु णिउ सो कालें अमरविमाणहु ।
पंचसयइं पुणु सयसंजुत्तइं चावहं जासु जिणेण णिवुत्तइं ।
णउदाउसु महिवइ संजायउ इह चंदाहु णाम विक्खायउ ।
तहु पच्छइ गच्छंतें कालें उच्छिज्जंतें सुरतरुजालें ।
अज्जवलोयहु आसि पहाणउ हुउ मरुएउ णाम बहुजाणउं ।
सायरवीढहं सयइं मह्डि्ढिउ पंच पंचहत्तरइं पवड्ढिउ ।
गउ सो णउयंगउ जीवेप्पिणु थिउ सुरहरि सुरसोंक्खु लएप्पिणु ।
सड्ढइं पंचसयइं रणचंडहं देहपमाणु जासु धणुदंडहं ।
पव्वाउसु पय पालहुं जाणइ पुणु हुउ मणु णामेण पसेणइ ।
कंडमोक्खकरणाइं सउण्णउ पंचसयाइं सवायइं उण्णउ ।
पुव्वकोडिजीवियसंपुण्णउ सुद्धबुद्धि सब्भावाउण्णउ ।
तिहुअणभवणखंभु णं दिण्णउ संतत्तुज्जलकंचणवण्णउ ।
गुरुउद्धरियवंसु वरमेहलु दावियकप्पतरुवरामयहलु ।
भूसणरयणकिरणहयतममलु सयणुतेयउज्जोइयणहयलु ।
मउडसिहरु हारावलिणिज्झरु सरवरसेवाजोग्गधराधरु ।
णं अवयरियउ जंगमु मंदरु णं णहणिवडिउ देउ पुरंदरु ।

---

४. MP जिणिंदु भडारउ । ५. MBP एक्कु पोमु जा सो संजीवउ । ६. MBP कामुयाहं । ७. BP बाणासणहं । ८. MBP गणिउं । ९. MBP देहुच्चत्तणु । १०. MBP भणिउं ।

१०. १. MBP चावहिं । २. MBP चंदाहणामु । ३. MBP उच्छज्जंतें । ४. MBP add after this line दीहबाहु उरयलवित्थिण्णउ । ५. B °वंसु णं मेहलु । ६. M °जोग°; BP °जोग्ग° । ७. MBP जंगममंदरु ।

की आयु कमलांक प्रमाण थी। उसके चरितका वर्णन बृहस्पति ही कर सकता है। नलिनके बराबर आयुवाले उसे कौन नहीं जानता। जिनेन्द्र भगवान्ने जिसके शरीरकी ऊँचाई सात सौ पचीस धनुष प्रमाण बतायी है, तथा जिसके कन्धे लक्ष्मीके कर-पल्लवोंसे लालित हैं ऐसा सीमंधर कुलकर उत्पन्न हुआ। सीमन्धरकी आयुसे पचीस वर्ष कम अर्थात् सात सौ धनुष प्रमाण ऊँचाई-वाला भाग्यशाली पण्डितोंमें चतुर, उतने ही गुणोंसे मण्डित विमलवाहन कुलकर उत्पन्न हुआ, जिसका जीवन एक पद्म प्रमाण था। उसने मरकर स्वर्ग प्राप्त किया। जिसके शरीरकी ऊँचाई छह सौ पचहत्तर धनुष प्रमाण थी। कामिनियोंको विस्मयमें डालनेवाला सुप्रसिद्ध नाम चक्षूद्भव उत्पन्न हुआ। वह एक पद्म समय धरतीपर जीवित रहा। बादमें क्षयकालने उसे समाप्त कर दिया। फिर पूर्णेन्दुके समान मुखवाला और राजाओंमें सिंह यशस्वी नामका कुलकर हुआ।

घत्ता—मैं, पचास अधिक ऋतुओंकी संख्याके बराबर अर्थात् छह सौ पचास धनुष प्रमाण, उसके शरीरकी ऊँचाई गिनता हूँ और उनका जीवन-काल एक कुमुद प्रमाण बताता हूँ ॥९॥

१०

यशस्वीकी जितनी ऊँचाई बतायी गयी है, उसमें पचीस वर्ष कम, अर्थात् छह सौ पचीस धनुष प्रमाण शरीरवाला अभिचन्द राजा हुआ जो शक्तिमें हाथियोंको तौलता था। उसकी आयु एक कुमुदांगके बराबर निबद्ध थी। वह भी समय आनेपर अमरविमानमें चला गया। फिर सौ सहित पांच सौ अर्थात् छह सौ धनुष प्रमाण जिसका शरीर, जिनेन्द्रने बताया है, पल्यके १० हजार करोड़ वर्षके बराबर आयुवाला ऐसा विख्यात चन्द्राभ नामका राजा हुआ। उसके बाद समय बीतनेपर कल्पवृक्षोंकी परम्परा नष्ट होनेपर, आर्यलोकका प्रधान मरुदेव नामका बहुज्ञानी राजा हुआ, जो पचहत्तर सहित पांच सौ अर्थात् पांच सौ पचहत्तर धनुष प्रमाण शरीर-वाला था, वह नौ अंग प्रमाण जीवित रहकर देवशरीर प्राप्त कर स्वर्गलोक चला गया, फिर जिसकी आयु एक पूर्व प्रमाण, जो प्रजाका पालन करना जानता था, ऐसा प्रसेनजित् नामका मनु हुआ। उसका शरीर सवा पांच सौ धनुष प्रमाण ऊँचा था। पूर्वकोटि आयुसे परिपूर्ण जो शुद्ध बुद्धि और सद्भावसे आपूरित था। तपे हुए सोनेके रंगके समान जो मानो त्रिभुवनरूपी भवनका आधार स्तम्भ था। अपने भारी वंशका उद्धार करनेवाला, श्रेष्ठ मेखलासे युक्त, कल्प-वृक्षके अमृतफलोंको दिखानेवाला, आभूषण रत्नोंकी किरणोंसे तममलको नष्ट करनेवाला, अपने शरीरके तेजसे आकाशतलको आलोकित करनेवाला, मुकुटरूपी शिखरसे और हारावलिके निर्झर-से युक्त जो ऐसा लगता था मानो सुरवरोंके सेवायोग्य धराको धारण करनेवाला मन्दराचल ही अवतरित हुआ हो, या मानो आकाशसे इन्द्रदेव गिर पड़ा हो।

घत्ता—हुउ पच्छइ आयहं तेरहहं बाहुद्धारियभुव[8]णभरु ॥
जियलोयहो णाहि व णाहिपहु णरसंथुउ कुलय[9]रु पवरु ॥१०॥

११

णहयलि जंत जणेण ण याणिय[1] पहिलएण रविससि वक्खाणिय ।
अण्णु वि रुइरुक्खक्खइ दिट्ठइं बिंदुयबिंदुएहिं उवरिट्ठइं ।
बीएण वि लोयहु भयरिद्धइं अहरत्तइं णक्खत्तइं सिद्धइं ।
हूया जे मृ[2]ग दारुण जइयहुं तइयएण ते साहिय तइयहुं ।
सिंगि ण[3]क्खि दाढि वि परिहरिया सोम्मँ[4] सुलक्खण णियडइ[5] धरिया ।
चोत्थ[6]एण पुणु णउ उप्पेक्खिउ लोउ मृगँ[7]हिं खज्जंतउ रक्खिउ ।
ताडिय ते दढदंडपहारिहिं पंचमेण बहुबुद्धिपयारिहिं ।
वियलियफल तरु विरइयमेरइ अज्जव सुणिरोहिय णियकेरइ ।
पविरलदुमकालइ कुज्झंता फललोहें कोहें जुज्झंता ।
छट्ठएण मणुणा अ[8]णुयंधें वारिय णर कयसीमाचिंधें ।
घत्ता—कुलयरपवरेण वि स[9]त्तमेण णियमइविहवें [10]भाविउ ॥
पज्ञाणिवि हयगयवरवसहभारारोहणु [11]दाविउ ॥११॥

१२

अट्ठमेण चंगउ उवएसिउ डिंभयदंसणभउ णिण्णासिउ ।
णवमएण सुयमुहससि दरिसिउ तं जोई[1]वि जणु हियवइ हरिसिउ ।
खणु जीवेप्पिणु मुउ सोमालहुं दह[2]में केलि पयासिय बालहुं ।
एयारहमइ कुलयरि जायइ णंदणि माण[3]ववंदहु हूयइ ।
जीउ ण वज्जइ कइवयदिवसइं बारहमइ हुइ बहुयइं वरिसइं ।
णंदइ पय पयाइ संजुत्ती तेरहमेण वियप्पिय वित्ती ।
विहियइं सरिसमुद्दजलजाणइं गयणलग्गगिरिवरसोवाणइं ।
तक्कालइ जायइं णिम्मग्गइं कुसरि कुसायर कुकुहर दुग्गइं ।
घत्ता—जा[4]एं मणुणा चो[5]द्दहमइण णरसिसुणालइ खंडियइं ॥
कसणब्भइं थियइं णहंगणइ चलसोदामणिसंडियइं ॥१२॥

---

८. MBP °भुवणहरु । ९. MBP कुलयरपवरु ।

११. १. M ण जाणिय । २. MBP मिग । ३. M सिंगि य णक्खि; B सिंगणक्खि । ४. MBP सोम । ५. B णियडयधरिया । ६. P चउत्थएण । ७. MBP मिगहिं । ८. MBP अणुबंधें । ९. P सत्तमइ । १०. MBP भावियउ । ११. MBP दावियउ ।

१२. १. P जोएप्पिणु हियवइ । २. P दहमइं । ३. MBP माणवविंदहु । ४. MBP जायएं । ५. MBP चउदहमइण ।

घत्ता—इन तेरह कुलकरोंके बाद, अपने बाहुओंसे भुवनभारको उठानेवाले नरोंसे संस्तुत महान् कुलकर नाभि राजा हुए, जो मानो जीवलोकके लिए धुरीके समान थे ॥१०॥

११

आकाशतलमें जाते हुए जो आदमीके द्वारा नहीं जाने जाते थे, पहले कुलकरने उन्हें सूर्य और चन्द्रमा कहा। और भी जो ज्योतिरंग कल्पवृक्षोंके नष्ट हो जानेपर बिन्दुओं-बिन्दुओंपर स्थित दिखाई देने लगे। दूसरे कुलकरने (सन्मतिने) भी लोकके लिए उत्पातस्वरूप दिन-रात और नक्षत्रोंका कथन किया। और अब जो भयंकर पशु उत्पन्न हुए, तो तीसरेने उनके पशुस्वरूपका वर्णन किया। सींगों, नखों और दाढ़ोंवाले पशुओंको छोड़ दिया और जो सौम्य और सुलक्षण थे, उन्हें अपने पास रख लिया। चौथे कुलकरने भी उपेक्षा नहीं की तथा पशुओंके द्वारा खाये जाते हुए लोककी रक्षा की। पाँचवेंने दृढ़ दण्डोंके प्रहारों और अनेक बुद्धिप्रकारोंसे उन्हें प्रताड़ित किया। छठे कुलकर सीमन्धरने विगलित फलवाले वृक्षोंको मर्यादायुक्त अपनी आज्ञासे सीधे सुनिबद्ध किया। वृक्षोंके उस अभावकालमें नष्ट होते हुए, तथा फलोंके लोभ और क्रोधसे झगड़ते हुए लोगोंको आग्रहके साथ मना किया।

घत्ता—सातवें श्रेष्ठ कुलकरने भी अपनी बुद्धिके वैभवसे विचार किया तथा जीन कसकर अश्व, गज एवं श्रेष्ठ बैलोंपर भार लादना सिखाया ॥११॥

१२

आठवेंने सुन्दर उपदेश दिया और बच्चेके देखनेके डरको दूर कर दिया (उसके पूर्व पिता पुत्रका मुख और आँखें देखे बिना मर जाते थे)। नौवें कुलकर यशस्वीने पुत्रके मुखरूपी चन्द्रमाको देखना बताया। उसे देखकर लोग अपने मनमें प्रसन्न हुए। लेकिन बालक एक क्षण जीवित रहकर मर गया। दसवें कुलकर अभिचन्द (अमृतचन्द्र) ने सुकुमार बालकोंकी क्रीड़ा दिखलायी। ग्यारहवें कुलकर चन्द्राभके होनेपर मानवसमूहके पुत्र उत्पन्न होने लगे। लेकिन कुछ दिनोंके बाद उनका जीव नहीं बचता, बारहवें कुलकर मरुदेवके होनेपर वे जीवित रहने लगे और प्रजा पुत्रादिसे संयुक्त होकर आनन्दसे रहने लगी। तेरहवें कुलकर प्रसेनजित्ने उनकी आजीविकाकी चिन्ता की। उसने समुद्र-नदियोंके लिए जलयान बनाये। आकाशको छूनेवाले पहाड़ोंपर सोपान बनाये गये। उन्हींके समय उत्पाती नदियों और समुद्रोंमें निश्चित मार्ग बनाये गये तथा पहाड़ोंमें दुर्ग रचे गये।

घत्ता—चौदहवें कुलकर नाभिराजके उत्पन्न होनेपर मानव-शिशुओंके नाल काटे जाने लगे, और सुन्दर बिजलियोंसे अलंकृत काले बादल आकाशरूपी आँगनमें स्थित हो गये ॥१२॥

१३

वि[1]सेकालिंदिकालणवजलहरपिहियणहंतरालओ ।
धु[2]यंगयगंडमंडलुड्डावियचलमत्तालिमेलओ ॥
अविरलमुसलसरिसथिरधारावरिसभरंतभूयलो ।
हयरवियरपयावपसरुग्गयतरुतणणीलसद्दलो ॥
पडुतडिवं[3]डणपडियवियडायलरुंजियसीहदारुणो ।
णच्चियमत्तमोरगलकलरवपूरियसयलकाणणो ॥
गिरिसरिदरिसरंतसरसरभयवाणरमुक्कणीसणो ।
महियलघुलियमिलियदुंदु[4]हसयवयसालूरपोसणो ॥
घणचिक्खे[5]ल्लखोल्लखणिखेइयहरिणसिलिंबकयवहो ।
वियसियणवकं[6]लंबकुसुमुग्गयरयपिंजरियदिसिवहो ॥
सुरवइचावतोरणालंकियघणकरिभरियणहहरो ।
विवरमुहोयरंतजलपवहारोसियसविसविसहरो ॥
पियपियपियलवंतबं[7]प्पीहयमग्गियतोयबिंदु[8]ओ ।
सरतीरुल्ललंतहंसावलिझुणिहलबोलसंजुओ ॥
चंपयचूयचारचं[9]वचंदणचिंचिणिपीणियाउसो ।
वुट्ठो झत्ति जस्स कालम्मि जए सुहयारि पाउसो ॥
मुग्गकुलत्थकंगुजवकलवतिलेसीवीहिमासया ।
फलभरणवियकणिसकणलंपडणिवडियसुयसहासया[10] ॥
ववगयभोयभूमिभवभूरुह सिरिणरवइरमासही ।
जाया [11]विविहधण्णदुमवेल्लीगुम्मपसाहणा मही ॥
घत्ता—तं पेक्खिवि[12] जणवउ संचलिउ मउ मेल्लेप्पिणु झत्ति तहिं ॥
लच्छीथणपेल्लियवच्छयलु अच्छइ णाहिणरिंदु जहिं ॥१३॥

१४

किं तडयडइ पडइ फोडइ धर विप्फुरंतु णिरु भेसावइ णर ।
वंकउं हरियारुणु किं दीसइ देव देव किं गज्जइ वरिसइ ।
गयकप्पद्दुम तेत्थु णिसण्णा एवहिं अवर के वि उप्पण्णा ।
अण्णइं कणभरियइं णिप्फण्णइं णिच्चमेव खगमृ[1]गसंचिण्णइं ।
अम्हइं जड उवायअवियाणा दीहरमुक्खायासें रीणा ।
भोज्जाभोज्जु तेत्थु किं होसइ तं णिसुणेप्पिणु महिवइ घोसइ ।
जो रसंतु वरिसइ सो णव[2]घणु जं वंकउं दीसइ तं सुरधणु ।
जा गिरि दलइ चलइ सा विज्जुल चंचरीयचुंबियकोमलदल ।

---

१३. १. MBP विसि° and gloss in P सर्पः । २. P धुव° । ३. P °तडिपडण° । ४. M डिंडुह; P डेंडुह; B डुंडुह । ५. MBP °चिक्खिल्ल° । ६. MBP °कयंब° । ७. MBP °बप्पीहय° । ८. P °बिंदओ । ९. MBP °चव° । १०. MBP °सुयसमासया । ११. M °वण्ण° । १२. MBP पेच्छिवि ।
१४. १. MBP °मिग° । २. MB सिवघणु ।

१३

जिसमें विष यमुना और कालके समान (काले) नवमेघोंने आकाशके मध्यभागको ढँक लिया था, जो गजोंके हिलते हुए गण्डस्थलोंसे उड़ाये गये भ्रमरसमूहके समान था, जिसने अविरल मूसलाधार धारावाहिक वर्षासे भूतलको भर दिया था, जो सूर्यकी किरणोंके प्रतापको नष्ट करनेवाला, निकलते हुए वृक्षों और तृणोंके समान नीले पत्रोंसे नीला और हरा-भरा था, तथा वज्र और बिजलियोंके पतनसे ध्वस्त पर्वतपर गरजते हुए सिंहोंसे भयंकर था, जिसमें नाचते हुए मतवाले मयूरोंके सुन्दर शब्दसे समस्त कानन गूँज उठा था, जिसमें पहाड़की नदियों और घाटियोंमें बहते हुए जलोंके स्वरोंसे भयभीत वानर शब्द कर रहे थे, जो धरतीमें फैले हुए और मिले हुए डुंडुह (निर्विष सांप), सर्पों और मेढकोंको पोषण देनेवाला था, जो कीचड़की कोटरों और गड्ढोंमें रखे हुए मृगशावकोंका वध करनेवाला था, जिसमें खिले हुए नवकदम्बके कुसुमोंसे निकली हुई धूलसे दिशापथ पीले थे, इन्द्रधनुषके तोरणोंसे अलंकृत मेघरूपी गजोंसे, जिसमें आकाशरूपी घर भरा हुआ था। बिलोंके मुखपर पड़ते हुए जलप्रवाहोंसे, जिसमें विषैले विषधर क्रुद्ध हो रहे थे। जिसमें पिउ-पिउ-पिउ बोलते हुए पपीहोंके द्वारा जलकी बूँदें माँगी जा रही थीं। सरोवरोंके किनारोंपर उल्लसित होती हुई हंसावलीकी ध्वनियोंके कोलाहलसे जो युक्त था। जो चम्पक, आम्र, चार, धव, चन्दन और चिंचिणी वृक्षोंके प्राणोंका सिंचन करनेवाला था, ऐसा पावस जिस कुलकरके समय जगत्में शीघ्र बरस गया। धरती मूँग, कुलत्थ, कंगु, जौ, कलम (सुगन्धित धान्य), तिल, अलसी, व्रीहि और उड़दसे युक्त हो उठी। जिसपर फलके भारसे झुकी हुई बालोंके कणोंके लालची हजारों शुक गिर रहे हैं, जिससे भोगभूमिके कल्पवृक्ष विदा हो चुके हैं, और जो (भूमि) राजाकी लक्ष्मीकी सखी है, ऐसी वह भूमि विविध धान्यों, वृक्षों और लतागुल्मोंसे प्रसाधित हो उठी।

घत्ता—उस भूमिको देखकर, जनपद अहंकार छोड़कर शीघ्र ही वहाँ चला, जहाँ लक्ष्मी-के स्तनोंसे सटा है वक्षःस्थल जिसका, ऐसा नाभिनरेन्द्र विराजमान था ॥१३॥

१४

जनोंने कहा—"यह तड़-तड़ करके क्या गिरता है, जो धरतीको फोड़ रहा है? अत्यन्त चमकता हुआ यह लोगोंको डराता है। वक्र यह हरा और लाल क्या दिखाई देता है? हे देव, हे देव, यह क्या गरजता और बरसता है? गत कल्पवृक्ष जहाँपर स्थित थे, इस समय वहाँपर दूसरे वृक्ष उग आये हैं। और दानोंसे भरे हुए पौधे निष्पन्न हुए हैं जो नित्य ही पक्षियों और पशुओंके द्वारा चुगे जाते हैं। उपायको नहीं जाननेवाले हम लोग जड़ हैं और लम्बी भूखके क्लेशसे दुःखी हैं। उनमें खाने योग्य और न खाने योग्य क्या होगा।" यह सुनकर राजा घोषणा करता है, "जो गरजता हुआ बरसता है। वह नवघन है, जो टेढ़ा दिखाई देता है वह इन्द्रधनुष है। जो चलती है और पहाड़को नष्ट कर देती है, वह बिजली है। कल्पवृक्षोंके नष्ट

सुरतरुवरविणासि सुच्छाया कम्मभूमिभूरुह संजाया ।
कडुयगरलु णीरसु वंचिज्जइ जं महुरउ सुसाउ तं चिज्जइ[3] ।
खत्तियवंसत्थलथिरकंदें एम भणेप्पिणु णाहिणरिंदें ।
णिवडमाणु अब्भुद्धरियउ अणु हत्थिकुंभि किउ मट्टियभायणु ।
घत्ता—कणकंडणसिहिसंधुक्कणइं पयणविहाणइं भावियइं ॥
कप्पाससुत्तपरियँड्ढणइं पडँपरियम्मइं दावियइं ॥१४॥

१५

तासु घरिणि मरुएवि भडारी जाहि रूवसिरि अइगरुयारी ।
अमरहं पंतिइ पयपणवंतिइ लंघियाइं अम्हइं णेयंतिइ ।
कमयलराएं काइं गविट्ठउ एम णाइं णेउरहि पघुट्ठउ ।
पण्हिहिं रत्तउ चित्तु[2] पदंसिउं अंगुलियहिं सरलत्तु पयासिउं ।
अंगुट्ठुण्णईइ जं गूढइं गुप्फइं[3] तं किर पिसुणइं मूढइं ।
णीरोमउ विसिरउ वट्टुलियउ मसिणउ सोहियाउ उज्जलियउ ।
जंघउ कमहाणिइ ओहरियउ दिट्ठँउ णं खलमित्तहं किरियउ ।
गूढइं णरवइमंताभासइं वायरणाइं व रइयसैमासइं ।
णिविडसंधिबंधइं णं कव्वइं देविहि जण्हुयाइं अइभव्वइं ।
ऊँरुयखंभ णराहिवदमणहु तोरणखंभाइं व रइभवणहु ।
जेण ससुँरणरु तिहुयणु जित्तउ कामतच्चु जं देवहिं वुत्तउ ।
दिण्ण थत्ति तहु सोणीबिंबहु किं वण्णमि गरुयत्तु णियंबहु ।
घत्ता—गंभीर णाहि तहि मज्झु किसु उयरु सतुच्छँउ दिट्ठु मइं ॥
संसग्गवसें गुणु कासु हुउ जो णवि जायउ जम्मि सइं ॥१५॥

१६

तिवलीसोवाणेहिं चडेप्पिणु रोमावलिकुहिणी लंघेप्पिणु ।
सिहिणगिरिंदारोहणदोरइ लग्गउ वम्महु मोत्तियहारइ ।
पियवसियरणु वसइ भुयमूलइ सुइसोहग्गु जाहि हत्थयलइ ।
णेहबंधु मॅणिबंधि परिट्ठिउ लायण्णें समुँद्दु ण संठिउ ।
जाहि तणउं तं जणियवियारउं महुरउ इयरहु केरउ खाइउ ।
कंठलीह णउ कंबू[3] पावइ परसासाऊरिउ कँह जीवइ ।
णियँडणिविट्ठउ जियससिकंतिहि धोयहि धवलहि दंतहु पंतिहि ।

---

३. P पिज्जइ । ४. MBP परियट्टणइं । ५. P °पडियम्मइं ।

१५. १. T णहकंतीए but adds । णहयंतिइ इति पाठे आकाशादागत्येत्यर्थः । २. MBP वित्तु पदरिसिउ; T वित्तु वृत्तत्वम् । ३. MBP गुंफइं । ४. P दिट्ठा णं । ५. M समाणइं । ६. MBPK ऊरूखंभ । ७. MBP ससुरयणु । ८. M सवित्थरु ।

१६. MBP मणिबंधु । २. BP समुद्दु णं । ३. MB कंचुउ; P कंबुउ and gloss शंखः । ४. M कहिं । ५. M णिविड° ।

होनेपर अच्छी छायावाले ये कर्मभूमिके वृक्ष उत्पन्न हुए हैं। जो कड़ुवा-विषैला और नीरस फल है उससे बचना चाहिए, और जो मधुर तथा सुस्वादु है उसे खाना चाहिए।" क्षत्रियरूपी वंश-स्थलके प्रथम अंकुर नाभिराजाने, यह कहकर नष्ट होती हुई प्रजाका उद्धार किया। हाथीके कुम्भस्थलके समान उन्होंने मिट्टीका घड़ा बनाया।

घत्ता—(उन्होंने) दानोंका फटकना, आगको धौंकना आदि और भोजन बनानेके विधानोंको उत्पन्न किया। तथा कपाससे सूत खींचना और कपड़ा बुननेका कर्म बताया ॥१४॥

१५

आदरणीया मरुदेवी उनकी गृहिणी थीं जिनकी रूपश्री गौरवको बढ़ानेवाली थी। जिसके नूपुरोंने जैसे यह की कि आकाशसे आयी हुई देवपंक्तिने चरणतलों (तलुओं) के राग (लालिमा) में क्या पाया कि जो उसने हमारी उपेक्षा की। एड़ीके निचले हिस्सोंने अपना अनुरक्त चित्त बता दिया। अँगुलियोंने अपनी सरलता प्रकाशित कर दी। अँगूठोंकी उन्नतिके कारण गूढ़ गाँठें हैं, जो दुष्ट और कठोर हैं, रोमविहीन, शिरारहित, गोल, चिकनी, सुन्दर और उजली जाँघें क्रमिक-हीनतासे नीचे-नीचे अपकर्षको प्राप्त होती हुईं, दुष्ट मित्रोंकी क्रियाको प्रकट करती हैं। जो राजाओंकी मन्त्रणाकी भाषाकी तरह गूढ़ हैं, जो व्याकरणकी तरह समास (समास और मांस) से रचित हैं, मानो वे सघन सन्धिबन्धोंसे युक्त काव्य हैं। देवीके घुटने अत्यन्त भव्य हैं, जिसके जाँघोंरूपी खम्भे राजाओंके दमनके लिए थे अथवा रतिके भवनके लिए तोरण खम्भोंके समान थे। जिसने देवों और मनुष्यों सहित त्रिभुवनको जीत लिया है, जिसे देवों द्वारा कामतत्त्व कहा जाता है, मानो उसने इस देवीके कटि-बिम्बको [1]स्थिरता प्रदान की है, उसके नितम्बोंकी गुरुता-का वर्णन मैं क्या करूँ ?

घत्ता—उसकी गम्भीर नाभि, दुबले मध्यभाग और तुच्छ (छोटे) उदरको मैंने देखा है संसर्गके कारण किसीमें कोई गुण नहीं आता, यदि वह गुण जन्मसे उसमें स्वयं पैदा नहीं होता ॥ १५ ॥

१६

त्रिबलियोंकी सीढ़ियोंसे चढ़कर, रोमावलीरूपी मार्ग पार कर, कामदेव स्तनरूपी गिरीन्द्र-पर चढ़नेके लिए डोरस्वरूप मुक्ताहारसे जा लगा। प्रियका वशीकरण मन्त्र, जिसके भुजमूलमें निवास करता है, और पवित्र सौभाग्य हथेलीमें। स्नेहबन्ध, जिसके मणिबन्ध (प्रकोष्ठ) में स्थित है, लावण्यमें समुद्र जिसके सम्मुख नहीं ठहरता, वह जिसके लिए है, उसीके लिए मधुर है, दूसरेके लिए विकार (रोग) जनक और खारा है। उसकी कण्ठरेखाको शंख नहीं पा सकता, दूसरोंके श्वासोंसे आपूरित होकर वह क्यों जीवित रहता है ? चन्द्रमाकी कान्तिको जीतनेवाली

अहरविंबु रेहइ रायालउ मुत्तावलियहि णाइं पवालउ।
अम्हहं ठाइ कयाइ[6] ण संमुहु उज्जुउ णासावंसु वि दुम्मुहु।
भउंहउं वंकत्तणु वि ण सहियउ णयणहिं गंपि व कण्णहुं कहियउ।
णिसिदिणि ससि रवि गयणविलंबिय बिण्णि वि गंडयलइ पडिबिंबिय।
कुंडलसिरि वहंति धवलच्छिहि जिणजणणियहि सं[7]लक्खणकुच्छिहि[8]।
कुडिलालय भालयलि णिरंतर मुहकमलहु घुलंति णं महुयर।
अं[9]वरु वि ताहं भारु विवरेरउ मुहससहरभएण णं तमरउ।
तरुणिहे [10]पट्टि पइट्ठउं[11] दीसइ कुसुमरिक्खमीसियउ विहासइ।
घत्ता—[12]पणवंतिउ अमरविलासिणिउ छाहिणिहेण णिहीणियउ ॥
चारुत्तणकंखइ सुंदरिहि पयणहदप्पणलीणियउ ॥१६॥

१७

तियसमहीरुहपिहियदसासइ भारहवरिसहु मज्झुदेसइ।
णं जियलोउ समुग्गयसंतिइ सरयागमु णं छणससिकंतिइ।
णं सज्जणु गुणिलोयपसंसइ णं आलिंगिउ धम्मु अहिंसइ।
पीवरपीणपयो[1]हरकयकरु ताइ समउ सो पच्छिमकुलयरु।
अच्छइ णाहिणरेसरु जइतहं सुं[2]यरइ सुरवइ णियमणि तइयहं।
सुरणरवंदणिज्जु जं[3]गि सारउ गुरुसंसार[4]महण्णवतारउ।
कामकंदकप्परणकु[5]ठारउ होसइ एयहुं भवणि भडारउ।
इय संचिंतिवि पुणु परिछिण्णउं इंदें धणयहु पेसणु दिण्णउं।
धणय धणय लहु करि णिरु भल्लउ पुरवरु च[6]उदुवारु सोहिल्लउ।
ता तं पेसणु जक्खें लइयउं खणि साकेयणयरु पविरइयउं।
घत्ता—जहिं पवँणा[7]इरियवसेण णंदणवणइं सुपत्ताइं ॥
णच्चंति फुल्लमुहमुक्केण[8] मयरंदेण व मत्ताइं ॥१७॥

१८

जहिं सरवरि सिरिपयसंफासें वियसइ कमलु णाइं संतोसें।
पर[1]भुत्ते विमुक्तमदोसें अहवा णंदिउ को वे[2] ण कोसें।
तं तेहउ वि पीलु[3] किं भंजइ महुयरउलु णं रोसें रुंजइ।
सो तहु दाणु देइ किं भीयउ अवरु वि गरुयउ होइ विणीयउ।

---

६. P कयावि। ७. MBP सुलक्खण°। ८. P °कुक्खिहि। ९. MB अविरुवि। १०. K पुट्ठि। ११. P वइच्छउ। १२. BP पणमंतिउ।

१७. १. M पओरुह°। २. MPT सुमरइ; B सुअरइ and gloss स्मरति। ३. MBP जग°। ४. B °समुण्णव°। ५. MB °कुढारउ; K °कुठारउ but corrects it to °कुढारउ। ६. MBP चउदुवारसोहिल्लउ। ७. MBP पवणायरिय°। ८. MBP °मुक्कएण।

१८. १. M परिभुत्तें। २. P को वि। ३. P कह।

धोयी हुई धवल, दन्त पंक्तिके निकट रहनेवाला, लालिमाका घर अधर-बिम्ब ऐसा शोभित होता है जैसे मोतियोंकी मालामें प्रवाल (मूँगा) हो। वह हमारे सामने कभी भी नहीं ठहरता, सीधा नासिका वंश भी दुर्मुख (दुष्ट) दो मुखवाला है। भौंहोंका टेढ़ापन भी सहन नहीं किया गया (नेत्रोंके द्वारा), और उन्होंने जाकर कानोंसे कह दिया। दिन-रात आकाशमें अवलम्बित रहनेवाले सूर्य और चन्द्रमा दोनों उसके गण्डतलमें प्रतिबिम्बित हैं, और वे धवल आँखोंवाली तथा लक्षणोंसे युक्त कोखवाली प्रथम जिनेन्द्रकी माताके कुण्डलोंकी शोभाको धारण करते हैं, उसके भालतलपर घुँघराले बाल निरन्तर ऐसे जान पड़ते हैं, मानो मुखरूपी कमलपर भ्रमर मँड़रा रहे हैं। और भी उनका विपरीत भार ऐसा ज्ञात होता है, मानो मुखरूपी चन्द्रमाके डरसे तमका प्रवाह उस तरुणीकी पीठमें प्रविष्ट होता हुआ दिखाई देता है, और जो कुसुमरूपी नक्षत्रोंसे मिला हुआ शोभित होता है।

घत्ता—प्रणाम करती हुई प्रतिबिम्बके बहाने अपनेको हीन समझती हुई देवस्त्रियाँ, उस सुन्दरीके सौन्दर्यकी आकांक्षासे पैरोंके नखरूपी दर्पणमें लीन हो गयीं ॥१६॥

१७

भारतवर्षके कल्पवृक्षोंसे आच्छादित दसों दिशाओंवाले मध्यदेशमें, जिसके हाथ पुष्ट और स्थूल स्तनोंपर हैं, ऐसे अन्तिम कुलकर नाभिराजा, उस मरुदेवीके साथ इस प्रकार रहते थे, मानो उत्पन्न शान्तिके साथ जीवलोक, मानो पूर्ण चन्द्रमाकी कान्तिके साथ शरदागम; मानो गुणी जनोंकी प्रशंसाके साथ सज्जन, मानो अहिंसाके साथ धर्म आलिंगित हो। जब वह अन्तिम कुलकर उसके साथ रह रहे थे तब इन्द्र अपने मनमें विचार करता है कि जगमें श्रेष्ठ देवों और मनुष्योंके द्वारा वन्दनीय, महान् संसाररूपी समुद्रसे तारनेवाले, कामरूपी जड़को काटनेके लिए कुठार, आदरणीय आदि जिन इन दोनोंसे उत्पन्न होंगे। यह सोचकर उसने निश्चय कर लिया और कुबेरके लिए आदेश दिया—"हे कुबेर, तुम शीघ्र चार द्वारोंवाला सुन्दर अत्यन्त भला नगरवर बनाओ।" तब उस आदेशको यक्षने स्वीकार कर लिया, और शीघ्र ही उसने साकेत नगरकी रचना कर डाली।

घत्ता—जहाँ पवनरूपी आचार्यके कारण सुन्दर पत्तोंवाले (सुपात्रोंवाले) नन्दन वन, पुष्पोंके मुखोंसे मुक्त परागसे मतवाले होकर नृत्य कर रहे हैं ॥१७॥

१८

सरोवरमें जहाँ लक्ष्मीके चरण-स्पर्शसे कमल सन्तोषके साथ विकसित होता है, दूसरोंके द्वारा भुक्त और अन्धकारके दोषसे मुक्त अपने कोश (धन, जो तम अर्थात् क्रोधसे मुक्त है, अथवा कोश परागका घर) से कौन आनन्दित नहीं होता। उस वैसे कमलको बालगज क्यों नष्ट करता है ? मानो इसी कारण मधुकरकुल क्रोधसे आवाज करता है। वह गज क्या डरकर उसे (भ्रमरकुलको) दान (मदजल) देता है, दूसरा भी महान् व्यक्ति विनीत होता है!

वडपारोहइ हिंदोलंतिहिं जोइउ जक्खिहिं दरपहसंतिहिं ।
जहिं कई[4] अइपहसणरसधारउ सुइ णियदिट्ठि घिवइ सवियारउ ।
रत्तउ सारसियहि जहिं सारसु को[5] वि परिट्ठिउ अहिणवु[6] सारसु ।
सहइ तमालंधारयसारिउ जहिं कलु[7] कोइलु लवइ णिरारिउ ।
पवरंबयकलियहि ढोइयकरु महिलहि को ण होइ चाडुययरु ।
जहिं भाविणि ण करइ परपइरइ बीउ धरित्तिहि को उं ण[8] पइरइ ।
अट्ठारहवरसासविहत्तइं जहिं सयमेव सुपक्कइं छेत्तइं[9] ।
घत्ता—जहिं धण्णइं कणभरपणा[10]मियइं परिभमंति सच्छंद पसु ।
वणसेरिहसिंगपहारचुउ महिसिहिं पिज्जइ उच्छुरसु ॥१८॥

१९

छुडु छुडु भोयभूमि जहिं वित्ती रिद्धि[1]समिद्ध विसुद्ध धरित्ती ।
चिंतिउ चिंतिउ देंति ण थक्कइ पुव्वब्भासु ण मेल्लहुं[2] सक्कइ ।
जहिं थलि थलकमलोवरि सुप्पइ पइ पइ पउमहु[3] पंके लिप्पइ ।
दक्खारसु[4] णरेहिं चक्खिज्जइ[5] फलु अउव्वु काइं मि भक्खिज्जइ[6] ।
कुवलयधरणिउ णं णिवईहउ जहिं परिहाउ[7] वहंति पईहउ ।
णं भविस्सजिणजम्मोयरियउ ण्हवणारंभहु णाणासरियउ ।
बहुमाणिक्कमऊहपहावहिं[8] णं गयणंगणु सुरवइचावहिं[9] ।
असियसियारुणवण्णवियारहिं जं सोहइ सत्तहिं पायारहिं ।
घत्ता—जं दियहि दिवायरकंत रविकिरणहिं सिहिभावहु गयउ ॥
तं णीवइ णिसि ससियरपुसियससिमणिजलधाराहयउ ॥१९॥

२०

मरगयकयघरि पक्खं[1]विहूसिउ जहिं चंचुइ लक्खिज्जइ पूसउ ।
इंदणीलघरि णहविप्फुरणें विमलें मोत्तियदामाहरणें ।
जाणिज्जइ सामा पहसंती णाहें णवकुंदुज्जलदंती ।
कणयरइयमंदिरि वियरंती अवर[2]विसंझाराउ वहंती ।
करकंकणु करफरिसें[3] जाणइ णेउरु सद्देण जि अहिणाणइ ।

---

४. BP कइवइ पहसण° । ५. M को ण । ६. MBP अहिणव° । ७. MBP कलु । ८. P णउ । ९. MBP खेत्तइं । १०. MBP पणवियइं ।

१९. १. BP °समिद्धिविसुद्ध । २. P मेलहुं । ३. MB पउमें पंकहु घिप्पइ; P पउमहु पंकेहिं घिप्पइ । ४. MB दक्खारसु णरेहि जहि पिज्जइ । ५. M adds after this line : मुहमहुरत्ति मिरिय भक्खिज्जइ, and gloss मुखस्य मधुरत्वे सति; P reads in its place मुहमहलंति मिरिय भक्खिज्जइ, and after it reads किंणरमिहुणिहिं लयहरि गिज्जइ, फलु अउव्वु काइं मि भक्खिज्जइ । ६. MB add after this line किंणरमिहुणिहिं लयहरि गिज्जइ, जिणु गाइज्जइ जिणु पूइज्जइ । ७. M जहिं परिहा वहंति पयईहउ । ८. MBP °पहावें । ९. MBP °चावें ।

२०. १. B पंख° । २. MBP अवरु वि । ३. MBP करफंसें ।

वटवृक्षके तनोंपर झूलती हुई और थोड़ा-थोड़ा मुसकाती हुई यक्षणियोंके द्वारा जहाँ अत्यन्त हास्य रसको धारण करनेवाला वानर देखा जाता है, और जो विकारपूर्वक अपनी दृष्टि शुक-पर डालता है, जहाँ सारसीमें अनुरक्त कोई सारस, सरस आवाज करता हुआ स्थित है। जहाँ तमाल वृक्षोंके अन्धकारकी लक्ष्मीका शत्रु चन्द्रमा शोभित है, जहाँ कोकिल अत्यन्त सुन्दर आवाज करता है, और जो प्रवर आम्र कलिकामें अपनी चोंच (कर) ले जाता है, महिलाके प्रति कौन मनुष्य चाटुकार नहीं होता। जहाँ स्त्री दूसरेके पतिसे रमण नहीं करती, जहाँ धरतीमें कोई बीज नहीं डालता। जहाँ अठारह प्रकारके धान्योंसे विभाजित खेत अपने-आप पक जाते हैं।

घत्ता—जहाँ धान्य कणोंके भारसे झुके हुए हैं, पशु स्वच्छन्द विचरण करते हैं, और जंगली भैंसाओंके सींगोंके प्रहारसे च्युत ईख-रस भैंसोंके द्वारा पिया जाता है ॥१८॥

१९

जहाँ हाल हीमें भोगभूमि समाप्त हुई है और धरती ऋद्धियोंसे समृद्ध और विशुद्ध है। चिन्तित (वस्तुओं) को देते हुए भी जो नहीं थकती, मानो जो अपने पूर्व अभ्यासको छोड़नेमें असमर्थ है। जहाँ जमीनपर, गुलाबोंके ऊपर सोया जाता है और पग-पगपर कमलकी पराग-पंकसे लिप्त होना पड़ता है। जहाँ मनुष्योंके द्वारा द्राक्षा रसका पान किया जाता है और कोई अपूर्व फलका भक्षण किया जाता है। जहाँ पृथिवीमण्डलकी भूमियाँ मानो राजाओंकी आकां-क्षाओंके समान हैं, जहाँ लम्बी-लम्बी परिखाएँ बहती हैं, जो मानो भावी जिनेन्द्रके जन्मके अवसरपर स्नानको प्रारम्भ करनेके लिए अवतरित हुईं नाना नदियाँ हों। प्रचुर माणिक्योंकी किरणोंके प्रभावोंसे वह नगर ऐसा प्रतीत होता है मानो नाना इन्द्रधनुषों और लाल रंगोंवाले सात परकोटोंसे शोभित है।

घत्ता—जो नगर दिनमें सूर्यकान्त मणिकी किरणोंसे अग्निभावको प्राप्त होता है (जल उठता है) वही रातमें चन्द्रकान्त मणियोंकी धाराओंसे आहत होकर शान्त हो जाता है ॥१९॥

२०

जहाँ पन्नोंके बने घरोंमें, पंखोंसे विभूषित, शुक अपनी चोंचसे पहचाना जाता है, इन्द्रनील मणिके घरोंमें, नवकुन्द पुष्पके समान उज्ज्वल दाँतोंवाली हँसती हुई श्यामा, आकाशको आलोकित करते हुए स्वच्छ मुक्तामालाके आभरणसे (प्रियके द्वारा) पहचानी जाती है। स्वर्णनिर्मित मन्दिरमें विचरण करती हुई, सन्ध्यारागको धारण करनेवाली वह हाथके स्पर्शसे कंगनको जानती

दहिकुट्टिमयलि दइएं आणिउ   कलरावेण हंसु परियाणिउ ।
तहिं जि पडीवउं जहिं सियणिवसणु   ठविउ ण पेच्छइ अइभोलउ जणु ।
फलिहसि[4]लालयमज्झि णिविट्ठउ   पिहियकवाडु वि वहुवरु दिट्ठउ ।
पोमरायमंडवि आसीणी   जेत्थु का वि हरिणच्छि पहाणी ।
घुसिणपिंडु ण णियंति विसूरइ   जहि सोहाइ ण सग्गु वि पूरइ ।
चंदणचिक्खिल्लें पहु चिड्डइ   जहिं कप्पूरधूलि णहि उड्डइ ।
घत्ता—ण कलागमु अक्खरु णेय गुरु णउ दासत्तणु संविहिउ ॥
वइसवणें एक्केक्कु जि मिहुणु जहिं आणिवि माणिवि णिहिउ ॥२०॥

२१

मंदिरि मंदिरि सहसा भरियइं   तोरणाइं रयणहिं विप्फुरियइं ।
गिज्जंतें मंगलसंघाएं   देवदिण्णपडुपडहणिणाएं ।
घरसंचारिय[1]कलस वि दिट्ठा   सरयब्भेसु व[2] चंद पइट्ठा ।
णिच्चुप्पाइयसुरयणहरिसहि   संभज्जियदप्पणयलसरिसहि ।
विहुतारावलिदिणयरपंगणु .   दीसइ भूमिहि सयलु णहंगणु ।
गुरुअब्भासणभयवसणडियउ   णं सोहइ पायालइ पडियउ ।
इहु सो दिट्ठउ इट्ठु महारउ   इय णं मण्णिवि णयणपियारउ ।
भवणसिहरचडिएं खे लंबिउ   जहिं णवजलहरु मोरें चुंबिउ ।
णउ चोरउलु [3]विरोहि ण राउलु   सूलभिण्णु णउ दीसइ देउलु ।
बंभणु वणिवरु ण हलु ण हालिउ   णउ पासंडिउ को वि कवा[4]लिउ ।
धम्मु ण धणुहुं ण जिण[5]वइभासिउ   पसुवह[6] वाहिं ण वेएं घोसिउ ।
वेस ण कत्थइ वइसियजुत्ती   अज्जव सव्व[7] णारि कुलउत्ती ।
जहिं ण महव्वय पंचाणुव्वय   कुच्छियकारिणि णउ कारुय पय ।
घत्ता—सामण्णइं सयलइं माणुसइं जहिं एक्कु वि सुविसेसिउ ॥
सियपुप्फयंतु सो णा[8]हिणिउ जो भरहेण विहूसिउ ॥२१॥

इय महापुराणे तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारे महाकइपुप्फयंतविरइए महाभव्वभरहाणुमण्णिए महाकव्वे उज्जाणयरीवण्णणं णाम दुइज्जो परिच्छेओ समत्तो ॥ २ ॥

॥ संधि ॥ २ ॥

४. M फलिहसिलायलमज्झि; BP °सिलायलि मज्झि । ५. MBP पउ but gloss in P पन्था: ।
२१. १. MBP °संचारिम° । २. MBK य । ३. विरोहु । ४. P कपालिउ । ५. MBP जिणवर° । ६. M पसुवह वहणु ण; B पसुवहु वहणु ण; P पसु अहवाहणु । ७. MBP णारि सव्व । ८. K णाहिणिवु ।

है, और शब्द करनेसे नूपुरको पहचानती है। प्रियके द्वारा धवलशिलापर लाये गये हंसको वह कलरवसे जान पाती है, धवल वस्त्र जहाँ गिर जाता है वह वहाँ ही पड़ा रहता है, आदमी वहाँ इतना भोला है कि रखे हुए वस्त्रको नहीं पहचान पाता। स्फटिक मणिके घरमें स्थित वरवधूको किवाड़ लगे रहनेपर भी देख लिया जाता है। पद्मराग मणियोंके मण्डपमें बैठी हुई एक रमणी केशरपिण्ड नहीं देख पड़नेके कारण दुःखी हो उठती है। सौन्दर्यमें स्वर्ग भी, जिसकी पूर्ति नहीं कर सकता। जहाँ रास्ते चन्दनकी कीचड़से आर्द्र हैं, और कपूरकी धूल आकाशमें नहीं उड़ती।

घत्ता—जहाँपर न कलागम है और न अक्षर, न गुरु है और न दासता बनायी गयी है। कुबेरके द्वारा एक-एक जोड़ा (युगल) लाकर और मानकर रख दिया गया है ॥२०॥

२१

घर-घरमें शीघ्र ही रत्नोंसे विस्फुरित तोरणोंको, गाये गये मंगलगीत समूहों और देवोंके द्वारा आहत पटहनिनादोंके साथ बाँध दिया गया। घरमें संचरित होनेवाले कलश भी दिखाई दिए जो शरद्के मेघोंके समान ऐसे लगते थे कि चन्द्रमा प्रविष्ट हुए हों। जिसमें नित्य देवताओंके लिए हर्ष उत्पन्न किया जाता है, और जो पोंछे गये दर्पणतलकी तरह है ऐसी भूमिमें प्रतिबिम्बित आकाशरूपी आंगन (जो चन्द्रमा, तारावलि और दिनकरका आंगन है) ऐसा शोभित होता है, मानो अत्यन्त लम्बे समय तक स्थित रहनेके डरसे प्रवंचित होकर जैसे पाताललोकमें पड़ा हुआ है। जहाँ प्रासादोंके शिखरोंपर चढ़े हुए मोरने यह मानकर कि यह हमारा नेत्रप्यारा इष्ट दिखाई दिया है, नवजलधर (नवमेघ) को चूम लिया। वहाँ न चोरकुल था, न विरोधी राजकुल था। और न त्रिशूलभिन्न देवकुल दिखाई देता था। जहाँ न ब्राह्मण था और न वणिकवर। न हल था और न किसान। न सम्प्रदाय था और न कापालिक। जहाँ क्षत्रिय धर्म नहीं था और न जिनेश्वरके द्वारा भाषित धर्म, न व्याधाके द्वारा किया गया और वेदोंके द्वारा घोषित पशुवध था। न वेश्या थी और न वेश्याकी युक्ति थी। समस्त नारियाँ और कुलपुत्रियाँ सीधी थीं। जहाँ न महाव्रत थे और न अणुव्रत। और न बुरा करनेवाली शिल्पजीवी प्रजा थी।

घत्ता—समस्त मनुष्य सामान्य थे, वहाँ एक भी आदमी विशेष नहीं था। श्वेतपुष्पके समान दाँतोंवाला वह नाभिराजा था, जो भरत (क्षेत्र, भरतभव्य मन्त्री) से विभूषित था ॥२१॥

इस प्रकार महाकवि पुष्पदन्त द्वारा विरचित और महाभव्य भरत द्वारा अनुमत (त्रिषष्टि महापुरुष गुणालंकारवाले महापुराणके अन्तर्गत) महाकाव्यमें अयोध्यानगरी-वर्णन नामका दूसरा परिच्छेद समाप्त हुआ ॥२॥

संधि ३

तहिं जाम मणोज्जु[1] भुंजइ रज्जु णिच्चलु णाहिणरिंदु ॥
मंडियसविमाणु कालपमाणु चिंतइ ताम सुरिंदु ॥ ध्रुवकं ॥

१

एँहहि[2] महिणाहेँ माणियहे उयरइ मरुएविहि राणियहे ।
छम्मासहिं[3] होसइ परमजिणु णासइ ण कम्मु मुत्तीइ विणु ।
सम्मत्तसमत्तणु संभरमि गब्भासयसोहणु लहु करमि ।
लइ एउ जि कज्जु महुं तणउं दक्खालमि पेसणु घणघणउं ।
इयँ[4] चिंतिवि पुणु हियवइ धरिय छणससिमुहि पीणपयोहरिय ।
सिरि हिरि दिहि देवी ललियकर वर कंति किचि लच्छी य वर ।
छ वि एयउ चारु चवंतियउ पणएण णएण णँवंतियउ[5] ।
इंदीवरदीहरणेत्तियउ सुरणाहणिहेलणु पत्तियउ ।
वेल्लहललयाणिहगत्तियउ[6] देविंदें झत्ति पउत्तियउ ।
घत्ता—जाइवि णरलोउ भुंजियभोउ णाहिणरेसँहु[7] गेहु ॥
जिणगब्भणिवासु दुक्कियणासु सोहहु देविहि देहु ॥१॥

२

ता संचलियउ सुररमणियउ मेहलरंखोलिरे[1]रमणियउ ।
कयसग्गालयणिग्गमणियउ मयमंथरसिंधुरगमणियउ ।
तेल्लोक्कमारमणदमणियउ विरयाहुं[2] मि रयमणदमणियउ ।
कुंडलचें[3]चइयकवोलियउ णं मयणें बाणकओलियउ[4] ।
जंतिउ जोयंति ण के सियउ अलिसंणिहभंगुरकेसियउ ।

GK give at the commencement of this samdhi आदित्योदयपर्वतादुत्तरात् for which see footnote on Second Samdhi; MBP give the following stanza :—

बलिजीमूतदधीचिषु सर्वेषु स्वर्गितामुपगतेषु ।
संप्रत्यनन्यगतिकस्त्यागगुणो भरतमावसति ॥

१. १. MBP भोज्जु । २. MP एयहि; B एवहि । ३. MBP छहिं मासहिं । ४. MBP इय चिंतेविणु हियवइ । ५. P णमंतियउ । ६. M °लयाणियवत्तियउ; BP °लयाणिय° । ७. MBP °णरेसरगेहु ।

२. १. T reads °रंखोलन° but adds : रंखोलिरेति पाठे मेखलया रंखोलनशीलया विलसनशीलया रमणीयाः । २. MBP विरयाहिं but gloss विरतानां यतीनाम् । ३. B कोंडलचेंचइय°; M °चिचइय° । ४. B बाणकम्मु लियउ; P बाणकबोलियउ and gloss बाणकृतरेखाः ।

सन्धि ३

जब उस अयोध्यामें नाभिराजा निश्चल और सुन्दर राज्यका भोग कर रहे थे, तब अपने विमानसे मण्डित इन्द्र कालके प्रमाणका (तीसरे कालके अन्तका) चिन्तन करता है।

१

"इस राजाकी मानिनी रानी मरुदेवीके उदरसे छह माहमें परमजिन जन्म लेंगे। भोगके बिना कर्मका नाश नहीं होता। मैं सम्यक्त्वकी समग्रता दिखाता हूँ, शीघ्र ही गर्भाशयका शोधन कराता हूँ। लो मेरा यही काम है कि मैं अतिशय सेवाका प्रदर्शन करूँ।" यह विचारकर उसने शीघ्र अपने मनमें पीन पयोधरोंवाली छह चन्द्रमुखियोंका ध्यान किया। सुन्दर हाथोंवाली, श्रेष्ठ श्री, ह्री, धृति, उत्तम कान्ति, कीर्ति और लक्ष्मी देवियाँ सुन्दर बोलती हुईं प्रणय और नयसे नमन करती हुईं, नीलकमलके समान दीर्घ नेत्रोंवाली वे इन्द्रके घर पहुँचीं। बेलफलकी लताके समान शरीरवाली उनसे देवेन्द्रने शीघ्र कहा—

घत्ता—मनुष्यलोकमें जाकर नाभिराजाके, भोगोंका भोग करनेवाले घरमें मरुदेवीकी उस देहका शोधन करो जिसमें पापोंके नाश करनेवाले जिनगर्भका निवास होगा ॥१॥

२

तब करधनियोंसे रमणीय देवस्त्रियाँ चल पड़ीं। स्वर्गालयसे निर्गमन करनेवाली, मदसे मन्थर महागजके समान चलनेवाली, त्रैलोक्यके लक्ष्मीपतियोंके मनका दमन करनेवाली, तथा विरक्तोंमें कामदेवकी हलचल उत्पन्न करती हुईं, कुण्डलोंसे शोभित कपोलोंवाली वे ऐसी लगती थीं मानो कामदेवने अपनी तीरपंक्ति सँभाल ली हो। अपने शरीरके तेजसे आकाशको आलोकित

तणुतेउज्जोइयअंबरउ घोलंतविचित्तवरंबरउ ।
णयसत्तभंगिविहिरसणियउ मिच्छामयहेउणिरसणियउ ।
णिरु सूहवदाणवारिरयउ णं भमरिउ दाणवारिरयउ ।
घत्ता—एयउ अण्णाउ सुरकण्णाउ धरिवि णिकामिणिवेसु ॥
आयाउ परेण भत्तिभरेण सिरिमरुएविहि पासु ॥२॥

३

परमेसरि सुरवरलोयचुया कोमलमुणालवेल्लहलभुया ।
दीसइ सुरणारिहिं अज्जसुया णं विहिविण्णाणसमत्तिहुया ।
सव्वंगावयवसुलक्खणिया फणिसुरणरमणमुसुमूरणिया ।
वंदारयवंदियपायजुया अइललियहिं थोत्तसएहिं थुया ।
अव्वो जय जय जगगुरुजणणि जय थणयलविलुलियहारमणि ।
जय कम्मकाणणाणलअरणि जय धम्मविडवसंभवधरणि ।
पइं दिट्ठइ णिट्ठइ पावमलु संपज्जइ संचिंतिउ सयलु ।
पइं लद्धउं महिलाजम्मफलु तुह कुच्छिहि होसइ जिणधवलु ।
घत्ता—णिरु सरसु णडंतु पयहिं पडंतु विरइयपंजलिहत्थु ॥
संपाइय एव इच्छइ सेव अमरविलासिणिसत्थु ॥३॥

४

क वि अलयतिलय देविहि करइ क वि आदंसणु अग्गइ धरइ ।
क वि अप्पइ वररयणाहरणु क वि लिप्पइ कुंकुमेण चरणु ।
क वि णच्चइ गायइ महुरसरु क वि पारंभइ विणोउ अवरु ।
क वि परिरक्खइ णिसियासिकरी क वि बारि परिट्ठिय दंडधरी ।
अक्खाणउं का वि किं पि कहइ दिण्णउं कणइल्लु का वि वहइ ।
क वि वारवार विणएं णवइ क वि सुरसरिसरसलिलहिं ण्हवइ ।
क वि मालउ चेलिउं उज्जलउ ढोयइ सवलहणु सुपरिमलउ ।
छम्मासु जाम संजणियदिहि पयडंतु समीहिय सोक्खणिहि ।
णिवप्रंगणंति णिहिणिहियधणु वुट्ठउ रयणिहिं वइसवणु घणु ।
घत्ता—हंसि वँ सरपोमि रम्मि सुहम्मि उरविलुलियहारावलि ॥
सोवंति समग्गि सयणयलग्गि सइ पेच्छइ सिविणावलि ॥४॥

---

५. K मिच्छायम°; P मिच्छामय° but gloss मिथ्यागम° । ६. MBP आइयउ ।

३. १. MBP °थुय । २. M विहिअण्णाण° । ३. P णट्ठइ । ४. MBP विरइअंजलि° । ५. MBP संपाइउ । ६. MBP इच्छियसेव ।

४. १. P कणयल्लु । २. P चेलउ । ३. M ढोइय । ४. MBP समलहणु । ५. MBP °पंगणंति । ६. MB वइसवणघणु । ७. M हंसियवरपोमि; BP हंसि व वरपोमि । ८. MB पेच्छिवि । ९. MBP सुइणावलि ।

करती हुईं, विचित्र वस्त्रोंसे आन्दोलित होती हुईं, नय और सप्तभंगीकी विधिसे बोलती हुईं, मिथ्यात्व और मदके कारणोंका निरसन करती हुईं, इन्द्रादि देवोंमें अनुरक्त रहनेवाली वे मानो दानवारि (इन्द्रादि देवों)में लीन रहनेवाली भ्रमरियाँ थीं जो दानवारि (मदजल)में रत रहती हैं।

घत्ता—ये और दूसरी कन्याएँ मनुष्यनियोंका रूप धारण कर अत्यन्त भक्तिभावके साथ श्री मरुदेवीके पास आयीं ॥२॥

३

सुरवर लोकसे च्युत कोमल मृणालकी तरह कोमल भुजावाली परमेश्वरी आर्यसुताको देवकुमारियोंने इस प्रकार देखा मानो (उसकी रचनामें) विधाताका विज्ञान समाप्त हो गया हो। सर्वांग और अवयवोंसे सुलक्षण, नाग, सुर और नरोंके मनको उत्तेजित करनेवाली, चारणोंके द्वारा वन्दनीय चरण युगलोंवाली उसकी अत्यन्त सुन्दर स्तोत्रोंसे देवियोंने स्तुति की—"हे विश्वगुरुको जन्म देनेवाली माँ तुम्हारी जय हो, स्तनतलपर हिलते हार मणिवाली तुम्हारी जय हो, कर्मरूपी काननके लिए आग लगानेवाली लकड़ीके समान आपकी जय हो, धर्मरूपी वृक्षके जन्मको धारण करनेवाली, आपकी जय हो, तुम्हें देख लेनेपर पापमल नष्ट हो जाता है और सोचा हुआ फल प्राप्त हो जाता है। तुमने महिला-जन्मका फल प्राप्त कर लिया। तुम्हारी कोखसे जिनश्रेष्ठका जन्म होगा।"

घत्ता—अत्यन्त सरस नृत्य करता हुआ, हाथोंकी अंजली बनाकर पैरोंमें पड़ता हुआ, अमर-विलासिनी-समूह वहाँ पहुँचता है और सेवा करना चाहता है ॥३॥

४

कोई देवीके ललाटपर तिलक करती है, कोई दर्पण आगे रखती है, कोई श्रेष्ठ रत्नाभरण अर्पित करती है, कोई केशरसे चरणका लेप करती है, कोई मधुर स्वरमें गाती-नाचती है। कोई दूसरा विनोद प्रारम्भ करती है, पैनी छुरीवाली कोई परिरक्षा करती है। कोई दण्ड लेकर द्वारपर स्थित है। कोई-कोई आख्यान कहती है, कोई दिये गये क्रीड़ाशुकको धारण करती है। कोई बार-बार विनयसे नमन करती है। कोई गंगाके जलसे स्नान कराती है। कोई माला, उजला वस्त्र और सुगन्धित लेप देती है। भाग्यविधाता, सुखनिधि और अभीप्सित जिनेन्द्रदेवको प्रकट होनेके जब छह माह रह गये तो राजाके आँगनमें निधियोंमें धन रखनेवाले कुबेररूपी मेघने रत्नोंकी बरसा की।

घत्ता—सरोवरके कमलपर हंसिनीके समान, सुन्दर और सुखद, तथा ठीक है अग्रभाग जिसका, ऐसे शयनतलपर वह मेरुदेवी सोती है। जिसके उरतलपर हारावली झूल रही है ऐसी वह स्वयं स्वप्नावली देखती है ॥४॥

५

पत्तिया   सणाहणेहरत्तिया ।
सुत्तिया   णिमीलियच्छिवत्तिया ।
कामए   णिसाविरामजामए ।
इच्छए   सुहावहं णियच्छए ।
कंतयं   चउप्पयारदंतयं ।
णिब्भरं   झरंतदाणणिज्झरं ।
संसयं   सरासणाहवंसयं ।
तुंगयं   मिलंतमत्तभिंगयं ।
वारणं   गिरिंदभित्तिदारणं ।
एंतयं   बलेण ढेक्करंतयं ।
गोवइं   अल[1]द्धजुज्झगोवइं ।
दुद्धरं   फुरंतणक्खपंजरं ।
भासुरं   घुलंतकंधकेसरं ।
कोवं[2]णं   जलंतपिंगलोवं[3]णं ।
भीसणं   मुं[4]हा विमुक्कणीसणं ।
सीहयं   विलंबमाणजीहयं ।
अंचियं   दिसागएहिं [5]सिंचियं ।
लच्छियं   विबुद्धपंकयच्छियं ।
रुंदयं   पहुल्लदामदं[6]दयं ।
संमुहं   समुग्गयं सुहारुहं ।
भाहरं   सुदूसहं तमीहरं ।
हंसयं   खमाणसेक्कहंसयं ।
रत्तयं   सरंतरे तरंतयं ।
रम्मयं   चलं झसाण जुम्मयं ।
सब्भडं   धियंभं[7]कुंभसंघडं ।
मायरं   प[8]हुल्लपंकयायरं ।
सायरं   र[9]संतवारिभीयरं ।
आसणं   [10]मयारिरूवभूसणं[11] ।
सुंदरं   पुरंदरस्स मंदिरं ।
सोहणं   महाहिणो णिहेलणं ।
उंचयं[12]   अणेयरण्णसंचयं[13] ।
दित्तयं   हुयासणं पलित्तयं ।

---

५. १. PGT record a *p* अलद्ध and add : अलद्ध इति पाठे अलद्धो अशूरो युद्धे गोपतिर्यस्य । २. M कोअणं । ३. MB °लोअणं । ४. MBP मुहोविमुक्क° । ५. M °सिंचयं । ६. MPT °दुंदयं । ७. BT वियंभ and gloss in **T** वियंभोऽमृतजलम् । ८. P पफुल्ल° । ९. MBP सरंत° । १०. M सयारि° । ११. MBP °भीसणं । १२. MBP उच्चयं । १३. B °रयण° ।

५

अपने स्वामीके स्नेहमें पगी हुई, आँखोंकी पलकें बन्द कर सोती हुई पत्नी, कामद रात्रिके अन्तिम प्रहरमें शुभ करनेवाले (स्वप्नों) को अपनी इच्छासे देखती है—सुन्दर चार प्रकारके दाँतोंवाला, पूर्ण, मदजल धाराको झरता हुआ प्रशंसनीय धानुष्क वंशीय, ऊँचा, जिसपर मतवाले भ्रमर मड़रा रहे हैं, ऐसा पहाड़ोंकी दीवालोंको विदीर्ण करनेवाला गज। आता हुआ जोर-जोरसे दहाड़ता हुआ, जिसे लड़नेके लिए प्रतिद्वन्द्वी बैल नहीं मिला है, ऐसा बैल; दुर्धर नखसमूहसे विस्फुरित, भास्वर, कन्धेकी अयालको घुमाता हुआ, क्रुद्ध चमकती हुई पीली आँखोंवाला, भीषण मुखसे शब्द करता हुआ, जीभको निकालता हुआ सिंह; पूजित दिग्गजोंके द्वारा अभिषिक्त और पूजित, खिले हुए कमलोंके समान आँखोंवाली लक्ष्मी, विशाल दो पुष्पमालाएँ, सामने उगता हुआ शुभ किरणोंवाला (चन्द्रमा), प्रभाका घर, अत्यन्त दुःसह रात्रिका हरण करनेवाला हंसक (सूर्य), (जो आकाशरूपी सरोवरका एकमात्र हंस था), सरोवरमें तैरता हुआ अनुरक्त और सुन्दर, मछलियोंका चंचल जोड़ा, प्रकट जलसे भरे हुए कलशोंका जोड़ा। खिले हुए कमलोंका आकर और शोभा बढ़ानेवाला सरोवर; गरजते हुए जलसे भयंकर समुद्र; सिंह है आभूषण जिसका ऐसा आसन अर्थात् सिंहासन; सुन्दर इन्द्रका विमान; सुहावना महानागका घर; ऊँची रत्नराशि; चमकती हुई और जलती हुई आग।

घत्ता—इय जोइवि मुद्ध पुणु पडिबुद्ध सिविणइ जं जिह दिट्ठु ॥
उइयइ पच्चूहे अरुणमऊहे रायहु तं तिह[14] सिट्ठु ॥५॥

६

ता णरवइ णारीसारियहे अक्खइ मरुएविभडारियहे ।
दिट्ठेण गइंदें गुरुहुं गुरु होसइ णंदणु पयपणयसुरु ।
गोणाहें गोमंडलु धरइ सीहेण सविक्कमु वित्थरइ ।
सिरिदंसणि लहइ तिलोयसिरि दामेण वि जाणहि पुरिसहरि ।
पावइ पविहररइयण्हणउं जं दिट्ठउ पइं मयलंछणउ ।
तं होसइ सुउ जणमणहरणु जं पुणु वि पलोइउ[1] खरकिरणु ।
तं मोहंधारविणासयरु भव्वयणणलिणवणदिवसयरु ।
झसजुयलें होही सोक्खणिहि कुंभेहिं वि सुरअहिसेयविहि ।
कमलायरसायरेहिं बिहिं मि गुणवंतु गहिरु भुवणहं तिहिं मि ।
सिंहासणेण पंचमिय गइ पावेसइ दंसणसुद्धमइ ।
दिट्ठेहिं तियसणायहं घरेहिं सेवेवउ[2] देविहिं विसहरेहिं ।
रयणोहें जिणसंपत्तिफलु णिड्डहइ हुयासें कम्ममलु ।
घत्ता—सिविणयफलु अज्जु णिरु णिरवज्जु कहमि ण रक्खमि गुज्झु ॥
जगलग्गणखंभु धम्मारंभु होसइ णंदणु तुज्झु ॥६॥

७

ता तम्मि पत्तम्मि तइयम्मि कालम्मि णक्खत्तसोहंतगयणंतरालम्मि ।
कप्पद्दुमच्छेयपयणियवियारम्मि ससिबिंबरविबिंबधरथंधयारम्मि ।
अवसप्पिणीसप्पिणीसंपवेसम्मि णरभोयपब्भारसुहभरियगासम्मि ।
मायामहामोहबंधणइं लुंचेवि साराइं पउराइं पुण्णाइं संचेवि ।
सोलह वि तवभावणाओ पहावेवि जगणमियतित्थयरणामं समज्जेवि ।
इंदियइं णिंदियइं णिग्घिणइं भंजेवि तेत्तीसजलणिहिसमाणाउ भुंजेवि ।
जम्मंतराबद्धसुकियपहावेण[1] हिमहारणीहारसियवसहरूवेण ।
आसाढमासम्मि किण्हम्मि बीयम्मि संपत्तए उत्तरासाढरिक्खम्मि ।
सव्वत्थसिद्धीविमाणाउ ओयरइ परमेसरो जणणिगब्भम्मि संचरइ ।
सरयब्भमज्झम्मि रुइरुंदइंदु[2] व्व सयवत्तिणीपत्तए तोयबिंदु व्व ।
आया सुरा गब्भवासं णमंसेवि सग्गं गया रायदेविं[3] पसंसेवि ।
तव्वासराए व देवाहिवाणाइ रक्खिद[4]णाइंदपालिज्जमाणाइ ।
जक्खेण माणिक्कवुट्ठी कया ताम मासेहिं तिहिं हीणु संवच्छरो जाम ।
घत्ता—उयरत्थु अवाहु वड्ढइ णाहु तणुकिरणइं पसरंति ॥
मरुदेविहि देहे णं णवमेहे णवरवियर णिग्गंति ॥७॥

---

१४. B तिहे ।

६. १. M पुलोइउ; P पलोयउ । २. MB सेवेव्वउ ।

७. १. B सुक्कय° । २. M °रुंदयंदु व्व; T °इंदु व्व । ३. MBP रायदेवी । ४. MBP जक्खिद°, but T रक्खिद° राक्षसेन्द्राः ।

घत्ता—वह मुग्धा सपनोंको देखकर जाग उठी, और स्वप्नोंमें उसने जिस प्रकार जो देखा था, लाल-लाल किरणोंवाला सवेरा होनेपर, उसने उसी प्रकार राजासे कहा ॥५॥

६

तब राजा नारियोंमें श्रेष्ठ आदरणीय मरुदेवीसे कहते हैं, "गजेन्द्र देखनेसे तुम्हारा पुत्र, देवोंसे प्रणतपद और गुरुओंका गुरु होगा। गोनाथ (बैल) देखनेसे पृथ्वी धारण करेगा। सिंह देखनेसे वह पराक्रमका विस्तार करेगा, लक्ष्मी देखनेसे त्रिभुवनकी लक्ष्मी धारण करेगा, पुष्पमाला देखनेसे उसे पुरुष श्रेष्ठ समझो, और जो तुमने चन्द्रमा देखा है, उससे वह इन्द्रके द्वारा की गयी अर्चा प्राप्त करेगा, जो तुमने सूर्य देखा है, उससे तुम्हारा पुत्र जनमनोंके लिए सुन्दर, मोहान्धकार-का विनाश करनेवाला और भव्यजनरूपी कमलवनके लिए दिवाकर होगा; मीनयुग्म देखनेसे सुखनिधि होगा, और घड़ोंको देखनेसे देवता उसका अभिषेक करेंगे। दोनों समुद्र और सरोवर देखनेसे वह त्रिभुवनमें गुणवान् और गम्भीर होगा। सिंहासन देखनेसे दर्शनसे विशुद्धमति वह पाँचवीं गति (मोक्ष) प्राप्त करेगा। देवों और नागोंके घरोंको देखनेसे देव और नाग उसकी सेवा करेंगे। रत्नोंका समूह देखनेसे वह जिन-सम्पत्तिका फल प्राप्त करेगा, और (तपकी) आगमें कर्ममलको जलायेगा।

घत्ता—आज मैं निर्दोष कर्मफल कहता हूँ, कुछ भी गुह्य नहीं रखता। तुम्हारा पुत्र जग-का आधारस्तम्भ और धर्मका आरम्भ करनेवाला होगा ॥६॥

७

तब वहीं, उस कालके आनेपर कि जब आकाशका अन्तराल नक्षत्रोंसे शोभित था, कल्प-वृक्षोंके नष्ट हो जानेसे जनतामें असन्तोष बढ़ रहा था, सूर्य और चन्द्रके बिम्ब अन्धकार नष्ट करने लगे थे, अवसर्पिणीकालरूपी नागिन प्रवेश कर चुकी थी, मनुष्यके भोगों और प्रचुर सुखोंको काल अपने ग्रासमें भर चुका था, तब माया-महामोहके बन्धन तोड़ने, श्रेष्ठ प्रचुर पुण्योंका संचय करने, सोलह तपभावनाओंकी प्रभावना, विश्वके द्वारा नमित तीर्थंकर नामके समार्जन, निर्घृण और निन्दनीय इन्द्रियोंको नष्ट करने, तैंतीस सागर आयु भोगनेके लिए जन्मान्तरमें बाँधे गये पुण्यके प्रभावसे, हिम-हार और नीहारके समान सफेद बैलके रूपमें आसाढ़ माहके कृष्णपक्षकी द्वितीयाको उत्तराषाढ़ नक्षत्रमें, सर्वार्थसिद्धि विमानसे अवतरित होकर परमेश्वर जिनने माताके गर्भमें उसी प्रकार प्रवेश किया जिस प्रकार सुन्दर चन्द्रबिम्ब शरद् मेघोंके बीच तथा जलबिन्दु कमलिनी पत्रके बीच प्रवेश करता है। देवता आये और गर्भवासको नमस्कार तथा राजदेवोकी प्रशंसा करके चले गये। उस दिन राक्षसेन्द्रों और नागेन्द्रों द्वारा मान्य इन्द्रराजकी आज्ञासे कुबेरने रत्नोंकी वर्षा की। तबतक कि जब वर्षमें ३ माह कम थे, (अर्थात् ९ माह)।

घत्ता—उदरके भीतर स्वामी बिना किसी बाधाके बढ़ने लगे। उनके शरीरकी किरणें मरुदेवीकी देहपर इस प्रकार प्रसरित होने लगीं, मानो सूर्यकी किरणें नवमेघपर प्रसरित हो रही हों ॥७॥

८

मासम्मि चेइत्ते[1] पक्खे कसणे अहिमयरवारि फुंडणवमिदिणे[2] ।
उत्तरआसाढारिक्खवरे जोयम्मि बंम्हि[3] बहुसोक्खयरे ।
जिणु तियसालावणीहिं झुणिउ मेरुदेविइ[4] णंदणु संजणिउ ।
उत्ततदित्ततवणीयछवि सुरवइदिसाइ णं बालरवि ।
णं विप्फुरंतु अरणीइ सिहि णं देक्खालिउ[5] धरणीइ णिहि ।
णं जीवसहाउ सिद्धसहए णं अत्थु महाकइकयकहए ।
णं अमयलवेहिं जि णिम्मविउ णं गुणगणु पुंजेप्पिणु ठविउ ।
जगु णरयपडंतउ[6] णवि[7] सहिउ णं धम्में पुरिसरूवु गहिउ ।
घत्ता—जणतमणिण्णासु लोयपयासु कित्तिवेल्लिवरकंदु ॥
मयमलपब्भट्ठु कुवलयइट्ठु उइउ जिणाहिवचंदु ॥८॥

९

णाणतिएण णिएण णिरुत्तें[1] लक्खणवंजणचच्चियगत्तें ।
उप्पण्णे णाहे हयदप्पो जाओ इंदस्सासणकंपो ।
कप्पेसुं ससहावें णाया घंटाटंकारा संजाया ।
उट्ठिय णिण्णासियदिण्णाया जोइसवासे सीहणिणाया ।
वेंतरदेवावासवएसुं[2] गज्जंते पडहा विवरेसुं[3] ।
संखरवो भावणभवणेसुं संपण्णो खोहो भुवणेसुं ।
णाउं णाणेणं णिप्पावं भूमीभाए हूयं देवं ।
वुड्ढो चित्ते धम्माणंदो चलिओ सक्को[4] सक्को चंदो ।
हत्थिंदो ऐरावयणामो[5] वेउव्वियसरीरपरिणामो ।
गलियकवोलमओलजलद्दो रणझणंतगेज्जावलिसद्दो ।
कच्छरिच्छमालाछुरियंगो कण्णचमरविणिवारियभिंगो ।
पत्तो मेत्तो[6] मंदरमेत्तो लीलायंतो बहुविहदंतो ।
कंतिपसाहियणहमित्ताइं दंति दंति सरसयवत्ताइं ।
पत्ते पत्ते सुरतरुणीओ[7] णच्चंतीओ थोरथणीओ ।
इय दट्ठूणं तमिहमलंघं चडिओ सोहम्मीसो सिग्घं ।
सव्वत्थ वि धयछत्तरवण्णं सव्वत्थ वि चामरसंछण्णं ।
सव्वत्थ वि गयणाणाजाणं सव्वत्थ वि धावंतविमाणं ।
सव्वत्थ वि पसरियउल्लोवं सव्वत्थ वि जयदुंदुहिरावं ।
सव्वत्थ वि सरगेयरसालं सव्वत्थ वि उच्चाइयमालं ।
तरुपल्लवियं पिव णहवलयं सोहइ सुरवरवायाउलयं ।

---

८. १. B चइत्तहो; P चइति । २. MBP फुडु । ३. MBP बंभि । ४. M मरुदेवि; B मरुदेवे; P मरुदेवी° । ५. P दिक्खालउ and gloss दर्शितः । ६. MP णरइ पडंतउ । ७. MB णउ ।

९. १. MBP णिउत्तें । २. P °पएसु । ३. MBP विपरेसुं but gloss in P विपरेसुं विवरेषु गगनेषु T परेसुं उत्तमेषु । ४. MB सक्को सुक्को । ५. P अइरावय° । ६. MB पत्तो । ७. MBP सुरवरतरुणीओ ।

८

चैत्र माहके कृष्णपक्षमें रविवारको स्पष्ट नवमीके दिन, उत्तराषाढ़ नक्षत्रमें बहुसुखद ब्रह्म-योगमें देवोंके आलापोंमें ध्वनित (प्रशंसित) पुत्रको मरुदेवीने जन्म दिया। तपाये हुए सोनेके समान वर्णवाले वह ऐसे लगते थे मानो पूर्वदिशामें बालरवि हो, मानो अरणियों (लकड़ी विशेष, जिसके घर्षणसे अग्नि पैदा होती है) से ज्वाला निकल रही हो, मानो धरतीने अपनी निधि दिखायी हो, मानो सिद्ध श्रेणीने जीवका स्वभाव दिखाया हो, मानो महाकवि द्वारा रचित कथाने अपना अर्थ दिखाया हो, मानो वह अमृत कणोंसे निर्मित हो, मानो गुणगणको इकट्ठा करके रख दिया गया हो, जब नरकमें गिरता हुआ विश्व नहीं सध सका, तो इसलिए मानो धर्मने पुरुषरूप ग्रहण कर लिया हो।

घत्ता—जनोंके तमका नाशक, लोकको प्रकाशित करनेवाला, कीर्तिरूपी बेलका अंकुर, मृगलांछनसे रहित कुमुदोंके लिए इष्ट जिनराजरूपी चन्द्र उदित हुआ है ॥८॥

९

निश्चय ही अपने तीन ज्ञानों, तथा लक्षणों (शंख, कुलिश आदि) तथा व्यंजनों (तिलक, मसा आदि) से युक्त शरीरके साथ, जिननाथके जन्म लेनेपर इन्द्रका आहतदर्प आसन काँप उठा। कल्पवासियोंने अपने स्वभावसे जान लिया। घण्टोंकी टंकार-ध्वनि होने लगी। ज्योतिषदेवोंके भवनोंमें दिग्गजोंको नष्ट कर देनेवाले निनाद हुए, व्यन्तरदेवोंके आवासों और शिविरोंमें पटह गरज उठे। भवनवासी देवोंके विमानोंमें शंखध्वनि होने लगी, विश्वमें क्षोभ फैल गया। ज्ञानसे इन्द्रने जान लिया कि भूलोकमें निष्पाप देवका जन्म हुआ है। उसके चित्तमें धर्मानन्द बढ़ गया। इन्द्र चला, सूर्य चला और चन्द्र चला। तब ऐरावत नामका मतवाला हाथी, जो वैक्रियिक शरीरके परिमाणवाला था, जो झरते हुए गण्डस्थलके मदजलसे गीला था, जो रुनझुन बजती हुई घण्टियोंसे ध्वनित था, जो वरत्रारूपी नक्षत्रमालासे स्फुरित शरीरवाला था, जो कानोंके चामरोंसे भ्रमरावलिको उड़ा रहा था, जो मन्दराचलके समान था, आ पहुँचा। लीलाओंसे पूर्ण बहुविध दाँतोंवाला। उसके प्रत्येक दाँतपर, अपनी कान्तिसे आकाशके सूर्योंको आलोकित करनेवाले सरोवरके कमल थे। पत्र-पत्रपर स्थूल स्तनोंवाली देवनारियाँ नृत्य कर रही थीं। इस प्रकार अलंघनीय उस ऐरावतको देखकर सौधर्म स्वर्गका इन्द्र उसपर शीघ्र चढ़ गया। सर्वत्र ध्वज छत्रोंसे सुन्दर था, सर्वत्र चमरोंसे आच्छादित था। सर्वत्र नाना यान जा रहे थे, सर्वत्र विमान दौड़ रहे थे, सर्वत्र मण्डप फैले हुए थे, सर्वत्र जयदुन्दुभिका शब्द हो रहा था, सर्वत्र स्वर और गीतोंकी मिठास थी। सर्वत्र उठी हुई मालाएँ थीं। तरुओंसे पल्लवित और कल्पवृक्षोंसे व्याप्त आकाश सर्वत्र सोह रहा था।

घत्ता—णवतणुरोमंचु दावइ उंचु जिणभवि हरिसु वहंति ।
तरु चलदलपाणि णडइ व खोणि भावें बहुरसवंति ॥९॥

१०

महिसेहिं मेसेहिं आसेहिं भासेहिं ।
हंसेहिं मोरेहिं कुररेहिं कीरेहिं ।
सरहेहिं करहेहिं दुरएहिं वसहेहिं ।
दीवीतरच्छेहिं [3]रिंछेहिं मच्छेहिं ।
सारंगसीहेहिं तरुगिरिहिं मेहेहिं ।
सिहि जम महाभीस णेरिय समुद्देस ।
मारुय कुबेरंक ईसाण णीसंक ।
मज्झम्मि खामाहिं मुद्धाहि सामाहिं ।
छणयंदवयणाहिं णवणलिणणयणाहिं ।
थणघुलियहाराहिं पसरियवियाराहिं ।
धयरट्ठगामिणिहिं सोहंतकामिणिहिं ।
गयणोवडंतीहिं सरसं णडंतीहिं ।
वज्जंतवज्जेहिं कीलंतखुज्जेहिं ।
बाहूरविल्लेहिं ढुक्कंतमल्लेहिं ।
बहुविहविलासेहिं मंगलणिघोसेहिं ।
संचल्लिया एम्व णाणाविहा देव ।

घत्ता—पावेवि अउज्झ परमदुगेज्झ परियंचेवि तिवार ।
फणि दिणयर चंदु भणइ सुरिंदु जय णाहेय कुमार ॥१०॥

११

गयणग्गलग्गहिमणिहसिहरु पइसेप्पिणु णाहिणरिंदघरु ।
जंपिवि पियवयणइं णिवपवरे मायहि मायासिसु देवि करे ।
अमयासणगणसंमाणियए कड्ढिउ देविइ इंदाणियए ।
सहसक्खें दिट्ठउ परमपरु कमलसरे णं णवदिवसयरु ।
लज्जइ अण्णाणतमोहहरु णं अंकुरत्ति थिउ धम्मतरु ।
णं बद्धउ सिवसुहकणयरसु णं पुरिसरूवि संठियउ जसु ।
णं सयलकलायरु उग्गमिउ णं एक्कहिं लक्खणपुंजु किउ ।
देविइ दिज्जंतु णियच्छियउ सोहम्मिंदेण पडिच्छियउ ।

---

८. MBP उच्चु । ९. MBP तरु वरदलपाणि ।

१०. १. BP कुररेहि । २. MB दुरहेहि । ३. MB रिच्छेहि । ४. B मारुव । ५. MBP °वयणेहि । ६. MBP °णयणेहि । ७. MBP गामणिहि । ८. MBP परदुग्गेज्झ । ९. MP °दिणयरु ।

११. १. M °णरिंदु घरु । २. MB पोमसरे । ३. BP सयलु कलायरु । ४. MB णिज्जंतु ।

घत्ता—धरती, जिनेन्द्र भगवान्‌के जन्मपर हर्ष धारण करती हुई, अपना नव तृणांकुरोंका ऊँचा रोमांच दिखाती है, और अनेक रसभावोंसे युक्त, वृक्षोंके चलदलवाले हाथोंवाली वह भावसे नृत्य करती है ॥९॥

१०

महिषों, मेषों, अश्वों, उलूकों, हंसों, मोरों, कुररों, कीरों, शरभों, करभों, गजों, बैलों, चमकती हुई आँखोंवाले रीछों, मत्स्यों, सारंगों, सिंहों, वृक्षों, पहाड़ों और मेघोंपर सवार होकर अग्नि, महाभयंकर यम, नैऋत्य, वरुण (समुद्रेश), मारुत, कुबेर और शंकाहीन ईशान आदि देव आये। मध्यमें क्षीण, मुग्धा पूर्ण चन्द-मुखी, नव-कमलोंके समान आँखोंवाली, स्तनोंपर हिलते हारोंवाली, प्रसरणशील विकारोंसे युक्त, हंसकी तरह चलनेवाली, आकाशसे उतरती हुई सरस नृत्य करती हुई सुन्दर रमणियों तथा बजते हुए वाद्यों, क्रीड़ा करते हुए वामनों, बाहुओंसे शब्द करते आते हुए मल्लों, बहुविधविलासों और मंगल शब्दोंके साथ, इस प्रकार नाना प्रकारके देव चले।

घत्ता—अत्यन्त दुर्ग्राह्य अयोध्या पहुँचकर तीन बार उसकी प्रदक्षिणा कर नाग, दिनकर, चन्द्र और सुरेन्द्रने कहा, "हे नाभेय कुमार! आपकी जय हो।" ॥१०॥

११

जिसके हिम-सदृश शिखर आकाशके अग्रभागको छूते हैं ऐसे नाभिराजाके घरमें प्रवेश कर नृपश्रेष्ठसे प्रिय बातें कर माताके हाथमें मायावी बालक देकर, देवोंके द्वारा सम्माननीय इन्द्राणी उसे बाहर ले गयी। इन्द्रने उन परमश्रेष्ठको देखा मानो नवसूर्यने कमलसरोवरको देखा हो। अज्ञानरूपी अन्धकारके समूहको नष्ट करनेवाले वे ऐसे लगते हैं, मानो धर्मका वृक्ष अंकुरित हो उठा हो; मानो शिवसुखरूपी स्वर्णरस बाँध दिया गया हो, मानो यश पुरुषके रूपमें रख दिया गया हो, मानो सम्पूर्ण कलाधर (पूर्णचन्द्र) उग आया हो, मानो लक्षणोंका समूह एक जगह

वरवंदारयवंदहिं णविउ[५] पणवेप्पिणु अंकग्गइ ठविउ ।
को ण गणइ पुण्णपरिप्फुरिउ[६] ईसाणें धवलछत्तु धरिउ ।
चमरइं विवंति अमराहिवइ साणक्कुमारमाहिंदवइ ।
घत्ता—जगु जित्तउ जेहिं णिम्मिउ तेहिं अणुयहिं देवहु देहु ।
तं सुइरु णियंतु दससयणेत्तु बिम्हिउ[७] पुलइयदेहु ॥११॥

१२

पुणु पभणइ महुं हयकम्ममलु बहुलोयणत्तु जायउ सहलु ।
एहउं तिहुयणपरमेसरहो जं दिट्ठउं रूवु जिणेसरहो ।
इय घोसिवि पुणु पुणु जोइयउ इंदें अइरावउ चोइयउ ।
परमेट्ठि लएप्पिणु भमियगहे सच्छरु सामरु संचलिउ णहे ।
भयसयइं[१] सणउयइं जोयणहं महि मुइवि ठाणु तारायणहं ।
तेत्थाउ सुदूसहकरपसरु[२] जोयणहिं पसाहियसरयसरु ।
उप्परि दहहिं जि रवि परिभमइ पुणु असियहिं ससि सइं संकमइ ।
चउहु जि रिक्खोहु णिरिक्खियउ[३] पुणु तेत्तिएहिं बुहु लक्खियउ ।
तिहिं सुक्कु तिहिं जि सुरगुरु भणमि तिहिं अंगारउ तिहिं सणि गणमि ।
सउ एम दहुत्तरु लंघियउ सुद्धायासु वि आसंघियउ ।
सहसाइं[४] गंपि अट्ठाणवइ अवरु वि जोयणसउ तियसवइ ।
एत्तेण जि सोहइ दीहरिय जोयण पण्णास पवित्थरिय[५] ।
अद्धेंव समुण्णय हिमविमल अद्धिंदुसरिच्छी पंडुसिल ।
जहिं तहिं पत्तेण पवित्ततणु जय जय पभणंतें परमजिणु ।
देवाहिवेण तेल्लोक्कहिउ तहि उप्परि सीहासणि णिहिउ ।
घत्ता—पहु सहइ णिसण्णु कंचणवण्णु असहियतेयपसंगु ॥
णं कुरुहकरेहिं वेल्लिहरेहिं मंदरु ढंकइ अंगु ॥१२॥

१३

जिणणाहहु भावें मेरुगिरि णं हरिसें दावइ णिययसिरि ।
णं पणमइ[१] फलभरणमियतरु णं घल्लइ[२] चमरीमय चमरु ।
णं कोइलकलरवेण चवइ णं फलिहसिलासणाइं ठवइ ।
पक्खालंतु व पहुकमकमलु आणइ जवेण णिज्झरणजलु ।
लिंपइ व सविणय पणयवसेण करिणिहसणचुयचंदणरसेण ।
जोयइ व रूवु सु सियासियहिं अहिणवणलिणच्छिहिं वियसियहिं ।
णच्चइ व पणच्चियणीलगलु गायइ व [३]रुणुझुणिय[४]रणिय भसलु ।
णं कुसुमामोएं णीससइ णं रयणरयणपंतिहिं हसइ ।

---

५. MBP णमिउ । ६. MB पुण्णपविप्फुरिउ । ७. MBP विंभिउ ।

१२. १. T *p* णयसयइं and explains it as णयसयइं इति पाठेऽप्ययमेवार्थः । २. P सुद्दसहु । ३. B णिरेखियउ । ४. M सहसइं गंपिणु; BP सहसा गंपिणु । ५. M सवित्थरय; BP सवित्थरिय ।

१३. १. M पणवइ । २. M घल्लय । ३. M सुझुणिय° । ४. MBP °रुणिय ।

रख दिया गया हो, दिये जाते हुए बालकको देवीने देखा, देवेन्द्रने उसे स्वीकार कर लिया। श्रेष्ठ चारणसमूह द्वारा वन्दनीय उन्हें प्रणाम कर गोदके अग्रभागमें रख दिया गया। पुण्यसे स्फुरायमान व्यक्तिको कौन नहीं मानता? ईशान इन्द्रने उनके ऊपर धवलछत्र रख दिया। अमरेन्द्र सनतकुमार और माहेन्द्रपति उनके ऊपर चमर ढोरते हैं।

घत्ता—"जिन अणुओंसे विश्व जीता गया है, उन्हींसे देवका शरीर निर्मित हुआ है"—इस बातका देर तक विचार करनेवाला इन्द्र विस्मित और पुलकित हो उठा।

१२

वह पुनः कहता है कि "मेरा कर्ममल नष्ट हो गया है और मेरे अनेक नेत्रोंका होना सफल हो गया है कि जो मैंने त्रिभुवनके परमेश्वर जिनेश्वरका यह रूप देख लिया है।" यह घोषित कर उसने बार-बार भगवान्‌को देखा और फिर अपने ऐरावतको प्रेरित किया। परमेष्ठी जिनेन्द्रको लेकर, अप्सराओं और देवोंके साथ वह भ्रमण करते हुए ग्रहोंवाले आकाशमें चला। सात सौ नब्बे योजन धरती छोड़नेपर तारागणोंका स्थान है। उससे, दस योजन ऊपर असह्य किरणोंके प्रसार-वाला शरद्‌कालीन सरोवरोंको खिलानेवाला सूर्य परिभ्रमण करता है। उसके अस्सी योजन ऊपर चन्द्रमा निरन्तर परिक्रमण करता है। उससे चार योजन ऊपर अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्र देखे जाते हैं। फिर वहाँसे उतनी ही दूरीपर बुध दिखाई देता है। वहीं मैं शुक्र और बृहस्पतिका कथन करता हूँ। वहीं मैं मंगल और शनिको गिनता हूँ। इस प्रकार एक सौ दस योजन चलनेपर उन्होंने शुद्ध आकाश पार किया। फिर वह एक हजार अट्ठानबे योजन जाता है। फिर इन्द्र एक सौ योजन जाता है। इतनी ही (सौ योजन) लम्बी और पचास योजन विस्तृत, आठ योजन ऊँची, हिमकी तरह स्वच्छ अर्द्धचन्द्रके आकारको पाण्डुशिला जहाँ शोभित है, वहाँ पहुँचनेपर, जय-जय-जय करते हुए देवेन्द्रने पवित्र शरीर, तीनों लोकोंका कल्याण करनेवाले परम जिनको उस शिलाके ऊपर सिंहासनपर स्थापित कर दिया।

घत्ता—असह्य तेजवाले स्वर्णके रंगके स्वामी उसपर विराजमान ऐसे शोभित हो रहे हैं, मानो मन्दराचल, लताओंको धारण करनेवाले वृक्षरूपी हाथोंसे शरीरको ढकता है ॥१२॥

१३

जिननाथके भावपूर्वक मानो वह हर्षसे अपनी लक्ष्मी दिखाता है, मानो फलभारसे नमित वृक्षोंसे प्रणाम करता है। मानो उनपर चमरीमृग चमर ढोरते हैं। मानो कोयल सुन्दर शब्दमें बोलती है, मानो स्फटिक मणियोंकी शिलाएँ स्थापित करता है। वेगसे झरनोंके जलको लाता है और प्रभुके चरण-कमलोंका प्रक्षालन करता है। हाथियोंके संघर्षणसे गिरे हुए चन्दनरससे जो प्रणयसे विनयपूर्वक जैसे लीपता है। जो अपनी सित-असित अभिनव कमलरूपी आँखोंसे जैसे उनका रूप देखता है, नाचते हुए मयूरोंसे युक्त वह जैसे नाचता है, जिसमें गुनगुनाते हुए भ्रमर हैं, जैसे गाता है। मानो वह कुसुमोंके आमोदसे निश्वास लेता है, मानो वह रत्नरूपी दाँतोंकी पंक्तियोंसे हँसता है।

घत्ता—संठिउ मणिरंगि मंदरसिंगि चंपयवासविमीसे ॥
जिणु सासयसोक्खु णावइ मोक्खु थिउ तेलोक्कहु सीसे ॥१३॥

१४

ता हयाइं भेरिझल्लरीमुइंगसंखतालकाहलोइं[2] वज्जयाइं ।
खिब्भिसेहिं पाणिपायकुंचियाइं णच्चियाइं वामणाइं[3] खुज्जयाइं ॥
भूयजक्खकिंणरेहिं खेयरेहिं रक्खसेहिं णायणाइणीसएहिं ।
आयएहिं पूरियं णिरंतरं णहंतरं भवंतभावभाविएहिं ॥
बालहंसगामिणीहिं इंदचंदकामिणीहिं गाइयाइं मंगलाइं ।
दब्भदोव्व[4]पूयवीयमट्टियाकणेहिं ताइं णिम्मियाइं णिम्मलाइं ।
उद्धबद्धणिद्धचारुचीरमंडवे फुरंतमोत्तिएहिं मंडिऊण ।
लोयतावकारणाइं कुच्छियाइं वंछियाइं छेल्लिऊण ॥
सद्दिऊण णायरेण सायरेण सासणामरे वरे पओसिऊण ।
गंधधूवफुल्लदीवतोयतंदुलण्णजण्णभायए णिवेसिऊण ॥
सक्कचिक्किकालणेरिअण्णवाणिले कुबेरसूलिणे समच्चिऊण ।
मंतपुव्वियं विहिं सुहावहं समागमे समासियं समासिऊण ॥
जीय देव णंद वद्ध सिद्ध बुद्ध सुद्धसील सामिसाल भाणिऊण ।
दोहएहिं दोधएहिं खंधएहिं चित्तवित्तसंथुईहिं माणिऊण ॥
मंदरं छिवंतियाइ बद्धदेवपंतियाइ खीरसायरंतियाइ ।
वोमयं कमंतियाइ धंतियाइ थंतियाइ जंतियाइ एंतियाइ ॥
हारदोर[10]कंचिदामवंभसुत्तकंक[11]णालिकुंडलाहिं भूसिएहिं ।
आइवीयकप्पपुंगमेहिं आसणासिएहिं सम्मयाहिलासिएहिं ॥
अट्ठजोयणोयरेहिं एक्ककंठवित्थरेहिं अब्भयं णिसुंभएहिं ।
हुंदहोपयच्छिएहिं पाणिणा पडिच्छिए उग्गयंबुथंभएहिं[12] ॥
चंदणेण चच्चिएहिं पुप्फदामवेढिएहिं णं घणेहिं संभएहिं ।
एक्कमेक्कढोइएहिं पोमपत्त[13]छाइएहिं सायकुंभकुंभएहिं ॥
सिंचिओ पुणंचिओ णमंसिओ पसंसिओ पसाहिओ महाइदेवो ।
कामकोहमोहलोहमाणडंभचं[14]पलत्तवज्जिओ हयावलेवो ॥

घत्ता—जो णाणविसुद्धु जिणु सइंबुद्धु सो ण्हाविउ लइ ण्हाइ ।
झसवासहु तोउ भत्तउ लोउ सूरहु दीवउ देइ ॥१४॥

---

१४. GK mention at the beginning पिंगलाणंदो णाम दंडओ; MBP have विंगलाणंदो णाम छंदो । १. M °मुयंग° । २. MB °काहलाइवज्जयाइं । ३. MB वावणाइं । ४. P °दोव्व° but gloss दूर्वा । ५. K छंडिऊण । ६. M °जक्ष° । ७. BP °सूलिपो । ८. KT दूहएहिं । ९. MB मन्दिरं; K मन्दिरं but corrects it to मन्दरं । १०. P °डोर° । ११. P कंकणाहिं° । १२. MBP °विभएहि, but gloss in P उद्गतोच्छलितजलबिन्दुभिः । १३. P पोमवत्त° । १४. P °चप्पलत्त° ।

घत्ता—चम्पककी वाससे मिश्रित सुन्दर मन्दराचल शिखरपर स्थित जिन ऐसे मालूम हुए मानो शाश्वत सुखवाला मोक्ष त्रिलोकके ऊपर स्थित हो ॥१३॥

१४

इतनेमें तूर्यवादक देवोंके द्वारा भेरी, झल्लरी, मृदंग, शंख, ताल और कोलाहल आदि वाद्य बजा दिये गये। अपने हाथ-पैर आकुंचित करते हुए वामन और कुबड़े नाचने लगे। आये हुए भूत, यक्ष, किन्नरों, विद्याधरों, राक्षसों, सैकड़ों नाग-नागिनियोंके द्वारा अनुरागसे भरकर निरन्तर आकाश गुँजा दिया गया। बालहंसके समान चलनेवाली इन्द्र और चन्द्रकी महिलाओंके द्वारा मंगल गीत गाये गये। दर्भ, दूब, अपूप, बीज और मिट्टीके कणोंसे निर्मल मंगल रचे गये। ऊपर बँधे हुए चिकने और सुन्दर कपड़ेके मण्डपमें, चमकते हुए मोतियोंसे अलंकृत कर लोक-सन्तापकी कारणरूप कुत्सित इच्छाओंको छोड़कर, चतुर इन्द्रने आदरपूर्वक शासन-देवोंको आह्वान कर और सन्तुष्ट कर, गन्ध, धूप, फूल, दीप, जल, तन्दुल और अन्न आदि यज्ञांशोंको रखकर, इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋत्य, अर्णव, पवन, कुबेर और ईशान दिग्पालोंकी अर्चना कर, मन्त्रपूर्वक जिनआगममें प्रतिपादित सुखद विधिका आश्रय लेकर, हे देव जियो, प्रसन्न होओ, बढ़ो, हे सिद्ध बुद्ध शुद्धाचरणवाले स्वामिश्रेष्ठ, यह कहकर दोहों, बोधकों, स्कंधकों, चित्रवृत्तोंवाली स्तुतियोंसे मानकर, मन्दराचलको छूनेवाली, तथा क्षीरसमुद्र तक फैली हुई, आकाशका अतिक्रमण करती हुई, दौड़ती हुई, ठहरती हुई, जाती हुई, आती हुई, बँधी हुई देवपंक्तिके द्वारा हार, दोर, स्वर्ण, करधनी, यज्ञोपवीत, कंगनपंक्ति और कुण्डल आभूषणोंसे अलंकृत, आसनोंपर स्थित सम्यक् अभिलाषा रखनेवाले, आठ योजन लम्बे और एक योजन विस्तृत मेघपटलको नष्ट करनेवाले, लो यह कहते हुए, प्रथम और द्वितीय स्वर्गके देवेन्द्रोंके द्वारा हाथसे दिये गये, जिनसे जलकी बूँदें गिर रही हैं, ऐसे चन्दनसे चर्चित, पुष्पमालाओं-से वेष्टित, जो मानो जलसे भरे मेघोंके समान हैं ऐसे एक दूसरेके द्वारा ले जाये गये, कमल पत्रोंसे ढके हुए स्वर्ण कलशोंसे, काम, क्रोध, मोह, लोभ, मान, दम्भ और चपलतासे रहित, पापसे दूर महान् आदिदेव (ऋषभ) को अभिषिक्त किया गया, पुनः पूजा गया, नमन किया गया, सराहा गया और प्रसाधित किया गया।

घत्ता—जो जिनेन्द्र ज्ञानविशुद्ध स्वयं बुद्ध हैं, उन स्नातको—समुद्रको जलस्नान कराता है। भक्त लोक सूर्यको दीपक दिखाता है ॥१४॥

१५

णिम्मलहु जि ण्हाणु विराइयउ मंगलहु जि मंगलु गाइयउ ।
परमेट्ठिहि जाणियसंवरहो[3] किं अंबरु दिण्णु णिरंबरहो ।
किं भूसणु भूसणि संणिहिउ किं जगमंडणि[1] मंडणु लिहिउ ।
पविसूइइ ववगयभवरिणहो विंधेप्पिणु[2] सवणजुयलु जिणहो ।
विच्छूढइं मणिमयकुंडलइं णं ससहरदिणयरमंडलइं ।
चयलब्भपिसायहु णट्ठाइं णाहेयहु सरणु पइट्ठाइं ।
किं कोसिएण जगसेहरहो सिरि सेहरु बद्धउ मणहरहो ।
गलरेहाजित्तें वलियएण हेट्ठामुहेण परिघुलियएण ।
हियउल्लउ हारें सेवियउ जडजाएं किं पि ण भावियउ ।
घत्ता—जो सालंकारु किमलंकारु सुरवर तासु करंति ।
महु हियवइ भंति णउ लज्जंति रूवु काइं [4]ढंकंति ॥१५॥

१६

किं बुद्धि ण हूई सुरयणहो मणिबंधु महग्घउ कंकणहो ।
कडिसुत्तउ कडियलि वलइयउ किंकिणिसरु चवइ व पुलइयउ ।
किं सीहणि[1]यंबहु एह सिरि लइ अच्छइ तं सेवंतु गिरि ।
कमजुइ संणिहियउ झणझणइ मंजीरजुयलु इय णं भणइ ।
जं भव्वजीवसंतइसरणु संसारमहाजलणिहितरणु ।
कोमलसरलंगुलिदलकमलु णहकिरणपसरहयतिमिरमलु ।
मइं लद्धउ जिणवरपयजुयलु महु जायउ भूसणत्तु सहलु[2] ।
जं करणकालि सिहिताविउ तं तवहलु णं विहिदाविउ ।
घत्ता—सुरसायरतोउ णाहविओउ ण सहइ विरइयण्हाणु ।
मंदरगिरिगुज्झि महिहरु[3]हमज्झि णं घल्लइ अप्पाणु ॥१६॥

१७

दूराउ वहंतु णियच्छियउ सीसेणं[1] सुरेहिं पडिच्छियउ ।
वंदिज्जइ जिणतणु परिलुढिउ[2] कक्करकंदरणिवडणि[3] सुढिउ ।
णिज्जइ देवेहिं करेणं[4] करु गुरुसंगें को णउ होइ गुरु ।
पंकयकेसररयधूसरिउ कस्सीरयराएं[5] पिंजरिउ ।
वणकुंजरकुंभत्थलखलिउ करडयलगलियमयपरिमलिउ ।
संचलियसिलिम्मुहचित्तलिउ[6] णाणामणिकिरणहिं संवलिउ ।
परिघोलइ सिहरिंदहु तणउं णं पंचवण्णु उप्परियणउं ।

१५. १. P जगमंडणु मंडणि । २. P विंधेविणु । ३. MBP जाणियउ । ४. EP ढक्कंति ।
१६. १. P सिंह° । २. M भूसणत्तु जायउ । ३. P महिहर° ।
१७. १. P सीसेहिं । २. MBP परिढुलिउ । ३. K °णिवडणसुढिउ । ४. P करेहिं । ५. PT कासीरय° ।
६. MBP °सिलीमुह° ।

१५

निर्मलको भी स्नान कराया गया। मंगलका भी मंगल गाया गया। संवरको जाननेवाले दिगम्बर परमेष्ठीको अम्बर वस्त्र क्यों दिया गया ? जो भूषणस्वरूप हैं उन्हें भूषण क्यों पहनाया गया, जो जगमण्डन हैं उनपर मण्डन क्यों किया गया ? संसारके ऋणसे मुक्त जिनके दोनों कानोंको वज्रसूचीसे बेधकर मणिमय कुण्डल पहना दिये गये, मानो चन्द्र और दिनकरके मण्डल हों, जो मानो चंचल राहुसे भागकर नाभेयकी शरणमें आये हों। विश्वश्रेष्ठ सुन्दर ऋषभके सिरपर इन्द्रने मुकुट क्यों बाँध दिया ? गलेकी रेखासे जीता गया, झुका हुआ अधोमुख आन्दोलित हारके द्वारा हृदयकी सेवा की गयी, जो जड़जात (जड़से उत्पन्न, और जलसे उत्पन्न मोती) को कुछ भी अच्छा नहीं लगा।

घत्ता—जो स्वयं सालंकार हैं, देवता उसे अलंकार क्यों पहनाते हैं, मेरे हृदयमें भ्रान्ति है कि उन्हें शर्म नहीं है, वे रूपको क्यों ढकते हैं ॥१५॥

१६

क्या देवोंको बुद्धि नहीं उपजी कि उन्होंने कंकणोंका महार्घ मणिबन्ध और कटिसूत्र कटि-तलमें बाँध दिया। किंकिणीका स्वर रोमांचित होकर कहता है क्या सिंहके नितम्बमें यह शोभा है ? लो यही कारण है कि वह पहाड़की सेवा करता हुआ वहीं रहता है। दोनों चरणोंमें झन-झन करते हुए नूपुरोंका जोड़ा यह कहता है कि जो भव्यजीवोंकी परम्पराके लिए शरणस्वरूप हैं, जो संसाररूपी महासमुद्रसे तारनेवाले हैं, जो कोमल स्वरों और अंगुलियोंके दल कमलवाले हैं, और (ज्ञान रूपी) सूर्यके प्रसारसे तिमिरमलको नष्ट कर देते हैं, मैंने ऐसे जिनवरके चरणयुगलको पा लिया है, मेरा भूषण होना सफल हो गया। बनाये जाते समय मुझे जो आगमें तपाया गया, मानो विधाताके द्वारा दिखाया गया, यही मेरे तपका फल है।

घत्ता—स्नान करानेवाला क्षीरसमुद्रका जल अपने स्वामीका वियोग सहन नहीं करता इसीलिए मन्दराचलसे गुह्य वृक्षोंके मध्यमें अपनेको डाल देता है ॥१६॥

१७

देवोंने दूरसे बहते हुए उसे देखा और अपने सिरसे उसे अंगीकार कर लिया। जिनके शरीरसे लुढ़का हुआ और कठोर गुफाओंमें गिरनेसे दुःखित उसे देवोंने हाथों हाथ ले लिया। गुरु-के साथ कौन गुरु नहीं होता। कमलपरागकी धूलसे धूसरित केशरकी लालिमासे पीला, वनगजोंके गण्डस्थलोंसे पतित, गजकपोलोंसे झरते हुए मदजलसे सुगन्धित, चलते हुए भ्रमरोंसे चित्रित नाना मणि-किरणोंसे मिश्रित स्नानजल ऐसा लगता है मानो सुमेरु पर्वका पचरंगा दुपट्टा उड़ रहा

णहिं णहयरेहिं महियलि णरेहिं पायालि पढंतहं विसहरेहिं ।
धावंतु थंतु वियलंतु चलु वंदिउ सव्वण्हुहि ण्हाणजलु ।
घत्ता—इच्छियगुरुसेव चउविह देव हरिसें कहिं मि णमंति ॥
उट्ठंत पडंत पुरउ णडंत वारवार पणवंति ॥१७॥

१८

केण वि वाइत्तउं वाइयउ केण वि सुइमिट्ठउ गाइयउ ।
केण वि बहुसुक्किउ संचियउ केण वि भावालउ णच्चियउ ।
सवलहणउं केण वि ढोइयउ केण वि आहरणु णिवेइयउ ।
केण वि थोत्तइं पारद्धाइं केण वि तोरणइं णिबद्धाइं ।
पडिहारु को वि हुउ दंडधरु कु वि पासि परिट्ठिउ खग्गकरु ।
पडु पढइ का वि अणुराइयउ केण वि मालउ उच्चाइयउ ।
कासु वि आलावणि णिद्धतणु जहिं छिप्पइ तहिं तहिं करइ मणु ।
सरलंगुलिताडिय रणझणइ णिज्जीव वि जिणवरगुण थुणइ ।
तहिं अवसरि कयणाणावयणु थुइ गुरुहि करइ दससयणयणु ।
आयासु जि आयासह्नु सरिसु उवमाणु ण तुज्झु को वि पुरिसु ।
जइ पइं जि समाणउं पइं भणमि ता परमेसर किं पइं थुणमि ।
घत्ता—जो कहइ कएण कइ कव्वेण जिणवर तुह गुणरासि ॥
सो णिरु लहुएण करचुलुएण मूढु मवइ जलरासि ॥१८॥

१९

तुह थोत्तवित्तस्स चित्तं णवं देमि अह्मीस धिट्ठत्तणेणेव वंदेमि ।
धणलाहलोलेहिं संगहियसंगेहिं परणारिहिंसामुसाणंदियंगेहिं ।
पसुमंसमज्जंबुधाराविलुद्धेहिं कुलजाइविण्णाणगारावरुद्धेहिं ।
मयघुम्मिरच्छीहिं मिच्छत्तिरूढेहिं कह दीससे तं महामोहमूढेहिं ।
असिवत्तदुग्गंतराले घडंताण णरयम्मि घंते महंते पडंताण ।
जमपासणिप्पीडियाणं सवाहीण जिण को करालंवणं देइ देहीण ।
इणं भो जयंजम्मवासं णिहंतूण परमं पयं णेइ को तं पमोत्तूण ।
जय कालकालग्गिजालावलीकंद जय इंदणाइंदलच्छीलयाकंद ।
जय घोरसंसारकंतारणित्थार जय दव्वपज्जायसंभावणासार ।
जय मारसिंगारपब्भारणिब्भेय जय दीहदालिद्ददोहग्गविच्छेय ।
जय दुव्विणीयंतरंगाण दुण्णेय जय णाह णीराय णीसल्ल णाहेय ।
जय देव कंठीरवुव्वूढपीढत्थ जय कूरचित्तेसु भत्तेसु मज्झत्थ ।

७. MBP कहव । ८. MBP पणमंति ।

१८. १. B णाणावयणु तणु । २. P णरु ।

१९. १. K वंदामि । २. MBP °लाहलोहेहिं । ३. MBP °गारावलुद्धेहिं । ४. M मिच्छत्ति° । ५. B जयजम्म° ।

हो। नभमें नभचरों, धरतीपर मनुष्यों और पातालमें विषधरोंने गिरते, दौड़ते, ठहरते, विगलित होते चंचल, सर्वज्ञके स्नानजलकी वन्दना की।

घत्ता—गुरुकी सेवाकी इच्छा रखनेवाले चार प्रकारके देव हर्षसे कहीं भी जलका नमस्कार करते हैं। उठते-पड़ते सामने नाचते हुए वे बार-बार प्रणाम करते हैं ॥१७॥

१८

किसीने बाजा बजाया, किसीने श्रुतिमधुर गाना गाया, किसीने प्रचुर पुण्यका संचय किया। किसीने भावपूर्ण नृत्य किया। किसीने विलेपन भेंट दिया। किसीने आभूषण दिये, किसीने स्तोत्र शुरू किये, किसीने तोरण बाँधे। कोई दण्डधारी प्रतिहारी बन गया। कोई हाथमें तलवार लेकर पास खड़ा हो गया। धर्मानुरागसे युक्त कोई सुन्दर पढ़ने लगा। किसीने माला ऊँची कर ली। किसीकी वीणा स्निग्धतर हो उठी। जहाँ-जहाँ वह स्पर्श करता है वहीं मन हो जाता है। स्वर और अँगुलियोंसे ताड़ित वह रुनझुन करती है, निर्जीव होते हुए भी, जिनवरके गुणोंकी स्तुति करती है। उस अवसरपर सहस्रनयन इन्द्र अपने नाना मुख बनाकर गुरुकी स्तुति करता है, "आकाश आकाशके समान है, तुम्हारा उपमान कोई भी मनुष्य नहीं हो सकता। हे जिनवर, जब आप आपके ही समान कहे जाते हैं तो हे परमेश्वर, मैं आपकी क्या स्तुति करूँ?

घत्ता—हे जिनवर, जो स्वनिर्मित काव्यसे तुम्हारी गुणराशिका कथन करता है वह मूर्ख अत्यन्त छोटे हाथरूपी करछलसे जलराशिको मापना चाहता है ॥१८॥

१९

हे जिनवर, तुम्हारे स्तवनके आचरणमें मैं अपना नवीन चित्त देता हूँ। हे ईश, मैं धृष्टतासे ही तुम्हारी वन्दना करता हूँ। जो धनलाभके लालची, संगृहीतका संग्रह करनेवाले, परस्त्रियोंकी हिंसा और अपहरणसे आनन्दित होनेवाले, पशुमांस और मद्यकी जलधारामें लुब्ध होनेवाले, कुल जाति और विज्ञानके गर्वसे अवरुद्ध, मदसे घूमती हुई आँखोंवाले, मिथ्यात्वपर चढ़े हुए और महामूढ़ हैं, उनके द्वारा वह कैसे देखा जा सकता है। असिपत्रोंसे दुर्गम अन्तरालमें घटित होते हुए, महान्धकारमय नरकमें पड़ते हुए, यमके पाशसे अत्यन्त पीड़ित और सब प्रकारसे हीन शरीरधारियोंके लिए हे जिन, कौन हाथका सहारा देता है? मेरे इस जगजन्मवासको नष्ट कर, तुम्हें छोड़कर कौन मुझे परमपदमें ले जा सकता है? कालरूपी कालाग्निकी ज्वालावलीके लिए मेघतुल्य तुम्हारी जय हो। इन्द्रों और नागेन्द्रोंकी लक्ष्मीरूपी लताके अंकुर आपकी जय हो। संसारके घोर कान्तारसे निस्तार दिलानेवाले आपकी जय हो; द्रव्यों और पर्यायोंकी सम्भावनाओंके सार, आपकी जय हो; कामके शृंगारके भारका भेदन करनेवाले आपकी जय हो; दीर्घ दारिद्र्य और दुर्भाग्यका छेदन करनेवाले आपकी जय हो। दुर्विनीत हृदयवालोंके लिए अज्ञेय आपकी जय हो, वीतराग शल्यहीन हे नाभेयनाथ, आपकी जय हो। सिंहासनपर स्थित हे देव, आपकी जय। दुष्टचित्तों और भक्तोंमें मध्यस्थ चित्त, आपकी जय।

घत्ता—जय मंथरगामि तिहुयणसामि एत्तिउ मग्गिउ देहि ॥
जहिं जम्मु ण कम्मु पाउ ण धम्मु तहु देसहु मइं णेहि ॥१९॥

२०

देवं सुणहविऊण भत्तीइ णविऊण ।
पडुपडहणाएहिं [1]थगिदुगिगघाएहिं ।
[2]दुणिकिटिमटकेहिं झंझंसघोकेहिं ।
भंभंत[3]भंभाहिं ढक्काहुडुक्काहिं ।
करडाहिं संखेहिं झल्लरिहिं [4]मद्दलहिं ।
तालेहिं काहलहिं अण्णहिं असंखेहिं ।
बहिरियदसासेहिं जयतूरघोसेहिं ।
बहुवयणु बहुणयणु करपिहियपिहुगयणु ।
हरिसेण [5]विच्छुरिउ णियतरुणिपरियरिउ ।
विविहंगहारेहिं रसभावसारेहिं ।
उप्पयइ [6]परिवडइ आहंडलो णडइ ।
धम्माणुराएण पयजुयणिवाएण ।
सुरमहिहरो फुडइ महिवीढु कडयडइ ।
परिभमइ थरहरइ णियदेहु संवरइ ।
रोसेण [7]फुंफुवइ फणि फरुसु विसु मुयइ ।
विसजलणु वित्थरइ धगधगइ हुरुहुरइ ।
तावेण कढकढइ जलयरकुलं लुढइ ।
[8]जलही यि झलझलइ सेरं[9] समुल्लसइ ।

भत्ता—रिक्खइं णिवडंति दिसउ मिलंति महिविवरइं फुट्टंति ॥
णच्चंतें इंदें णयणाणंदें गिरिसिहरइं तुट्टंति ॥२०॥

२१

इय णच्चिवि गिणिहवि उसहसिरि आरूढु सवारणखंधि हरि ।
सच्छरु सविबुहु लहु संचलिउ पवणंदोलियधयवडलुलिउ ।
संगीयसद्दकोलाहलेण खे धावंतें सुरवरबलेण ।
तणुकंतिभारवारियविहुणा [1]उप्परि एंतेण देवपहुणा ।
दीसइ अहत्थु णक्खत्तगणु णं [2]णहसरि फुल्लिउ [3]कमलवणु ।

---

२०. १. MB ठगदुगिग°; P थगदुगिग° । २. MB दुणिकिट्टिमटकेहि; P दुणिकिट्टमटकेहि । ३. MBP भंभंत° । ४. MBP मंदलहिं । ५. MBP विप्फुरिउ । ६. P पडिवडइ । ७. MB पुप्फुवइ । ८. MBP जलणिहि वि । ९. MB सरसं ।

२१. १. P उप्परि यंतेण but gloss आगच्छता । २. B णहसिरफुल्लिउ; P णहसरफुल्लिउ । ३. K कुसुमवणु ।

घत्ता—हे मन्थरगामी त्रिभुवनस्वामी, आपकी जय हो, इतना माँगा हुआ दीजिए कि जहाँ जन्म नहीं है, कर्म नहीं है, पाप नहीं है और न धर्म है, उस देशमें मुझे ले जाइए ॥१९॥

२०

देवको स्नान करा कर, भक्तिसे प्रणामकर, पटुपडहके नादों, थारी-दुगिगके आघातों, दुणि-किटिम और टक्कों, झंझा और सघोक्कों, भेभंत-भंभाहों, ढक्का और हुडुक्कों, करडों, काहलों, झल्लरियों, मद्दलों, ताल और शंखों और भी असंख्यों दिशाओंको बहरा बना देनेवाले जयतूर्य घोषोंके द्वारा, जिसके अनेक मुख हैं, अनेक नेत्र हैं, जिसने हाथोंसे विशाल आकाशको आच्छादित कर रखा है, हर्षसे विह्वल तरुणीजनसे घिरा हुआ ऐसा इन्द्र रसभावोंसे श्रेष्ठ विविध अंग निक्षेपोंके द्वारा उछलता है, गिरता है, और धर्मके अनुरागसे नृत्य करता है। पैरोंके गिरनेसे सुमेर पर्वत फट जाता है। धरतीपीठ कड़कड़ होता है। शेषनाग घूमता है, थर्राता है, अपना शरीर सम्हालता है, क्रोधसे फुफकारता है, कठोर विष उगलता है, विषकी ज्वाला फैलती है, धक-धक हुरहुर करती है, तापसे कड़कड़ करती है, जलचरसमूहको नष्ट करती है। समुद्र भी चमकता है, स्वेच्छासे उल्लसित होता है।

घत्ता—नक्षत्र टूटते हैं, दिशाएँ मिलती हैं, महीविवर फूटते हैं, नेत्रोंके लिए आनन्ददायक इन्द्रके नाचनेपर गिरिशिखर टूट जाते हैं ॥२०॥

२१

इस प्रकार नृत्य कर और श्री ऋषभको लेकर इन्द्र अपने ऐरावतके कन्धेपर चढ़ गया। अप्सराओं और देवोंके साथ वह चला। वह पवनसे आन्दोलित ध्वजपटोंसे चंचल था। संगीतके कोलाहलके शब्दके साथ सुरबलके आकाशमें दौड़नेपर तथा शरीरकी कान्तिके भारसे चन्द्रमाको निवारण करनेवाले इन्द्रके ऊपरसे आनेपर नीचे स्थित नक्षत्रगण ऐसा दिखाई देता था, मानो

णं मोत्तियमंडवु मेइणिहि जिणु ण्हाणंतिहि मंदाइणिहि ।
सियजलकणणियरु समुच्छलिउ णं दीसइ दसदिसासु घुलिउ ।
उज्झाउरि झत्ति पराइयउ रायंगणि लोउ ण माइयउ ।
उत्तरिवि करिहि हरि आइयउ मायापियरहुं सिसु ढोइयउं ।
तिहुयणपरिपालणपरमविहि संगहिय तेहिं सो णाणणिहि ।
विसु धम्मु तेण भोइ त्ति पहु भासियउ पुरंदरेण विसहु ।
घत्ता—जगभरहु समत्थु पुण्णपसत्थु णंदणु लेवि अदीण ।।
सुरसंथुयपाय हरिसिय माय पुप्फयंति आसीण ।।२१।।

इय महापुराणे तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारे महाकइपुप्फयंतविरइए महाभव्वभरहाणुमण्णिए महाकव्वे जिणजम्माहिसेयकल्लाणं णाम तइओ परिच्छेओ सम्मत्तो ।। ३ ।।

।। संधि ।। ३ ।।

४. MBP add after this foot : संतोसवसेण पलोइयउ; G gives it in the margin in second hand, but K does not give it at all. ५. M ताइ त्ति । ६. BP पुप्फयंतआसीण ।

आकाशरूपी नदीमें कमलवन खिला हो मानो धरतीका मोतीमण्डप हो, मानो जिनके स्नानके अन्तमें मन्दाकिनीका श्वेत जलकणसमूह उछल पड़ा हो, और दसों दिशाओंमें व्याप्त दिखाई दे रहा हो। वह शीघ्र अयोध्या नगरीमें पहुँचा, लोक राजाके प्रांगणमें नहीं समा सका। ऐरावतसे उतरकर इन्द्र आया, और उसने माता-पिताको पुत्र दे दिया। ज्ञाननिधि उसने उनसे त्रिभुवन-परिपालनकी विधि संगृहीत की। चूँकि उनसे (जिनेन्द्रसे) धर्म शोभित है, इसलिए इन्द्रने उन्हें वृषभ कहा।

घत्ता—जगभारमें समर्थ, पुण्यसे प्रशस्त, और अदीन पुत्रको लेकर सुन्दर स्थानपर बैठे हुए, देवोंसे संस्तुत चरण माँ हर्षित होती है ॥२१॥

इस प्रकार त्रिषष्टि पुरुषगुणालंकारवाले महापुराणमें, महाकवि पुष्पदन्त द्वारा विरचित महा-भव्य भरत द्वारा अनुमत इस महाकाव्यमें जिनजन्माभिषेक कल्याण नामक तीसरा परिच्छेद समाप्त हुआ ॥३॥

संधि ४

घरि पुणरवि सयणहिं परियणहिं जिणजम्मुच्छवु जो रइउ ।
तं पेच्छेवि विसं[2]हरु णरु खयरु सुरवरु कोउ ण विम्हँ[3]इउ ॥ ध्रुवकं ॥

१

जंभेट्टिया—तणुअणुरुवइं रंजियरूवइं ।
देवि पसत्थइं भूसणवत्थइं ॥१॥

घोलंतउ मालइमालियाउ थणथण्णामयधारालियाउ ।
कंकेल्लिपल्लवाइयकराउ धाँईउ समप्पिवि अच्छराउ ।
किंकर गिव्वाण अणंत देवि सिसुणाहहु णिरु भावें णवेवि ।
तं गुरुजुयलुल्लउं विमलणाणि पुज्जेवि पसंसिवि कुलिसपाणि ।
[6]पुच्छिवि गउ सयमहु सघरु जाम कोसलपुरि वड्ढइ बालु ताम ।
उत्ताणसेज्ज णिं[7]म्मुक्कगंथु णं सिद्धिहि केरउ णियइ पंथु ।
वड्ढंतें वड्ढइ हिरिविसेसु खेलंतें खेलइ दिहिविलासु ।
बइसंतें बइसइ सिरि चलच्छि रंगंतें रंगइ समउ लच्छि ।
पसरंतें पसरइ सुथिरकंति उड्डीहोंतें उग्गमइ कित्ति ।
भासंतएण खलियक्खराइं बुद्धइं बावण्ण वि अक्खराइं ।
चिरु धरियइं दरदेंतें पयाइं संभरियइं पुव्वंगहं पयाइं ।
जिणससिणा लेंतें तणुकलाउ विण्णायउ चउसट्ठि वि कलाउ ।
घत्ता—करणिड्डिइ थिरसंभूयमइ मइइ सत्थु संमाणियउं ।
तं [10]चिंतंतें परमेसरेण ओहिइ जगु परियाणियउं ॥१॥

GK have at the commencement of this Samdhi the following stanza :—

सौभाग्यं शुचिता क्षमा भुजबलं शौर्यं वपुः सुन्दरं
सत्यं सर्वजनोपकारकरणं वृत्तं स्वकं सन्मतम् ।
हे विद्वन् भरतस्य भूतिजननं विद्यार्थिनामाशु य-
स्यैकैकं गुणमङ्गमूर्जितधियां पुंसामचिन्त्यं भुवि ॥

MBP have the following stanza :—

आश्रयवशेन भवति प्रायः सर्वस्य वस्तुनोऽतिशयः ।
भरताश्रयेण संप्रति पश्य गुणा मुख्यतां प्राप्ताः ॥

१. १. MBP पेच्छिवि । २. M विसिहरु । ३. MB विंभयउ; P विंभियउ । ४. MBP धाइयउ । ५. MB तग्गुरु° । ६. P पुंछिवि । ७. P णिमुक्क°; K णिमुक्क° but corrects in to णिम्मुक्क° । ८. MBP खेल्लंतें खेल्लइ । ९. MBP चरियइं । १०. MBP णं चिंतंतें ।

सन्धि ४

घरमें फिरसे स्वजनों और परिजनोंके द्वारा जिनजन्मका जो उत्सव किया गया, उसे देखकर विषधर, नर, विद्याधर और देवेन्द्र कौन ऐसा था जो विस्मित नहीं हुआ ?

१

शरीरके अनुरूप और रूपको रंजित करनेवाले प्रशस्त भूषण और वस्त्र देकर, मालती-मालाओंको घुमाती हुई, स्तनोंमें दूधरूपी अमृतधारावाली, अशोक वृक्षके पल्लवोंके समान हाथों-वाली अप्सराओंको धायके रूपमें सौंपकर, अनन्तदेवोंको किंकरके रूपमें देकर, अत्यन्तभावसे शिशु स्वामीको नमस्कार कर विमल ज्ञानवाले नाभिराज और मरुदेवी, दोनोंकी पूजा और प्रशंसा कर और अनुमति लेकर वज्रपाणि (इन्द्र) अपने घर चला गया, अयोध्यामें बालक दिन दूना रात चौगुना बढ़ने लगता है। सेजपर लेटा हुआ नग्न बालक ऐसा लगता है मानो सिद्धिके मार्गको देख रहा हो। बालकके बढ़नेपर ऋद्धि विशेष बढ़ती है, खेलनेपर धैर्यका विलास खेलने लगता है। उसके बैठनेपर चंचल आँखोंवाली लक्ष्मी बैठ जाती है। चलनेपर लक्ष्मी साथ चलती है। प्रसार करनेपर स्थिर कान्ति फैलने लगती है। उसके खड़े होनेपर कीर्ति उठ खड़ी होती है। स्खलित अक्षर बोलनेपर भी उसने बावन ही अक्षर जान लिये। धरतीपर थोड़े-थोड़े पद रखते हुए, चिर पूर्वांग-पद उसे स्मरणमें आ गये। जिनरूपी चन्द्रमाके शरीरकी कलाएँ ग्रहण करते ही उसने चौसठ कलाओंका ज्ञान प्राप्त कर लिया।

घत्ता—इन्द्रियोंकी वृद्धिसे उनकी बुद्धि दृढ़ होती है, दृढ़ बुद्धिसे वह शास्त्रका सम्मान करते हैं। और शास्त्रका चिन्तन करते हुए परमेश्वरने अवधिज्ञानसे विश्वको जान लिया ॥१॥

२

जंभेट्टिया—समदममूलउ जमसाहालउ[1]।
सुकयहलुग्गमो जिणकप्पद्दुमो ॥१॥

अमरामरहिं सिंचिज्जमाणु सोहइ पुण्णेण पवड्ढमाणु ।
देहे णिरुं चिय णिम्मलत्तु महिमंदरधरणु अणंतु सत्तु[2] ।
णीसेय[3]बिंदु सुरहित्तु पँउरु[4] वणरुहु वि हारणीहारगउरु ।
वरवज्जरिसँह[5]णारायणामु संघडँणु[6] पहिल्लउ पवलँधामु[7] ।
जहिं जहिं जि तहिं जि सोहाणिहाणु तहुँ[8] अवरु वि समचउरंसठाणु ।
जंगसारु सुरूउ[9] [10]सुलक्खणत्तु पियहियमिववँयँणु[11] णिहित्तचित्तु ।
अइसय दह जासु परं पसिद्ध जम्मेण समउ धम्में णिबद्ध ।
णं पुरिसरूवपरिमाणु लद्धु विहिकरणब्भासविसेसु[12] सिद्धु ।

घत्ता—जसु को वि ण संणिहु भुवणयलि परमजिणिंदहु णिरुवमहो ।
ससि दिणयरु मंदरु मयरहरु किं उवमाणउं देमि तहो ॥२॥

३

जंभेट्टिया—गुणगणसण्णँयं[1] ववँगयदुण्णयं[2] ।
तोसियजणमणं को वण्णइ जिणं ॥१॥

जो ससहरु सो तहु कंतिपिंडु चिंतंतु व हुउ सकलंकु खंडु ।
दिणयरु तहु तेएं जित्तु णाइं णहँयलि[3] भमेवि अत्थवणु जाइ ।
जो सुरगिरि सो तँहु[4] ण्हवँणवीढु[5] जं महिमंडलु तं तेण गीढु ।
जं जगु तं तहु जसपसरठाणु जं णहु तं तहु णाणप्पमाणु ।
जो जलणिहि सो तहु कायकोंडु[6] जो वम्महु सो भयमुक्ककंडु ।
जो वरकरि सो वाहणु मयंधु सीहु वि तहु सिंहासणि णिबद्धु ।
पसु कामधेणु हयसहियहेउ जो वग्घु[7] सो वि पाविट्ठु[8] जीउ ।
जो कप्परुक्खु सो कट्ठु कट्ठु देवेण समाणु ण को वि दिट्ठु ।

घत्ता—सुर किंकर दासिउ अच्छरउ सुरवइ घरि वावारि जहिं ।
तिहुयँणु[9] कुडुंबु परमेसरहो सिरिविलासु किं भणमि तहिं ॥३॥

---

२. १. B जिणु । २. MBP अणंतसत्तु । ३. MBP णिस्सेय° । ४. MBP पवरु but gloss in P प्रचुरः । ५. MBP °विसहँ° । ६. MBP संहणणु । ७. MBP पवलथामु but gloss in P प्रचुरतेजः बलं वा । ८. MB तह; P तहुं । ९. MB जगसारसुरूवु; P जगसारसरूउ । १०. MBP सलक्खणत्तु । ११. MB °वयणु विहत्त° and gloss in M निर्मलहृदयः P °वयणविहित्त° and gloss आरोपितचित्तः । १२. MBP विसेससिद्धु but gloss in P °विशेषः सिद्धः ।

३. १. MBP °पुण्णयं but gloss in P सान्वयम् । २. MBP वज्जिय° but gloss in P व्यपगत° । ३. M णहयलु । ४. P तहु सो । ५. MBP ण्हाणपीढु । ६. MBP कायकुंडु; P ण्हाणकुंडु । ७. P वग्घु वि सो । ८. M पाविट्ठु° । ९. MBP तिहुयणपहुत्तु ।

२

जिसका मूल समता और दम है, जिसकी यम नियमरूपी शाखाएँ हैं। जिससे पुण्यरूपी फलोंका उद्‌गम होता है, ऐसा वह जिनरूपी कल्पवृक्ष, देवोंके अमृतसे सींचा गया और पुण्यसे बढ़ता हुआ शोभित है। उनके शरीरमें नित्य निर्मलता है, और मन्दराचलको धारण करनेकी अनन्त शक्ति है; स्वेद बिन्दुओंसे रहित, प्रचुर सुरभि है; जिनका रुधिर भी हार और नीहारकी तरह गौर वर्ण है। श्रेष्ठ वज्रवृषभनाराच संहनन नामका'प्रबल शक्तिवाला उनका पहला शरीर-संघटन है। जहाँ-जहाँ भी देखो वहाँ शोभानिधान, उनका दूसरा समचतुरस्र संस्थान था। जगमें श्रेष्ठ सुरूप और सुलक्षणत्व, प्रिय-हितमित वचन और एकनिष्ठ चित्त। जिनके जन्मके समयसे ही निबद्ध प्रसिद्ध दस अतिशय हैं। मानो उन्होंने पुरुषरूपके परिमाणको प्राप्त कर लिया है (उसकी उच्चताको पा लिया है), और विधाताके निर्माणका अभ्यास विशेष उन्हें सिद्ध हो गया है।

घत्ता—निरुपम परम जिनेन्द्रके समान भुवनतलमें कोई नहीं है, उनके लिए चन्द्रमा, दिनकर, मन्दर और समुद्रका क्या उपमान दूँ? ॥२॥

३

गुणगणसे युक्त, दुर्नयोंसे रहित, जनमनको सन्तुष्ट करनेवाले जिनका वर्णन कौन कर सकता है? जो चन्द्रमा है वह उनकी कान्तिपिण्डका विचार करता हुआ कलंकित और खण्डित हो गया। सूर्य उनके तेजसे जीता जाकर मानो आकाशमें घूमकर अस्तको प्राप्त होता है। जो सुमेरुपर्वत है वह उनका स्नानपीठ है, जो धरतीमण्डल है, उसे उन्होंने ग्रहण कर लिया। जो जग है, वह उनके यशके प्रसारका स्थान है; जो नभ है, वह उनके ज्ञानका प्रमाण है; जो समुद्र है, वह उनके शरीरके प्रक्षालनका कुण्ड है। जो कामदेव है, उसने डरसे अपना धनुष छोड़ दिया है; जो ऐरावत है, वह मदान्ध वाहन है। सिंह भी उनके सिंहासनसे बाँध दिया गया है; कामधेनु पशु है, जिसने अपने हितके कारणको नष्ट कर दिया है; जो बाघ है, वह भी पापी जीव है; जो कल्पवृक्ष है वह भी काष्ठ (कष्ट) कहा जाता है। देवके समान कोई भी दिखाई नहीं दिया।

घत्ता—जहाँ देव, अनुचर, अप्सराएँ, दासियाँ और इन्द्र घरमें काम करनेवाले हैं, और त्रिभुवन ही परमेश्वरका कुटुम्ब है, वहाँ मैं उनके विलासका क्या वर्णन करूँ? ॥३॥

४

जंभेट्टिया—सेसवलीलिया कीलणसीलिया ।
पडुणा दाविया केण ण भाविया ॥१॥

पविरइयविविहकीलावियार समयं रमंति सुरवरकुमार ।
तणुतेओहामियतरणिबिंबु घग्घरमालालंकि[१]यणियंबु ।
धूलीधूसरु ववगयकडिल्लु सहजायकविलकोंतलजडिल्लु ।
णिवरमणिहिं लइउ महायरेण अमरिंदाणियहिं करंकरेण ।
णिज्जइ चिर[२]संचियसुकयरयणु जेण जि अवलोइउ मुद्ध[३]वयणु ।
सो तहिं जि णिवद्धउ के[४]म ठाइ णवकमलालुद्धउ भमरु[५] णाइ ।
केण वि पहसाविउ हंसगा[६]मि केण वि बोल्लाविउ भव्वसामि ।
केण वि काइं वि खेल[७]णउं दिण्णु कइ कीरु मोरु अवरु वि रवण्णु ।
गिव्वाणु को वि हुउ तंबचूलु कु वि वरतुरंगु कु वि दिव्वु[८] पीलु ।
कु वि मेसु[९] महिसु भुयबलमहल्लु कु[१०] वि अप्फोडइ होएवि मल्लु ।
सोवंतउ कु वि सुहहारएण परियंदइ[११] अम्माहीरएण ।

घत्ता—होहल्लरु[१२] जो[१३] जो सुहुं सुअहिं पइं पणवंतउ भूयगणु ।
णंदइ रिज्झइ दुक्कियमलेण कासु वि मलिणु ण होइ मणु ॥४॥

५

जंभेट्टिया—धूलीधूसरो कडिकिंकिणिसरो ।
णिरुवमलीलउ कीलइ बालउ ॥१॥

रंगंतु संतु जं किं पि धरइ इंदु वि ण हु[१] तं थामेण हरइ ।
धरणिंदु वं[२] चंदु व संवरेवि लहुयारी हत्थंगुलि धरेवि ।
बलु जोक्खइ को[३] जि जिणेसरासु कंपावियमेइणिमहिहरासु ।
सो णीसासेण य जाइ तासु णहु लंघेवइ किर सत्ति कासु ।
पुणु चूलाक[४]रणिज्जइ कयम्मि उम्मिल्लइ भल्लइ णववयम्मि ।
संपुण्णचंदमंडलमुहेण मरुएविमहासइतणुरुहेण ।
देवंगंब[५]रवरणिवसणेण घोलंतविविहमणिभूसणेण ।
भुय[६]हेलंदोलियदिग्गएण चलपाणिवेणुदंडग्गएण[७] ।
हउ कंदुउ गयणे समुल्ललंतु णं दीसइ सयमहघरहु जंतु ।
णिम्मुक्कजीउ णिद्दिट्ठमग्गु गुणिसंगें[८] को णउ लहइ[९] सग्गु ।

४. १. MBP °लंबिय° । २. P चिरु । ३. MBP सुद्धवयणु । ४. M जेम । ५. MBP भसलु । ६. M हंसगमणि । ७. MB खेल्लणउं । ८. MBP दिव्वु पीलु । ९. MBP महिसु मेसु । १०. B omits this foot । ११. P परिइंदइ । १२. MB हुल्लरु । १३. M जो हो; BP होहो ।

५. १. MBP तं ण हु । २. P वि चंदु वि । ३. MBP जो जि । ४. MBP °करणुज्जइ । ५. MBP देवंगवत्थवर° । ६. MBP भुयबलअन्दोलिय°, but T हेला अनायासम् । ७. MBP वंडुग्गएण । ८. M गुणसंगें । ९. B लहउ ।

४

शैशवकी क्रीड़ाशील जो लीलाएँ प्रभुने दिखायीं वे किसे अच्छी नहीं लगीं। विविध क्रीड़ा-विलास रचनेवाले सुरवर कुमार उनके साथ खेलते हैं, जिन्होंने (जिनने) शरीरके तेजसे सूर्य-बिम्बको पराजित कर दिया है, जिनका नितम्ब (कटि प्रदेश) घुँघरुओंकी मालासे अलंकृत है, जो कटिसूत्रसे रहित और धूल-धूसरित हैं, जो सहज उत्पन्न कपिल केशोंसे जटा-युक्त हैं, ऐसे ऋषभ बालकको, राजरानियों और देवोंकी इन्द्राणियोंने हाथोंहाथ लिया। जिसने भी उनका मुग्ध मुख देखा उसने अपने चिरसंचित पुण्यरत्नको जान लिया, और वह वहीं (मुखकमलपर) निबद्ध होकर नवकमलोंपर लुब्ध भ्रमरकी भाँति रह गया। किसीने उस हंसगामीको हँसाया, किसीने उन्हें भव्य स्वामी कहा। किसीने उन्हें कोई खिलौना दिया—कपि, कीर, मोर और कोई दूसरा सुन्दर खिलौना। कोई देव मुर्गा बन गया, कोई श्रेष्ठ अश्व और कोई दिव्य गज। कोई मेष और महिष। कोई भुजबलमें श्रेष्ठ मल्ल होकर ताल ठोकता है, सोते हुए बालकको कोई कानोंको मधुर लगनेवाली लोरी गाकर झुलाता है।

घत्ता—हो-हो, तुम्हारी जय हो, सुखसे सोओ, तुम्हें प्रणाम करता हुआ भूतगण प्रसन्न रहता है, ऋद्धि प्राप्त करता है, और पापके मलसे किसीका भी मन मलिन नहीं होता ॥४॥

५

धूलसे धूसरित, कटिमें किंकिणियोंका स्वरवाला और अनुपम लीलावाला बालक क्रीड़ा करता है, चलते-चलते जो कुछ भी पकड़ लेता है, उसे इन्द्र भी अपनी पूरी शक्तिसे नहीं छुड़ा पाता। उनकी छोटी-सी अँगुली पकड़नेके लिए धरणेन्द्र और चन्द्र भी समर्थ नहीं हो पाते। मेदिनी और महीधरको कँपानेवाले जिनेश्वरके बलका कौन आकलन कर सकता है ? वह उनके निश्वाससे ही उड़ जाता है, आकाशको लाँघनेकी शक्ति किसके पास है ? फिर चूड़ाकर्म हो जानेपर भली नववय प्रकट होनेपर सम्पूर्ण चन्द्रमण्डलके समान मुखवाले, मरुदेवी महासतीके पुत्र श्रेठ, देवांग वस्त्र धारण करनेवाले, चंचल विविध आभूषणोंसे युक्त, बालकके द्वारा भुजक्रीड़ासे दिग्गजको हिलानेवाले, चंचल हाथसे वेणुके अग्रभागसे आहत गेंद आकाशमें उछलती हुई ऐसी दिखाई देती हे, मानो देवेन्द्रके घर जा रही हो। जीव रहित, परन्तु निर्दिष्ट मार्गवाला कौन

णिवडंतउ संचारेवि णेइ समवयसहुं तं छिवहुं मि ण देइ ।
पइरें पइरें सो [10]जाइ केम दिसलाणिहे संमुहु सूरु जेम ।

घत्ता—पडिछंदउ पुरिसरूवकरणे णाइं विहाएं संगहिउ ।
णवजोव्वणभावि जाम चडिउ णायणरामरेहिं महिउ ॥५॥

६

जंभेट्टिया—कंचणगोरउ धीरो[1] गोरउ ।
परिरक्खियपउ णिववंदियपउ ॥१॥

सिरिरमणीरमणुद्दामरंगु धरणिंदुच्छंगे णिवेसियंगु ।
वरुणोवरि पाय परिट्ठवंतु पवणामरि करपल्लव धिवंतु ।
पणवंति पुरंदरि दिट्ठि देंतु ऊव्वसिहि सरसु णाडउ णियंतु ।
जक्खिदचमरविज्जिज्जमाणु समभाउत्तासियकुसुमबाणु ।
फणिदउवारियविणिरुद्धदारु आलोइयतियसत्थाणसारु ।
णं छणससि पवरूययायलत्थु जहिं अच्छइ पहु सिंहासणत्थु ।
तहिं पत्तउ कुलयरु भणइ एम्ब भो णिसुणि णिसुणि देवाहिदेव ।
किं ण हवइ कद्दमि कमलसंडु पाहाणपुंजि णावकणयपिंडु ।
आसामुहि मिहिरु महामऊहु सिप्पिउडि विमलि मोत्तियसमूहु ।
हउं पिउ तुहु सुउ इयं किमहिमाणु भुवणत्तइ किर णाणु जि पहाणु ।
णहभायहुं पासिउ को महंतु को तुज्झ वि अग्गइ बुद्धिमंतु ।
णियणेहें अहव जडत्तणेण हउं भणमि किं पि धिट्ठत्तणेण ।

घत्ता—बालत्तणु दूरज्झिउ जइ वि तो वि ण णारिहि उधरि मइ ।
किज्जइ विवाहु सुकुमार तुह जेण पवड्ढइ लोयगइ ॥६॥

७

जंभेट्टिया—पविमलवोहिणा मोहविरोहिणा ।
लद्धसमाहिणा हयदप्पाहिणा ॥१॥
विहुणा उत्तं ताय ण जुत्तं ।
मणियमयणं एयं वयणं ।
कयसंसारं मोहंधारं ।
अट्ठिणिछण्णं किमिउलपुण्णं ।
पयलियमुत्तं मंसविलित्तं ।
णाडणिबद्धं अइणोणद्धं ।

---

१०. M जाय ।

६. १. MBP धीरउ । २ MBP °पल्लउ । ३. MB पणवंत° । ४. MBP °वारु । ५. MBP विमल° । ६. MBP हउ । ७. MP बुद्धिवंतु । ८. MBP पवत्तइ ।

गुणीकी संगतिसे स्वर्ग प्राप्त नहीं करता ? गिरती हुई बालको वह चलानेके लिए ले जाता है और अपने समान वय बालकोंको छूने तक नहीं देता। प्रहार-प्रहारमें वह इस प्रकार जाता है, जिस प्रकार दिशाकी मर्यादाके सम्मुख सूर्य।

घत्ता—मानो पुरुषका रूप बनानेके लिए विधाताने प्रतिबिम्ब संग्रहीत किया था। जब वह नवयौवनको प्राप्त हुए तो नाग, नर और देवोंके द्वारा पूजे गये ॥५॥

६

स्वर्णकी तरह गोरे, समर्थ और ज्ञानरत, प्रजाकी रक्षा करनेवाले, और राजाओंके द्वारा वन्दित चरण। लक्ष्मीरूपी सुन्दरीके रमणके लिए विस्तीर्ण रंगभूमि, धरणेन्द्रकी गोदमें अपना शरीर रखते हुए, वरुणके ऊपर पैर स्थापित करते हुए, पवनदेवपर हथेली डालते हुए, प्रणाम करती हुई इन्द्राणीपर दृष्टि देते हुए, उर्वशीका सरस नाटक देखते हुए, कुबेरके चमरोंसे हवा किये जाते हुए, समभावसे कामदेवको त्रस्त करते हुए, नागेन्द्ररूपी प्रतिहारसे अवरुद्ध द्वारवाले, और देवताओंके स्थानसारको देखनेवाले प्रभु सिंहासनपर बैठे हुए ऐसे लगते थे, मानो पूर्णचन्द्र महान् उदयाचलपर स्थित हो। तब कुलकर नाभिराज वहाँ आकर इस प्रकार कहते हैं—"हे देवाधिदेव सुनिए, सुनिए, क्या कीचड़में कमलसमूह नहीं होता ? क्या पत्थरोंके समूहमें नवस्वर्णपिण्ड नहीं होता ? दिशाके मुखमें महान् किरणोंवाला सूर्य, विमल सीप-सम्पुटमें मोती-समूह, नहीं होता ? मैं पिता, तुम पुत्र, यह कैसा अभिमान ? तीनों लोकोंमें ज्ञान ही मुख्य है। आकाश मार्गसे बड़ा कौन है ? तुम्हारे आगे बुद्धिमान् कौन है ? अपने स्नेहसे अथवा जड़तासे धृष्टतापूर्वक मैं कुछ कहता हूँ।

घत्ता—यद्यपि तुम्हारा बचपन दूर छूट गया है तब भी तुम्हारी मति स्त्रियोंके ऊपर नहीं है। हे सुकुमार, विवाह कीजिए जिससे लोककी गति बढ़ सके" ॥६॥

७

तब प्रबल बोधवाले, मोहके विरोधी, समाधि प्राप्त करनेवाले और मनके दर्पको दूर करनेवाले प्रभु बोले, "हे तात, कामका समर्थन करनेवाले ये शब्द युक्त नहीं हैं। संसारके बढ़ानेवाले मोहान्धकारसे युक्त, हड्डियोंसे कसा हुआ, कृमिकुलसे पूर्ण, प्रगलित मूत्रवाला, मांससे लिपटा,

लालागिल्लं रुहिरजलोल्लं ।
बहुमलकलुसं धरियपुरीसं ।
कुच्छियगंधं णवविहरंधं ।
णिद्दासत्तं[1] पडइ पमत्तं ।
णिसि णिद्दाणं[2] मडयसमाणं ।
उट्ठइ मुद्धं धणकणलुद्धं ।
पहसमसंतं[3] कारिमजंतं[4] ।
हिंडइ दियहे णिवडइ विरहे ।
तरुणियणकए असुहरणहए[5] ।
वाहिविलीणं सुक्खारीणं ।
पित्तपलित्तं संभपसित्तं[6] ।
पवणपहग्गं माणवियंगं ।
सेवंताणं गुणवंताणं ।
होइ ण सोक्खं वड्ढइ दुक्खं ।

घत्ता—परसंभवउ वाहासयसहिउं विच्छिण्णउं रयबंधयरु ।
इहँ[7] जं सुहुं लद्धउं इंदियहिं तं कह सेवइ विउसु णरु ॥७॥

८

जंभेट्टिया—ता कुलकारिणा णायवियारिणा ।
सुहहलसाहिणा भणियं णाहिणा ॥१॥
भो भो कयसुरणरखयरसेव सच्चउ णरजम्मु ण रम्मु देव ।
वंछइ सुहुं भुंजइ णवर दुक्खु वुड्ढंतें[1] विहडइ बुद्धिचक्खु ।
चुक्कइ ण कयंतहो मरणभीरु सच्चउ जि असुइसंभउ सरीरु ।
सच्चउ इंदियसुहुं सुहु ण होइ सच्चउ तुहुं परलोयावलोइ ।
सच्चउ संसारु असारु जइ वि लइ महु उवरोहें बप्प तइ वि ।
कलहंसवाणि वरवयणकमलु परिणहि सपणय[2] पणइणिहिं जमलु[3] ।
तं णिसुणिवि जिणु णियसीसु धुणिवि थिउ हेट्ठामुहु भवियव्वु मुणिवि ।
चिंतइ परमेसरु अवहियंतु णयविणयचारि[4] सिरिधरिणिकंतु ।
अज्ज वि महु चरियावरणु[5] कम्मु तेसट्ठिलक्खपुव्वहं अगम्मु ।
ता जाणिवि णियतणयंतरंगु समहिच्छियरमणीरमणसंगु[6] ।
सहसा कुलणाहें पेसिएहिं रयणाहरणोहविहूसिएहिं ।
घत्ता—ता कच्छमहाकच्छाहिवइधूयउ धणभरभग्गियउ ।
फलपत्तफुल्लपल्लवकरिहिं मंतिहिं जाइवि मग्गियउ ॥८॥

७. १. MB णिद्दामत्तं । २. MBP विद्दाणं and gloss in P ग्लानम् । ३. B पहसमसत्तं । ४. B कारिमजत्तं । ५. MBP °हरणभए । ६. MP सिंभपसित्तं; B सिंभपलित्तं । ७. MBP इय ।

८. १. M वुड्ढंते; BP वुड्ढत्तें । २. MB सयणहं; P सपणहं । ३. MBP जुयलु । ४. MBP °विणयधारि । ५. MB चरियाचरणु । ६. MBP °रमणरंगु ।

स्नायुओंसे बद्ध, चर्मसे लिपटा, लारको खानेवाला, रक्तजलसे आर्द्र, प्रचुर मलसे कलुष, मैलेको धारण करनेवाला, कुत्सित गन्धवाला, नौ प्रकारके छन्दवाला, (यह शरीर) निद्रामें आसक्त होकर प्रमत्तकी तरह पड़ जाता है, रातमें, सोये हुए मृतकके समान। (सबेरे) मूर्ख उठता है, धनकणसे लुब्ध। कृत्रिम यन्त्रके समान, पथके श्रमसे थका हुआ, दिनमें घूमता है। प्राणोंको हरण करनेवाली युवतियोंके विरहमें पड़ता है। रोगसे ग्रस्त, भूखसे खिन्न, पित्तसे प्रदीप्त, श्लेष्मासे युक्त, पवनसे भग्न, मानव-स्त्रियोंके शरीरका सेवन करते हुए गुणवानोंको सुख नहीं होता, दुःख ही बढ़ता है।

घत्ता—दूसरेसे उत्पन्न, सैकड़ों व्याधियोंसे युक्त, क्षायिक कर्मरूपी बन्धका करनेवाला जो सुख इन्द्रियोंसे प्राप्त है, विद्वान् उसका सेवन क्यों करता है?" ॥७॥

८

तब न्यायका विचार करनेवाले शुभफलके वृक्ष कुलकर स्वामी (नाभिराज) ने कहा, "सुर, नर और विद्याधरोंने जिनकी सेवा की है ऐसे हे देव, यह सच है कि मनुष्य जन्म सुन्दर नहीं है, वह सुख चाहता है, परन्तु दुःख भोगता है। बड़े होनेपर बुद्धिरूपी आँख चली जाती है, मौतसे डरता है, परन्तु यमसे नहीं चूकता। सचमुच मनुष्य शरीर अपवित्रतासे जन्मा है। सचमुच इन्द्रियसुख सुख नहीं होता। सचमुच तुम परलोकमें सुखकी इच्छामें कुशल हो। सचमुच यद्यपि संसार असार है तब भी हे सुभट, मेरे अनुरोधसे सुन्दर हंसकी तरह वाणीवाली श्रेष्ठ कमलमुखी दो प्रणयिनियोंसे प्रणयपूर्वक विवाह कर लो।" यह सुनकर ऋषभजिन अपना सिर पीटते हुए और होनहारका विचार कर नीचा मुख करके स्थित हो गये। अवधिज्ञानी नय-विनयके विचारक लक्ष्मी-रूपी गृहिणीके कान्त परमेश्वर अपने मनमें सोचते हैं—"आज भी मुझमें चारित्रावरण कर्म है, जो तेरह लाख पूर्व तक अलंघ्य है।" तब अपने पुत्रके अन्तरंगको, यह जानकर कि वह रमणियोंसे रमण करनेका इच्छुक है, कुलकर नाभिराजके द्वारा प्रेषित और रत्नाभूषणसे विभूषित—

घत्ता—फल, पत्र, फूल और पल्लव हाथमें लिये हुए मन्त्रियोंने कच्छ और महाकच्छ राजाओंसे उनकी स्तनभारसे नम्र कन्याएँ माँगी ॥८॥

९

जंभेट्टिया—कयमहिराहहो तिहुयणणाहहो ।
दिज्जउ सवलयं कण्णाजुयलयं ॥१॥

ता कच्छमहाकच्छाहिवेहिं घरु जाइवि सिरपणवियपएहिं ।
दिण्णउ णाहेयहु सुंदरीउ कामालवालरुहवेल्लरीउ ।
पारद्धहु परमेसहु विवाहु आयउ सुरयणु हरिकरिविवाहु ।
गय कुसुमंजलिहर लोयवाल सुहि बंधव पुण्णमणोहराल ।
कुंअरिहि करि अंगुत्थलउ छूढु पहिलउ पेमंकुरु णं विरूढु ।
गुमुगुमियभमियचलमहुयरोहु कउ मंडउ विविहदुवारसोहु ।
माणिक्कमुक्झुंबुक्कफुरिउ णवसायकुंभखंभेहिं धरिउ ।
चंदोवचीणपट्टेहिं छइउ महिदेविइ णावइ मउडु लइउ ।

घत्ता—अमलिंदणीलमणिपंतियहिं णिविडकरोलिहिं भूसियउ ।
णं तिमिरहु रवियरतासियहो सरणु णिवासु पयासियउ ॥९॥

१०

जंभेट्टिया—भम्मपसाहिउ विद्दुमसोहिउ ।
संझामेहउ णं महिमागउ ॥१॥

कत्थइ रुप्पयभित्तिहिं सुहाइ सरयब्भखंड णिम्मविउ णाइं ।
कत्थइ वि फलिहुज्जलु भूमिरंगु णं गंगतरंगु पवित्तियंगु ।
कत्थ वि मुत्ताहलदिण्णछाउ णं णक्खत्तंचिउ गयणभाउ ।
कत्थ वि हरियारुणमणिवरिट्ठु आहंडलधणुमंडलु व दिट्ठु ।
अहिणवदुमपल्लवतोरणेहिं णावइ वसंतु माणिउ वणेहिं ।
पवणुद्धुयणहयलघुलियकेउ णरणिहयतूरमंगलणिणाउ ।
पाडहियकरंगुलिणिहसणेण दकुंदकुंदकयणीसणेण ।
पडहुल्लउ कुडुवें छित्तु तेम झं धो त्ति दो त्ति रउ हुयउ जेम ।

घत्ता—भंभाभेरीसरसंखुहिउ पहु पुण्णाणिलेण चलिउ ।
आवेप्पिणु तहु मंडवहु तले णीसेसु वि तिहुयणु मिलिउ ॥१०॥

---

९. १. P °पणमिय° । २. K °वेल्लरीउ । ३. MBP कय°: MP °कुसुमंजलियर । ४. MBP मणोरहाल ।
५. MP कुवरिहि; B कुवरेहि । ६. MBP सरण° ।

१०. १. M संझसमेहउ । २. MBP महि आगउ । ३. MB °तरंगपवित्तिय° । ४. MBP हरियारुणु ।
५. MBP दकुकुंदिकुं । ६. MBPT कुडवें ।

९

"भूमिकी शोभा बढ़ानेवाले त्रिभुवननाथको कंगन सहित अपनी दोनों कन्याएँ दो।" तब कच्छ और महाकच्छ राजाओंने घर जाकर, सिरसे चरणोंमें प्रमाण करते हुए, नाभेय (ऋषभ) को कामकी आलवाल (क्यारी) में उत्पन्न होनेवाली लताओंके समान वे सुन्दरियाँ दे दीं। परमेश्वरका विवाह प्रारम्भ हुआ। अश्व, गज और पक्षियोंके वाहनवाला सुरगण विवाहमें आया। कुसुमांजलि लिये हुए लोकपाल (विवाहमें) आये। पुण्यसे मनोहर सुधी बान्धवजन आये। कुमारियोंके हाथमें अँगूठियाँ पहना दी गयीं, मानो पहला प्रेमांकुर फूटा हो। जिसमें गुनगुनाता हुआ चंचल भ्रमरसमूह घूम रहा है, और जिसमें विविध द्वारोंसे शोभा है, ऐसा मण्डप बनाया गया, माणिक्य और मोतियोंके गुच्छोंसे विस्फुरित, नव स्वर्णस्तम्भोंपर आधारित। चन्द्र चीनांशुकसे आच्छादित मानो धरतीरूपी देवीने मुकुट बाँध लिया हो।

घत्ता—सघन किरणोंवाली, स्वच्छ इन्द्रनील मणियोंकी पंक्तियोंसे अलंकृत वह मण्डप ऐसा जान पड़ रहा था, मानो रविकिरणोंसे त्रस्त अन्धकारके लिए शरण-स्थल बना दिया गया हो ॥९॥

१०

स्वर्णसे प्रसाधित विद्रुमसे शोभित वह ऐसा लगता है जैसे भूमिगत सन्ध्यामेघ हो। कहीं चाँदीकी दीवालोंसे ऐसा लगता है जैसे शरद्के मेघ निर्मित कर दिये गये हों, कहीं स्फटिक मणियोंसे उज्ज्वल क्रीड़ाभूमि है, मानो पवित्र अंगवाली गंगाकी तरंग हो, कहीं मोतियों द्वारा की गयी कान्ति है, मानो नक्षत्रोंसे युक्त आकाश-भाग हो। कहींपर हरे लाल मणियोंसे वरिष्ठ, वह इन्द्रधनुष मण्डलके समान है। अभिनव वृक्षोंके पल्लव-तोरणोंसे ऐसा लगता है कि वनोंने वसन्तका उत्सव मनाया हो। हवासे उड़ती हुई पताकाएँ आकाशतलमें व्याप्त हैं, मनुष्योंके द्वारा आहत तूर्योंकी मंगलध्वनि हो रही है, पटहवादककी अंगुलीके ताडन, दक कुन्द कुन्दकके शब्द और डण्डेसे पटह इस प्रकार ताडित हुआ कि जिससे झंधोत्ति दोत्ति शब्द हुआ।

घत्ता—भंभा और भेरियोंके शब्दोंसे क्षुब्ध प्रभु पुण्यरूपी पवनसे प्रेरित होकर चले। अशेष त्रिभुवन आकर उस मण्डपके नीचे मिल गया ॥१०॥

११

११

जंभेट्टिया—हवइ सुहद्दउ करडासद्दउ ।
रसइ मुइंगउ हसइ अणंगउ ॥१॥

दं दं दं दं टिविलाइ उत्तु जिणु भणइ हउं मि दंदेण मुत्तु ।
अणुहुंजिउ जं भवसइ भमंतु णं भासइ तं तं तं भणंतु ।
संसारु जि वीणाणिक्कलत्तु मणि संजोयइं वल्लहु कलत्तु ।
वहुछिद्दवंसु जं विद्धु जेण तं कहइ णाइं महुरें रवेण ।
किं मद्दलु जो भोयणउ लहइ सो परु वि परस्स तलप्प सहइ ।
काहलवयणइं वित्थारियाइं णं मुहपवणेणोसारियाइं ।
आऊरिय णीसासेण संख बहिरंध मूय पंगु वि असंख ।
कंसालइं तालइं सलसलंति विहडेप्पिणु मिहुणा इव मिलंति ।
आलग्गदोरदंदुल्लयाइं णं तूरिय णरतरुफुल्लयाइं ।

घत्ता—संणद्धइं पहरपडिच्छिरइं आउज्जइं गज्जंति किह ।
जिणणाहहु घारे रइरंगि हुए मयणरायसेण्णाइं जिह ॥११॥

१२

जंभेट्टिया—का वि णियाणणं का वि सहीयणं ।
मंडइ वहुवरं का वि हु मंदिरं ॥१॥

ता तियसपुरंधिहिं वहुवराहं णरणारीहिं मि पंकयकराहं ।
पाडियउ सलोणहं काइं लोणु चामरु जि पडउ संजणियमाणु ।
गाइज्जइ मंगलु अवरु धवलु संणिहियउ कलसचउक्कु धवलु ।
सो सुत्तेण जि सुत्तिउ विहाइ णीसुत्तु ण जडसंगहु मुएइ ।
तरुणिहिं उच्चायवि कवउ ण्हाणु गोरंगइ पाणिउ धावमाणु ।
सोहइ लायण्णें विप्फुरंतु णावइ चामीयररसु गलंतु ।
सियसुहुमइं वत्थइं परिहियाइं आहरणइं ससहररुइहियाइं ।
मंदारोमालिउ लइउ मउडु दीसइ णं सुरगिरिसिहरु वियडु ।
देवहु देवयठवणाइ काइं लोइयमग्गें णिहियाइं ताइं ।
आणंदें णच्चिउ सयणु बंधु बद्धउ कंकणु णं णेहबंधु ।

घत्ता—भमरावलिजीयारवमुहलु मणसंखोहणपुलइयउ ॥
कंदप्पें रूसिवि जिणवरहो णिययसरासणु वलइयउ ॥१२॥

---

११. १. MBP हुवइ । २. MBP वुत्तु । ३. MBP भवसयभमंतु । ४. BP संजोइय । ५. MBP वल्लह कलत्तु । ६. MBP सरेण । ७. M °दोरहिं दुल्लयाइं; BP °दोरदिंडुल्लयाइं ।

१२. १. M सलोयहु; BP सलोणहु । २. BP उच्चाइवि । ३. MB मंदारमालउल्लइय°; P मंदारयमालउ लइय । ४. MBP णच्चिय सयणबंधु । ५. MBP मणसंखोहणु ।

११

डिमडिमका शब्द होने लगता है। मृदंग बजता है, कामदेव हँसता है। टिविली दं-दं-दं-दं कहती है मानो जिन कहते हैं कि मैं भी नारीयुगलसे भुक्त हूँ। सैकड़ों भवोंमें घूमते हुए जो उन्होंने भोगा है, मानो, वही-वही-वही बोलते हुए यही कहते हैं। संसार ही वीवाका शब्द है जो मनमें वल्लभ और कलत्र (पति-पत्नी) को जोड़ता है। जिस कारणसे बहुछिद्र बाँसको (बाँसुरीके रूपमें) बेधा गया है, मानो वही वह मधुर स्वरमें कह रहा है (कि वधू ही एकमात्र रमण स्थल है)। वह मृदंग भी क्या जो भोजनक (?) (वादक) को प्राप्त होता है। वह श्रेष्ठ होते हुए भी दूसरेका करप्रहार सहता है। काहलके शब्द फैल गये हैं, मानो मुखके पवनके द्वारा वे दूर हटा दिये गये हैं। निःश्वासोंसे शंख आपूरित हो गये, असंख्य बहरे-अन्धे-मूक और पंगु भी आपूरित (धनसे सन्तुष्ट) हो गये हैं। कंसाल और ताल सलसल करते हैं, मिथुनोंकी तरह अलग होकर फिर मिलते हैं। दरवाजोंपर लगे हुए वृत्त ऐसे मालूम होते हैं मानो मनुष्यरूपी वृक्षके फूल हों।

घत्ता—प्रहारकी प्रतिइच्छा रखनेवाले सन्नद्ध आतोद्य वाद्य इस प्रकार गरजते हैं मानो जैसे जिननाथके घर रतिरंग होनेपर कामदेवका सैन्य हो ॥११॥

१२

कोई अपने मुखको, कोई सखीजनको, कोई वधूवरोंको और कोई घरको सजाती हैं। देवोंकी इन्द्राणियों और मनुष्यनियोंने कमलकरोंवाले सुन्दर वधूवरोंके ऊपर नमक क्यों उतारा? संजनितमान चामर भी गिर पड़े। मंगल और धवल गीत गाये जाने लगे। धवल चार कलश रख दिये गये। सूत्रसे बँधे हुए वे ऐसे प्रतीत होते हैं कि जैसे निश्रुत (श्रुतरहित = मूर्ख) जड़के संगको नहीं छोड़ते। तरुणियोंके द्वारा उठाकर स्नान कराया गया, गोरे अंगोंपर दौड़ता हुआ और सौन्दर्यसे चमकता हुआ पानी ऐसा लगता है, मानो द्रवित स्वर्णरस हो, सफेद और सूक्ष्म वस्त्र पहना दिये गये और चन्द्रकान्तिके समान कान्तिवाले आभरण भी। मन्दारमालासे युक्त मुकुट पहना दिया गया जो मानो विशाल सुरगिरि-शिखरके समान दिखाई देता है। देवके लिए देवताओंकी स्थापना क्यों? फिर भी लोकाचारसे वहाँ देवता स्थापित किये गये। स्वजन बन्धु आनन्दसे नाच उठे। स्नेहके बन्धनके प्रतीक रूपमें कंकण बाँध दिया गया।

घत्ता—भ्रमरावलीकी डोरीके शब्दसे मुखर मनके क्षोभसे पुलकित कामदेवने क्रुद्ध होकर जिनवरके ऊपर अपना धनुष तान लिया ॥१२॥

१३

जंभेट्टिया—विरइयठाणउ संधियबाणउ ।
उग्गयरोमउ विलसइ कामउ ॥१॥
अमुणंतियाइ पुरिमिल्लु भाउ हा किं रईइ पयडियउ राउ ।
हा वम्मह तुहुं मि णिवारिओ सि हा हे वसंत किं पेरिओ सि ।
किं वग्गहु लग्गहु अज्जु ईसि णिवडेसहु कइहिं वि तवहुयासि ।
णं गज्जिउ दुंदुहि भणइ एम्व किं तुज्झु वि रिउ देवाहिदेव ।
फणिसुरणरखयरकउच्छवेण विर[3]संततूरजयजयरवेण ।
संचल्लिउ परिणहुं जिणकुमारु आवंतहु तहु तहिं धरिउ दारु[4] ।
णं संसारहु घोसिउ णिसेहु हा किं तुहुं परिणहि चरमदेहु ।
तहि देवि णिबंधु चवेवि चारु भवणंति पइट्ठउ भुवणसारु ।
फेडिउ मुहवडु णं मेहपडलु दिट्ठउ मुहु णं छणयंदु विमलु ।
कंपिउ कुअँरिहिं णववरभएण करु धरिउ णाइं तिलरिणकएण
कच्छाहिवेण भिंगारु लेवि पालिज्जसु धवलच्छिउ भणेवि ।

घत्ता—जं पाणिउं छूढउं तासु करे विविहासासाहंचियउ ॥
णं तेण मणालवालणिलउ मोहमहातरु सिंचियउ ॥१३॥

१४

जंभेट्टिया—कयसियसेविहे जसवइदेविहे ।
वरहु अणिंदहे अवि य सुणंदहे ॥१॥
णयणेसु णयण लग्गा तिरिच्छ मच्छेहिं णाइं पडिखलिय मच्छ ।
पियणेहाऊरिय विरथरंति णावइ सुइसुसिरहिं पइसरंति ।
चित्ताइं चित्ति मिलियाइं केम गयवर णइसलिलइं सलिलि जेम ।
कमणीयकामिणीबद्धणेहि णियतणुपडिबिंबउ दइयदेहि ।
दिट्ठउ पडिवक्खासंकियाहिं तं कह व कह व बुज्झिउ पियाहिं ।
एक्कणुखाइय एक्क तरुणि वीएण मुएण दुइज्ज घरिणि ।
बेण्णि वि लेप्पिणु णीसरिउ णाहु णं कप्परुक्खु वेल्लीसणाहु ।
आसीससयहिं[2] संथुव्वमाणु वेइयमणिवट्टि जगेक्कभाणु ।
उक्कोइयकामरसोल्लियाहिं आसीणउ सामउं वहुल्लियाहिं ।

घत्ता—वइसाणरु जासु गहेहिं सहुं पणवइ पय महियलि घुलइ ॥
सो वरइत्तु जि कुलसंतियरु होमें[3] धूमु जि संभवइ[4] ॥१४॥

---

१३. १. MB तुहुं वि णिवारिओ । २. MBPT कइयवि । ३. MBP विलसंत°; K विरसंतु । ४. MBP वारु । ५. MB चरेवि । ६. P छणइंदु । ७. MB कुवरिहिं; P कुमरिहिं । ८. MB मुणालवाल° ।
१४. १. MB पडिबिंबिउ । २. MBP आसीसएहिं । ३. M सोमें । ४. MBP संगिलइ ।

१३

जिसने मुट्ठी बाँध ली है तथा बाणोंका सन्धान कर लिया है, और जिसे रोमांच हो आया है, ऐसा कामदेव विलसित है। अफसोस है कि पूर्वके भावको जानते हुए रतिने रागभावको क्यों प्रकट किया ? हे वसन्त, तुम भी निवारित कर दिये गये थे। हाँ, हे वसन्त, तुम क्यों प्रेरित हो रहे हो। क्यों उत्पात मचाते हो और ईश्वरके पीछे लगते हो ? कभी भी तुम तपकी ज्वालामें पड़ सकते हो। मानो गरजती हुई दुन्दुभि यह कहती है कि हे देवाधिदेव, क्या तुम्हारा भी शत्रु हो सकता है ? नागों, सुरों और मनुष्योंके द्वारा किये गये उत्सव और बजते हुए तूर्यके जय-जय शब्दके साथ जिनकुमार ऋषभनाथ विवाह करनेके लिए चले। आते हुए उन्हें दरवाजेपर रोक लिया गया मानो संसारसे उन्हें मना कर दिया गया हो, कि हे चरम-शरीरी तुम क्यों विवाह करते हो ? वहाँ नेग (निबन्ध) देकर और सुन्दर बात कर भुवनश्रेष्ठ वह भवनके भीतर प्रविष्ट हुए। उन्होंने मुखपट खोला, मानो मेघपटल उघाड़ दिया हो, उन्होंने मुँह देखा मानो पूर्णचन्द्र देखा हो। नव वरके भयसे कुमारियाँ काँप गयीं। स्नेहके ऋणके कारण उन्होंने उनका हाथ पकड़ लिया, कच्छके राजाने भृंगार लेकर और यह कहकर कि धवल आँखोंवाली इनका पालन करना।

घत्ता—जो उनके हाथपर पानी छोड़ा उसने विविध आशाओंरूपी शाखाओंसे सहित, और मनरूपी क्यारीमें स्थित मोहमहावृक्षको सींच दिया ॥१३॥

१४

उसने कहा—'लक्ष्मीसे सेवित यशोवती देवी और अनिन्द्य सुनन्दा देवीका वरण करो।' उनके नेत्रोंसे तिरछे नेत्र इस प्रकार लग गये मानो जैसे मत्स्योंसे मत्स्य प्रतिस्खलित हो गये हों, प्रियके स्नेहसे भरी हुई उनकी आँखें इस प्रकार फैलती हैं जैसे कानोंके विवरोंमें प्रवेश करना चाहती हैं। चित्तोंसे चित्त इस प्रकार मिल गये जैसे गजवरसे गजवर और नदियोंके जल, पानी (समुद्र) में मिल गये हों। सुन्दर स्त्रियोंमें जिसका स्नेह निबद्ध है ऐसे प्रियके देहमें उन्होंने अपना रूप प्रतिबिम्बित देखा। शत्रुपक्षकी आशंका रखनेवाली प्रियाओंने बड़ी कठिनाईसे उसे समझा। उन्होंने एक हाथसे एक तरुणीको उठा लिया, और दूसरेसे दूसरी तरुणीको। दोनोंको लेकर स्वामी निकले, मानो लताओंसे सहित कल्पवृक्ष हो। सैकड़ों आशीर्वादोंसे संस्तुत, विश्वके एकमात्र सूर्य, वह उत्पन्न कामरससे परिपूर्ण वधुओंके साथ बैठ गये।

घत्ता—दूसरे ग्रहोंके साथ अग्नि जिनके चरणोंपर गिरता है और धरतीपर लोटता है, वही वर कुलकी शान्ति करनेवाला है होम करनेसे तो केवल धुआँ उत्पन्न होता है ॥१४॥

१५

जंभेट्टिया—मत्तोचारयं विग्घणिवारयं ।
परिरक्खियजयं तह वि हु तं कयं ॥१॥

देवासुरेहिँ संगीयमाणु चलचामरेहिँ विज्जिज्जमाणु ।
रमणिहिँ सहुं रमणु णिविट्ठु जाम रवि अत्थसिहरि संपत्तु ताम ।
रत्तउ दीसइ णं रइहि णिलउ णं वरुणासावहुघुसिणतिलउ ।
णं सग्गलच्छिमाणिक्कु ढलिउ रत्तुप्पलु णं णहसरहु घुलिउ ।
णं मुक्कउ जिणगुणमुद्धएण णियरायपुंजु मयरद्धएण ।
अद्धद्धउ जलणिहिजलि पइट्ठु णं दिसिकुंजरकुंभयलु दिट्ठु ।
चुउ णियछविरंजियसायरंमु णं दिणसिरिणारिहि तणउ गब्भु ।
आहिंडिवि भुवणु अलद्धवासु णं गयउ रयणु रयणायरासु ।
लच्छीहि भरंतिहि कणयवण्णु णिच्छुट्टवि कलसु व जलि णिमण्णु ।
वारिहिरहल्लिमालोवणीउ णं उल्हाणउ जगभवणदीउ ।
घत्ता—पुणु संझादेवयसदिस महि रंजिवि राएं विप्फुरिय ।
कोसुंभु चीरु णं पंगुरिवि णाहविवाहइँ अवयरिय ॥१५॥

१६

जंभेट्टिया—कज्जलसामलो उड्डदसणुज्जलो ।
पत्तउ भीयरो तमरयणीयरो ॥१॥

वियलंतउ मुक्कचउत्थपहरु तें[2] पीयउ संझारायरुहिरु ।
महिपंकयमयरंदु व घणेण आवंतें अलिउलसंणिहेण ।
पुणु भुवणु तिमिरछण्णउं विहाइ रविविरहें थिउ कालउं जि णाइ ।
हालिद्दु वत्थु णं परिहरेवि थक्कउ णीलंबरु पंगुरेवि ।
ता उइउ चंदु सुरवइदिसाइ सिरिकलसु व पइसारिउ णिसाइ ।
सइं भवणालउ पइसंतियाइ तारादंतुरउ हसंतियाइ ।
णं पोमाकरयलल्हसिउ पोमु णं तिहुयणसिरिलायण्णधामु ।
सुरउब्भवविसमसमावहारु तरुणीथणविलुलिय सेयहारु ।
णं अमयविंदुसंदोहु रुंदु जसवेल्लिहि केरउ णाइं कंदु ।
माणियतारासयवत्तफंसु णं णहसरि सुत्तउ रायहंसु ।
आयासरंगि ससहावगीढु णं कामएवअहिसेयवीढु ।
णं इंदहु धरियउ धवलछत्तु तद्देविइ णं दप्पणु णिहित्तु ।

---

१५. १. MBP मंतुच्चारयं । २. P णिबद्धु । ३. MBP घुलिउ । ४. MBP गलिउ । ५. MBP अरुणच्छवि-रंजियसारयब्भु । ६. MB णिच्छुड्डिवि; P णिच्छुट्टिवि । ७. MBP णिवण्णु । ८. MBP कोसुंभचीरु । ९. MBP °विवाहे ।

१६. १. MBP पत्तो । २. MBP तं । ३. M सुरवरदिसाइ । ४. B सुरतुब्भव° । ५. P अमिय° । ६. MPT °संदोइरुंदु । ७. BP जय° । ८. MB पीढु ।

१५

यद्यपि वह विघ्नोंको नष्ट करनेवाले और जगकी रक्षा करनेवाले थे, फिर भी उन्होंने सीमित (मर्यादित) आचरण किया। देवों और असुरों द्वारा जिनके गीत गाये जा रहे हैं, जिनपर चंचल चमर ढोरे जा रहे हैं ऐसे वे रमणियोंके साथ तबतक बैठे कि जबतक सूर्य अस्ताचल पहुँच गया। लाल-लाल वह ऐसा दिखाई देता है, मानो रतिका घर हो, मानो पश्चिम-दिशारूपी वधूका केशरका तिलक हो, मानो स्वर्गकी लक्ष्मीका माणिक्य गिर गया हो, मानो आकाशके सरोवरसे लाल कमल गिर गया हो, मानो जिनवरमें मुग्ध कामदेवने अपने-आप रागसमूह छोड़ दिया हो, समुद्रके जलमें प्रविष्ट सूर्यका आधा बिम्ब ऐसा मालूम हुआ है मानो दिग्गजका कुम्भस्थल हो, मानो अपने सौन्दर्यसे समुद्रके जलको रंजित करनेवाला, दिनलक्ष्मीका गर्भ च्युत हो गया हो, मानो विश्वमें घूमकर भी आवास नहीं पानेके कारण रत्न (सूर्यरूपी रत्न) समुद्रमें चला गया, मानो याद करती हुई लक्ष्मीका स्वर्ण वर्णका कलश छूटकर जलमें निमग्न हो गया हो, मानो समुद्रकी लहरोंकी लक्ष्मीके द्वारा लुप्त विश्वभवनरूपी दीप शान्त हो गया हो।

घत्ता—फिर सन्ध्यादेवताके समान धरती रागसे रंजित होकर इस प्रकार चमक उठी, मानो अपनी लाल साड़ी पहनकर वह स्वामीके विवाहमें आयी हो ॥१५॥

१६

तब काजलकी तरह श्याम, नक्षत्ररूपी दाँतोंसे उज्ज्वल भयंकर तमरूपी निशाचर प्राप्त हुआ। जिसने चौथे प्रहरको छोड़ दिया है, ऐसे विगलित होते हुए सन्ध्यारागरूपी रुधिरको उसी प्रकार पी लिया जिस प्रकार अलिकुलके समान काले आते हुए मेघके द्वारा धरतीरूपी कमलका पराग पी लिया जाता है। फिर अन्धकारसे आच्छन्न विश्व इस प्रकार शोभित है, जैसे सूर्यके विरहसे वह काला हो गया हो, और मानो वह अपना पीला वस्त्र छोड़कर तथा काला वस्त्र (नीलाम्बर) पहनकर स्थित हो। इतनेमें चन्द्रमाका उदय हुआ, मानो पूर्व दिशाने निशाके लिए लक्ष्मी कलशका प्रवेश कराया हो, कि जो (निशा) ताराओंरूपी दाँतोंसे हँसती हुई स्वयं (विश्वरूपी) भवनमें प्रवेश कर रही हो। वह चन्द्र ऐसा मालूम होता है मानो लक्ष्मीके करतलसे छूटा कमल हो, मानो त्रिभुवनकी सौन्दर्य लक्ष्मीका घर हो, मानो सुरत क्रीड़ासे उत्पन्न विषम श्रमको दूर करनेवाला युवतीजनोंके स्तनतलपर हिलता हुआ स्वेदरूपी हार हो, मानो अमृत-बिन्दुओंका सुन्दर समूह हो, मानो यशरूपी लताका अंकुर हो। मानो मणि तारारूपी कमलका स्पर्श हो, मानो आकाशरूपी नदीमें सोया हुआ राजहंस हो, मानो आकाशके रंगमंचपर अपने स्वभावसे युक्त कामदेवका अभिषेकपीठ हो। मानो इन्द्रके लिए रखा गया धवलछत्र हो, मानो उसकी देवी (इन्द्राणी) के द्वारा धारण किया गया दर्पण हो।

घत्ता—वरतारातंदुल धिविवि सिरि ससि परिवट्टुलु रइणिलउ ।
दिसिरमणिइ[9] णिसिहि वयंसियहि णावइ दहिएं कउ तिलउ ॥१६॥

१७

जंभेट्टिया—ससहरकंतिइ दिसि पसरंतिइ ।
सोहइ लोयउ दुद्धं[1] व धोयउ ॥१॥
ता णिसि पेक्खणउ विलासवंतु पारद्धु झसद्धयरिद्धि देंतु ।
आउज्झहुं जेण मुहेण वासु सा पुव्विल्लीदिसि[2]मंडवासु ।
ताहाहिणि उत्तर[3]मुहणिविट्ठु गावणु बतुंरु देवेहिं दिट्ठु ।
तहु संमुहियउ मउगाइयाउ उवइट्ठउ सरसइआइयाउ ।
तहु दाहिणेण संठियउ सुसिरु तव्वामएसि वेणइयणियरु ।
इय एहउ अवेणिणिवेसु गणिउ पच्चाहारु वि सो चेव भणिउ ।
वज्जइं मज्झिवि साहारणाइ कम्मारवी य संमज्जणाइ ।
सहसा सुइसोक्खुल्लोलएण उहिक्खणु किउ हिंदोलएण ।
थिरवण्णछडयधाराविसेसु कउ णच्चणीहिं पुणु तहिं पवेसु ।
उव्वसिरंभाणामालियाहिं आहल्लामेणइवालियाहिं ।
घत्ता—आमेल्लियणवकुसुमंजलिहिं देविहिं रंगि[6] पइट्ठियहिं ॥
मोहिउ जणु मग्गणमोयणिहिं णं वम्महधणुलट्ठियहिं ॥१७॥

१८

जंभेट्टिया—अहिणय[1]कोच्छरो भुव[2]णिहियच्छरो ।
णच्चइ सुरवई डोल्लइ वसुमई ॥१॥
विरइय णडेहिं णाणावियार चारी बत्तीस वि अंगहार ।
अण्णण्णदेहपरिठवणभिण्णु करणहं अट्ठोत्तरु सउ वि दिण्णु ।
चोद्दह[3] वि सीससंचालणाइं भूतंडवाइं रंजियमणाइं ।
णव गीव[4]उ णयणसुहावियाउ छत्तीस वि दिट्ठिउ[5] दावियाउ ।
अंतिमरसविरहिय जणियहाव[6] अट्ठ वि रस सच्चेयणसहाव ।
एक्कें ऊणा पण्णास भाव अवर वि अउव्व[7] भावाणुभाव ।
फुरणइं वलणइं[8] अणिवारियाइं णच्चंतहि तहि अवया[9]रियाइं ।
पुणु पत्तइं वंदियपयरयाइं [10]छंडणयपओएं णिग्गयाइं ।
मुद्धइं पेम्मंधइं रूसवंतु णिण्णेहइं मिहुणइं [11]तूसवंतु ।
तारातारावइरुइ हरंतु [12]विहडियचक्कउलइं मेलवंतु ।

---

९. MP दिसरमणिइ ।

१७. १. M दुद्धु; BP दुद्धि । २. °दिसि° । ३. MBP उत्तरमुहु । ४. MBP कहव । ५. MBP किउ । ६. B रंग° ।

१८. १. MBPT अहिणव° । २. KT भुय° । ३. MB चउदह । ४. BP गीयउ । ५. MBP दिट्ठउ । ६. MBPT °भाव । ७. P अपुव्व । ८. M करणइं । ९. MKT अवधारियाइं । १०. MB छड्डुणयपओएं; PT छड्डुणयपओएं । ११. MBP रूसवंतु । १२. BP विहडियचक्कउ ।

घत्ता—रतिका घर गोल-गोल चन्द्रमा ऐसा लगता है, मानो दिशारूपी नारीने श्रेष्ठ तारारूपी चावल छिटककर अपनी निशारूपी सहेलीके सिरपर दहीका टीका लगाया हो ॥१६॥

१७

दिशामें प्रवेश करते हुए, चन्द्रमाकी कान्तिसे लोक ऐसा शोभित होता है, जैसे दूधसे धुला हुआ हो। तब रात्रिमें विलाससे युक्त, कामदेवकी ऋद्धिको देनेवाला नाट्य प्रारम्भ हुआ। वाद्य जिस ओर रखे गये थे, वह पूर्व दिशाका मण्डप था। उसके दायें उत्तरमें बैठे हुए तुम्बरु गायक देवोंके द्वारा देखे गये। उनके सामने कोमल शरीरवाली सरस्वती आदि बैठी हुई थीं। उनके दायें सुषिर आदि वाद्योंके वादक बैठे हुए थे, उनके बायीं ओर वीणावादकोंका समूह था। यह इस प्रकार धरतीपर स्थानक्रम बताया गया, इसीको अन्यत्र प्रत्याहार कहा जाता है। वाद्योंकी मार्जन, सन्धारण और संमार्जन आदि कर्मारवी क्रिया कर सहसा कानोंको सुख देनेवाले हिन्दोलरागसे गान शुरू किया गया। फिर आनन्दित होती हुई उर्वशी, रम्भा, अहिल्या और मेनका आदि नर्तकियोंने स्थिरवर्ण छटक और धारासे (त्रयताल) युक्त प्रवेश किया।

घत्ता—जिन्होंने नवकुसुमोंकी अंजली छोड़ी है ऐसी, रंगशालामें प्रवेश करती हुई देवियोंने कामबाणोंको छोड़ती हुई कामदेवकी धनुषलताओंके साथ लोगोंको मोहित कर लिया ॥१७॥

१८

अभिनयमें निपुण, भुजाओंमें अप्सराओंको धारण कर इन्द्र नृत्य करता है, धरती हिल जाती है। नटोंने नाना प्रकारके चारी और बत्तीस अंगहारोंकी रचना की। एक दूसरेकी देह (शरीरावयव) की स्थापनासे विभक्त, एक सौ आठ करणों (शरीरकी विभिन्न भंगिमाओं) का प्रदर्शन किया। भौंहोंके संचालनसे मनको रंजित करनेवाला चौदह प्रकारका संचालन किया, तथा मनोंको रंजित करनेवाले भौंहोंके ताण्डव भी किये। नेत्रोंको सुहावनी लगनेवाली नौ ग्रीवाएँ; तथा छत्तीस दृष्टियाँ भी प्रदर्शित की गयीं। अन्तिम रस (शान्त रस) से रहित, हाव उत्पन्न करनेवाले सचेतन स्वरूपवाले आठों रसोंका (प्रदर्शन) किया गया। एक कम पचास अर्थात् उनचास (संचारी) भाव, तथा दूसरे और अपूर्व भाव (स्थायी भाव) और अनुभावोंका भी प्रदर्शन किया। नृत्य करती हुई उन्होंने अनिवारित स्फुरण, बलन आदिकी अवतारणा की। फिर वन्दित पदरजको प्राप्त होती हुईं छड्डुनक (ताल विशेष) के साथ चली गयीं। मुग्ध प्रेमान्धोंको क्रुद्ध करता हुआ, स्नेहहीन जोड़ोंको सन्तुष्ट करता हुआ, ताराओं और चन्द्रमाकी कान्तिका अपहरण करता हुआ वियुक्त चक्रवाक समूहका मेल कराता हुआ,

घत्ता—उट्ठिउ रविबिंबु दियहसिरिए अरुणकिरणमालाफुरिउ ॥
[13]उययइरि महारायहु उवरि [14]णवरत्तउं छत्तु व धरिउ ॥१८॥

१९

जंभेट्टिया—ससिपायाहया　　दुक्खं पिव गया ।
अलिरवरसणिया　　रुयइ[1] व भिसिणिया ॥१॥
दंसइ पविमलं[2]　　ओसंसुयजलं
तं[3] पसरियकरो　　पुसइ व तमिहरो ॥२॥
णं[4] सोहइ दीवियें[5] जंबुदीउ　　णहमहिसं[6]रावपुडि दिण्णु दीउ ।
अद्धुग्गमंतु णं लोयणयणु　　णं एंतहु सेसहु सीसरयणु ।
णं वाडवग्गि णहसायरासु　　णं दिसँ[7]णिसियरिमुहमासं[8]गासु ।
णं ताहि ज्जि केरउ अहरबिंबु　　णं णिसिवं[9]हुवहि पयमग्गु तंबु ।
णं वासरविडवंकुरु विणित्तु　　णं जग[10]करंडि पवलउ णिहित्तु ।
ता तहिं सोहणि संसारसारु　　कासु वि कडिसुत्तउ दोरु[11] हारु ।
कासु वि हयगयचेलिउ रवण्णु　　कासु वि धणु[12] धण्णु सुवण्णु अण्णु ।
जो जं मग्गइ तं [13]तासु दिण्णु　　काणीणदीणदालिद्दु छिण्णु ।
संमाणियाइं सुहिपरियणाइं　　चोत्थइ दिणि मुक्कइं कंकणाइं ।
वित्तइ विवाहि विहवेण साहु　　थिउ रज्जु करंतु णएण णाहु ।
घत्ता—जसवइसुणंदरायाणियहिं पणएं हियवइ भावियउ ॥
[14]सियपुप्फयंतु सो रिसहपहु[15] भरहखेत्तणिवसेवियउ ॥१९॥

इय महापुराणे तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारे महाकइपुप्फयंतविरइए महाभव्वभरहाणुमण्णिए महाकव्वे कुमारविवाहकल्लाणं णाम चउत्थओ परिच्छेओ सम्मत्तो ॥ ४ ॥

॥ संधि ॥ ४ ॥

---

१३. MBP उवयइरि । १४. MBP णं रत्तउ ।

१९. १. MBP रुवइ । २. BP पविउलं । ३. MBP ते । ४. MBP जं । ५. MBP दीवइ । ६. MBP °सरावि पुडदिण्णु । ७. MB दिसि° । ८. MB °मंसगासु; P °मंसु गासु । ९. MBP °वहुयहि । १०. M जगकरडंबे विद्दुमु; B जगकरंडि धवलउ; P जगि करंडि विद्दुमु । ११. MBP हारु दोरु । १२. M घणधण्णु; P धण्णु सुवण्णु । १३. M सो तासु । १४. MBP सिरिपुप्फयंतु । १५. MPP रिणहु पहु ।

घत्ता—अरुण किरणमालासे स्फुरित सूर्यबिम्ब अपनी दिवसश्रीके साथ ऐसा उदित हुआ, जैसे उदयाचलरूपी महाराजपर नवरक्त छत्र रख दिया गया हो ॥१८॥

१९

जो (कमलिनी) चन्द्रकी किरणों (पादों = पैरों किरणों) से आहत होकर दुःखको प्राप्त हुई थी, भ्रमरोंके शब्दोंसे गुंजित ऐसी कमलिनी जैसे रो उठती है, और अपने प्रचुर ओसरूपी आँसुओंको दिखाती है, अन्धकारका हरण करनेवाला सूर्य मानो उसके आँसुओंको पोंछता है। जम्बूद्वीपमें आलोकित वह (सूर्य) ऐसा शोभित होता है मानो आकाश और धरतीरूपी शराव-पुटमें दीप रख दिया गया हो। मानो अधखुला लोकनेत्र हो, मानो आते हुए शेषनागके सिरका रत्न हो, मानो आकाशरूपी सागरकी वडवाग्नि हो, मानो दिशारूपी राक्षसीके मुँहका कौर हो, या मानो उस (दिशारूपी राक्षसी) का अधरबिम्ब हो। मानो निशारूपी वधूका आरक्त पद-मार्ग हो, मानो दिवसरूपी वृक्षका अंकुर निकल आया हो, मानो विश्वरूपी पिटारेमें प्रवाल रख दिया गया हो। ऐसे उस महोत्सवमें किसीको विश्वश्रेष्ठ कटिसूत्र, दोर (डोर) हार, किसीको हृदयगत सुन्दर वस्त्र, किसीको धनधान्य, सुवर्ण और अन्न जिसने जो माँगा, उसे वह दिया गया। कानीनों और दीनोंका दारिद्र्य दूर कर दिया गया। सुधीपरिजनोंका सम्मान किया गया। चौथे दिन कंगन छोड़ दिया गया। वैभवके साथ अच्छी तरह विवाह हो जानेपर स्वामी न्यायके साथ राज्य करने लगे।

घत्ता—यशोवती और सुनन्दा रानियोंके द्वारा प्रणय और हृदयसे चाहे गये श्वेतपुष्प (जुही) के समान वह ऋषभ, भरतक्षेत्रके राजाओंके द्वारा सेवित हुए ॥१९॥

इस प्रकार त्रेसठ महापुरुषोंके गुणालंकारोंसे युक्त इस महापुराणमें महाकवि पुष्पदन्त द्वारा विरचित तथा महाभव्य भरत द्वारा अनुमत महाकाव्यका कुमारीविवाह-कल्याण नामका चौथा परिच्छेद समाप्त हुआ ॥४॥

संधि ५

पियमेलइ गयकालइ एक्कहिं दिणि सुहकारिणि ॥
णिरुवमसइ संधुरंगइ णाहितणयमणहारिणि ॥ ध्रुवकं ॥

१

रचिता—छणँ[3]सिसिरयरकिरणणिहदिहियरघरसयँ[4]णयलि सुत्तिया ।
पविमलसरलकमलदलवलयसुकोमलललियगत्तिया ॥१॥

जैसवइ जसेणाहियं सोहमाणा णवणलिणहंसी व णिद्दायमाणा ।
सुरवहुपयालत्तयालित्ततीरं णिवँडियदरीरंधगंभीरणीरं ।
हरिसरहओरालिपूरियसुसाणुं सँसिकंतपब्भारणिज्जित्तभाणुं ।
करिदसणणिब्भिण्णसोवण्णरायं सिविणयगयं पेच्छए सेलरायं ।
ससहरमलंकारभूयं णिसाए रविमवि मुहे णीहरंतं दिसाए ।
सयदलदलालंबिरुंटंतभिंगं सरवरमसारिच्छतिंगिच्छपिंगं ।
दसदिसि बहुप्पिच्छरंगंतभंगं जलखलणपक्खालियहिंदसिंगं ।
अमरिसझसप्फालणुट्ठंतसद्दं करिमयरमालारउद्दं समुद्दं ।
सयलमवि [11]आलोयए संविसंतं णियवयणपोमम्मि छोणीयलं तं ।

घत्ता—इय पेच्छिवि [12]परिहच्छिवि सुप्पहाइ सीमंतिणि ॥
[13]कयराहहो गय णाहहो घरु[14] पुरंधिचूडामणि ॥१॥

GK have at the commencement of this Samdhi the following stanza :—

भ्रूलीलां त्यज मुञ्च संगतकुचद्वन्द्वादिकं वक्षसा
मा त्वं दर्शय चारुमध्यलतिकां तन्वङ्गि कामाहता ।
मुग्धे श्रीमदनिन्द्यखण्डसुकवेर्बन्धुर्गुणैरुन्नतः
स्वप्नेऽप्येष पराङ्गनां न भरतः शौचोदधिर्वाञ्छति ॥

MBP have the same stanza, but M reads °द्वन्द्वादिगर्वाक्षमा and BP read °द्वन्द्वादिगर्वक्रियां for द्वन्द्वादिकं वक्षसा and MBP read शौचाम्बुधिः for शौचोदधिः ।

१. १. MBP सिंधुर° । २. M °मयहारिणि । ३. M छणससिरयणकिरण°; B °ससिरयर° । ४. MB °सयणयल° । ५. MBP have before this line रमणीयलता नाम छंदो; GK have रमणीयलता । ६. M णिवडय°; P णिविडिय° । ७. MB ससीकंत° । ८. MB °णिब्भिण्णभाणुं । ९. BP° रुट्टंत° । १०. M °तिग्गंछ°; BP °तिगिंछि° । ११. B समालोवए; P मालोयए । १२. MBP परियच्छिवि । १३. M कयरायहो । १४. M घर° ।

सन्धि ५

१

प्रियसे मिलाप करानेवाले समयके बीतनेपर एक दिन, अनुपम सती शुभकारिणी, ऋषभनाथकी अत्यन्त प्रिय, गजगामिनी, स्वच्छ कमल-समूहके समान कोमल शरीरवाली, पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान शीतल शयनतलमें, अपने यशसे अत्यधिक शोभित यशोवती इस प्रकार सो रही थी, मानो नवकमलोंपर हंसिनी सो रही हो। स्वप्नमें उसने एक शैलराज देखा, जिसके तट देवबालाओंके पैरोंके आलक्तकसे आरक्त थे, जिसकी घाटियोंके रन्ध्रोंसे गम्भीररूपसे जल गिर रहा था, जिसके शिखर सिंहों और स्वापदोंकी गर्जनाओंसे निनादित थे, अपने चन्द्रकान्त मणियोंकी आभासे जिसने सूर्यबिम्बको जीत लिया था। जिसने हाथीदाँतोंसे स्वर्णरागको निस्तेज कर दिया था। (फिर उसने देखा) निशाके अलंकारभूत चन्द्रमाको, पूर्वदिशासे निकलते हुए सूर्यको, भ्रमरोंसे गूँजते हुए कमलोंसे युक्त और अद्वितीय परागसे पीले सरोवर को, जो अत्यन्त वेगशील लहरोंसे दशों दिशाओंमें चंचल है, जो जलोंके स्खलनसे गिरिशिखरोंका प्रक्षालन करनेवाला है, जिसमें अमर्षसे भरे हुए मत्स्योंका उत्फाल शब्द उठ रहा है, ऐसे मत्स्यों और मगरोंसे भयंकर समुद्रको उसने देखा। समस्त धरतीतलको अपने मुखरूपी कमलमें प्रवेश करते हुए देखा।

घत्ता—यह देखकर इन्द्राणियोंमें श्रेष्ठ वह सीमन्तिनी प्रेम करनेवाले अपने स्वामीके भवनमें सवेरे-सवेरे यह पूछनेके लिए गयी ॥१॥

२

रचिता—पभणइ सुणे[1]सु पुरिसहरि सुरगिरि ससि रवि सरवरो[2]यहीं।
मइं णिसि सिविणयम्मि दिट्ठा पिययम गिलिया इमी मही ॥१॥
तं णिसुणेवि णराहिउ घोसइ चक्कवट्टि तुह तणुरुहु होसइ।
मंदरेण दिट्ठेण पियारउ महिरायाहिराय गरुयारउ।
ससहरेण सूहउ सोमाणणु कंतिवंतु कंतासुहमाणणु।
सूरें सूरु पयावें दूसहु सरवरेण पयडियसिरिसंगहु।
रयणायरेण सवंसपहायरु चंडि चारु चोद्दहरयणायरु।
महिआहारें रिउ भंजेसइ छक्खंड वि मेइणि भुंजेसइ।
कइहिं मि दियहहिं होइ णिरुत्तउ देवि[3] ण चुक्कइ जं मइं वुत्तउ।
तो सव्वत्थसिद्धि[4]अहिहाणहु सइं अहमिंदु चलिउ सविमाणहु।
पुव्वपुण्णसंपयसंपुण्णउ जसवइदेविहि गब्भि णिसण्णउ।
घत्ता—भुवणु[5]ब्भवि सिसुसंभवि जेहिं कयउ कालउ मुहुं ॥
ते दुज्जण अवरु वि थण णिवडिहिंति हेट्ठामुहु ॥२॥

३

रचिता—सुयभरपसरमाणछ[1]उउयरे वियलियरं वलित्तयं।
तिहुयणवइजयंकरेहारहियं व कयं जयत्तयं ॥१॥
राएं गब्भि[2] थिएण ण णायउ पंडुरु तोंडु[3] काइं संजायउ।
दियहि पसत्थि मुहुत्ति सुणिम्मलि णियठाणुण्णइं गइ गहमंडलि।
जसवइयहि वियसियपंकयमुहु णवमासहिं उप्पण्णउ तणुरुहु।
ता तहिं णहि सुरदुंदुहि वज्जइ णं संतोसें सायरु गज्जइ।
दाणु देंति वारण वणि संठिय कीस ण माणुस हरिसुक्कंठिय।
मेह सवंति सुगंधइं सलिलइं दिम्मुहाइं णिरु जायइं विमलइं।
आयासु वि दीसइ मलवज्जिउ णीलउ भायणु णं संमज्जिउ।
मंदरदंडएण वित्थ[4]रियउ एकछत्तु णं कुय[5]रहु धरियउ।
तारामोत्तियदामहिं भूसिउ एहु जि राणउ सव्वहुं पासिउ।
महि सइं खल खलंति चउपासिहिं णं वज्जरइ महाणइघोसिहिं।
घत्ता—सरणलिणहिं णं णयणहिं पइ णियंति महु रुच्चइ ॥
मरुचलियहिं परिघुलियहिं वेल्लीभुयहिं पणच्चइ ॥३॥

---

२. १. MBP णिसुणि। २. MBP °वरोवही। ३. M देव। ४. MBP °अहिणाणहु। ५. T records a *p* सुयणुब्भवि and adds : सुयणुब्भवि इति पाठे सुजनानामुत्कर्षस्य भवः।

३. १. M छउओयर°; BP छउउयर°, but gloss in P क्षामोदरे। २. MB गब्भित्थिएण; P गब्भित्थइं। ३. MBP तुंडु। ४. MBPK विच्छुरियउ। ५. MBP कुमरहु।

२

वह बोली—हे पुरुषश्रेष्ठ, सुनिए। मैंने रात्रिमें स्वप्नमें सुमेर पर्वत, चन्द्रमा, सूर्य, सरोवर, समुद्र और निगली जाती हुई धरती को, हे स्वामी, देखा है। यह सुनकर राजा घोषणा करते हैं, "तुम्हारा चक्रवर्ती पुत्र होगा, मन्दराचलको देखनेसे प्रियकारक महान् महाराजाधिराज होगा। चन्द्रमाको देखनेसे सुभग और सौम्य मुखवाला, कान्ताका सुख माननेवाला और कान्तिसे युक्त होगा। सूर्यको देखनेसे शूरवीर और अपने प्रतापसे असह्य होगा। सरोवरको देखनेसे उसका स्पष्ट लक्ष्मीसंग्रह होगा। समुद्र देखनेसे वह अपने वंशका सूर्य होगा, प्रचण्ड सुन्दर और चौदह रत्नोंका आश्रय। पृथ्वीका अहार देखनेसे वह शत्रुका नाश करेगा और छह खण्ड धरतीका भोग करेगा। कुछ ही दिनोंमें हे देवी तुम्हारा पुत्र होगा, जो कुछ मैंने कहा है वह चूक नहीं सकता।" तब सर्वार्थसिद्धि नामक अपने बिमानसे चलकर पूर्वपुण्यको सम्पत्तिसे भरपूर अहमिन्द्र स्वयं यशोवती देवीके गर्भमें आकर स्थित हो गया।

घत्ता—भुवनका उत्कर्ष है जिसमें ऐसे पुत्रका जन्म होनेपर जिन्होंने अपना मुंह काला कर लिया, ऐसे दुर्जन और स्तन अपना मुख नीचा करके गिर गये ॥२॥

३

पुत्रके भारके प्रसारसे क्षीण उदरकी त्रिबलि समाप्त हो गयी। मानो तीनों लोकोंको त्रिभुवनपतिकी विजयकी चिह्नरेखासे रहित कर दिया गया हो। यह नहीं जाना जा सका कि गर्भमें स्थित रागसे उसका मुख सफेद क्यों हो गया? प्रशस्त दिन, निर्मल मुहूर्त और ग्रहोंके अपने-अपने स्थानपर स्थित होनेपर नौ माहमें यशोवतीके विकसित मुखवाला सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। तब आकाशमें देवोंकी दुन्दुभि बज उठती है मानो सन्तोषसे सागर गरजने लगता है, मानो (लोगोंके) दान देनेपर हाथी वनमें चले जाते हैं, मनुष्य हर्षसे क्यों उत्कण्ठित नहीं होते। मेघ सुगन्धित जल बरसाते हैं, दिशाओंके मुख अत्यन्त निर्मल हो जाते हैं, आकाश भी मलसे रहित दिखाई देता है मानो नीले वर्तनको माजकर खूब साफ कर दिया गया हो, या मानो मन्दराचलके दण्डपर आधारित एकछत्र कुमारके ऊपर रख दिया गया है। "ताराओंके समान मोतियोंसे विभूषित यह राजा सबसे श्रेष्ठ है," मानो धरती चारों ओर महानदियोंके घोषोंसे कलकल करती हुई और दुष्टोंको हटाती हुई यही कहती है।

घत्ता—सरोवरके कमलोंरूपी नेत्रोंसे तुम्हें देखती हुई (धरती) मुझे (कविको) अच्छी लगती है, हवाओंसे चंचल और आन्दोलित लतारूपी बाहुओंसे मानो वह नृत्य करती है ॥३॥

४

रचिता—णियगुणरयणपियरकरमंजरिधवलियणिवइवंसओ ।
विसरिस[1]सुंकयसाहिसाहासिउ वड्ढइ रायहंसओ ॥१॥

[2]णामकरण[3]चूलाकरणाइउ सव्वु वि कयउ विसेसविराइउ ।
जणणीजोव्वणफल[4]गोंछो इव [5]विहेलियलोय कप्पवच्छो इव ।
[6]सुहिवयणामयबिंदुपवेसु व मित्तचित्तसंगहणणिवेसु व ।
गुणसंसापयासमग्गो इव रोयसोयउज्झिउ सग्गो इव ।
पिउसहावसंचउ रूढो इव बंधुणेहबंधणवेढो इव ।
किंकरयण[7]मणचिंतामणि विव अरिमहिहर[8]सिरसोदामणि विव ।
णिहिलणायसब्भावणिही विव हरणकरणउद्धरणविही विव ।
भारसोढु [9]गरुययरें मही विव भूरिभोयभारिल्लु अही विव ।
दुणिहालउ मज्झण्णरवी विव वज्जदेहु जंभारिपवी विव ।
लायण्णंबुपवाहसरो इव विलयावंदहुं कुसुमसरो इव ।

घत्ता—सिरि उरयलि महि असिदलि [10]मुइ जयसिरि जयकारिणि ॥
जसु णिवसइ मुहि सरसइ कित्ति तिलोयविहारिणि ॥४॥

५

रचिता—गिरिसरिकलसकुलिसकमलंकुसविसझसलक्खणाहिओ ।
सुरणरखयररसणिवीणारवगाइयजसपसाहिओ ॥१॥

णं सोहग्गपुंजु णिव्वडियउ णाइं पयावें विहिणा घडियउ ।
जलिवि जलिवि उल्हाइ ण जीवइ जासु भएण णाइं सिहि णीवइ ।
अइ[1]पमत्तु पुणरवि णासंघइ जडसंगु वि मज्जाय ण लंघइ ।
पालियवेलउ जसु मयरालउ जासु भएण [2]जि थिउ [3]जेंव कालउ ।
णायराउ खुल्लउ कीडुल्लउ चंदु वि जायउ चंदगहिल्लउ ।
पक्खि पक्खि सो दीसइ भग्गउ पवणु वि गमणब्भासहु लग्गउ ।
इंदु वि [4]इंदधणुहु गुणि णाणइ अज्ज वि तं तेहउ जणु जाणइ ।
णियकरि पहरणु कहिं मि ण दावइ विणएण जि णवंतु घरु आवइ ।

घत्ता—अलिउलचल चुयमयजल महिहरभित्तिवियारण ॥
अविहियसर कुंचियकर जसु तसंति [5]दिसिवारण ॥५॥

---

४. १. M सुकय° । २. MBP णामकरणु । ३. P चूडा° । ४. MBP °गुंछो । ५. P विहसिय° । ६. MB बुहवयणामय°; P बुहणयणामय° । ७. MBP घण° । ८. P °सिरि । ९. MBP गरुययरु । १०. MBP भुयजुइ ।

५. १. B पमुत्तु । २. MBP व । ३. MP जमु । ४. M इंदधणुहि गुण; BP गुणु । ५. MBP दिसवारण ।

४

अपने गुणरत्नसमूहकी किरणमंजरीसे राजवंशको धवलित करनेवाला और असामान्य पुण्य वृक्षकी शाखासे आश्रित वह राजहंस बड़ा होने लगा। नामकरण और चूड़ाकरण आदि उसका सब कुछ विशेष शोभाके साथ किया गया। जो माँके यौवनरूपी फलके गुच्छेके समान, विह्वल लोगोंके लिए कल्पवृक्षके समान, सुधि-वचनामृतके लिए बिन्दुप्रवेशके समान, मित्रोंके चित्तोंके संग्रहके लिए आश्रयस्थानके समान, गुणोंकी प्रशंसाके लिए प्रकाशन मार्गके समान, रोग और शोकसे रहित स्वर्गके समान, पिताके स्वभाव संचयके समान, बन्धुस्नेहके बन्धनसे घिरे हुएके समान, अनुचर जनोंके लिए चिन्तामणिके समान, शत्रुरूपी पर्वतोंके सिरोंके लिए गाजके समान, निखिल न्याय और सद्भावकी निधिके समान, नाश, निर्माण और उद्धारमें विधाताके समान, भार सहन करनेवाली धरतीके समान, भूरिभोग (प्रचुर फन / प्रचुर भोग) वाले नागके समान, दुर्दर्शनीय मध्याह्न रविके समान, इन्द्रके वज्रके समान वज्र शरीर, सौन्दर्य समुद्रके प्रवाहके समान, वनितासमूहके लिए कामदेवके समान था।

घत्ता—जिसके वक्षःस्थलपर लक्ष्मी, असिदलपर धरती, बाहुओंमें जय करनेवाली जयश्री और मुखमें सरस्वती निवास करती है और जिसकी कीर्ति तीनों लोकोंमें विहार करनेवाली है ॥४॥

५

जो गिरि, नदी, कलश, वज्र, कमल, अंकुश, वृषभ और मत्स्यके लक्षणोंसे अंकित है तथा जो सुरों, नरों एवं विद्याधरोंकी वनिताओंकी वीणाध्वनिमें गाया जाता है। जो यशसे प्रसाधित है। जो मानो (कसौटीपर) कसा गया सौभाग्यपुंज है, मानो जिसे प्रयाससे विधाताने गढ़ा है, जिसके भयसे आग जल-जलकर अंगार होती है, जीवित नहीं रहती, और अन्तमें शान्त हो जाती है। समुद्र यद्यपि प्रमादी है, फिर भी (जिसके डरसे) स्थिर नहीं रहता, जड़का (जल, जड़) संग करनेपर भी मर्यादाका उल्लंघन नहीं करता, जिस भरतकी मर्यादाका समुद्र पालन करता है, जिसके भयसे यम स्थिर हो गया है, जिसके लिए नागराज एक क्षुद्र कीड़ा है। चन्द्रमा भी जिसके लिए मयूरचन्द्रके समान हैं। वह (चन्द्रमा) पक्ष-पक्षमें क्षीण होता दिखाई देता है; और पवन भी जिसके भयसे चलनेका अभ्यास करने लगा है। इन्द्र भी अपने धनुषपर डोरी नहीं चढ़ाता, और आज भी लोग उसी रूपमें जानते हैं। वह अपने हाथमें शस्त्र कभी नहीं दिखाता। वह विनयसे विनम्र होकर घर आता है।

घत्ता—जो अलिकुलसे चंचल हैं, जिनसे मदजल चू रहा है, जो पहाड़ोंकी दीवारोंका विदारण करनेवाले हैं, जो गर्जना नहीं कर रहे हैं, जिनकी सूँड़ें टेढ़ी हैं, ऐसे दिग्गज जिससे त्रस्त रहते हैं ॥५॥

६

रचिता—करिसिरदलियरत्तलित्तुग्गयमोत्तियखइयकेसरो ।
सिसुससिकुडिलचडुलविज्जुज्जलदाढाजुयलभासुरो ॥१॥

एहओ वि हरि विप्फुरियाणणु जासु भएण व सेवइ काणणु ।
णवजोव्वणि चडंतु परमेसरु सुरवरकरिकरथिरदीहरकरु ।
सो सिक्खविउ सपिउणा सव्वइं कालक्खरइं गणियगंधव्वइं ।
णाडयाइं बहुभावरसत्थइं णरणारिहिं[१] लक्खणइं पसत्थइं ।
तब्भूसायरणाइं विचित्तइं वम्महचरियइं हियबहुचित्तइं ।
गंधपउत्तिउ रयणपरिक्खउ मंत तंत वर[२]हयगयसिक्खउ ।
कोंतगयासिघायसंताणइं चक्कचावपहरणविण्णाणइं ।
देसदेसिभासालिविठाणइं कइवायालंकारविहाणइं ।
जोइसछंदतक्कवायरणइं मल्लगाहजुज्झइं कयकरणइं ।
वे[३]ज्जणिघंटोसहिवित्थारु वि बुज्झिउ स[४]व्वलोयवावारु वि ।
चित्तलेप्पसिलवरतरुकम्मइं एवमाइ अवराइं मि रम्मइं ।

घत्ता—पयणयसुरु तिहुयणगुरु जासु सइं जि वक्खाणइ ।
अइविमलउ सो सयलउ कलउ कि ण परियाणइ ॥६॥

७

रचिता—पुणरवि णियसुयस्स सो णिवरिसि णेहवसेण भासए ।
गिरिथणिधरणितरुणिपरिपालणविहिविसयं पयासए ॥१॥

पभणइ पहु भो पढमणरेसर अत्थसत्थु णि[१]सुणहि भरहेसर ।
ववसाएं सुसहाएं संपय होइ णिरुत्तउ पयपाडियपय ।
अलसत्तें खलसंगें णासइ सा मइ एहउ तुह सुय सीसइ ।
असहायहु जगि किं पि ण सिज्झइ हत्थि वं[२] सुत्तसमूहें बज्झइ ।
जाइ णाव मारुइण विलग्गें जलइ जलणु तासु जि संसग्गें ।
संति सूरु दु[३]हसहु सुहि सहयरु तासु करेज्जसु कज्जि महायरु ।
जगि कज्जु जि मित्तारिहि कारणु तेण ण किज्जइ तहिं अवहेरणु ।
तं पि बु[४]द्धिदारेण समुब्भइ बुद्धि वि बुड्ढहं[५] सेवइ लब्भइ ।

घत्ता—सिरपं[६]लियहिं मुहवलियहिं मुं[७]इ जराइ णिब्भच्छिय ॥
जे सत्थइ कम्मत्थइ कुसला ते मइं इच्छिय ॥७॥

६. १. MBP णरणारी । २. P हयवरगय° । ३. B वेज्ज । ४. MBP सयल ।
७. १. MBP णिसुणिहि । २. MBP हत्थि वि । ३. MB सुहदुहसहु; P दुहसुहसहु । ४. MBP बुद्धि-चारेण । ५. B बुहसेवइ । ६. MP सिरि पलियहिं; B सरे पलियहिं । ७. MBP मुय ।

६

हाथियोंके सिरोंसे दलित तथा रक्तसे लिप्त निकले हुए मोतियोंसे जिसकी अयाल विजड़ित है, जो बालचन्द्रके समान कुटिल और चंचल बिजलीके समान उज्ज्वल अपनी दोनों दाढ़ोंसे भास्वर है, ऐसा तमतमाते मुखवाला सिंह भी, जिसके भयसे जंगलका सेवन करता है। ऐरावतकी सूँड़के समान जिसके बाहु दीर्घ और स्थिर हैं ऐसा परमेश्वर भरत नवयौवनको प्राप्त होने लगा। उसके पिताने उसे सब सिखाया। काले (स्याहीसे लिखित अक्षर) अक्षर गणित गन्धर्व विद्या, विविध भाव और रससे परिपूर्ण नाटक, नर-नारियोंके प्रशस्त लक्षण, उनकी भूषाओंके निर्माण, स्त्रियोंके हृदयको चुरानेवाले कामशास्त्रके चरित, गन्धकी प्रयुक्तियाँ, रत्नपरीक्षा, मन्त्र-तन्त्र, श्रेष्ठ अश्व और गजकी शिक्षाएँ, कोंत, गदा और तलवारोंके आघातोंकी परम्परा, चक्र-धनुष-प्रहरणोंके विज्ञान, देश-देशीभाषा-लिपि-स्थान, कवि वागलंकार-विधान, ज्योतिष-छन्द-तर्क और व्याकरण, आवर्तन-निवर्तन आदि करणों (पेचों) से युक्त मल्लग्राह युद्ध, वैद्यक-निघंटु, औषधियोंका विस्तार, और सर्वलोक-व्यवहार भी उसने समझ लिये। चित्रलेप, मूर्ति और काष्ठकला आदि दूसरे-दूसरे सुन्दर कर्म सीख लिये।

घत्ता—जिसके चरणोंमें देव नत हैं ऐसे त्रिभुवनगुरु (ऋषभ जिन) जिसे स्वयं शिक्षा देते हैं अत्यन्त विमल उन समस्त कलाओंको वह भरत क्यों नहीं जानेगा ॥६॥

७

फिर वह राजर्षि ऋषभ स्नेहके वशीभूत होकर अपने पुत्रसे कहते हैं और उसे, गिरि हैं स्तन जिसके, ऐसी धरतीरूपी तरुणीके पालन करनेको विधि और विषय बताते हैं। प्रभु कहते हैं, "हे प्रथम नरेश्वर भरतेश्वर, तुम अर्थशास्त्र सुनो। व्यवसाय और सहायक होनेसे सम्पत्ति होती है। प्रजा चरणोंमें नत रहती है। आलस्य और दुष्टकी संगतिसे वह नष्ट हो जाती है। हे पुत्र, तुम्हें मैं यह उपदेश देता हूँ। असहाय लोगोंका विश्वमें कुछ भी सिद्ध नहीं होता। धागोंके समूहसे हाथी भी बाँध लिया जाता है। हवासे लगकर नाव चली जाती है, और उसी हवाके संसर्गसे आग जल उठती है, मन्त्री यदि शूर, असह्य सहन करनेवाला पण्डित और मित्र है, तो कार्यमें उसका महान् आदर करना चाहिए, उसमें उसके साथ उपेक्षाका बर्ताव नहीं करना चाहिए, क्योंकि दुनियामें शत्रु और मित्र होनेका कारण कार्य ही है। कार्य भी बुद्धिके द्वारा सम्भव और उत्पन्न होता है, बुद्धि भी वृद्धोंकी सेवा करनेसे मिलती है—

घत्ता—जिनके सिर सफेद हो चुके हैं, जिनके मुख टेढ़े हैं, जो जरासे निन्दित हैं उन्हें छोड़ो। जो स्वस्थ हैं, कर्म करनेमें कुशल हैं उन्हें मैं चाहता हूँ ॥७॥

८

रचिता—णियमइणयणविहवपविलोइयपरणरछिद्दचारिणो ।
पेहुविरइयविसालदोसेसु पिहाणय राहचारिणो ॥१॥

बुद्धितुलातोलियमहिमंडल   मंतचारणिम्महियाहंडल ।
बुड्ढा जेहिं ण सेविय भत्तिइ   णउ मुयंति कयाइ वि यत्तिइ ।
ते सुंदर जाणसु दुवियड्ढा   कुलबलसिरिमयजलणें दड्ढा ।
होंति अबुह बुहसंगें बुद्धा   चंपयवासें तिले[2] वि सुयंधा ।
बुहसेवाए बुद्धि उप्पज्जइ   सा सत्तविह कुमार कहिज्जइ ।
सुस्सूसा सवणु वि संधारणु   मोयणु गहणु णाणु णिच्छयमणु ।
तिविह होइ मंतहु संबंधिणि   सा वि कहवि तिजगचिंतामणि ।
णिसुणिक्खाउवंसमंडणधय   गुरुयणगय सुयगय णियमणगय ।
ताइ मंतु अवसें णिप्फेंज्जइ   सो पंचविहु कहंति महामइ ।

घत्ता—आढत्तइ कम्मत्तइ पढमुवाउ चिंतेवउ ॥
णरसत्ति वि धणजुत्ति वि देसु कालु जाणेवउ ॥८॥

९

रचिता—अवि य सहरिस पुरिस दढपोरिस सुकयावायरक्खणं ।
अविरलमिलियविउलफलसिद्धि वि जाणसु मंतलक्खणं ॥१॥

सुयणुद्धरणु दुट्ठणिग्गहणु वि   णाएं छट्ठभायसंगहणु वि ।
जणवयदोससमणु जा सुच्चइ   दंडणीइ सा पुत्त पवुच्चइ ।
किसि पसुपालणु सहुं वाणिज्जें   वत्त भणिज्जइ महिवइपुज्जें ।
चउवण्णासमु धम्मु तइत्तिय   अज्ज वि सुंदर होंति ण सोत्तिय ।
ते अप्पणु पइं पुरउ करेवा   हीण दीण दाणेण भरेवा ।
ताहं कम्मु जगसंतिपयासउ   जणियभूयगोहयणसंतोसउ ।
अय तिवरिस जव तेहिं हुणेवउ   जणहु जीवदयवयणु भणेवउ ।
जं[3] जि पढेवउ तं जि करेवउ   असि ण धरेवउ दाणु लएवउ ।
दंसणणाणचरित्तु कहेवउ   तिउणउं सुत्तु सरीरि ठवेवउ ।
बंभचेरु अहवा कुलउत्ती   अण्णणारि मइं ताहं ण उत्ती ।
णिच्चण्हाणु जिणपडिमापूयणु   णिच्चहोमु णिच्चातिहिभोयणु ।
इय मज्जाय विलंघवि लंपड   ते खाहिंति जीउ मारिवि जड ।

घत्ता—सुयसंगहु करुणावहु दाणु घरणिजणधारणु ॥
इय इट्ठउ मइं सिट्ठउ खत्तियकम्मवियारणु ॥९॥

---

८. १. MBP बहु° । २. MBP तिल व । ३. MBP कहंति । ४. MBP णिप्पज्जइ ।

९. १. MBP दढपउरिस । २. MBP महगम° । ३. K तं जि पढेवउ जं जि करेवउ । ४. MBP दंसणु णाणु चरित्तु । ५. MBP धरेवउं ।

८

अपनी बुद्धिरूपी नेत्रोंके वैभवसे, शत्रुपक्षके छिद्रोंको देखनेवाले, स्वामीकी शोभा बढ़ानेवाले चरपुरुष उसके द्वारा किये गये विशाल दोषोंको ढकनेवाले होते हैं। अपनी बुद्धिरूपी तुलापर समस्त ब्रह्माण्डको तौलनेवाले तथा मन्त्रप्रयोगसे इन्द्रको पराजित करनेवाले वृद्धोंकी जिसने सेवा नहीं की है, ऐसे उन कुलमूर्खोंको कुल, बल, श्री और मदकी ज्वालामें दग्ध समझो। पण्डितोंकी संगतिसे मूर्ख भी पण्डित हो जाते हैं, उसी प्रकार जिस प्रकार 'चम्पा' की गन्धसे तिल सुगन्धित हो जाते हैं। पण्डितोंकी सेवासे बुद्धि उत्पन्न होती है, यह सेवा सात प्रकारकी कही जाती है—शुश्रूषा, श्रवण, सन्धारण, मोदन, ग्रहण, ज्ञान और निश्चय मन (तर्क-वितर्ककी शक्ति)। मन्त्रसे सम्बन्धित बुद्धि तीन प्रकारकी होती है, और जो तीनों लोकोंमें चिन्तामणि कही जाती है। हे इक्ष्वाकु कुलके मण्डन-ध्वज, सुनो—एक बुद्धि गुरुजनसे प्राप्त होती है, दूसरी बुद्धि शास्त्रसे और तीसरी अपने मनसे उत्पन्न होती है। इससे मन्त्र अवश्य सिद्ध होता है। महामति मन्त्रको पाँच प्रकारका बताते हैं।

घत्ता—सुनो, कार्यको प्रारम्भ करनेपर पहले कार्यकी चिन्ता करनी चाहिए। मनुष्यशक्ति, धन, युक्ति तथा देश-कालको जानना चाहिए ॥८॥

९

और भी, हे दृढ़पौरुष पुरुष, जिसमें अपायका रक्षण किया गया है तथा अविरल रूपसे विपुल फलकी प्राप्ति हो, तुम ऐसे मन्त्र लक्षणको जानो। सुजनका उद्धार, दुष्टोंका निग्रह, न्यायसे करके रूपमें छठे भागको ग्रहण करना, जनपदके दोषोंका शमन करना, इनका जो विचार करती है, हे पुत्र वह दण्डनीति कही जाती है। वाणिज्यके साथ कृषि और पशुपालनको राजाओंके द्वारा पूज्यने वार्ता कहा है। चतुर्वर्ण आश्रम और धर्म त्रयीविद्या है। श्रोत्रिय (ब्राह्मण) आज भी सुन्दर नहीं होते। उन्हें तुम अपनेसे आगे रखना, दीन-हीनोंको दानसे सन्तुष्ट करना। उनका काम जगमें शान्तिका प्रकाशन करना और भूतग्रहोंको शान्ति करना है। अज तीन वर्षके जौको कहते हैं उनसे यज्ञ करना चाहिए, लोगोंमें जीवदयाका प्रचार करना चाहिए। जो पढ़ा जाये उसीको किया जाना चाहिए। उन्हें दर्शन, ज्ञान और चरित्र कहना चाहिए। तीन डोरोंका जनेऊ शरीरपर धारण करना चाहिए। ब्रह्मचर्यसे रहना चाहिए, अथवा किसी कुल-पुत्रीसे विवाह करना चाहिए, उनके लिए मैंने दूसरी स्त्री नहीं बतायी। नित्य स्नान, जिनप्रतिमाका पूजन, नित्य होम करना, नित्यप्रति अतिथिको भोजन देना। लेकिन वे लम्पट और जड़ इस मर्यादाका उल्लंघन कर जीव मारकर खायेंगे।

घत्ता—धुलसंग्रह, करुणपथ, दान और धरतीके लोगोंका पालन करना, इस प्रकार मैंने क्षत्रिय कर्मकी विचारणा की ॥९॥

१०

रचिता—वियलियमलमईहिं मंतीहिं कुमग्गगयं[1] परिक्खियं।
पंसुसमसिणमसेसमहिवलयमहो[2] णरणाह रक्खियं ॥१॥

पढणहवणदाणइं[3] वाणिज्जइं इय वणियहु कम्मइं णिरवज्जइं।
सुद्दहु भणु[4] वत्ताणुट्ठाणु वि वण्णत्तयपेसणसंमाणु वि।
अवरु कुसीलकारुजीवित्तणु एम कम्मि संजोएवउ जणु।
कम्मरहिउ जगि भद्दु ण भुंजइ धम्मविवज्जिउ तं पि ण किज्जइ।
मंतिठाणि कुलबुद्धिइ[6] चत्ता तिक्ख पक्खपालणइ अभत्ता।
अंतेउरि पमत्त कामाउर लुद्ध धणाहियारि पसरियकर।
ण थविज्जंति काइं वित्थारें णासइ पहु दुट्ठें परिवारें।
पडिवयणेण तासु मइपसरणु कलहे ण वि परियणपोरिसगुणु।
सहवासेण सीलु जाणेवउ ववहारेण सउच्चु मुणेवउ।
जाणेवा राएं पेसिवि चर कुद्ध लुद्ध माणिय भीरुय पर।
सामभेयधणदंडसमागउ झत्ति रइज्जइ जं जसु जोग्गउ।

घत्ता—णियकज्जु वि परकज्जु वि कम्मद्धक्खसुइत्तणु ॥
जाणेवउ माणेवउ एत्तिउ[7] पुत्त पहुत्तणु ॥१०॥

११

रचिता—कुणसु सकलुसवइरिणिवपेसियपणिहीपडिविहाणयं।
परियणसयणमित्तसंतोसयरं संमाणदाणयं ॥१॥

दुविहु वि जणउवसग्गु हरेज्जसु तिविहसत्तिसब्भाउ करेज्जसु।
भक्खिउं उप्पेक्खिउं वि मुणिज्जसु णिग्गहु अवरु अणुग्गहु देज्जसु।
सत्तु मित्तु मज्झत्थु वि भावहि सव्वणिओयसुद्धि संदावहि।
अवलंबेज्जसु गुरुहिययत्तणु मुयसु दिट्ठ[2]कामुयकामित्तणु।
चवलत्तणु अयाल[3]गामित्तणु खलसंगु वि दुव्वसणपवत्तणु।
णारि जूउ मइरा मयमारणु कामुप्पण्णउ चउविहु दारुणु।
अण्णाएं ण दविणु णासेवउ तिक्खदंडु सुफरुसु[4] भासेवउ।
रोसुप्पण्णउं वसणु तिहेयउं[5] मइं महिवइसासणि विण्णायउं[6]।
इय सत्तविहु भरेण ण किज्जइ रिउछव्वग्गहु हियउं ण दिज्जइ।

---

१०. १. T reads कमग्गगयं and explains it as पादाग्रे स्थितम्; it however records a *p* कुमग्गगयं and explains it as कुत्सितमार्गे प्रवृत्तम्। २. M पसुसिमं। ३. MBP पढणइं धणदाणइं। ४. P पुणु। ५. MBP °पेसणु संमाणु। ६. M मंतिट्ठाणेसु सुबुद्धिए चत्ता; BP मंतिट्ठाणि कुबुद्धिइ चत्ता। ७. MBP एत्तिउं।

११. १. MBP विहावहि। २. MBP धिट्ठ° but gloss in PT दृष्टे स्त्रीजने। ३. MBP अयालि। ४. MBP सुफरसु भासेवउ। ५. MBP रोसुप्पण्णु वसणु णिहणेव्वउ। ६. P adds after this line : णिच्छउ मइं हियवइ संभाविउ। ७. MP चित्तु।

१०

विगलित पापबुद्धिवाले मन्त्रियोंके द्वारा कुमार्गमें जानेवालोंकी रक्षा की जाये। हे नरनाथ, जिस प्रकार गाय, पशु आदि जानवरोंका पालन किया जाता है उसी प्रकार इस समस्त धरती-मण्डलका परिपालन करना चाहिए। पढ़ना, हवन करना, दान देना और वाणिज्य यह वैश्योंका अनवद्य कर्म है। शूद्रोंका काम है, वार्ताका अनुष्ठान और वर्णत्रयकी आज्ञा मानना और उनका सम्मान करना। नटविद्या, शिल्पआजीविका आदिके कामोंमें लोगोंको लगाना चाहिए। दुनियामें भला आदमी बिना कर्मके भोग नहीं करता। लेकिन धर्मसे रहित कर्म भी नहीं करना चाहिए, मन्त्रीके स्थानमें कुल एवं बुद्धिसे हीन लोगोंको नहीं रखना चाहिए, हिंसक और दुष्ट लोगोंको ग्रामादिके पालनमें नहीं रखना चाहिए। अन्तःपुरमें प्रमादी और कामातुरों, लोभी और हाथ पसारनेवालोंको भाण्डागारकी रक्षामें नहीं रखना चाहिए। विस्तारसे क्या, दुष्ट परिवारसे राजा नाशको प्राप्त होता है, प्रतिवचनोंसे उसकी बुद्धिका प्रसार करना चाहिए, कलहमें परिजनोंका पुरुषार्थ गुण नहीं है। सहवाससे ही शीलको जानना चाहिए, व्यवहारसे ही पवित्रता जानी जाती है। राजाको चाहिए कि वह चर भेजकर यह जाने कि शत्रु कितना क्रुद्ध, लोभी, घमण्डी और भीरु है। साम, भेद, धन और दण्डके आनेपर, जो जिस योग्य हो वह उसके साथ शीघ्र करना चाहिए।

घत्ता—अपना कार्य, पराया कार्य और कार्याध्यक्षोंकी पवित्रताको जानना और मानना चाहिए। हे पुत्र, यही प्रभुत्व है ॥१०॥

११

पापबुद्धि रखनेवाले शत्रु राजाओंके प्रति प्रेषित चरपुरुषोंका प्रतिविधान किया जाये। स्वजनों, परिजनों और मित्रोंके लिए सन्तोषकर सम्मान दान देना चाहिए। जनताके दो प्रकारके उपसर्गोंको दूर करना चाहिए, तीन प्रकारका शक्ति सद्भाव (मन्त्र, उत्साह और प्रभु शक्ति) करना चाहिए। क्षयग्रस्त और उपेक्षितका भी विचार किया जाये, निग्रह और अनुग्रह दोनों किये जायें। शत्रु-मित्र और मध्यस्थका भी (राजा) विचार करे। सब नियोगोंमें शुद्धि दिखायी जाये (अर्थात् जिसे जो काम करना है, उसे वह काम दिखाया जाये), हृदयको गाम्भीर्यका सहारा लेना चाहिए। स्त्रियोंको देखकर उनमें कामुकता छोड़ दी जाये। चपलता और असमय गमन छोड़ दिया जाये, दुष्टकी संगति और दुर्व्यसनोंमें प्रवर्तन भी। नारी, जुआ, मदिरा और पशुबध ये चारों दारुण और काम उत्पन्न करनेवाले हैं। अन्यायसे धनका नाश नहीं करना चाहिए। तीखा दण्ड, कठोर भाषण और क्रोधका उत्पन्न होना—ये तीन व्यसन हैं जिन्हें मैं राजाओंके शासनमें जानता हूँ। इन सात बातोंको अधिकसे न किया जाये, छह प्रकारके अन्तरंग शत्रुओंको भी हृदयमें स्थान न दिया जाये।

घत्ता—मुइ कोहु वि मउ लोहु वि माणु हरिसु सहु कामें ।
गुरु घोसइ सिरि होसइ एयहु खयपरिणामें ॥११॥

१२

रचिता—एक्कंतरिउ मित्तु णिरंतरु[1] सत्तु भणंति सूरिणो ।
तासु महंति मंतु पहुपेसिय गूढा लिंगधारिणो ॥१॥
गूढ वि पडिगूढहिं जाणेवा जे विरुद्ध ते तहिं णिहणेवा ।
कीरइ कालि गमणु ववगयमलि आसणु बहुकणतणजलमहियलि ।
विग्गहु हीणें[2] अहव समाणें बलवंतेण संधि कयदाणें[3] ।
दुग्गासिएण[4] समाणु वि किज्जइ मित्तु वि पडिवक्खत्तु ण णिज्जइ ।
एम अलद्धउ लब्भइ मंडलु परिरक्खिज्जइ कय चिंतियफलु ।
उप्पाइज्जइ दव्वु पसत्थहं तं दिज्जइ अट्ठारहतित्थहं ।
तित्थहिं धरिउ रज्जु थिरु अच्छइ रायाइल्लउ खयहु ण गच्छइ ।
सामि अमच्चु रट्ठु धणु सुहि बलु भणु सत्तमउं दुग्गु हयपडिबलु ।
इउ सत्तंगु जेम्व णउ खिज्जइ तेम तणय वसुमइ पालिज्जइ ।
घत्ता—इय भाविउ सिक्खाविउ चक्कवट्टिलच्छीहरु ॥
णियजणणें णं तवणें वियसाविउ कमलायरु ॥१२॥

१३

रचिता[1]—गुणमणिकिरणपसरभरपसमिय[2]दुण्णयतिमिरमेलओ ।
हुउ वइसवणपवणजमससिरविहुयवहवरुणलीलओ ॥१॥
धम्मत्थेसु कुसलु तेयंसिउ हियमियमहुरभासि णिवसंसिउ ।
अपिसुणु वद्धुच्छाहु अरूसणु सुइ सुधीरु बलवंतु महासणु ।
मइदिहिहरु[3] समत्थु जिचिंदिउ सहसुप्पण्णबुद्धि जगवंदिउ ।
दूरालोउ अदीहरसुत्तउ पुरिसण्णउ पसण्णु गुरुभत्तउ ।
थिरु संभरणसीलु[4] णिम्मलवउ सच्छु[5] अजिभचित्तु[6] अइसूहउ ।
थूललक्खु मेहावि सयाणउ किं वण्णिज्जइ भारहराणउ ।
पुणु सव्वत्थविमाणहु आयउ वसहसेणु णामें संजायउ ।
जसवइदेविहि वीयउ णंदणु पुणु वि अणंतविजउ रिउमद्दणु ।
अवरु अणंतवीरु पुणु अच्चुउ[7] वीरु सुवीरु[8] मत्तकरिकरभुउ ।
घत्ता—गयभंगहं[9] चरिमंगहं पुण्णपहावपउण्णउं ॥
गुणजुत्तहं सउ पुत्तहं एवमाइ उप्पण्णउं ॥१३॥

---

१२. १. MBP णेरंतरु । २. MBPK दीणें । ३. M कयमाणें । ४. MBP दुग्गासिए संमाणु जि किज्जइ ।

१३. १. GK have दुवई for रचिता from this Kadavaka onwards to the end of the Samdhi, २. P पयसमिय । ३. B मइविहिहरु । ४. B संतरणसीलु । ५. MBP सक्कु । ६. B अजिभवित्तु । ७. BP अच्चउ but gloss in P अच्युतः । ८. MBP सुधीरु । ९. MBPT गयरंगहं ।

घत्ता—क्रोध, मद, लोभ, मान और कामके साथ हर्षको छोड़ो, गुरु घोषित करते हैं कि इनके नाशके फलस्वरूप श्री होगी।

१२

आचार्य कहते हैं कि राजाका मित्र निरन्तर रूपमें एक देशान्तरमें रहते हुए शत्रु हो जाता है। राजाके द्वारा प्रेषित विविध रूप धारण करनेवाले गूढ़पुरुष उसके रहस्यका भेदन कर देते हैं। गूढ़पुरुषोंको भी प्रतिगूढ़ पुरुषोंके द्वारा जानना चाहिए, और उनमें जो विरुद्ध हों उनको नष्ट कर देना चाहिए। निर्दोषकालमें (राजाको) गमन करना चाहिए। प्रचुर अन्नकण, तृण और जलसे भरपूर महीतलमें ठहरना चाहिए। हीन अथवा समान व्यक्तिके साथ युद्ध करना चाहिए, शक्तिशालीसे दान देकर सन्धि करनी चहिए, दुर्गाश्रितके साथ भी सन्धि करनी चाहिए, मित्र होते हुए भी शत्रुत्वको न जानने दिया जाये। इस प्रकार अलभ्य देशमण्डल प्राप्त कर लिया जाता है। उसके परिरक्षित होनेपर अभिलषित फल किया जाये। प्रशस्त लोगोंको धन दिया जाये। उन्हें अठारह तीर्थ भी दिये जायें। तीर्थोंसे राज्य स्थिर रूपसे रखा जाता है, और राज्यालय नष्ट नहीं होता। स्वामी, अमात्य, राष्ट्र, धन, सुधि, बल और कहो सातवाँ शत्रुबलका नाश करनेवाला दुर्ग। हे पुत्र, जिस प्रकार यह सप्तांग राज्यक्षयको प्राप्त न हो इस प्रकार वसुमतीका पालन करना चाहिए।

घत्ता—इस प्रकार चक्रवर्तीकी लक्ष्मीको धारण करनेवाले भरतको उसके अपने पिताने यह बात सिखायी, मानो सूर्यने कमलाकरको विकसित किया हो ॥१२॥

१३

गुणरूपी मणियोंकी किरणोंके प्रसारभारसे शान्त हो गया है दुर्नयोंका अन्धकारसमूह जिसका, ऐसा भरत, कुबेर, पवन, यम, शशि, सूर्य, अग्नि और वरुणकी लीलाओंके समान लीला वाला हो गया। धर्म और अर्थमें कुशल तेजस्वी, हित-मित और मधुर बोलनेवाला, राजाओं द्वारा प्रशंसनीय, सज्जन, उत्साहसे परिपूर्ण क्रोध रहित पवित्र धीर, बलवान्, गम्भीर, बुद्धि और धैर्यका घर, समर्थ, जितेन्द्रिय, प्रत्युत्पन्नमति, विश्ववन्द्य, दूरदर्शी, अदीर्घसूत्री, पुरुषविशेषज्ञ, प्रसन्न, गुरुभक्त, स्थिर, स्मरणशील, पवित्र, व्रती, स्वच्छ, अकलुषितचित्त, अत्यन्त सुभग, वदान्य, मेधावी और सयाने, भारतके उस राजाका क्या वर्णन किया जाये? उसके बाद सर्वार्थसिद्धि विमानसे आया वृषभसेन नामसे यशोवती देवीका दूसरा पुत्र हुआ, फिर और भी शत्रुका मर्दन करनेवाला—अनन्तविजय पुत्र हुआ। और भी अनन्तवीर्य, फिर अच्युत वीर-सुवीर मतवाले गजके समान भुजाओंवाला।

घत्ता—इस प्रकार उसके चरमशरीरी, अपराजित, पुण्यके प्रभावसे परिपूर्ण और गुणयुक्त सौ पुत्र उत्पन्न हुए ॥१३॥

१४

रचिता—घणथणयणवयणकरकमयलसयलावयवसोहिया ।
समियसविसयविरसविसवेइणि सीलसिरीपसाहिया ॥१॥
धीय सलक्खण कोमलगत्ती णक्खकंतिणिज्जियणक्खत्ती ।
जसवइसइसरीरि संभूई बंभी णामें अवर वि हुई ।
वियलियसोयहि भुंजियभोयहि पुणु वि सुणंदहि णंदियलोयहि ।
चुउ सव्वत्थसिद्धि परमेसरु हुउ मणहरु णं मरगयमहिहरु ।
सिसु अविपिक्कवंससुच्छायउ बालउ बाहुबलि वि तहि जायउ ।
तुच्छबुद्धि अप्पउ अवगण्णमि पहिलउ कामएउ किं वण्णमि ।
गज्जमाणजलहरजलणिहिसरु फलिहपईहथोरकरपंजरु ।
पुण्णमियंकवयणु जसइल्लरु सिरिकीलागिरिंदसमसुयसिरु ।
पुरकवाडपविउलवच्छत्थलु विससद्दूलखंधु अवियलबलु ।
दलियासामयगलगलसंखलु णीलणिद्धमउपरिमियकुंतलु ।
तणुमज्झप्पएसि रइरंगउ अंगें सहु जि अउव्वु अणंगउ ।
वियडणियंबु तंबबिंबाहरु उच्छुचावजीयासंधियसरु ।
घत्ता—णवजोव्वणि जायइ घणि पंचहिं तेहिं पयंडहिं ॥
पुरथीयणु कंपियमणु विद्धउ कोसुमकंडहिं ॥१४॥

१५

रचिता—पसरियमयणजलणहुयरसवससुसियंगेहिं कालिया ।
विलवइ चलइ घुलइ सुहयस्स कए तहिं का वि बालिया ॥१॥
का वि पलोयइ पयणियतुट्ठिहिं मउलियललियहिं वलियहिं दिट्ठिहिं ।
का वि पएसु पडंती दीसइ का वि सविणय किं पि संभासइ ।
का वि भणइ दिज्जउ आलिंगणु जइ मेल्लेसइ मेरउ प्रंगणु ।
ता होसइ तुह तायहु केरी आण सुरिंदभयाइं जणेरी ।
चंचलि चेलंचलइ विलग्गइ क वि सोहग्गभिक्ख तहिं मग्गइ ।
कंठाहरणउं रयणणिउत्तउ का वि देइ कंकणु कडिसुत्तउ ।
तग्गयणयण णियइ अवचित्ती क वि जामायहु साइउं देंती ।
क वि तेल्लेणं पाय पक्खालइ धूवइ दुद्धु तक्कु ण णिहालइ ।
दोरि विलंबिउ क वि भीभूयइ घडु मण्णंति घिवइ सिसु कूवइ ।
काइ वि जोयंतिइ मयरद्धउ वच्छु भणिवि घरि मंडलु बद्धउ ।
काहि वि णीवीबंधणु ढलियउ पेम्मसलिलु ऊरूयलि गलियउ ।

---

१४. १. MB °कणयवयण° । २. MB °विरसवेइणि । ३. P सालसिरी° । ४. MB °पहासिया । ५. M °गिरिवरु । ६. MBP °सच्छायउ । ७. MBP कामदेउ । ८. M °गलगयसंखलु । ९. P °कोंतलु ।

१५. १. MBP चवइ । २. MPK चलियहिं । ३. MBP मेल्लेसहि । ४. MBP पंगणु । ५. M तिल्लोण । ६. MEP दोर° । ७. B कविलीभूयइ । ८. P उरुयायलि ।

१४

जो सघन स्तन, नयन, मुख, कर और चरणतल आदि समस्त अंगोंसे शोभित है, जिसने अपने विषयरूपी विषकी विरस वेदनाको शान्त कर दिया है, और जो शीलरूपी लक्ष्मीसे शोभित है.ऐसी अपनी नखकान्तिसे नक्षत्रोंको जीतनेवाली, सुलक्षणा, कोमल शरीरवाली, ब्राह्मी नामकी एक और कन्या यशोवती सतीके शरीरसे जन्मी। शोकसे रहित भोगोंको भोगनेवाली, लोकको आनन्दित करनेवाली सुनन्दासे, सर्वार्थसिद्धिसे च्युत सुन्दर परमेश्वर (बाहुबलि) हुए, मानो पन्नोंका महीधर हो। नहीं पके हुए बाँसके समान कान्तिवाला शिशु बालक बाहुबलि वहाँ उत्पन्न हुआ। मैं अपने-आपको तुच्छ बुद्धि मानता हूँ। पहले कामदेवका क्या वर्णन करूँ। गरजते हुए मेघ और समुद्रके समान जिनका स्वर है, जिनके हाथ अर्गलाके समान दीर्घ और लम्बे हैं, जिनका मुख पूर्णचन्द्रके समान है, जो यशके कल्पवृक्ष हैं, जिनके हाथ और सिर लक्ष्मीके क्रीड़ागजके समान हैं, जिनका वक्षस्थल नगरके किवाड़ोंकी तरह विशाल है, जिनके कन्धे वृषभ और सिंहके समान हैं, जिनका बल अस्खलित है, जिन्होंने आशारूपी मदगजोंके गलेकी शृंखला चकनाचूर कर दी है, जिनके केश नीले स्निग्ध कोमल और परिमित हैं, जिनके शरीरके क्षीण मध्य प्रदेशमें रतिकी रंगभूमि है, जो अंग (शरीर) के होते हुए भी अपूर्व अनंग (कामदेव) हैं। जिनके नितम्ब विकट हैं, बिम्बारूपी अधर आरक्त हैं, जो इक्षुदण्डके धनुष और डोरीपर सर सन्धान करनेवाले हैं।

घत्ता—(ऐसे बाहुबलिके) सघन नवयौवनमें आनेपर, (कामदेवके) उन पाँच प्रसिद्ध प्रचण्ड बाणोंसे, कम्पित मनवाली नगर स्त्रियाँ बिद्ध हो उठीं ॥१४॥

१५

जो फैलती हुई कामरूपी आगके रस (प्रेम) से शोषित अंगोंसे काली हो चुकी है, ऐसी कोई बाला अपने प्रियके लिए विलाप करती है, चलती है, गिरती है। कोई सन्तोष उत्पन्न करनेवाली कोमल सुन्दर मुड़ती हुई नजरोंसे देखती है। कोई पैरोंपर गिरती हुई दिखाई देती है, कोई विनयपूर्वक कुछ भी कहती है। कोई कहती है कि मुझे आलिंगन दो, यदि तुम मेरा आँगन छोड़ोगे तो तुम्हें पिताकी देवेन्द्रोंके लिए भयोंको उत्पन्न करनेवाली कसमें हैं। कोई चंचला वस्त्रांचलसे लग जाती है और वहाँ सौभाग्यकी भीख माँगती है। कोई रत्नोंसे बना कण्ठाभरण, कंकण और कटिसूत्र देती है, कोई उद्भ्रान्त मन होकर उनमें नेत्र लीन करके देखती है, कोई जामाताको आलिंगन देती है; कोई तेलसे पैरोंका प्रक्षालन करती है, कोई (कढ़ीके लिए) दूधको बघार देती है वह छाँछ नहीं देख पाती, कोई रस्सीसे लटके हुए बालकको घड़ा समझते हुए भयानक कुएँमें डाल देती है; कामदेवको देखते हुए किसीके द्वारा बछड़ा समझकर कुत्तेको घरमें बाँध लिया गया। किसीका नीवी बन्धन खिसक गया, और प्रेमजल हृदयतलपर फैल गया।

घत्ता—पइ भल्लउं कउवल्लउं का वि देइ करि णेउरु ॥
उद्दामें इय कामें संताविउ सयलु वि पुरु ॥१५॥

१६

रचिता—कुलधणसयणमोहमाणुण्णइवीलाहरणववसियं ।
इसिवयमिव वहंति[1] रमणीयउ जस्स सिणेहविलसियं ॥१॥

जिह जिह सुंदरु खेल्लइ रच्छइ तिह तिह हियवउ हरइ वरच्छहिं ।
सोम्मुं[2] सुदंसणु पढसु कुमारउ पेच्छंतिइ बाहुबलि कुमारउ ।
काइ वि कउ कवोलि करु कोमलु तणुतावेण कढइ सरकोमलु ।
काहि वि विरहसिहिं[3] पउलिउ पलु धवलु वि कमलु हुवउ णीलुप्पलु ।
सहइ कामु महुसमयागमणें णिहय का वि पियसमयागमणें ।
मउलिय फुल्लिय मल्लिय काणणि मंडणुं[4] देइ पुरंधि ण काणणि ।
णिग्गय पल्लव णवसाहारहु मुयइ तत्ति विरहिणि साहारहु ।
पइ मेल्लेप्पिणु लवइ व कोइल सुहयत्ते किर भूसइ को इल ।
मुहमरुपरिमलमिलियसिलिम्मुह जे ते णं कंदप्पसिलिम्मुहं[5] ।
का वि चवइ पिय हउं तुह रत्ती अज्जु गइय महु दुक्खें रत्ती ।
का वि भणइ पिय करि केसग्गहु वियलउ मालइकुसुमपरिग्गहु ।
का वि कहइ लइ चुंवहि वयणउं अवरु मं[6] देहि किं पि पडिवयणउं ।

घत्ता—णउ मेल्लइ कवि बोल्लइ म करहि काइं वि विप्पिउ ॥
घरु वित्तु वि णियचित्त वि सयलु वि तुज्झु समप्पिउ ॥१६॥

१७

रचिता—क वि रुणुरुणइ किं पि सुइसुहयरु भणरुहविसिहसल्लिया ।
पिययमवयणकमलरसलंपडि तरुणीमहुयरुल्लिया ॥१॥

जो सूहउ महिलहिं माणिज्जइ कंदप्पु जि पुणु कहु उवमिज्जइ ।
गब्भि सुणंदहि रूवरवण्णी तासु बहिणि अवर वि उप्पण्णी ।
णवजोव्वणि चडंति सा छज्जइ चंदु कलंकें वयणहु लज्जइ ।
रत्तुप्पलु पयसोहइ जित्तउ तेण वि अप्पउ सलिलि णिहित्तउ ।
भूवंकत्तणु थणथड्डत्तणु अहरहु केरउ अइराइत्तणु[1] ।
पडिआयहं दंतहं धवलत्तणु जणमारण णयणहुं मि चलत्तणु ।
तुच्छोयरवासिहि गंभीरिम णाहिहि अवरु णियंबहु वड्डिम ।
कंचीदामएण[2] दढबंधहु रहियंगहु परलोयविरुद्धहु ।
सीसारूढकेसकुडिलत्तणु पुरिसोवरि माणसकढिणत्तणु ।

---

१६. १. B हंति । २. MBP सोमु । ३. P विरहसिहिहिं । ४. B मंडलु । ५. K सिलीमुह । ६. MBP ॰ किं पि देहि ।

१७. १. M अइरत्तत्तणु; BP अइरायत्तणुं । २. M कंचीदामणएण ।

घत्ता—कोई पैरमें सुन्दर कड़ा और हाथोंमें नुपुर देती है। इस प्रकार सारा नगर मानो कामके द्वारा सताया गया ॥१५॥

१६

जिसमें कुलधन, स्वजन, मोह, मान, उन्नति और व्रीड़ा (लज्जा) के अपहरणकी चेष्टा है, ऐसे उसके स्नेह विलासको स्त्रियाँ मुनिव्रतकी तरह धारण करती हैं। वह सुन्दर कुमार गलीमें ज्यों-ज्यों खेलता है, वैसे-वैसे हृदयका अपहरण करता है, सौम्य सुदर्शन उस प्रथम कुमार बाहुबलिको देखती हुई किसीके द्वारा गालपर किया गया कोमल कर शरीरके सन्तापसे सरोवर जल निकालता है। विरहकी ज्वालासे किसीका मांस दग्ध हो गया। और धवल कमल भी नीलकमल हो गया। वसन्त माहके आ जानेपर भी कोई स्त्री कामको सहन करती है, कोई प्रियके आगमनपर भी (मानके कारण) आहत है। कानन (जंगल) में मुकुलित जुही खिल गयी है, कोई स्त्री मुखपर मण्डन नहीं करती। नव-सहकार वृक्षके पल्लव निकल आये हैं, विरहिणीने सहकारमें अपनी शान्तिका त्याग कर दिया है। पतिको छोड़कर कोयल आलाप करती है, सुन्दरतामें (सुभगत्व) कौन धरतीको विभूषित करता है? मुख पवनकी सुगन्ध (परिमल) से मिले हुए जो भ्रमर हैं, वे मानो कामदेवके बाण हैं। कोई कहती है—"हे प्रिय, मैं तुममें अनुरक्त हूँ, आज मेरी दुःखमें रात बीती है।" कोई कहती है, "हे प्रिय, तुम मेरे बालोंको बाँध दो, बँधा हुआ मालतीका फूल गिर गिया है।" कोई कहती है, "लो शीघ्र मुख चूम लो और किसीको तुम प्रतिवचन नहीं देना।"

घत्ता—कोई उसे नहीं छोड़ती और कहती है, "कोई भी बुरी बात मत करना। घर, धन और अपना वित्त भी सब कुछ तुम्हें समर्पित करती हूँ" ॥१६॥

१७

प्रियतमके मुखरूपी कमलके रसकी लालची कोई तरुणीरूपी भ्रमरी कानोंको सुख देनेवाला कुछ भी गुनगुनाती है, जो सुन्दर कामदेव महिलाओंके द्वारा माना जाता है उसकी उपमा किससे दी जाय? सुनन्दाके गर्भसे, रूपमें रमणीय उसकी एक बहन और उत्पन्न हुई; नवयौवनमें चढ़ती हुई वह अत्यन्त शोभित है; कलंकके कारण चन्द्रमा उससे लज्जित होता है। उसने चरणोंकी शोभासे रक्तकमलको जीत लिया है, इसी कारण उसने अपनेको पानीमें छिपा लिया। भौंहोंका टेढ़ापन, स्तनोंकी कठिनता, अधरोंकी अतिलालिमा, एक बार गिरनेके बाद आये हुए दाँतोंकी धवलिमा और नेत्रोंकी चंचलता लोगोंको मारनेवाली है। उसके तुच्छ उदरके बीचमें रहनेवाली नाभिकी गम्भीरता, तथा सोनेकी जंजीर (करधनी) से दृढ़ताके साथ बँधे हुए परलोकविरोधी (परलोककी साधना करनेवालोंके लिए बाधक) और आच्छादित नितम्बोंकी बढ़ती; सिरपर उगे हुए केशोंकी कुटिलता, पुरुषोंके ऊपर मानसकी कठिनता, देख लिया है दोष जिसने ऐसा (व्यक्ति) अवश्य अमध्यस्थ (पक्षपात करनेवाला) होता है, उसका मध्य (भाग) इसीलिए अमध्यस्थकी

दिट्ठदोसु अवसें असमेहलु मज्झु अमज्झत्थु व हुउ दुब्बलु ।
तुंगपयोहरविलुलियघणघण चलहारावलिमोत्तिय जलकण ।
सिंचिय तेहिं णाइं मइ सीसइ रोमराइ णववेल्लि व दीसइ ।
इय रूवें जगणारिहिं सुंदरि जाणिवि ताएं कोक्किय सुंदरि ।
घत्ता—एक्कुत्तरु रणदुद्धरु सउ तणयहं दुइ धूयउ ॥
कयसेट्ठिहिं परमेट्ठिहिं जायउ अणुवमरूवउ ॥१७॥

१८

रचिता—जयवइजणणचरणमूलम्मि महारिउवंदमइणा ।
बहुसुयणियरधरणपरिणयमइ जाया सयलणंदणा ॥१॥
भावें णमसिद्धं पभणेप्पणु दाहिणवामकरेहिं लिहेप्पिणु ।
दोहिं मि णिम्मलकंचणवण्णहं अक्खरगणियइं कहियइं कण्णहं ।
अत्थें सद्देण वि सोहिल्लउ गद्दु अगद्दु दुविहु कव्वुल्लउ ।
सक्कउ पायउ पुणु अवहंसउ वित्तउ उप्पाइउ सपसंसउ ।
सत्थकलासिउ संग्गणिबद्धउ णाडउ अक्खाइय कहरिद्धउ ।
अणिबद्धउ गाहाइउ अक्खिउ गेयवज्जलक्खणु वि णिरिक्खिउ ।
बंभें सइं वक्खाणिउं जं जिह कुंअरीजुयलें बुज्झिउ तं तिह ।
सुयहं महंतु कहंतु अणेयइं विण्णाणइं णाणइं बहुभेयइं ।
एम भडारउ अच्छइ जइयहुं भग्गी पय दुक्कालें तइयहुं ।
घत्ता—अविवेइय घरु आइय चवइ विणेण णिरिक्खिय ॥
पहु दहविह सुरमहिरुह अवसप्पिणियइ भक्खिय ॥१८॥

१९

रचिता—सयमहवियडमउडतडमणिगणवियलियविमलवारिणा ।
धुयकमकमलजुयल परमेसर पइं मि महारिवारिणा ॥१॥
कप्पंघिवविणासि संहारहु णउ परिरक्खिय भुक्खामारहु ।
जिण्णइं अंबराइं मलमलिणइं कालें विहडियाइं आहरणइं ।
तणु लायण्णु वण्णु परिल्हसियउ जढरहुयासें रुहिरु वि सुसियउ ।
लग्गणखंभु अण्णु को अम्हहं एवहिं सरणु पइट्ठा तुम्हहं ।
असणवसणभूसणसंपत्तिहि भवणजाणसयणासणजुत्तिहि ।
णिहिलकलाविसेससंपत्तिहि करि णिच्चिंत असेसहि वित्तिहि ।
तं णिसुणेवि जायकारुण्णें देवें पउरणाणसंपण्णें ।

३. B ताइएं । ४. MBP धीयउ ।

१८. १. MBP °विंद° । २. MBP सग्गि णिबद्धउ । ३. MBP कहरुद्धउ । ४. MBP गेयवज्जु लक्खणु । ५. MBP कुमरी° ।

१९. १. MBP° दारिणा । २. MB संघारहु but PGKT संहारहु । ३. MBP को वि ण उ अम्हहं । ४. K णिप्फत्तिहि । ५. P णिच्चंत ।

तरह दुर्बल हो गया। उसके पयोधर (स्तन) सघन मेघोंको लुण्ठित कर देनेवाले हैं, उसकी मोतियोंकी चंचल हारावली जलकणोंके समान है। उनके (मोतीरूपी जलकणों) द्वारा सींची गयी रोमराजि, नयी लताके समान दिखाई देती है, ऐसा मेरे द्वारा कहा जाता है। इस रूपसे विश्व-नारियोंमें सुन्दर मानकर पिताने उसका नाम सुन्दरी रख दिया।

घत्ता—इस प्रकार युद्धमें दुर्धर अनूपम रूपवाले एक सौ एक पुत्र और दो कन्याएँ सृष्टिके विधाता परमेष्ठी ऋषभनाथके उत्पन्न हुए ॥१७॥

१८

महाशत्रुओंके समूहका मर्दन करनेवाले सभी पुत्र विश्वपति पिताके चरणोंके मूलमें, अनेक शास्त्रसमूहके धारण (अभ्यास) से परिणत बुद्धिवाले हो गये। भावपूर्वक सिद्धोंको नमस्कार कर दायें और बायें हाथसे लिखकर अक्षरोंकी गणना उन्होंने निर्मल स्वर्ण वर्णकी कन्याओंको बता दी। अर्थसे और शब्दसे भी शोभित गद्य और अगद्य, दो प्रकारका काव्य, संस्कृत, प्राकृत और फिर अपभ्रंश, प्रशंसनीय उत्पाद्य वृत्त, शास्त्र और कलाओंसे आश्रित सर्गबद्ध काव्य (प्रबन्ध काव्य), नाटक और कथासे समृद्ध आख्यायिका, अनिबद्ध गाथादि, मुक्तक काव्य कहा। गेय और वाद्योंके भी लक्षणोंको देखा। आदिनाथने स्वयं जिस रूपमें व्याख्या की, दोनों कुमारियोंने उसे उस रूपमें ग्रहण कर लिया। अनेक शास्त्रों, बहुभेदवाले ज्ञान-विज्ञानोंकी व्याख्या करते हुए महान् और आदरणीय आदिनाथ जब इस प्रकार रह रहे थे कि तभी प्रजा दुष्कालसे भग्न हो गयी।

घत्ता—नहीं जानते हुए वह (उनके) घर आकर कहती है कि 'हे प्रभु, अवसर्पिणीने दस प्रकारके कल्पवृक्ष खा लिये हैं।' जिनेन्द्रने इसे देखा ॥१८॥

१९

इन्द्रके विकट मुकुटतटके मणिगणोंसे झरते हुए पवित्र जलसे धोये गये हैं चरणकमल-युगल जिनके, ऐसे हे परमेश्वर, महान् शत्रुओंका निवारण करनेवाले आपने भी, कल्पवृक्षोंके नष्ट होनेपर, प्रलय और भूखरूपी मारीसे हमारी रक्षा नहीं की। वस्त्र मलसे मैले और जीर्ण हो चुके हैं, समयके साथ आभरण नष्ट हो चुके हैं, शरीरका लावण्य और वर्ण चला गया है, पेटकी आगसे खून भी सूख गया है। इस समय हमारा आधारस्तम्भ कौन है? हम आपकी शरणमें आये हैं। अशन, वसन, भूषण और सम्पत्तियोंवाली समस्त वृत्तियोंसे हमें निश्चिन्त करिए। यह

करिसणकरणु धरणु मयणिवहहं हरिकरिमेसमहिसविसकरहंहं ।
पडु घडु भोयणु भायणु रंजणु घरु पर्यणविहि पीढु मणरंजणु ।
सेज्ज सरीरताणु जलंधारणु हारु दोरु केऊरु सकंकणु ।
असि मसि सिप्पु वि जं जिह जेहउ अक्खिउ लोयहु तं तिह तेहउ ।
घत्ता—परमेसरु [10]सुधरियघरु आइपुरिसु कमलासणु ॥
जगु पेसिवि संतोसिवि पालइ खत्तियसासणु ॥१९॥

२०

रचिता—अवर वि भणिय वणियवर हलहर सुयरियकहियकुलवहा ।
जड परिवंडियधम्म चंडाल ति पयडियविविहर्पसुवहा ॥१॥
लेहउ लोहयारु कुंभारु वि तिलपीलउ मालिउ चम्मारु वि ।
जेहिं जं जि णियकम्मु पयासिउ ताह तं जि कुलदेवें भासिउ ।
पल्लव सेंधव कोंकण कोसल टक्का हीर कीर खस केरल ।
अंग कलिंग गंगं[3] जालंधर वच्छ जवण कुरु गुज्जर वर्ज्जर ।
दविड गउड कण्णाउ धराड वि पारस पारियाय पुण्णाड वि ।
सूर सुरट्ठ विदेहा लाड वि कोंग बंग मालव पंचाल वि ।
मागह जट्ट भोट्ट णेवाल वि उड्ड पुंड हरि कुरु मंगाल वि
देवमाउसासुब्भव ससलिल साहारण अणूव पर जंगल ।
गिरितरुसरिदुग्गेहिं दुसंचर अडइदेस वसिकयधर ससवर ।
घत्ता—वइधरियहिं वणहरियहिं महि सोहइ चउपासिहिं ॥
कयँगामहिं आरामहिं छेत्तहिं एक्कदुकोसहिं ॥२०॥

२१

दुवई[1]—चउविहगोउराइं चउदारइं णयरइं भूमिभूसणो ।
कारावइ पुराइं पुरुएव[2]जिणो सुरिंद[3]दिण्णपेसणो ॥१॥
खेडइं थियदुवासगिरिसरियइं कव्वडाइं महिहरपरियरियइं ।
पंचगार्वसयसहियमडंबइं रयणजोणिपट्टणइं अउव्वइं ।
दोणामुहइं जलहितीरत्थइं संवाहणइं अहिसिहरत्थइं ।
सुणिरूवियसविणयसेवायर वइरायरपहुइ जे आयर ।
पयणियरायसुरिंदाणंदें ते रक्खाविय कुलयरवंदें ।

---

६. K °संपुण्णें । ७. M °वस° । ८. MBP परियणु वि । ९. MBT जलवारणु, but T records a *p* जलधारणु and remarks 'जलवारणु छत्रम्, अथवा जलधारणु वापीकूपतडागादिकम्' । १०. MBP सुचरियघरु ।

२०. १. K पडिवडिय° । २. P °पसुविहा; MB °वसुवहा । ३. MBP वंग । ४. MBP बब्बर । ५. MBP भट्ट । ६. MBP वसिकयवर । ७. MB कयगामिहिं । ८. MBP खेत्तहिं ।

२१. १. MBP call this couplet रचिता; GK call it दुवई which it is. २. MB पुरएव° । ३. B सुरवरदिण्णपेसणो । ४. MBP °गाम° । ५. K कुवलयचंदें ।

सुनकर उत्पन्न हुई है करुणा जिन्हें ऐसे प्रचुर ज्ञानसे सम्पूर्ण देवने खेती करना, घोड़ा-हाथी-मेष-महिष-वृषभ और अरण्य आदि पशुओंकी रक्षा करना, पट, घट, भोजन, भाजन, रंजन और घर बनानेकी विधि, सुन्दर पीठशय्या, कवच, हार, दोर, कंचन सहित केयूर, असि-मषि आदि कर्म जो जिस प्रकार थे, उसकी वैसी व्याख्या की।

घत्ता—धरतीको अच्छी तरह धारण करनेवाले आदिपुरुष ब्रह्म वह परमेश्वर विश्वको (जनोंको) सन्तुष्ट कर और भेजकर क्षत्रिय शासनका पालन करने लगते हैं।

२०

और भी अच्छे चरितवाले तथा कुलपथका कथन करनेवाले वणिक् और किसान कहे जाते हैं। धर्मसे पतित तथा तरह-तरहके पशुवधको प्रकट करनेवाले जड़ चाण्डाल भी। लेखक, लुहार, कुम्हार, तेली और चमार भी। जिन लोगोंने अपना जो कर्म प्रकाशित किया है, कुलदेव ऋषभने उन्हें वही घोषित कर दिया। पल्लव, सैन्धव (सिन्धु), कोंकण, टक्क, हीर, कीर, खस, केरल, अंग, कलिंग, जालन्धर, वत्स, यवन, कुरु, गुर्जर, वज्जर, द्रविड़, गौड, कर्णाटक, वराट, पारस, पारियात्र, पुन्नाट, सूर, सौराष्ट्र, विदेह, लाड, कोंग, वंग, मालव, पंचाल, मागध, जाट, भोट, नेपाल, औण्ड्र, पुण्ड्र, हरि, कुरु, मंगाल, देवमातृक धान्य उत्पन्न करनेवाले, जलसहित धान्य उत्पन्न करनेवाले, साधारण (दोनों प्रकारके) अनूप और जंगली देश। पहाड़, वृक्षों और दुर्गोंसे दुर्गम, धराको अधीन करनेवाले शबरों सहित अटवी देश।

घत्ता—वृत्तियों और वनोंको धारण करनेवाले चारों ओरके पार्श्वभागोंसे रचित ग्रामों, उद्यानों, एक-दो कोसवाले क्षेत्रोंसे धरती शोभित है ॥२०॥

२१

भूमिके भूषण तथा इन्द्रको दी है आज्ञा जिन्होंने ऐसे पुरदेव जिनने चार प्रकारके गोपुर और द्वारवाले नगर और पुरोंकी रचना करवायी। नदियों और पर्वतोंसे दो ओरसे घिरे हुए खेड़े, पहाड़ोंसे घिरे हुए कव्वड ग्राम, गाँवों सहित मण्डप, रत्नोंकी खदानवाले अपूर्व पट्टन, समुद्रोंके तीर्थोंपर स्थित द्रोणमुख, पर्वतोंके शिखरोंपर स्थित संवाहन तथा अच्छी तरह निरूपित और सविनय सेवामें तत्पर वेराट प्रभृति जो खदानें हैं उनकी, राजाओं और इन्द्रोंको आनन्द

वण्णचउक्कमग्गु उवएसिउ दंडें दोसु असेसु पणासिउ।
तिहुयणरायहु महिरावत्तणु कवणु गहणु तहु मणुयपहुत्तणु।
कम्मभूमिसंपय दरिसंतहु कणयरयणधारहिं वरिसंतहु।
पुव्वहुं वीस लक्ख गय जइयहुं बद्धु पट्टु जगणाहहु तइयहुं।
णाहिणरिंदामरसंघायहिं कच्छमहाकच्छाहिवरायहिं।

घत्ता—सिंहासणि णिवसासणि आसीणउ परमेसरु॥
जयसिरिसहि पालइ महि बहुहलहरउवणीयकरु॥२१॥

२२

रचिता—हयमलचरणकमलजुयणिवडियविसहरखयरभूयरो।
अकलुसतियसतरुणिकरपल्लवचालियचारुचामरो॥१॥

भोयविरामि छुहवेविरतणु उड्डियकरयलु णीसेसु वि जणु।
घरि उच्छुरसु पियहुं जेणायउ पहु इक्खाउवंसु तें जायउ।
सोमप्पहु कोक्किउ कुरुराणउ सो जायउ कुरुवंसपहाणउ।
हरि हरिकंतु कहि वि हरिवंसहु कउ पुरिमिल्लु[1] पुरिसु सपसंसहु।
कासवु मघवु भणेप्पिणु घोसिउ उग्गवंसमूलिल्लु[2] पयासिउ।
अवरु अकंपणु सिरिहरु भाणिउ णाहवंसि सो पहिलउ जाणिउ।
चोइहमयकुलयरपियणंदणु[3] मरुएवीमणणयणाणंदणु।
फणिवरसिरमणिहयपयणेउरु सकलत्तउ सपुत्तु संतेउरु।
कहियणरेसरकुलहिं[4] विराइउ अच्छइ रज्जु करंतु लहाइउ।

घत्ता—पय पालइ दक्खालइ णायमग्गु भाभासुरु॥
सिरिअरुहें सहुं भरहें पुप्फयंतु रिसहेसरु॥२२॥

इय महापुराणे तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारे महाकइपुप्फयंतविरइए महाभव्वभरहाणुमण्णिए महाकव्वे आइदेवमहारायपट्टबंधो णाम पंचमो परिच्छेओ सम्मत्तो॥ ५॥

॥ संधि ॥ ५॥

---

२२. १. MBP पुरमिल्लु। २. MBP उग्गवंसु। ३. MBP चउदह°: ४. M °णरेसरकुलेहिं; K णरेसकुलेहिं।

देनेवाले कुलकर चन्द्र ऋषभने रक्षा करवायी। वर्णोंके चार मार्गका उपदेश किया। दण्डविधान-से अशेष दोषको नष्ट कर दिया। उन त्रिभुवन राजाको धरतीका राजत्व प्राप्त था, मनुष्योंकी प्रभुता प्राप्त करनेमें कौन-सी बात थी। इस प्रकार कर्मभूमिकी सम्पदाको दिखाते हुए, स्वर्ण और धनकी धाराओंको बरसाते हुए जब बीस लाख पूर्व वर्ष बीत गये तब जगनाथको नाभिराजा अमरसमूह कच्छ-महाकच्छ राजाओंके द्वारा राजपट्ट बाँधा गया।

घत्ता—सिंहासन और नृप-शासनमें आसीन परमेश्वर, जिन्हें बहुत-से हलधर कर देते हैं, जो जय और लक्ष्मीकी सखी धरतीका पालन करते हैं ॥२१॥

२२

जिनके निर्मल चरणोंमें विषधर, विद्याधर और मनुष्य प्रणत होते हैं, और जिनपर पवित्र देवस्त्रियाँ अपने करपल्लवोंसे चमर ढोरती हैं, ऐसे वह ऋषभ धरतीका पालन करते हैं। भोगभूमिके समाप्त होनेपर भूखसे कम्पित शरीर समस्त जन अपने करतल उठाकर, जिस कारणसे घरपर इक्षुरस पीनेके लिए आये थे, उससे प्रभुका वंश इक्ष्वाकुवंश हो गया। सोमप्रभुको कुरुका राणा कहा गया इसलिए वह कुरुवंशका प्रधान हो गया। हरिको हरिकान्त कहकर उन्हें प्रशंसनीय हरिवंशका प्रथम पुरुष बना दिया गया। कश्यपको मघवा कहकर पुकारा गया और इस प्रकार उग्रवंशके मूलको प्रकाशित किया गया। और अकम्पनको श्रीधर कहा गया, नाथवंशमें उसे पहला जानो। चौदहवें कुलकरके प्रियपुत्र, और मरुदेवीके मन और नेत्रोंको आनन्द देनेवाले, नागराजके शिरोमणिसे आहत हैं पदनूपुर जिनके, ऐसे आदरणीय वे कलत्र, पुत्र और अन्तःपुरके साथ तथा पूर्वकथित नरेश्वरकुलोंसे शोभित राज्य करने लगे।

घत्ता—आभासे भास्वर ऋषभेश्वर लक्ष्मीसे योग्य भरतके साथ प्रजाका पालन करते हैं उसे न्यायका मार्ग दिखाते हैं ॥२२॥

इस प्रकार त्रेसठ पुरुषोंके गुणों और अलंकारवाले इस महापुराणमें महाकवि पुष्पदन्त द्वारा रचित एवं महाभव्य भरत द्वारा अनुमत महाकाव्यका आदिदेव महाराज-पट्टबन्ध नामका पाँचवाँ परिच्छेद समाप्त हुआ ॥५॥

संधि ६

अण्णहिं दिणि सभवणि सुरवरहिं संथुउ संपयगारउ ।
फणिदणुयहिं मणुयहिं सेवियउ थिउ अत्थाणि भडारउ ॥१॥ ध्रुवकं॥

१

मलयविलसिया—कंचणघडियइ मणिगणजडियइ ।
हरिवरधरियइ पहविप्फुरियइ ॥१॥
आसणि आसीणउ परममपहु अम्हहिं किं वण्णिज्जइ रिसहु ।
दिण्णइं चोउरिपट्टासणइं [2]सुविचित्तदित्तवेत्तासणइं ।
रयणंचियाइं लोहासणइं दंडुण्णयाइं दंडासणइं ।
एक्केक पहाणा [3]खणि मिलिय तहिं संणिसण्ण बहु मंडलिय ।
कु वि णरवइ घुसिणें समलहिउ णं सिरिकामिणिराएं गहिउ ।
कु वि दीसइ चंदणधूसरिउ पंडुरु णं णियजसेण भरिउ ।
मयणाहिविलित्तउ को वि णरु ससिरविभीयउ धरइ व तिमिरु ।
णिवि कहिं मि घुलइ हारावलिय कसणइ णं जलहरि विज्जुलिय ।
कासु वि पडंति चमरइं चलइं णं कित्तिसुभिसिणिहि सयदलइं ।
कप्पूरधूलिबहलुच्छलइं रुणुरुंटइ तहिं महुयरु घुलइ ।
सो केण वि एंतु णिवारियउ तंबोलउ पाणि पसारियउ ।
घत्ता—खगसामिहिं कामिहिं सयलहि वि वंदारयवंदियणहिं ॥
पणवंतहिं संतहिं रइणिवहिं जहिं विरोहु मणिकिरणहिं ॥१॥

२

मलयविलसिया—जत्थ णिसण्णो पणयपसण्णो ।
सिंगारहरो रामाणियरो ॥१॥
णियमंति जणं जहिं भत्तियर कड्ढियहर [1]परपडिहारणर ।
पहुअग्गइ सेवादूसणउं णिट्ठीवणु जिंभणु पहसणउं ।

MBP give, at the commencement of this Samdhi, the following stanza:

श्रीवाग्देव्यै कुप्यति वाग्देवी द्वेष्टि संततं लक्ष्म्यै ।
भरतमनुगम्य सांप्रतमनयोरात्यन्तिकं प्रेम ॥

GK do not.

१. १. MBP चाउरिवित्तासणइं । २. MBP सुविदित्तपट्टासणइं । ३. G खणमिलिय । ४. MBPT कु वि णिवरु । ५. MBP कामिहिं कामिणिहिं । ६. P रुइणिवहिं ।

२. १. MBP वर° ।

सन्धि ६

दूसरे दिन अपने भवनमें, सुरवरोंसे संस्तुत, सम्पत्तिका विधाता, नागों और दानवों तथा मनुष्योंके द्वारा सेवित आदरणीय ऋषभ दरबारमें स्थित थे।

१

स्वर्णनिर्मित मणिसमूहसे विजड़ित, प्रभासे भास्वर सिंहासनके आसनपर आसीन परम-प्रभु ऋषभका हमारे द्वारा क्या वर्णन किया जाये? गादीके आसन, विचित्र चमकते हुए वेत्रासन, रत्नोंसे जड़ित लोहासन और दण्डोंसे उन्नत दण्डासन दे दिये गये। एकसे एक प्रमुख राजा क्षण भरमें इकट्ठे हो गये, और बहुत-से माण्डलीक राजा वहाँ आकर बैठ गये। कोई राजा केशरसे चर्चित है मानो लक्ष्मीरूपी कामिनीके अनुरागसे अधिगृहीत है। कोई राजा चन्दनसे धूसरित सफेद दिखाई देता है मानो अपने ही यशसे भरा हुआ हो। कस्तूरीसे विलिप्त कोई राजा ऐसा जान पड़ता है कि जैसे सूर्य और चन्द्रमाके डरसे अन्धकारको धारण कर रहा है। किसी राजापर हारावली इस प्रकार व्याप्त है, मानो काले बादलमें बिजली हो। किसीपर चंचल चमर पड़ रहे हैं, जो ऐसे लगते हैं मानो कीर्तिरूपी कमलिनीके दल हों। उस दरबारमें कपूरकी प्रचुर धूल उड़ रही है, जिसमें मधुकर गुनगुनाता हुआ मँडरा रहा है। किसीने आते हुए उसे हटा दिया और पानके लिए अपना हाथ फैलाया।

घत्ता—जहाँ विद्याधर स्वामियों, कामना रखनेवाले समस्त देवरूपी बन्दियों, तथा प्रणाम करते हुए रतिसमूहों (?) और मणि-किरणोंमें विरोध है (??) ॥१॥

२

जहाँ प्रणयसे प्रसन्न शृंगार धारण करनेवाला स्त्रीसमूह बैठा हुआ है। जहाँ यष्टि धारण करनेवाले भक्तिनिष्ठ श्रेष्ठ प्रतिहारी मनुष्य लोगोंका नियन्त्रण करते हैं। राजाके सामने थूकना, जँभाई लेना और हँसना सेवाका दूषण माना जाता है। पैर हिलाना, तिरछा देखना, हकारना,

कमकंपणु अद्दु णिहालणउं हिक्कारउ [2]भउंहाचालणउं ।
खासणु धम्मिल्लामेल्लणउं करमोडि परासणपेल्लणउं ।
अवठंभणु दप्पणदंसणउं अइजंपणु सगुणपसंसणउं ।
सवियारउ कायणियच्छणउं इट्ठागमदेवदुगुंछणउं ।
संकेयवयणअवयारणउं परणिंदणु पायपसारणउं ।
अवरु वि जं विणएं विरहियउं तं म [3]करह गुरुयणगरहियउं ।
मण्णहु [4]माणुसु सामिहि तणउं ढंकहु दीणत्तणु अप्पणउं ।
घत्ता—इय लक्खिउ अक्खिउ सेवयहो [5]अहिमाणिहिं वणु चंगउ ।
दउवारियपेरियदंडएण मा छिप्पउ तहु अंगउं ॥२॥

३

मलयविलसिया—सुरवरसारउ एम भडारउ ।
अच्छइ [1]जावहिं सुरवइ [2]तावहिं ॥१॥
संचिंतइ अवहीणाणधरु बारहरविसंणिहकुलिसयरु ।
पुव्वहं परमेसरेण रमिय कुमरत्तें वीस लक्ख गमिय ।
भुंजंतहु महि तेसट्ठि गय अज्जु वि अवलोयइ चवल हय ।
अज्जु वि मणि मण्णइ मत्त गय इच्छइ अज्जु वि संदण सधय ।
अज्जु वि [3]घरि रइ किंक[4]रणिवहि अज्जु वि ण विरप्पइ का[5]मसुहि ।
को हुयवहु इंधणेण धवइ सरिसलिलें [6]सरिणियराहिवइ ।
को भोएं जीवहु करइ दिहि ब[7]लवंतउ सव्वहुं कम्मविहि ।
[8]जाणंतु वि मुज्झइ दे[9]उं जहिं अण्णाणु अवरु किं भणमि तहिं ।
घत्ता—रइराविउ भाविउ [10]एउं जगु किं पि ण[11] याणइ जुत्तउ ॥
सकलत्तहिं पुत्तहिं मोहियउ णिवडइ [12]हेट्ठाहुत्तउ ॥३॥

४

मलयविलसिया—दुट्ठे धिट्ठे उज्झसु तिट्ठे ।
ण तुह धणेणं तित्ति इमेणं ॥१॥
अज्जु वि णउ फिट्टइ भोयरइ अज्जु वि णउ चिंतइ परम गइ ।
अज्जु वि पहुहियउ [1]णउ उवसमइ माणवरमणीरमणउ रमइ ।
[2]सरणिहिसमाइं मइ पयडियउ [3]अट्ठारहकोडाकोडियउ ।
णट्ठाइं धम्मकम्मंतरइं दंसणणाणइं चरियइं वरइं ।

---

२. M भउहा° । ३. M करहि; BP करहु । ४. MBP माणसु । ५. MB अहिमाणहि ।

३. १. MBP जइयहुं । २. MBP तइयहुं । ३. MBP रइ घरि । ४. B °णिवहो । ५. B कामसुहो । ६. M सरणियरा° । ७. MBP सव्वहं बलवंतउ । ८. MBP जाणंतउ । ९. K एहु । १०. MBPK एम । ११. MP ण जाइ; B ण जाणइ । १२. MBP हेट्ठाहुंतउ ।

४. १. MBP ण उवसमइ । २. T सरिणिहि° । ३. B Omits this foot.

भौंहोंका संचालन करना, खांसना, चोटी खोलना, हाथ मोड़ना, दूसरेके आसनको खिसकाना, सहारा लेना, दर्पण देखना, अत्यधिक बोलना, अपने गुणोंकी प्रशंसा करना, अत्यन्त विकारग्रस्त होना, शरीरको देखना, इष्ट, आगम और देवकी निन्दा करना, पैर फैलाना (इसके सिवा) और जो विनयसे रहित तथा गुरुजनोंके द्वारा गर्हित बातें हैं, उन्हें नहीं करना चाहिए। राजाके आदमीको मानना चाहिए और अपनी दीनताको छिपाना चाहिए।

घत्ता—मैंने ये सेवकके लक्षण कहे। परन्तु जो स्वाभिमानी है उसके लिए वन ही अच्छा। द्वारपालके द्वारा प्रेरित दण्ड उसका (स्वाभिमानीका) अंग न छुए ॥२॥

३

सुरवर श्रेष्ठ आदरणीय ऋषभ जब इस प्रकार विराजमान थे, तबतक अवधिज्ञानको धारण करनेवाला, तथा बारह सूर्योंके समान वज्रको धारण करनेवाला इन्द्र सोचता है कि परमेश्वरके द्वारा रमण किये गये बीस लाख पूर्व वर्ष कुमारकालमें बीत गये। और धरतीका भोग करते हुए त्रेसठ लाख पूर्व वर्ष चले गये। लेकिन वह आज भी चंचल घोड़ोंको देखते हैं। आज भी अपने मनमें मतवाले हाथियोंको मानते हैं, आज भी ध्वज सहित रथोंको चाहते हैं, आज भी उनकी घर और अनुचरसमूहमें रति है। आज भी वह कामसुखसे विरक्त नहीं होते। आगको ईंधनसे कौन शान्त बना सकता है, नदियोंके जलोंसे समुद्रको कौन शान्त कर सकता है, भोगके द्वारा कौन जीवमें धैर्य उत्पन्न कर सकता है? कर्मका विधान सबसे बलवान् होता है। जब देव जानते हुए भी मोहग्रस्त होते हैं तब किसी अज्ञानीको मैं क्या कहूँ?

घत्ता—रतिसे रंजित यह जग उन लोगोंके लिए अच्छा लगता है, कि जो और दूसरी युक्ति नहीं जानते। अपनी स्त्रियों और पुत्रोंसे मोहित यह जग नीचेसे नीचे गिरता है ॥३॥

४

दुष्ट और धृष्ट तृष्णामें तुम जलते हो, आज भी इस धनसे तुम्हारी तृप्ति नहीं हो सकती। आज भी भोगरति नष्ट नहीं होती, आज भी वह परम गतिकी चिन्ता नहीं करते। आज भी स्वामीका हृदय शान्त नहीं होता, वह मानव रमणियोंसे रमण करनेमें रमता है। अट्ठारह कोड़ा-कोड़ी सागर समय बीत गया है। धर्म और कर्मका अन्तर नष्ट हो गया है, दर्शन, ज्ञान और श्रेष्ठ

आयारइं पंचमहव्वयइं अणुवयगुणवयसिक्खावयइं ।
ण पयासइ णवपयत्थसहिउ सिद्धंतु अणाइ अरुहें कहिउ ।
इय चिंतिवि इंदें जाणियउं अवहिए भवियव्वु पमाणियउं ।
णाहहु अज्जु जि चरियावरणु धुउ णिम्मइ गेण्हइ ववरणु ।
पुण्णाउस णीलंजस णडइ गयजीविय जइ अग्गइ पडइ ।
ता होइ विरायहु कारणउं इह दुविहु संजमुद्धारणउं ।
जिणधम्मपवत्तणु होइ जणे इय संभरेवि पुणु पुणु वि मणे ।
घत्ता—णीलंजस रइवस [10]मृगणयण इंदें भणिय अणिंदहो ॥
तुहुं गच्छहि पेच्छहि कमजुयलु णच्चहि पुरउ जिणिंदहो ॥४॥

५

मलयविलसिया—ता तुंगथणी सयमहरमणी ।
रयणमयघरं साकेयपुरं ॥१॥
आया णहेण छउओयरिय विज्जुलिय णाइं चलविप्फुरिय ।
पोडहियगाणसुरपरियरिय णाहेयणिहेलणि अवयरिय ।
पणवेप्पिणु पहु ओलग्गियउ पेक्खणयहु अवसरु मग्गियउ ।
णाडयपारंभि पढमु भणिउं वीसंगु वि पुव्वरंगु जणिउ ।
वाइयउ तिपुक्खरु सुंदरउ सुपसिद्धउ सोलहअक्खरउ ।
चउमग्गु दुलेवणु छक्करणु तियतिक्लउ तिलयउ मणहरणु ।
तिगंयउ तिपंचारु तिजोयंयरु तिकरिक्लउ पंचपाणिपहरु ।
तिपसारउ अवरु तिमज्जणउं बीसालंकारसलक्खणउं ।
अट्ठारहजाइहिं मंडियउ एयहिं गुणेहिं अवरुंडियउ ।
चच्चउडु भणिउं पुणु चाचउडु छंप्पियपुत्तु वि मणहारि फुडु ।
इय तालेंहिं तीहिं अलंकरिउ बहुयहिं तब्भेयहिं परियरिउ ।
वामुद्धालिंगियसंणियउं ओणद्धउं वज्जउं वण्णियउं ।
घत्ता—जहिं लोयण तिहुअणु जलहिसम सुइसंखाइ सुललियहिं ।
चलंबद्धहिं अद्धहिं मुक्कियहिं वत्तावत्तंगुलियहिं ॥५॥

---

४. MBP °महावयइं । ५. MB अरुहकहिउ । ६. MBP तवयरणु । ७. P पुण्णाउस । ८. P तो ।
९. MBPK इय but G इह with gloss संसारे । १०. MBP मयणयण ।

५. १. MBP पाडहि गायण° । २. MB पेक्खणहो । ३. MB तिगइयउ । ४. MB तिचारु; P तिमचारु; T तियचारु । ५. MBP तिजोयधरु । ६. MB छप्पिउ वुत्तु; P छप्पिउडु वुत्तु । ७. MB ताडहिं ।
८. MBP चवलद्धहिं; T चवलद्धहिं but explains it as स्थितमुक्ताभिः ।

चारित्र्य भी नष्ट हो गये हैं, आचार, पाँच महाव्रत, अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रत भी नष्ट हो चुके हैं। अर्हन्त भगवान्के द्वारा कहा गया नौ पदार्थोंसे युक्त अनादि सिद्धान्त आज प्रकाश नहीं पा रहा है—यह सोचकर इन्द्रने यह जान लिया और अवधिज्ञानसे प्रमाणित कर लिया कि स्वामीको आज भी चारित्रावरणी कर्मका उदय है, उसके शान्त होनेपर ये निश्चित रूपसे तप ग्रहण करेंगे। यदि पूर्ण आयुवाली नीलंजसा (नीलांजना) नाट्य करती है और उनके सामने निर्जीव होकर गिर पड़ती है तो यह उनके वैराग्यका कारण होगा, और इससे दो प्रकार संयमका उद्धार होगा। लोगोंमें जिनधर्मका प्रवर्तन होगा—इस प्रकार अपने मनमें बार-बार विचारकर।

घत्ता—रतिकी अधीन मृगनयनी नीलंजसाको इन्द्रने कहा—"तुम जाओ और अनिन्द्य जिनेन्द्रके चरणकमलोंके दर्शन कर उनके सामने नृत्य करो" ॥४॥

५

तब ऊँचे स्तनोंवाली इन्द्रकी रमणी (नीलांजना) रत्ननिर्मित घरोंवाली अयोध्या नगरी पहुँची। कृशोदरी वह आकाश-मार्गसे इस प्रकार आयी जैसे चंचल चमकती हुई बिजली हो। गान प्रारम्भ करनेवाले देवोंसे घिरी हुई वह नाभेय (ऋषभनाथ) के घर अवतरित हुई। प्रणाम कर उसने प्रभुकी सेवा की और नाट्याभिनयका अवसर माँगा। सबसे पहले उसके नाट्यके प्रारम्भमें अभिनीत होनेवाले बीसों अंगोंसे परिपूर्ण पूर्व रंगका अभिनय किया। तीन प्रकारके सुन्दर पुष्कर[1] वाद्य, तीन प्रकारके भाँड़ वाद्य (उत्तम, मध्यम और जघन्य), सुप्रसिद्ध सोलह अक्षरों-वाला, चार मार्ग, दुलेपन, छह करण, तीन यतियों सहित, तीन लयोंवाला, सुन्दर तीन गतिवाला, तीन चारवाला, तीन योगको करनेवाला, तीन प्रकारके करोंसे युक्त, पाँच पाणिप्रहार, त्रिप्रकार और त्रिप्रसार, और त्रिमज्जन (त्रिमार्जनक) इस प्रकार बीस अलंकारोंके लक्षणोंसे युक्त, अट्ठारह जातियोंसे मण्डित और इन गुणोंसे आलंगित नृत्यका प्रदर्शन किया। और भी चच्चपुट, चाचपुट और सुन्दर छप्पयपुट; इन तीन तालोंसे अलंकृत और उनके अनेक भेदोंसे सहित, वाम, ऊर्ध्व और आलिंगत संज्ञाओंवाला अनवद्य वाद्यका मैंने वर्णन किया।

घत्ता—जहाँ द्विश्रुतिक त्रिश्रुतिक, और चतुःश्रुतिक श्रुति संख्याओंसे सुललित चलबद्ध अर्धमुक्त और व्यक्त और अव्यक्त अंगुलियोंके द्वारा करनेवाले आदरणीय देवोंने गीत प्रारम्भ किया॥५॥

---

१. पुष्कर वाद्य (चर्मविनद्ध वाद्य, उत्तम, मध्यम और जघन्य); सोलह अक्षर (क ख ग घ, ट ठ ड ढ, त थ द ध, स र ल ह); चार मार्ग (आलिस, अदित, गोमुख और वितस्ति); दुलेपन (वामलेपन, ऊर्ध्वलेपन); छह करण (रूप, कृत, परिति, भेद, रूपशेषी और उद्य); तीन यतियाँ (सम, श्रोतोगति, गोपुच्छ); त्रिलय (द्रुत, मध्य, विलम्बित); त्रिगति (वाम, मुत और ऊर्ध्व); त्रिचार (सम, विषम, सम-विषम); त्रियोग (गुरुसंयोग, लघुसंयोग, गुरुलघुसंयोग); त्रिकर (गृहीत, अर्धगृहीत और गृहीत-मुक्त); मार्जनक (मायूरी, अर्धमायूरी और कर्मारवी)।

६

मलयविलसिया—विरंई[1]पुसिरे वंज्जे[2] सुसिरे ।
णिंकयपसंसे[3] जायउ[4] वंसे ॥१॥

सरु जेत्थु[5] झुणंति सुअत्थसुइ[6] थिय मुक्कंगुलि व सुअट्ठसुइ ।
कंपंतियाइ[7] उग्गमु[8] तिसुइ मुक्कंगुलियइ हूयउ दुसुइ ।
वत्तंगुलि मोक्खवसेण कय सेहुं[9] सज्जें मज्झिमपंचमय ।
सरिसहुं धेवउ[10] कंपंतियए [11]सामण्णसरंतरसंणियए ।
गंधारणिसायविचलियया इ[12] अद्धइ मुक्कइ अंगुलियया इ[13] ।
पयणियवेणू णाणायरेहिं तुंबरुणारयसंणिहसुरेहिं ।
पयडियउ जि देवागमि भणिउं णिक्कलु तेप्पु[14] वि तंतीरणिउं ।
घणु कंसतालजुयलाइयउ समहत्थु[15] देवि जहिं [16]चालियउ ।
अमरहिं [17]जिणमणसंमाइयहिं पारद्धउ गेउ महाइयहिं ।
उप्पण्णउ उरठाणंतरए [18]बावीस सुईउ णहंतरए ।
कमरइयपमाणहिं संछिवइ वड्ढंतु णाउ वुड्ढि हि थिवइ ।
सुइसु वि स रि ग म प ध[19] णी यणाम सर सत्त तेसु दोण्णि वि जि गाम ।

घत्ता—सुरपुज्जइ सज्जइ किंणरहिं जाइउ [20]सत्त पउत्तउ ॥
पयारह सुयरह मज्झिमइ पीणियजणवयसोत्तउ ॥६॥

७

मलयविलसिया—सत्तेयारह इय अट्ठारह ।
जाइणिबद्धहं लंक्खविसुद्धहं[1] ॥१॥

अंसहं सउ चालीसाहियउ एक्कुत्तरु तं पि पसाहियउ ।
तहिं होंतउ सवणरवण्णियउ गीईउं[2] पंच उप्पणियउ ।
सुद्धा भिण्णा पुणु वेसरिय भउडी साहारणिया संरिय[3] ।
तहिं गामराय अवर वि भणिया भयवयभयगुत्तितयगणिया ।
इय तीस कमेण जि संगहिय उडुमाण जि माणवसवणहिय ।
पहिलारउ टक्कराउ[4] कहिउ अणुवेक्खासमभासहिं सहिउ ।
अट्ठहिं पंचमु वि पयासियउ [5]बिहिं वि विहासहिं भूसियउ ।

---

६. १. MBP विरहयपुसिरे । २. MBPT वज्जियसुसिरे । ३. MBP णिकयपसंसे । ४. MBP जाओ । ५. MBP जेसु । ६. P सुअत्थवई । ७. BP कंपंतियाउ । ८. MBP उग्गउ । ९. P सहुं मज्झें । १०. MBP धेयउ T धइवउ । ११. M सामण्णें सरंतरसंतियए; B सरंतरसंनियए; सरंतरसंणियए । १२. M विचलियाइ; B विवलियाइ; P णिचल्लियाइ । १३. MB अंगुलियाइ; P अंगुल्लियाइ । १४. P तिपुव्वि । १५. MB समहत्थ । १६. K संचालियउ । १७. P जिणसमण° । १८. MBP बावीस वि सुइउ । १९. MP °पधणीसणाम; B °पधणिणाम । २०. BP सुत्तपउत्तउ ।

७. १. MBP लक्खु वि सुद्धहं । २. MBP गोयउ पंचउ । ३. MBP भणिय । ४. MBPT ढक्कराउ । ५. MP बिहिं चेय विहासहिं; B तिहिं चेय हिहासहिं ।

६

विरतिके नाशक, मनुष्योंके द्वारा प्रशंसित बाँसके सुषिर वाद्यसे स्वर उत्पन्न हुआ। जिसके ध्वनित होनेपर शाश्वत श्रुतियाँ (बाईस श्रुतियाँ षड्ज और मध्यम ग्रामोंमें-से प्रत्येककी बाईस) मुक्त अंगुलीसे आठ श्रुतियाँ, काँपती अँगुलीसे तीन श्रुतियाँ उत्पन्न हुईं और मुक्त अँगुलीसे दो श्रुतियाँ। व्यक्त अँगुलीके छोड़नेके कारण षड्जके साथ मध्यम और पंचम स्वर तथा सामान्य स्वरोंकी संज्ञाके समान काँपती हुई अँगुलीसे धैवत, गान्धार और विषाद स्वरोंसे संचालित, अर्ध-मुक्त ध्वनियाँ अँगुलियोंके द्वारा नाना आदरवाले, तुम्बरु और नारदके समान देवोंने ठीक की गयी वीणाको उस प्रकार प्रकट किया जिस प्रकार आगममें बताया गया है। दो प्रकारके वीणा-वाद्यों (विष्कल और त्रिपंच) घन वाद्यों (कांस्यतालादि) के द्वारा अनेक तालोंका एक साथ वादन हुआ। जिन भगवान्का मनमें सम्मान करनेवाले महादरणीय देवोंने गीत प्रारम्भ किया। नाभिस्थानमें उत्पन्न हुई वायु उरःस्थानमें क्रमशः नाद बनकर, कर्णस्थानमें बाईस श्रुतियाँ बनाती हैं, और क्रमसे रचित प्रमाणोंके द्वारा (अर्थात् क्रमसे सात स्वरोंका उच्चारण करनेपर) बढ़ता हुआ नाद वृद्धिको प्राप्त होता है। इन बाईस श्रुतियोंमें सा रे ग म प ध नि नामक सात स्वर और दोनों ग्राम कहे (इनमें षड्ज ग्राम और मध्यम ग्राम हैं)।

घत्ता—देवोंके द्वारा पूजित षड्जमें किन्नरोंके द्वारा सात जातियाँ कही गयी हैं। और मध्यम ग्राममें लोगोंके कानोंको सुख देनेवाली ग्यारह जातियाँ कही गयी हैं। (इस प्रकार कुल अठारह जातियाँ होती हैं।)

७

सात और ग्यारह, इस प्रकार अट्ठारह जातियोंमें निबद्ध और लक्ष्य विशुद्ध अंगोंके एक सौ चालीस भेद होते हैं, उनका भी प्रदर्शन किया गया। उनमें कानोंको सुखद लगनेवाली पाँच प्रकारकी गीतियाँ होती हैं, जो शुद्धा, भिन्ना, वेसरा, गौड़ी और साधारणाके रूपमें जानी जाती हैं, इनमें और भी ग्राम राग कहे गये हैं। सात, पाँच, आठ, तीन और सातकी संख्यासे गिने जाते हैं इस प्रकार क्रमशः तीस भेदोंका संग्रह किया। ये छह राग मानवोंके कानोंको सुख देनेवाले हैं, इनमें पहला राग टक्क राग कहा गया है, जो बारह भाषारागोंसे सहित है। आठ भाषारागों

आवाहियमोहियजगविलउ हिंदोलउ चउभासाणिलउ ।
मालविकेसिउ छहि बुक्कियउ अवराहिं मि दोहिं मि अंकियउ ।
सुद्धउ सज्जु वि सत्तहिं कलिउ ककुहु मि तिहिं भासहिं संवलिउ ।
घत्ता—सुविहासहिं सरसहिं विहिं सहिउ सो गाइउ सुइलीणउ ॥
मणहरियउ किरियउ दावियउ जहिं परिगयपरिमाणउ ॥७॥

८

मलयविलसिया—दह चउगुणिया संखा भणिया ।
भासाणं सा छह वि विहासा ॥१॥
भणियउ रंजियबुहयणमणउ एयारह दहवर मुच्छणउ ।
एक्कुणवण्णास वि ताण जहिं किं वण्णमि गेयारंभु तहिं ।
संजोय ताण बहुदिण्णरस णीलंजस णच्चइ विमलजस ।
भणु कासु ण सा दिट्ठिहि भरइ णच्चंती जणहियवउ हरइ ।
तेरहविहु सीसु पणच्चियउ छत्तीस दिट्ठि परियंचियउ ।
णवतारउ परिपालियरइउ अट्ठ वि रइयउ दंसणगइउ ।
तेत्तियविहु पुणरवि भावियउ णंदप्पयारु फुडु दावियउ ।
भू सत्तभेय परहिययहर छव्विह णासा कवोल अहर ।
सत्तविहु चिबुउं[1] चउ मुहहु राय णव गल चउसट्ठि वि करण भाय ।
सोलहविहु तिविहु चउव्विहु वि किउ करणमग्गु भुउ दहविहु वि ।
उरु सरविहु पासजुयलु तिविहु पोटट्टु वि पायडियउ तं तिविहु ।
कडियलु जंघा कमकमलाइं तव्विहइं जि णिहियइं विमलाइं ।
सउ करणहं वसुसंखाहियउ चलवत्तीसंगहारमियउ ।
चउ रेयय णडगुरुकित्तिधय सत्तारह पिंडीबंध कय ।
चारिउ सोलस दुअसंखियउ णच्चियउ जियक्खहिं अक्खियउ ।
वीस वि मंडलइं पंयासियइं[2] ठाणाइं तिण्णि संदरिसियइं ।
घत्ता—संचरियहिं धरियहिं थाइयहिं[3] भावहिं णडइ अणेयहिं ॥
भासाइहिं[4] जाइहिं णवरसहिं दावियणाणाभेयहिं ॥८॥

९

मलयविलसिया—वियलियहरिसं स हि णवमरसं ।
झत्ति धरंती दिट्ठ मरंती ॥१॥
जिणणाहें सा णीलंजसिय णं केण वि चित्ति लिहिवि पुंसिय[1] ।
कंदप्पकंति णं पंमुंसिय[2] लायण्णतरंगिणि णं सुंसिय[3] ।
णं खणि विद्धंसिय रइहि पुरि णं हय जणणयणणिवाससिरि ।

---

८. १. MT विउउ; B चिवउ; GK चिउबु । २. M पसासियइं; P पसाहियइं । ३. MBP आइयहि । ४. K हासाइहिं ।

९. १. MB फुसिय । २. MBP पयपुसिय । ३. MB सुसुय ।

और दो विभाषारागों सहित पंचम रागका प्रदर्शन किया गया। समस्त विश्वकी स्त्रियोंको बाधित और मोहित करनेवाला हिन्दोलराग चार भाषारागोंका घर है। मालव—कैशिक राग छह जातियोंमें कहा जाता है और वह दो भाषारागोंमें अंकित है। शुद्ध षड्ज सात जातियोंमें रचा जाता है।

घत्ता—इस प्रकार सरस सुविभास रागोंके द्वारा विधिपूर्वक कानोंको लीन करनेवाला वह (गान) गाया गया कि जिसमें सीमित परिमाणवाली सुन्दर क्रियाएँ दिखायी गयीं ॥७॥

८

दसमें चारका गुणा करनेपर चालीस भाषारागोंकी संख्या जाननी चाहिए। विभाषाराग छह कहे गये हैं। विद्वानोंके मनका रंजन करनेवाली, ग्यारह और दस, इस प्रकार कुल इक्कीस मूर्च्छनाएँ कही गयी हैं। जहाँ उनचास तानें कही जाती हैं, वहाँ मैं गीतारम्भका क्या वर्णन करूँ। उनके संयोगोंसे विभिन्न रसोंकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकार विमल यशवाली नीलांजना नृत्य प्रारम्भ करती है। बताओ वह किसकी दृष्टिको आकर्षित नहीं करती ? नाचती हुई वह लोगोंके हृदयका अपहरण कर लेती है। उसने तेरह प्रकारसे सिरको नचाया। छत्तीस प्रकारसे दृष्टिका संचालन किया, रागको पोषित करनेवाले नौ तारकों और आठों दर्शनगतियोंकी रचना की। फिर उसने तैंतीस भावोंका प्रदर्शन किया। और फिर नौ नन्दोंका प्रदर्शन किया। हृदयका हरण करनेवाला सात प्रकारका भ्रूसंचालन, छह प्रकारका नाक-कपोल और अधरोंका संचालन, सात प्रकारका चिबुक और चार प्रकारका मुखराग, नौ प्रकारका कण्ठ और चौंसठ प्रकारके हस्तके भेदोंका प्रदर्शन किया। सोलह, तीन और चार प्रकारके करण मार्ग और दस प्रकारके भुज-मार्ग बताये। उरके पाँच प्रकारों, पार्श्वयुगलके तीन प्रकारों और उदरके तीन प्रकारोंको प्रकट किया। कटितल, जांघों और चरण-कमलोंका प्रदर्शन भी उनके अपने भेदोंके साथ किया। इस प्रकार चंचल बत्तीस अंगहारोंके साथ एक सौ आठ कारणोंका प्रदर्शन उसने किया। चार प्रकारका रेचक, सत्तरह प्रकारके पिण्डीबन्धोंका, कि जो नटराजके कीर्तिध्वज हैं, प्रदर्शन किया। इन्द्रियों-को जीतनेवाले गणधरोंके द्वारा बतायी गयी बत्तीस प्रकारकी चारियोंका नृत्य किया। उसने बीस प्रकारके मण्डल और तीन संस्थानोंका सुन्दर प्रदर्शन किया।

घत्ता—धृति आदि संचारी भावों, स्थायी भावों, अनेक भाषाओं और जातियों, नाना भेदोंके प्रदर्शक नवरसोंसे नीलांजना नृत्य करती है ॥८॥

९

शीघ्र ही हर्षको विगलित करनेवाले नवम रस (शान्त रस) को वह धारण करती है, और ऋषभजिन उसे मरती हुई देखते हैं। जिननाथने उस नीलांजनाको देखा, उन्हें लगा मानो सौन्दर्यकी नदी सूख गयी हो, मानो क्षण-भरमें रतिकी नगरी नष्ट हो गयी हो, मानो जननेत्रोंमें

णं रंगसरोवरि[४] पउमिणिय कम्मेण कालरूवें लुणिय ।
णं चंदरेह णहि अत्थमिय णं सुरधणुसिरि मरुणा समिय ।
रसवाहिणि दिण्णरवण्णसुह णं णासिय पिसुणें सुकइकह ।
णउ थण णच्चणगुण[५] णउ वयणु णउ विउलु रमणु संचियमयणु ।
णउ केसभारु णउ हारलय णउ जाणहुं सुंदरि कहिं मि गय ।
सुण्णउं पंगणु हरिणीलयलु णं विज्जुविवज्जिउ मेहउलु ।
अमराहिवणारिरयणु मुयउ तं पेच्छिवि कोऊहलु हुयउ ।
हा हा भणंतु सोएं लइउ अत्थाणु असेसु वि विम्हइउ[६] ।

घत्ता—तहि मरणें करुणें[७] कंपियउ भरहजणणु सवियक्कउ ॥
तुण्हिक्कउ थक्कउ तिजगगुरु कुसुमयंतु[८] रइमुक्कउ ॥९॥

इय महापुराणे तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारे महाकइपुप्फयंतविरइए महाभव्वभरहाणुमण्णिए महाकव्वे णीलंजसाविणासो णाम छट्ठओ परिच्छेओ सम्मत्तो ॥ ६ ॥

॥ संधि ॥ ६ ॥

---

४. MBP सरोवर° । ५. MBP णउ करकम । ६. M विंभइउ; B विंभयउ; P विंभियउ । ७. MBP करणें । ८. MBP कुसुमयंत° and gloss in P कुसुमवद्दन्ता या नीलंजसा तस्या रतेर्मुक्तः ।

निवास करनेवाली श्री आहत हो गयी हो, मानो नाट्यरूपी सरोवरकी कमलिनोको कालरूपी सर्पने काट लिये, मानो चन्द्रलेखा आकाशमें अस्त हो गयी; मानो इन्द्रधनुषकी शोभाको हवाने शान्त कर दिया हो। न तो स्तन, न नृत्यगुण, न मुख और न संचित काम विपुल रमण, न केश-भार, और न हारलता। मैं नहीं जानता सुन्दरी कहाँ गयी। नीलमणियोंसे विजड़ित आँगन सूना है, मानो बिजलीसे रहित मेघपटल हो। इन्द्रकी रमणी मर गयी। यह देखकर उन्हें कुतूहल हुआ। हा-हा कहते हुए वह शोकग्रस्त हो गये। समूचा दरबार विस्मयमें पड़ गया।

घत्ता—उस मृत्यु और करुणासे काँपते हुए भरतके पिता विस्मयसे भर उठे। कुसुमके समान दाँतोंवाले और रतिसे मुक्त त्रिजगगुरु चुप हो गये ॥९॥

इस प्रकार त्रेसठ महापुरुषोंके गुणालंकारोंसे युक्त इस महापुराणमें महाकवि पुष्पदन्त द्वारा विरचित और महाभव्य भरत द्वारा अनुमत महाकाव्यका निलंजसा-विनाश नामक छठा परिच्छेद समाप्त हुआ ॥६॥

संधि ७

कयतिहुयणसेवें चिंतिउ देवें जगि धुउ किं पि ण दीसइ।
जिह दावियणवरस गय णीलंजस तिह अवरु वि जाएसइ ॥१॥

१

खंडयं[1]—इह संसारदारुणे बहुसरीरसंघारणे।
वसिऊणं दो वासरा के के ण गया णरवरा ॥१॥
पुणु परमेसरु सुसंभु[2] पयासइ धणु सुरधणु व खणद्धे[3] णासइ।
हय गय रह भड धवलइं छत्तइं सासयाइं णउ पुत्तकलत्तइं।
जंपाणइं जाणइं धयचमरइं रविउग्गमणे जंति णं तिमिरइं।
लच्छि विमल कमलालयवासिणि णवजलहरचल बुहउवहासिणि।
तणु लायण्णु वण्णु खणि खिज्जइ कालालिं मयरंदु व पिज्जइ।
वियलइ जोव्वणु णं करयलजलु णिवडइ माणुसु णं पिक्कउ फलु।
तूर्यहि[4] लवणु जसु उत्तारिज्जइ सो पुणरवि तणि उत्तारिज्जइ।
जो महिवइ महिवइहि णविज्जइ सो मुउ घरदारेण ण णिज्जइ।
घत्ता—किर जित्तउ परबलु भुत्तउ महियलु पच्छइ तो वि मरिज्जइ ॥
इये[5] जाणिवि अद्धुउ[6] अवलंबिवि[7] तउ णिज्जणि वणि णिवसिज्जइ ॥१॥

२

खंडयं—वइरिरायदप्पहरणं किं जोयइ मुयपहरणं।
मण्णइ अप्पाणं घणं सरणविरहियं जयमिणं ॥१॥
जइ वि धरंति वीर णर किंणर अरुण वरुण सपवण वइसाणर।
गरुड जक्ख रक्खस विज्जाहर भूय पिसाय णाय ससि दिणयर।

MBP have, at the commencement of this samdi, the following stanza ;—

हंहो भद्र प्रचण्डावनिपतिभवने त्यागसंख्यानकर्ता
कोऽयं श्यामः प्रधानः प्रवरकरिकराकारबाहुः प्रसन्नः।
धन्यः प्रालेयपिण्डोपमधवलयशोधौतधात्रीतलान्तः
ख्यातो बन्धुः कवीनां भरत इति कथं पान्थ जानासि नो त्वम् ॥

MB read हंहे for हंहो; प्रचण्डाधनि° for प्रचण्डावनि°; and °संख्यात° for °संख्यान°। GK do not give it.

१. १. M reads खंडियं throughout। २. T ससमु but adds सुसमु वा शोभनोपशमयुक्तः। ३. P खणद्धं। ४. MBP तियहिं। ५. B इउ। ६. B अधुवु; P अद्धउ। ७. MBP अवलंबियभुउ but gloss in P तपो गृहीत्वा।

सन्धि ७

१

त्रिभुवनकी सेवा करनेवाले ऋषभदेवने विचार किया कि संसारमें शाश्वत कुछ भी नहीं दिखाई देता जिस प्रकार नीलांजना नवरसोंका प्रदर्शन कर चली गयी, उसी प्रकार दूसरा भी संसारसे जायेगा ॥१॥

खंडय—अनेक शरीरोंका नाश करनेवाले इस दारुण संसारमें दो दिन रहकर कौन-कौन नरश्रेष्ठ नहीं गये। फिर परमेश्वर शमभावको प्रकाशित करते हैं—धन इन्द्रधनुषकी तरह आधे पलमें नष्ट हो जाता है। घोड़े-हाथी, रथ-भट, धवल छत्र, पुत्र और कलत्र कुछ भी शाश्वत नहीं हैं। जंपाण, यान, ध्वज, चमर उसी प्रकार नाशको प्राप्त होते हैं जिस प्रकार सूर्यका उदय होनेपर अन्धकार चला जाता है। कमलके घरमें निवास करनेवाली विमल लक्ष्मी नवजलधरके समान चंचल और विद्वानोंका उपहास करनेवाली होती है। शरीर लावण्य और रंग एक पलमें क्षीण हो जाते हैं, कालरूपी भ्रमर उन्हें मकरन्दकी तरह पी जाता है। यौवन इस प्रकार विगलित हो जाता है मानो अंजुलीका जल हो। मनुष्य इस प्रकार गिर जाता है मानो पका हुआ फल हो। स्त्रियोंके द्वारा जिसका नमक उतारा जाता है वही फिर तिनकोंपर उतार दिया जाता है। जिस राजाको दूसरे राजा नमस्कार करते हैं, वही मरनेपर घरकी स्त्रीके द्वारा नहीं पहचाना जाता है।

घत्ता—चाहे शत्रुबल जीता जाये या महीतल भोगा जाये, बादमें तब भी मरना होगा। इस प्रकार अध्रुवत्व (अनित्यता) को जानकर, और तप ग्रहण कर एकान्त वनमें निवास करना चाहिए ॥१॥

२

शत्रुराजके दर्पको चूर-चूर करनेवाले हाथ और हथियारको क्या देखता है। अपनेको समर्थ समझता है, यह जन शरणहीन है। यद्यपि इसे वीर नर, किन्नर, अरुण, वरुण, पवन सहित अग्नि,

पडिबलकुलकाणणकालाणल इंद पडिंदहमिंद महाबल।
[1]पण्णारहखेत्तुब्भव जिणवर कुलयर चक्कवट्टि हरि हलहर।
जइ वि धरंति देह[2]भा भासुर पवराउहपवीण देवासुर।
जइ परसइ मयरहरब्भंतरि किंकरहरिकरिरहवूहंतरि।
सरसरिगिरिदरिकक्करकंदरि दुप्पवेसकुलिसाय[3]सि पंजरि।
बहलतमं[4]धयारमहिमूलइ जइ पइसरइ गंपि पायालइ।
तो वि जीउ कड्ढि[5]ज्जइ कालें हरिणा हरिणु व भिउडिकरालें।
घत्ता—इय बुज्झिवि असरणु रुंभिवि तियरणु जेण चरित्तु ण चिण्णउं ॥
तं माणुसवेसें वायविसेसें भमइ कलेवरु सुण्णउं ॥२॥

३

खंडयं—मित्तसयणसंजोय[1]ओ होउं होइ विओय[2]ओ।
एक्को च्चिय जगि जीयओ भमइ सकम्मविणीयओ ॥१॥
एक्कु जि जडु जच्चंधु णउंसउ दुग्गउ दुट्ठु दुबुद्धि दुरासउ।
हुयउ कुमाणुसत्ति दुणिहालउ एक्कु जि जीउ चंडु चंडालउ।
एक्कु जि धणुहरु सवरु वणंतरि एक्कु जि सुरवरु मणिमयसुरहरि।
अप्पउ पुण्णहीणु पडिवज्जइ सयमहविहवपलोयणि झिज्जइ।
एक्कु जि णहि णहयरु थलि थलयरु एक्कु जि बिलि विसहरु जलि जलयरु।
एक्कु जि मृ[3]गजोणिहि उप्पज्जइ प[4]रिहि तलिवि पउलिवि खणि खज्जइ[5]।
एक्कु जि दूहउ दूसहु दुम्मइ णरयविवरि णारइयहिं हम्मइ।
एक्कु जि तरइ मरइ वइतरणिहि चरइ जलणपज्जलियहि धरणिहि।
घत्ता—एक्कु जि भवकद्दमि णिवडइ दुद्दमि रइसुहपंकयछप्पउ॥
एक्कु जि तवताविउ णाणें भाविउ होइ जीउ परमप्पउ ॥३॥

४

खंडयं—इय णिसुणिवि एयत्तणं गाढं णियमइ णियमणं।
एक्कु जि जीउ वरायओ सयलु वि अण्णु जि लोयओ ॥१॥
अण्णहिं परमाणुयहिं णिबज्झइ अण्णु जि पिंडु गब्भि संबज्झइ।
अण्णु जीउ अण्णु जि दुक्कियमलु अण्णु जि सुक्कियउ[1] अण्णु जि तहु फलु।
अण्णहिं कुलि कलत्तु परिणिज्जइ अण्णु जि [2]को वि पुत्तु णिप्फज्जइ।
अण्णु जि मित्तु सय[3]ज्जि कयायरु अण्णु जि होइ स[4]णेहउ भायरु।
अण्णु जि भिच्चु होइ धणलोहें जीउ तह वि मोहिज्जउ मोहें।

२. १. MBP पण्णारस°। २. MBP देव भाभासुर। ३. MBP कुलिसायस°। ४. MBP °तमंधयारि।
५. M कट्टिज्जइ।

३. १. P संजोयरु। २. P विओयरु। ३. MBP मिगजोणिहि। ४. M परिहि तलिज्जइ पउलिवि खज्जइ। ५. B खिज्जइ।

४. १. MBP सुक्किउ। २. MBP पुत्तु को वि उप्पज्जइ। ३. MBP सकज्जि। ४. M सणेहें।

गरुड़, यक्ष, राक्षस, विद्याधर, भूत-पिशाच, नाग, चन्द्र, दिनकर, शत्रुओंके कुलरूपी काननके लिए कालानलके समान इन्द्र, प्रतीन्द्र और अहमिन्द्र, पन्द्रह क्षेत्रोंमें उत्पन्न जिनवर, कुलकर, चक्रवर्ती, हलधर और नारायण इसे धारण करते हैं। शरीरकी कान्तिसे भास्वर तथा प्रवर आयुधोंमें प्रवीण देवासुर भी इस जीवको धारण करते हैं। यदि यह जीव समुद्रके भीतर, अनुचर (सैनिक), घोड़ों, हाथी और रथोंके व्यूहमें सरोवर-नदी, पहाड़-घाटी-कर्कश गुफामें, दुष्प्रवेश्य वज्र और लोहेके पंजरमें प्रवेश करता है या चाहे अत्यधिक तमवाली धरतीके मूल या पातालमें जाकर छिप जाता है तब भी वह कालके द्वारा उसी प्रकार निकाल लिया जाता है, जिस प्रकार भृकुटियोंसे कराल सिंहके द्वारा हरिण।

घत्ता—यह अशरणभावना समझकर, मन-वचन और कायको रोककर जिसने चारित्र्य स्वीकार नहीं किया वह मनुष्यरूपमें वायुसे प्रेरित होकर व्यर्थ भ्रमण करता है ॥२॥

३

मित्र और स्वजनका संयोग होकर वियोग होता है, जगमें यह जीव अकेला ही परिभ्रमण करता है, अपने कर्मसे विनीत होकर। एक जीव जड़ जन्मान्ध नपुंसक दुर्गत दुष्ट दुर्बुद्धि और दुराशय, कुमनुष्यत्वमें होकर दुर्दर्शनीय होता है, एक जीव चण्ड और चाण्डाल होता है। एक वनके भीतर धनुर्धर भील होता है, एक मणिमय विमानमें देव होता है, अपनेको पुण्यहीन मानता है और इन्द्रके वैभवको देखकर क्षीण होता है। एक जीव आकाशमें नभचर और दूसरा स्थलमें स्थलचर। एक बिलमें साँप और जलमें जलचर। एक पशुयोनिमें जन्म लेता है, और दूसरोंके द्वारा खण्डित होकर तथा तलकर एक क्षणमें खा लिया जाता है। एक दुर्भग, दुःसह और दुर्गति, नरकविवरमें नारकियोंके द्वारा मारा जाता है। अकेला ही तरता है, अकेला ही वैतरणी पार करता है, और ज्वलित-प्रज्वलित धरतीपर विचरण करता है?

घत्ता—जीव अकेला ही रतिसुखका भ्रमर बनकर दुर्दम, विश्वकीचडमें पड़ता है। जो अकेला ही तपसे संतप्त और ज्ञानसे भाषित होकर परमात्मा बनता है ॥३॥

४

इस प्रकार एकत्व भावनाको सुनकर अपने मनको प्रगाढ़ रूपसे नियमित करना चाहिए। बेचारा जीव अकेला है और समस्त लोकसे भिन्न है। भिन्न परमाणुओंके द्वारा बांधा जाता है और गर्भमें जो पिण्ड बँधता है, वह भिन्न है। जीव भिन्न है, और पापकर्ममल भिन्न है, पुण्य अलग है, और उसका फल अलग है। अन्यके द्वारा कुलमें स्त्री ले जायी जाती है। कोई दूसरा पुत्ररूपमें उत्पन्न होता है। अपने कार्यमें कृतादर मित्र दूसरा होता है, और स्नेही भाई दूसरा

अण्णु जि भणइ महारउ मत्तउ णउ जाणइ जिह सयलहिं चत्तउ।
अण्णहिं जंति खणद्धें रहवर हयवरगयवरचिंध सचामर।
परमत्थें ण को वि जगि कासु वि एक्कलउ[5] जि जाइ पुहईसु वि।
घत्ता—राएण णिबद्धउ इंदियलुद्धउ सुहु अण्णु जि म[6]हुं भावइ॥
ससहाउ ण पेक्खइ अण्णु जि कंखइ जीउ महावइ पावइ॥४॥

५

खंडयं—चउकसायरसरसियओ मिच्छासंजम[1]वसियओ।
णाणाजम्मु[2] वियारए आहिंडइ संसारए॥१॥
णरयगइहिं उप्पण्णउ जइयहुं णारयणियरिहिं रुंभिवि तइयहुं।
तिलु तिलु छिंदिवि [3]दिसिहिं विहाइउ कवलिउ धुणिउ वणिउ विणिवाइउ।
वारवार पचारिउ जूरिउ विज्जुतरलतरवारिवियारिउ।
एक्कु जि बहुयहिं तहिं पारंभिउ खलिउ दलिउ पयमलिउ णिसुंभिउ।
ओहामिउ भामिउ ओणामिउ सूलि कयंतदंति संकामिउ।
अच्छोडिउ मोडिउ महिं पाडिउ विरसमाणु करवत्तहिं फाडिउ।
लूरियंतु कोंतेहिं विहिण्णउ रुंदोदूहलि मुसलहिं[4] छुण्णउ।
सत्तिहिं हूलिउ जंतिहिं पीलिउ जलियजलणजालोलिहिं जालिउ।
वम्मविहट्टणेहिं[5] दुव्वोलिउ सेल्लभल्लिवावल्लहिं सल्लिउ।
पूयकुंडि उप्पेल्लिवि घल्लिउ रुहिरोहलियदेहु ओणल्लिउ।
घत्ता—मणि रोसु धरंतहं रणि पहरंतहं लग्गइ गत्तु विहत्तु वि॥
सुहु णत्थि तमंधहं णारयसंढहं णयणणिमीलणमेत्तु वि॥५॥

६

खंडयं—सिंगीसु य पक्खीसु य दाढीसु य णक्खीसु य।
भुंजंतो भवसंगमं ण लहइ जीवो णिग्गमं॥१॥
कायकंककोइलकारंडहिं सारसचासभासभेरुंडहिं।
सीहसरहसूयरसालूरहिं घारमोरमंडलमज्जारहिं।
कीरकुररकुंजरसारंगहिं लावयपारावयहिं तुरंगहिं।
कु[2]क्कुडमक्कडमहिसमरालहिं मेसवसहखरकरहसियालहिं।
सेढा[3]सरढतरच्छहिं रिंछेहिं[4] मयरमहोरयकच्छवमच्छहिं।
तिक्खतिरिक्खदुक्खसंदाणहिं संभवंतु णाणाविहजोणिहिं।
बलणिम्मंथणु णियलणिबंधणु भारारोहणु णोणाबंधणु[5]।

५. MBP एक्किल्लउ। ६. MB जणि; P मणि।

५. १. MBP संजमि वसियउ। २. MBP ˘जम्म°। ३. MB दिसहिं। ४. MBP मुसलें। ५. M °विहट्टणेण।

६. १. M लायय°। २. B कुंकुड°। ३. MBP सेहा°। ४. MP °रिच्छहिं। ५. MBP णासाविंधणु।

होता है। धन लोभसे अन्य भृत्य होता है, (यह) जीव मोहके द्वारा मुग्ध होता है। मतवाला वह, अन्यको कहता है कि यह हमारा है। नहीं जानता कि किस प्रकार वह सबके द्वारा छोड़ दिया जाता है। आधे पलमें रथवर, हयवर, गजवर और चामर सहित पताकाएँ दूसरी हो जाती हैं। परमार्थमें जगमें कोई भी किसीका नहीं है। पृथ्वीका ईश (राजा) भी अकेला होता है।

घत्ता—रागके द्वारा बाँधा गया इन्द्रियोंसे लुब्ध सुख भी मुझे अन्य प्रतीत होता है। अपने स्वभावको नहीं देखता, दूसरेकी आकांक्षा करता है इस प्रकार जीव महा आपत्ति पाता है ॥४॥

५

चार कषायरूपी रसमें आसक्त और मिथ्या संयमके वशीभूत होकर (यह जीव) नाना जन्मोंवाले संसारमें घूमता है। जब यह नरकगतिमें उत्पन्न होता है, तब नारकीय समूहके द्वारा अवरुद्ध होकर तिल-तिल टुकड़े कर दिशाओंमें विभक्त कर दिया जाता है। बार-बार पुकारा जाता और भर्त्सित किया जाता। विद्युत्की तरह चंचल तलवारोंसे विदारित किया जाता। अकेला ही बहुतोंके द्वारा आक्रान्त, स्खलित, दलित, पदमर्दित और फेंका जाता है। नीचे किया जाता, घुमाया जाता, झुकाया जाता, शूलीमें और यमके दांतोंमें। पछाड़ा और मोड़ा गया, धरतीपर गिर पड़ता है। चिल्लाता हुआ करपत्रों (आरों) से फाड़ा जाता। भालोंसे विदारित टुकड़े-टुकड़े हो जाता। बड़े-बड़े ऊखलोंमें मूसलोंसे कूटा जाता। शक्तियोंसे पिरोया गया और यन्त्रोंसे पीड़ित किया जाता। जलती हुई आगकी ज्वालाओंसे जलाया जाता, मर्मभेदी अपशब्दोंसे बोला जाता, सेल, भालों और लौह-अंकुशोंसे छेदा जाता, पीप-कुण्डमें ढकेल दिया जाता, रक्तसे शरीर नहा जाता।

घत्ता—इस प्रकार मनमें क्रोध धारण करते हुए और युद्धमें प्रहार करते हुए उसका खण्डित शरीर होकर भी जा लगता है। इस प्रकार तमसे अन्धे नारकीय समूहमें पलमात्रका भी सुख नहीं है ॥५॥

६

शृंगधारी पशुओं-पक्षियों, दाढ़वाले और नखवाले पशुओंमें संसारके संगमको भोगता हुआ यह जीव निकल नहीं पाता। कौआ, बगुला, कोयल, चक्रवाक, सारस, चारभास, भैरुण्ड, सिंह, शरभ, सुअर, सालूर, घार, मोर, मण्डल, मार्जार (बिलाव), कीर, कुरर, कुंजर, सारंग, लावा, पारावत, तुरंग, मुर्गा, वानर, महिष, मराल, मेष, वृषभ, खर, करभ, शृगाल, सेढ, सरढ, तरच्छ, रीछ, मगर, महोरग, कच्छप और मत्स्यों आदिकी तीखी तिर्यक् गतिके दुःखोंको देनेवाली नाना योनियोंमें उत्पन्न होता हुआ बलका नाश होना, बेड़ियोंसे जकड़ा जाना, भारका उठाना, नाना

छिंदणु भिंदणु ताडणु तासणु   उक्कत्तणु सरीरविद्धंसणु ।
सरपाहाणसंघसंघट्टणु   लोट्टणु आवट्टणु परिवट्टणु ।
दलणु मलणु मुसुमूरणु जूरणु   पीलणु पउलणु दारणु मारणु ।
छुंहतिण्हाकिलेससंतावणु   भारारूढदेसपुरगामणु ।
एव दुक्खलक्खाइं सहेप्पिणु   जीव तिरियगइ कह व मुएप्पिणु ।
घत्ता—णियकम्मवसायउ होइ चिलायउ पारसु बब्बरु सिंहलु ॥
हुणचीणणिवासउ अमणुयभासउ णउ पावइ अज्जवकुलु ॥६॥

७

खंडयं—मेच्छो ण कुणइ णियहियं   करइ दुलंघं दुक्कियं ।
विहुरावत्तरउद्दए   णिवडइ णरयसमुद्दए ॥१॥
जइ वि लहइ अवियलु पविमलु कुलु   हियइच्छिउ किं पि संपयफलु ।
खमदमसमसंजमसंजुत्तहं   तो वि ण लहइ संगु गुणवंतहं ।
कुगुरुकुदेवकुमग्गें मुज्झइ   जिणवरवयणु कया वि ण बुज्झइ ।
जडविडकहियहु मयवहधम्महु   लग्गइ काइं मि कुच्छियकम्महु ।
लुद्ध मुद्ध चंडिइ मंडिवि मिसु   पियइ मज्जु कवलइ सरसामिसु ।
पसुबलि देंतहं ण खमइ वइवसु   मारउ मरिवि होइ पुणरवि पसु ।
विरसंतहं सिरकमलु लुणिज्जइ   सो वि तहिं जि अण्णें मारिज्जइ ।
पुव्वणिबद्धउ अग्गइ धावइ   जो जं करइ सो जि तं पावइ ।
घत्ता—पसु फाडिवि खज्जइ वारुणि पिज्जइ सग्गु मोक्खु पाविज्जइ ॥
जइ एण जि कम्में ता किं धम्में पारद्धिउ सेविज्जइ ॥७॥

८

खंडयं—हुयवहहुणिया सग्गयं   जंति परावरमग्गयं ।
जाया देवा जइ अया   परिसया दियवरणया ॥१॥
वेयकहियमंतहिं आयामइ   तो अप्पाणउ कीस ण होमइ ।
सोक्खिउ सग्गसोक्खु किं णेच्छइ   किं कुसरीरें बद्धउ अच्छइ ।
णियडिंभइ मुइ धाहहि कंदइ   छायलु छावउ छम्मिउ छिंदइ ।
ताडिज्जइ संरुज्झइ बज्झइ   वच्छु णिरोहिवि अण्णें दुज्झइ ।
खाइ पुरीसु विबुद्धि वराई   दुरियहलेण सुरहि संभूई ।
लोयहु देवि भणिवि वक्खाणइ   धुत्तु अधुत्तइं वंचहुं जाणइ ।

---

६. MBP छुहतण्हा° । ७. M °गावणु । ८. MBP सिंघलु । ९. MBP अमुणियभासउ, but gloss in P नरभाषारहितः ।

७. १. MBP मुणइ । २. B णरइ समुद्दए । ३. P °कुसम्में । ४. MBP °कम्महु । ५. MBP °धम्महु । ६. MBT विलुज्जइ ।

८. १. P हुयवहु । २. M सग्गभोग्गु; B सग्गजोग्गु; P सग्गभोग्गु । ३. MBP छायलछावउ । ४. MB दुब्भइ । ५. MBP अधुत्तहं वंचइ ।

प्रकारके बन्धन, छेदन-भेदन-ताड़न, त्रासन-उत्कर्तन, शरीरका विध्वस्त होना, तीर और पत्थरोंसे संघर्षण, लोटना, घूमना-फिरना, दलन, मला जाना, मसला जाना, सताया जाना, पीड़ित होना, काटा जाना, फाड़ा जाना, मारा जाना, क्षुधा-तृष्णाके दुःखोंका सन्ताप और भारसे आरूढ़ होकर देश-पुर-गांवमें जाना, इस प्रकार लाखों दुःखोंको सहनकर जीव किसी प्रकार तिर्यक् गति छोड़कर—

घत्ता—अपने कर्मके वशीभूत भील, पारसीक (पारसी(?)), बर्बर, सिंहल, हूण और चीनका निवासी होता है, मनुष्यकी भाषा नहीं जाननेवाला वह आर्यकुल नहीं पाता ॥६॥

७

म्लेच्छ भी अपना हित नहीं करता और वह अलंघ्य दुष्कृत करता है, तथा दुःखोंके आवर्तसे भयंकर नरकरूपी समुद्रमें पड़ता है। उसके बाद यद्यपि वह अविकल अत्यन्त पवित्र कुल पाता है और मनके द्वारा चाहे गये कुछ सम्पत्तिके फलको पाता है, तब भी गुणवानोंकी संगति प्राप्त नहीं करता। कुगुरु, कुदेव और कुमार्गमें मुग्ध होता है, जिनवरके वचनोंको कदापि नहीं समझता। मूर्खों और धूर्तोंके द्वारा कहे गये पशुवधधर्म और किसी भी कुत्सित कर्ममें लग जाता है, लोभी और मुग्ध वह चण्डिकाका बहाना बनाकर मद्य पीता है और सरस मांस खाता है। यम, पशुबलि देनेवालोंको क्षमा नहीं करता, मारनेवाला मारकर फिर पशु होता है। जो चिल्लाते हुए पशुओंका सिरकमल काटता है, वह भी दूसरोंके द्वारा वहाँ मारा जाता है। पहलेका संचित कर्म आगे दौड़ता है जो जैसा करता है वह वैसा ही पाता है।

घत्ता—पशु मारकर खाया जाता है, सुराका पान किया जाता है और यदि इस कर्मसे भी स्वर्ग-मोक्ष पाया जाता है, तो फिर धर्मसे क्या ? शिकारीकी ही सेवा करनी चाहिए ॥७॥

८

आगमें होमे गये बकरे (अज) स्वर्ग और मोक्ष गये हैं और देव हुए हैं, यदि ब्राह्मणोंका सिद्धान्त यह है, तो वेदोंमें कथित मन्त्रोंके द्वारा वह प्राणायाम आदि क्यों करता है ? अपनेको क्यों नहीं होम देता ? श्रोत्रिय स्वर्ग और मोक्ष क्यों नहीं चाहता, खोटे शरीरसे बँधा हुआ क्यों रहता है ? अपना पुत्र मरनेपर धाड़ मारकर रोता है, वंचक वह अज और उसके बच्चेका वध करता है, बेचारी गाय ताड़ित की जाती है, रोकी जाती है, बाँधी जाती है, बछड़ेको रोककर अन्यके द्वारा दुही जाती है, मल खाती है। बुद्धिहीन और बेचारी पापके फलसे गाय हुई है, परन्तु देवी कहकर लोगोंसे उसकी व्याख्या करता है; धूर्तजन सीधे-सादे लोगोंको ठगना जानता है।

गाइ चउप्पय तणयरि जेही   सूयरि ह[6]रिणि वि रोहिणि तेही ।
हा हा बंभणेण माराविय   रायहु रायवित्ति दरिसाविय ।
पियरपक्खु पक्खु णिरिक्खइ   मंसखंडु दिय[7]पंडिय भक्खइ ।
धोयंतउ दुद्धें पक्खालउ   होइ कहिं मि इंगालु ण धवलउ ।
एहु देहु किं सलिलें धुप्पइ   हिंसारंभें डंभें लिप्पइ[8] ।
अण्णण्णें रंगें रंगिज्जइ   परमागमरसेण णउ भिज्जइ ।
मूढु जिणिंदसेव कहिं पावइ   सवणु गहणु धरणु वि ण विहा[9]वइ ।

घत्ता—मायारउ मण्णइ मुणि अवगण्णइ जीवहिंस पडिवज्जइ ॥
माणुसु वि हवेप्पिणु पाउ करेप्पिणु पुणु संसारि णिमज्जइ ॥८॥

९

खंडयं—ईसि[1] णिउंचिय जोव्वणं   कामकोहतवभावणं ।
काउं सेवइ जो वणं   सो पावइ तं भावणं ॥१॥
अवरु वि जायउ उववणठाणइ   जोइसकप्पणिवासविमाणइ ।
वाहणु वेयालिउ छत्तियधरु   वाइत्तयवायउ सब्भेयरु ।
णच्चणु गायणु सुइ[2]सुहदावउ   अण्णु वि होइ असम्मयभावउ ।
णवर मरंतु संतु उव्विज्जइ   वेवइ चल[3]इ घुलइ परिखिज्जइ ।
हा कप्पद्दुम हा माणससर   हा णीहारहारसंणिहघर ।
हा अच्छरउलमणसंमोहण   हा परियणपडिवक्खणिरोहण ।
ह[4]यवलिपलियरोयसयसंच[5]य   हा हा दिव्वदेह हा णववय ।
हा[6]लंकारसार सहसंभव   हा गंधार महुर वीणारव ।
हा देवंगवत्थ णिच्चुज्जल   हा मंदारदाम चल सभसल ।

घत्ता—सम्मत्तविमुक्कहु जिणपयचुक्कहु अवसें हियउ ण सुज्झइ ॥
सग्गग्गु मुयंतहु पलयहु जंतहु का[7]सु सरीरु ण डज्झइ ॥९॥

१०

खंडयं—सुललियमइलियचेलयं   अइओहुल्लियमालयं ।
भोयविरा[1]यणिबंधयं   जायं मह खयचिंधयं ॥१॥
सयलजिणाहिसेयधुयमंदर   धूवधूमधूवियगिरिकंदर ।
हा हे कुलिसपाणि जगसुंदर   पइं मि ण रक्खिउ देव पुरंदर ।

---

६. MBP हरिणी रोहिणि । ७. MBP दिउ पंडिउ । ८. MBP हिंसारंभि डंभि तो लिप्पइ । ९. M विभावइ ।

९. १. MT इसी and gloss मुनिर्भूत्वा; P इसि । २. MP सुदुसहदावउ । ३. MBP बलइ । ४. MBP हा वलि° । ५. MBP °संचुय but gloss in P देह । ६. सोलंकार° । ७. MB कासु ण हियवउ; P कासु वि हियउ ण ।

१०. १. MBP °विराय° ।

गाय जिस प्रकार चौपाया है और घास चरनेवाली है, उसी प्रकार सुअरनी, हरिनी और रोहिणी (मछली) भी। हा-हा, ब्राह्मणोंके द्वारा वे मरवायी जाती हैं और राजाके लिए राजवृत्ति दरसायी जाती हैं, पितरपक्षमें स्पष्ट देखा जाता है कि द्विज विद्वान् मांसखण्ड खाते हैं, अंगार (कोयला) दूधसे धोनेपर भी कभी भी सफेद नहीं हो सकता। यह देह जो हिंसाके आरम्भ और दम्भसे लिप्त होती है, क्या पानीसे धोयी जा सकती है ? अन्य-अन्य रंगोंमें यह रंगी जाती है परन्तु परमागमके रसमें यह नहीं भीगती। मूर्ख जिनेन्द्रकी सेवा कैसे पा सकता है, उसे तो उसका सुनना, ग्रहण करना, धारण करना भी अच्छा नहीं लगता।

घत्ता—मायारत (मायावी) को मानता है, मुनिको अवहेलना करता है, जीव हिंसा स्वीकार करता है, मनुष्य होकर भी पाप कर फिर संसारमें डूबता है ॥८॥

९

जो यौवन तथा काम-क्रोधसे सन्तप्त भावनाको थोड़ा नियन्त्रित कर वनमें तप करता है वह उस भवनवासी स्वर्गमें जन्म लेता है। और दूसरा उपवन स्थान, तथा ज्योतिष कल्पवास विमानोंमें उत्पन्न हुआ वाहन वैतालिक छत्रधारी वाद्य बजानेवाला भाँड़ आदि होता है। कानोंको सुख देनेवाला नृत्य और गायन करनेवाला असम्यक्‌वाला होता है। वह भी मरते हुएको चिन्ता करता है, काँपता है, चलता है और खेदको प्राप्त होता है। हाय, कल्पवृक्ष, हाय मानस सरोवर, हाय नीहारके समान घर। हाय अप्सराकुलका मन सम्मोहन करनेवाले, हाय परिजन और प्रतिपक्षका निरोध करनेवाले। इस त्रिबलि बुढ़ापा और सैकड़ों रोगोंके संचयका नाश करनेवाले, हाय दिव्य देह और नव वय। हाय, सहोत्पन्न अलंकारश्रेष्ठ। हाय, मधुर वीणा रव-वाले गन्धार। हाय, नित्य उज्ज्वल देवांग। हाय, चंचल भ्रमर सहित मन्दारमाला।

घत्ता—सम्यक्त्वसे विमुक्त और जिनपदसे चूके हुए व्यक्तिका हृदय शुद्ध नहीं होता, स्वर्ग छोड़ते हुए या प्रलयको प्राप्त हुए किस व्यक्तिका शरीर नहीं जलता ? ॥९॥

१०

सुन्दर मैले-कुचैले वस्त्रों और अत्यन्त झुकी हुई मालावाले मेरे मृत्युचिह्न ही शरीरसे विरक्त होनेका कारण बन गये हैं, जिनेन्द्रके जन्माभिषेकमें सुमेर पर्वतको धोनेवाले, और धूप-

हा मइं माणुसेण होएवउ किमिमल[2]भरियइ गब्भि वसेवउ।
सोणिविणिग्गमि दुक्खु णिएवउ णारिउरोरुह[3]छीरु पिएवउ।
हा हा देवलोय [4]कहिं पेच्छमि कुहियकलेवरि वासु ण इच्छमि।
जाउ मसाणहु तं मणुयत्तणु [5]वर वणि होसमि चंदणु वंदणु।
अट्टरउद्दभावसं[6]चोइय मिच्छादिट्ठि सुदिट्ठिवि[7]ओइय।
हा हा हा भणंतु उब्भि[8]यकर [9]एम मरंत होंति सुर तरुवर।

घत्ता—जिणधम्मपरंमुहु दुण्णयसंमुहु खयकाले अच्छोडिउ ॥
बहुविहमयमत्तें [10]इय मिच्छत्तें को भवगहणि ण पाडिउ ॥१०॥

११

खंडयं—तिप्पयारसंठाणयं [1]चोद्दहरज्जुपमाणयं।
जीवाजीवसुसंकुलं विस्सं णिच्चं णिच्चलं ॥१॥
थिउ आयासि अणंताणंतइ केवलणाणविलोयणखेत्तइ।
गाढु गाढु छहिं दव्वहिं भरियउ केण वि कियउ ण केण वि धरियउ[2]।
पुग्गलजीवभावकयभेयहिं कालवसेण जाइ पज्जायहिं।
पहिलउ दाणवणरयणिवासउ पल्हत्थियसरावसंकासउ।
वीयउ मणुयतिरिक्खणिहेलणु वज्जोवमु पयत्थपरिघोलणु।
कप्पाकप्पदेवणेवच्छउ तइयउ जगु मुइंगसारिच्छउ।
मोक्खु वि आयवत्तसंणिहयरु जो तं पत्तउ सो अजरामरु।
परमाणुयपरमाणु ण पेक्खमि संसारियहु सोक्खु किं अक्खमि।

घत्ता—चउगइहि [3]मरंतें पुणु पुणु होंतें विहसिवि देवें वुत्तउ ॥
सुहदुक्खणिरंतरि तिजगब्भंतरि जीवें काइं ण भुत्तउ ॥११॥

१२

खंडयं—[1]सारमेयवुड्ढिगयं सारमेयसिवजोग्गयं।
एसो कम्मकले वरं मण्णइ तह[2] वि कलेवरं ॥१॥
अट्ठिलट्ठिकुड्डयलणिउत्तउ दीहरणाउणिबंधण[3]वंतउ।
पा[4]सुलियातुलाहिं घणघडियउ संधिहि संधिहि खील[5]यजडियउ।
पट्ठिवंसखंभुण्णयमाणउ जंघाजुयलु [6]समोड्डियथूणउ।
मे[7]ज्जमंसचिक्खिल्लविलित्तउ णवदु[8]वारु लोहियसंसित्तउ।

---

२. B °भरियगब्भि। ३. MK °खीरु। ४. MBP किं। ५. MBP वरि। ६. MBP °संचोइउ। ७. MBP °विओइउ। ८. MBP °करु। ९. M एम मरेवि होइ सुरु तरुवरु; BP एम मरेवि होइ सुरतरुवरु; १०. MBP इह।

११. १. MP चउदह°। २. P adds after this line : अच्छइ सयलु वि जीवहं भरियउ धियघडउल्लउ जिम तिम वरियउ। ३. M भवंतें; BP भमंतें।

१२. १. MBP सारमेयवुड्ढीगयं। २. P तह व। ३. MBP णिबंधणवत्तउं। ४. MB पंसिलिया°; P पंसुलिया°। ५. MBP खीलिहिं। ६. BP समोडिय°। ७. P मज्ज°। ८. MBP °दुवार°।

धूम्रसे गिरि-गुफाओंको सुवासित करनेवाले हे इन्द्रदेव, तुमने भी मेरी रक्षा नहीं की। हाय, मुझे मनुष्य होना होगा तथा कृमियों और मलसे भरे गर्भमें रहना होगा। गर्भसे निकलनेपर दुःख देखना होगा? नारीके स्तनसे निकलनेवाला दूध पीना होगा? हाय-हाय देवलोक, मैं तुम्हें कहाँ देखूँगा? नष्ट होनेवाले शरीरमें मैं वास नहीं चाहता। वह मनुष्यत्व मरघटमें जाये, अच्छा है मैं वनमें चन्दन या वन्दन वृक्ष होऊँ। आठ प्रकारके रौद्रभावोंसे प्रेरित तथा सम्यक् दृष्टिसे विरहित मिथ्यादृष्टि, हाय-हाय करता हुआ दोनों हाथ उठाये हुए, इस प्रकार मरते हैं और देव वृक्ष बनते हैं।

घत्ता—जिनधर्मसे विमुख, दुर्नयोंके प्रति उन्मुख क्षयकालमें नष्ट हुआ कौन मनुष्य विविध मदोंसे मत्त मिथ्यात्वके द्वारा गहन संसारमें नहीं डाला जाता ॥१०॥

११

शराब आदिकी आकृतिवाला और चौदह राजू प्रमाण, तथा जीव और अजीव (द्रव्यों) से अच्छी तरह व्याप्त यह विश्व नित्य और निश्चल है। अनादि-अनन्त तथा केवलज्ञानके अवलोकनका विषय आकाशमें स्थित है। जो सघन रूपसे छह द्रव्योंसे भरा हुआ है। उसे किसीने बनाया नहीं है, और न किसीने उसे उठा रखा है। पुद्गल जीव और भावसे निर्मित पर्यायोंसे कालके वशसे परिणमित होता रहता है। पहला (अधोलोक) दानव और नरकोंका निवास है जो उलटे सकोरेके आकारका है। दूसरा (मध्यलोक) वज्रके समान मनुष्योंका घर है। जिसमें पदार्थों (जीवादिकों) की प्रवृत्तियाँ होती रहती हैं। तीसरा लोक (ऊर्ध्वलोक) मृदंगके आकारका है, और जिसमें कल्प-अकल्प देवोंका निवास है। मोक्ष भी छत्तेके आकारका है जो वहाँ पहुँच जाता है, वह अजर-अमर है। संसारीके सुखका क्या वर्णन करूँ, मैं उसे परमाणुमात्र भी सुख नहीं देखता।

घत्ता—देवने (गौतम गणधरने) हँसकर कहा—चार गतियोंमें मरते हुए और बार-बार उत्पन्न होते हुए इस जीवने सुख-दुःखसे निरन्तर भरपूर इस त्रिलोकके भीतर क्या नहीं भोगा? ॥११॥

१२

प्रचुर मेदाके बढ़नेपर यह जीव कुत्ता और शृंगालके योग्य शरीरवाला बनता है। तब भी यह जीव संसारमें उस शरीरको श्रेष्ठ मानता है। हड्डियोंरूपी लकड़ियोंके ढाँचेपर निर्मित, लम्बी-लम्बी स्नायुओंसे बँधा हुआ, पसलियोंरूपी तुलाओंसे अच्छी तरह कसा हुआ, जोड़ों-जोड़ोंपर कीलोंसे जड़ा हुआ, पीठरूपी बाँसके खम्भेपर उन्नत मानवाला, मुड़ी हुई थूनियोंकी तरह जाँघोंवाला,

सेयसुक्कमंथिक्कदुगंधउ[९] [१०]छिरतुंदाहिजालसंरुद्धउ ।
वोक्कयंतकिमिउलमलपोट्टलु वियलियरसवसवीसदु[११] विट्टलु ।
अब्भंतरि किर केण पलोइउ वाहिरि चम्मपडलपच्छाइउ ।
णिच्चमुत्तलालाजलथिप्पिरु रोइ पूइ अद्धुउ संताविरु ।
सेंभपित्तमारुयदोसायरु भूयगामदेहिहि देहु जि घरु ।
[१२]रमणीरमणरायरहसुच्छवु असुइ जि भक्खइ असुइसमुब्भवु ।

घत्ता—करिमयरहिं माणिइ गंगावाणिइ ण्हाणिउ ण्हाणिउ मुज्झइ ॥
मयकामें कोहें मायामोहें मइलिउ देहु ण सुज्झइ ॥१२॥

१३

खंडयं—दुविहतवम्मि सुलीणयं जइ करेह अप्पाणयं ।
असुइमिणं मणुयत्तयं ता हो होइ पवित्तयं ॥१॥

पंचिंदियसुहि मणु चोयंतहु तहु आसवइ कम्मु अतवंतहु ।
णाणावरणिउ[१] पंचपयारउ दंवियपडपंगुरणवियारउ ।
णवविहदंसणु[२] गुणविणिवारउ तं णिज्जियणिसिद्धिपडिहारउ ।
दुविहु जि वेयणीउ गयसयणु व अमहु समहु असिधारालिहणु व ।
मोहणीउ मइरा इव मोहइ अट्ठावीसभेउं[३] जिणु ईहइ ।
चउविहु चउगइगामिहिं ढुक्कइ आउसु हडि व णिरुंभिवि थक्कइ ।
दोचालीसणामु णामंकउ चित्तवण्णपरिणामासंकउ ।
दोविहु मइलसमुज्जललीलउ गोत्तु कुलालभाणभावालउ ।
अंतराउ चउएक्कविहायउ लग्गइ कारिहिं वारियदायउ ।
पयडिट्ठिदिअणुभाग[४]पएसहिं बज्झइ चप्पिवि वंधविसेसहिं[५] ।

घत्ता—गुणवंतु अणाइउ सुहुमु विवेइउ तिगइ दुअंगणिबद्धउ ॥
जिउ कत्तउ भोत्तउ भवतणुमेत्तउ उड्ढगामि[६] संसिद्धउ ॥१३॥

१४

खंडयं—एंतहु[१] पावहु णिब्भरं जे विरयंति ण संवरं ॥
ताणं दुक्खदंवक्कडी[२] पडिही सीसे णं तडी ॥१॥

रुज्झइ चित्तु झाणवित्थारें फासविलास[३] धरणिसंथारें ।
रसुं[४] पसुपिंडग्गहणायारें दिट्ठि ण घेप्पइ कहिं मि वियारें ।

---

९. B °मंथिक्क° । १०. P थिर°; K छिर° but corrects it to थिर° । ११. MBP °वीउजि and gloss in P बीभत्सं अपवित्रम् । १२. M रमणीरमणु रायरहसुब्भउ; B °रहसुच्छउ; P °रहसुब्भउ but gloss उत्सवः ।

१३. १. MBP णाणावरणउ । २. T दंसिय° । ३. MBP °भेय । ४. M° अणुभाय° । ५. M बंधवसेसहिं । ६. MBP उद्धगामि ।

१४. १. P ए तहु and gloss ए आगमे प्रसिद्धः, तहु पावहु तस्य पापस्य । २. P °दुवक्कडी । ३. MBP °विलासु । ४. MB रसवसु; P रस पसु° ।

मज्जा और मांसकी कीचड़से लिपटा हुआ, रक्तसे रंगे हुए नौ द्वारवाला, प्रस्वेद शुक्र और अस्थियोंसे दुर्गन्धित, शिराओंके कृमिजालसे संरुद्ध, विपरीत ढंगसे क्षरणशील कृमिकुलके मलका पोटला, विगलित रस और चर्बीसे युक्त अपवित्र यह शरीर है। भीतर इसे किसने देखा ? बाहर यह चर्मपटलसे आच्छादित है। नित्य ही मूत्र-लाररूपी जलसे चिपचिपा, रोगी, दुर्गन्धित और अत्यन्त सन्तापदायक। वात-कफ और पित्तके दोषोंका आकर, पृथ्वी आदि चार महाभूतोंके समूह-का घर ही शरीर है। रमणीके रमणरागके हर्षसे आनन्दित यह जीव अपवित्रतासे उत्पन्न चीजोंको खाता है।

घत्ता—हाथियों और मगरोंके द्वारा मान्य गंगाके पानीमें नहा-नहाकर मोहको प्राप्त होता है। मद, काम, क्रोध, माया, मोहसे अपवित्र यह शरीर शुद्ध नहीं होता ॥१२॥

१३

यदि वह दो प्रकारके तपमें अपनेको लीन करता है, तो यह अपवित्र मनुष्यत्व पवित्र होता है। पाँच इन्द्रियोंके सुखोंमें मनको प्रेरित करते हुए, और तप नहीं करते हुए जीवके कर्मका आस्रव होता है। ज्ञानावरणी पांच प्रकारका है, जो वस्त्रके समान आवरण (आच्छादन) दिखानेवाला है; गुणोंका निवारण करनेवाला दर्शनावरणी नौ प्रकारका है; जो निर्जित और निषेध करनेवाले प्रतिहारीके समान है। रोगयुक्त शयनके समान वेदनीय दो प्रकारका है, जो मधुर सहित और मधुर रहित तलवारकी धारको चाटनेके समान सुखद और दुःखद है। मोहनीय कर्म मदिराके समान मुग्ध करता है, जिन भगवान् उसके अट्ठाईस भेद बताते हैं। चार प्रकारका आयुकर्म चार गतियोंमें जानेवालोंके द्वारा पहुँचता है और खोटकके समान वहीं अवरुद्ध होकर रह जाता है। नामकर्म बयालीस प्रकृतियोंका होता है और वह चित्रके रंगोंकी परिणतिके समान परिणामोंसे युक्त होता है। कुम्हारके बर्तनोंके समान छोटे-बड़े आकारवाला गोत्रकर्म दो प्रकारका होता है—मलिन और समुज्ज्वल, (उच्चगोत्र और नीच गोत्र)। अन्तराय कर्म चार और एक—पाँच प्रकारका है जो करनेवालेको दानका निवारण करनेवाला होता है। तथा प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेशवाले बन्ध विशेषोंसे बलपूर्वक जकड़ लेता है।

घत्ता—गुणवान्, अनादि सूक्ष्म विवेकी, दो शरीरोंसे निबद्ध (तैजस और कार्मण) त्रिगतिवाला यह जीव कर्ता और भोक्ता उत्पन्न शरीर मात्र ऊर्ध्वगामी और स्वयं सिद्ध है ॥१३॥

१४

आते हुए पापका जो पूर्ण संवर नहीं करते, उनके ऊपर सिरपर बिजलीकी तरह असह्य वज्रपात होगा। ध्यानके विस्तार और धरतीपर सोनेसे स्पर्शविलासी चित्त रुक जाता है, पशुके पिण्डके समान आहार ग्रहण करनेसे रसना इन्द्रिय रुक जाती है, और वह दृष्टि विकारभावसे कुछ

सवणु सुसरि दुसरेसु वि सरिसउ कीरइ पयलियरइआमरिसउ ।
णासारंधु गंधअविहत्तिइ मणवयकायदुरीह तिगुत्तिइ ।
दुरियहु सुयरिउ रक्खणु दिज्जइ रोसु खमाइ होंतु णियमिज्जइ ।
अविणयगारउ माणु मउत्तें मायाभाउ समुज्जुयचित्तें ।
लोहु सुपत्तदाणपविहाएं अहवा सव्वसंगपरिचाएं ।
मयविब्भमु परगुणसंभरणें जिप्पइ हरिसु होंतु सुथिरमणें ।
दप्पु वि घोरवीरतवचरणें राउ [10] रसियरामापरिहरणें ।
घत्ता—पिहियासवदारहु जुत्तायारहु अहिणउं कम्मु ण पइसइ ॥
जं चिरु जीवासिउ तं पि अपोसिउ कायकिलेसें णासइ ॥१४॥

१५

खंडयं—मणमेत्ते वावारए एसो कोस ण कीरए ।
सासयसुहओ संवरो होहं होमि दियंबरो ॥१॥
पुणु परमेसरु सवउ सुवइ कालें अहव उवाएं पिवइ ।
जिह धरणीरुहहलु तिह दुक्किउ कामाकामियणिज्जरतक्किउ ।
तणयराहं सुसहावें सोम्महं बंधणदारणमारणगम्महं ।
दूसहदुक्खभावभयभरियहं होइ अकामें णिज्जर तिरियहं ।
विरइज्जइ वेरम्मपहाणहिं कामें णिज्जर रिसिसंताणहिं ।
सिसिरायासणिवासायरणहिं रुक्खमूलअत्तावणकरणहिं ।
थियपलियंकधित्तमहिदंडहिं गोदुहआसणेहिं गयसोंडहिं ।
पक्खमासवरिसंतुववासहिं देज्जवित्तिसंखाविण्णासहिं ।
घत्ता—ढोइयणीसासहि सुणितणुमूसहि खरतवजलणें तत्तउ ॥
जीविउ हेमुज्जलु थक्कइ केवलु बहुकम्ममलें चत्तउ ॥१५॥

१६

खंडयं—कुंवहे जंतं रुंभए णाणंकुसिण णिसुंभए ।
वयपायवणिल्लूरणं साहू णियमणवारणं ॥१॥
एक्कगासदोगासाहारहिं विविहावग्गहरसपरिहारहिं ।
दोहमंसुलोमहिं मलधरणहिं आयंबिलचंदायणचरणहिं ।
वोसट्टंगमुक्करइरंगहिं वज्जियघरपुरदेसपसंगहिं ।
सुण्णावासमसाणागारहिं हयणेहहिं अणियत्तिविहारहिं ।
दंसमसयछुहतण्हासोसहिं खलकयकण्णकडुयआकोसहिं ।

---

५. MBP गंधु अ° । ६. MBP एंतु । ७. M समुज्जल° । ८. P मइविब्भमु । ९. B omits this foot. १०. MBP रसिउ रामा° ।

१५. १. मणमेत्तए । २. P पच्चइ । ३. MBP ससहावें । ४. BP सोमहं । ५. MBP °पहाणहं । ६. M सिरिसंताणहं; BP रिसिसंताणहं । ७. MBP °वरिसद्धुव° । ८. MB वेज्ज° । ९. कम्ममलें परि° ।

१६. १. MBP कुपहे । २. P एक्कग्गासदुगासा° । ३. M अणियट्ट° ।

भी ग्रहण नहीं करती । कान सुन्दर और असुन्दर स्वरोंमें समान हो जाते हैं, वे नष्ट राग-द्वेषवाले कर दिये जाते हैं। और गन्धके अविभाजन (सुगन्ध-दुर्गन्ध आदि) से नाक भी (वशमें कर ली जाती है); तीन गुप्तियों (मन, वचन और काय) के द्वारा मन, वचन और कायकी दुश्चेष्टाओंको (वशमें करना चाहिए); सुचरितको पापसे संरक्षण दिया जाये, क्रोध होनेपर क्षमासे उसे नियमित किया जाये, मृदुतासे अविनय करनेवाले मानको, और सरलचित्तसे मायाभावको, सुपात्रको दान देकर लोभ अथवा सब प्रकारका परिग्रह छोड़कर । दूसरेके गुणोंकी याद कर मदके विलासको और स्थिर मनसे होते हुए हर्षको जीतना चाहिए। घोर और वीर तपके आचरणसे दर्पको और रसवन्ती स्त्रीके परित्यागसे रागको ।

घत्ता—इस प्रकार जिसके आश्रवद्वार बन्द हैं ऐसे मुक्त आहार-विहारवाले जीवको कर्मका बन्ध नहीं होता, और जो पुराना संचित कर्म है अपोषित, वह काय-क्लेशके द्वारा नष्ट हो जाता है ॥१४॥

१५

मनोमात्रके द्वारा आचरणमें ऐसा क्यों नहीं किया जाता कि शाश्वत सुखवाला संवर हो। "मैं दिगम्बर होता हूँ।" फिर परमेश्वर सच सोचते हैं कि समय अथवा उपायसे जिस प्रकार वृक्षोंके फल पकते हैं, उसी प्रकार सकाम और अकाम निर्जरासे कल्पित पाप नष्ट होता है। स्वभावसे सौम्य शरीरधारियों, बन्धन, विदीरण और ताड़न आदि बातोंको प्राप्त होते हुए, असह्य दुःख भावसे भरे हुए तिर्यंचोंकी अनाम निर्जरा होती है। शिशिरमें आकाशके नीचे निवास करनेवाले, वृक्षोंके मूलमें आतापन तपनेवाले, पर्यंकासनोंमें स्थित और महीदण्डपर अपनेको निक्षिप्त करनेवाले गोदुह और गजशौंड आसनोंवाले, पक्ष-माह और वर्षके अन्त तक उपवास करनेवाले, देय और आहारकी वृत्ति और संख्याकी रचना करनेवाले, वैराग्य प्रधान ऋषि सन्तानोंके द्वारा—

घत्ता—श्वाससे चलते हुए मुनिके शरीररूपी धातुविशेष (मूषा) में तीव्र तपज्वालासे तपकर जीवन स्वर्णकी तरह उज्ज्वल और कर्ममलसे मुक्त होकर केवली होकर रह जाता है ॥१५॥

१६

व्रतरूपी वृक्षको विदारित करनेवाले अपने मनरूपी हाथीको साधु कुमार्गमें जानेसे रोकता है और ज्ञानरूपी अंकुशसे उसे वशमें रखता है। एक या दो कौर आहार करनेवाला विविध अवग्रहों और रसोंका परिहार करनेवाले लम्बी दाढ़ी और बालवाले मलधारी, आताम्र और चान्द्रायण तपका आचरण करनेवाले, कायोत्सर्गसे रतिरंगको छोड़नेवाले, घर, पुर और देशके प्रसंगोंसे दूर रहनेवाले, शून्य आवास और मरघटोंको आवास बनानेवाले, स्नेहसे रहित और अनियमित विहार करनेवाले, दंश-मशक, भूख और प्यासको सहन करनेवाले, दुष्टोंके द्वारा

वायवद्दलुकंपियकायहिं सीउण्हहिं परपहरणिहायहिं ।
केसालुंचणणिच्चेलत्तहिं कंचणतणें[4] सुहिरिउसमचित्तहिं
विसमपरीसहसहणब्भासहिं रोयातंकहिं कासहिं सासहिं ।
जम्मणमरणणिबंधुद्धाइउ[5] एम खविज्जइ कम्मु पुराइउ ।
घत्ता—जिह हयं[6] णिज्झरणें बद्धें वरणें रविकरेहिं सरु सोसइ ॥
तिह णियमियकरणें रिसितवचरणें भवकिउ कम्मु पणासइ ॥१६॥

१७

खंडयं—इय काऊण णिज्जरं जे हणंति भवपंजरं ।
णीरोयं अजरामरं ते लहंति सोक्खं वरं[1] ॥१॥
जेण मोक्खफलु तं पाविज्जइ सो धम्मंघिउ एहउ गिज्जइ ।
खंसखमायलंतुग्गयदेहउ[2] मद्दवपल्लउ अज्जवसाहउ ।
सच्चसउच्चमूलु संजमदलु दुविहमहातवणवकुसुमाउलु ।
चउविहचायपसारियपरिमलु पीणियभव्वलोयछप्पयउलु ।
दियसंदोहसइकयकलयलु सुरवरणरखेयरसुहसयफलु[3] ।
दीणाणाहदीहसमणिग्गहु सुद्धु सोम्मुं[4] तणुमेत्तपरिग्गहु ।
बंभचेरछायाइ सुहासिउ रायहंसणियरेहिं समासिउ ।
एहउ धम्मरुक्खु लक्खिज्जइ जीवदयावईइ रक्खिज्जइ ।
झाणु[5] ठाणु भल्लारउ किज्जइ मिच्छामयहुं पवेसु ण दिज्जइ ।
सीलसलिलधारइ सिंचिज्जइ एम पयंत्तें[6] वड्ढारिज्जइ[7] ।
घत्ता—कोवाणलचुक्कउ होइ गुरुक्कउ जाइं रिसिंदहिं सिट्ठइं ॥
जगि ताइं सुहंकरु धम्ममहातरु देइ फलाइं सुमिट्ठइं ॥१७॥

१८

खंडयं—जहिं होहिम्मि[1] भवे भवे तहिं देहम्मि णवे णवे ।
दुक्खलक्खणिण्णासणे होउं[2] भत्ति जिणसासणे ॥१॥
अवरु णिरंतरु उज्झियगव्वें इयं[3] मग्गेवउ मणुएं भव्वें ।
चित्तु धुत्तसिद्धंतपरंमुहुं भवि भवि होउ जिणागमि संमुहुं ।
पंचिंदियपडिभडबलु भज्जउ भवि भवि विमलबुद्धि उप्पज्जउ ।
विसयकसायरायपरिचत्तउ भवि भवि होउ तिगुत्तिपंउत्तउ[4] ।
आसापासणिबंधणु तुट्टउ भवि भवि मोहजालु ओहट्टउ ।

४. MBP° तिण° । ५. MB णिबंधे आइउ; P °णिबंधइ आइउ । ६. K हर° and gloss हृत ।
१७. १. BPK परं । २. M खमखमायलतग्गयदेहउ; B खमखमायलु तुंगयदेहउ; P खमखमायलुत्तुंगयदेहउ । ३. MBP सुरणरवर° । ४. MBP सोमु । ५. MP झाणठाणु; B झाणट्ठाणु । ६. B पवत्ते । ७. M पट्टारिज्जइ; वड्ढाविज्जइ ।
१८. १. MBP होहम्मि । २. B होइ । ३. P इउ । ४. MBP °पयत्तउ ।

किये गये कर्णकटुक आक्रोशवाले, वायु और बादलोंसे उत्कम्पित शरीरसे युक्त मुनियोंके द्वारा शीतोष्ण पर-प्रहारके समूहों, केशलोंच और अचेलकत्वों (दिगम्बरत्व), स्वर्ण और तृण, मित्र और शत्रुमें समचित्तों, विषम परीषहोंके सहन करनेके अभ्यासों, रोगोंसे आक्रान्त खाँसी और श्वासोंके द्वारा, जन्म और मृत्युके प्रबन्धमें प्रवृत्त पुराने कर्मोंका इस प्रकार क्षय किया जाता है।

घत्ता—जिस प्रकार झरना सूखने और पाल बँध जानेपर रविकी किरणोंसे सरोवर सूख जाता है, उसी प्रकार इन्द्रियोंको नियमित करने और ऋषिके तपका आचरण करनेसे संसारमें किया गया कर्म नष्ट हो जाता है ॥१६॥

१७

इस प्रकार निर्जरा कर भव रूपी कारागृहको नष्ट कर देते हैं वे नीरोग अजर-अमर श्रेष्ठ सुख प्राप्त करते हैं। जिससे मोक्षरूपी फल प्राप्त किया जाता है वह धर्मरूपी वृक्ष इस प्रकार वर्णित किया जाता है। उसका शरीर क्षमारूपी पृथ्वीतलसे उत्पन्न है। मार्दव उसके पत्ते हैं, आर्जव उसकी शाखाएँ हैं, सत्य और शौच्य उसकी जड़ है, संयम उसका दल है, वह दो प्रकारके महातप रूपी नवकुसुमोंसे व्याप्त है, जिसका चार प्रकारके त्यागका परिमल प्रसारित हो रहा है और जो भव्य लोकरूपी भ्रमरकुलको प्रसन्न करता है, जिसमें मुनिसमूहके शब्दोंकी कलकल ध्वनि हो रही है, जो सुरवर, विद्याधर और मनुष्योंको शतशुभ फल देनेवाला है, दीन और अनाथोंके दीर्घ श्रमका निग्रह करनेवाला है, जो शुद्ध, सौम्य और शरीर मात्रका परिग्रह रखनेवाला है, जो ब्रह्मचर्यकी छाया (कान्ति) से शोभित है, राजहंसोंके समूहसे समादृत है। इस धर्मरूपी वृक्षको देखना चाहिए और जीवदयारूपी वृति (बागड़) के द्वारा रक्षा करनी चाहिए। उसे ध्यानरूपी स्थाणुका सहारा देना चाहिए, मिथ्यात्वरूपी पशुओंको उसके पास प्रवेश नहीं देना चाहिए, शीलरूपी जल-की धारासे उसका सिंचन करना चाहिए। इस प्रकार प्रयत्नपूर्वक उसे बढ़ाना चाहिए।

घत्ता—क्रोधरूपी ज्वालासे बचनेपर यह धर्मरूपी वृक्ष शीघ्र बड़ा हो जाता है, जिनकी रचना ऋषीन्द्रोंने की है, जगमें उन अत्यन्त मीठे फलोंको यह शुभंकर धर्मरूपी महावृक्ष देता है ॥१७॥

१८

मैं जन्म-जन्ममें जहाँ होऊँ, वहाँ नये-नये शरीरमें लाखों दुःखोंका नाश करनेवाले जिनशासन-की भक्ति हो। धूर्तोंके सिद्धान्तोंसे पराङ्मुख चित्त जन्म-जन्ममें जिनागमके सम्मुख हो। पंचेन्द्रिय प्रतिशत्रुओंका बल नष्ट हो, जन्म-जन्ममें विमल बुद्धि उत्पन्न हो, विषयकषाय और राग भावसे परित्यक्त तीन गुप्तियाँ जन्म-जन्ममें हों। जन्म-जन्ममें आशापाशका बन्धन टूटे और मोहजाल

संजयसाहुसंगसोहियमलि[5] भवि भवि होउ[6] जम्मु सावयकुलि ।
रयमूढह[7] संबोहणगारा भवि भवि रिसि गुरु होंतु भडारा ।
दीणि करुण उप्पेक्ख दयंतइ भवि भवि रइ वड्ढउ गुणवंतइ ।
वयजोग्गउ सरीरु [8]संपज्जउ भवि भवि तवसिहितावें झिज्जउ ।
धणु परियणु पुरु घरु मा ढुक्कउ भवि भवि उरि उवसमसिरि थक्कउ[9] ।
ण रमउ णारिरूवि हियउल्लउ भवि भवि हवउ[10] णिरहु णीसल्लउ ।
ओसारियदहपंचपमाएं भवि भवि दियहु जंतु सज्झाएं ।
दंसणणाणचरित्तपयासें भवि भवि मरणु[11] होउ संणासें ।

घत्ता—लद्धाइ समाहिइ भवि भवि बोहिइ जीवउ जीउ विरत्तउ ।।
संसारुत्तरणइं जिणवरचरणइं भवि भवि मणि सुमरंतउ ।।१८।।

१९

खंडयं—इय जो चिंतइ णियमणे अणुवेक्खाओ थिउ वणे ।
मोत्तूणं भवसंपयं सो पावइ परमं[1] पयं ।।१।।
महु पुणु सरणउं सिद्ध भडारा दढ[2]किम्मीरकम्मविणिवारा ।
अक्खसोक्खपक्खे[3] णिरु णिच्छिहहँ[4] भवसिप्पीरभारहुयवहसिह ।
इय[5] चिंतंति वहंति समत्तणु पउणंती रइभूमिणियत्तणु ।
सक्कें जिणमइ जाणिय जावहिं लोयंतिय संपाइय[6] तावहिं ।
बंभसग्गलोयंतकयालय देहकंतिदीवियदिप्पालय[7] ।
पुव्वजम्मकयधम्मपहावण अणुदिणु संभाविय सुहभावण ।
घल्लियकुसुमंजलिकेसररय-[8] रयमहुयरउलसवलियपहुपय ।
ते भणंति भावें मउलियकर जय देवाहिदेव परमेसर ।
पइं ण मुणिउं जं तं किर केहउ किं गिरि किं परमाणुउ[9] जेहउ ।
सुसिरु अणंतु तिलोयणिवासउ किं आयासु अलक्खपएसउ ।
जीउ कम्मु पोग्गल[10] वित्थिण्णउ भणु तुह णाणें काइं ण भिण्णउ ।
तुहुं[11] सइंभु[12] ससमाहिविसुद्धउ चारु चारु जं सइं पडिबुद्धउ ।
इंदियपाणासंजमु छंडिवि अप्पउ सीलगुणोहें मंडिवि ।

घत्ता—उप्पाइवि केवलु अवियलु गयमलु तच्चु सुसच्चउ अक्खहि ।।
पायालि पडंतउ पलयहु जंतउ भुवणु भडारा रक्खहि ।।१९।।

---

५. B °साहुसंगि । ६. MBP जम्मु होउ । ७. MBP रइमूढहु; T रयमूढहो । ८. MBP उप्पज्जउ । ९. M थक्किउ । १०. MBP होउ । ११. MK मरण ।

१९. १. B परमप्पयं । २. P दिढ° । ३. MBP °पक्खइ । ४. M णिप्पिह । ५. MBPT चित्तंति, gloss in MT हृदयमध्ये, but in P चिन्तयति सति । ६. B संपावियभाविहिं; P संपाइय ताविहिं । ७. MBP °दिव्वालय and gloss in MP दीप्तविमानाः; but T दिप्पालय दशदिक्पालाः । ८. P °केसरिरय° । ९. MBP परिमाणुउ । १०. BP पोग्गलु । ११. MBP सयंभु । १२. MBP सुसमाहि° ।

कम हो। संयमी साधुओंके संगसे शोधित श्रावककुलमें मेरा जन्म, जन्म-जन्ममें हो। अनुरक्त मूर्खोंको सम्बोधित करनेवाले आदरणीय ऋषि जन्म-जन्ममें मेरे गुरु हों। दीनमें करुणा, दशाशून्य-में उपेक्षा और गुणवान्‌में मेरी रति भव-भवमें बढ़े। जन्म-जन्ममें तपकी आगसे क्षीण मेरा शरीर व्रतके योग्य हो। जन्म-जन्ममें धन-परिजन, पुर और घर उपस्थित न हो, उपशमश्री मेरे मनमें स्थित हो। मेरा हृदय नारीके रूपमें न रमे, भव-भवमें वह निष्पाप और इच्छाओंसे शून्य हो। पाँच प्रकारके प्रमादोंको दूर हटानेवाले सत् ध्यानमें जन्म-जन्म मेरे दिन जायें, दर्शन, ज्ञान और चरितको प्रकाशित करनेवाले संन्याससे मेरा मरण जन्म-जन्ममें हो।

घत्ता—भव-भवमें रत्नत्रयकी एकता और प्राप्तिमें विरक्त जीव जीवित रहे। संसारसे उतारनेवाले जिनवरके चरणोंको जन्म-जन्ममें मनमें स्मरण करता रहूँ ॥१८॥

१९

इस प्रकार जो वनमें स्थित होकर अपने मनमें अनुप्रेक्षाओंका चिन्तन करता है वह भव-सम्पदाको छोड़कर परमपदको प्राप्त करता है। मेरे लिए दृढ़ और विचित्र कर्मोंका निवारण करनेवाले, इन्द्रियोंके सुख वर्गमें अत्यन्त निस्पृह, संसाररूपी तृणभारके लिए अग्निज्वालाके समान, आदरणीय सिद्ध मेरे लिए शरण हों। यह सोचते हुए और सम्यक्त्व धारण करते हुए एवं रति-भूमिका निवर्तन करते हुए, जिनकी बुद्धिको जैसे ही इन्द्रने जाना वैसे ही लौकान्तिक देव वहाँ आ पहुँचे। जिनका घर ब्रह्मस्वर्गका लोकान्त था, जो शरीरकी कान्तिसे दिव्यालयको आलोकित करनेवाले थे, पूर्वजन्ममें धर्मकी प्रभावना करनेवाले, प्रतिदिन शुभभावनाओंकी सम्भावना करने-वाले, और जो फेंकी गयी कुसुमांजलिकी केशर रजमें लीन मधुकरकुलसे जिनचरणोंको शवलित करनेवाले थे। भावपूर्वक हाथ जोड़कर वे कहते हैं—"हे देवाधिदेव परमेश्वर, आपकी जय हो। जिसको आप नहीं जानते, वह कैसा है, क्या गिरिके समान है, या परमाणु जैसा। अलोकाकाश और त्रिलोकका निवासभूत लोकाकाश क्या अलक्ष्य प्रदेश है? जीवकर्म पुद्‌गलका विस्तार, बताओ तुम्हारे ज्ञानको क्या ज्ञात नहीं है? अपनी समाधिसे विशुद्ध तुम स्वयम्भू हो, यह सुन्दर हुआ जो आप स्वयं प्रबुद्ध हो गये, इन्द्रिय और प्राणोंके संयमको छोड़कर, अपने आपको शीलगुणोंसे अलंकृत कर—

घत्ता—अविकल केवलज्ञानको प्राप्त कर गतमल सच्चा तत्त्व कहिए। पाताललोकमें गिरते हुए और प्रलयको प्राप्त इस विश्वको, हे आदरणीय, बचाइए ॥१९॥

२०

खंडयं—तुह वयणंसुपसाहिए जगकमले संबोहिए।
कुसमयखलखज्जोयया होंति देव हयतेयया ॥१॥
मोहजलणजालावलि णिरसहि धम्मामयअंबुहर पवरिसहि।
पाववज्जलेवंतणिहित्तइं जरकसरा इव कद्दवि खुत्तइं।
उत्तारहि परमप्पय भूयइं रंगणडा इव णाणारूवइं।
एम भणेप्पिणु गय लोयंतिय देवें परहियबुद्धि विचिंतिय।
तहिं अवसरि बुहयणिहिं समत्थिउ भरहु महीसरेण अब्भत्थिउ।
पुत्त पुत्त लइ पालहि वसुमइ मइं पुणु साहेवी पंचम गइ।
तं णिसुणेवि कुमारें वुत्तउं देव देव किं भणहि अजुत्तउं।
जं तुह भुत्तुज्झियआहारें तं ण सोक्खु भोयणवित्थारें।
जं तुह णियडासणइ णिविट्ठहु तं ण सोक्खु हरिवीढि वइट्ठहु।
जं महु तुह अग्गइ धावंतहु तं ण सोक्खु गयखंधहिं जंतहु।
जं पायडियउ तुह पयछाहिइ तं ण सोक्खु महु छत्तहु छाहिइ।
मंतिमहासेणावइपुज्जें पइं रहिएण ताय किं रज्जें।
घत्ता—जंपियउ जिणेसें णाउ विसेसें जइ पहुपयहि ण जुज्जइ॥
तो लोउ रउद्दें जुज्झवि मद्दें मच्छें मच्छु व खज्जइ ॥२०॥

२१

खंडयं—कुरु कुरु धरणीपालणं णायाणायणिहालणं।
धरि धरि महिवइसासणं एयं चिय मह पेसणं ॥१॥
तं णिसुणेवि णिरुत्तरु जायउ थिउ तणुरुहु संभूयविसायउ।
सोणंदेयहु दिण्णु सुहंकरु पोयणपुरु पविहिण्णवसुंधरु।
अण्णेक्कहुं अण्णण्णइं दिण्णइं मंडलाइं ढोइयधणधण्णइं।
एत्थंतरि संपेसिय राणा देवें जे एक्केक्क पहाणा।
छक्खंडावणिपसरियतेयहु लग्गा रायमहाअहिसेयहु।
णरकरकोणाहयहिं गहीरहिं वज्जंतहिं चामीयरतूरहिं।
धवलिहिं मंगलेहिं गिज्जंतिहिं खुज्जयवावणेहिं णच्चंतिहिं।
कामिणिमित्तगत्तरोमंचहिं होमदाणपारंभपवंचहिं।
ससहरमणिमएहिं णिक्कलुसिहिं सयलतित्थजलभरियहिं कलसहिं।
जय रायाहिराय पभणंतहिं अहिसिंचियउ भरहु सामंतिहिं।
हाससंककाससंकासइं परिहाविउ सुइसुब्भइं वासइं।
कण्णहि कुंडलाइं आइद्धइं चंदाइच्चइं तेयसमिद्धइं।
करि कंकणु गलि हारु विलंबिउ सिरि सेहरु महुयरमुहचुंबिउ।

२०. १. MBP धम्ममहामयजलहर वरिसहि। २. MBP °वज्जलेवत्त°। ३. MBP कद्दमि। ४. MBP भणिउं। ५. B तुहं भुत्तु उज्झिय°। ६. P पयछाएं। ७. P छाएं। ८. K जुंजइ।
२१. १. MBP °वावणेहि। २. BMK कामिणिसित्त°। ३. MBP पहिराविउ।

२०

आपकी वचनरूपी किरणोंसे प्रसाधित विश्वकमलके प्रबुद्ध होनेपर, हे देव मिथ्यामत और दुष्टरूपी खद्योत हततेज हो जायेंगे। मोहरूपी ज्वालावलीको हटाइए, और धर्मामृतरूपी मेघोंकी वर्षा कीजिए। पापरूपी वज्रलेपसे लिप्त बूढ़े गरियाल बैलके समान, (भव)-कीचड़में फँसे हुए तथा रंगनटकी तरह नानारूप धारण करनेवाले प्राणियोंका उद्धार कीजिए।" यह कहकर लोकान्तिक देव चले गये। दूसरेके कल्याणकी बुद्धिवाले देवने विचार किया। उस अवसरपर बुधजनोंके द्वारा समर्थित भरत महीश्वरसे अभ्यर्थना की, "पुत्र, पुत्र, लो, अब तुम पृथ्वीका पालन करो, मैं पाँचवीं गति (मोक्षगति) का साधन करूँगा।" यह सुनकर कुमार बोला, "हे देवदेव, यह क्या अयुक्त कहते हैं, तुम्हारे खानेसे छोड़े गये आहारमें जो सुख है, वह सुख भोजनके विस्तारमें नहीं है; तुम्हारे आसनके निकट बैठनेमें जो सुख है वह सुख सिंहासनपर बैठनेमें नहीं है। तुम्हारे सामने दौड़ते हुए मुझे जो सुख है वह सुख हाथीके कन्धोंपर जाते हुए नहीं है। तुम्हारे पैरोंको छायाने मुझमें जो सुख प्रकट किया है, छत्रकी छायासे वह सुख मुझे प्राप्त नहीं है। मन्त्री और महासेनापतिके द्वारा पूज्य तुम्हारे नहीं रहनेपर, हे तात राज्यसे क्या ?"

घत्ता—यह जानकर जिनेश्वरने विशेष रूपसे कहा, "यदि तुम्हें राजाका पद अच्छा नहीं लगता तो जबरदस्ती भयंकर युद्ध कर मछलीके द्वारा मछलीकी तरह एक दूसरेको खा जायेंगे ॥२०॥

२१

इसलिए तुम धरतीका पालन करो, न्याय-अन्यायको देखो। राजाके शासनको स्वीकार करो—मेरा तुम्हें यह आदेश है।" यह सुनकर भरत निरुत्तर हो गया। वह विषादसे खिन्न रह गया। सुनन्दाके पुत्र बाहुबलिको धरती विभक्त शुभ पोदन दिया गया। दूसरे-दूसरे पुत्रोंको धन-धान्यसे परिपूर्ण दूसरे-दूसरे मण्डल दिये गये। इस बीच राजाओंको प्रेषित किया गया, जो एकसे एक प्रधान थे, छह खण्ड धरतीमें प्रसारित है तेज जिसका, ऐसे राज्याभिषेकमें लग गये। मनुष्योंके हाथों द्वारा डण्डे (वादन-काष्ठ) से आहत, बजते हुए स्वर्ण तूर्यों, गाये जाते हुए धवल मंगल गीतों, नृत्य करते हुए कुब्जों और बौनों, स्त्रियों और मित्रोंके शरीर रोमांचों, होम और दानके प्रारम्भ-के विस्तारों तथा स्फटिक मणियोंसे निर्मित, निष्कलुष समस्त तीर्थोंके जलोंसे भरे हुए कलशोंके साथ 'जय राजाधिराज' कहते हुए सामन्तोंने भरतका अभिषेक किया। और हास्य चन्द्रमा और काशके समान (धवल) पवित्रतासे बनाये गये वस्त्र उन्हें पहना दिये गये, सूर्य और चन्द्रमाके तेजसे समृद्ध कुण्डल कानोंमें बाँध दिये गये; हाथोंमें कंगन और गलेमें हार पहना दिया गया और सिरपर मधुकरोंके मुखोंसे चुम्बित शेखर। रत्नकिरणोंसे चमकता हुआ कटिसूत्र कमरमें छुरीके

कडियलि रयणकिरणविप्फुरियइ[4]　　　बद्धउ कडिसुत्तउ सहुं छुरियइ ।
बंभसुत्तु उरि चारु चडाविउ　　　तिलएं तइयउ णयणु व दाविउ ।
हरिकरिससिरविरूवणिबद्धइं　　　उब्भियाइं विमलइं कुलचिंधइं ।
परिमुक्कमलइं धवलइं छत्तइं　　　णं जिणकित्तिभिसिणिसयवत्तइं ।
मय मायंग तुरंग सलक्खण　　　पुज्जिय गह कोणीण वियक्खण ।
घत्ता—उच्चाइउ आयहिं पईअणुरायहिं आसीवायणिघोसहिं ॥
सिरिभरहकुमारहु महिभत्तारहु बद्धउ पट्टु[5] णरेसहिं ॥२१॥

२२

खंडयं—सीहासणसिहरासिओ　　　सोहइ भुअणपसंसिओ ।
गिरिकडए धुयकेसरो　　　केसरि व्व भरहेसरो ॥१॥
दसदिसिवहसंपाइयसुरवरु[1][2]　　　तहिं अवसरि दीसइ विउलंबरु ।
बहुविमाणभारें णं णवियउ　　　धयवडेहिं[3] णावइ पल्लवियउ ।
आयवत्तु[4] फुल्लहिं णं फुल्लिउ　　　तरुणीथणवलेहिं[5] ओणल्लिउ ।
थियझसहंसचासवाहणगणु　　　णावइ जिणवरपुण्णमहावणु ।
णं तुरयहिं धावंतहिं धावइ　　　संदणेहिं रविभरियउ णावइ[6] ।
कुंजरेहिं णं मेहहिं छइयउ　　　असिवरेहिं णं विज्जुवलइयउ ।
हरियारुणरुइल्लु णं सुरधणु　　　णं अवलंबइ णवपाउसगुणु[7] ।
विहुणिक्खवणपयासणयालइ　　　एम परायउ सुरयणु लीलइ ।
गउ तहिं जहिं अच्छइ रंजियसहु[8]　　　रिसहणाहु णिण्णाहु महापहु ।
घत्ता—कमलासणु केसवु[9] ससहरु वासवु सिद्धु बुद्धु हरु दिणयरु ॥
चामीयरघडियइ रयणहि जडियइ पट्टि णिसण्णउ जिणवरु ॥२२॥

२३

खंडयं—केण वि गहिरं वाइयं　　　केण वि महुरं गाइयं ।
केण वि सरसं णच्चियं　　　पहुपयजुयलं अंचियं ॥१॥
अमरविलासिणिकरसंगहियहिं　　　ण्हविउ देहु[1] घियदुद्धहिं[2] दहियहिं ।
इंदजलणजमणेरियवरुणहिं　　　पवणकुबेरतिसूलु[3]द्धरणहिं ।
णलिणबंधुणाइंदहिं चंदहिं　　　रुंदाणंदहरेहिं[4] णरिंदहिं ।
वयणुग्गीरियथोत्तवमालहिं　　　णिग्गयखीरवारिधारालहिं ।

---

४. MBP °विच्छुरियइ । ५. B पट्टु° ।

२२. १. B °दिसिवइ° । २. MBP संपाइय । ३. M धयवडेण । ४. MBP आयवत्त । ५. M तरुणीथण-हरेंहिं ओहुल्लिउ; B थणहारेंहिं ओहुल्लिउ; P थणहलेंहिं सुफलिल्लिउ; but T ओणल्लिउ । ६. B भावइ । ७. P °पावस घणु । ८. M रजियसुहु । ९. MBP केसउ ।

२३. १. MBP देउ; K देहु but corrects it to देउ । २. M घय° । ३. T तिसूलधरणु । ४. M °भरेंहि ।

साथ बाँध दिया गया। उरतलपर सुन्दर ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) चढ़ा दिया गया। तिलक तीसरे नेत्रके समान दिखाई दिया। सिंह, हाथी, चन्द्रमा और सूर्यके रूपोंसे निबद्ध विमल चिह्न (कुलचिह्न) उठा लिये गये। मलसे रहित धवल छत्र ऐसे प्रतीत होते थे, मानो जिनेन्द्रकी कीर्तिरूपी कमलिनीके कमल हों। मदगज, लक्षणोंवाले घोड़े, ग्रह और विचक्षण कानीन (कन्यापुत्र) पूजे गये।

घत्ता—स्वामीके इन अनुराग चिह्नों और आशीर्वाद वचनोंके निर्घोषोंके साथ राजाओंने पट्ट ऊँचा किया और पृथ्वीके राजा श्री भरतकुमारको बांध दिया ॥२१॥

२२

विश्वके द्वारा प्रशंसित तथा सिंहासनके शिखरपर आसीन वह ऐसा शोभित होता है जैसे पर्वत शिखरपर अयाल हिलाता हुआ सिंह हो। जिसमें दसों दिशाओंके देव आये हुए हैं ऐसा विशाल आकाश उस अवसरपर ऐसा लगता था, मानो अनेक विमानोंके भारसे झुक गया हो। ध्वजपटोंसे मानो पल्लवित हो उठा हो, फूलोंसे खिला हुआ आतपत्र हो, मानो तरुणीजनके स्तनोंरूपी फलोंसे अवनत हो। जिसमें मत्स्य, हंस और चातकगण स्थित हैं ऐसा आकाश, जिनवरके पुण्यरूपी महासमुद्रके समान दिखाई देता है। वह मानो दौड़ते हुए अश्वोंसे दौड़ता है, स्यन्दनों (रथों) द्वारा सूर्योंसे भरा हुआ जान पड़ता है, हाथियोंके द्वारा मेघोंसे आच्छादित और तलवारोंके द्वारा बिजलियोंसे चमकता हुआ, हरी और लाल कान्तियोंके द्वारा, इन्द्रधनुषके समान जान पड़ता है, जो मानो नवपावसके गुणको धारण करना चाहता है। इस प्रकार देव विविध लीलाओंके साथ वहाँ पहुँचे जहाँ, सभाको रंजित करनेवाले सबके नाथ महाप्रभु ऋषभनाथ बैठे हुए थे।

घत्ता—ऋषभ जिनवर (जो विष्णु, केशव, सिद्धबुद्ध, शिव और सूर्य हैं) स्वर्ण रचित एवं रत्नजड़ित पट्टपर आसीन थे ॥२२॥

२३

किसीने गम्भीर वाद्य बजाया, किसीने मधुर गान गाया। किसीने सरस नृत्य किया, और प्रभुके चरणकमलोंकी पूजा की। देवस्त्रियोंके हाथोंमें धारण किये गये घी, दूध और दहीसे शरीरका स्नान कराया गया। इन्द्र, अग्नि, नैऋत्य और यम, वरुण, कुबेर, त्रिशूल धारण करनेवाले शिव, सूर्य, नागेन्द्र, चन्द्र तथा महाआनन्दसे भरे हुए राजाओंके द्वारा, मुखोंसे निकलते हुए स्तोत्रोंके

कंचणकुंभसहासहिं सित्तउ   दंससयट्ठलक्खणसंजुत्तउ ।
सण्हउं तिहुयणसामिहि जोग्गउ   किं वण्णिज्जइ अंगि वि लग्गउ ।
ढोइउ णिवसणु मुणु पंगुरणउं   तणुतावइ णं णाणावरणउं ।
भूसणाइं दिण्णाइं ण मण्णइ   मोहणिबंधणाइं अवगण्णइ ।
संतहु किहँ रुच्चंति रसोल्लइं   वम्महपहरणाइं फुल्लइं ।
होउ पहुच्चइ संभावइ जिणु   मलविलेवसारिच्छु विलेवणु ।
घत्ता—पज्जलियपईवहुं ससिरविभावहुं धूयंगारयधूमउ ।।
णिग्गंतउ दीसइ सुकइ समासइ णं मलपडलविलेवउ ।।२३।।

२४

खंडयं—दहिदूवंकुरचंदणं   सियसिद्धत्थयचंदणं ।
वंदिवि मयणवियारओ   सिवियारूढु भडारओ ।।१।।
सत्त पयाइं जाम जयवंदहिं   पढमुक्खाइय सिविय णरिंदहिं ।
तेत्तियइं जि भावेण णवंतहिं   वरविज्जाहरेहिं विहसंतहिं ।
उट्टियदेवमहाकुलकलयलि   पुणु वंदारएहिं णिय णहयलि ।
चल्लिउ अणुमग्गें सियसेविइ   णाहिणराहिउ सहुं मरुएविइ ।
आरणालणवदललियंगउ   जसवइणंदउ पच्छइ लग्गउ ।
दोण्णि वि णावइ मोहणवेल्लिउ   णं कामेण विमुक्कउ भल्लिउ ।
पियविच्छोयसोयखिज्जंतउ   णयणंजणमलइलिज्जंतउ ।
वरकंचीकलावगुप्पंतउ   तणुपासेयबिंदुथिप्पंतउ ।
तुरिउ चलंतु खलंतु विसंठुलु   णीससंतु चलमोक्कलकोंतलु ।
घणथणजुयलणिवेसियकरयलु   णिवडमाणअणिहालियमेहलु ।
पयचालणझंकारियणेउरु   धाइउ णिरवसेसु अंतेउरु ।
एक्कवार णिउ णिब्भरभावहिं   मंदरि ण्हाणिवि आणिउ देवहिं ।
पुणु तेण जि कमेण आवेसइ   णरवइ एत्थु जि पुरि णिवसेसइ ।
घत्ता—पउरयणें वुत्तउ मुणिउ णिरुत्तउ एवहिं दुक्करु आवइ ।।
जडमइलकुचेली धरणिमहेली णाहें विणु किह जीवइ ।।२४।।

२५

खंडयं—भरहबाहुबलिसंणिहं   गलियंसुयधारामुहं ।
चलियं चोइयहयगयं   एक्कूणं णंदणसयं ।।१।।
पराइओ जिणेसरो घणंबणालयं   सुपोमसंपयाजसोघणं वणालयं ।
विसालवेल्लिजालरुद्धभाणुभावहं   महामुणिंदजोग्गयं सपावभावहं ।

५. MBP दह° । ६. P विलग्गउ । ७. MBP किं । ८. M °विलेविउ ।

२४. १. M दूवंकुरु वंदणं; BPK दूवंकुरवंदणं । २. M वसंतु व संबुलु; B खलंतु व संठुलु । ३. M णिवडमाणु; P णिविडमाणु । ४. MP णरवइ इत्थ णयरि; B णरवइत्थ णयरे । ५. MP जड°; B जर° ।

२५. १. P °पसोहणं । २. P विलासवेल्लि° ।

कोलाहलों तथा दूध और जलकी गिरती हुई हजारों धाराओंसे युक्त हजारों स्वर्णकलशोंसे एक हजार आठ लक्षणोंसे युक्त जिनका अभिषेक किया गया। फिर शरीरमें लगे हुए के समान जिनवर स्वामीके योग्य सूक्ष्म वस्त्रका क्या वर्णन किया जाये ? लाया गया और पहना गया वह, शरीरको इस प्रकार सन्तप्त करता है, मानो ज्ञानावरण कर्म हो। दिये गये आभूषणोंको वह स्वीकार नहीं करते, उनकी मोहके बन्धनोंकी तरह उपेक्षा करते हैं, रससे आर्द्र, कामके प्रहरण (शस्त्र) पुष्प सन्तको किस प्रकार अच्छे लग सकते हैं। यह काफी है। जिन विलेपनकी सम्भावनाएँ, मलविलेपकी सदृशताके रूपमें करते हैं।

घत्ता—चन्द्रमा और सूर्यके समान कान्तिवाले प्रज्वलित प्रदीपोंसे निकलता हुआ धूपके अंगारोंका धुआँ ऐसा दिखाई देता है, मानो सुकवि मलपटल विशेषको बाँट रहा है ॥२३॥

२४

दही, दूर्वांकुर और चन्दन, श्वेत सिद्धार्थ (पीला सरसों) और रक्त चन्दनकी वन्दना कर कामदेवका नाश करनेवाले आदरणीय ऋषभ पालकीमें बैठ गये। अब विश्ववन्द्य नरेन्द्रोंने सात कदमों तक शिविकाको उठाया। उतने ही कदम भावपूर्वक नमस्कार करते हुए और हँसते हुए विद्याधरोंने उठायी। हो रहा है देवोंका महान् आकुल कुल-कुल शब्द जिसमें ऐसे आकाशमें फिर देवगण उसे ले गये। उसके पीछे-पीछे श्रीसे सेवित मरुदेवीके साथ नाभि राजा चले। कमलके नवदलोंके समान सुन्दर अंगवाली यशोवती और सुनन्दा भी पीछे लग गयीं। मोहसे नवेली दोनों ऐसी लगती थीं मानो कामने दो बरछियाँ (भल्लियाँ) छोड़ी हों। प्रियके विछोहके शोकसे खेदको प्राप्त होता हुआ, नेत्रोंके अंजनमलसे मैला होता हुआ, श्रेष्ठ कटिसूत्रोंके समूहसे गिरता हुआ, शरीरके प्रस्वेद बिन्दुओंसे आर्द्र होता हुआ, शीघ्र चलता हुआ, स्खलित होता हुआ, शिथिल निःश्वास लेता हुआ, चंचल और बिखरे हुए बालोंवाला, सघन स्तन युगलपर करतल रखता हुआ, गिरनेसे धरतीको कँपाता हुआ, पैरोंके संचालनसे नूपुरोंको झंकृत करता हुआ समस्त अन्तःपुर दौड़ा। एक बार परिपूर्ण भावोंवाले देवोंके द्वारा ले जाये गये थे और अभिषेकके बाद प्रासादमें ले आये गये थे। फिर इसी क्रमसे वह आयेंगे और राजा ऋषभ इसी नगरमें रहेंगे।

घत्ता—पौरजनोंने यह कहा और अपने मनमें सोचा कि अब उनका आना कठिन है। जड़, मैले और खराब वस्त्र धारण करनेवाली धरतीरूपी महिला स्वामीके बिना कैसे जीवित रह सकती है ॥२४॥

२५

जो भरत और बाहुबलिके समान हैं, जिनके मुखसे अश्रुधारा बह रही है, और जिन्होंने हाथी और घोड़ोंको प्रेरित किया है, ऐसे एक कम सौ, अर्थात् निन्यानबे पुत्र चले। जिनेश्वर ऋषभ उस वनमें पहुँचे, "जो आम्र और नालक वृक्षोंसे सघन था, जो अच्छे पत्तोंवाले लक्ष्मी वृक्षोंसे शोभित था, जिसमें विशाल लताजालसे सूर्यकी आभाका पथ रोक दिया गया था। जो

फलोवडंतवुक्करंतबालवाणरं पियाविवज्जियाण कामुयाण वाणरं।
लयाहरत्थकिंणरीसुरत्तमाणवं असोयचंपयाइरम्मरुक्खमाणवं।
परूढबालकंदकंदलेहिं कोमलं [3]पसूणरेणुपिंग[4]पज्झरंतकोमलं।
दिसुच्छलंतदंतिदाणवारिवासयं रमंतणायरायदाणवारिवासयं।
महूहिं थिप्पिरं [5]पसामियावणीरयं समाणियामरिंदचंदभाविणीरयं।
महीरुहग्गसंणिसण्णमोरसारसं पएहिं इच्छिएहिं लोयदिण्णसारसं।
वहंतमंदगंधवाहकंपमाणयं जलम्मि पोमिणीण जत्थ कं पमाणयं।
अलीहिं चंचलेहिं छण्णकंजकेसरे तरंति णो सुरासुरा वि जत्थ के सरे।
पलोइऊण तं सरीतुसारसीयलं णहंगणावइण्णओ रिसी वसी यलं।

घत्ता—तहिं हियइ पसण्णउ सिलहि णिसण्णउ णिव्विण्णउ णरजोणिहे॥
ससिबिंबसमाणहि मलपरिहीणहि सिद्धु व सिवपयखोणिहे॥२५॥

२६

खंडयं—विविहक्खणविहिकारिणा विप्फुरंतपविधारिणा।
अइरावयकरिगामिणा पुणु पुज्जिउ सुरसामिणा॥१॥
परमसिद्ध णियचित्ति धरेप्पिणु मुट्ठिउ पंच झडत्ति भरेविणु।
जाइं ताइं ससहावें कुडिलइं धुत्तविलासिणिकुलइं व कुडिलइं।
आलुंचेविणु घित्तइं केसइं एम मुणंति धम्मु जगि के सइं।
चिहुर लुक्के जे हयतमपडलें लेवि पुरंदरेण मणिपडलें।
जणवयसंदरिसियझसमुद्दइ घित्त तुरंतें खीरसमुद्दइ।
परिसेसियउ मउडु रइरंगउ णं वम्महसिहरेहि सिह[2]रग्गउ।
मुक्कइं कुंडलाइं मणिजडियइं रविससिबिंबइं णं णि[3]व्वडियइं।
कंकणु [1]मुक्कउ मोत्तियहारें सहुं णिज्जिय मियंकुं[4] णीहारें।
मुक्कउ कडिसुत्तउ सहुं छुरियइ विज्जु[5]लैया इव [6]णेहविप्फुरियइ।
अंबराइं मुक्काइं अमोल्लइं जाइं सरीरहु सु[7]टठुं सुहिल्लइं।
संसारासारत्तु मुणेप्पिणु पंचमहव्वय चित्ति धरेप्पिणु।
किमलंकारें देहहु भारें अप्पउ भूसिउ वयपब्भारें।
मोहजालु जिह मेल्लिवि अंबरु झत्ति महामुणि हुवउ दियंबरु।
उत्तरसाढरिक्खि [8]णवमिइ दिणि महुमासहं पक्खम्मि सिय[9]चंदिणि।
दुविहु वि मणि पडिवण्णउ संजमु गउ णियवासहु हरि हुयवहु जमु।
परियंचिवि सामिउ णियमत्थउ अवरु वि जणु णामियणियमत्थउ।
रायहं णेहालोइयवइयइं खणि चालीससयइं [10]पावइयइं।
अजयमल्लु महुणयरु पराइउ णियपुरवरु बाहुबलि पराइउ।

३. MB पसूय° । ४. MB °पब्भरंत° । ५. P पसम्मिया° ।
२६. १. MBP मुक्क । २. MB सिहरंगउ । ३. BP णिव्विडियइं । ४. MB मियंक । ५. BP विज्जुलदा । ६. MB अइविप्फुरियइ । ७. M सुद्ध । ८. MBP णवमइ । ९. MBP अचंदिणि and gloss in P कृष्णे । १०. MBP पव्वइयइं ।

महामुनियोंके योग्य था, जो पापभावका नाश करनेवाला था, जिसमें फलोंके ऊपर गिरते हुए बाल वानरोंकी आवाजें हो रही थीं, जो अपनी प्रियतमाओंसे रहित कामुकोंके लिए बाणभेदन करनेवाले थे, जिसमें लतागृहोंमें रहनेवाली किन्नरियोंसे मनुष्य अनुरक्त हैं, अशोक और चम्पा वृक्षोंकी अत्यन्त रमणीय शोभासे नया दिखाई देता था, जो उगे हुए बालकन्दोंके अंकुरोंसे कोमल है, जहाँ कुसुमोंके परागसे मिश्रित जल बह रहा है, जो दिशाओंमें उछलते हुए हाथियोंके मदजलोंसे सुवासित है। क्रीड़ा करते हुए नागराजों, दानवों और शत्रुओंका जिसमें निवास है, जो मधुओंसे लथपथ है, जिसमें धरतीकी धूल शान्त है, जिसमें इच्छुक प्रजाओंको अपना धन दिया गया है, जो बहती हुई हवासे प्रकम्पमान है, जिसके जलाशयोंमें कमलिनियोंकी कोई सीमा नहीं है, जहाँ भ्रमरोंसे आच्छन्न तथा परागसे युक्त सरोवरोंमें कौन सुर और असुर नहीं तैरता, जो गंगाके तुषारकी तरह शीतल था, ऐसे उस वनको देखकर जितेन्द्रिय ऋषि ऋषभनाथ आकाशके आँगनसे उतरकर—

घत्ता—वहाँ शिलापर बैठे हुए हृदयमें प्रसन्न वह मनुष्य योनिसे उदासीन हो गये और सिद्धके समान शशिबिम्बके सदृश मलसे रहित शिवपदभूमिके लिए उत्सुक हो उठे ॥२५॥

२६

विविध पूजा विधियोंको करनेवाले और चमकते हुए वज्रके धारक ऐरावतगामी इन्द्रने फिर उनकी पूजा की। परमसिद्धोंको अपने मनमें धारण कर और शीघ्र ही पाँच मुट्ठियोंमें भरकर, जितने भी धूर्त विलासिनियोंके समान कुटिल बाल थे, उन्हें उन्होंने उखाड़ दिया। संसारमें इस प्रकार कौन लोग धर्मका स्वयं विचार करते हैं। जो केश उखाड़े गये थे, उन्हें तमसमूहको नष्ट करनेवाले मणिपटलमें रखकर जनपदोंको मत्स्यमुद्रा नहीं दिखानेवाले क्षीरसमुद्रमें इन्द्रने फेंक दिया। रतिसे क्रीड़ा करनेवाला मुकुट छोड़ दिया मानो कामदेवके शिखरका अग्रभाग फेंक दिया गया हो। मणिजड़ित कुण्डल छोड़ दिये गये मानो रवि और शशिके बिम्ब गिर गये हों। मोतियोंके हारने कंकण छोड़ दिया जैसे नीहारके साथ चन्द्रमा जीत लिया गया हो। क्षुरिकाके साथ कटिसूत्र छोड़ दिया गया मानो आकाशमें चमकती बिजली हो। अमूल्य वस्त्र छोड़ दिये गये जो शरीरके लिए अत्यन्त सुहावने लगते थे। संसारकी असारताका विचारकर पाँच महाव्रतोंको चित्तमें धारण कर देहके भारस्वरूप अलंकारसे क्या? व्रतके प्रभारसे उन्होंने अपनेको विभूषित किया। मोहजालकी तरह वस्त्रोंको छोड़कर वह शीघ्र ही दिगम्बर महामुनि हो गये। बसन्त माहके कृष्णपक्षकी नौवींके दिन उत्तराषाढ़ नक्षत्रमें उन्होंने दो प्रकारका संयम अपने मनमें स्वीकार कर लिया। इन्द्र, अग्नि और यम अपने घर चले गये। नियमोंमें स्थित स्वामीकी प्रदक्षिणा कर और भी दूसरे लोग अपना माथा झुकाते हुए (चले गये)। पत्नियाँ जिनकी ओर स्नेहभावसे देख रही हैं ऐसे चालीस सौ राजा तत्काल दीक्षित हो गये। अजयमल्ल वह मधुपुर पहुँचे। बाहुबलि भी

गय णियगेहहु णयणाणंदण अवर वसहसेणाइय णंदण ।
पियविरहाणलेण [११]अइतत्तउ णारीयणु असेसु परियत्तउ ।
जो वण्णहुं सक्किउ णाहीसें समउं तेण ताएं णाहीसें ।
घत्ता—रणवडहहु केरउ जगभयगारउ देंतु दिसहिं भरहेसरु ॥
थिउ गंपि अउज्झहि [१२]वइरिदुसज्झहि पुप्फयंतु भरहेसरु ॥२६॥

इय महापुराणे तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारे महाकइपुप्फयंतविरइए महाभव्वभरहाणु-
मण्णिए महाकव्वे जिणणिक्खवणकल्लाणं णाम सत्तमो परिच्छेओ सम्मत्तो ॥ ७ ॥

॥ संधि ॥ ७ ॥

११. MBK अइअत्तउ । १२. M वइरिदुगेज्झहि ।

अपने नगरमें चला आया। नेत्रोंको आनन्द देनेवाले वृषभसेन आदि दूसरे पुत्र भी तथा प्रियकी विरहाग्निसे अत्यन्त सन्तप्त अशेष नारीजन भी लौट आया। यदि नागराज उसका वर्णन कर सका तो वह उन नाभिराजके साथ ही।

घत्ता—विश्वके लिए भयजनक युद्धके नगाड़ोंका स्वर भरत क्षेत्रकी दिशाओंमें गुँजाता हुआ पुष्पदन्त भरतेश्वर जाकर शत्रुओंके लिए अग्राह्य अयोध्या नगरीमें स्थित हो गया ॥२६॥

इस प्रकार त्रेसठ शलाकापुरुषोंके गुणों और अलंकारोंसे युक्त महापुराणके
महाकवि पुष्पदन्त द्वारा विरचित और महाभव्य भरत द्वारा अनुमत
महाकाव्यमें जिन दीक्षा ग्रहण कल्याण नामका सातवाँ
परिच्छेद समाप्त हुआ ॥७॥

संधि ८

सीहासणु[1] णरवइसासणु महियलु तणु[2] अवियप्पिवि ॥
गुणवंतहे[3] तवसिरिकंतहे[4] थिउ अप्पाणु समप्पिवि ॥१॥ ध्रुवकं ॥

१

आवली—धरिऊणं इसी सुणिग्गंथवेसयं
दूरविमुक्कसंगयं जणियतोसयं ।
तिस्सा[5] रइकएण परिसेसियंगओ
एयंत्तं[6] भरेण झाणालयं गओ ॥१॥

चिरु चरियइं चरियइं संभरेवि — जगसामिणि गोमिणि परिहरेवि ।
मणमारहु मारहु करिवि छेउ — अइसच्चहु तच्चहु मुणिवि भेउ ।
तणुभरणइं करणइं णिज्जिणेवि — मयसिमिरइं तिमिरइं णिद्धुणेवि ।
घरवासहु पासहु णीसरेवि — विहडंतउ जंतउ मणु धरेवि ।
सहुं लोहें मोहें वहिवि खेरि — णियजणणि व बहिणि व गणिवि णारि ।
संकुज्झिवि बुज्झिवि सइं जि सिक्ख — सुइवइणी जइणी[7] लेवि दिक्ख ।
छम्मासमेरु मुणि मेरुधीरु — अणसणु अवसणु गेण्हिवि गहीरु ।
कमजुयलि पविमलि विहत्थिमेत्तु — णेरंतरु अंतरु करिवि जुत्तु ।

GK give, at the commencement of this Samdhi, the following stanza :—

एको दिव्यकथाविचारचतुरः श्रोता बुधोऽन्यः प्रियः
एकः काव्यपदार्थसंगतमतिश्चान्यः परार्थोद्यतः ।
एकः सत्कविरन्य एष महतामाधारभूतो विदां
द्वावेतौ सखि पुष्पदन्तभरतौ भद्रे भुवो भूषणम् ॥

MBP, however, give this stanza at the beginning of IX with variants जनाः for विदाम् and भूषणौ for भूषणम् । At the commencement of this Samdhi they read the following :—

मातर्वसुंधरि कुतूहलिनो ममैत-
दापृच्छतः कथय सत्यमपास्य साठ्यम् (शाठ्यम् ?) ।
त्यागी गुणी प्रियतमः सुभगोऽतिमानी
किं वास्ति नास्ति सदृशो भरतार्यतुल्यः ॥

१. १. MBP सिहासणु । २. MBP तणु व वियप्पिवि and gloss तृणमिव गणयित्वा । ३. P गुणवंतहो । ४. P °कंतहो । ५. M तस्सा । ६. MBP एयंतं and gloss in P एकान्तम् । ७. MB जयणी ।

सन्धि ८

१

सिंहासन, नरपतिशासन, महीतल और शरीरका विचार नहीं करते हुए, गुणवती तपोलक्ष्मीरूपी कान्ताके लिए उन्होंने अपने आपको सौंप दिया। दूरसे छोड़ दिया गया है परिग्रह जिसमें, तथा जो सन्तोष देनेवाला है, ऐसे परम दिगम्बर स्वरूपको धारण कर, शरीरकी ममता छोड़नेवाले महामुनि ऋषभ, तपस्यारूपी कान्ताके लिए, एकनिष्ठ होकर ध्यानालयमें चले गये। पुराने आचरित चरितोंकी याद कर, लक्ष्मी तथा धरतीका परित्याग कर, मन मारनेवाले कामका अन्त कर, अत्यन्त सत्य तत्त्वका रहस्य समझकर, शरीरका पोषण करनेवाली इन्द्रियोंको जीतकर, मदकी सेना और अन्धकारको नष्ट कर, गृहवासके बन्धनसे निकलकर, विघटित होते हुए मनको धारण कर, लोभ और मोहके साथ वैरका अन्त कर, नारीको अपनी माँ और बहनके समान समझकर, शंका छोड़कर स्वयं शिक्षाओंको समझते हुए, श्रुत वचनोंवाली जैन दीक्षा लेकर, छह माहकी मर्यादावाला कठोर अनशन लेकर, मेरुके समान धीर और गम्भीर, पवित्र दोनों पैरोंके मध्य एक

ओ[8]ड्डुडणिउडसंपुं[9]डियवयणु आसासियणासियणिसियणयणु ।
भूभंगावंगपसंगरहिउ खयरिंदफणिंदणरिंदमहिउ ।
णिद्दंदु [10]णूयंदु विमुक्कतंदु लंबियभुउ सुरथुउ जिणवरिंदु ।
घत्ता—वरतणुसिरि णं कंचणगिरि जगगुरु दुक्कियमंथउ ॥
थिउ सग्गहु अवि यपवग्गहु णं आरोहणपंथउ ॥१॥

२

आवली—विसयवसा तिसाछुहातावसोसिया
भीसणवग्घसिंघसरहेहिं तासिया ।
जे समयं वयम्मि लग्गा महारहा
ते भग्गा दिणेहिं[1]मसहियपरीसहा ॥१॥
अं[2]णब्भत्थसत्था महामंदमेहा पयंपंति एवं स[3]मोरुद्धदेहा ।
ण ण्हाणं ण फुल्लं ण भूसा ण वासं पहू पाणियं लेइ णाहारगासं ।
ण सीउण्हवाएण जित्तो महंतो ण णिद्दाइ भुक्खाइ तण्हाइ संतो ।
ण जंपेइ णालोयए [4]कं पि भिच्चं णिउब्भो थिरं संठिओ एम णिच्चं ।
ण याणेमि किं चिंतए चित्तमज्झे मई कम्मि संजोयए संदुसें[5]ज्झे ।
ण दुक्खंति पाया फुडं वज्जकाओ ण ओमिज्जैं[6]ए केम रायाहिराओ ।
अहो हो किमेयस्स एएण होही वणंते कहं वा णिसाहाइं णेही[7] ।
पुणो पट्टणं किं व जाही ण जाही मणोहारि रज्जं पि काही ण काही ।
ण कंताकुडुंवेण मोहं विणीओ ण सद्दूलपंचाणणाणं पि भीओ ।
जडाजालधारी सपारोहसोहो घुलंतंगसप्पो वडो णं कुरोहो ।
मणूमण्णणिज्जो णियारी णिसुंभो इमो देवदेवो परो आइबंभो ।
इमस्सेरिसो धी[8]रधीरावहारो परं दुव्वहो चारुचारित्तभारो ।
घत्ता—जं[9] धवलें अइअतुलबलें दुग्गु [10]खुरेहिं णिभिण्णउं ॥
[11]तहिं कसरहिं विहुणियस[12]सिरहिं एक्कु वि पउ [13]णउ दिण्णउं ॥२॥

---

८. MBP ओट्टुउडणिविड° । ९. MB °संपुरिय° । १०. MBP णियंदु ।

२. १. MBP दिणेहिं असहिय° । २. GK have before this line भुजंगप्पयावो णाम छंदो; MB have भुअंगप्पयावो णाम छंदो; P भुयंगप्पयाणाम छंदो । ३. MBPT समें रुद्धदेहा । ४. MBP कं पि भिच्चं । ५ T संदुगेज्झे । ६. MB उव्विज्जए; P उव्विज्जई । ७. B णीही । ८. MBT धीरवीरावहारो, but gloss in T धीराणां धैर्यापहारकः; P वीरधीरावराहो, but gloss धीराणामपि धैर्यापहारः । ९. MB जें । १०. MB खुरहिं णिब्भिण्णउं । ११. P जरकसरहिं । १२. M °सुसिरहिं । १३. MBP ण वि ।

बीता अन्तर रखकर, छिद्र रहित ओठपुटसे मुखको बन्द कर, मुखपर आश्रित नाकपर नेत्रोंको धारण कर, भ्रूभंग और कटाक्षोंके प्रसंगोंसे रहित, नागेन्द्रों, विद्याधरेन्द्रों और नरेन्द्रों द्वारा पूजित, निर्द्वन्द, आलस्यसे रहित लम्बे हाथ किये हुए मनुष्य-श्रेष्ठ वह जिनवरेन्द्र देवोंके द्वारा संस्तुत थे।

घत्ता—श्रेष्ठ शरीरकी शोभामें जो मानो कंचन गिरिके समान थे पापोंका नाश करनेवाले वह जगद्‌गुरु इस प्रकार स्थित थे मानो वह स्वर्ग और मोक्षके लिए चढ़नेका मार्ग हो ॥१॥

२

जिन महारथियोंने उनके साथ व्रत ग्रहण किये थे, विषयोंके वशीभूत वे प्यास-भूखके सन्तापसे शोषित तथा भीषण बाघों, सिंहों और शरभोंके द्वारा सन्त्रस्त होकर कुछ ही दिनोंमें परीषह नहीं सहनेके कारण शीघ्र भ्रष्ट हो गये। शास्त्रोंका अभ्यास नहीं करनेवाले महामन्द बुद्धि तथा श्रमसे अवरुद्ध शरीरवाले वे इस प्रकार कहने लगे, "न स्नान, न फूल, न भूषा और न बास, प्रभु न पानी लेते हैं और न आहारका कौर। वह महान् शीत और उष्ण हवाके द्वारा भी नहीं जीते जाते और न नींद, भूख और प्यासले श्रान्त होते हैं। किसी अनुचरसे न बोलते हैं और न किसी भृत्यको देखते हैं, अपने हाथ ऊपर किये हुए वह इस प्रकार नित्य स्थित रहते हैं। मैं नहीं जानता कि वह अपने चित्तमें क्या सोचते हैं? मुझे अत्यन्त दुःसाध्य काममें लगा दिया है। स्पष्ट ही वह वज्र शरीर हैं, उनके पैर नहीं दुखते। राजाधिराज वह कुछ भी उन्मार्जन नहीं करते। अरे, इससे इसका क्या होगा? वनमें हम किस प्रकार दिन-रात बितायें? फिर ये नगर जायेंगे या नहीं जायेंगे? सुन्दर राज्य करेंगे या नहीं करेंगे? न तो कान्ता और कुटुम्बके द्वारा उनमें मोह उत्पन्न होता है, और न वह सिंह तथा पंचाननसे डरते हैं? वह ऐसे वटवृक्षकी तरह दिखाई देते हैं जो जटारूपी जाल धारण करता है, अपने प्रारोहोंसे शोभित है, और जिसके शरीरपर सर्प व्याप्त है। मनुओंके द्वारा पूज्य, मनुष्योंके निर्माता मनुष्यश्रेष्ठ यह देवदेव आदि ब्रह्मा हैं। धैर्य-धीरोंके भी धैर्यका अपहरण करनेवाला इनका ऐसा अत्यन्त दुर्वह सुन्दर चारित्रभार है।

घत्ता—जहाँ अत्यन्त अतुल बलवाले धवल (बैल) ने अपने खुरोंसे दुर्गको खोद डाला, वहाँ गरियाल बैल एक भी पैर नहीं रख सके॥२॥

३

आवली—उब्भियधवलचिंधमहिमावसारओ
करिवरजूहणाहपञ्चाणभारओ।
परजम्मंतरे वि परिरूढतेयओ
पियसहि रासहाण कह[1] होइ णेयओ ॥१॥

गयगंडकंडु[2]कंडुयणवाह को वि सहइ किडिदाढावलेह।
को वि सहइ फणिमुहचुंबियाइं ताणं च्चिय कंठोलंबियाइं[3]।
को वि सहइ दूसह दंस मसय पोसियकसाय दुव्वार विसय।
को वि सहइ णग्गत्तणु णिरासु णिच्चं णिरसणु गिरिदुग्गवासु।
पाउसजलधाराविप्पियाइं को वि सहइ विज्जुझडप्पियाइं।
को वि सहइ [4]सिसिरि पडंतु सिसिरु उण्हालइ दिणयरकिरणपसरु।
परलोयकहाणी केण दिट्ठ को वि सहइ एयहु तणिय णिट्ठ।
अण्णेण उत्तु किं एत्थु मरमि घरु जाइवि तं णियरज्जु करमि।
अण्णेण उत्तु संभरमि पुत्तु घरु जाइवि आलिंगमि कलत्तु।
अण्णेण उत्तु अलिचुंबियाइं सलिलइं मयरंदकरंबियाइं।
सरवरि पइसेप्पिणु पियमि ताम तण्हाइ ण वं[5]चइ जीउ जाम।

घत्ता—अण्णेक्कें माणगुरुक्कें वि[6]हसिवि एहउ वुच्चइ॥
परमेसरु ओलंबियकरु एक्कल्लउ[7] वणि किह मुच्चइ ॥३॥

४

आवली—झिज्जंते[1] ससिम्मि झिज्जइ ससो सयं
वड्ढंतम्मि जाइ वुड्ढीपयं पियं।
अच्छामो वणम्मि सहिऊण दंडणं
णरवइचरियमेव भिच्चाण मंडणं ॥१॥

वि[2]समे वियणे तरुगिरिगहणे।
परलोय[3]रइं मोत्तूण पइं।
गंतूण पुरं तं विविहघरं।
भरहस्स मुहं पेच्छे[4]मु कहं।
सव्वेहि घणं पडिवण्णमिणं।
सुरण[5]वियपयं दह[6]पंचमयं।
उत्तुंगतणुं पणवंति मणुं।

---

३. १. P किह। २. MBP °चंड°। ३. B कंठालंबियाइं। ४. MB ससिरि but gloss in M शीतकाले। ५. B वंचइ। ६. MB वियसिवि। ७. MBP एक्कु जि।

४. १. MB झिज्जेंतें; K सिज्जंतें, but corrects it to झिज्जंतें। २. MBP have before this line ललियलया णाम छंदो; GK have ललिया णाम छंदो। ३. MBPT °गइं। ४. MBP पेच्छामि। ५. MBP °णमिय°। ६. M adds this foot in the margin and MB read after it णाहेयसुयं धणुपंचसयं सो दिव्वमयं; after दहपंचमयं P reads परिगलियमयं धणुपंचसयं।

३

जिसने ऊँचे उठे हुए धवल ध्वजोंकी महिमाको हटा दिया है, दूसरे जन्ममें जिसका प्रभाव विख्यात है, ऐसा श्रेष्ठ हाथियोंके समूहके स्वामीका पर्याणभार, हे प्रियसखी क्या रासभोंके द्वारा ले जाया जा सकता है ? कोई हाथियोंके द्वारा कान और गण्डस्थल खुजाये जानेकी बाधा सहन करता है। कोई सूअरोंके दाढ़ोंसे विदीर्ण होनेकी बाधा सहन करता है, कोई नागमुखोंसे चूमा जाने और उनके गलेमें लपटनेको सहन करता है, कोई असह्य डाँस और मच्छरको सहन करता है, कोई कषायोंका पोषण करनेवाली दुर्वार विषयोंको सहन करता है। कोई विवश होकर नग्नत्वको सहन करता है, कोई नित्य निराहार रहना और गिरिदुर्गमें रहना सहन करता है। कोई पावस जलधाराओंको अप्रिय बिजलियोंकी झपटोंको सहन करता है। कोई शीतलकालमें होनेवाली ठण्ड सहन करता है। उष्णकालमें सूर्यके किरण प्रसारको सहन करता है। परलोककी कहानी किसने देखी ? कौन इनकी तपस्याको सहन कर सकता है। किसी एकने कहा—मैं यहाँ क्यों मरूँ ? घर जाकर अपना राज करूँ ? किसी एकने कहा—मैं अपने पुत्रको याद करता हूँ, घर जाकर अपनी स्त्रीका आलिंगन करता हूँ। किसी एकने कहा—भ्रमरोंसे चुम्बित और मकरन्दसे प्रतिबिम्बित जलको सरोवरमें प्रवेश कर तबतक पीता हूँ कि जबतक प्यास नहीं जाती।

घत्ता—मानमें श्रेष्ठ एक व्यक्तिने कहा—अपने हाथ ऊपर किये हुए भगवान्‌को वनमें अकेला किस प्रकार छोड़ दिया जाये ? ॥३॥

४

चन्द्रमाके क्षीण होनेपर उसका शश (चिह्न) भी क्षीण हो जाता है और चन्द्रमाके बढ़नेपर वह भी बढ़तीके अपने प्रिय पदपर पहुँच जाता है। हम दण्ड सहन करते हैं, वनमें ही रहें। राजाओंका चरित ही भृत्योंके लिए अलंकारस्वरूप है। तरुओंसे गहन विषम और विजनमें परलोकसे रति करनेवाले तुम्हें छोड़कर तथा विविध घरोंवाले अपने उस नगरमें जाकर, भरतका मुख हम किस प्रकार देखेंगे ? सबने उसके इस कथनको पूरी तरह स्वीकार कर लिया। सुरोंसे प्रणम्य हैं, चरण जिनके ऐसे तथा कामको जलानेवाले उत्तुंग शरीर मनु (आदिनाथ) को वे

रुंजियअलिहिं कुसुमंजलिहिं।
गयजम्मरिणं पुज्जंति जिणं।
जंपंति इमं धीरो सि तुमं।
ण मुएसि कमं गहियं णियमं।
अम्हे चवला पविलीणबला।
तुह मग्गचुया हा किं ण मुया।
मणँधरियगई इय भणिवि जई।
अज्जवसवणा णिम्मियभवणा।
थियहरिणगणे णिवसंति वणे।
कंदं पवरं मूलं महुरं।
मालूरदलं भक्खंति फलं।
सीयं विमलं पपियंति जलं।
सिरघुलियजडा वियरंति जडा।
किर ते वि मुणी ता दिव्वझुणी।
ससिरविसयणे उग्गय गयणे।
मा लुणह तरुं मा धुणह मरुं।
मा खणह महिं मा कुणह सिहिं।
मा विसह सरं मा हणह परं।
एसा ण विही जइ णत्थि दिही।
ता णिवसणयं तणुभूसणयं।
गेण्हह तुरियं दुट्ठं दुरियं।
असुविद्दवणे भवसंकमणे।
जं आसि कयं तं जाइ खयं।
घत्ता—जिणलिंगें उज्झियसंगें जं किउ पाउ दुरासें ॥
तं तुट्टइ [10]कह वि ण फिट्टइ जीवहु जम्मसहासें ॥४॥

५

आवली—ता लग्गा णराहिवा भासियक्खरे
दुमदलमोरपिच्छ[1]वक्कलधरा परे।
थियजिणवरणिरोहणिट्ठाहयट्ठिया
णाणाविहवियारवेसेहिं संठिया ॥१॥
तो[3] कच्छमहाकच्छहं तणूय पडिकूलपिसुणसिरसूलभूय।
कामियकामिणियणकामकील मयमत्तचंडसोंडाललील।
परबलबलगलहत्थणसमत्थ दोण्णि वि भायर करवालहत्थ।

---

७. P मणि। ८. MBP °हरिणयणे। ९. MP वियरंति। १०. MBP कह व।

५. १. MBP °पिंछ°। २. M °णिट्ठपहट्ठिया; B णिट्ठाहपठिया। ३. MBP ता। ४. M गलघल्लणं; B °गलत्थण°।

प्रणाम करते हैं और भ्रमरोंसे गूँजती हुई कुसुमांजलियोंके द्वारा जन्म-ऋणसे मुक्त जिनकी पूजा करते हैं। वे इस प्रकार कहते हैं, "तुम धीर हो, तुम क्रम और गृहीत नियमको नहीं छोड़ते। हम चपल और नष्ट बल हैं। तुम्हारे मार्गसे च्युत होकर हाय हम मर क्यों नहीं गये।" इस प्रकार मनमें गतिको धारण करनेवाले सरल श्रमण मकान बनाकर हरिणसमूहसे युक्त वनमें रहने लगे। वे प्रवर कन्द, मधुर जड़ें, बेलका गूदा और फल खाते हैं, शीतल मधुर जल पीते हैं, सिरमें व्याप्त जटाओंवाले वे मूर्ख विचरण करते हैं, जबतक वे मुनि बनते हैं, तब तक सूर्य और चन्द्रमाके शयन और उद्गमके स्थल आसमानमें दिव्यध्वनि होती है कि वृक्षोंको मत काटो, हवा-को मत चलाओ, धरती मत खोदो, आग मत जलाओ, सरोवरमें प्रवेश मत करो, दूसरोंको मत मारो, यह विधि नहीं है। यदि धैर्य नहीं है, तो राजाके वसन और शरीरके आभूषण शीघ्र धारण कर लो। प्राणोंका दलन करनेवाले संसारके परिभ्रमणमें जो तुमने दुष्ट आचरण किया है, वह नष्ट हो जायेगा।

घत्ता—परिग्रहसे शून्य जिनका वेश धारण कर, खोटी आशावाले तुमने जो पाप किया है, जीवका वह पाप, हजारों वर्षों तक न छूटता है और न नष्ट होता है ॥४॥

५

इन अक्षरों (दिव्यध्वनि) के होनेपर बहुत-से राजा पेड़ोंके पत्ते और मयूरपिच्छ तथा वल्कल धारण कर दूसरे-दूसरे मुनि बन गये। जिनवरके विरुद्ध विरोधनिष्ठासे अधिष्ठित उन लोगोंने अपने नाना विचार और वेष बना लिये। तब कच्छप और महाकच्छपके दोनों पुत्र (नमि और विनमि), जो दुष्टोंके लिए प्रतिकूल और सिरदर्द थे, कामिनीजनके साथ कामक्रीड़ा चाहनेवाले और मदोन्मत्त प्रचण्ड हाथियोंकी लीलावाले थे, शत्रु सेनाकी शक्तिको नष्ट करनेमें समर्थ

आया तहिं जहिं णिम्मुक्कडंभु थिउ पडिमाजोएं सइं सयंभु ।
पासहिं परिभमिवि महारिजूर णं जंबूदीवहु चंदसूर ।
णामें णमि विणमि णिबद्धणेह णं सिहरिहि णियडणिसण्ण मेह ।
जयकारिवि तेहिं पवुत्तु एव णियसुयहं विहंजिवि पुहइ देव ।
दिण्णी अम्हहुं दिण्णउ ण किं वि महिमंडलु गोप्पयमेत्तु जं पि ।
पइं पालियखत्तियसासणेण पेसणयरपेसियपेसणेण ।
एवहिं पहुत्तरु किं ण देसि भणु कवणु दोसु गुणरयणरासि ।
परमेट्ठि पियामह तिजगताय अम्हारउ दुट्ठु ण होइ राय ।
घत्ता—तुह चलणहं णं णवणलिणहं मणमहुयरु रुणुरुंटइ ॥
उम्मेल्लहि काइं ण बोल्लहि जाम ण हियवउ फुट्टइ ॥५॥

६

आवली—पुणु पुणु पहुपसायदाणुग्गमे रया
पाएसुं पडंति गाढं कुमारया ।
सोहइ गुरुयणम्मि कयमाणवज्जणं
गिरिवरदारणम्मि करिदसणभंजणं ॥१॥
रयणमयमइंदासणसमेउ पोमावइपरमाणंदहेउ ।
जिणपुण्णपवणपरिछित्तकाउ तहिं अवसरि कंपिउ णायराउ ।
णियणाणु पउंजिवि तेण मुणिउं जं सालएहिं जिणु पुरउ भणिउं ।
मग्गंति बाल किं भुअणभाणु जइ देइ देई ता तिजगदाणु ।
पर तेण विमुक्कु घरत्थकम्मु पारद्धउ विमलु मुणिंदधम्मु ।
सामंतमंतिसेविउ णरेसु महिवइ संतोसिउ देइ देसु ।
देसवइ गामु गामवइ छेत्तु छेत्तवइ किं पि कुडएण भत्तु ।
घरवइ पुणु ढोवइ कूरमुट्ठि तिहुयणवइ पाडइ पयहिं सिद्धि ।
जइ पत्थिज्जइ ता को वि गरुउ लहुपत्थणाइ पर होइ चरुउ ।
लइ कयउ कुमारहिं जुत्तु साहु सो पत्थिउ जो तेलोक्कणाहु ।
सो पत्थिउ जसु जसु जगपयासु सो पत्थिउ जसु सुरवइ वि दासु ।
घत्ता—णिच्चलमणु समतणकंचणु जेण वित्तु पडिवण्णउं ॥
मोक्खत्थिउ सो जं पत्थिउ तं हउं करमि असुण्णउं ॥६॥

७

आवली—णरलोयम्मि ते हमिह खोहकारणं
जायं किं भणामि सुकयावयारणं ।
अचवंता वि देंति तरुणो महाहलं
सुपुरिसदंसणं पि ण हु होइ णिप्फलं ॥१॥

---

५. P °णिमुक्क° । ६. MBP णियडणिविट्ठु । ७. MBP पणवेप्पिणु । ८. M. तिजगभाय ।

६. १. MBP सुंदरेंहिं जिणपुरउ । २. MBP देउ । ३. P खेत्तु । ४. P खेत्तवइ । ५. MB कुलएण; P कुडएण in cecond hand । ६. MB तइलोक्क° । ७. MBP ण सुण्णउं ।

७. १. MBP भणेमि ।

थे, हाथमें तलवार लिये हुए उस स्थानपर आये, जहाँ दम्भसे रहित स्वयं आदिजिन प्रतिमायोगमें स्थित थे। महान् शत्रुओंको पीड़ित करनेवाले उन्होंने उनकी उसी प्रकार परिक्रमा दी, जिस प्रकार चन्द्र-सूर्य जम्बूद्वीपकी परिक्रमा देते हैं। आपसमें बद्ध स्नेह और नामसे नमि-विनमि वे उनके पास उसी प्रकार बैठ गये जिस प्रकार पर्वतके निकट मेघ स्थित होते हैं। जयकार करके उन्होंने इस प्रकार कहा, "हे देव, आपने अपने पुत्रोंको भूमि विभक्त करके दे दी, हम लोगोंके लिए कुछ भी नहीं दिया। जिन्होंने छात्रधर्मका परिपालन किया है और जो अनुचरोंके लिए आज्ञाका प्रेषण करनेवाले हैं, ऐसे आपने गोपदके बराबर भी भूमि नहीं दी। इस समय आप उत्तर तक नहीं देते। हे गुणरत्नराशि, बताइए इसमें हमारा क्या दोष है? हे परमेष्ठी पितामह त्रिजग पिता, हमारा राजा दुष्ट नहीं हो सकता।

घत्ता—नव कमलोंके समान आपके चरणोंमें हमारा मनरूपी मधुकर गुनगुना रहा है जबतक हमारा हृदय नहीं फटता तबतक आप क्यों नहीं देखते और बोलते ?" ॥५॥

६

प्रभुमें प्रसाद और दान उत्पन्न करनेमें लीन वे कुमार बार-बार उनके पैरोंपर पड़ रहे थे। गुरुजनके प्रति किया गया उनका मानका परित्याग वैसा ही शोभित हुआ है जैसे गिरिवरके विदारणमें हाथीके दाँतोंका भंजन सोहता है। उस अवसरपर जिसका शरीर जिनवरके पुण्यरूपी पवनसे स्पृष्ट है, और जो पद्मावतीके आनन्दका कारण है ऐसा नागराज धरणेन्द्र अपने रत्नमय सिंहासनके साथ काँप उठा। अपने अवधिज्ञानका प्रयोग कर उसने जान लिया कि जो कुछ सालों (नमि और विनमि) ने जिनवरके सामने कहा था। भुवनसूर्य (ऋषभ जिन) से ये मूर्ख क्या माँगते हैं, वे जब देते हैं तो त्रिभुवनका दान कर देते हैं। परन्तु उन्होंने तो गृहस्थधर्मका त्याग कर दिया है और पवित्र मुनिधर्म प्रारम्भ कर दिया है। सामन्त और मन्त्रियोंसे सेवित नरेश अथवा राजा सन्तुष्ट होनेपर देश देता है। देशपति ग्राम देता है, ग्रामपति क्षेत्र देता है, और क्षेत्रपति (खेतका मालिक) कुछ तो भी प्रस्थभर (एक माप) चावल देता है, और गृहपति (गृहस्थ) एक मुट्ठी चावल देता है। त्रिभुवनपति तो प्रजाओंके लिए सृष्टि प्रकट करता है। यदि प्रार्थना ही करनी हो तो किसी बड़ेसे की जाये, क्योंकि किसी छोटेसे की गयी प्रार्थनासे वह सुन्दर होती है। लो, इन कुमारोंने अच्छा किया कि उन्होंने उनसे प्रार्थना की कि जो त्रिलोकनाथ हैं। उनसे प्रार्थना की जिनका यश विश्वप्रसिद्ध है। उनसे प्रार्थना की जिनका दास इन्द्र है।

घत्ता—जो निश्चलमन हैं, तृण और कंचनमें समभाव धारण करते हैं, जिन्होंने धनका परित्याग कर दिया है। चूँकि उन्होंने उन मोक्षार्थीसे अभ्यर्थना की है, इसलिए मैं उन्हें अशून्य करता हूँ ॥६॥

७

वे (नमि-विनमि) मनुष्यलोकमें हैं। मैं यहाँ हूँ। फिर भी वे क्षोभके कारण हुए। इनसे पुण्यकी क्या अवतारणा कहूँ ? बिना कहे हुए ही वृक्ष महाफल देते हैं, सुपुरुषका दर्शन भी निष्फल

दुवई—ता[2] णिग्गमणमेव धरणेण कयं संभरियजिणवरं।
फारफणा[3]कडप्पफुक्कारुल्लो[4]लियसमहिमहिहरं ॥१॥
महिहररुंदकंदरायंपणणिग्गयकूरहरिवरं।
हरिओरालिरोलवित्तासियणासियमत्तकुंजरं ॥२॥
कुंजरचडुलचरणपे[5]डिपेल्लणपाडियपयडभूरुहं।
भूरुहखंधधुंधखरणिहसणरुहपज्जलियहुयवहं ॥३॥
हुयवहविप्फुलिंगजालावलिजलियसं[6]मत्तकाणणं।
काणणसंणिसण्णमुणि[7]तावासंकियसयलसुरयणं ॥४॥
सुरयणभरियजलयजलधाराऊरियसु[8]विउलंबरं।
अंबरयलफुरंततडिदंडाइंडलचावकब्बुरं ॥५॥
कब्बुरदिव्ववत्थवित्थिण्णुल्लोवयछइयसंदणं।
संदणयलविलग्ग[9]विसहरमुहलालियविंझचंदणं ॥६॥
चंदणकुसुमधुसिणफलदलजलतंदुलउवणियक्खणं।
[10]अक्खणकामसामफणिरामारंभियसरसणक्खणं ॥७॥
णच्चणमिलियललियलीलामरललणालुलियमेहलं।
मेहलियाविलंबिचलकिंकिणिकलकलयलसुपेसलं ॥८॥
इय वरविवरकुहरतरुणहयलजलथलकंपकारिणा।
वियडफणाहिरूढचूडामणिकुवलयभारधारिणा ॥९॥
एहुकमकमलणमियणमिविणमिणराहिवचोज्जदाइणा।
झत्ति समागएण दिट्ठो रिसहो गरलहरराइणा ॥१०॥

घत्ता—आवेप्पिणु कर मउलेप्पिणु थुउ मुणिंदु थुइलक्खहिं ॥
[11]मुहघुलियहिं अक्खरललियहिं [12]जीहहिं [13]दससयसंखहिं ॥७॥

८

आवली—कंतामुहपलोइरं भोयलालसं
भुवणवणं डहेइ मोहो मलीमसं।
जइ तुह वयणवारिणा णेय सित्तयं
ता कह जियइ मयणसिहिणा पलित्तयं ॥१॥

दूसियघरासमो भूसियणियागमो।
सोसियमईमलो पोसियमहीयलो।
मयगयणियत्तओ कयवयपयत्तओ।

२. P तो । ३. MBP °फडा° । ४. P °उल्लासिय° । ५. MBP °परिपेल्लण° । ६. MBP °समंत° । ७. M °तावससंकिय°; B °तावसरसंकिय°; P °तावसंकिय° and gloss तापशङ्कित; K °तावासंकिय°, but in secend hand °तावसंसंकिय° । ८. MBP °सविउल° । ९. MBP °वलग्ग° । १०. MBP अंचण° । ११. P मुहि । १२. MBP °वलियहि । १३. P दुसहससंखहिं ।

८. १. GK have before this line:–अमरपुरी छंदो; MBP havc अमरपुरी नाम छंदो ।

नहीं होता। तब (नागराजने जिसमें नागराजका स्मरण है ऐसा निर्गमन (कूच) किया। जिसमें फैले हुए फण समूहोंके फूत्कारसे धरती सहित पहाड़ोंको हिला दिया गया है, महीधरकी बड़ी-बड़ी गुफाओंके हिलनेसे क्रूर सिंहवर बाहर निकल पड़े हैं, जिसमें सिंहोंकी गर्जनाओंके शब्दोंसे मत्त हाथी त्रस्त और नष्ट हो गये हैं। हाथियोंके चंचल पैरोंके आघातसे स्पष्ट रूपसे वृक्ष उखड़ गये हैं। वृक्षोंके स्कन्धोंके बन्धोंके तीव्र संघर्षणके कारण वृक्षोंसे आग प्रज्वलित हो उठी है, आगके स्फुलिंगों और ज्वालावलियोंसे समस्त कानन जल चुका है, जिसमें काननमें बैठे हुए मुनियोंके सन्तापसे देवता आशंकित हो उठे हैं। देवजनोंके द्वारा भरित मेघोंकी जलधाराओंसे विशाल अम्बर आपूरित है। आकाशतलमें चमकते हुए विद्युद्दण्डवाले इन्द्रधनुषसे रंग-बिरंगापन है। जिसमें रंग-बिरंगे दिव्य वस्त्रोंसे विस्तीर्ण चँदोवोंसे रथ आच्छादित हैं, जिसमें रथोंके तल भागोंसे लगे हुए विषधरोंके मुखोंसे विन्ध्याके चन्दनवृक्ष चुम्बित हैं, जिसमें चन्दन-पुष्प-केशर-फल-दल-जल और अक्षतसे पूजा की गयी है, जिसमें पूजाकी कामनासे नागराजकी पत्नी पद्मावतीके द्वारा सरस नृत्य प्रारम्भ किया गया है। जिसमें नृत्यमें मिली हुई सुन्दर देवांगनाओंकी करधनियाँ च्युत हैं, जो करधनियोंसे लटकती हुई किंकिणियोंकी कलकल ध्वनिसे कोमल है। इस प्रकार वर-विवर कुहर वृक्ष आकाशतलको कम्पित करनेवाले, तथा विकट फनोंपर अधिष्ठित चूड़ामणिपर पृथ्वीमण्डलका भार उठानेवाले, प्रभुके चरणकमलोंमें नत नमि-विनमि राजाओंको आश्चर्य प्रदान करनेवाले, नागराजने शीघ्र आकर ऋषभनाथके दर्शन किये।

घत्ता—आकर, फन मोड़कर लाखों स्तुतियों और मुँहमें घूमती हुई, अक्षरोंकी तरह सुन्दर दस हजार जिह्वाओंसे स्तुति की।

८

यह भुवनरूपी वन, जो कान्ताओंका मुख देखनेवाला, भोगका लालची और मैला है, इसे मोह जलाकर खाक कर देता। यदि तुम्हारे वचनरूपी जलसे यह नहीं सींचा जाता तो कामरूपी आगसे प्रदीप्त यह विश्व कैसे जी सकता है ? आप गृहस्थाश्रमको दूषित करनेवाले, अपने आगमको भूषित करनेवाले, बुद्धिके मैलको नष्ट करनेवाले, महातलका पोषण करनेवाले, मदरूपी गजको

भावियजयत्तओ तावियसंयत्तओ[2]।
खंचियविसायओ संचियविरायओ।
लुंचियसिरोरुहो वंचियदुरग्गहो।
कुंचियगईवहो अंचियजसावहो।
मावईखोहओ आवईरोहओ।
छंडियकुसंगओ खंडियअणंगओ।
दंडियसइंदिओ पंडियपवंदिओ।
तवयरणपरियरो जमकरणभयहरो।
समसरणजोयओ भवतरणपोयओ।
सज्झाणग्गणी सिद्धचिंतामणी।
संपयासंगमो धम्मकप्पद्दुमो[3]।
भवविणासी भवो सिवपयासी सिवो।
चित्ततमहो इणो दोसविजई जिणो।
पावहारी हरो तं पराणं परो।
देवदेवो तुमं ताहि दीणं ममं।
णिग्गुणो णिर्द्धणो[4] दुम्मई णिग्घिणो।
परहरावासओ गहियपरगासओ[5]।
माणओ मेच्छओ रोहिओ रिंछओ।
जायओ हं भवे णारओ रउरवे।
तुम्ह पडिकूलिमा जा कया सा कमा।
एम भुत्ता मए आसि काले गए।

घत्ता—जिणु वंदिवि अप्पउ णिंदिवि णाएं तमु पक्खालिउ ॥
णमिरायहु विणमिसहायहु मुहससिबिंबु णिहालिउ ॥८॥

९

आवली—तेहिं पयंपियं सया सुहावणं
महिमहि दारिऊण पत्तो सि किं वणं।
कस्स तुमं सुसील अम्हाण संमुहं
अणिमिसलोयणेहिं किं पेच्छसे मुहं ॥१॥

णीसेसे[1]तासियामियणरिंदु तं णिसुणिवि[2] पडिजंपइ फणिंदु।
हउं भुवणि पसिद्धउ णायराउ जंभारिणमंसिउ तिजगताउ।
लोउत्तमु कुसुमसरंतयालु इहु देउ महारउ सामिसालु।
जइयहुं णिव्वेइउ मुक्करज्जु[3] तइयहुं जि एण महु कहिउ कज्जु।
तं पेसिय[4] केण वि कारणेण विहलियजडजीउद्धारणेण।

---

२. M °सगत्तओ। ३. B omits this foot. ४. MB णिद्धुणो। ५. MP add after this : जीवआसासओ करणवलपोसओ; B adds only जीवआसासओ।

९. १. MBP णीसास°। २. B णिसुणवि। ३. MB मुक्कु रज्जु। ४. MBP संपेसिय।

नियन्त्रित करनेवाले, व्रतोंका प्रवर्तन करनेवाले, भविष्यको जीतनेवाले, अपने शरीरको सन्तप्त करनेवाले, विषादको नष्ट करनेवाले, विरागको संचित करनेवाले, केश लोंच करनेवाले, दुराग्रहसे दूर रहनेवाले, गतिके मार्गको संकुचित करनेवाले, यशका पथ अंकित करनेवाले, लक्ष्मीको क्षुब्ध करनेवाले, आपत्तियोंको रोकनेवाले, कुसंगतिको छोड़नेवाले, कामको खण्डित करनेवाले, अपनी इन्द्रियोंको दण्डित करनेवाले, पण्डितोंके द्वारा वन्दनीय, तपश्चरणके परिग्रहवाले, यमको भय उत्पन्न करनेवाले, उपशमके घर, संसार तरणके पोत (जहाज), सच्चे ज्ञानमें अग्रणी, सिद्ध चिन्तामणि, सम्पदासे असंगम करनेवाले, धर्मके कल्पवृक्ष, भव (संसार) का नाश करनेवाले भव, शिवको प्रकाशित करनेवाले शिव, चित्तके तम-समूहको नष्ट करनेवाले सूर्य, दोषोंके विजेता जिन, पापका हरण करनेवाले हर और श्रेष्ठोंमें श्रेष्ठ हे देवदेव, आप मुझ दीनका त्राण करें। मैं निर्गुण, निर्धन, दुर्मति, निर्घिन, दूसरेके घरमें वास करनेवाला, दूसरोंके घरका कौर खानेवाला मैं मानव, म्लेच्छ, मत्स्य और रीछ हुआ हूँ, भव-भवमें। और रौरव नरकमें नारकी हुआ हूँ। हे जिन, बीते समयमें तुमसे जो मैंने प्रतिकूलता की थी, उसे मैंने क्रमसे भोगा है।

घत्ता—इस प्रकार जिनकी वन्दना कर और अपनी निन्दा कर, नागने अपना तम (पाप-तम) धो लिया। और फिर विनमि है सहायक जिसका, ऐसे नमि महाराजका मुखरूपी चन्द्रबिम्ब देखा ॥८॥

९

उन्होंने कहा, "हे सदा सुखकर सर्पराज, धरती फाड़कर आप वनमें आये। हे सुशील, तुम हमारे सम्मुख क्यों हो और अपलक नेत्रोंसे मुख किस लिए देख रहे हो?" तब समस्त अमित नरेन्द्रोंको सन्त्रस्त करनेवाला फणीन्द्र यह सुनकर बोला, "मैं भुवनमें प्रसिद्ध नागराज हूँ, इन्द्रके द्वारा प्रणम्य त्रिजगत्तात, लोकोत्तम, कामदेवका अन्त करनेवाले यह हमारे स्वामी श्रेष्ठ हैं। जब यह राज्य छोड़कर विरक्त हुए तब इन्होंने मुझसे एक काम कहा था कि विकल और जड़

एहिंति वे वि णमिविणमिणाम मइं मग्गिहिंति सिरिसोक्खकाम।
तुहुं देज्जसु ताहं णयासणाउ खगसेढिउ उत्तरदाहिणाउ।
आसणथरहरणें ढलिउ संचु मइं जाणिउ तुम्हारउ पवंचु।
पायालु मुइवि अवयरिउ एत्थु हउं अरुहदेवपेसणसमत्थु।[५]
जो खंडइ लिंपइ सुरहिएण देवें णिज्झाइयणियहिएण।
एवहिं सो दीसइ [६]धुवु समाणु परिचत्तउ पुव्विल्लउ विहाणु।

घत्ता—लहु आवहं काइं चिरावहं जोइ मुएवि सखयरइं।
मइं सिट्ठइं पहुडवइट्ठइं भुंजह णाणाणयरइं॥९॥

१०

आवली—इय वयणं कुमारवीरेहिं इच्छियं
णवर णहयले विमाणं णियच्छियं।
मारुयधावमाणधुयधयवडंचियं
गुणिणा झत्ति णायणाहेण णिम्मियं॥१॥

[१]णविऊण सदोसारंभहरं सुरवरभवणेण सरंभहरं।
[२]जुज्झियहिंडियविसहरिणउलं [३]दूवंकुरपीणियहरिणउलं।
गयणंगणलग्गसिरं गरुयं ओसहिहयसत्तसिरंगरुयं।
उक्खयपुलिंदकंदारुणयं हरिणहहयकरिकंदारुणयं।
सीहाणुलग्गभीयरसरहं सुररमणीवाहियहंसरहं।
तीरासियखयरीवाहणयं दुमघट्टणहुयहुयवाहणयं।
णेउररवभरियल[४]याहरयं वरखेयरपीयपि[५]याहरयं।
सं[६]दरिसियबहुरत्तामरसं रवियरवियसावियतामरसं।
वीसरियहारभारियमहियं जिणपडिमाकयमहिमामहियं।
चारणमुणिदेसियधम्मसुइं झरझरियणिज्झरावाहसुइं।
फणिवयणविमुक्कविसग्गिवहं दरि[७]दावियविविहविसग्गिवहं।
णरजुयलमलद्धपियालवणं णीयं सेलं सपियालवणं।
पुव्वावरजलहिविलग्गसिरो कंदरमुहेहिं वणयरगसिरो।

घत्ता—भडभीसहिं णमिविणमीसहिं गिरि वेयड्ढु पलोइउ॥
रयणालए सायरवेलए तुलदंडु व संजोइउ॥१०॥

---

५. MBP अरुहदासपेसण°। ६. MBP धुउ।

१०. १. All Mss. have before this line : मात्रासमकं। २. MBP जुज्झियहिंडिर। ३. MBP दुव्वंकुर°। ४. M °लयाहरहं। ५. M °पियाहरयं। ६. P संदरसिय°। ७. MBP दरिसाविय°।

जीवका उद्धार करनेके किसी कामसे भेजे गये कोई नमि-विनमि नामके दो जन आयेंगे, श्री और सुखकी कामना रखनेवाले जो मुझसे कुछ माँगेंगे। तुम उन लोगोंके लिए विजयार्ध पर्वतपर आश्रित उत्तर-दक्षिण विद्याधर श्रेणियाँ प्रदान कर देना। आसनके काँपनेसे मेरा शरीरबन्ध हिल गया, (उससे) मैंने तुम्हारा प्रपंच जान लिया। पाताल छोड़कर मैं यहाँ अवतरित हुआ हूँ, मैं अरहन्त देवकी आज्ञा पूरी करनेमें समर्थ हूँ। अपने हृदयसे ध्यान किया है जिन्होंने, ऐसे देवके द्वारा (ऋषभ) जो उन्हें खण्डित करता है या सुरभिसे लेप करता है, वह इस समय निश्चित रूपसे समान भावसे देखा जाता है, उन्होंने पहलेका विधान (प्रशासन) छोड़ दिया है।

घत्ता—जल्दी आओ, देर क्यों करते हो, योगीको छोड़कर, प्रभुके द्वारा आदिष्ट और मेरे द्वारा निर्मित विद्याधरों सहित नगरियाँ हैं, उनका भोग करो" ॥९॥

१०

इन वचनोंको कुमार वीरोंने चाहा। केवल उन्होंने आकाशमें विमान देखा। हवासे दौड़ते हुए और प्रकम्पित ध्वजपटोंसे अंचित जिसे, गुणी नागराजने शीघ्र निर्मित किया था। अपने दोषोंके प्रारम्भका नाश करनेवाले (ऋषभ जिन) को नमन कर ऋषभनाथका प्रिय आलपन न पानेवाले वे दोनों देव विमानके द्वारा विजयार्ध शैलपर ले जाये गये, जो सरोवरका जल धारण करनेवाला था, जिसमें युद्ध करते हुए वृषभ, सिंह और नकुल घूम रहे थे। हरिणोंका समूह दूर्वांकुरोंसे प्रसन्न था, जिसके शिखर आकाशको छूते थे, महान्, जिसने अपनी औषधियोंसे प्राणियोंके शिर और शरीरसे रोग दूर कर दिया था, जो शबरों द्वारा उखाड़े गये मूलोंसे अरुण थे, जो सिंहोंके नखोंसे आहत हाथियोंके मस्तकसे भयंकर थे, जहाँ भयंकर अष्टापद सिंहोंका पीछा कर रहे थे, जिसमें सुररमणियाँ हंसरथोंको हाँक रही थीं, जिसके तीरपर विद्याधरियोंके वाहन स्थित थे। जिसमें वृक्षोंके संघर्षसे उत्पन्न आग प्रज्वलित थी। जिसके लताघर नूपुरोंकी झंकारसे झंकृत थे, और श्रेष्ठ विद्याधर अपनी प्रियाओंके अधरोंका पान कर रहे थे, जो अपनी वधुओंमें अनुरक्त देवोंके सुखका प्रदर्शन कर रहा था, जिसमें रविकिरणोंसे कमल खिल रहे थे, जिसमें खोये हुए हारोंसे धरती पटी पड़ी थी, जो जिन भगवान्‌की प्रतिमाओंकी महिमासे पूज्य था, जो चारण-मुनियोंके द्वारा उपदिष्ट धर्मसे पवित्र था जिसमें झरझर निर्झरोंका अबाध प्रवाह था, जिसमें नागोंके मुखोंसे निकली हुई विषाग्नि शान्त थी, जिसकी घाटियोंकी पक्षियों द्वारा स्वर्गपथ दिखाया जा रहा था, जो प्रियाल वृक्षोंके वनोंसे युक्त था। पूर्वी और पश्चिमी समुद्रों, डूबे हुए छोरोंवाला और गुफाओंके मुखोंसे वनचरोंकी लीलता हुआ—

घत्ता—भटोंसे भयंकर विजयार्द्ध पर्वतको नमि और विनमिने इस प्रकार देखा, जैसे रत्नोंके घर सागर-तटपर तुलादण्ड रख दिया गया हो ॥१०॥

११

आवली—वियसियविडविकुसुमकिंजक्कपिंजरो
मणिमयकडयमंडिओ णं महीकरो।
रयणायरपसारिओ सहइ सोहणो
रयणायरवि लुद्धओ हवइ थीयणो ॥१॥

णं जगसिरिणट्टाधारवंसु अहवा गोगाइसरीरवंसु।
गंगासिंधूहिं विहिण्णदेहु पडिगयसंकिरगयणिहयमेहु।
रुक्खहुं णावइ रुक्खाउवेउ देवहुं वल्लहु णं सग्गलोउ।
उवलोसहिरससिहिजोयवण्णु रसवाइ व सइं णिवडियसुवण्णु।
णिसि चंदयंतसलिलेहिं गलइ वासरि रविमणिजलणेण जलइ।
माणिक्कपहादिण्णावलोउ जहिं चक्कवाय ण मुणंति सोउ।
रययमउ सव्वु रयणियरभासु पण्णास मूलि वित्थारु जासु।
गयणंगणलंगविचित्तसिंगु जो पंचवीसजोयणइं तुंगु।
दोवासहिं तासु थियाउ ताम दीहत्ते लवणसमुद्दु जाम।
उत्तरदाहिणियउ मणहराहं सेढीउ दोण्णि विज्जाहराहं

घत्ता—महि मोइवि दह वरि जाइवि दहजोयणविस्थिण्णी॥
एक्केकी विहवगुरुक्की णाणारयणरवण्णी ॥११॥

१२

आवली—तत्थ चउत्थकालठिदिसंविहाणयं
पंचधणूसयाइं मुणिरयणिमाणयं।
णीणं कम्मभूमिपरिणामजोयओ
परविज्जाहलेण अहिओ विहोयओ ॥१॥

कुलजाइकमेण समागयाउ दूसहतवतावसंगयाउ।
पुव्वाउ ताउ णिवं हियाउ अवराउ पयत्तें साहियाउ।
संहिउवसग्गें धीरें समेण सुइदेहें होमें संजमेण।
पारंभियमुद्दामंडलेण चरुगंधधूवफुल्लक्खणेण।
विज्जाहराहं णियमें वएण विज्जाउ होंति ससहावएण।
सिद्धउ पण्णत्तिपहूइयाउ आणत्तु करिंति पराइयाउ।
जहिं धम्मा इव संदिण्णकाम णीरंतरसीमाराम गाम।
जहिं दक्खामंडवयलि सुयंति पंहि पंथिय दक्खारसु पियंति।

---

११. १. MBP गयणग्गलग्गसुविचित्त°। २. B °संगु। ३. MB सेढिउ दोण्णि वि; P सेढिउ बेण्णि वि। ४. MBP णाणाणयर°।

१२. १. P °कालट्ठिदि°। २. T भयराणिमाणयं, but notes a *p* : मुणिरयणीति पाठेऽप्ययमेवार्थः। ३. MBP कम्मभूमिणाम°। ४. MBP सहिओवसग्गधीरें। ५. MB °पुप्फच्चणेण; B पुप्फंचणेण। ६. MBP कमेण। ७. MBP सुदूइयाउ। ८. MBP णेरंतर°। ९. M जहिं।

११

विकसित वृक्षोंके पुष्पपरागसे पीला और मणिमय कटकसे शोभित वह विजयार्ध पर्वत मानो जैसे धरतीका हाथ हो। रत्नाकर तक फैला हुआ शोभन जो ऐसा लगता है मानो (रत-नागर) विदग्ध पुरुषमें स्त्रीजन हो। जो मानो विश्वश्रीके नाट्यका आधारभूत बाँस हो, अथवा पृथ्वीरूपी गायके शरीरका आधार हो; गंगा और सिन्धु नदियोंके द्वारा जो खण्डित शरीर है, जिसमें प्रतिगजोंकी आशंकामें गज मेघोंको आहत करते हैं, वृक्षोंके लिए जो पर्वत वृक्षायुर्वेद शास्त्र हो, देवोंके लिए प्रिय जो मानो स्वर्गलोक हो। धातु पाषाणोंके औषधि रसकी आगसे चमकते हुए रंगवाला जो, रसवादीकी तरह स्वयं स्वर्णमय हो गया है। जो चन्द्रकान्त मणियोंके जलसे रात्रिमें गल जाता है, और दिनमें सूर्यमणियोंकी ज्वालामें जल उठता है। माणिक्योंकी प्रभासे प्रकाश (अवलोकन) मिल जानेके कारण जहाँ चकवे शोकको नहीं जानते। जो समस्त रजतमय है, और चन्द्रमाकी आभाके समान है, जिसका विस्तार पचास योजन है, जिसके विचित्र शिखर आकाशको छूते हैं, जो पचीस योजन ऊँचा है। लम्बाईमें वह अपने दोनों किनारोंसे वहाँ तक स्थित है कि जहाँ तक लवण समुद्र है। जिसकी उत्तर-दक्षिण श्रेणियाँ सुन्दर विद्याधरोंकी हैं।

घत्ता—जो धरतीको छोड़कर, दस योजन ऊपर जाकर दस योजन विस्तृत है, और नाना रत्नोंसे सुन्दर एक-एक वैभवमें महान् है ॥११॥

१२

वहाँ हमेशा चतुर्थकालकी स्थितिका संविधान है। मनुष्योंकी ऊँचाई पाँच सौ धनुष प्रमाण है। जहाँ कर्मभूमिके समान कृषि आदि कर्मसे उत्पन्न तथा श्रेष्ठ विद्याओंके फलसे अधिक भोग हैं। कुलजातिके क्रमसे आयी हुई, असह्य तपस्याके तापसे वशमें आयी हुई पूर्वकी विद्याएँ उन्हें नित्य रूपसे प्राप्त हो गयीं और भी विद्याएँ उन्होंने (नमि-विनमिने) प्रयत्नसे सिद्ध कर लीं। उपसर्गोंको सहन करनेका धैर्य शम, पवित्र देह, होम, संयम, मुद्रामण्डलके प्रारम्भ करनेसे नैवेद्य, गन्ध, धूप और फूलों द्वारा अर्चा करनेसे नियम और व्रत करनेसे विद्याधरोंको स्वभावसे विद्याएँ सिद्ध होती हैं। प्रज्ञप्ति आदि विद्याएँ उन्हें सिद्ध हो गयीं, और आकर उनकी आज्ञाओंका पालन करने लगीं। जहाँ सीमा उद्यानोंसे निरन्तर बसे हुए ग्राम धर्मोंकी तरह कामनाओंको पूरा करनेवाले हैं।

धवलूढजंतपीलिज्जमाणु पुंडुच्छुखंडरसु[10] पवहमाणु ।
कइकव्वरसु व जणु पियइ ताम तित्तीइ होइ सिरकंपु जाम ।
जहिं पिक्ककल[11]मकणिसइं चरंति सुय दूयत्तणु हलिणिहि करंति ।
घत्ता—सिरिसयणहिं णं बहुवयणहिं [12]विलसंती दिणि रायइ ॥
जहिं पोमिणि कलमहुयरझुणि णं भाणुहि गुण गायइ ॥१२॥

१३

आवली—कंकणहारदोरकडिसुत्तभूसिया
णिच्चं गंधधूव[1]मल्लोहवासिया ।
लच्छि भुंजिउं णरा देवयाणियं
सोक्खं जं लहंति तं केण भाणियं ॥१॥
कुसुमियणंदणवणसंकडाइं कीलागिरिंदसिहरुब्भडाइं ।
परिहातिएहिं परियंचियाइं पवणुद्धुयधयमालंचियाइं ।
बहुदारगो[2]उरट्टालयाइं सोवण्णरयणरइयालयाइं ।
मुहसालातोरणसोहियाइं दाहिणसेढिइ जसाहियाइं ।
सोहासमूहमोहियसुराइं एयइं पण्णास जि पुरवराइं ।
पहिलउ किंणर णरगीउ बीउ बहुकेउ पुणु वि पुरु पुंडरीउ ।
हरिकेउ [3]सेयकेउ वि रवण्णु सप्पारिकेउ णीहारवण्णु ।
सिरिवहु सिरिहरु [4]लोहग्गलोलु अण्णेक्कु अरिंजउ सग्गलीलु ।
वज्जग्गलु वज्जविमोउ अवरु महिसारु पुरं [5]जयपुरु वि पवरु ।
सोलहमी पुरि [6]सयडमुहि होइ चउमुहि बहुमुहि जाणंति जोइ ।
रयविरयपउरखगजम्मखोणि आहंडलणयरि विलासजोणि ।
अपरज्जिउ कंचीदासु दोण्णि सविणय णहु [7]खेमयरीउ तिण्णि ।
झसइंध कुसुमपुरि संजयंति [8]सुक्कउरु जयंती वइजयंति ।
विजया खेमंकरु चंदभासु रविभासु सत्तभूयलणिवासु ।
सुविचित्त महाघण चित्तकूडु अण्णु वि तिकूडु [9]वइसवणकूडु ।
ससिरविपुरि विमुही वाहिणी वि सुमुहीपुरि णिच्चुज्जोइणी वि ।
मज्झइ रहणेउर[10] चक्कवालु तहिं सयलखयरकुलसामिसालु ।
जायउ[11] जयमंगलजयरवेण णमि फणिणा णिहिउ कउच्छवेण ।
घत्ता—एक्केक्की [12]पुरहिं विरिक्की गामकोडिपडिबद्धी ॥
णमिरायहु थुयणाहेयहु धम्में संपय सिद्धी ॥१३॥

---

१०. MBP रसपवहमाणु । ११. M कलमकणसइं; BP कलवकणिसइं । १२. MBPK विसयंती ।

१३. १. MBP °मल्लेहिं वासिया; T °मल्लोह° and gloss पुष्पसमूहः । २. P °गोउरुद्दालयाइं । ३. MBP सेउकेउ । ४. MB लोयग्गलीलु; P लोहग्गलालु and gloss लोहार्गलायुक्तम् । ५. B जउपुरु । ६. B सयडंमुहि । ७. M खेपुरीउ; BP खेमपुरीउ । ८. MBP सुक्कउरि । ९. P वइससण° । १०. P णेउरु चक्कवालु । ११. MBP जायेउ । १२. M विहवगुरुक्की; BP पुरहिं गुरुक्की ।

जहाँ पथिक राखोंके मण्डपोंके नीचे सोते हैं और द्राक्षारस पीते हैं। जहाँ बैलोंके द्वारा संवाहित यन्त्रोंके द्वारा पेरा गया पौंड़ों और ईखोंका रस बह रहा है। जिसे कविके काव्य रसकी तरह जन तबतक पीते हैं कि जबतक तृप्तिसे उनका सिर नहीं हिल जाता। जहाँ तोते पके हुए धान्यों-के कणोंको चुगते हैं और कृषक-स्त्रियोंका दौत्य कार्य करते हैं।

घत्ता—जहाँ कमलिनी बहुत-से कमलोंसे दिनमें इस प्रकार शोभित है मानो सुन्दर मधुर ध्वनिमें सूर्यका गुणगान कर रही हो ॥१२॥

१३

कंगन-हार-दोर और कटिसूत्रसे भूषित, नित्य गन्ध-धूप और पुष्पसमूहसे सुवासित वहाँके लोग जो विद्याओंसे सम्पादित लक्ष्मीका उपभोग करते हैं और जो सुख प्राप्त करते हैं वह किसे मिला ? उसकी दक्षिण श्रेणीमें कुसुमित नन्दन वनोंसे व्याप्त, क्रीड़ा-गिरीन्द्रोंके शिखरोंसे उन्नत तीन-तीन खाइयोंसे घिरे हुए, हवासे उड़ती हुई ध्वजमालाओंसे शोभित बहुद्वार और गोपुरवाली अट्टालिकाओंसे युक्त, स्वर्ण और रत्नोंसे निर्मित प्रासादोंवाले, मुख्य शालाओं और तोरणोंसे अंचित और यशमें प्रसिद्ध, अपने सौन्दर्य-समूहसे सुरवरोंको मोहित करनेवाले ये पचास पुरवर हैं। पहला किन्नर, दूसरा नरग्रीव, फिर बहुकेतु, फिर पुण्डरीक नगर, फिर सुन्दर हरिकेतु, श्वेत-केतु, फिर सर्परिकेतु और नीहारवर्ण। श्रीबहु, श्रीधर, लोहाग्रलोल तथा एक और स्वर्गकी तरह आचरण करनेवाला अरिंजय। वज्रार्गल, वज्रविमोद और धरतीमें श्रेष्ठ विशाल जयपुर। सोलहवीं भूमि शकटमुखी है, और भी चतुर्मुखी बहुमुखी नगरियाँ हैं, जिन्हें योगी जानते हैं। समविरागसे प्रचुर विद्याधरोंकी जन्मभूमि और विलासयोनि आखण्डल नगरी है, दो और हैं अपराजित और कांचीदाम; संविनय, नभ और क्षेमंकरी ये तीन नगरियाँ और हैं; झसइंध, कुसुम-पुरी, संजयन्त, शुक्रपुर, जयन्ती, वैजयन्ती, विजया, क्षेमंकर, चन्द्रभारा (सप्ततल भूमिनिवास), रविभास, सुविचित्र महाघन, चित्रकूट, और भी त्रिकूट, वैश्रवणकूट, शशिरविपुरी, विमुखी, वाहिनी, सुमुखीपुरी और नित्योद्योतिनी भी। और उसके बीचमें रथनूपुर चक्रवालपुर है। उसमें समस्त विद्याधरोंके स्वामीश्रेष्ठ नमिको नागराजने उत्सव कर जय-जय मंगलके साथ प्रतिष्ठित कर दिया।

घत्ता—नगरोंसे विभक्त एक-एक नगरी करोड़ों ग्रामोंसे प्रतिबद्ध थी। इस प्रकार नाभेय ऋषभनाथकी स्तुति करनेवाले नमि राजाको धर्मसे सम्पत्ति फिर हुई ॥१३॥

१४

आवली—पुरिसा भूयलम्मि विरला सुधीरया
परउवयारवावडा होंति धीरया।
एक्को अहव दोण्णि पायालराइणा
[1]सेरिसा [2]णत्थि भइ धरणिंदभोइणा ॥१॥

वारुणासामुहाओ फुडं जाणिमो   वामसेढी[3]पुराणावलिं भाणिमो।
अज्जुणी वारुणी वइरिसंघारिणी   अवि य केलासपुव्विल्लया वारुणी।
[4]विज्जुदित्तं पुरं [5]गिलिगिलं पट्टणं   चारुचूडामणी चंदभाभूसणं।
[6]वंसवेत्तं पुरं कुसुमचूलं पुरं   हंसगब्भं पुरं मेहणामं पुरं।
संकरं लच्छिहम्मं पुरं चामरं   विमलमसुक्कयं सिवसमं मंदिरं।
वसुमईणामयं सव्वसिद्धत्थयं   [7]सूरसत्तुंजयं केउमालं कयं।
इंदकंतं [8]ण्हाणंदणासोययं   वीयसोयं विसोयं सुहालोययं।
अलयतिलयं च णहतिलययं मंदिरं   [9]कुमुदकुंदं च णहवल्लहं सुंदरं।
[10]जुइतिलयमवणितिलयं सगंधव्वयं   मुक्कहारं पुरं अणिमिसं दिव्वयं।
अग्गिजालापुरं [11]गरुयजालापुरं   सिरिणिकेयं च जयसिरिणिवासं पुरं।
रयणकुलिसं वरिट्ठं विसिट्ठासयं   दविणजयमवि सभद्दं च भद्दासयं।
फेणसिहरं पि गोखीरवरसिहरयं   वेरिअक्खोहसिहरं च गिरिसिहरयं।
धरणि धारणि सुदंसणपुरं रुंदयं[12]   दुग्गयं दुद्धरं हारिमाहिंदयं।
विजयणामं पुरं पुणु सुगंधिणिपुरं   [13]सुरयणायरपुरं रयणपुरमवि पुरं।
सट्ठिगामाण कोडीहिं सहुं हारिणा   [14]सट्ठि तुट्ठेण [15]सुविसिट्ठसुहयारिणा।

घत्ता—इय णयरइं णिवसियखयरइं धणकणजणपरिपुण्णइं ॥२०॥
अणुराएं रिसहपसाएं णाएं विणमिहि दिण्णइं ॥१४॥

१५

आवली—जाओ सो णहयराणं पहू पिओ
णेहणिबद्धओ [1]संसुहिणा समं थिओ।
सुयणुद्धारभारधर[2]णुज्जुयंगओ
ते आउच्छिऊण धरणो धरं गओ ॥१॥

भुवणहु मंडणु अरहंतु देउ   माणिणिमुहमंडणु मयरकेउ।
वेसहि मंडणु वइसिउ णिरुत्तु   ववहारहु मंडणु [3]चायवित्तु।
कुलमंडणु सीलु सुयस्स बुद्धि   तवचरणहु मंडणु मणविसुद्धि।

१४. १. M सरसा। २. MBP भइ णत्थि। ३. MBP पुराणावली। ४. P विज्जदंतं। ५. MBP किलिकिलं। ६. MP वंसवंतं; वंसवंसं। ७. MBP सूरसंतुज्जयं। ८. MBP महा°। ९. MBP कुसुमकुंद व्व। १०. M जुवइतिलयं सवणियं; P जुवइतिलयं सविणियं। ११. MBP गरुयआलापुरं। १२. P रुद्दय। १३. M सुरयणारय°। १४. MBP सुट्ठु। १५. P सुविसुद्ध° but gloss सुविशिष्ट।

१५. १. B सुसुहिणा। २. P धरणुज्जयंगओ, but gloss ऋजुशरीरः। ३. BP वायवित्तु, aud gloss in P वचनप्रतिपालनम्।

१४

भूतलपर ऐसे लोग विरल हैं जो सुधीजनोंमें रत, दूसरोंके उपकारमें चेष्टा करनेवाले और धीर होते हैं, एक या दो। पातालके राजा नागराज धरणेन्द्रके समान भला आदमी नहीं है। पश्चिम दिशाके मुखसे प्रारम्भ होनेवाली दक्षिणश्रेणीकी पुराणावलीको मैं अच्छी तरह जानता हूँ, और उनकी नामावलीको कहता हूँ। अर्जुनी-वारुणी वैरि-सन्धारिणी, और भी कैलासके पूर्वकी वारुणी, विद्युद्दीप्त नगर, गिलगिल (गिलगित) नगर, चारुचूड़ामणि, चन्द्रमाभूषण, वंशवक्त्र, कुसुमचूलपुर, हंसगर्भ, मेघनामपुर, संकर, लक्ष्मी, हर्म्य, चामर, विमल, मसुक्कय, शिवसम मन्दिर, वसुमती सर्वसिद्धार्थ, सूर शत्रुंजय, केतुमाल-इन्द्रकान्त नभानन्दन, अशोक, बीतशोक, विशोक, शुभालोक, अलकतिलक, नभतिलक, सगन्धर्व, मुक्तहार, अनिमिष दिव्य, अग्निज्वालापुर, गरुज्वालापुर, श्रीनिकेत, जयश्री निवासपुर, रत्नकुलिश, वरिष्ठ, विशिष्टाशय, द्रविण जय सभद्र और भद्राशय, फेनशिखर, गोक्षीरवर शिखर, वैरि-अक्षोभ शिखर, गिरिशिखर, धरणीधारिणी, विशाल सुदर्शनपुर, दुर्गय, दुर्धर, हारिमाहेन्द्र, विजयनाम और फिर सुगन्धिनीपुर और भी रत्नपुर ये साठ नगर, साठ करोड़ गाँवोंके साथ, सन्तुष्ट मनोज्ञ तथा सुविशिष्ट और शुभ करनेवाले (नागराज धरणेन्द्रने)।

घत्ता—नृपश्री और खेचरोंसे युक्त धन-कण और जनसे परिपूरित ये नगर ऋषभके प्रसादसे विनमिको प्रदान किये गये ॥१४॥

१५

वह विद्याधरोंका प्रिय स्वामी हो गया, वह अपने हितैषियोंके साथ स्नेहबद्ध रहने लगा। सुजनोंके उद्धारभारको धारण करनेके लिए उद्यत वह धरणेन्द्र उन दोनोंसे पूछकर अपने घर चला गया ॥१॥

भुवनके मण्डन अरहन्तदेव हैं, मानवियोंका मुखमण्डन कामदेव हैं। वेश्याका मण्डन निश्चय ही वेश्यावृत्ति है; व्यवहारीका मण्डन त्यागवृत्ति है; कुलका मण्डन शील है, शास्त्रका

कुलवहुमंडणु भत्तारभत्ति असि रायहु मंडणु मंतसत्ति ।
माणहु मंडणु अदीणवयणु भवणहु मंडणु वरणारिरयणु ।
कइमंडणु णिव्वाहियणिबंधु गयणहु मंडणु ससि कमलबंधु ।
पियपेम्महु मंडणु पणयकोउ आरंभहु मंडणु खलविओउ ।
किंकरमंडणु पहुकज्जकरणु णरवइमंडणु पाइक्कभरणु ।
सिरिमंडणु पंडिययणु णिरुत्तु पंडियमंडणु णिम्मच्छरत्तु ।
पुरिसहु मंडणउ परोवयारु धरणिंदें पालिउ णिव्वियारु ।
उद्धरिय वे वि णमि विणमि भाय को पावइ एयहु तणिय छाय ।
अहवा किं होसइ किर परेण परिणवइ दइउ सव्वायरेण ।

घत्ता—किं किज्जइ अण्णें दिज्जइ सव्वहु पुण्णु जि सामिउ ॥
तें कित्तणु भरहपहुत्तणु पुप्फयंतगयगामिउ ॥१५॥

इय महापुराणे तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारे महाकइपुप्फयंतविरइए महाभव्वभरहाणुमण्णिए महाकव्वे णमिविणमिरज्जलंभो णाम अट्ठमो परिच्छेओ सम्मत्तो ॥ ८ ॥

॥ संधि ॥ ८ ॥

४. M सोहइ । ५. MBP होइ । ६. MBP °गइ° ।

मण्डन बुद्धि है, तपश्चरणका मण्डन चित्तकी विशुद्धि है, कुलवधूका मण्डन अपने पतिकी भक्ति है, राजाका मण्डन मन्त्रशक्ति है, मानका मण्डन अदैन्य वचन है, भवनका मण्डन श्रेष्ठ नारीरत्न है, कविका मण्डन अपने प्रबन्धका निर्वाह है। आकाशका मण्डन सूर्य और चन्द्र हैं, प्रियप्रेमका मण्डन प्रकोप है, प्रारम्भका मण्डन खलवियोग है। किंकरका मण्डन अपने स्वामीका काम करना है। राजाका मण्डन प्रजाका भरण करना है। निश्चयसे लक्ष्मीका मण्डन पण्डितजन हैं, और पण्डितजनका मण्डन मत्सरतासे रहित होना है। पुरुषका मण्डन परोपकार है। जिसका पालन धरणेन्द्रने निर्विकार भावसे किया है, ऐसे नमि और विनमि दोनों भाइयोंका उद्धार कर दिया, उसकी शोभाको कौन पा सकता है। अथवा दूसरेसे क्या हो सकता है? दैव ही सब रूपमें परिणत हो सकता है।

घत्ता—दूसरा क्या देता है और क्या लेता है। पुण्य ही सबका स्वामी है। उसी पुण्यसे भरतकी कीर्ति प्रमुख और आकाशगामी है ॥१५॥

इस प्रकार त्रेसठ महापुरुषोंके गुणालंकारोंसे युक्त इस महापुराणमें महाकवि पुष्पदन्त द्वारा
और महामन्त्री भरत द्वारा अनुमत महाकाव्यका नमि-विनमि राज्यप्राप्ति
नामका आठवाँ परिच्छेद समाप्त हुआ ॥८॥

संधि ९

ता झाइउ णिण्णेहु णियमणपसरु[1] परज्जिउ ॥
पुण्णइ छट्ठइ मासि णाईं जोउ विसज्जिउ ॥१॥

१

हेला[2]—परिचिंतइ जिणेसरो दुक्कियं खवंतो ।
महिमापारमासिओ सुद्धही[3] महंतो ॥१॥

जिह तेल्लेण दीवु तरु णीरें   तिह माणुससरीरु आहारें ।
आहारु वि जो परइ णिमित्तें   सिद्धउ लत्तउ कौल[4] भवंतें[5] ।
उज्झिउ आहाकम्मुद्देसहिं   पुव्वं पच्छा संथुइभासहिं[6] ।
अज्झोवज्झहिं पूईकम्महिं   देवयचरुयहिं वियलियधम्महिं ।
लिंगिणीसणरसँत्तुगारहिं[7]   चोर्द्दह[8]मलवित्थारवियारहिं ।
जीववहाइअसंजममीसहिं   परंभय[9]वसउप्पाइयगासहिं ।
गणहरगणियहिं छायालीसहिं   वज्जिउ अवरेहिं मि बहुदोसहिं ।
णीरसु सरसु ण किं पि भणेवउ   रसणु रसें [10]रसंतु णिहणेवउ ।
रूवतेयबलचिंताचत्तउ   संजमजत्तामेत्तु[11] समत्तउ ।
सुक्खु लहुक्खु [12]सउवीरब्भुक्खिउ   णवकोडीविसुद्धु सुपरिक्खिउ[13] ।
पाणिपत्ति सइं मइं भुंजेवउ   चरियाचरणु जगहु दरिसेवउ ।
घत्ता—जइ हउं अच्छमि अज्जु केम वि ण करमि भोयणु ॥
तो जिह ए णर भग्गा[14] तिह भज्जिहइ तवोवणु ॥१॥

२

हेला—आहारें वओ तिणा तवो तिणा[1] जियक्खो ।
अक्खाणं जए समो होइ तेण मोक्खो ॥१॥
इय हियइ घेत्तूण   जोयं पमोत्तूण ।

MBP give, at the biginaing of this Samdhi, the stanza एको दिव्यकथाविचारचतुरः etc, for which see notes on pege 121.

१. १. BP °पसरपरज्जिउ । २. GK eall this couplet हेलादुवई only at this place; throughout the rest of the Samdhi they call it हेला । ३. MBP सुद्धघी । ४. BPK कालि । ५. P भमंतें । ६. B थुइसंभासहिं । ७. K °सत्तुग्गारहिं । B सत्तुउग्गारहिं; P सत्तुगारहि । ८. MP चउदह° । ९. K पयभर° । १०. MBP रसे रसंतु । ११. MBPT °मेत्तसमत्तउ । १२. MBP सउवीरें भुक्खिउ; K सउवीरब्भक्खिउ । १३. M परिक्खिउ । १४. MBP भग्ग ।

२. १. MBP तवे ।

सन्धि ९

१

तब स्वामीने अपने स्नेहहीन मन प्रसारका ध्यान किया, और उसे जीत लिया। छठा माह पूरा होनेपर स्वामीने अपना कायोत्सर्ग समाप्त कर लिया। महिमाकी अन्तिम सीमापर पहुँचे हुए शुद्ध बुद्धि, पापोंका नाश करनेवाले महान् जिन सोचते हैं—जिस प्रकार तेलसे दीपक और नीरसे वृक्ष जीवित रहता है, उसी प्रकार आहारसे मनुष्य शरीर जीवित रहता है। आहार भी वही जो दूसरेके निमित्त बना हो, सिद्ध हो और समयपर मिल जाये, जो आहार कर्मके उद्देश्योंसे रहित हो, पहले और बाद, स्तुतिकी भाषासे शून्य हो, अधिक जल और चावलोंके मिश्रणसे रहित हो, विगलित धर्म देवचरुओं, लिंगी, दरिद्री मनुष्योंके दरिद्रतापूर्ण उद्‌गारों, चौदह प्रकारके मलोंके विस्तार-विकारों, जीवोंके वधादिके असंयमोंके मिश्रणों, दूसरेके भयसे उठाये हुए ग्रासों, इस प्रकार गणधरोंके द्वारा कहे गये छयालीस और दूसरे बहुदोषोंसे रहित हो, और जिसे सरस-नीरस कुछ भी न कहा जाये, रसमें स्वाद देनेवाली जीभको रोका जाये, रूप-तेज-बलकी चिन्तासे मुक्त, भोजन-संयमकी यात्राके लिए ही किया जाये। रूखा-सूखा कांजीका बघारा हुआ, मन-वचन और काय, तथा कृत-कारित और अनुमोदन (नवकोटि विशुद्ध) से शुद्ध, अच्छी तरह परीक्षित, भोजन मैं पाणिरूपी पात्रसे खाऊँ एवं चर्याका आचरण संसारको बताऊँ।

घत्ता—यदि मैं किसी प्रकार इसी तरह रहता हूँ और भोजन नहीं करता हूँ तो जिस प्रकार ये लोग नष्ट हो गये, उसी प्रकार दूसरा मुनिसमूह भी नष्ट हो जायेगा ॥१॥

२

आहारसे व्रत होता है, व्रतसे तप होता है और तपके द्वारा इन्द्रियाँ जीती जाती हैं। इन्द्रियोंकी विजयसे सम होता है और समसे मोक्ष। अपने मनमें यह स्वीकार कर और

सिद्धत्थणामाउ तम्हा वणंताउ ।
विहरेइ परमेट्ठि जुयमेत्ति[2] गयदिट्ठि ।
जीवे[3] ण दुम्मेइ पेच्छंतु पउ देइ ।
रमणीयथामेसु णयरेसु गामेसु ।
तं विणयणयभरिय पणमंति णायरिय ।
अब्भुवरसालीण जोयंति[4] गामीण ।
भइयाइ कंपंति अण्णे पयंपंति ।
एसो महीराउ एसो महादेउ ।
धणकणयधण्णाइं एएण दिण्णाइं ।
मंडलिय[5] महियलइं काऊण बहुहलइं ।
एयस्स पडिवत्ति उवयरह सहस त्ति ।
इय भणिवि सहलइं विविहाइं फलदलइं ।
भमराहिरामाइं णवकुसुमदामाइं ।
कुंकुमइं चंदणइं भायणइं भोयणइं ।
सुरहियइं सीलयइं भिंगारवरजलइं ।
सीसेण गहिऊण पंथम्मि णिहिऊण ।
णाहस्स ते देंति बाला ण याणंति ।
अण्णे पसत्थाइं देवंगवत्थाइं ।
कडिसुत्तकेऊरु[6] मणिहारु[7] मंजीरु ।
कंकणइं कुंडलइं णं सूरमंडलइं ।
गलियावलेवस्स उवणेंति देवस्स ।
अण्णे कुलीणाउ मज्झम्मि खीणाउ ।
लायण्णपुण्णाउ ढोयंति कण्णाउ ।
णरवरहतुरंगाइं[8] मायंगतुंगाइं[9] ।
णिसियाइं[10] पहरणइं[11] उववणइं पट्टणइं[12] ।
वाइत्तजुत्ताइं चमरायवत्ताइं ।
[13]ससिसंखपंडुरइं चिंधाइं मंदिरइं ।
अण्णे समप्पंति अण्णे[14]पभासंति ।
भो मयणमयवाह भो णाणजलवाह ।
भो तरुणमिहिराह[15] भो तवसिरीणाह ।

---

२. MBP जुयमेत्तु । ३. MB जीवं ण दूसेइ; PT जीवं ण दूमेइ । ४. MBP जोयंत । ५. MBP मंडलइं । ६. MB करिसुत्तकेऊर; P कडिसुत्तकेऊर । ७. MBP मणिहार मंजीर । ८. Mp वररह° । ९. MBPT मायंगतुंगाइं and gloss in T समूहाः । १०. B omits णिसियाइं पहरणइं; P adds it in the margin in second hand । ११. M adds after this : जोयंति किंकरइं; P adds it in the margin iu second hand । १२. MBP add after this : पणयाइं परियणइं । १३. MBP ससिखंड° । १४. MBP पहासंति । १५. MBPT °मिहराह ।

योगको छोड़कर सिद्धार्थ नामक उस वनसे परमेष्ठी ऋषभनाथ विहार करते हैं। चार हाथ धरतीपर गजदृष्टिसे देखते हुए पैर रखते हैं, जीवोंको नहीं कुचलते। रमणीय नगरों और ग्रामोंमें उन्हें विनय और नयसे भरे हुए नागरिक प्रणाम करते हैं। ग्रामीण अद्भुत रसमें लीन होकर उन्हें देखते हैं, भयसे कांप उठते हैं। दूसरे कहते हैं—"यह महाराज हैं, यह महादेव हैं। इन्होंने धन, स्वर्ण और धान्य दिया है, मण्डलों और महीतलोंको बहुफलोंसे युक्त किया है। इनकी प्रवृत्ति सहसा उद्धार करती है।" यह सोचकर आर्द्र (ताजे) विविध फलदलों, भ्रमरोंसे अत्यधिक अभिराम नवकुसुम-मालाओं, कुंकुम, चन्दन, भाजन-भोजन, सुरभित चावल, भिंगारकोंमें उत्तम जलोंको अपने सिरोंपर लेकर, रास्तेमें खड़े होकर स्वामीको उक्त चीजें देते हैं, वे अज्ञानी नहीं जानते। दूसरे प्रशस्त देवांग वस्त्र, कटिसूत्र, केयूर, मणिहार, मंजीर, कंगन, कुण्डल, (मानो सूर्यमण्डल हों) पापसे रहित देवके लिए लाते हैं, दूसरे लोग कुलीन कृशोदरी (मध्यमें क्षीण), लावण्यसे परिपूर्ण कन्याओंको भेंटमें देते हैं, नर-रथ-तुरंग और गजोंके समूह, पैने प्रहरण, उपवन, नगर, वाद्योंसे युक्त चमर और आतपत्र (छत्र), चन्द्रमा और शंखोंके समान सफेद ध्वज और प्रासाद दूसरे देते हैं, और दूसरे देते हैं, "कामदेवरूपी मृगके आखेटक, ज्ञानरूपी जलके प्रवाह,

भो देवदेवेस भो परम परमेस।
णिण्णग्गवेसेण [16]णियदेहसोसेण।
णालवसि किं [17]भवसि णउ हससि णउ रमसि।
इय भणिवि अज्जेहिं चडुयम्म[18] सज्जेहिं।
बोल्लाविओ जइ वि पहु चवइ णउ तइ वि।
परणिहियणियचित्तु महिवीढु विहरंतु।

घत्ता—हिंडइ जाम जिणिंदु चरियामग्गि पइट्ठउ॥
ता सेयंसणिवेण गयउरि सिविणउं[19] दिट्ठउ॥२॥

३

हेला—पल्लंकासिएण मउलंतणेत्तएणं।
रयणिविरामजामए संपसुत्तएणं॥१॥

ससिप्पहाणुजम्मिणा भवाणुबद्धधम्मिणा।
णिसायरो दिवायरो करीसरो सरोवरो।
महण्णवो सुरंधिओ बलुद्धरो[1] मयाहिओ।
सबाहुजित्तसंगरो रिऊण छेयणंकरो।
भरक्खमेक्ककंधरो[2] महाभडो धणुद्धरो।
घुलंतपुच्छ[3]पच्छलो विसो विसाणउज्जलो।
णियच्छिओ सकंदरो घरे विसंतु मंदरो।
इमो सुदंसणोहओ पणट्ठदिट्ठिमोहओ।
णिसंतए पलोइओ समाणसे विवेइओ।
पहायए महाउणो समासिओ सभाउणो।

घत्ता—तं णिसुणिवि कुरुणाहु सिविणयहलु[4] आहासइ॥
को वि जगुत्तमु देउ तुह मंदिरु आवेसइ॥३॥

४

हेला—ससिरविसुद्धसीहसरसरहि[1]गोगुणालो।
जंगममंदरु व्व गइहसियपीलु[2]लीलो॥१॥

णीलजडाकलावओमालिउ सिहरि व जलहरमालइ कालिउ।
एरावय[3]कर[4]संणिहबाहउ णग्गोहु व ललंतपारोहउ।
तावण्णहिं दिणि णयरि पइट्ठउ णारीणरहिं णिरंजणु दिट्ठउ।
धावमाणजणपयसंमद्दें उट्ठिउ कलयलु जयजयसद्दें।
को वि भणइ अवलोयहि एत्तहि हउं पंजलियरु अच्छमि जेत्तहि।

---

१६. B णिव° । १७. MBP भमसि । १८. M चडुयम्मसद्देहिं । १९. BP सुइणउं ।

३. १. M बलद्धुरो । २. MBP भरेक्कमेक्ककंधरो । ३. MPK °पुंछ । ४. MBP °फलु ।

४. १. M °सरभूरुहगुणालओ; B सरसरेणे गुणालओ; P सरसरहिणा गुणालओ; T सरहि समुद्रः । २. MBP °पीलुलीलओ । ३. MBP अइरावय° । ४. M °करि° ।

तरुण सूर्यके समान आभावाले, हे तपश्रीके स्वामी, हे देवदेवेश, हे परम-परमेश, दिगम्बर वेष अपने शरीरके शोषणसे क्या होगा, क्यों नहीं बताते। न हँसते हो न रमण करते हो।" यह कह-कर चाटुकर्मसे सज्जित आर्योंने उन्हें बुलवाना चाहा परन्तु स्वामी तब भी नहीं बोलते। घरसे अपने चित्तको हटानेवाले वह धरतीतलपर विहार करते हैं।

घत्ता—चर्यामार्गमें प्रवृत्त जब वह (आहारके लिए) घूमते हैं तभी राजा श्रेयांसने हस्तिनापुरमें स्वप्न देखा ॥२॥

३

पलंगपर सोते हुए, अपने नेत्र मलते हुए, रात्रिके अन्तिम प्रहरमें सोमप्रभके अनुज श्रेयांसने स्वप्न देखा—चन्द्र-सूर्य-महागज-सरोवर-समुद्र-कल्पवृक्ष, बलसे उत्कट सिंह, अपने बाहुओंसे युद्धको जीतनेवाला, शत्रुका छेदन करनेवाला, भार उठानेमें समर्थ कन्धोंवाला, धनुर्धारी महासुभट। पूँछका पिछला भाग हिलाता हुआ सींगोंसे उज्ज्वल वृषभ, और घरमें प्रवेश करते हुए गुफासहित मन्दराचलको देखा। इस प्रकार दृष्टिके आकर्षणको समाप्त करनेवाले स्वप्नसमूहको उसने रात्रिके अन्तमें देखा, उसने अपने मनमें विचार किया। प्रभातके समय उसने महाआयुवाले अपने भाई (सोमप्रभ) से संक्षेपमें कहा।

घत्ता—यह सुनकर कुरुनाथ स्वप्नफलका कथन करता है—कोई विश्वमें उत्तम देव तुम्हारे घर आयेगा—॥३॥

४

चन्द्र, रवि, सुभट, सिंह, सरोवर, समुद्र और वृषभके गुणोंसे युक्त सचल मन्दराचलकी तरह अपनी गतिसे महागजका उपहास करता हुआ, नीली जटाओंके समूहसे व्याप्त, मेघमालाओंसे श्याम पर्वतकी तरह, ऐरावतकी सूँड़के समान बाहुवाला, लटकते हुए प्रारोहोंसे युक्त वटवृक्षके समान वह, तब दूसरे दिन नगरमें प्रविष्ट हुए। नर-नारियोंने निरंजन उन्हें देखा। दौड़ते हुए जनपदके सम्मर्दन और जय-जय शब्दसे कलकल होने लगा। कोई कहता है—यहाँ देखिए जहाँ मैं

को वि भणइ सामिय दय किज्जउ एक्कवार पच्चुत्तरु दिज्जउ।
को वि भणइ मेरउ घरु आवहि भिच्चभत्ति पहु किं ण विहावहि।
चंदु व रिक्खि रिक्खि वियरंतउ जइवइ गेहि गेहि पइसंतउ।
घरिणिहि घरप्रंगणु[5] संप्राइउ ताउ व भाउ व देउ पलोइउ।
णिग्गयाउ मणि तोसु[6] वहंतिउ एम चवंति ताउ पणवंतिउ।
मज्जणु मज्जणहरि संजोइउ पोत्ति तेल्लु आसणु वि पढोइउ।
ण्हाहि णाह लइ तणुउवयरणइं चंगउ चेलिउ हेमाहरणइं।
बइसहि पट्टि सुसरससमग्गउ[7] भुंजहि भोयणु तुज्झु जि जोग्गउ।
बोल्लावियउ ण किं पि वि भासहि सुवणुबंधु[8] कि अप्पउ सोसहि।

घत्ता—पुरि कलयलु णिसुणेवि ससिभासें अहियारिउ॥
कंचणदंडविहत्थु पुच्छिउ णियदउवारिउ॥४॥

५

हेला—ता पडिहारएण भाणियं[1] भवावहारो।
जो लच्छीकडक्खवि[2]क्खेवे वि णिव्वियारो॥१॥

सिरेण णवेवि सुरायलि ठवियउ जो तियसेसरेण सइं ण्हवियउ।
जेण पयासियाइं मइगम्मइं बहुभेयइं जणजीवणकम्मइं।
भरहहु तुम्हहुं मेइणि दिण्णी जेण णवल्लवित्ति पडिवण्णी।
सो आयउ तेलोक्कपियामहु तं णिसुणिवि उट्ठिउ सोमप्पहु।
सहुं सेयंसकुमारें णिग्गउ ताम पलंबपाणि णं दिग्गउ।
संमुहुं एंतु णिहालिउ जिणवरु णं वसुहंगणाए पसरिउ[3] करु।
णहसरि रवि सररुहहु कयग्गहु णं जगभवणखंभु भयमयमहु[4]।
सामि सणेहभरेण[5] भरेप्पिणु कर मउलेवि पणामु करेप्पिणु।
सोमप्पहेण पलद्धपसंसे देवि पयाहिण तहु सेयंसे।
मुहुं जोइयउ णेत्तसयवत्तहिं हरिसंसुयओसाकणसित्तहिं।

घत्ता—अइपसण्णमुहु[6] होइ संभासणु पडिवज्जइ॥
पुव्वभवंतरणेहु जणदिट्ठिए[7] जाणिज्जइ॥५॥

६

हेला—जिणमवलोइऊण कुंयरेण[1] लोयसारो।
सिरिमइवज्जजंघजम्मंतरावयारो॥१॥

पउद्धो[2] असेसो सवासो दसेसो[3]।
मुणीणं पहाणं वराहारदाणं।

---

५. M घरपंगणु संपाइउ; B घरिणिघरपंगणु संपाइउ; P घरु पंगणु संपाइउ। ६. MBP हरिसु।
७. M सरसु सुसमुग्गउ; B सुरसु समुग्गउ। ८. M सुयणबंधु।

५. १. MBP भणियं। २. MBP °विक्खेवणिव्वियारो। ३. MBP पसरियकरु। ४. MBP भयमयवहु।
५. MB सणेहु भरेण। ६. BP अइपसण्णु। ७. P जणदिट्ठें।

६. १. MBP कुमरेण। २. M has before this line सोमराई छंद; BPGK have सोमराई; MBPK पबुद्धो। ३. MBP सदेसो।

अंजलि बांधे हुए खड़ा हूँ। कोई कहता है—स्वामी, दया कीजिए, एक बार प्रत्युत्तर दे दीजिए। कोई कहता है—मेरे घर आइए, हे स्वामी ! क्या भृत्यकी भक्ति अच्छी नहीं लगती। जिस प्रकार चन्द्रमा नक्षत्र-नक्षत्रमें विचरण करता है, विश्वपति भी घर-घरमें प्रवेश करते हुए गृहिणीके गृह-प्रांगणमें आते हैं, तब उसने तात या भाईके समान देवको देखा, मनमें सन्तोष धारण करते हुए वह बाहर आया। तातको प्रणाम करते हुए इस प्रकार कहता है—"स्नानघरमें स्नान करिए, धोती-तेल और आसन रख दिया गया है, हे स्वामी ! स्नान कीजिए और शरीरके उपकरण लीजिए सुन्दर वस्त्र स्वर्णके आभरण। आसनपट्टपर बैठिए, और सरस सामग्रीसे युक्त भोजन कीजिए, यह तुम्हारे योग्य है, बुलवाये जानेपर भी, कुछ नहीं बोलते ? हे भुवनबन्धु, अपनेको क्यों सुखाते हैं ?

घत्ता—नगरमें कलकल सुनकर राजा सोमप्रभने स्वर्णदण्ड है हाथमें जिसके, ऐसे अपने द्वारपालसे पूछा ॥४॥

५

तब प्रतिहारने कहा, "भवका नाश करनेवाले जो लक्ष्मीके द्वारा कटाक्ष करनेपर भी निर्विकार रहते हैं, इन्द्रने सिरसे प्रणाम कर जिन्हें मेरुपर स्थापित किया और स्वयं अभिषेक किया है, जिन्होंने नाना प्रकारके बुद्धिगम्य लोकजीवन कर्म प्रकाशित किये, जिन्होंने तुम्हें और भरतको धरती दी, और स्वयं नयी वृत्ति (मुनिवृत्ति) स्वीकार की, ऐसे वह त्रिलोक पितामह आये हैं।" यह सुनकर सोमप्रभ उठा, और श्रेयांसकुमारके साथ निकला। तबतक हाथ आये हुए, मानो दिग्गज हो, सामने आते हुए जिनवरको देखा, मानो वसुधारूपी अंगनाने हाथ फैला दिया हो, मानो आकाशरूपी सरितामें कमलोंके लिए कृताग्रह सूर्य हो, मानो भव-भवका नाश करनेवाला विश्वरूपी भवनका खम्भा हो। स्वामीके स्नेहके भारसे भरकर हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। लब्धप्रशंस सोमप्रभ और श्रेयांसने उनकी प्रदक्षिणा कर, हर्षाश्रुरूपी ओसकणोंसे सिक्त नेत्ररूपी कमलोंसे उन्हें देखा।

घत्ता—अत्यन्त प्रसन्न मुख होकर वह बात करना छोड़ देता है। उनको देखकर वह पूर्वभवके स्नेहको जान लेता है ॥५॥

६

जिन भगवान्‌को देखकर कुमार श्रेयांसने लोकश्रेष्ठ अशेष, स्ववासी दशेश श्रीमती और वज्रजंघके जन्मान्तरके अवतारको ज्ञात कर लिया। मुनियोंके लिए जो मुख्य अनन्त पुण्यको

भवे जं विइण्णं कयाणंतपुण्णं ।
समाहूयसक्कं मणे तं पि थक्कं ।
पुणो तेण उत्तं अहो हो णिरुत्तं ।
हुयं मज्झ णाणं पणायं पुराणं ।
असूई अराई [4]अमाई अणाई ।
अमाणो अमोहो अकोहो अलोहो ।
अछेओ अभेओ अणेओ वि[5] णेओ ।
विमुक्कंधयारो अणंगावहारो ।
पवित्तो महंतो अणंतो रुहंतो ।
असंगो अभंगो जहाजायलिंगो ।
वुहाणं विहाओ सुहाणं उवाओ ।
अहाणं विणासो महाणं णिवासो ।
[6]अभावो असावो इमो देवदेवो ।
कयत्थो विवत्थो समत्थो पसत्थो ।
सया वंदणिज्जो [7]इमो पुज्जणिज्जो ।
परो मोक्खगामी इमो मज्झ सामी ।
सुराहिंदपूओ इमो पत्तभूओ ।

घत्ता—जगगुरु गुरुयणपुज्जु मोणव्वइ दिव्वासउ ॥
[8]एहु आहारणिमित्तु भमइ[9] समग्गपयासउ ॥६॥

७

हेला—अंबरमणिपसंडिदाणाइं देंति लोया ।
ताइं इमे ण लेंति परिमुक्ककामभोया ॥१॥

कण्ण लेइ जो कामें गत्थउ[1] भूमि लेइ जो लोहें घत्थउ[2] ।
मंचयसेज्जायलइं सभवणइं गेण्हइ जो माणइ रइरमणइं ।
गाइ देहि देहि त्ति पघोसइ जो घएण अप्पाणउं पोसइ ।
वित्तु लेइ जो इंदिय पुज्जइ मंसु[3] खाइ जो पुट्ठि समज्जइ ।
बंभइ तावस [4]सवसणभग्गा पावयम्म संसारहु लग्गा ।
दुद्धरजीहोवत्थहिं दंडिय अप्पउ [5]पेरु वि हणिवि पासंडिय ।
दुक्कियभरपरियंड्ढणरीणा[6] सूईमुहि णिवडंति अयाणा ।
जे लेंता ते विड विड देंता [7]णउ जाणहुं कें[8] गुणहिं महंता ।
पत्थरणाव ण पत्थरु तारइ अवस कुपत्तु भवण्णवि मारइ ।

---

४. M अजाई अमाई and adds : अणाई; B reads अजाई अमाई । ५. P वि एओ and gloss एक: । ६. M अताओ अभाओ and adds : अराओ असोओ; P अताओ अभाओ अराओ असाओ । ७. M सया । ८. MBP पइ । ९. B भणइ ।

७. १. MBP घत्थउ । २. MB गुत्थउ; P गत्थउ । ३. P पेय खाइ । ४. MBP अवसण° । ५. MBP परु हणेवि । ६. °परियट्टण°; P °परिवड्ढण° but gloss परिकर्षण° । ७. B णं जाणहु । ८. MBP किं ।

करनेवाला उत्तम आहारदान दिया था और जिसमें इन्द्र आया था, उसके मनमें यह बात स्थित हो गयी। उसने फिर कहा, "अहो, निश्चय ही मुझे ज्ञान हो गया है और मैंने प्राचीन वृत्तान्त जान लिया है। अजन्मा, अरागी, अप्रमेय, अमादी, अमानी, अमोही, अक्रोधी, अलोभी, अच्छेद्य, अभेद्य, अनेक होकर भी एक, अन्धकारसे विमुक्त, कामदेवके विध्वंसक, पवित्र, महान्, अनन्त, अरहन्त, असंग, अभंग, दिगम्बर, बुधोंके विधाता, सुखोंके साधन, पापोंके नाशक, तेजोंके निवास, क्रोधादि भावोंसे शून्य, पीड़ाहीन, यह देवदेव हैं। कृतार्थ, विवस्त्र, समर्थ और प्रशस्त सदा वन्दनीय यह पूज्यनीय हैं। श्रेष्ठ मोक्षगामी यह मेरे स्वामी हैं। देवेन्द्र और अहीन्द्रके द्वारा पूज्य यह पात्रभूत (योग्य पात्र) हैं।

घत्ता—विश्वगुरु, गुरुजनोंके पूज्य, मौनव्रती, दिशारूपी वस्त्र धारण करनेवाले, यतिमार्गको प्रकाशित करनेवाले यह आहारके निमित्त घूम रहे हैं ॥६॥

७

लोग उन्हें वस्त्र, मणि और स्वर्णका दान देते हैं, परन्तु कामभोगोंसे मुक्त ये उन्हें नहीं लेते ॥१॥ जो कामसे ग्रस्त है वह कन्या लेता है, भूमि वह लेता है कि जो लोभसे ग्रस्त है, भवन सहित खाट और शय्यातल वह ग्रहण करता है जो रतिक्रीड़ाको मानता है। गाय दो-दो, ऐसा वह कहता है, जो घीसे अपनेको पोषित करता है। धन वह लेता है, जो इन्द्रियोंकी पूजा करता है। मांस वह खाता है जो अपनी चर्बी बढ़ाना चाहता है। ब्राह्मण और तपस्वी अपने व्यसनोंसे ही नष्ट हो गये और पापकर्मा वे संसारमें फँस गये। दुर्धर जीभ और उपस्थसे पाखण्डी स्वयंको और दूसरोंको नष्ट कर दण्डित हुए। पापोंके भारकी वृद्धिसे क्षीण अज्ञानी जन्ममुख (संसार) में पड़ते हैं। जो लेते हैं वे विट और जो देते हैं वे विट। हम नहीं जानते, वे किन गुणोंसे महान् हैं। पत्थरकी नाव पत्थरको नहीं तार सकती, अवश्य ही कुपात्र संसारसमुद्रमें मारेगा।

जासु अबंभारंभपरिग्गहु[9] सरइ कया वि ण इंदियणिग्गहु ।
धम्माभासु पाउ जो भावइ अण्णु वि अण्णाणिय कारावइ ।
कत्थइ मिच्छामग्गि पइट्ठउ कुच्छियपत्त रिसीसहिं सिट्ठउ[10] ।
सीलें समत्तेण वि उज्झिउ हवइ अवत्तु सइं जि मइं बुज्झिउ ।
सद्दहाणु णव पंचहुं सत्तहुं करइ पयाहुं जिणेसपवुत्तहुं ।
ईसीसि वि वउ जेण ण पालिउ तं[11] जघण्णु मइं पत्तु णिहालिउ ।
मज्झिमु देसचरित्तालंकिउ सम्मइंसणि कहिं मि ण संकिउ ।
[12]दूरुद्धुयसदप्पकंदप्पहिं णाणचरियसम्मत्तवियप्पहिं ।
भूसिउ संचियसासयसोक्खहिं सीलगुणहिं चउरासीलक्खहिं ।
उत्तमु पत्तु एउ पणविज्जइ एयहु [13]पासुयभोयणु दिज्जइ ।

घत्ता—[14]कुच्छियवत्ति कुभोउ दिण्णु अवत्तइ णासइ ।।
[15]तहिं पत्तहिं फलु तिविहु इय सुंदरु आहासइ ।।७।।

८

हेला—मज्झिमु मज्झिमेण अहमो अहमेण णेओ[1] ।
उत्तमु उत्तमेण दाणेण होइ भोओ ।।१।।

णिल्लोहत्तें चाएं भत्तिइ खमविण्णाणें[2] सुद्धइ भत्तिइ[3] ।
एहिं गुणेहिं जुत्तु दायारउ मज्झण्णइ अवलोयइ[4] दारउ ।
मउलियकरयलु अइअवमत्तउ[5] अच्छइ तिविहपत्तगयचित्तउ ।
गुणवंतउ परलोयासत्तउ सो पडिगाहइ पंगणपत्तउ[6] ।
ठाहँ[7] भणिवि पणवियसिरु भासइ उच्चठाणि गउरविइ णिवेसइ ।
करइ चाडु संतहुं धण्णउं जणु चरणधुवणु अच्चणु पुणु पणमणु ।
मणवयतणुसुद्धिइ सुद्धासणु देइ भरंतु जिणिंदहु सासणु ।
भेसहु सत्थु अभयदाणें सहुं देइ सजीविउ चलु भणिवि लहु ।
बहिरंधलयहं मूयहं ल्लह काणकुंटमंटहं वाहिल्लहं ।
सव्वभूयहियकारणें गण्णें[8] असणु वसणु दीणहं कारुण्णें ।
परमारा पाविट्ठु मुएप्पिणु णियदव्वाणुसारु सुयरेप्पिणु[9] ।
देइ ण जो घरत्थु सो केहउ घरयारउ चिउउल्लउ जेहउ ।
[10]णियडिंभउं णियपोट्टु जि पोसइ मुवउ ण जाणहुं कहिं जाएसइ ।

घत्ता—माणसु जं णिद्धम्मउ[11] तहिं उप्पेक्ख रइज्जइ ।।
[12]दुथियम्मि अणुकंप गुणवंतउ पणविज्जइ ।।८।।

---

९. MB °रंभु परिग्गहु । १०. MP दिट्ठउ । ११. MBP जहण्णु । १२. MBP दूरुज्झिय । १३. MB फासुय । १४. MB कुच्छियपत्ति । १५. MBP तिहिं ।

८. १. M णओ; BP णाओ । २. MBP खमविण्णाणइ सद्धइ भत्तिइ । ३. MBP add after this सीलवंतु जिणपेसणयारउ सारासारसरूववियारउ । ४. MBP अवलोयइ दारउ । ५. T अपमत्तउ । ६. MP पंगणु पत्तउ; B पंगणे पत्तउ । ७. MBP ठाहु । ८. MBP °कारणगण्णे । ९. MB सुमरेप्पिणु । १०. MBP णियडिभइं । ११. MBP णिद्धम्मु । १२. MBPK दुत्थियम्मि ।

जिसके अब्रह्मचर्य, आरम्भ और परिग्रह है और जिससे कभी इन्द्रिय निग्रह नहीं सटता, धर्मका आभास देनेवाला पाप जिसे अच्छा लगता है, और भी दूसरे अज्ञानियोंसे कराता है, किसी मिथ्यामार्गमें प्रविष्ट हुए उसे ऋषीश्वरोंने कुत्सित पात्र कहा है। शील और सम्यक्त्वसे रहित अपात्र होता है, यह बात मैंने स्वयं देख ली है। नौ, पाँच और सात तत्त्वोंका श्रद्धान करता हुआ, जिनेश्वरके द्वारा उक्त पदार्थोंमें विश्वास करता है, परन्तु जिसने थोड़ेसे भी थोड़े व्रतका पालन नहीं किया मैंने उसे जघन्य पात्रके रूपमें देखा है। मध्यम पात्र एकदेश चारित्रसे शोभित होता है, और सम्यक् दर्शनमें कहीं भी शंका नहीं करता, जो दर्प सहित कामदेवको उखाड़नेवाले ज्ञान-दर्शन और चारित्र्यके विकल्पों, शाश्वत सुखका संचय करनेवाले चौरासी लाख शीलगुणोंसे भूषित हैं ऐसे इन उत्तम पात्रको प्रणाम करना चाहिए, इसके लिए प्राशुक भोजन देना चाहिए।

घत्ता—कुपात्र को दिया गया दान कुभोग देता है। और अपात्रमें दिया गया दान नष्ट हो जाता है, परन्तु पात्रको दान देनेसे तीन प्रकारका फल होता है, यह सुन्दर कहा जाता है ॥७॥

८

मध्यमसे मध्यम, अधमसे अधम फल जानना चाहिए। उत्तम दानसे उत्तम भोग होता है। निर्लोभता, त्याग और भक्ति, क्षमा, विज्ञान और शुद्ध भक्ति इन गुणोंसे युक्त दाता (श्रेयांस) मध्याह्न (दुपहर) में द्वार देखता है। हाथ जोड़े हुए, अत्यन्त अप्रमादी, तीन प्रकारके पात्रोंको चित्तमें सोचते हुए, गुणवान्, परलोकासक्त वह वहाँ स्थित है, और आँगनमें आये हुए उन्हें पड़गाहता है, 'ठहरिए' यह कहकर प्रणत शिर वह बोलता है, और गौरवपूर्ण उच्च स्थानमें उन्हें ठहराता है, वह स्तुति करता है, "सन्तोंसे लोक धन्य है।" चरण धोना, अर्चा और फिर प्रणमन करता है। मन-वचन और कायकी शुद्धिसे शुद्धासन देता है। जिनेन्द्रके शासनकी याद करता हुआ अभयदानके साथ औषधि और शास्त्र देता है, अपने जीवनको चल और लघु मानकर। बहिरों, अन्धों, गूँगों, अस्पष्ट बोलनेवालों, काने, बेकार, उद्यमहीनों और व्याधिग्रस्त दीनोंके लिए, गणनीय उसने सर्वप्राणियोंके हितके कारणभूत कारुण्यसे भोजन और वस्त्र दिये। परहिंसक और पापिष्ठोंको छोड़कर जो गृहस्थ अपने धनके अनुसार सोच-विचारकर दान नहीं करता, वह घर बनानेवाली उस गौरैयाके समान है जो अपने बच्चे और अपना पेट पालती है और यह नहीं जानती कि मरकर कहाँ जायेगी।

घत्ता—जो मनुष्य धर्महीन है वहाँ उपेक्षा करनी चाहिए, जो दुस्थित हैं, उनमें अनुकम्पा करनी चाहिए और गुणवानोंको प्रणाम करना चाहिए ॥८॥

९

हेला—इय कहिऊण तेण जुवराइणा समग्गं।
दाययदेज्जपत्तववहारसारमग्गं ॥१॥
सुइधोयदेवंगणिवसणणियत्थेण जलभरियदलपिहियभिंगारहत्थेण।
परिदिण्णधाराजलुद्धूअतावेण सद्धम्मसब्भावसुप्पण्णभावेण।
भवभरणसंभरियमुणिदाणयम्मेण वरचरमदेहेण विच्छिण्णजम्मेण।
पियजंपणालोयणुब्भूयणेहेण धरणीसतोसेण गुणरयणगेहेण।
इसिकहियसुयसूइसंभिण्णसोत्तेण चंदक्कचारित्तवंचइयगत्तेण।
कुरुजंगलावणिवइलहुयभाएण मउमहुरणाएण सेयंसराएण।
आओ गुरू सो ज्जि णंतेण सीसेण ठाभणिउ जिणु णमिउ पणवंतसीसेण।
ता सरइ हिययम्मि रइकुमुइणीजूरु तूसविय जगणलिणु हयमलिणु रिसिसूरु।
असणेण तणु ताइ णिव्वहइ तवयरणु तवयरणतावेण खंतीइ मलहरणु।
मलहरणि संभवइ केवलु महाणाणु लयविरमु सुहु परमु जइ जाइ णिव्वाणु।
घत्ता—इय चिंतिवि सो थक्कु पत्तु तवेण विसुद्धउ ॥
चिरु सेयंसवसेण सेयंसें पर लद्धउ ॥९॥

१०

हेला—एवं कस्स ठाइ भवणम्मि भुअणणाहो।
केण भवंतरम्मि चिण्णो तवो अमोहो ॥१॥
णवकलहोयकुंभगब्भाणिउं कुरुणाहें पल्हत्थिउ पाणिउं।
जससससियरधवलियकुरुवंसें पय पक्खालिय सिरिसेयंसें।
वंदिउ पायतोउ सुहगारउ जम्मजरामरणावइहारउ।
इंदचंदणाइंदपियारउ उच्चासणि संणिहिउ भडारउ।
कुसधारहिं उच्छलियतुसारहिं चंपयसिंदूरहिं मंदारहिं।
फुल्लहिं फुलुद्धुयझंकारहिं अक्खयाहिं बहुगंधपयारहिं।
दीवयचरुयहिं धूवंगारहिं करमरमाहुलिंगमालूरहिं।
अंबयहलहिं जंबुजंबीरहिं पण्णहिं पूयप्फलकप्पूरहिं।
णेउरणिहचुयवम्महणियलउ पुज्जिउ परमेट्ठिहि पयजुयलउ।
पुणु पणिवाउ करेप्पिणु भावें जो छंड्डिउ णं वम्महचावें।

---

९. १. BP °सब्भावसुपसण्ण° । २. MBP भवदिण्ण° । ३. P °दाणधम्मेण । ४. MBP °सुइसूइ° । ५. MB °गोत्तेण but gloss in M भूषितं गात्रम् । ६. MBP °वणिवणिव° । ७. M सुहपरमु ।

१०. १. P पाय । २. M reads after this line : चंदणकुंकुमेहिं घणसारहिं, पयसंमलियइं तेहिं कुमारहिं; B also reads चंदणकुंकुमेहिं घणसारहिं, पयसमलियइं तेहिं कुमारहिं; P reads चंदण-कुंकुमेण घणसारहिं, चंपयसिंदूरहि मंदारहिं; फुल्लहिं फुल्लंधुवझंकारहिं, पय समलहियइं तेहिं कुमारहिं । ३. MBT फुल्लंधुय°; P फुल्लंधुव° । ४. MBP अक्खएहिं । ५. P चरुवहिं दीवय° । ६. MB छंडिउ णं वम्महु; B खंडिउ ण वम्महु ।

९

इस प्रकार उस युवराजने दानकर्ता, दातव्य पात्र और व्यवहारका सारमार्ग समग्ररूपमें कहकर पवित्र धोये हुए दिव्य वस्त्र पहनकर जलसे भरा, पत्तोंसे ढका, भृंगार हाथमें लेकर, दी गयी जलधारासे तापको दूर कर, जिसे सद्धर्म और श्रद्धाके वशसे भाव उत्पन्न हो रहे हैं, पूर्वजन्मके स्मरणसे जिसे पूर्वजन्मका मुनिदानकर्म याद आ गया है, जो श्रेष्ठ चरम शरीरी है, जिसने जन्मका उच्छेद कर दिया है, प्रिय कहने और देखनेसे जिसे स्नेह उत्पन्न हो गया है, जो धरतीको सन्तोष देनेवाला गुणरूपी रत्नोंका घर है, जिसके कान, ऋषिके द्वारा कथित शास्त्रोंकी सूचीसे छेदे गये हैं, जो चन्द्रार्क चारित्र्यसे शोभित शरीर हैं, ऐसे कुरुजांगल राजाके अनुज मधुर और कोमल न्यायवाले, श्रेयांस राजाने आये हुए उन गुरुको मस्तक झुकाकर 'ठा' (ठहरिए) कहा। रतिरूपी कुमुदिनीको सन्तापदायक विश्वकमलको खिलानेवाले हतमलिन वह ऋषिरूपी सूर्य अपने मनमें सोचते हैं कि आहारसे शरीर है, उससे तपश्चरणका निर्वाह होता है, तपश्चरणसे ताप और क्षमासे पापका नाश होता है। पाप नष्ट होनेपर महाज्ञान केवलज्ञान उत्पन्न होता है, और उससे अविनश्वर परम सुख होता है और मुनि निर्वाण—लाभ प्राप्त करता है।

घत्ता—इस प्रकार विचारकर तपसे विशुद्ध पात्र वे वहाँ ठहर जाते हैं। और पुण्य विशेषके वशसे श्रेयांस उन्हें पा लेता है ॥९॥

१०

इस प्रकार भुवननाथ किसके भवनमें ठहरते हैं, जन्मान्तरके अमोघ तपको किसने पहचाना। कुरुनाथने नवस्वर्णके घटके भीतरसे लाया गया पानी छिड़का। यश और चन्द्रकिरणोंके समान धवलित कुरुवंशके श्री श्रेयांसने पैरोंका प्रक्षालन किया और जन्म, जरा तथा मृत्युकी आपत्तिका हरण करनेवाले शुभकारक चरणजलकी वन्दना की। इन्द्र, चन्द्र और नागेन्द्रोंके लिए प्रिय आदरणीय ऋषभको ऊँचे आसनपर बैठाया गया। उछलते हुए हिमकणोंवाली जलधाराओं, भ्रमरोंकी गुंजारसे युक्त सिन्दूरों और मन्दारपुष्पों, नाना गन्धवाले अक्षतों, दीपक चरुओं, धूपांगारों, करमर माडलिंगों और मालूरों, आम्रफलों, जम्बूजंबीरों, पत्रों, पूगफलों और कपूरोंसे, नूपुरके समान कामदेवकी शृंखलासे च्युत, परमेष्ठीके चरणकमलकी पूजा की। फिर भावपूर्वक प्रणाम कर

जइवरतवसंदरिसियभंगें जो पुणु घणुहि ण णिहिउ अणंगें।
सो उच्छुरसु णिवारियदोसहु णं सँम्महुं णिउ सुतबहुयासहु।
जुवराएं घडेण करि ढोइउ वारवार जिणणाहें जोइउ।

घत्ता—देहालइ मणकुंडे रसु पिज्जंतउ भणियउ ॥
मयणसरासणसारु झाणजलणि णं हुणियउ ॥१०॥

११

हेला—ता दुंदुहिरवेण भरियं दिसावसाणं।
भणियं सुरवरेहिं भो साहु साहु दाणं ॥१॥

पंचवण्णमाणिक्कविसिट्ठी घरप्रंगणि वसुहार वरिट्ठी।
णं दीसइ ससिरविबिंबच्छिहि कंठभट्ठ कंठिय णहलच्छिहि।
मोहँबद्धणवपेम्महिरी विव सग्गसरोयहु णालसिरी विव।
रयणसमुज्जलवरगयपंति व दाणमहातरुहलसंपत्ति व।
सेयंसहु धणएण णिउंजिय एक्कहिं उडुमाला इव पुंजिय।
पूरियसंवच्छरउववासें अक्खयदाणु भणिउं परमेसें।
तहु दिवसहु अत्थेण समायउ अक्खयतइय णाउं संजायउ।
घरु जायवि भरहें अहिणंदिउ पढमु दाणतित्थंकरु वंदिउ।
पइं मुएवि को गुरु संमाणइ पत्तविसेसदाणविहि जाणइ।
पइं मुएवि को चिंतहुं सक्कइ परमप्पउ कहु मंदिरि थक्कइ।
पइं मुएवि दिसिपसरियजसँयरु अण्णु कवणु कुरुकुलणहदिणयरु।
जय सेयंसदेव पभणंतहिं संथुउ सुरणरवरसामंतहिं।

घत्ता—महियलि धम्मरहासु एयइं तोसियसक्कइं ॥
जिणसेयंसकयाइं वयदाणइं वरचक्कइं ॥११॥

१२

हेला—धम्ममहारहो विलंबियदयावडाओ।
एयहिं विहिं मि वहइ णिहयंगयारिराओ ॥१॥

एम भणेप्पिणु गउ भरहेसरु एत्तहि महि विहरंतु जिणेसरु।
तिहिं णाणिहिं सुद्धें परिणामें अचलचित्तु मणपज्जवणामें।
अड्ढाइज्जहिं दीवहिं जं जं माणसु चिंतइ जाणइ तं तं।

---

७. MB संमुहुं; P संमुहु। ८. P झाणजले but gloss ध्यानाग्नौ।

११. १. M भाणियं। २. MBP घरपंगणि। ३. MBPT मोहणिद्ध°। ४. M adds after this line :—अहियं पक्ख तिण्ण सविसेसें। किचूणे दिण कहिय जिणेसें। भोयणवित्ती लहोय तमणासें। दाणतित्थु घोसिउ देवीसें। ५. MBP पढम°। ६. MBP पत्तविसेसु। ७. MB °जयसरु। ८. MBP तवदाणइं।

१२. १. M माणस; BP माणुसु।

यतिवरोंके तपमें भंगका प्रदर्शन करनेवाले कामदेवके धनुषके द्वारा जो पुनः छोड़ा गया, और जो फिरसे कामदेवके द्वारा धनुषपर नहीं धारण किया गया ऐसा वह इक्षुरस, मानो दोषोंका निवारण करनेवाली तपरूपी आगमें उपशम भावको प्राप्त हुआ। युवराजके द्वारा हाथपर ढोया गया और जिननाथके द्वारा बार-बार देखा गया।

घत्ता—देहरूपी घरके मनरूपी कुण्डमें पिये गये रसके बारेमें यह कहा गया कि कामदेवके धनुषका सार ध्यानकी आगमें होम दिया गया ॥१०॥

११

तब नगाड़ोंके शब्दोंसे दिशाओंके अन्त भर उठे। देवश्रेष्ठोंने कहा, "भो! बहुत अच्छा दान"। पाँच प्रकारके रत्नोंसे विशिष्ट धनकी धारा उसके घरके आँगनमें बरसी, जो मानो शशि और सूर्यके बिम्बोंकी आँखोंवाली नभरूपी लक्ष्मीके कण्ठसे गिरी हुई कण्ठी हो, मोहसे आबद्ध नव-प्रेमकी लज्जाके समान, स्वर्गरूपी कमलकी मालश्रीके समान, रत्नोंसे समुज्ज्वल उत्तम गजपंक्तिके समान, दानरूपी महावृक्षकी फल सम्पत्तिके समान, श्रेयांसके लिए कुबेरके द्वारा दी गयी (पिरोयी गयी) जो नक्षत्रमालाके समान एक जगह पुंजीभूत हो गयी हो। एक सालका उपवास पूरा करनेवाले परमेश्वरने उसे अक्षयदान कहा। उस दिनसे अक्षय तृतीया नाम सार्थक हो गया। घर आकर भरतने श्रेयांसका अभिनन्दन किया, और उस प्रथमदान तीर्थंकरकी वन्दना की और कहा, "तुम्हें छोड़कर और कौन गुरुका सम्मान कर सकता है; तथा पात्र विशेषकी दानविधि जान सकता है। तुम्हें छोड़कर कौन सोच सकता है; किसके घरमें परमात्मा ठहर सकते हैं। दिशाओंमें अपने यशका प्रसार करनेवाले तुम्हें छोड़कर और दूसरा कौन कुरुकुलरूपी आकाशका सूर्य हो सकता है? हे श्रेयांसदेव, जय यह कहते हुए सुरवर और नरवर सामन्तोंने उनकी संस्तुति की।

घत्ता—धरतीतलपर धर्मरूपी रथके ऋषभ जिन और श्रेयांसके द्वारा बनाये गये व्रत और दानरूपी ये सुन्दर चक्र, देवेन्द्रको भी सन्तोष देनेवाले हैं ॥११॥

१२

"लगी हुई हैं दयारूपी पताकाएँ जिसमें, ऐसा कामदेवरूपी राजाका नाश करनेवाला धर्मरूपी महारथ इन दोनोंके द्वारा (व्रत और दान) से चलता है।" यह कहकर भरतेश्वर चला गया। यहाँ जिनेश्वर धरतीपर विहार करने लगे। तीन ज्ञानों, शुद्ध परिणाम और मनःपर्यय ज्ञानसे अचल चित्त वह इस ढाई द्वीपमें मनुष्य जो-जो सोचता है, उसे जानते हैं।

उज्जुयवंकहियय मुणियत्थउ देउ पराइउ णाणु चउत्थउ ।
पंचवीसवयमायउ भावइ तिहिं गुत्तिहिं अप्पाणउं गोवइ ।
इरियादाणु किं पि णिक्खेवणु करइ कहिं मि कयसुकयालोयणु ।
रोसु लोहु भउ हासु पणासइ संगं[2] विवज्जइ सुत्तु जि भासइ ।
मिउ जोग्गउ अणुणायउ गेण्हइ भत्ति पाणि संतोसु जि मण्णइ ।
णारीकहदंसणसंसग्गहु करइ णिवित्ति पुव्वरइरंगहु ।
भुंजइ कहिं मि सुणिव्वियडिल्लउ बंभचेरु थिरु धरइ गुणिल्लउ ।
घत्ता—इंदियखलहं मिलंतु परमजोइ मेलावइ[3] ॥
खुब्भंतउ मणडिंभु रिसि णाणें खेलावइ[4] ॥१२॥

१३

हेला—हो हे चित्तडिंभ मा रमसु णारिरूवे ।
रंभिऊणं[1] दड त्ति पडिहीसि मोहकूवे ॥१॥
जीयाजीय[2]वत्थुभेयालइ करणपोसणत्थि विरसालइ ।
संजमबायवुड्ढजमसिहि[3]सिहु णिद्धंधंसु[4] णित्तामसु णिप्पिहु ।
दिहिखमझाणजोयकयसंगहु बीसदुसंखपरीसहभरसहु ।
दंसण णाण चरिय तव वीरिय आयार वि जे पंच समीरिय ।
तेहिं भडारउ अणुदिणु वड्ढइ हियएहु[5] तिण्णि वि सल्लइं कड्ढइ ।
अणसण[6] वुत्तिसंख[7] ओमोयरु रसपरिचाउ कालजोयायरु ।
इय बाहिरतवु[8] चरइ सुदारुणु अंतरंगसुद्धिहि सो कारणु ।
वेज्जावच्चि विणइ सज्झायइ तणुविसग्गि पच्छित्तणिओयइ ।
अब्भंतरतवि अप्पउ जोयइ[9] धम्मज्झाणु चउविहु णिज्झायइ ।
आणाविचउ णामणिग्गंथउ पुणु [10]अवायविचयं पि महत्थउ ।
अवरु विवायविचउ वित्थारइ थिरु संठाणविचउ अवहारइ ।
घत्ता—इय विहरंतु धरग्गि सिद्धिवरंगणरत्तउ ॥
वरिससहासें णाहु पुरिमतालु संपत्तउ ॥१५॥

१४

हेला—तो[1] दिट्ठं लवंगलवलीलयाहरालं ।
अलियालं पियालमालूरसायसालं ॥१॥
वणु विडंगणेवत्थहिं[2] छइयउ पियमाणुसु[3] व सरसु[4] कंटइयउ ।
णिच्चासोयउ[5] कंचणवंतउ बंधुपुत्तजीवेहिं महंतउ ।

---

२. MBP संगु । ३. B मेल्लावइ । ४. BP खेल्लावइ ।

१३. १. MBB भमिऊणं । २. MBP जीवाजीव° । ३. MBP °जमसिहि सहु । ४. P णिद्धंधंस्सु; T णिद्धधंसु and gloss निष्परिग्रहः । ५. P हिययहि । ६. P अणसणु । ७. MBP वित्तिसंख ओमोयरु । ८. MP तव । ९. MBP जोवइ । १०. B अवायविरयं ।

१४. १. B तो । २. M विडंगणे कत्थहिं; B विणंगणेवच्छहि । ३. MBP °माणुसु । ४. P सरसु । ५. MB णिच्चासोयं ।

ऋजु और वक्र हृदयके द्वारा विचारित अर्थको जाननेवाला चौथा ज्ञान स्वामीको प्राप्त हो गया। वे पचीस व्रतोंकी भावना करते हैं, तीन गुप्तियोंसे अपनी रक्षा करते हैं, वे ईर्यादान करते हैं और कुछ निक्षेपण करते हैं और कृत-सुकृतकी आलोचना करते हैं। रोष, लोभ, भय और हासका नाश करते हैं, संगका त्याग करते हैं, सूत्रोंकी व्याख्या करते हैं, मित योग्य और अनुज्ञात भोजन हाथमें ग्रहण करते हैं, और सन्तोष मानते हैं। नारियोंकी कथा दर्शन और संसर्ग तथा पूर्वरतिके रंगसे निवृत्ति करते हैं, कहीं भी अत्यन्त निर्विकार आहार ग्रहण करते हैं, और गुणोंसे युक्त ब्रह्मचर्य धारण करते हैं।

घत्ता—इन्द्रियरूपी खलोंको मिलनेपर परमयोगी उन्हें ध्यानमें मिलाते हैं, और क्षुब्ध होते हुए मनरूपी बालकको ज्ञानसे खिलाते हैं ॥१२॥

१३

हे चित्तरूपी बालक, तू नारीरूपमें रमण मत कर। रमण करके तू शीघ्र ही मोहकूपमें पड़ेगा कि जो (मोहरूप या नारीरूप) जड़ और चेतन वस्तुओंके भेदके आश्रयरूप, इन्द्रियोंका पोषण करनेवाला तथा विरसताका घर है। जिनके व्रतोंकी अग्नि, संयमकी वायुसे वृद्धिको प्राप्त हुई है, जो परिषहोंसे रहित हैं, तामस भावसे दूर हैं, और स्पृहासे शून्य हैं, जिन्होंने दर्शन, ज्ञान, चरित्र और तपको पुष्ट किया है और जो पाँच प्रकारके आचार हैं, उन्हें प्रेरित किया है। इन आचारोंसे आदरणीय जिन प्रतिदिन बढ़ते हैं और हृदयसे तीन प्रकारकी शल्योंको दूर करते हैं; अनशन, वृत्तिसंख्या, अवमौदर्य, रसपरित्याग, त्रिकालयोगका आदर इस प्रकार वह बारह प्रकारके कठोर तपका आचरण करते हैं, जो अन्तरंग चित्तशुद्धिका कारण है। वैयावृत्य, विनय, सद्ध्यान, कायोत्सर्ग और प्रायश्चित-नियोजन इस प्रकार आभ्यन्तर तपमें आत्माको युक्त करते हैं। चार प्रकार धर्मध्यान करते हैं,। शब्दोच्चरणसे रहित, आज्ञाविचय (द्वादशांग आगमोंका हृदयमें चिन्तन) और फिर महार्थक अपायविचय (मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चारित्रादिसे जीवकी रक्षाका उपाय हो, इस प्रकारका चिन्तन); और भी वह विपाकविचयका विस्तार करते हैं। (कर्मविपाकका चिन्तन करना) और वह लोक संस्थान (लोककी संस्थितिका चिन्तन) की अवधारणा करते हैं।

घत्ता—इस प्रकार सिद्धिरूपी वरांगनामें अनुरक्त प्रभु धरतीके अग्रभागपर विहार करते हुए एक हजार वर्षमें पुरिमतालपुर पहुँचे ॥१३॥

१४

उन्होंने लवंग-लवली लतागृहों और भ्रमरोंसे युक्त प्रियाल, मालूर, साय और सालवृक्षोंसे युक्त वन देखा, जो प्रिय मानुषकी तरह, विडंगने पथ्यों (विडंग वृक्षोंरूपी आभरणोंसे; बिटों (कामुकों) के अंगोंके आभरणों) से आच्छादित था, जो नित्य अशोक और कांचन वृक्षोंसे (प्रिय मानुष पक्षमें, शोक रहित और कंचनसे युक्त) था, जो बन्धु-पुत्रोंके जीवनसे (वन पक्षमें वृक्ष विशेष)

रेहइ कुलु व समुण्णइपत्तउ रक्खसपुरु व पलासणिउत्तउ ।
सुरभवणु व रंभाइ पसाहिउ उज्झाउ व सुयसत्थहिं सोहिउ ।
सुइवयणु व चंगउ णिप्फलु संगामु व वणवियसियउप्पलु ।
णयणु व अंजणेण सोहिल्लउ थणजुयलु व चंदणिण पियल्लउ ।
रमणिणिडालु व तिलयालंकिउ बहुबाहु व करवंदहिं संकिउ ।
तालें तूरु व सज्जें गेउ व मंदे सोहइ णिवइणिकेउ व ।
णायवेल्लिरुद्धउ पायालु व रत्तयंददाविरउ वियालु व ।
अवसद्दु व कइंवंदें लुक्कउ असि व सुणीरें णेय विमुक्कउ ।
महिमाणिणिमुहुं[११] व महुलित्तउ सरयणभमियभुयंगहिं भुत्तउ ।
घत्ता—कुसुमामोयमिसेण जं संमुहउं[१२] पवचेइ[१३] ॥
णाणापक्खिसरेहिं पहुहि थोत्तु णं सुयइ ॥१४॥

१५

हेला—तहिं णंदणवणम्मि णग्गोहरुक्खमूले ।
आसीणो सिलायले णिम्मले विसाले ॥१॥
णवकणियारकुसुमरयवण्णउ सुयरइ पहु पलियंकणिसण्णउ ।
णत्थि सोक्खु संसारि विसिट्ठउ सोक्खायारु दुक्खु मइं दिट्ठउ ।
णट्टु[२] अजिण्णणासु णउ चंगउ आहरणें भारिज्जइ अंगउ ।
कामु देहघट्टणु[३] रीणत्तणु गेयमिसेण रुयइ[४] मूढउ जणु ।
तं सिवसारु किं पि भाविज्जइ जेण ण जीउ गब्भि उप्पज्जइ ।
सोवेंगाहु वीरिउ सुहुमत्तणु सहुं समत्तें णाणु सदंसणु ।
अगरुयलहुयत्तु अव्वावाहउ झायइ वसुविहु सिद्धगुणोहउ ।
एम सामि संभावियमग्गउ अप्पमत्ति गुणठाणि व लग्गउ ।
तहिं दहपयडिहिं मुक्कउ जावहिं खणि अउव्वु आरूढउ तावहिं ।
लग्गउ सुक्कझाणि पहिलारइ भेयवंति ससुए सवियारइ ।
इसिणा संठिएण सविहत्तउ अणियट्टिहिं छत्तीस जि जित्तउ ।
सुहुमसंपरायउ पावेप्पिणु तेण जि झाणें लोहु हणेप्पिणु ।
पुणु जायउ उवसंतकसायउ कययहलेण जलु व मुणिरायउ ।
खीणकसायचंडिउ पडिवण्णउं वीयउ सुक्कझाणु अवइण्णउं ।
तं सवियक्कु एक्कु [१०]सवियारउ सोलहपयइरयक्खयगारउ ।
घत्ता—इय तेसट्ठिपईहिं पहयहिं णाणसरूवउ ॥
परमप्पयहु सहाउ अमणु अणिंदिउ हूवउ ॥१५॥

---

६. P समुण्णय° । ७. MBP सुयसत्थें । ८. MP रमणिणिलाडु । ९. P मंडें । १०. MBP कइवंदहिं । ११ MBP °मुह इव । १२. M समुहउ । १३. B परच्चइ ।

१५. १. MP सुमरइ । २. M णट्टु व जिण्ण° । B णट्ठु अजिण्ण° । ३. MBP °घट्टण° । ४. MBP रुवइ । ५. P सोवग्गहु । •६. MBP अगुरुग° । ७. MP अण्णियट्टिहिं । ८. P छंडिवि । ९. MBP °चडिउ । १०. MBP अवियारउ ।

महान् था। जो कुलके समान समुन्नतिको प्राप्त होकर शोभित था। वह निशाचर-नगरकी तरह पलाससे युक्त (पलाश वृक्षोंसे युक्त, मांसभोजनसे युक्त) था। जो सुर भवनके समान रम्भादि (अप्सराओं, वृक्षों) से प्रसाधित था। अयोध्याके समान सुयसत्थों (शुकसमूहों, छात्रसमूहों) से सहित था। जो श्रुतिवचनके समान (नित्य फलवाला और सुन्दर) था, संग्रामकी तरह वन वियसिय-उप्पलु (जलमें विकसित कमलवाला; व्रणोंसे ऊपर उछलते हुए मांसवाला) था, नयनके समान जो अंजन (आंजन वृक्ष विशेष) से शोभित था, जो स्तनयुगलके समान चन्दन (वृक्ष विशेष और चन्दन) से प्रिय था, रमणीके ललाटकी तरह तिलक (वृक्ष विशेष और तिलक) से अंकित था, जो सहस्रबाहुकी तरह करवृन्दों (करों तथा करौंदी वृक्षों) से व्याप्त था; जो तूर्यके समान ताल (वृक्ष और ताल) से, और सज्ज (सर्जं वृक्ष विशेष एवं षड्ज स्वर) से गीतके समान, और मद्द (वृक्ष और जबर्दस्तीका युद्ध) से नृपतिके भवनके समान शोभित था, जो नागबेल्लि (नागोंकी पंक्तियों और लता विशेषों) से पातालकी तरह; तथा सन्ध्याकी तरह रत्तचन्द दाविरउ (लाल चन्द्रमा दिखानेवाला, रक्तचन्दन दिखानेवाला) था। जिसे अपशब्दके समान कविवृन्दों (कवि समूह, वानर समूह) ने छिपा रखा था। जो तलवारके समान (सुनीरसे मुक्त) नहीं था। महीरूपी भामिनीके मुखके समान जो मधुसे लिप्त था, और रत्नोंसे सहित भुजंगों (सांपों एवं गुण्डों) से भुक्त था।

घत्ता—जो कुमुदोंके आमोदके बहाने वह उद्यान जो कुछ कहता है, वह मानो नाना पक्षियोंके स्वरोंके द्वारा प्रभुको स्तोत्र कहता है ॥१४॥

१५

उस नन्दनवनमें वटवृक्षके नीचे विशाल चट्टानपर बैठे हुए, नये कनेरकी कुसुमरजके समान रंगवाले तथा पद्मासनमें स्थित प्रभु सोचते हैं—"संसारमें विशिष्ट सुख नहीं है, सुखके आकारमें मैंने दुःख ही देखा है। अक्षयका नाश करनेवाला यह नाट्य अच्छा नहीं है। गहनोंसे शरीरका भार बढ़ाता है, काम देहका संघर्षण और क्षय। गीतके बहाने मूर्ख जीव रोता है। इसलिए उसे शिवश्रेष्ठकी भावना करनी चाहिए कि जिससे यह जीव दुबारा जन्म न ले। वह अवगाह, वीर्य, सूक्ष्मत्व, समत्व, ज्ञान, दर्शन, अगुरुलघुत्व और अव्याबाधत्व सिद्धोंके इन आठ गुणोंके समूहका ध्यान करते हैं। इस प्रकार स्वामी मोक्षमार्गकी सम्भावना कर अप्रमत्त गुणस्थानमें लगते हैं (आरोहण करते हैं), वहाँ जैसे ही दस प्रकृतियोंसे[1] मुक्त होते हैं, वैसे ही वे एक क्षणमें आठवें अपूर्व करण गुणस्थानमें आरूढ़ हो गये। वह पहले शुक्लध्यानमें लीन हो गये, वितर्कविचार लक्षण और श्रुतज्ञानसे सहित उसमें लीन मुनि ऋषभने सविभक्त अनिष्ट छत्तीस प्रकृतियाँ जीत लीं। फिर सूक्ष्म साम्पराय (१०वाँ गुणस्थानको प्राप्त कर और उसके ध्यानसे लोभको समाप्त कर, वह 'उपशान्त कषाय' हो गये। कतकफल जैसे जलमें होता है, उसी प्रकार वह हो गये। फिर वह क्षीण कषाय गुणस्थानमें स्थित हो गये और दूसरे शुक्लध्यानमें अवतीर्ण हुए। सोलह प्रकारकी प्रकृतियोंके रजका नाश करनेवाले शुक्लध्यानका एकत्व वितर्क भेद।

घत्ता—त्रेसठ प्रकृतियोंके नाश होनेपर मन रहित परमात्माके स्वभाववाले अनिन्द्य और ज्ञानस्वरूप हो गये ॥१५॥

१. अनन्तानुबन्धी आदि १० प्रकृतियाँ।

१६

हेला—ता दिट्ठं जिणेण तिजगं[1] पि एक्कखंधं ।
तिमिरुज्जोयवज्जियं गयणममियरंधं[2] ॥१॥

कमसाहणपडिखलणविहीणें एक्कें भावाभावपमाणें ।
सुहुमइं दूरंतरियइं दव्वइं पेक्खइ[3] जाणइ सहसा सव्वइं ।
भाणु व भूरिकिरणसंताणें सोहइ केवलि केवलणाणें ।
तहिं अवसरि जिणणाह[4]भएण व वीस तिण्णि अवरइं भणियइं णव ।
असहंताइं व गव्वु[5] अणिंदहं आसणाइं कंपियइं सुरिंदहं ।
सुरतरु साहाकर णच्चंति व कुसुमइं संतोसेण मुयंति व ।
संजायहिं[6] दसदिसिवहपूरहिं कप्पि कप्पि घंटाटंकारहिं ।
कण्णवडिउ णउ काइं वि सुम्मइ जोइसवासहिं विणिहय[7]दुम्मइ ।
णिग्गय सीहणाय गयदिग्गय वंतरेहिं[8] पडुपडह समाहय ।
संखझुणीहिं णाय संखोहिय अण्णें[9] अण्ण देव संबोहिय ।

घत्ता—उग्गइ णाणससंकि[10] अमियगुणेहिं पउंजिउ ॥
बहुविहतूररवेण जगसमुद्दु णं गज्जिउ ॥१६॥

१७

हेला—ता सक्केण चिंतिओ पीणियालिविंदो ।
संपत्तो जवेण एरावओ गइंदो ॥१॥

हारणीहारसुरसरितुसारप्पहो अद्धयंदाह[1]विद्दुमविहाणिहणहो ।
गलियकरडयल[2]मयकसणगंडत्थलो अमरगिरिसिहरसंकासकुंभत्थलो ।
कामचिंतागई कामरूवी चलो पबलपडिवक्खबलदलणदुम्महबलो ।
कंठकंदलपएसम्मि परिवट्टुलो दसणजुयलेहिं णयणेहिं महुपिंगलो ।
तंबतालूमुहो चारुतुच्छोयरो दीहरकरंगुलि[3] सरो[4] व्व वरपुक्खरो ।
दीहयरमेहणो[5] दीहउट्ठासओ दीहयरवालही दीहणीसासओ ।
सवणपल्लवपवणपडियमहुलिहउलो[6] चलणपडिवलण[7]खलखलियपयसंखलो ।
चावबंसो महारावदुंदुहिसरो धुलियघंटाझुणी तसियदिस[8]कुंजरो ।
मुक्कसिक्कारकणसित्तसुरमेलओ लक्खणसुवंजण[9]णिरंजणगुणालओ ।

---

१६. १. MBP तिजयं । २. MBP add after this : फग्गुणमासि किण्हएयारसि, उत्तराढरिक्खि (P उत्तरसाढि रिक्खि) जइ जाणसि । तहिं उप्पण्णु णाणु परमेट्ठिहि, लोयालोयपयासणसेट्ठिहि । ३. MBP जाणइ पेच्छइ । ४. MB जिणु णाह° । ५. MB गव्व । ६. MB सइं जायहिं । P सहजायहिं । ७. P विणिहिय° but gloss विनिहत° । ८ MBP वितरेहिं । ९. MBP अण्णहिं । १०. MBP अमय° ।

१७. १. P अद्धइंदाह° । २. P °करडयलकसण° । ३. MB दीहरंगुलि° । ४. MBP सरो व्व वरपुक्खरो । ५. MBPT °मेहुणो । ६. M सवणपवणाहयपडियमहुलिहउलो; B सवणपडिवयणहयपडिय°; P सवणपवणाहयपाडियमहु° । ७. B °पडिचलणखलिय° । ८. M °दिसिकुंजरो । ९. MP सुविंजण; B °सुवेंजण° ।

१६

तब ऋषभ जिनने तीन लोकोंके एक स्कन्धके रूपमें देखा। अन्धकार और प्रकाशसे रहित अलोकाकाशको (देखा)। क्रमसे अर्थोंकी प्रतीति करानेवाली इन्द्रियोंकी बाधासे रहित तथा भावाभाव प्रमाणवाले एक केवलज्ञानसे वह सूक्ष्म दूर और पासको द्रव्योंको देख लेते हैं और सबको जान लेते हैं। प्रचुर किरण परम्परासे जिस प्रकार सूर्य शोभित होता है, उसी प्रकार केवलज्ञानसे केवली ऋषभ जिन शोभित हैं। उस अवसरपर बीस, तीन और जो दूसरे नौ कहे जाते हैं, गर्व नहीं सहन कर सकनेवाले ऐसे अनिन्द्य देवेन्द्रोंके आसन काँप उठे। शाखाओंके हाथों-वाले कल्पवृक्ष नाच उठे। स्वर्ग-स्वर्गमें उत्पन्न हो रहे, दसों दिशापथोंको आपूरित करनेवाले घण्टोंके टंकार-शब्दोंके साथ, शाखाओंके हाथोंवाले कल्पवृक्ष जैसे नृत्य करते हैं और पुष्पोंका विसर्जन करते हैं। ज्योतिषवासी देवोंके द्वारा आहत नगाड़ोंकी ध्वनियोंसे कानोंको कुछ भी सुनाई नहीं देता। व्यन्तर देवोंने पट-पटह बजाये, सिंहनाद और गजनाद होने लगा। शंखोंकी ध्वनिसे नाग क्षुब्ध हो गये। इसी प्रकार एकसे दूसरे देव सम्बोधित हुए।

घत्ता—अनन्त गुणोंसे युक्त ज्ञानरूपी चन्द्रके उदित होनेपर बहुविध तूर्योंके आहत होनेपर विश्वरूपी समुद्र गरज उठा ॥१६॥

१७

तब इन्द्रने अपने मनमें विचार किया और भ्रमर समूहको प्रसन्न करनेवाला ऐरावत गजेन्द्र वेगसे वहाँ पहुँचा। जिसकी कान्ति हार, नीहार, गंगा और तुषारके समान उज्ज्वल है; जिसके नख अर्धेन्दु और विद्रुमके समान लाल हैं; जिसका गंडस्थल, कर्णतलसे झिरते हुए मदजल-से काला है, जिसका कुम्भस्थल सुमेरु पर्वतकी शिखरके समान है, जो कामकी चिन्ताके समान गतिवाला, कामरूप और चंचल है। जिसमें प्रबल प्रतिपक्षकी सेनाके दलनका दुर्दम बल है, जो कण्ठ और कपाल प्रदेशमें गोल आकृतिवाला है; जो दशनों और दोनों नेत्रोंसे मधुपिंगल है, जो लाल तालु और मुखवाला है; सुन्दर और तुच्छ उदरवाला है, तथा दीर्घ कर और अंगुलियों-वाला। सरोवरके समान जिसकी श्रेष्ठ सूँड़ है। जिसकी दीर्घ शिश्न और दीर्घ चिबुक है। जिसकी दीर्घ पूँछ और दीर्घ निःश्वास हैं। जिसके कानोंके पल्लवोंसे आहत पवनसे मधुकरकुल गिर पड़ता है, जिसके चलने और मुड़नेसे पैरोंकी शृंखलाएँ झनझना उठती हैं, धनुषवंशीय, जो दुन्दुभियोंके समान महान् स्वरवाला है। जिसपर घण्टोंकी ध्वनियाँ हो रही हैं, जिससे दिग्गज भयभीत हैं, जिसने शीत्कारके जलकणोंसे देवसमूहको आर्द्र कर दिया है, जो लक्षणों, व्यंजनों और

धित्तसिंदूरधूलीरयालोहिओ कक्खणक्खत्तगेज्जावलीसोहिओ ।
लक्खजोयणमहावड्ढिमावड्ढिओ दंसियारेहिं वीरेहिं परियड्ढिओ ।
झत्ति कल्लाणपयई समुद्धाइओ जत्थ संकंदणो तत्थ [10]संप्राइओ ।
घत्ता—मयणिज्झरण झरंतु चमरहंसकुलसुंदरु ॥
णं मायंगमिसेण आयउ वीयउ मंदरु ॥१७॥

१८

हेला—बत्तीसवरवयणसोहिल्लओ रसंतो ।
वयणविवरविणिग्गय[1]ट्ठट्ठदंतवंतो ॥१॥
दंति दंति सरु सरि सरि पोमिणि पोमिणि जा तूसावियगोमिणि ।
पोमिणियहि पोमिणियहि पोमइं तीस दोण्णि [2]छडयणरवरम्मइं ।
णलिणि णलिणि तेत्तियइं जि पत्तइं णावइ जिणवरलच्छिहि णेत्तइं ।
पत्ति पत्ति एक्केक्की अच्छर णच्चइ हावभावरसको[3]च्छर ।
तं पेच्छिवि सुच्छायउ [4]सेंधुरु सच्छरु सामरु चडिउ पुरंदरु ।
[5]इंदसमिंदसमाण जि साहिय तायतिंस किर मंति पुरोहिय ।
परिसदेव देवेसकुमारा आदरक्ख पुणु असिवरधारा ।
चलिय अणीयतियस[6]सेणा इव लोयवाल दुग्गंत[7]णिवा इव ।
खिब्भिससुर पाउहिय पियारा अभिओय वि चल्लिय कम्मारा ।
अवर पइण्णय पउर पयाणिह रिक्ख [8]मियंक सूर तारा गह ।
जक्ख रक्ख गंधव्व महोरय किंणर किंपुरिसा वि पिसायय ।
भूयगरुडदीवुवहिकुमार वि अग्गिवाउतडिथणियकुमार वि ।
दिक्कुमार तवणीयकुमार वि णायकुमार वि असुरकुमार वि ।
आइय [9]अवेंतहं सविमाणहुं पेल्लावेल्लि जाय णहि जाणहुं ।
घत्ता—संदाणियउ गएहिं हरिणकलंकु अजुत्तउ ॥
ससि करडयलणिहट्टु [10]मयचिक्खिल्लें लित्तउ ॥१८॥

१९

हेला—[1]अज्जि वि सो सुहाइ ते[2]णें य कालियंगो ।
जिणजत्ताहलेण मलिणो वि को ण तुंगो ॥१॥
को वि भणइ [3]मृगु किं पहि ढोयहि वग्घु महारउ एंतु ण जोयहि ।
को वि भणइ भो हत्थि म चोयहि [4]जाउ सीहु किं मुहुं अवलोयहि ।
को वि भणइ लइ अच्छमि लग्गउ हंसहु पक्खु वलद्दें भग्गउ ।

१०. MBP संपाइओ ।

१८. १. MBP °ट्ठट्ठदंतो । २. MB छडयणरवि रम्मइं । ३. MB °कुच्छर । ४. MBP सिंधुरु । ५. MB इंदमहिंदसमाण । ६. MBP °सेणावइ । ७. MB णिवावइ; P णिवासइं । ८. MBP मयंक । ९. MB आवंतें; P आवेंतहुं and gloss आगच्छताम् । १०. K °चिक्खल्लें ।

१९. १. MBP अज्ज । २. MB तेणेय । ३. MBP मिगु । ४. MB जासु । ५. M महुं ।

निरंजन गुणोंका घर है, जो फेंकी गयी धूलिसे लाल है, जो नक्षत्रमालाकी (घण्टावलियों) गीतावलिसे शोभित है, जो एक लाख योजनकी महावृद्धिसे विशाल है, जो महाव्रतों और वीरोंके द्वारा परिवर्धित है, ऐसा वह कल्याणवाला महागज दौड़ा, और वहाँ पहुँचा जहाँ इन्द्र विद्यमान था।

घत्ता—मदका निर्झर बहाता हुआ, चमरोंरूपी हंसकुलोंसे सुन्दर वह ऐसा प्रतीत होता है मानो गजके बहाने दूसरा मन्दराचल आया हो ॥१७॥

१८

बत्तीस वरमुखोंसे शोभित गरजता हुआ प्रत्येक मुख-विवरसे निकले आठ-आठ दाँतोंवाला। प्रत्येक दाँतपर सरोवर। सरोवरमें कमलिनी, कमलिनी वह, जो महालक्ष्मीको सन्तोष देनेवाली थी, कमलिनी-कमलिनीमें कमल थे। तीस और दो, बत्तीस कमल थे जो भ्रमरोंसे सुन्दर थे। कमलिनी-कमलिनी में उतने ही पत्ते थे, जैसे जिनवर लक्ष्मीके नेत्र हों। पत्ते-पत्तेपर एक-एक अप्सरा है। हाव-भाव और रसमें दक्ष वह नृत्य करती है। उस सुन्दर कान्तिवाले गजको देखकर, अप्सराओं और देवोंके साथ इन्द्र उसपर आरूढ़ हो गया। जो इन्द्रके सामानिक देव कहे जाते हैं, ऐसे तैंतीस प्रकारके मन्त्री, पुरोहित, स्पर्शदेव, देवेशकुमार और असिवर धारण करनेवाले आत्मरक्षक और अनीकदेव दुर्गान्तिपालोंकी तरह लोकपाल, किल्विष, पाटहिक (ढोलवादक), प्रियकारक, अभियोग और कर्मकार देव चले। और भी प्रचुर प्रकीर्षक प्रजाके समान (?) ऋक्ष, चन्द्र, तारा, ग्रह, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, महोरग, किन्नर, किंपुरुष, पिशाच, भूत, गरुड़, दीपकुमार, उदधिकुमार, अग्निवायु, तडित् और स्तनित कुमार, दिक्कुमार, स्वर्णकुमार, नागकुमार और असुरकुमार भी आये। अपने-अपने विमानोंसे आते हुए आकाशमें विमानोंकी रेलपेल मच गयी।

घत्ता—गजों द्वारा संघट्टित और सूँड़से रगड़ा गया चन्द्रमा मदकी कीचड़से लिप्त हो गया, उसे मृगलांछन कहना गलत है ॥१८॥

१९

आज भी इसीलिए वह काले अंगसे शोभित है। जिनवरकी यात्राके फलसे कौन मलिन व्यक्ति ऊँचा नहीं होता? कोई कहता है "मृगको पथमें क्यों लाते हो। क्या मेरे आते हुए बाघको नहीं देखते?" कोई कहता है—"तुम हाथीको प्रेरित मत करो। यह सिंह है, मुँह क्या देखते हो"।

को वि भणइ किं मूसउ चालहि महु मज्जारु[6] एंतु ण णिहालहि।
को वि भणइ मा वाहहि विसहरु पेक्खहि किं ण णउलु कररुहकरु।
को वि भणइ भो सणियउ चल्लहि चलँउ[7] रिंछु गवएण म पेल्लहि।
को वि भणइ संकडि किं पइसहि सरहें महुं सारंगु म तासहि।
को वि भणइ आवेहि समिच्छउ[8] पूसउ पूसएण सहुं गच्छउ।
मोरें मोरु सवक्खीहूएं जाउ उलूवउ समउ उलूएं।
को वि भणइ वेसाणरदूरें वहउ वरुणु किं एत्थ वियारें।
को वि भणइ मारुय तुहुं ओसरु मा भंजहि मेरउ जलहरतरु।
को वि भणइ वोलउ आहंडलु पविरलतियसु होउ णहमंडलु।
पच्छइ पुणुं[9] अम्हइं जाएसहुं जिणचरणारविंदु पणवेसहुं।
घत्ता—काइ वि देविइ लइयउ करि णीलुप्पलु दीसइ ॥
मउडुग्गयहिं सिएहिं ससिमणिकिरणहिं विहसइ ॥१९॥

२०

हेला—अवरा सुरविलासिणी गहियकुसुममाला।
णं बालासरूविणी[1] मयणसत्थसाला ॥१॥
अवरेक्का वि सचंदण दीसइ णं मलयइरि[2]णियंववणासइ[3]।
सोहइ अवर वि कुंकुमपिंडें पुव्वदिसा इव सिसुमत्तंडें।
अवर सदप्पण णं मुणिवरमइ अवर मयरचिंधें सरि णं रइ।
अक्खयधारिणि णं मोक्खहु सहि थणदुहडी णं सुहधणणिहि महि।
अवर सुसेयदेह णं सुरसरि अवर सहंसमोर णं गिरिदरि।
मलविरहिय अवर वि विज्जा इव अवर सुरहि पप्फुल्लियजाइ व।
णच्चइ अवर सरसु भावालउ गायइ अवर कूडताणालउ[4]।
वायइ अवर तंतिवज्जंतरु वण्णइ अवर परमतित्थंकरु।
एम पसण्णपसाहियवयणहिं अच्छरकोडिहिं चलमिंग[5]णयणहिं।
सोहम्माहिउ सत्तावीसहिं ईसाणु वि परिमिउ चउवीसहिं।
एम देव संचल्लिय जावहिं धणएं समवसरणु किउ तावहिं।
इंदाणइ तं णिम्मिउं जेहउ मइं जडेण किं सीसइ तेहउ।
घत्ता—बारहजोयणरुंदु हरिणीलें तलु बद्धउ ॥
परिवट्टलउ विसुद्धु धूलीसालउ णंद्धउ[6] ॥२०॥

---

६. MBP मज्जारउ। ७. MBP चरउ। ८. MB समुच्छउ; P सइमुच्छउ, but gloss सम्यगिच्छामि। ९. MBP अम्हइं पुणु।

२०. १. MBP सुरूविणी। २. MB मलयगिरि°। ३. MBPT add after this line : का वि गहियकत्थूरय (P कत्थूरिय) वररइ, सामलंगि णावइ घणवणतइ (B घणवणतइ); T also notes a p : घणघणतइ ति पाठे निबिडमेघपंक्तिः। ४. MP °तालालउ। ५. MBP °मिग°। ६. B णद्धउ।

कोई कहता है—"लो मैं यह हूँ। हंसका पक्ष बैलसे नष्ट कर दिया है"। कोई कहता है—"चूहेको क्यों चलाते हो, क्या मेरे आते हुए बिलावको नहीं देखते"। कोई कहता है—"विषधरको मत चलाओ, रक्तरंजित हाथवाले नकुलको नहीं देखते"। कोई कहता है—"तुम धीरे-धीरे चलो, रीछ। गवयसे मत भिड़ो"। कोई कहता है—"भीड़में प्रवेश मत करो। अपने शरमसे मेरे सारंगको पीड़ित मत करो।" कोई कहता है—"आओ हम अच्छी तरह चलें। तोते तोतेके साथ चले। स्वपक्षीभूत मोरके साथ मोर, और उलूकके साथ उलूक"। कोई कहता है—"वैश्वानर (आग) से दूर रहनेवाले वरुणको आगे बढ़ाओ, यहाँ विचार करनेसे क्या ?"। कोई कहता है—"हे पवन, इस समय तुम्हारा अवसर है, तुम मेरे मेघतरुको भग्न मत करो।" कोई कहता है—"हे इन्द्र ! बोलो, आकाश देवोंसे भरा हुआ है, इसलिए हम बादमें आयेंगे, और जिनवरके चरण-कमलोंकी वन्दना करेंगे।"

घत्ता—किसी देवीके द्वारा हाथमें लिया गया नीलकमल दिखाई देता है, मानो वह मुकुटोंके अग्रभागमें लगे चन्द्रमणि किरणोंके द्वारा हँसा जा रहा हो ॥१९॥

२०

एक दूसरी देवविलासिनी हाथमें कुसुममाला लिये हुए ऐसी ज्ञात होती है, मानो कामदेव-की सुन्दर छोटी-सी शस्त्रशाला हो। एक और स्त्री चन्दन सहित दिखाई देती है, मानो मलय-गिरिके तटबन्धपर लगी हुई वनस्पति हो। एक दूसरी केशरपिण्डसे इस प्रकार मालूम होती है, मानो बालसूर्यसे युक्त पूर्व दिशा हो। एक और दूसरी दर्पण सहित ऐसी मालूम होती है, मानो मुनिवरकी मति हो। एक और दूसरी कामदेवके चिह्नसे रतिको समान जान पड़ती थी। अक्षत (चावल, जिसका कभी क्षय न हो) धारण करनेवाली कोई ऐसी मालूम हो रही थी मानो मोक्ष-की सखी हो। ऊँचे स्तनोंवाली कोई ऐसी मालूम होती थी, मानो शुभघन (कलश) वाली भूमि हो। एक और प्रस्वेदयुक्त शरीरवाली ऐसी लगती थी, मानो गंगानदी हो। एक और हंस तथा मयूरसे सहित ऐसी लगती थी मानो गिरिघाटी हो। एक और मलसे रहित, विद्याके समान थी। एक और खिली हुई जुही पुष्पकी तरह सुरभित थी। एक और सरस और भावपूर्ण नृत्य करती है, एक और कूटतानमें भरकर गाती है। एक और वीणा वाद्यान्तर बजाती है, एक और परम-तीर्थंकरका वर्णन करती है। इस प्रकार प्रसन्न और प्रसाधित मुखों और चंचल मृग नेत्रोंवाली सत्ताईस करोड़ अप्सराओंसे घिरा हुआ सौधर्म्य इन्द्र, तथा चौबीस करोड़ अप्सराओंसे घिरा हुआ ईशान इन्द्र चला। इस प्रकार जबतक देव चले, तबतक कुबेरने समवसरणकी रचना कर दी। इन्द्रकी आज्ञासे उसने जिस प्रकार उसे बनाया, मुझ जड़ कवि द्वारा उसका किस प्रकार वर्णन किया जा सकता है ?

घत्ता—बारह योजन विशाल जिसका तलभाग इन्द्रनील मणियोंसे निबद्ध था—गोल विशुद्ध वेष्टित परकोटेवाला ॥२०॥

२१

हेला—मोत्तियदसणहसियसुरणाहचावलीलो ।
रयणपंसुविणिम्मिओ सहइ धूलिसालो ॥१॥
सुयपिच्छच्छवि कहिं मि विरेहइ कत्थइ अंजणपुंजु व सोहइ ।
कत्थइ लोहिउ संझाराउ व कत्थइ पंडुरु कुंदणिहाउ व ।
अब्भंतरि जगईउ पहाणउ ताउ होंति सोलह सोवाणउ ।
चउगोउरभूसियउ तिसालउ पसरियणाणामणियरजालउ ।
माणखंभ ताहुप्परि संगय सधय सचामर सघंटा णं गय ।
चउहुं मि दिसहिं चयारि समुण्णय दंसणमेत्तेण जि हयजयमय ।
अरुहणाहपडिमापरिवारिय फणिदाणवमाणवजयकारिय ।
पुणु वावीउ सकमल ससलिलउ खगमाणियउ णाइं खगमहिलउ ।
तीररयणकरमंजरिदित्तउ चउपइयापरियम्मविचित्तउ ।
कुवलयधारिउ णं णिवसत्तिउ भमियरहंगउ णं रहजुत्तिउ ।
दिसधाइयपाणियकल्लोलउ पुणु खाइयउ रमियझसमालउ ।
घत्ता—पहसियसररुहएहिं वाउग्गयतिगिंछिहिं ॥
परिहउ णाइं णियंति देवागमणु चलच्छिहिं ॥२१॥

२२

हेला—जेहिं मडिउ रईए हंसीहिं मत्तहंसो ।
सुरवहुकेरिणियाहिं सुरहत्थिहत्थफंसो ॥१॥
पुणरवि अंतरि णवदुमवेल्लिउ कुसुमालउ णं वम्महभल्लिउ ।
पेंत्तिहिं रत्तउ णं वरवेसउ फलणमियउ णं सुहिपरिहासउ ।
कंटइयउ णं पिययमसमिलियउ णच्चंति व मारुयसंचलियउ ।
णं वरकइवायउ कोमलियउ लाडालावहुं पासिउ ललियउ ।
वित्थरियउ अहिणवरससारउ णं कामुयमईउ सवियारउ ।

२१. १. P पंसुणिम्मिओ । २. MB °पिछ; P पुंछ । ३. MBP सोहइ । ४. B सवय । ५. MBK सचमर । ६. MBP वावियउ । ७. M णिवजुत्तिउ; B °जोत्तिउ । ८. M तिगिच्छिहिं, B तिग्गिछिहिं; P तिगिंछहिं ।

२२. १. P जाहिं and gloss यासु खातिकासु । २. M हंसहिं । ३. MBP करणियाहिं । ४. MBP पत्तहिं ।

२१

अपने मोतियोंके दाँतोंसे इन्द्रधनुषकी लीलाका उपहास करनेवाला रत्नधूलसे रचित धूलिसाल शोभित था। कहींपर तोतोंके पंखोंकी छविसे शोभित होता है, कहींपर अंजनके समूहके समान शोभित है, कहींपर सन्ध्यारागके समान शोभित है। कहींपर कुन्दपुष्पोंके समूहके समान सफेद है। उसके भीतर एकके ऊपर एक तीन पीठ हैं, उनमें सोलह सोपान हैं। चार गोपुरोंसे भूषित तीन परकोटे हैं, जिनमें तरह-तरहके मणियोंके जाल फैले हुए हैं। उसके ऊपर मानस्तम्भ है। ध्वजों, चामरों और घण्टोंसे युक्त जो मानो गज हों। चारों दिशाओंमें चार समुन्नत मानस्तम्भ स्थित हैं, जो दर्शनमात्रसे जयके मदका अपहरण करनेवाले हैं। जो अरहन्तनाथकी प्रतिमाओंसे घिरे हुए हैं और जिनका नाग, दानव और मनुष्य जयजयकार कर रहे हैं। फिर जल और कमलों सहित सुन्दर वापियां हैं। पक्षियोंके द्वारा मान्य, जो ऐसी लगती हैं मानो खग महिला हों। जो तीरोंमें विजड़ित रत्नोंकी किरणरूपी मंजरियोंसे आलोकित और चतुष्पथोंके रचना कर्मसे विचित्र हैं। जो मानो कुवलयधारक (कमल, पृथ्वीरूपी मण्डल) नृपशक्ति है, जो मानो भ्रमितरथ (चक्रवाक , रथका पहिया) रथकी युक्ति है। दिशाओंको छूनेवाली, पानीकी लहरोंवाली, और क्रीड़ा करती मछलियोंसे युक्त खाई है। रत्नोंकी धूलिसे विनिर्मित तथा अपने मुक्तारूपी दांतोंसे इन्द्रके धनुषकी लीलाका उपहास करनेवाला जिसका परकोटा सोह रहा था। कहींपर शुकपंखोंकी छविवाला शोभित होता है, और कहीं अंजन समूहके समान शोभित होता है। कहीं सन्ध्यारागकी तरह लोहित (आरक्त) है, कहींपर कुन्दपुष्पोंके समूहके समान सफेद है। उसके भीतर एकके ऊपर एक तीन पीठ हैं और उनकी सोलह-सोलह सीढ़ियां हैं, चार गोपुरोंसे भूषित त्रिशालाएँ हैं जो नाना प्रकारके मणियोंके किरणजालसे प्रसरणशील हैं, उनके ऊपर मानस्तम्भ हैं जो मानो ध्वजों, चामरों और घण्टोंसे सहित गज हैं। वे चारों दिशाओंमें चार खड़े हुए हैं जो देखने मात्रसे जयके अहंकारको चूर-चूर करनेवाले हैं। अरहन्तनाथकी प्रतिमाओंसे घिरे हुए तथा नागों, दानवों और मनुष्योंके द्वारा जयजयकार किये जाते हुए। फिर वहाँ कमलों और वापिकाओंसे सहित वापिकाएँ हैं, जो मानो पक्षियोंके द्वारा मान्य खगस्त्रियां हों। जो तीरोंके रत्नकिरणोंकी मंजरियोंसे दीप्त, चारों ओरकी सीढ़ियोंकी परिक्रमासे विचित्र हैं। जो मानो नृपशक्तिकी तरह कुवलय (नीलकमल भूमिमण्डल) को धारण करनेवाली, तथा रथकी युक्तिकी तरह घूमते हुए रथांगों (चक्रवाकों और चक्रों) वाली थीं। जो दिशाओंमें दौड़ते हुए जलोंकी लहरोंसे रमण करती हुई मत्स्यमालाओंसे युक्त थीं।

घत्ता—हँसते हुए कमलों तथा हवाके लिए बाहर आते हुए मत्स्योंके बहाने जो अपनी चंचल आँखोंसे मानो देवागमन देख रही हैं ॥२१॥

२२

जहाँ रतिके द्वारा (काम), हंसिनियोंके द्वारा मत्त हंस और सुरवधुओंकी हथिनियोंके द्वारा ऐरावतकी सूँड़का स्पर्श चाहा जा रहा है। भीतर फूलोंकी घर नवद्रुम लताएँ मानो कामकी भल्लिकाओंके समान हैं। जो पत्रों (पत्तों और पत्ररचना) से मुक्त मानो वरवेश्या हैं। जो सुधीजनोंके परिहासके समान फलोंसे नमित हैं। जो प्रियतमसे मिले हुएके समान कंटकित (रोमांचित) हैं, हवासे संचालित होनेके कारण जो जैसे नृत्य कर रही हैं। जो मानो श्रेष्ठ कविकी वाणीके समान कोमल हैं, जो लाटालंकारके आलापोंसे भी अधिक सुन्दर हैं। जो अभिनव रससारकी तरह विस्तृत हैं, जो मानो कामुकोंकी मतियोंकी तरह विकारोंसे युक्त हैं। वहाँपर

का वि वेल्लि तहिं वेढइ कंचणु　　सयल वि णारि समीहइ कंचणु ।
लग्गी का वि ललंति असोयइ　　जिहँ तृय तिह किर रमइ असोयइ ।
लग्गी का वि गंपि पुण्णायहु　　होइँ णियंबिणि फुडु पुण्णायहु ।
क वि मायंदहुं संगु ण खंचँइ　　णिवरोहिणिहि लील णं संचँइ ।

घत्ता—किसलयदलफलगोंछुं चलचंचुइ णिझरइ ॥
[10]अमरु कीरवेसेण तेत्थु को वि रइ पूरइ ॥२२॥

२३

हेला—चिंतियवेसधारिणो जणियकामभावा ।
वेल्लीवणलयाहरे जहिं रमंति देवा ॥१॥

पुणु हिरण्णरइयउ रुइरिद्धउ　　णं जिणेण वयपरियरु बद्धउ ।
अप्पवेसु णं कामकडक्खहु　　गुरुपायारु पारु णं दुक्खहु ।
जहिं चउगोउराइं संविहियइं　　जहिं बहुमंगलदव्वइं णिहियइं ।
अट्ठोत्तरसयसंखासहइं　　णव वि णिहाणइं हयदालिद्दइं ।
तहिं वितर पडिहारसमत्था　　भीयरकुलिसगयासणिहत्था ।
पुणु पेणिहिउ उहयम्भि विसालउ　　चउदिसु दो दो णाडयसालउ ।
ताउ तिभूमिउ णवरसजुत्तउ　　णाइं पउत्तिउ [3]सुकइपउत्तउ ।
बहुवज्जउ वइरायरभूमिउ　　आयउ णं ओलग्गहुं सामिउ ।

घत्ता—उहयदिसहिं कुहिणीहि पुणु वि कया वि ण णिट्ठिय ॥
दो दो दिण्णसँधूव तहिं धूवहँड परिट्ठिय ॥२३॥

२४

हेला—दीसइ गयणमंडले णीलधूमरेहा ।
णं जिणकम्मकालिया भमइ मुक्कदेहा ॥१॥

पुणु खयरामररामारमियइं　　चउणंदणवणाइं परिभमियइं ।
वणि वणि विमलइं सरिसरपुलिणइं　　कीलागिरिवरकेलीभवणइं ।
चउगोउरतिसालपरियरियउ　　पीढु तिमेहलु मणिविप्फुरियउ ।
तित्थु असोउ असोयवणंतरि　　तहु पडिमाउ चयारि दियंतरि ।
कोहमोहमयमाणें चत्तउ　　सीहासणछत्तत्तयजुत्तउ ।
अत्थि अणेयदेवकयपुज्जउ　　णिहयणिरंगउ णिरु णिरवज्जउ ।

---

५. MB जिह तिह किर; P जिह तिय तिह and gloss यथा स्त्री; K तृय but corrects it to तिय । ६. MBP अवसें णारि होइ पुण्णायहु । ७. BP खंचइ । ८. M अंचइ । ९. B गोच्छु । १०. MBP अमरु वि कीरमिसेण ।

२३. १. B वल्लीवणं । २. MT पणिही; BP पणहीउ । ३. MBP सुकइणिउत्तउ । ४. MB सुधूय; P सुधूवा । ५. M धूवहडण ।

२४. १. MBPT add after this : कंकेल्लीचंपयसत्तयलहिं, संछण्णहिं साहारहिं सरलहिं ।

कोई लता चम्पक वृक्षको घेर लेती है, (ठीक भी है) सभी नारियाँ स्वर्णकी आकांक्षा रखती हैं, चाहती हुई कोई लता अशोक वृक्षसे लग जाती है, और जिस प्रकार स्त्री अशोक (शोकरहित) मनुष्यसे रमण करती है, उसी प्रकार रमण करती है। कोई लता जाकर पुन्नाग वृक्षसे लग गयी, और स्फुट रूपसे पुन्नाग (श्रेष्ठ पुरुष) की गृहिणी बन गयी। कोई मायंद (आम्रवृक्ष) के साथ नहीं लगती मानो वह चन्द्रमा और रोहिणीकी लीलाको धारण करती है।

घत्ता—कोई देवता शुकके रूपमें पत्तों, दलों और फलके गुच्छोंको अपनी चंचल चोंचसे नोचता है, और इस प्रकार अपनी कामनाको पूरी करता है ॥२२॥

२३

अपनी इच्छाके अनुसार वेश धारण करनेवाले, तथा जिन्हें कामभाव उत्पन्न हो रहा है, ऐसे देवता जहाँ लतावनोंके लताघरोंमें रमण करते हैं। फिर विशाल प्राकार, स्वर्णसे रचित और कान्तिसे युक्त जो ऐसा लगता था, मानो जिन भगवान्‌ने अपने व्रतोंका परिकर कस लिया हो। जो कामके कटाक्षोंके लिए अप्रवेश्य था, और जो मानो दुखोंका अन्त था। जहाँ चार गोपुर-द्वार बनाये गये थे, जहाँ अनेक मंगल द्रव्य रखे हुए थे। एक सौ आठ संख्या शब्दोंवाले तथा दारिद्र्य-का अपहरण करनेवाली नौ निधियाँ। जहाँ भयंकर वज्र और गदाएँ हाथमें लिये हुए व्यन्तर देव प्रातिहार्यका काम करनेमें समर्थ थे। फिर मार्गोंके दोनों ओर चारों दिशाओंमें दो-दो विशाल नाटकशालाएँ थीं। जो नवरसोंसे युक्त तीन भूमियोंवाली थीं, सुकवियोंके द्वारा कही गयी उक्तियोंके समान। अनेक वाद्योंसे युक्त वैराग्यभूमियाँ थीं जो मानो स्वामीकी सेवाके लिए आयी थीं।

घत्ता—मार्गकी दोनों दिशाओंमें अपनी-अपनी धूप देनेवाले दो-दो धूपघट स्थित थे जो कभी भी समाप्त नहीं होते थे ॥२३॥

२४

आकाशमण्डलमें नीली धूमरेखा ऐसी दिखाई देती है मानो जिनके कर्मसे काली वह मुक्त देह घूम रही हो। फिर विद्याधरों और देवोंकी स्त्रियाँ जिनमें रमण करती हैं ऐसे चार नन्दन वन रच दिये गये। प्रत्येक वनमें नदी और सरोवरके किनारे हैं, क्रीड़ा पर्वत श्रेष्ठोंपर केलीभवन हैं। चार गोपुर और तीन परकोटोंसे घिरा हुआ तीन मेखलाओंवाला तथा मणियोंसे चमकता हुआ पीठ है। वहाँ अशोकवनके भीतर अशोक हैं, चारों दिशाओंमें वहाँ प्रतिमाएँ हैं। क्रोध, मोह, मद एवं मानसे रहित जो सिंहासन और तीन छत्रोंसे युक्त हैं। जिनकी अनेक देवोंसे पूजा की गयी है,

संझा इव सुवण्णरुइरोइय[2] पुणरवि चउदुवारवणवेइय[3] ।
पुणु दिसि दिसि दह धय सुरसंथुय थिय गयणयललग्ग पवणुद्धुय ।
मालावत्थमोरकमलंकहिं हंसगरुडहरिविसकरिचक्कहिं ।
भूसियपडिधयपहपइरिक्कहु अट्ठोत्तरु सउ सउ एक्केक्कहु ।
घत्ता—अण्णहु कासु तिलोए सोहइ णहि घोलंतउ ॥
कुसुममालधउ तासु कुसुमाउहु जें जित्तउ ॥२४॥

२५

हेला—कहइ व किंकिणीण घोसेण घोलमाणो ।
अहमिह सकुसुमो वि ण हु होमि कुसुमबाणो ॥१॥
देव देव मा महु रूसेज्जसु कुसुमकरालहु करुण करेज्जसु ।
जो अंबरु तवचरणि ण भावइ अंबरचिंधु तासु धुवु[1] आवइ ।
जो सिहिवेसु कया वि ण इच्छइ सिहिजयंति सो अवसें पेच्छइ ।
जो णिवकमलहि होइ परंमुहु तहु कमलद्धउ णिच्छउ संमुहु ।
परमहंसु जो सच्चउ बुज्झइ हंसु तासु धइ केम विरुज्झइ ।
अमयबंभपउ जो जइ दावइ विणयासुयवडाय सो पावइ ।
सीहेणेव जेण वणु सेविउ सीहचिंधु तहु केण ण भाविउ ।
जेण ण पसु घाइउ णियमग्गइ तासु जि वसहु थाइ चिंधग्गइ ।
पसुवइ सो ज्जि भडारउ वुच्चइ दुट्ठ अवरु किं अप्पउ सुच्चइ ।
जो पंचिंदिय दुद्दम पीलइ पीलु तासु धयवडु अणुसीलइ ।
मोहचक्कु जें चप्पिवि चूरिउ [2]चक्कु चिंधु तहु होइ अवारिउ ।
घत्ता—पुणु पायारु विचित्तु चउदुवार सुपसत्थ ॥
जहिं थिय णायकुमार मरगयदंडविहत्थ ॥२५॥

२६

हेला—पुणु[1] वि धूवदोहडी पवरणट्टसाला ।
अहिणवभावसोहिया ताउ णवरसाला ॥१॥
उव्वसिरंभतिलोत्तिमणामउ जहिं णडंति तियसाहिवरामउ ।
पुणु दीहर दहविह कप्पद्दुम दरिसियभोयसार णिरु णिरुवम ।
पुणु वेइय कलहोयहु[2] केरी पियकंता इव सुहइं जणेरी ।
पुणु वि दुवारइं पुण्णपवित्तइं दरिसावियबहुमंगलवत्तइं ।
णिच्चु जि कीलियसुरसंघायहँ भंभाभेरिपडहणिणायहं[3] ।
पुणु पओलि लंघिवि पासायहं पंति हारतारासुच्छायहं ।
पुणु थूहइं [4]मणितोरणमालउ पुणु फलिहमउ सालु सुविसालउ ।

२. MBP राइउ । ३. MBP वेइउ ।
२५. १. MBP धुउ । २. MBP चक्कचिंधु ।
२६. १. MBP पुणरवि धूयदोउडी । २. B कलहोइय । ३. MBP णिण्णायहं । ४. MBP पुणु तोरण ।

जिन्होंने कामको नष्ट कर दिया है, और जो पापरहित हैं। सन्ध्याके समान स्वर्णकान्तिसे निर्मित, फिर भी चार द्वारवाली वनदेवियाँ हैं। फिर दिशा-दिशामें देवताओंसे संस्तुत, आकाशको छूती हुई, हवासे उड़ती हुईं दस ध्वजाएँ स्थित हैं। माला, वस्त्र, मोर, कमलों, हंस, गरुड, हरि, वृषभ, गज और चक्रोंसे भूषित पटध्वजोंकी प्रभासे प्रचुर एक-एकपर एक सौ आठ ध्वज हैं।

घत्ता—आकाशमें उड़ती हुई कुसुममाला ध्वजा त्रिलोकमें क्या किसी दूसरेके लिए सोह सकती है, केवल उसके लिए सोह सकती है कि जिसने कामदेवको जीत लिया है ॥२४॥

२५

मानो वह ध्वज किंकिणियोंके आन्दोलित घोषसे कहता है कि मैं वहाँ कुसुम सहित होकर भी कुसुमबाण (कामदेव) नहीं हूँ। हे देवदेव, मुझपर क्रोध मत कीजिए। कुसुमोंसे कराल मुझपर करुणा करें, जो अम्बर (वस्त्र) तपश्चरणमें अच्छा नहीं लगता, उसके लिए निश्चित रूपसे वस्त्रध्वज आता है; जो स्त्रीवेषको कभी भी नहीं चाहते वह मयूरपताका अवश्य देखता है; जो राजारूपी कमलसे पराङ्मुख है उसके सम्मुख निश्चय ही कमलध्वज हैं। जो सच्चे परमहंस समझे जाते हैं ध्वजमें उनका हंससे कैसे विरोध हो सकता है। जो अमृत ब्रह्मपद दिखाता है, वह गरुडध्वज पाता है, सिंहके ही समान जिसने वनकी सेवा की है सिंहध्वज उन्हें क्यों अच्छा नहीं लगता। जिन्होंने अपने मार्गमें पशुका आघात नहीं किया उनके लिए ध्वजके अग्रभागमें बैल स्थित है। वही आदरणीय पशुपति कहे जाते हैं, क्या और कोई दूसरा दुष्ट अपनेको क्यों शिव समझता है? जो दुर्दम पाँच इन्द्रियोंको पीड़ित करता है, गज उनके ध्वजपटका अनुशीलन करता है। जिसने मोहचक्रको चाँपकर चूर-चूर कर दिया, बिना किसी प्रतिवादके चक्र उसका चिह्न होगा।

घत्ता—फिर चार द्वारोंवाला प्रशस्त और विचित्र परकोटा था। जहाँ पन्नोंके दण्ड हाथमें लिये हुए नागकुमार देव खड़े हुए थे ॥२५॥

२६

फिर जिसमें धूपके दो घट हैं, ऐसी विशाल नाट्यशाला है। नवरसाला (नौ रसोंवाली) वह, अभिनव भावोंसे अत्यन्त शोभित है। जहाँ इन्द्रकी उर्वशी, रम्भा, तिलोत्तमा नामक नर्तकियाँ नृत्य करती हैं। फिर लम्बे दस कल्पवृक्ष हैं, श्रेष्ठ भोगोंको प्रदान करनेवाले अत्यन्त अनुपम। फिर स्वर्णकी वेदिका है जो प्रिय कान्ताके समान सुख देनेवाली है। फिर बहुमंगल द्रव्योंको बतानेवाले द्वार हैं। जिनमें नित्य देवसमूह क्रीड़ा करता है और भंभा, भेरि और नगाड़ोंका निनाद हो रहा है ऐसे हारों और तारोंके समान स्वच्छ प्रासादोंकी पंक्ति और प्रतोली लाँघकर मणियोंके

मणुउत्तरगिरि व्व गरुयारउ   कप्पदेवपरिरक्खियदारउ ।
सुद्धायासफलिहसंपत्तिउ   तहु आलग्गिवि सोलह भित्तिउ[5] ।
घत्ता—तहिं मंडवमज्झत्थु वेरुलिएहिं समारिउ ॥
सोलहपयठवणेहिं पीढु सुहाइ णिरारिउ ॥२६॥

२७

हेला—चउदिसु तासु उवरि कल्लाणदविणसारा ।
जक्खसुराहिवा वि सिरिधम्मचक्कधारा ॥१॥
अवरु हिरण्णवीढु तहु उप्परि   अट्ठकेउपरिमिउ पयडियसिरि ।
रयणरहंगदुरयगोधारिहिं   आरणालसुसिचय[1]हरिणारिहिं ।
उरयवइरिदामयतणुअंकहिं   सोहइ धयहिं गलियमलपंकहिं ।
पुणु वि तितीरु रइउ पीढुल्लउ   तासुप्परि सीहासणु[2] भल्लउ ।
जंबुण्णयचामीयरघडियउ   विमलु[3] समंतभद्दमणिजडियउ ।
मरगयणिम्मियदीहरदिव्वहिं   सहइ लट्ठि कक्केयणपव्वहिं ।
छत्तइं तिण्णि ताइं उद्धरियइं   णिम्मलाइं णं णाहहु चरियइं ।
दिसिगयपंडुरकरणिउरुंबइं   तिण्णि वि णावइ ससहरबिंबइं ।
भामंडलु मंडलु णं भाणुहि   अइ आसंकेप्पिणु सब्भाणुहि[4] ।
णिण्णासियदुद्दंसणदिट्ठिहि   सरणु पइट्ठउ णं परमेट्ठिहि ।
रत्तपुप्फ[5]थवएहिं पसाहिउ   जिणमण[6]णिग्गउ राउ व राइउ[7] ।
कंकेल्लि व[8] पल्लवसोहिल्लउ   मत्तसकुंतमिहुणु[9] रमियल्लउ ।
जिह जिह देवहुं दुंदुहि वज्जइ   तिह तिह धम्मजलहि णं गज्जइ ।
घत्ता—णं आघोसइ एम दुंदुहिसरेण गहीरें ॥
[10]पणवहो तिहुयणणाहु जें मुच्चहु संसारें ॥२७॥

२८

हेला—अविरलकुंदकुडयमंदारपंकयाइं ।
सभसलसिंदुवारकणियारचंपयाइं ॥१॥
जिह जिह कुसुमइं पडियइं गयणहु   तिह तिह करसरणिवडियमयणहु ।
णवपसंडिदंडइं सपसंसइं   पीयपासपडियाइं[1] व हंसइं ।
जक्खकरयलंदोलणचवलइं   गुणठाणारुहणाइं व विमलइं ।

---

५. B तित्तिउ ।

२७. १. M सुसिवय°; B ससिवय° । २. MPK सिहासणु; B सिघासणु । ३. MB विमल° । ४. B सुब्भाणुहि । ५. B रत्तउ पुप्फ° । ६. MBP जिणमय° । ७. MBPT राहिउ । ८. MBP वि । ९. M मत्तसुकुंभसिहु णरमियल्लउ; BP मत्तसकोंतमिहुणु रमियल्लउ, but T सकुंता पक्षिणः । १०. MBP पणवह ।

२८. १. MB पियपायसपडियाइं; P पियपासपडियाइं ।

तोरणमालाओंसे युक्त स्तूप हैं। फिर स्फटिकमय विशाल साल (परकोटा), मानुषोत्तर पर्वतके समान विशाल, जिसका द्वार कल्पवासी देवोंके द्वारा रक्षित है। वहांसे लेकर शुद्धाकाशके समान स्फटिक मणियोंसे बनी हुई सोलह दीवालें हैं।

घत्ता—उनके ऊपर वैदूर्यमणियोंसे निर्मित मण्डपका मध्यभाग है, सोलह पद स्थापनाओंके द्वारा जिसका पीठ अत्यन्त शोभित है ॥२६॥

२७

उसके ऊपर चारों दिशाओंमें कल्याण और धनमें श्रेष्ठ तथा श्री और धर्मचक्रको धारण करनेवाले यक्ष और इन्द्र थे। उसके ऊपर एक और हिरण्यपीठ था, अपनी शोभाको प्रकट करता हुआ वह आठ ध्वजोंसे घिरा हुआ। चक्रवाक, हाथी, बैल, कमल, शोभा वस्त्र और सिंह, मयूर और पुष्पमालाओंसे चिह्नित ध्वजोंसे जो शोभित है। फिर भी तीन किनारोंसे (एकके ऊपर एक) पीठ निर्मित है। उसके ऊपर सुन्दर सिंहासन है। स्वर्ण और चाँदीसे निर्मित और समन्तभद्रमणिसे जड़ा हुआ। जिसकी यष्टि (हाथ टेकनेकी लकड़ी) मरकत मणियोंसे निर्मित स्फटिक मणियोंकी गाँठोंसे शोभित है। उसके ऊपर तीन छत्र उठे हुए थे जो नाभेयके चरितके समान सुन्दर थे। दिग्गजोंके समान सफेद किरण-समूहोंवाले वे चन्द्रबिम्बकी तरह शोभित हैं। भामण्डल मानो सूर्यका मण्डल है। जो मानो राहुसे अत्यन्त भयभीत होकर दुर्दर्शनीयोंकी दृष्टिका नाश करनेवाले परमेष्ठीकी शरणमें आ गया। अथवा जो लाल फूलोंके गुच्छोंसे प्रसाधित, तथा जिनके मनसे निकले हुए रागके समान शोभित है। जिसमें प्रसन्न पक्षियुग्म हैं, ऐसे पल्लवोंसे शोभित क्रीड़ा करते हुए अशोक वृक्षके समान। जैसे-जैसे देवके लिए दुन्दुभि बजती है, वैसे-वैसे मानो धर्मरूपी समुद्र गरजता है।

घत्ता—मानो वह गम्भीर दुन्दुभिके स्वरसे इस प्रकार घोषित करता है कि यदि संसारसे मुक्त होना चाहते हो तो त्रिभुवननाथको प्रणाम करो ॥२७॥

२८

अविरल कुन्द, कुटक, मन्दार, कमल, भ्रमरसहित सिन्दुवार, कणिकार (कनेर) और चंपकपुष्प जैसे-जैसे आकाशसे गिरते हैं वैसे-वैसे कामदेवके हाथसे तीर गिरने लगे। नव स्वर्णमय दण्डोंवाले, यक्षोंके करतलोंके आन्दोलनसे चपल सफेद सुविशिष्ट और प्रशंसित चमर स्वर्णबन्धनमें

खीरतरंगा इव परिघुलियइं किंत्तिहि अंगा इव संचलियइं ।
पंडुराइं चमरइं सुविसिट्ठइं दयवेल्लिहि फुल्लाइं व दिट्ठइं ।
जं जं सुंदरु लच्छिहि अंगउ जं जं [2]कोइं मि तिहुयणि चंगउ ।
तं तं सयलु वि तहिं जि समप्पिउ को वण्णइ जंभारिवियप्पिउ ।
णियपहणित्तेइयचंदक्कउ समवसरणु गयणंगणि थक्कउ ।
पंचसहसधणु[3]उच्छय[4]माणेंइ [5]सेणिय कहियउ जिणवरणाणइ ।

घत्ता—जो उच्छेहु जिणिंदें धणुपंचसएहिं [6]घल्लिउ ।
तरुघरगिरिखंभाहं सो बारहगुणु [7]वोल्लिउ ॥२८॥

२९

हेला—[1]अट्ठगुणेण रुंदभावेण संपउत्तो ।
गाढं थूहवेइयाणं पि सो पउत्तो ॥१॥

इय धणएं वेउव्विउ जायहिं इंदें णविउ भडारउ तावहिं ।
जय जिण कण्ह रुद्द चउराणण जय तवरामारइसुहमाणण ।
जय [2]कलिकलिलसलिलसोसणरवि जय वासरईसरदेहच्छवि ।
जय मणतिमिरभारहरणखम तियसकिरीडमउडमंडियकम ।
जय तिस[3]ल्लवेल्लीवणछिंदण जय कंदप्पदप्पभडमद्दण ।
कोहकलंकपंकओसारण जय माणइरिसिहरमुसुमूरण ।
मायापावभाव[4]विद्दावण जय लोहंध[5]यारउड्डावण ।
तिद्धारयणीयरिसंघारण जय सत्तभयकुरंगवियारण ।
जय मयमयगलकुलकंठीरव जय जगबंधव महियतिगारव ।
पढमपुरिस परमप्पय संकर जय जय रिसहणाह तित्थंकर ।

घत्ता—वंदिउ एम जिणिंदु तहिं बत्तीसहिं सक्कहिं ॥
उज्जोइयभरहेहिं पुप्फयंतणामंकहिं ॥२९॥

इय महापुराणे तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारे महाकइपुप्फयंतविरइए महाभव्वभरहाणुमण्णिए महाकव्वे रिसहकेवलणाणुप्पत्ती णाम णवमो परिच्छेओ सम्मत्तो ॥ ९ ॥

॥ संधि ॥ ९ ॥

---

२. MBP तिहुयणि काइं मि । ३. MBP उण्णयमाणें । ४. MP add after this: विससहससोवाणविहाणें, चउदिसविरइयहत्थपमाणें, B adds these after सेणिय कहियउ जिणवरणाणइं । ५. MBP सेणिय कहिउ जिणें वरणाणें । ६. MBP पघल्लिउ; T पझुल्लिउ । ७. P पञ्जुल्लिउ and gloss कथितम् ।

२९. १. MBPK अट्ठउणेण । २. M कयकलिल° । ३. M तिसल्लवल्ली° । ४. MBP °भावउड्डावण । ५. MBP °धयारविद्दावण; P लोहभयारि विद्दावण ।

पड़े हुए हंसों, क्षीरसागरकी आन्दोलित लहरों, कीर्तिके चंचल अंगों, और दयारूपी लताके फूलके समान दिखाई दिये। लक्ष्मीका जो-जो सुन्दर अंग है और विश्वमें जो-जो भला है, वह सब वहीं समर्पित कर दिया। इन्द्रकी रचनाका वर्णन कौन कर सकता है? अपनी प्रभासे सूर्य और चन्द्रमाको निस्तेज करनेवाला—समवसरण पाँच हजार धनुष ऊँचाईके मानसे आकाशमें स्थित था। हे श्रेणिक, यह मैंने जिनवरके ज्ञानसे कहा।

घत्ता—जो ऊँचाई जिनेन्द्रके द्वारा पाँच सौ धनुष कही गयी है वनवृक्ष गिरि (पर्वत) खम्भे (पताकाओंके), उससे (ऋषभ जिनकी ऊँचाईसे) बारह गुना अधिक ऊँचे हैं ॥२८॥

२९

और इनकी मोटाई (ऊँचाईसे) आठ गुनी जाननी चाहिए। खम्भों और वेदिकाके विषयमें भी यह समझना चाहिए। इस प्रकार कुबेरने जब रचना की, तभी इन्द्रने आदरणीय जिनको नमस्कार किया—"हे जिन, कृष्ण, रुद्र, चतुरानन! आपकी जय हो, तपश्रीरूपी रामासे रतिसुख माननेवाले आपकी जय हो। कलिके पापोंरूपी जलोंको सोखनेके लिए सूर्य, आपकी जय हो, सूर्यके समान शरीर कान्तिवाले आपकी जय हो, मनके अन्धकारभारका हरण करनेवाले आपकी जय हो, देवोंके किरीट और मुकुटोंसे अलंकृत चरण आपकी जय हो। त्रिशल्यरूपी लतावनका उच्छेदन करनेवाले आपकी जय हो, कन्दर्पके दर्परूपी भटका मर्दन करनेवाले आपकी जय हो, क्रोधरूपी कलंककी कीचड़ दूर करनेवाले आपकी जय हो, मानरूपी पर्वतके शिखर चूर-चूर करनेवाले आपकी जय हो, मायाके पापभावको नष्ट करनेवाले आपकी जय हो। लोभरूपी अन्धकारको उड़ानेवाले आपकी जय हो। तृष्णारूपी राक्षसीको मारनेवाले आपकी जय हो। सात भयरूपी कुरंगोंका विदारण करनेवाले आपकी जय हो। मदरूपी मैगलके लिए सिंहके समान आपकी जय हो। विश्वबन्धु और तीन गर्वोंको नष्ट करनेवाले आपकी जय हो। प्रथम पुरुष, परमात्मा, शंकर, ऋषभनाथ और तीर्थंकर आपकी जय हो।

घत्ता—भरतको आलोकित करनेवाले तथा सूर्य-चन्द्रके समान शोभित पचासों इन्द्रोंने इस प्रकार जिनेश्वरकी वन्दना की ॥२९॥

इस प्रकार श्रेष्ठ पुरुषोंके गुणों और अलंकारोंसे युक्त इस महापुराणमें महाकवि पुष्पदन्त द्वारा विरचित एवं महाभव्य भरत द्वारा अनुमत महाकाव्यका ऋषभ केवलज्ञान उत्पत्ति नामका नौवाँ परिच्छेद समाप्त हुआ ॥९॥

संधि १०

परमेसरु थुणिउ पुरंदरेण परिसेसियभवभयमरणरिण ॥
परमप्पय महु पसीय सुसम [2]संमवसरणपरियरिय जिण ॥ १ ॥ ध्रुवकं ॥

१

दुवई—तुह पहु वंदणाइ संतोसु ण णिंदइ वहसि मच्छरं ।
तह वि हु कुणसि अणयपणयाण दुहोहसुहोहवित्थरं ॥१॥
तुहुं वीयराउ णिद्धूयकम्मु   तुहुं हिंसावज्जिउ परमधम्मु ।
जो पइं सेवइ तहु होइ सोक्खु   तुह [3]पडिकूलहु संभवइ दुक्खु ।
तुहुं पुणु दोहिं मि मज्झत्थभाउ   [4]ईह एहउ फुडु वत्थुहि सहाउ ।
णिंदिज्जइ रवि पित्ताहिएहिं   चंदु वि वाएण णिवाइएहिं ।
ते दोण्णि वि एयहं किं करंति   ससहावें णहयलि संचरंति ।
ससिसूरोसहिसंघाउ जेम   भुवणोवयारि जिण तुहुं मि तेम ।
सरु दूसिवि जो ण वि पियइ वारि   तहु तण्हइ णिवडइ तिव्वमारि ।
जो रसइ तासु तिसणासु सज्जु   सरवरहु ण एण ण[5] तेण कज्जु ।
जिह गरुलमंतु गरलंतयारि   तिह तुहुं वि सहावें दुरियहारि ।
अणवरउ भडारा भूयसामि   जहिं [6]तुम्हइं तहिं हउं समउ जामि ।
जहिं तुहुं तहिं ससुरु समग्गु सग्गु   [7]जइं हउं तहिं मणिमउ भूमिमग्गु[8] ।
घत्ता—तहिं समवसरणि जंभारिकए [9]परहियबुद्धिइ संचरइ ॥
[10]सुरणरतिरियहं सुहयरणु धम्मु भडारउ वज्जरइ ॥१॥

All Mss. have, at the commencement of this Samdhi, the following stanza:—

जगं रम्मं हम्मं दीवंओ चंदबिंबं
धरत्ती पल्लंको दो वि हत्या सुवत्था ।
पिया णिद्दा णिच्चं कव्वकीला विणोओ
अदीणत्तं वित्तं ईसरो पुप्फयंतो ॥

MBP however read धरित्ती for धरत्ती; सुवत्थं for सुवत्था; and पुप्फदंतो for पुप्फयंतो in the above stanza.

१. १. MB °भवभवणरिण; P °भवभमणरिण । २. MBP सिद्ध महामइ पढम जिण । ३. MBP पडिकूलहं । ४. M इय । ५. K णं तेण । ६. B तुम्हइं तहिं हउं सउं; P तुम्हइं हउं समउ । ७. MBP जहिं तुहुं तहिं; K जइं हउं but corrects it to जहिं; ८. MBP add after this the following line : पइं दिण्णाणइ वइसरमि जामि, तुह वयणामइ तित्ति ण जामि । ९. MBPT परिचिंतियसुवियारसहु and gloss in T भव्यैश्चिन्तितार्थानां शोभनो विचारः सभायां यस्य, शोभनं विचारं वा सहते क्षमते यः स तथोक्तः, but P records in the margin a *p* परहियबुद्धिइ संचरइ । १०. MBP चउदेवणिकायहिं (M °णिकायहं) परियरिउ दिट्ठु पहु, but P records in the margin a *p* सुरणरतिरियहं सुहयरणु धम्मु भडारउ वज्जरइ ।

सन्धि १०

जन्म, भय और मरणके ऋणको समाप्त करनेवाले जिन परमेश्वरकी इन्द्रने स्तुति की—"हे समवसरणसे घिरे हुए शान्त परमात्मा जिन मुझपर प्रसन्न हों। हे प्रभु, न तो तुम्हें वन्दनासे सन्तोष होता है, और न तुम निन्दासे मत्सर धारण करते हो; तब भी जो नत नहीं होते, या नत होते हैं, तुम उनके दुःखसमूह और सुख समूहका विस्तार करते हो। तुम कामको नष्ट करनेवाले वीतराग हो, तुम हिंसासे रहित परमधर्म हो। जो तुम्हारी सेवा करता है उसे सुख मिलता है, जो तुमसे प्रतिकूल है उसे दुःख होता है; परन्तु तुम दोनोंमें मध्यस्थभाव धारण करते हो, यह ऐसा स्पष्ट रूपसे वस्तुका स्वभाव है। अधिक पित्तवालोंके द्वारा सूर्यकी निन्दा की जाती है, वायुसे पीड़ितोंके द्वारा चन्द्रमाकी निन्दा की जाती है। परन्तु वे दोनों (सूर्य-चन्द्र) इन लोगोंका क्या करते हैं, वे तो अपने स्वभावसे आकाशतलमें विचरण करते हैं। जिस प्रकार चन्द्रमा-सूर्य और औषधि-का संघात संसारका उपकारी है, उसी प्रकार हे जिन तुम भी उपकारी हो। जो सरोवरको दोष लगाकर पानी नहीं पीता उसपर प्यासके मारे 'तीव्रमारि' आ पड़ती है। जो पानी पी लेता है, उसकी प्यासका शीघ्र नाश हो जाता है। सरोवरका न इससे प्रयोजन और न उससे प्रयोजन। जिस प्रकार गरुड़का मन्त्र विषका अन्त करनेवाला होता है, उसी प्रकार तुम भी स्वभावसे पापका हरण करनेवाले हो। हे अनवरत भूत स्वामी, जहाँ तुम वहाँ मैं भी साथ जाता हूँ (जाऊँगा)। जहाँ तुम हो वहाँ देवों सहित समग्र स्वर्ग और मणिमय भूमिमार्ग हैं, वहीं मैं भी हूँ।"

घत्ता—इन्द्र द्वारा निर्मित उस समवसरणमें जिन भगवान् दूसरोंकी कल्याण कामनासे संचरण करते हैं और वे सुर-नर तथा तिर्यंचोंका शुभ करनेका धर्म कहते हैं ॥१॥

२

दुवई—आरूढो वरम्मि उवयद्दिसिरम्मि व हरिणलंछणो ।
सोहइ सेंधुरारिवीढम्मि[1] विहट्टियकम्मबंधणो ॥१॥

अइसय दह जाया सह भवेण चउवीस अवर णाणुब्भवेण[2] ।
जगि अरहंतहु पर संभवंति जे ते एहा गणहर कहंति ।
गव्वूइसयाइं[3] चयारि जाम वित्थरइ सुहिक्खु[4] सुखेउ ताम ।
ण वि कासु वि प्राणिहि[5] प्राणणासु गयणयलि गमणु परमेसरासु ।
णउ[6] भुत्ति पवत्तइ णोवसग्गु सरलक्खिपक्खपक्खेउ[7] भग्गु ।
छाहियइ विवज्जिउ होइ गत्तु अवरु वि असेसु[8] विज्जेसरत्तु ।
परिमिय थिय कररुह णील केस भूएसु मेत्ति पिसुण वि ण वेस ।
भास वि णीसेससरीरिगम्म णाणाभासहिं परिणवइ रम्म ।
महु तित्त कडुय परिणइवसेहिं जलधारा इव बहुदुमरसेहिं[9] ।
छक्कालसमयसंपयकरेण महिरुह णमंति गुरुफलभरेण ।
आदंसणसंणिह महि विहाइ परमाणंदें जणु जगि ण माइ ।
मंथरु सीयलु तरुसुरहिसारु जोयणपमाणु वियरइ समीरु ।
[10]अणुगच्छंतउ णाहहु सुहाइ पच्छइ लग्गउ णेहेण णाइ ।

घत्ता—जल[11] दुद्धु वहंति तरंगिणिउ सामिउ विहरइ जहिं जि जहिं ॥
तण[12] कंटय कीडय पत्थर वि धूलि पणासइ तहिं जि तहिं ॥२॥

३

दुवई—सुरवइपेसणेण परिमलमिलियालिकुलेहिं माणियं ।
थणियकुमार मेह वरिसंति[1] महावरगंधवाणियं[2] ॥१॥

पहुअग्गइ पच्छइ परिघुलंति णलिणाइं सत्त सत्त जि चलंति ।
जहिं देइ पाउ तहिं कणयकमलु सुरसंजोइउ संचरइ[3] विमलु ।
एवड्डु[4] पहुत्तणु भुवणि कासु हरि कुलिसधारि घरि जासु[5] दासु ।
अट्ठारह वरधण्णइं धरंति रोमंचिय णवइ णं धरित्ति ।
णहु सदिसु वि रेहइ मलविहीणु धोयंबणीलमाणिक्कभाणु ।
दिव्वज्झुणि पवियंभइ पवित्ति वसुसमसहासधणुमाणछेत्ति ।
जक्खिदसिरारूढउ विचित्तु रयणारत्तु[6] रविबिंबु दित्तु ।
लीलासंबोहियभव्वचक्कु[7] तहु अग्गग्गइ[8] गच्छइ धम्मचक्कु ।
जो पेच्छइ दूरहु माणु[9] खंभु तहु विहडइ माणकसायडंभु ।
णिज्जियबहुसमयणयंतराइं परवाइ वि देंति ण उत्तराइं ।

---

२. १. MBP सिंधुरारि° । २ B णाणुब्भरेण । ३ L °चयारि सयाइं । ४. MBP सुभिक्खु । ५. MBP पाणिहि पाण° । ६. M ण व । ७. MBP °विक्खेउ । ८. MBPT असेस° । ९. P °दुमसरेहिं । १०. MBP अणुगच्छंतहु । ११. MB जलु दुद्धु । १२. B तिण ।

३. १. P वरिसंत । २. MBP महारव° । ३ P संचलइ । ४. B एवड्ड° । ५. MBP कासु । ६. MBP रयणारादंतुरदिव्वदित्तु । ७. MB °चक्खु । ८. MBP अग्गइ । ९ MB माणखंभु ।

२

श्रेष्ठ सिंहासनकी पीठपर विराजमान, कर्मबन्धनका नाश करनेवाले जिन ऐसे शोभित हैं जैसे उत्तम उदयाचलके शिखरके ऊपर चन्द्रमा हो। जन्मके साथ उनके दस अतिशय हुए थे ज्ञानके उत्पन्न होनेसे चौबीस और अतिशय उत्पन्न हो गये। जगमें जो केवल अरहन्तोंके होते हैं, उन्हें (अतिशयोंको) गणधर इस प्रकार कहते हैं—'जहाँ तक चार सौ कोश होते हैं, वहाँ तक सुभिक्ष और सुक्षेत्र रहता है। किसी भी प्राणीका प्राणनाश नहीं होता। परमेश्वरका आकाशमें गमन होता है, न उनमें भुक्तिकी प्रवृत्ति होती है, और न उनपर उपसर्ग होता है; उनकी सरल आँखोंके पलक नहीं झपते। उनका शरीर छायासे रहित है, उनके पास समस्त विद्याओंका ऐश्वर्य होता है, उनकी अँगुलियाँ सीमित रहती हैं। बाल नीले, प्राणियोंके प्रति मैत्रीभाव, दुष्टोंके प्रति द्वेषभाव नहीं। समस्त शरीरसे निकलती हुई सुन्दर भाषा, जो नाना भाषाओंमें परिणत हो जाती है, उसी प्रकार, जिस प्रकार जलकी धारा परिणमनके वशसे नाना वृक्षोंके द्वारा मीठी, कड़वी और तीखी हो जाती है। छहों ऋतुओंमें समृद्ध करनेवाले वृक्ष फलोंके भारसे धरतीपर झुक जाते हैं। धरती दर्पणके समान दिखाई देती है। परम आनन्दसे लोग जगमें नहीं समाते। मन्थर शीतल वृक्षोंकी सुगन्धका जिसमें सार है ऐसी हवा एक योजन तक बहती है, स्वामीके पीछे जाती हुई ऐसी शोभित होती है, मानो स्नेहसे उनके पीछे लग गयी हो।

घत्ता—नदियाँ जलरूपी दूध प्रवाहित करती हैं। जहाँ-जहाँ स्वामी विहार करते हैं, वहाँ-वहाँ की तृण, काँटे, कीड़े और पत्थर तथा धूल नष्ट हो जाती है ॥२॥

३

इन्द्रके आदेशसे स्तनितकुमार मेघ, परिमलसे मिले हुए भ्रमरकुलोंसे सम्मानित उत्तम गन्धवाला जल बरसाते हैं ॥१॥ प्रभुके आगे-पीछे शोभित होते हुए सात-सात कमल चलते हैं। वह जहाँ पैर रखते हैं वहाँ देवोंके द्वारा संयोजित विमल स्वर्णकमल चलता है। भुवनमें इतनी बड़ी प्रभुता किसकी कि जिसके घरमें वज्र धारण करनेवाला इन्द्र दास है। धरती अट्ठारह श्रेष्ठ धान्योंको धारण करती है, मानो रोमांचित होकर नाच रही हो। मल विहीन आकाश भी दिशाओं सहित इस प्रकार शोभित है जैसे पानीसे धोया गया नीलम और माणिक्योंका पात्र हो। पवित्र दिव्यध्वनि प्रवर्तित होती है, जो आठ हजार धनुष बराबर मानवाले क्षेत्रमें प्रसारित होती है। यक्षेन्द्रके सिरपर स्थित विचित्र रत्नोंकी आभाओंसे लाल, सूर्यके बिम्बके समान, तथा लीलासे भव्य जन-समूहको सम्बोधित करनेवाला धर्मचक्र उनके आगे-आगे चलता है। जो दूरसे भी मानस्तम्भको देख लेता है उसके मानकषायका दम्भ नष्ट हो जाता है। जिसमें अनेक मतोंके

[10]पडिहाहय [11]भइयइ थरहरंति अविहंडिउ मोणव्वउ वहंति ।
[12]अवियारु पहादूसियछणिंदु दीसइ चउदिसहिं मुहारविंदु ।
बारहकोट्ठेसु वि जे वसंति ते ते [13] मुहुं महु संमुहु भणंति ।
घत्ता—मउलियकराउ[14] पणवियसिरउ सव्वउ[15] गव्वविमुक्कियउ ॥
परिवाडिइ[16] कोट्ठि णिविट्ठियउ[17] तहिं पयाउ हयदुक्कियउ ॥३॥

४

दुवई—गणहर कप्पवासिसुरमणिउ अज्जियसंघे[1] गइरई ।
देविउ वणणिवासदेवाण वि भावणतरुणिसंतई ॥१॥
पुणु दह कुमार वेंतरसुरिंद पुणु जोइस कप्पामर णरिंद ।
पुणु तिरिय वियड[2]दाढाकराल केसरि कुंजर सद्दूल कोल ।
वइसंति[3] गणेसाइ[4] व कमेण जिणभत्तिवंत भूसिय समेण ।
णव णव पंचविहहिं रूढएहिं सव्वहिं सविमाणारूढएहिं ।
सीहासणु मेल्लिवि खइयभाउ अहमिंदहिं [5]थुउ विद्धत्थराउ ।
जसरवितोसियजगपंकएहिं उग्घोसियकुलणामंकएहिं[6] ।
मउडावलिचुंबियमहियलेहिं घोलंतकुसुममालाचलेहिं ।
उवगीईगाहाखंधएहिं उच्चारियललियथुईसएहिं
संथुउ सोहम्मीसाणएहिं अवरेहिं मि तियसपहाणएहिं ।
घत्ता—जय दुम्महवम्महणिम्महण दोसरोसपसुपाससिहि ।
जय सयलविमलकेवलणिलय हरणकरणउद्धरणविहि ॥४॥

५

दुवई—जय कंकालसूलणरकंदलविसहरवि[1]लयविरहिया ।
जय भगवंत संत सिव सकिव णिवंचियचरण परहिया ॥१॥
जय सुकइ[2]कहियणीसेसणाम भीमंथण णियरिउवग्गभीम ।
वामाविमुक्क संसारवाम जय तिउरहारि हर हीरधाम[3] ।
जय पयडियधुयसस[4]यंभुभाव जय जय सयंभु परिगणि[5]यभाव ।
जय संकर संकर विहियसंति जय ससहर कुवलयदिण्णकंति ।
जय रुद्द रउद्दतवग्गगामि जय जय भवसामि भवोवसामि ।
महएव महागुणगणजं[6]साल महकाल पलयकालुग्गकाल ।

---

१०. MBP पडिभा°; T परिहा° and gloss प्रतिभा । ११. B भइए । १२. MB अवियारपहा°; B अविहारपिया° । १३. MBP महु महु संमुहु । १४. MBP °करउ । १५. BP सव्वउ । १६. MP परिवारिए । १७. MB णिविट्ठउ ।

४. १. MBPK °संघु । २. MBP फुरिय° । ३. M वइसंत । ४. MBP गणेसाइय । ५. M संथुउ । ६. P °णामंकिएहिं ।

५. १. MBP वलय° । २. P सुकय° । ३. MBT हीरवाय and gloss in T धीरप्रसन्न, अथवा हीरो रत्नविशेषस्तद्वन्मनोज्ञ । ४. MBP °ससइंभु° । ५. B परिगलिय° । ६. P °गणविसाल ।

तर्कोंको जीत लिया गया है ऐसे उत्तर परवादी भी नहीं देते। प्रतिभासे आहत वे भयसे काँप उठते हैं और अखण्ड मौन धारण करते हैं। अविकारी, अपनी प्रभासे पूर्ण चन्द्रको फीका करनेवाला उनका मुखकमल चारों दिशाओंमें दिखाई देता है। बारह कोठोंमें जो बैठते हैं वे कहते हैं कि मुख मेरे सामने है।

घत्ता—हाथ जोड़े हुए प्रणत सिर गर्वसे रहित स्वच्छ, नष्ट हो गये हैं पाप जिसके, ऐसी प्रजा परम्पराके अनुसार कोठेमें बैठ गयी ॥३॥

४

गणधर कल्पवासी देवोंकी स्त्रियाँ। आर्यिका संघ, ज्योतिष्क देवोंकी स्त्रियाँ; व्यन्तरदेवोंकी स्त्रियाँ, और भवनवासी देवोंकी देवियोंकी पंक्ति। फिर दस कुमार, फिर व्यन्तरेन्द्र। फिर ज्योतिषदेव, कल्पवासी देव और नरेन्द्र। फिर तिर्यंच। विकट दाढ़ोंसे विकराल सिंह, गज, शार्दूल, कोल और गणधर आदि क्रमसे बैठते हैं, जिनभक्तिसे भरित और श्रमसे भूषित। नव-नव पांच प्रकारसे प्रसिद्ध अपने-अपने विमानोंमें बैठे हुए अहमिन्द्रोंने रागको ध्वस्त करनेवाले सिंहासन छोड़कर जिनेन्द्र भगवान्‌की स्तुति की। अपने यशरूपी सूर्यसे विश्वरूपी कमलको खिलाते हुए, अपने कुलका नाम और चिह्न बताते हुए, मुकुटोंकी कतारोंसे महीतलको चूमते हुए, पुष्पोंकी चंचल मालाएँ हिलाते हुए, गाथा और स्कन्धक गाते हुए, सैकड़ों सुन्दर स्तुतियोंका उच्चारण करते हुए सौधर्म और ईशान इन्द्रों तथा दूसरे देवप्रमुखोंके द्वारा उनकी स्तुति की गयी।

घत्ता—दुर्मद कामदेवको जीतनेवाले दोष और क्रोधरूपी पशुपाशके लिए अग्निके समान समस्त विमल केवलज्ञानके घर और मिथ्यादर्शनादिका अपहरण और सम्यक् दर्शनादिका उद्धार करनेवाले हे विधाता आपकी जय हो ॥४॥

५

कंकाल, त्रिशूल, मनुष्यकपाल, साँप और स्त्रीसे रहित, आपकी जय हो। हे भगवान्, सन्त, शिव, कृपावान्, मनुष्योंके द्वारा वन्दित चरण और दूसरोंका भला करनेवाले आपकी जय हो। सुकवियोंके द्वारा कथित अशेष नामवाले, भयको दूर करनेवाले, अपने अन्तरंग शत्रुओंके लिए भयंकर आपकी जय हो। स्त्रीसे विमुक्त संसारके लिए प्रतिकूल त्रिपुर (जन्म, जरा और मरण) का अपहरण करनेवाले, धैर्यके धाम हे हर आपकी जय हो। शाश्वत स्वयम्भूभावको प्रकट करनेवाले और पदार्थोंके ज्ञाता आपकी जय हो; शान्तिके विधाता और सुखकर आपकी जय हो, कुवलय (पृथ्वीमण्डल, कुमुदमण्डल) को कान्ति प्रदान करनेवाले आपकी जय हो। उग्रतपके लिए अग्रगामी आपकी जय हो, हे भवस्वामी और जन्मको शान्त करनेवाले आपकी जय हो। महान् गुणसमूहके आश्रय हे महादेव, आपकी जय हो। प्रलयकालके लिए उग्रकाल महाकाल आपकी

जय जय गणेस गणवइजणेर जय बंभ पसाहियबंभचेर ।
वेयंगवाइ जय कमलजोणि आईवराह उद्धरियखोणि ।
सहिरण्णविट्ठिपडिवण्णगब्भ जय दुण्णयणिहणण हिरण्णगब्भ ।
जय परमाणंतचउक्कसोह भावंधयारहर[7] दिवसणाह ।
जय जण्णपुरिस पसुजण्णणासि रिसिसंसहिंसा[8]धम्मभासि ।
जय माहव तिहुवणमाहवेस महुसूयण दूसियमहुविसेस ।
जय लोयणिओइय परमहंस गोवद्धण केसव परमहंस ।
जगि सो केसउ जो रायवंतु तुह णीरायहु कहिं केसवत्तु ।
के सव ते सव जे पइं हसंति जड पावपिंड रउरवि वसंति ।
जय कासव का सवविहि तुमम्मि णेरंतरु चित्ति[9] णिरोहु जम्मि ।
घत्ता—जय गयण हुयासण चंद रवि जीवय[10] महि मारुय सलिल ।
अट्ठंगमहेसर जय सयल पक्खालियकलिमलकलिल ॥५॥

६

दुवई—जय जय सिद्ध बुद्ध सुद्धोयणि सुगय कुमग्गणासणा ।
जय वइकुंठ विट्ठु दामोयर हयपरवाइवासणा ॥१॥
णामाइं पसिद्धइं जाइं जाइं तुह देव अवंझइं ताइं ताइं ।
इंदें चंदें उरयाहिवेण तुह णामहु लक्खिउ छेउ केण ।
मइ[1]विहवविहीणहिं आरिसेहिं किं थुव्वसि तुहुं अम्हारिसेहिं ।
तावेत्तहिं[2] पंडुर[3]जसालएहिं कंचुइधम्माउहबालएहिं[4] ।
एक्कहिं खणि भरहहु कहिय वत्त भुंजहि महि महिवइ एकछत्त[5] ।
सयरायरवत्थुवियप्पजाणु परमेट्ठिहि अचलु अणंतु णाणु ।
राणियहि पुत्तु पप्फुल्लवयणु आउहसालहि[6] वरचक्करयणु ।
उप्पण्णु भडारा पुण्णवंतु तुहुं जासु जणणु अरहंतु संतु ।
ता राएं अवरेहिं मि णरेहिं पणविउ जिणवरु सिरकयकरेहिं ।
पुणु चिंतिउ किं जोयमि रहंगु किं तणयतोंडु[7] दरियारिभंगु ।
मज्झत्थु सच्छु णिम्मुक्कसंगु किं वंदमि मुणि सुद्धंतरंगु ।
धम्मेण सुरत्तु कलत्तु पुत्तु पहरणु वि होइ णिद्दलियसत्तु ।
धम्में संपज्जइ पुहविरज्जु करणिज्जु पहिल्लउं धम्मकज्जु ।
गंभीरणायणिम्महियवेरि देवाविय लहु आणंदभेरि ।
घत्ता—मायंगतुरंगहिं णरवरहिं रहधयचमरहिं परियरिउ ॥
वेयालियकयकलयलमुहलु भरहणराहिवु[8] णीसरिउ ॥६॥

---

७. M पावंधपारहर; BP पावंधयारहर । ८. M रिससंस अहिंसा°; BP रिसिसंस अहिंसा° ।
९. MBP चित्तणिरोहु । १०. MBP जीव मही ।
६. १. MBP मइं विभव° । २. MBP ता एत्तहि । ३. P पवर° । ४. MB °बालएहिं; P °पालएहिं ।
५. MBP एयछत्त । ६. MBP °सालइ । ७. MBP °तुंडु । ८. MP भरहु णराहिउ; B भरहण-राहिउ ।

जय हो। गणपतियों (गणधरों) को जन्म देनेवाले आपकी जय हो, ब्रह्मचर्यकी साधना करनेवाले ब्रह्म आपकी जय हो। सिद्धान्तवादी ब्रह्मा, धरतीका उद्धार करनेवाले आदिवराह, जिनके गर्भके समय स्वर्णवृष्टि हुई है, ऐसे तथा दुर्नयका हनन करनेवाले हे हिरण्यगर्भ, आपकी जय हो। चार परम अनन्त चतुष्टयोंकी शोभावाले अज्ञानका अपहरण करनेवाले हे सूर्य, आपकी जय हो। पशुयज्ञोंका नाश करनेवाले, ऋषियोंके द्वारा प्रशंसनीय, अहिंसाधर्मका कथन करनेवाले यज्ञपुरुष! आपकी जय हो। त्रिभुवनके माधवेश, माधव और मधुविशेषको दूषित करनेवाले मधुसूदन! आपकी जय हो। लोकका नियोजन करनेवाले परमहंस, गोवर्द्धन, केशव और परमहंस आपकी जय हो। विश्वमें वह केशव है जो रागवाला है, तुम विरागीके केशवत्व कैसे हो सकता है? विश्वमें शव कौन है, शव वे हैं जो तुम्हारा उपहास करते हैं। जो जड़ और पापशरीर हैं वे रौरव नरकमें रहते हैं। हे कासव! तुम्हारी जय हो, तुममें मृतकका आचार (शवविधि) कैसा? जिसके चित्तमें निरन्तर निरोध है।

घत्ता—हे गगन, अग्नि, चन्द्र, रवि, मेघ, मही, मारुत, सलिल आपकी जय हो। सबके कलियुगके मल और पापको प्रक्षालित करनेवाले अष्टांग महेश्वर, आपकी जय हो ॥५॥

६

शुद्ध, बुद्ध, शुद्धोदन, सुगत और कुमार्गका नाश करनेवाले आपकी जय हो। वैकुण्ठ, विष्णु, दामोदर, परवादियोंके संस्कारोंको नष्ट करनेवाले आपकी जय हो। हे देव, आपके जो-जो नाम हैं वे सब सफल नाम हैं। इन्द्र, चन्द्र और शेषनाग किसने तुम्हारे नामोंका अन्त पाया? मति वैभवसे रहित और अव्युत्पन्न हम-जैसे लोगोंके द्वारा तुम्हारी स्तुति कैसे हो सकती है? तब कंचुकीधर्म और आयुधोंके रक्षकोंने एक ही क्षणमें भरतसे यह बात कही, "हे राजन्, आप एकछत्र धरतीका उपभोग करें। परमेष्ठी ऋषभको सचराचर पदार्थोंको जाननेवाला अनन्त केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है। रानीको खिले हुए मुखवाला पुत्र हुआ है, और आयुधशालामें श्रेष्ठ चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है। हे आदरणीय, आप पुण्यवान् हैं जिसके पिता अरहन्त सन्त हैं।" तब राजा भरत और दूसरे मनुष्योंने अपने सिरोंसे हाथ लगाते हुए जिनवरको प्रणाम किया। फिर उसने सोचा, कि पहले मैं क्या देखूँ—दृप्त शत्रुओंका नाश करनेवाला चक्र देखूँ या पुत्रका मुख। या मध्यस्थ स्वच्छ परिग्रह-शून्य शुद्ध-अन्तरंग मुनिकी वन्दना करूँ। धर्मसे ही देवत्व, कलत्र, पुत्र और शत्रुओंका नाश करनेवाला अस्त्र उत्पन्न होता है। धर्मसे ही पृथ्वीका राज्य होता है। इसलिए पहले धर्मकार्य करना चाहिए। तब उसने गम्भीर नादसे शत्रुओंका संहार करनेवाली आनन्दभेरी बजवा दी।

घत्ता—गज, तुरंगों, नरवरों, रथध्वज और चमरोंसे घिरा हुआ, और वैतालिकोंके द्वारा किये गये कलकलसे मुखर राजा भरत चला ॥६॥

७

दुवई—पत्तो समवसरण[1]मसुहहरणं खयकालवारणं ।
मयराणणविणित्तं[2]मुत्ताहलमालालुं[3]लियतोरणं ॥१॥

हरिणाहिवासणासीणगत्तु तिउणियससिसमसेयायवत्तु ।
पउलोमीपियसेविज्जमाणु चउसट्ठिचमरविज्जिज्जमाणु ।
जिणणाहु दिट्ठु भरहेसरेण णं णेसरु णवपंकयसरेण ।
णं मत्तमऊरें वारिवाहु णं वाइएण रससिद्धिलाहु ।
णं सिद्धें संभावियउ मोक्खु णं हंसें माणसु जणियसोक्खु ।
कंपावियदिक्काहिवेण पारद्धु थुणहुं चक्काहिवेण ।
जय भुवणभवणतिमिरहरदीव जय सुइसंबोहियभव्वजीव ।
जय भासियपयाणेयभेय जय णग्ग णिरंजण णिरुवमेय ।
सकयत्थइं कमकमलाइं ताइं तुह तित्थु पसत्थु गयाइं जाइं ।
णयणाइं ताइं दिट्ठो सि जेहिं सो कंठु जेण गायउ सरेहिं ।
ते धण्ण कण्ण जे पइं सुणंति ते कर जे तुहुँ[4] पेसणु करंति ।
ते णाणवंत जे पइं मुणंति ते सुकइ सुयण जे पइं थुणंति ।
तं कव्वु देव जं तुज्झु रइउ सा जीह जाइ तुह णाउं[5] लइउ ।
तं मणु जं तुह पयपोमलीणु तं धणु जं तुह पूयाइ खीणु ।
तं सीसु जेण तुहुं पणविओ सि ते जोइ जेहिं तुहुं झाइओ सि ।
तं मुहुं जं तुह संमुहउं थाइ विवरंमुहुं कुच्छियगुरुहुं जाइ ।
[6]तेल्लोक्कताय तुहुं मज्झु ताउ धण्णेहिं कहिं मि कह कह व णाउ ।
णिट्ठवियदुट्ठकम्मट्ठ[7] सिट्ठ दुट्ठोवसग्गणिहणेक्कणिट्ठ ।

घत्ता—पंचाणणकुंजरजलजलणविसविसहररु[8]यपयजुयणियला[9] ॥
पइं संभरिएण जि परमजिण उवसमंति कयकलह [10]खला ॥७॥

८

दुवई—जय वइस[1]मणचमरवेरोयण[2]असुरामरपसंसिया ।
सुरगुरुसुक्कसबुहअंगारयगहणहयरणमंसिया ॥१॥

चरणइं तेरहगइभाविराइं णयणाइं पंच पहदाविराइं ।
एयारह सिंगइं उण्णयाइं उज्झियइं तिण्णि किर णिण्णयाइं ।
सीसाइं पंच अह भणमि एक्कु चउहुं मि परियरियउ[3] तं जि थक्कु ।
वारह चोद्दह[4] ढेकारियाइं अंगइं[5] दह विउसवियारियाइं ।
रोमहं चउरासीलक्ख जासु दुग्गोवइकुल संजणिय तासु ।

७. १. MBP °सरणं असुहहरणं; KT °सरणमसुहरसरण । २. B °विलित्त° । ३. BK °ललिय° । ४. M तुव । ५. MBP णामु । ६. MBP तइलोक्क° । ७. BPKT °कट्ठकम्मट्ठ । ८. MB °विसहररपय°; T रुय रोगाः । ९. MBPK °णियल । १०. MBPK खल ।

८. १. MBP वइसवण° । २. MBP °रइरोयण°; K वेरोयण । ३. MB परियरिउ । ४. MPK चउदह । ५. MBP अंगाइं ।

७

वह क्षयकालका निवारण करनेवाले और अशुभका हरण करनेवाले तथा जिसमें मगरके मुखकी आकृतिसे निकले हुए मोतियोंकी मालासे चंचल तोरण हैं, ऐसे समवसरणमें पहुँचा। सिंहासनपर आसीन शरीर, चन्द्रमाकी तिगुनी सफेदीके समान आतपत्र (छत्र) वाले, इन्द्रके द्वारा सेवित, जिनके ऊपर चौंसठ चमर ढोरे जा रहे हैं, ऐसे जिननाथको भरतेश्वरने इस प्रकार देखा मानो नवकमलवाले सरोवरने सूर्यको देखा हो। मानो मतवाले मयूरने मेघको, मानो रसायन निर्माताने रसके सिद्धिलाभको, मानो सिद्धने सम्भावित मोक्षको, मानो हंसने सुख देनेवाले मानस-सरोवरको। दिशाओंके लोकपालोंको कँपानेवाले चक्राधिप भरतने स्तुति प्रारम्भ की, "विश्वरूपी भवनके अन्धकारके दीप, आपकी जय हो, आगमसे भव्य जीवोंको सम्बोधित करनेवाले आपकी जय हो। एकानेक भेदोंको बतानेवाले आपकी जय हो। हे दिगम्बर, निरंजन और अनुपमेय आपकी जय हो। वे चरणकमल कृतार्थ हो गये जो तुम्हारे प्रशस्त तीर्थके लिए गये। वे नेत्र कृतार्थ हैं, जिन्होंने तुम्हें देखा, वह कण्ठ सफल हो गया, जिसने स्वरोंसे तुम्हारा गान किया। वे कान धन्य हैं जो तुम्हें सुनते हैं, वे हाथ कृतार्थ हैं जो तुम्हारी सेवा करते हैं। वे ज्ञानी हैं जो आपका चिन्तन करते हैं, वे सज्जन और सुकवि हैं जो तुम्हारी स्तुति करते हैं। हे देव, वह काव्य है, जो तुममें अनुरक्त है। जीभ वह है जिसने तुम्हारा नाम लिया है। वह मन है जो तुम्हारे चरण-कमलोंमें लीन है। वह धन है जो तुम्हारी पूजामें समाप्त होता है, वह सिर है जिसने तुम्हें प्रणाम किया है। योगी वे हैं जिनके द्वारा तुम्हारा ध्यान किया गया। वह मुख है जो तुम्हारे सम्मुख स्थित है। जो विपरीत मुख हैं वे कुगुरुओंके पास जाते हैं। हे त्रैलोक्य पिता, तुम मेरे पिता हो। धन्योंके द्वारा तुम किसी प्रकार ज्ञात हो? दुष्ट आठ कर्मोंका नाश करनेवाले तथा दुष्ट उपसर्गोंको नाश करनेमें एकनिष्ठ हे श्रेष्ठ परम जिन—

घत्ता—सिंह, गज, जल, अग्नि, विष, विषधर, रोग, बेड़ियाँ और कलह करनेवाले दुष्ट तुम्हारी याद करनेसे शान्त हो जाते हैं ॥७॥

८

कुबेर, असुरेन्द्र, असुर और अमरोंसे प्रशंसित, बृहस्पति, शुक्र, बुध, मंगल आदि ग्रहों और नभचरों द्वारा प्रणम्य आपकी जय हो। तेरहगति भावनाएँ (पाँच महाव्रत, पाँच समितियाँ और तीन गुप्तियाँ) जिसके चरण हैं, प्रभासे दीप्त पाँच ज्ञान जिसके नेत्र हैं, सम्यक्त्वादि ग्यारह गुण-स्थान जिसके सींग हैं, तीन शल्य, जिसके (मिथ्या दर्शन ज्ञान और चारित्र) स्कन्ध कुटी और मस्तक हैं, पाँच महाव्रत अथवा एक अहिंसाव्रत जिसका सिर है, चारों ओरसे घिरा हुआ जो वहीं स्थित है, बारह अंग और चौदह पूर्व, जिसका ढेक्कार शब्द है, विद्वानोंके द्वारा विचारित, उत्तम

जो कामधेणु सेविउ सुधामु जें तोडिवि घल्लिउ मोहदामु ।
दुद्धरवयभारधुरग्गु धरिवि अपवत्तियतित्थवहेण चरिवि ।
णित्थरिवि पराइउ णाणतीरु वीसमिउ असोयहु मूलि धीरु
जें लंघिउ भवदुप्पहु दुलंघु जो धवलु धवलवंदहु महग्घु
तहु वसहहु कयपणिवाउ भाउ णियणिलइ णिसण्णउ भरहराउ ।
घत्ता—कयपंजलियरु पणमंतसिरु भत्तिहरिसवियसियवयणु ।
संसारदुक्खणिव्वेइयउ जोयवि मिलियउ भव्वयणु ॥८॥

९

दुवई—ता णिग्गंतधीरदिव्वज्झुणितोसियफणिणरामरो ।
जीवाजीवणामकयभेयइं तच्चइं कहइ जिणवरो ॥१॥
सभवाभव जीव दुभेय होंति ते सभव सकम्में परिणमंति ।
चउरासीजोणिहिं परिभमंति अण्णण्णदेहराएं रमंति ।
वियलिंदिय सयलिंदिय अणेय एक्किंदिय भासिय पंचभेय ।
आहारसरीरिंदियमणाइं आणाभासापरमाणुयाइं ।
जं कारणु णिव्वत्तणसमत्थु तं पज्जत्ति त्ति भणंति पत्थु ।
तं छव्विहु परमेसें पउत्तु अहमेण ठाइ अंतोमुहुत्तु ।
जिह णारएसु तिह सुरवरेसु दसवरिससहासइं वसइ तेसु ।
परमें तितीस सायरसमाइं मणुएसु तिण्णि पलिओवमाइं ।
एइंदिएसु चत्तारि होंति वियलिंदिएसु पंच जि कहंति ।
ता जाम असण्णिउ पंचकरणु सण्णिउ पज्जत्तीछक्कधरणु ।
एयहिं जे पज्जप्पंति णेय ते जंति अपज्जत्ता अणेय ।
पज्जप्पंतहु लग्गइ खणालु जगि सव्वहु भिण्णमुहुत्तु कालु ।
घत्ता—ओरालिउ तिरियहुं माणवहुं सुरणारयहुं विउव्वियउ ।
आहारअंगु कासु वि मुणिहि कम्मु तेउ सयलहं वि थियउ ॥९॥

१०

दुवई—तिरिय हवंति दुविह तस थावर थावर पंचभेयया ।
पुहवी आउ तेय वाऊ वि य बहुविह हरियकायया ॥१॥
मसुरिय कुसजल सूईकलाव परिधाविरधयसंठाण भाव ।
तोरणतरुवेइयगिरियलेसु सुरहरवसुसंखामहियलेसु ।

---

६. MB ° दुप्पउ । ७. M धवलचंदहु; B धवलवंदहु; P धवलविंदहु and gloss समूहस्य ।
८. MBPK कयपणिवायभाउ । ९. MB जाएवि ।

९. १. B °तासिय° । २. M भव वाभव । ३. MBP परिणवंति । ४. MBP चउरासिलक्खजोणिहिं भमंति । ५. BP दहवरिस° । ६. MBP पज्जत्तहु लग्गइ इय खणालु । ७. MBP विउव्विउ । ८. MBP थिउ ।

१०. १. K पुहई ।

क्षमादि जिसके अंग हैं। चौरासी लाख योनियाँ जिसके रोम हैं ऐसे उसके लिए दुष्ट गोपति समूह उत्पन्न हो गया। जो कामधेनु है, जिसने सुधामकी सेवा की है, जिसने मोहरूपी रस्सी तोड़कर फेंक दी है। और जो दुर्धर व्रतभारके धुराग्रको धारण कर, जो प्रवर्तित नहीं हुआ ऐसे तीर्थ पथपर चलकर और पार कर ज्ञानके तीरपर पहुँचा है, और जो धीर अशोक वृक्षके नीचे विश्राम कर रहा है, जिसने संसारके अलंघ्य पथको पार कर लिया है, जो धवल, धवलसमूहमें महाआदरणीय है उसके प्रति प्रणतभाव प्रदर्शित करते हुए भरतराज अपने कोठेमें बैठ गया।

घत्ता—हाथोंकी अंजली जोड़ते हुए, सिरसे प्रणाम करते हुए तथा भक्ति और हर्षसे प्रफुल्लमुख भरत संसार दुःखसे विरक्त भव्य जनोंको देखकर उनमें जा मिला ॥८॥

९

तब निकलती हुई धीर दिव्य ध्वनिसे नाग, नर, अमरको सन्तुष्ट करनेवाले जिनवर जीव अजीव नामसे भेदवाले तत्त्वोंका कथन करते हैं—सभव और अभव (जन्मा और अजन्मा) जीव दो प्रकारके होते हैं। इनमें सभी जीव अपने कर्मके अनुसार परिणमन करते हैं। चौरासी लाख योनियोंमें परिभ्रमण करते हैं। एक दूसरेके शरीरसे अनुराग करते हैं। विकलेन्द्रिय और सकलेन्द्रिय अनेक होते हैं। एकेन्द्रियके पाँच भेद होते हैं, जो कारण रचना करनेमें समर्थ होता है उसे पर्याप्ति कहते हैं। परमेश्वर जिनने उसे छह प्रकारका कहा है। पर्याप्तिके पूर्व होनेका काल एक अन्तर्मुहूर्त है। जिस प्रकार नारकियोंमें उसी प्रकार देवोंमें (जघन्य आयुके रूपमें) जीव दस हजार वर्ष जीवित रहता है। उत्कृष्ट आयु तैंतीस सागर प्रमाण है और मनुष्योंमें तीन पल्य बराबर आयु होती है। एकेन्द्रिय जीवोंके चार पर्याप्तियाँ हैं और विकलेन्द्रिय जीवोंके पाँच इन्द्रियाँ कही जाती हैं। असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवोंके पाँच पर्याप्तियाँ होती हैं और संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवोंके छह। और इनके द्वारा जिनका कथन नहीं होता, वे अपर्याप्तक जीवके रूपमें जाने जाते हैं। पर्याप्तक जीवके लिए एक क्षणका समय लगता है। विश्वमें सभी पर्याप्तियोंमें एक अन्तर्मुहूर्त काल लगता है।

घत्ता—तिर्यंच और मनुष्योंका औदारिक शरीर होता है, देव और नारकीयोंका वैक्रियक शरीर। आहारक शरीर, तैजस और कार्मण शरीर सभीके होते हैं ॥९॥

१०

तिर्यंच दो प्रकारके होते हैं—त्रस और स्थावर। स्थावर पाँच प्रकारके होते हैं—पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक। जो क्रमशः मसूर, जलकी बूँद, सूइयोंका समूह और उड़ती हुई ध्वजके आकारके होते हैं। तोरण, वृक्षवेदिका,

णाणाविहसायरि[2] सरिसरेसु पण्णारह जिणभवभूयलेसु[3] ।
अवरेसु वि बहुछेत्तंतरेसु बंभंतपरिट्ठियणहयलेसु ।
अइसरसरसातोयासएसु एयाण कमेण जि होइ वासु ।
खरजलिण ण भिज्जइ वालुयाइ सण्ही सिंचियँ[4] खणि बंधु लेइ ।
दुविह वि मट्टिय किर पंचवण्ण जइ होइ होउ संकिण्ण अण्ण ।
घत्ता – कसिणारुण[5] हरिय सुपीयलिय पंडुर अवर वि धूसरिय ।
एँही[6] महिकायहुं मउय महि पंचवण्ण मइं वज्जरिय ॥१०॥

११

दुवई—कंचण तेउंय[1] तंब मणि रुप्पय खरपुहई पयासिया ।
वारुणिखीरखारघयमहुसम जलजाई वि भासिया ॥१॥
दूरहु दरिसावियधूममलिणु असणी तडि रवि मणि जोइ[2] जलणु ।
उक्कलि मंडलि गुंजाणिणाउ दिसविदिसा[3]भेएं भिण्णु[4] वाउ ।
गुच्छेसु गुम्मवल्लीतणेसु पव्वेसु रुक्खसाहाघणेसु ।
सुपसिद्धु[5] वणासइकाउ एसु उप्पज्जइ जइं[6] घोसइ जईसु ।
पज्जत्तेयर सुहुमेयरा वि दुमसाहारण पत्तेय के वि ।
साहारणाहं साहारणाइं आणापाणइं आहारणाइं ।
पत्तेयहुं पत्तेयइं गयाइं[7] छिंदणभिंदणणिहणं[8] गयाइं ।
बारहसहाससंवच्छराहुं सुहुमाहुं दह जि दह दो खराहुं ।
आउहि परमाउसु सत्त झुणइ अहरत्तइं चिक्खिहि तिण्णि भणइ ।
तइयहसहासइं गंधवाहु दहसहसाइं जि वणसइसमूहु ।
परमेण जि अइअवरेण उत्तु सव्वहं जीविउ अंतोमुहुत्तु ।
तुंदाहि[9] कुक्खि किमि खुल्ल संख वीइंदिय[10] मइं भासिय असंख ।
तीइंदिय[11] गोभिपिपीलियाइं चउरिंदिय मच्छियमहुयराइं ।
घत्ता—परिवाडिए किं पि णाणभवणु एयहं जुत्तिइ साघडइ ।
रसु गंधु णयणु फासहु उवरि एक्केक्कउं इंदिउ चडइ ॥११॥

१२

दुवई—पज्जत्तीउ पंच कमसंठिय छह सत्तट्ठ प्राणया ।
तेसिं होंति एम पभणंति महामुणि विमलणाणया ॥१॥

---

२. MBP सायर° । ३. MBP जिणवरमहियलेसु । ४. MB सित्तिय; P सेंचिय । ५. MBP कसणारुण । ६. P महिकायहुं जीवहुं मउय मही ।

११. १. MBP तउय । २. MB °मणिजाइ । ३. MBP दिसि° । ४. M दिण्णु; P भिण्णवाउ । ५. M सुवसिद्ध°; BP सुपसिद्ध° । ६. M जिइ; P जिउ । ७. MBPT पत्तेयंगयाइं । ८. MBP णिहणइं । ९. M रुंदाहि सुक्खि; रुंदाहि कुक्खि; T तुंदाहि गण्डूपद । १०. MBP बेइंदिय । ११. MBP तेइंदिय ।

गिरितल देव, विमान आठ प्रकारकी भूमियोंमें नाना प्रकारके समुद्रों, नदियों, सरोवरों, जिनवर-भूमियोंमें और भी दूसरे-दूसरे क्षेत्रोंमें लोकान्त तक स्थित आकाशतलमें, अति सरस रस और जलके आशयोंमें इनका एक क्रमसे निवास होता है। बालुका (रेत) खरजलसे भी नहीं भिदती, और जो कोमल मिट्टी सींचनेपर जल्दी बँध जाती है। इस प्रकार दो प्रकारकी मिट्टी पाँच रंगकी होती है, और दूसरेसे मिलनेपर दूसरे रंगकी हो जाती है।

घत्ता—काली, लाल, हरी, पीली, सफेद और भी धूसरित (मटमैली)। इस प्रकार पांच पृथ्वीकायकी मृदु धरतीके पांच रंगोंका मैंने कथन किया ॥१०॥

११

स्वर्ण, ताम्र, मणि और चाँदी आदि खर पृथ्वियां कही जाती हैं। वारुणी, क्षीर, खार, घृत, मधु आदि जल जातियाँ कही जाती हैं। वज्र, बिजली, सूर्य और मणिको दूरसे धूम्रका प्रदर्शन करनेवाली आग समझो। उत्कलि (तिरछी बहनेवाली वायु), मण्डली (गोलाकार बहनेवाली वायु), गुंजा (गूँजनेवाली वायु), इस प्रकार दिशा-विदिशाके भेदसे वायु कई प्रकारकी होती है। गुच्छों, गुल्मों, लताशरीरों, पर्वोंमें, वृक्ष शाखाओं आदिमें शुद्ध वनस्पतिकाय जीव उत्पन्न होते हैं, दुनियामें ऐसा यतिवर कहते हैं। ये पर्याप्तकसे भिन्न और सूक्ष्मसे भिन्न होते हैं। कोई वनस्पति-कायिक जीव साधारण और प्रत्येक भी होते हैं। साधारण प्रकारके वनस्पतिकायिक जीवोंके श्वासोच्छ्वास और आहारण होते हैं (प्राण)। प्रत्येकसे उत्पन्न प्रत्येक उत्पन्न होते हैं जो छेदन-भेदन और निधनको प्राप्त होते हैं। सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवोंकी दस हजार; खर पृथ्वीकायिक जीवोंकी बीस हजार वर्ष आयु है। जलकायिक जीवोंकी आयु सात हजार वर्ष, अग्निकायिक जीवोंकी तीन दिन, वायुकायिक जीवोंकी तीन हजार वर्ष, वनस्पतिकायिक जीवोंकी दस हजार वर्ष आयु होती है। यह परम आयु कही गयी। अत्यन्त निकृष्ट या जघन्य आयु सब जीवोंकी अन्तर्मुहूर्त मात्र कही गयी है। गण्डूपद, कुक्षी, कृमि, शम्बूक, शंख आदि दो इन्द्रिय जीवोंको मैंने असंख्य कहा है। तीन इन्द्रिय बीरबहूटी, पिपीलिका आदि, चार इन्द्रिय जीव मच्छर और भ्रमर इत्यादि।

घत्ता—परम्परासे इनमें युक्तिसे कुछ भी ज्ञानचेतना उत्पन्न होती है। रस, गन्ध, स्पर्श और दृष्टि इनमें-से एक-एक इन्द्रियपर चढ़ती है ॥११॥

१२

दो इन्द्रिय जीवके पर्याप्तक अवस्थामें छह प्राण होते हैं, तीन इन्द्रिय जीवके पर्याप्तक अवस्थामें सात प्राण होते हैं और अपर्याप्तक अवस्थामें पाँच प्राण होते हैं, चार इन्द्रिय जीवके पर्याप्तक अवस्थामें आठ प्राण होते हैं, और अपर्याप्तक अवस्थामें छह प्राण होते हैं। उनके लिए

पंचिंदिय सण्णि असण्णि दोण्णि   [1]मणवज्जिय जे ते धुवु असण्णि ।
सिक्खालावाई ण लेंति पाव   अण्णाणगूढ[2]दढमूढभाव ।
असु णव जि समत्तिउ पंच ताहं   वज्जरइ जिणिंदु असण्णियाहं ।
छहिं पज्जत्तिहिं पज्जत्तएहिं   संफासणलोयणसोत्तएहिं ।
मणवयणकायरसघाणएहिं   आणा[3]पाणाउ अ[4]पाणएहिं ।
दहहिं मि जियंति सण्णिय तिरिक्ख   अक्खमि णाणाविह दुण्णिरिक्ख ।
जलयर झसाइ पंचप्पयार   कच्छव मयरोहर सुंसुयार ।
णहयर[5] समुग्ग फुड[6]वियडपक्ख   अण्णेक्क चम्मघणलोमपक्ख ।
थलयर चउपय चउविह अमेय   एक्कखुर दु[7]खुर करिसुणहपाय ।
उरसप्प महोरय[8] अजगराइ   किं[9] ताहं गइंदु वि कवलु होइ ।
[10]भुयसप्प वि वक्खाणियं सभेय   सरडुंदुरगोधाणामधेय ।

घत्ता—जलयर जलेसु खग तरुगिरिसु थलयर गामपुरेसु वणे ॥
दीवोयहिमंडलमज्झि तहिं [11]पढमु दीवु भासंति [12]जणे ॥१२॥

१३

दुवई—जोयणलक्खु लक्ख [1]बहुपविउल पुणु गयगणियमेरया ।
अत्थि असंखदीववरसायरवलयायारधारया ॥१॥

जंबूदीवो धाद[2]इसंडो   पुक्खरवरदीवो [3]मृगचंडो ।
महरो खीरो घयमहु[4]णामो   णंदीसो अरुणोरुण[5]धामो ।
कुंडलसण्णो संखो रुजगो   भुजगवरो अवरो वि हु कुसगो ।
कोंचो एवं दीवसमुद्दा   दूणपि[6]हू दावियणियमुद्दा[7] ।
एएसु तिरियाणं ठाणं   जलयरथलयरणहयरयाणं ।
वियलिंदियपंचिंदिययाणं   एण्हिं वोच्छं कायपमाणं ।
साहियजोयणसहसुच्छेहं   पउमं दीसइ वड्डियदेहं ।
अवि य दुकरणो को वि वरिट्ठो   बारहजोयणदीहो दिट्ठो ।
होइ तिकोसो तिकरणवंतो   चउकरणिल्लो जोयणमेत्तो ।

घत्ता—लवणण्णवि कालण्णवि विउले होंति सयंभूरमणि झस ।
सेसेसु णत्थि जिणभासियउ सेणिय णउ चुक्कइ अवस ॥१३॥

---

१२. १. M मणि । २. MB मूढ धणगूढभाव; K मूढ धणगूढभाव but corrects it to गूढ धणमूढभाव । ३. MBP °पाणाउ । ४. MBP अपाणएहिं । ५. M अहयर । ६. M पड°; BP फड । ७. MBP दुक्खुर । ८. M महोयर । ९. MBP किर । १०. MBP सरिसप्प । ११. MBP पढमदीउ । १२. M जिणे: K जिणे but corrects it to जणे ।

१३. १. MBB तह । २. P धाइयसंडो । ३. MBP मिगचंडो । ४. MBP णामें । ५. MBP धामें । ६. MBP दूणं पि हु । ७. MB add after this : लवणोवहि कालोवहि णामें, सेस समुद्द (B सो समुद्द वि) वि दीवहु णामें ।

प्राण होते हैं, इस प्रकार विमल ज्ञानवाले महामुनि कहते हैं। पाँच इन्द्रिय जीव संज्ञी-असंज्ञी दोनों होता है, जो मनसे रहित हैं, वे निश्चितरूपसे असंज्ञी होते हैं, वे पापी शिक्षा और बातचीत ग्रहण नहीं कर पाते, अज्ञानके आच्छादनके कारण उनका मूढ़भाव दृढ़ होता है। असंज्ञी पाँच इन्द्रिय पर्याप्तक जीवके नौ प्राण होते हैं। सम्पूर्ण छह पर्याप्तियों स्पर्श, लोचन और श्रोत्रों, मन-वचन-काय-रसना-घ्राण-श्वासोच्छ्वासों और आयु इन दस प्राणोंसे संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवित रहते हैं। दुर्दर्शनीय नाना प्रकारसे उनका मैं वर्णन करता हूँ। जलचर पाँच प्रकारके होते हैं—मछली, मगर, उहर, कच्छप और सुंसुमार। नभचर भी सम्पुट, स्फुट और विकट पक्षवाले होते हैं। दूसरे घने चमड़े और विलोम पक्षवाले होते हैं। थलचर चौपाये चार प्रकार के होते हैं—एक खुर, दो खुर, तथा हाथी और कुत्तोंके पैर वाले। उरसर्प, महोरग और अजगर इनका क्या, हाथी इनके कौरमें समा जाता है। भुजसर्पोंका भी भेदोंके साथ वर्णन किया जाता है। ये सर ढुंढ़र और गोधा नामवाले होते हैं।

घत्ता—जलचर जलोंमें, नभचर वृक्षों-पहाड़ोंमें और थलचर ग्राम-नगरोंमें निवास करते हैं। द्वीप और समुद्रमण्डलके मध्य जिनोंके द्वारा प्रथम द्वीप कहा जाता है ॥१२॥

१३

पिछले गणितकी मर्यादाके विचारसे एक लाख योजन विस्तारवाला अत्यन्त विशाल जो असंख्य द्वीप और श्रेष्ठ सागरोंके वलय आकारको धारण करनेवाला। जम्बूद्वीप, धातकी खण्ड, श्रेष्ठ पुष्कर द्वीप, मृगचण्ड-मदिर-खीर और घृत-मधु नामवाले। नदीश-अरुण-अरुणधाम, कुण्डल-संज्ञ, संख रुजग, भुजगवर और भी कुसग, तथा क्रौंच, इस प्रकार द्वीप समुद्र हैं, जो दुगुने विशाल और अपना आकार प्रकट करनेवाले हैं। इन द्वीपोंमें तिर्यंचोंका निवास है। अब मैं जलचर, थलचर, नभचर और विकलेन्द्रियोंके पंचेन्द्रियोंके शरीरका प्रमाण कहता हूँ। पद्म मत्स्य, जिसकी एक हजार योजन ऊँचाई कही जाती है ऐसे विशाल शरीरवाला दिखाई देता है। और भी कोई वरिष्ठ दुकरण नामका है, जो बारह योजन लम्बा देखा गया है। त्रिकर्णवाला तीन कोशका होता है। चार कानोंवाला एक योजनका होता है।

घत्ता—लवणसमुद्र, कालसमुद्र और विशाल स्वयम्भूरमण समुद्रमें मत्स्य होते हैं, शेष समुद्रोंमें नहीं होते। हे श्रेणिक, जिनवरके द्वारा कहा गया कभी गलत नहीं हो सकता ॥१३॥

१४

दुवई—जाणसु जोयणाइं अट्ठारह लवणसमुद्दमच्छया ।
णव[1] वरसरीमुहेसु छत्तीस जि कालोए दिसच्छया ॥१॥

अवसाणमहण्णवि जे वहंति[2] ते जोयण पंचसयाइं होंति ।
गयणंगणचरहं थलंभचरहं संमुच्छिमगब्भसरीरधरहं ।
कइवयचावइं काहँ[3] मि गणंति तणुमाणु एम मुणिवर भणंति ।
कासु वि संमुच्छिमजलयरासु पज्जत्तिल्लहु जोयणसहासु ।
जलगब्भजम्मि भवियाइं ताइं पंचें[4] जि जोयणइं सयाहयाइं ।
एयहं तीहिं मि संमुच्छिमाहं परिवज्जियपज्जत्तीकमाहं ।
अक्खिउ जिणेण दीसइ विअंत्थि[5] परमेणोगाहण णरविहंत्थि[6] ।
थलगब्भयदेहि तिगाउयाइं परमेण माणभावहु गयाइं ।
सुहुमहु बायरहुं मि धुवुँ[7] पवण्णु अंगुलअसंखभायउ जहण्णु ।

घत्ता—जगि सुहुमणिगोयसमुब्भवहं अवि यसमत्तहुं ण वि रहिउ ।
णिक्किट्ठुं[8] कुसुमयंतें पहुणा उत्तिमु[9] जलयराहुं कहिउ ॥१४॥

इय महापुराणे तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारे महाकइपुप्फयंतविरइए महाभव्वभरहाणुमण्णिए महाकव्वे तिरिक्खोगाहणो[10] णाम दसमो परिच्छेओ सम्मत्तो ॥ १० ॥

॥ संधि ॥ १० ॥

१४. १. M णवर सरी°; BP णव जि सरी° । २. BP वसंति ३. P काहिं । ४. MBP पंच वि । ५. M विहत्थि; BP वियत्थि । ६. MPT विअत्थि । ७. MB धुउ; P धुव°; K धुवु । ८. M णिक्किट्ठ-कुसुमपयत्तें । ९. M उत्तम°; P उत्तमु । १०. MBP तिरिक्खोगाहणा ।

१४

लवणसमुद्रके मत्स्य अट्ठारह योजनके होते हैं। गंगा आदि नदियोंके प्रवेश स्थानोंपर छत्तीस योजनके होते हैं; तथा कालोदसमुद्रमें दिशाओंको आच्छादित करनेवाले। अवसान (अन्तिम स्वयम्भूरमण) समुद्रमें जो मत्स्य बहते हैं, वे पांच सौ योजनके होते हैं। आकाशके आंगनमें विचरनेवालों, थल और आकाशमें चलनेवालों, संमूर्छन और गर्भज जन्म धारण करनेवालोंका शरीरमान कई धनुषोंका गिना जाता है, इस प्रकार मुनिवर कहते हैं। किन्हीं पर्याप्तक जलचरोंका शरीरमान एक हजार योजनका मापा जाता है, इस प्रकार पर्याप्ति क्रमसे शून्य इस संमूर्छन जीवोंकी अवगाहना, जिनेन्द्र भगवान्‌के द्वारा कही गयी दो हाथकी दिखाई देती है, इनकी परम अवगाहना नर वितस्थि होती है; गर्भधारी थलचरोंकी अवगाहन तीन गव्यूति (६ कोश) परम मानसे होती है। सूक्ष्म बादर जीवोंकी जघन्य अवगाहना अँगुलीके असंख्य भागके बराबर होती है।

घत्ता—विश्वमें सूक्ष्म निगोदमें जन्म लेनेवाले अपर्याप्त जीवोंको भी उन्होंने गुप्त नहीं रखा। कामदेवका नाश करनेवाले उन्होंने जलचरोंकी उत्कृष्ट और जघन्य अवगाहनाका कथन किया है।

इस प्रकार त्रेसठ महापुरुषोंके गुणालंकारोंसे युक्त इस महापुराणमें महाकवि पुष्पदन्त द्वारा विरचित और महाभव्य भरत द्वारा अनुमत महाकाव्यका तिर्यंच अवगाहन नामक दसवाँ परिच्छेद समाप्त हुआ ॥१०॥

संधि ११

पुणु इंदियभेउ वम्महपसरणिवारएण ॥
भासियउ असेसु लोयहु रिसहभडारएण ॥ ध्रुवकं ॥

१

जाणइ सण्णिउ जो पज्जत्तउ पुट्ठउ सुणइ सद्दु गे[1]यसोत्तिउ ।
णिल्लोय[2]णतिउ पुट्ठ[3]पविट्ठउ रूवु[4] णियच्छइ अप्परिमट्ठउ ।
फासु गंधु रसु णवहि जि भावइ बारहजोयणेहिं सुइ पावइ ।
स[5]त्तेतालसहस्सइं दिट्ठिहइं अवरु वि दोण्णि[6] सयइं तेसट्ठइं ।
चक्खिदियहु विसउ वक्खाणिउ जेहउ केवलणाणें जाणिउ ।
गंधगहणु अ[7]इंवत्तसमाणउं सवणु वि जवणालीसंठाणउं ।
दिट्ठिई[8] पडिम णिएज्ज मसूरी अक्खिय जीह[9] खुरुप्पायारी ।
[10]सहरियत[11]सदेहेसु पयासउ फासु अणेयरूवविण्णायउ ।
[12]समचउरंसु ठाणु सुरसत्थहु हुंडु वि णारयगणहु अहत्थहु ।
मणुयतिरिक्खहु छप्पि[13] पवुत्तइं भोयभूमिवियलहु पढमंतइं ।
[14]खुज्जउ वावणंगु णग्गोहउ उब्भासिउ तिरिक्खणररोहउ ।
एइंदिय [15]णारइय सुसंपुड- जोणिहिं होंति सकम्मसमुब्भड ।
वियलिंदिय वि वियडजोणीहव संपुड वियड होंति गब्भुब्भव ।
[16]पासुयजोणि देवणारइयहं मीसा गब्भणिवासें लइयहं ।
सीयलुण्ह उण्हेव हुयासहं ताहं विहि मि तिविहा पुणु सेसहं ।
मंथरगमणहं ससहरवयणहं संखावत्तजोणि थीरयणहं ।
घत्ता—तहिं जीव अणेय णउ लहंति संपुण्ण तणु ॥
णियकम्मवसेण होंति मरेप्पिणु जंति पुणु ॥१॥

MEP give, at the commencement of this Samdhi, the following stanza: —

सूर्यात्तेज गभीरिमा जलनिधेः स्थैर्यं सुराद्रेर्विधोः
सौम्यत्वं कुसुमायुधाच्च सुभगं त्यागं बलेः संभ्रमात् ।
एकीकृत्य विनिर्मितोऽतिचतुरो धात्रा सखे सांप्रतं
भरतार्यो गुणवान् सुलब्धयशसः खण्डकवेर्वल्लभः ॥

M reads विधौ for विधोः; MB read कुसुमायुधात्सुभगता for कुसुमायुधाच्च सुभगं, and खण्डः कवेर्वल्लभः for खण्डकवेर्वल्लभः ।

GK do not give it.

१. १. MP गयसुत्तउ; B गयसोत्तउ । २. MB णिल्लोयणु । ३. B तिउपुट्ठु । ४. MBP रूउ । ५. MBP सत्तेचालीससहसइं । ६. MBP विण्णि । ७. MBP अइमुत्त° । ८. MBP दिट्ठिहि । ९. M जीय । १०. BT सुहरिय° । ११. MB तसदेवेसु । १२. MB °चउरंस° । १३. MBP छप्पि य उत्तइं । १४. K reads this line before line 12 । १५. MBP णारयसुरसंपुड । १६. MBP फासुय° ।

सन्धि ११

फिर कामके प्रसारका निवारण करनेवाले आदरणीय ऋषभ जिनने अशेष लोकके इन्द्रिय भेद्का कथन किया।

१

जो संज्ञी पर्याप्तक जीव है वह स्पष्ट श्रोत्रगत शब्दको सुनता है। नेत्रोंको छोड़कर तीन इन्द्रियाँ (स्पर्श, रसना और घ्राण) पृष्ट और प्रविष्टको दूरसे जान लेती हैं। आँख अस्पष्ट रूपको देखती है। स्पर्श, गन्ध और रसको वे नौ योजन दूरसे जान लेती हैं। कान बारह योजन दूरसे जान लेते हैं। दृष्टि (आँख) का इष्ट-विषय सैंतालीस हजार दो सौ त्रेसठ योजन है। यह चक्षु इन्द्रियके विषयका व्याख्यान किया, जैसा कि केवलज्ञानसे जाना गया। गन्धग्रहण (नाकका अन्तरंग) अतिमुक्तक पुष्पके समान है। और कान (अन्तरंग) जौ की नलीके समान है। आँखमें मसूरकी आकृति जानना चाहिए; और जीभको अर्धचन्द्रमाके समान कहा जाता है। हरी वनस्पति और त्रसोंके शरीरोंमें प्रकाशित स्पर्शको अनेक रूपोंसे जाना जाता है। देवसमूहका शरीर सम चतुरस्र संस्थान होता है। अधोलोकमें स्थित नारकीयोंका हुंड शरीर होता है। मनुष्य और तिर्यंचोंके छहों शरीर ही कहे जाते हैं। भोगभूमियोंका प्रथम अर्थात् समचतुरस्र संस्थान और विकलेन्द्रियोंका अन्तिम अर्थात् हुंड संस्थान होता है। कुब्जक, बावनांग और न्यग्रोधको तिर्यंचों और मनुष्योंका रोधक कहा जाता है। एकेन्द्रिय और नारकीय सुसंवृत योनिमें उत्पन्न होते हैं और अपने कर्ममें उद्भट होते हैं। विकलेन्द्रिय भी विवृत योनिमें होते हैं, गर्भसे उत्पन्न होनेवाले संवृत और विवृत योनियोंमें उत्पन्न होते हैं। देव नारकीय अचित्त योनिमें होते हैं। गर्भमें निवास करनेवाले मिश्रित योनि भी ग्रहण करते हैं, किसीकी उष्ण योनि होती है और किसीकी शीतल। तैजसकायिक जीवोंकी उष्ण योनि होती है, देवों और नारकीयोंकी तीनों योनियाँ (उष्ण, शीत और मिश्र) होती हैं। शेषकी तीन योनियाँ होती हैं। मन्थरगमन करनेवाले, चन्द्रमुखवाले और स्त्रीरत्नोंकी शंखावर्त योनि होती है।

घत्ता—संसारमें अनेक जीव सम्पूर्ण शरीर ग्रहण नहीं कर पाते, अपने कर्मके वशसे जो उत्पन्न होते हैं और मरकर चले जाते हैं ॥१॥

२

होंति अरुह कुम्मुण्णयजोणिहिं केसव राम चक्कि सुहखोणिहिं ।
अवरहि जोणिहि रुहिरावत्तहि पायडजण[1]वयवंसावत्तहि ।
इंदियजुयल जियंति सहरिसइं मइं विण्णायउ बारहवरिसइं ।
तीइंदियहु मि राइविमीसइं ए[2]क्कुणवण्णास जि किर दिवसइं ।
चउरिंदियहु आउ छम्मासिउ णिसुणहि पंचिंदियहु वि भासिउ ।
मच्छहु पुव्वकोडि उवइट्ठी कम्मभूमिभूयरहं मि दिट्ठी ।
वासहं बायालीससहासइं उरय जियंति जायजी[3]यासइं ।
पक्खिहिं ताइं दुसत्तरि भणियइं पलिओव[4]मइं तिण्णि परिगणियइं ।
खेत्तावेक्खइ कहिं मि तिरिक्खहं एहउ उत्तमाउ पंचक्खहं ।
मायाविय कुपत्तदाणेण वि एए होंति अट्टझाणेण वि ।

घत्ता—इय कहिय तिरिक्ख एवहिं माणव वज्जरमि ।
पण्णारह तीस णवइ छ भेय वि संभरमि ॥२॥

३

तिरियलोय[1]मज्झत्थु सुहासिउ मणुउत्तरगिरिवलयविहूसिउ ।
जोयणाहं णरखेत्तु रवण्णउ पणयालीसलक्खवित्थिण्णउ ।
जंबूदीउ सव्वदीवेसरु एक्कु[2] लक्खु जोयणपरिवित्थरु ।
छ[3]व्वीसाइं पंच अहिययरइं जोयणसयइं विहियणरणयरइं ।
दाहिणभरहु तेत्थु वित्थारें ऐ[4]रावउ भणु तेणायारें[5] ।
उत्तरदाहिणाहं वेयड्ढहं पण्णास जि पिहुलत्तु गुणड्ढहं ।
पंचवीस उच्छेहु समासिउ एक्कु सहसु हिमवंतहु भासिउ ।
सहुं बावण्णहुं वित्थरु साहिउ सउ तुंगत्तें सिहरि वि सोहिउ[6] ।
पंचुत्तरसएण सहुं लक्खिय दोण्णि सहस हिमवइयहु[7] अक्खिय ।
अवर[8]हिरण्णवंतु तम्माणउ साहिउ दोहिं मि एक्कु[9] पमाणउ ।
होइ महाहिमवहु रुंदत्तणु चउसहासअहियउ उद्धत्तणु ।
दोण्णि दहोत्तराइं धुवु[10] सिट्ठउ [11]रुम्मियगिरिंदि वि तेत्तिउ दिट्ठउ ।

घत्ता—खेत्तहुं[12] गुरु खेत्तु गिरि गरुयारउ गिरिवरहो ।
मा भंति करेज्ज वयणु ण चुकइ जिणवरहो ॥३॥

---

२. १. P °जणवइ । २. MBP एक्कुण° । ३. P °जीवासइं । ४. M °ओवम्मइं ।

३. १. MBP तिरियलोउ । २. MBP एक्कलक्खु जोयणहं पवित्थरु । ३. MBP छव्वीसाइं । ४. MBP अइरावउ । ५. MB तेणुपयारें P तेण पयारें । ६. MB पयासिउ; T पसाहिउ । ७. MB हइमवयहु । ८. MBP अवरु । ९. MBP एक्क° । १०. MBP धुउ । ११. MBP रुम्मिहि दुविहु वि । १२. P खेत्तहु चउगुणु खेत्तु गिरि वि चउगुणु गिरिवरहो; T seems to have the same reading : खेत्तेत्यादि–क्षेत्राद्गुरुः गुणं (?) क्षेत्रं गिरेर्गिरिश्चतुर्गुणः ।

२

शुभ भूमि कूर्मोन्नत योनियोंमें अर्हन्त, केशव, राम और चक्रवर्ती आदि उत्पन्न होते हैं। और गर्भयोनिके वंशपत्र आकारमें शेष प्राकृत मनुष्य उत्पन्न होते हैं। मैंने जान लिया है कि दो इन्द्रिय जीव प्रसन्नतापूर्वक बारह वर्ष तक जीवित रहता है। तीन इन्द्रिय जीव भी रात्रियों सहित उनचास दिन ही जीवित रहता है। चार इन्द्रियोंवाले जीवोंकी आयु छह माहकी होती है। सुनो, पंचेन्द्रियोंकी भी आयु बतायी गयी है। मत्स्यकी एक पूर्व कोटी वर्ष आयु बतायी गयी है। कर्मभूमिज तिर्यंचोंकी भी एक करोड़ पूर्व वर्ष आयु होती है। साँप जीवनकी आशावाले बयालीस हजार वर्ष जीते हैं। पक्षी बहत्तर हजार वर्ष जीवित रहते हैं। मनुष्यों और तिर्यंचोंकी जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट आयु एक पल्य, दो पल्य और तीन पल्य गिनी गयी है। क्षेत्रकी अपेक्षा कहीं पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंकी यह उत्तम आयु है। मायावी ये कुपात्रदान और आर्तध्यानसे भी होते हैं।

घत्ता—इस प्रकार तिर्यंचोंकी आयु कही। अब मनुष्योंकी आयु कहता हूँ। उनके पन्द्रह, तीस, नब्बे और छह भेदोंको याद करता हूँ ॥२॥

३

लोकके मध्यमें तिर्यक् (तिरछा) रूपमें फैला हुआ और मानुषोत्तर गिरिवलयसे विभूषित पैंतालीस लाख योजन विस्तारवाला मनुष्यक्षेत्र है। एक लाख योजन विस्तारका जम्बूद्वीप सबसे श्रेष्ठ है। कुछ अधिक पाँच सौ छब्बीस योजन (५२६ ६/१९ योजन) वाले जिसमें मनुष्योंके नगर और नगरियां निर्मित हैं। उसके दक्षिणमें भरत क्षेत्र है और उत्तरमें इतने ही विस्तार और आकारका ऐरावत क्षेत्र है। भरत क्षेत्रमें उत्तरसे लेकर दक्षिण तक, गुणोंसे भरपूर पचास योजन चौड़ाईवाला विजयार्ध पर्वत है। उसकी ऊँचाई पच्चीस योजन कही गयी है। हिमवन्त कुलाचल एक हजार बावन (और १२/१९) योजन विस्तारवाला है, ऊँचाईमें सौ योजन है, शिखरी पर्वत भी इतना है। दूसरा हैमवत क्षेत्र दो हजार एक सौ पाँच, पाँच बटा उन्नीस (२१०५ ५/१९) योजनवाला कहा जाता है और दूसरा हैरण्य (हिरण्यवत्) क्षेत्र इसी मानवाला है, दोनोंको एक प्रमाणवाला कहा गया है। महाहिमवत् कुलाचलका विस्तार चार हजार दो सौ दस, दस बटा उन्नीस ४२१० १०/१९) योजन। (उसकी ऊँचाई दो सौ योजन) कहा गया है। रुक्मि कुलाचलका भी मान इसी प्रकार देखा गया है।

घत्ता—क्षेत्रसे बड़ा क्षेत्र, और पर्वतसे बड़ा पर्वत है, इसमें भ्रान्ति मत करो। जिनवरका वचन कभी चूक नहीं सकता (गलत नहीं हो सकता) ॥३॥

४

चउसयाइं दिइंतिसहासइं एक्कतीस जोयणइं पयासइं ।
अहियइं किं[1] पि होंति हरिवरिसहु तं जि माणु रं[2]म्मयहु सहरिसहु ।
अट्ठसयइं सोलहसहसालइं ताइं जि जाणहि बाए[3]तालइं ।
साहियाइं णिसि[4]हहु पिहुलत्तणु सायरसयइं भणिउं तुंगत्तणु ।
णीलि[5]हिं तं जि ण कोइ णिवारइ बिहिं मि विदेहहं रुंदिम ईरइ ।
परमेसरु तेत्ती[6]ससहासइं उडुसयाइं चउरासीमीसइं ।
अट्ठसयाइं सबायालीसइं अण्णु वि भणु एयारहसहसइं ।
उत्तरकुरुसुरकुरुहुं पउत्तउ एउ माणु णउ ल्हसइ णिरुत्तउ ।

घत्ता—छह खेत्तइं एम भोयभुत्तिसंतोसियइं ।
इह जंबूदीवि तिण्णि जि कम्मविहूसियइं ॥४॥

५

पोमु[1] णाम हिमवंत[2]सरोवरु पंचसयाइं तासु परिवित्थरु ।
एक्कु सहसु दीहत्तणु वुच्चइ दहजोयणइं गहीरिम वुच्चइ ।
एयहु अक्खिउ आगमि जेत्तिउ सिहरिमहापुंडरियहु तेत्तिउ ।
अवरु महाहिमवंतु वरिल्लउ ओइ[3]ल्लहु बिउणारउ भल्लउ ।
तिविहेण वि गुणेण उ[4]वलक्खिउ णामु महापोमु जि मइं अक्खिउ ।
तिंगिंछ[5]सरु वि णिसहासीणउं होइ महापोम[6]क्खहु बिउणउं ।
णिद्धणीलणयरायणिविट्ठउ तेवड्डु जि केसरिसरु दिट्ठउ ।
सोहइ रम्मरुम्मिकयठाणें पुंड[7]रीउ तहु अद्धपमाणें

घत्ता—सिरिहिरिदिहिकंतिकित्ति[8]लच्छिणामालियउ ॥
देवीउ वसंति सरवरि सु[9]कयकीलियउ ॥५॥

६

पोममहापोमहं तिंगिंछ[1]हं केसरिदोपुंडरियहं सच्छहं ।
जलपूरियगिरिकंदरदरियउ सुणसु महाणईउ णीसरियउ ।
गंगा सिंधु रोहि[2] भंगाली रोहियास मंथरगइ लीली ।
हरि[3] हरिकंत सीय सीओयय णारी णरकंता वि महोयय ।
कणयकू[4]ल रुप्पयकूलाली रत्ता रत्तोया वि झसाली ।

४. १. MBP होंति किं पि । २. MB रुम्मयहु । ३. MBP बाइत्तालइं । ४. MBP णिसहहु । ५. MBP णीलहु । ६. BP तेतीस° ।

५. १. MBP पोमणामु । २. MBP हिमवंति । ३. MBP उवरिल्लहु । ४. MBP ओलक्खिउ । ५. MB तिग्गिच्छि वि सरु; P तिंगिछि वि सरु । ६. MBP महापउमक्खहु । ७. P महापुंडरीउ तहं अद्ध° । ८. MK °दिहिकित्तिबुद्धिलच्छि° । ९. M सुहकयकीलउ; BP सुहकयकीलियउ ।

६. १. MBP तिग्गिछहं । २. B omits this line. ३. B omits this line. ४. P कसयकूल ।

४

हरिक्षेत्र कुछ अधिक आठ हजार चार सौ इक्कीस, एक बटे उन्नीस योजन प्रकट किया गया है; रम्यक क्षेत्रका विस्तार भी इतना ही है। निषध पर्वतका विस्तार सोलह हजार आठ सौ बयालीस, दो बटे उन्नीस योजन है। उसकी ऊँचाई चार सौ योजन कही गयी है। नील कुलाचल-का भी विस्तार और ऊँचाई इतनी ही है, उसका कोई निवारण नहीं कर सकता। दोनों (अर्थात् निषध और नील कुलाचल) मिलकर विदेह क्षेत्रके विस्तारकी रचना करते हैं, जो तैंतीस हजार छह सौ चौरासी, चार बटा उन्नीस योजन है। और भी उत्तरकुरु तथा दक्षिणकुरुका विस्तार ग्यारह हजार आठ सौ बयालीस योजन कहा गया है, निश्चय ही यह मान कम नहीं होता।

घत्ता—भोगभूमिसे सन्तुष्ट रहनेवाले ये छह क्षेत्र हैं। इस जम्बूद्वीपमें कर्मभूमिसे विभूषित तीन क्षेत्र हैं ॥४॥

५

हिमवत् पर्वतपर पद्म नामका सरोवर है, उसका परिविस्तार पाँच सौ योजन है, एक हजार योजन उसकी लम्बाई कही जाती है। और दस योजन गहराई। इस पद्म सरोवरका आगममें जितना विस्तार कहा गया है, शिखरी कुलाचलपर स्थित महापुण्डरीक सरोवरका भी यही विस्तार है। और श्रेष्ठ महाहिमवान् पर्वत है; उससे दुगुना। उसके ऊपर पद्म सरोवरसे तीन गुना महापद्म नामका सरोवर है, यह मैंने कहा। निषध पर्वतपर स्थित तिगिच्छ सरोवर महापद्म नामके सरोवरसे दुगुना होता है। स्निग्ध नील नगराजपर स्थित केशरी सरोवर भी उतना ही बड़ा है। रमणीय रुक्मी पर्वतपर स्थित पुण्डरीक सरोवर उससे आधा है।

घत्ता—श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी नामकी पुण्य क्रीड़ा करनेवाली देवियाँ सरोवरोंमें रहती हैं ॥५॥

६

सुनो—पद्म, महापद्म, तिगिच्छ, केशरी, पुण्डरीक और महापुण्डरीक स्वच्छ सरोवर हैं। उनसे अपने जलसे पहाड़ी गुफाओं और घाटियोंको आपूरित करनेवाली महानदियाँ निकली हैं— गंगा, सिन्धु, लहरोंवाली रोहित, मन्थरगामिनी रोहितास्या, हरि, हरिकान्ता, सीता, सीतोदा, महाजलवाली और नरकान्ता। स्वर्णकूला और रूप्यकूला तथा मत्स्योंसे भरपूर रक्ता और

एयउ भणियउ चोद्दह सरियउ वयगुणियउ सत्तरि वित्थरियउ ।
अड्डाइज्जहं पंच जि मंदर बहुवेयड्ढखयरकुलसुंदर ।
घत्ता—वक्खारगिरिंद कुंडलरुजगिरि सुकारगिरि ॥
खेत्तंतहिं अत्थि बहुबिहसिहरुद्धरियसिरि ॥६॥

७

जंबूदीवहु बाहिरि थक्कइं ठाणइं जाइं सहावामुक्कइं ।
पढम सुसंकिण्णइं पुणु रुंदइं ताइं होंति मल्लयपडिछंदइं ।
कयतिहेयगुणणें संजुत्तइं कम्मभोयभावेण विहत्तइं ।
लवणसमुद्दि अट्ठचालीसइं कालोयइ तेत्तियइं जि देसइं ।
बहुजोयणसयमाणविसेसइं संति कुभोयभूमिआवासइं ।
थीपुरिसइं दो दो रइरत्तइं भद्दसहावइं मणहरगत्तइं ।
विगयाहरणइं णिच्चेलक्कइं कण्हइं धवलइं हरियइं सक्कइं ।
रम्मइं सोमइं णिच्चपहिट्ठइं जिणणाहेहिं जिणागमि सिट्ठइं ।
घत्ता—एक्कोरुयधारि पुंछधारि तहिं सिंगधर ॥
पुव्वादिसु होंति उत्तरदिसि णिब्भास णर ॥७॥

८

सक्कुलिकण्ण कण्णपावरण वि लंबकण्ण ससकण्ण कुमणुय वि ।
हरिमुह करिमुह झससामलमुह आदंसणमुह जलहर कइमुह ।
सद्दूलाणण मेसविसाणण सत्तारहतरुहलरसमाणण ।
सयल वि उज्जय पंकयलोयण एक्कोरुय गिरिमट्टियभोयण ।
अट्ठारहजाईहिं रवण्णा छण्णवइहिं खेत्तेहिं विहिण्णा ।
एक्कु जि पलिओवमु जीवेप्पिणु होंति भवणवणवासि परेप्पिणु ।
हरिहिमलोहियपीयलवण्णा तीससुभोयभूमिवित्थिण्णा ।
हारदोरकंकणकुंडलधर दिव्ववत्थ सिरवलइयसेहर ।
मइरंगहिं वीणापडहंगहिं विविहविहूसणंगजुइअंगहिं ।
भायणभोयणंगभवणंगहिं अंबरदीवकुसुममालंगहिं ।
एयंहिं कप्परुक्खहिं महिं छज्जइ भोउ णिरंतरु मणुयहिं भुज्जइ ।
अहमसज्झि मुत्तिमसुहसंगइं ललियसहावइं णिरु ललियंगइं ।
एक्कु दु तिण्णि पल्ल जीवेप्पिणु होंति कप्पवासेसु चएप्पिणु ।

५. MP चउदह ।

७. १. M सल्लइयडि° । २. B कयतिहेण गुणणे P कयतिभेयगुणण्णे । ३. MBP किण्हइं । ४. MBP जिणणाहेण । ५. MBP दिट्ठइं । ६. MBP पुच्छधारि ।

८. १. P जलहरमुह कइ° । २. MPK पलियओवमु । ३. MBP °उप्पण्णा । ४. P °डोर° । ५. MBP भोयणभायणंग° । ६. MBP एहिं । ७. MBP रज्जइ । ८. B भाउ । ९. P भुंजइ । १०. BBP °मुत्तम° । ११. MBP मरेप्पिणु ।

रक्तोदा। ये चौदह नदियाँ कही गयी हैं। इनमें पाँचका गुणा करनेपर सत्तर हो जाती हैं। ढाई द्वीप (जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड और आधा पुष्करद्वीप) में पाँच मन्दराचल हैं जो विजयार्ध पर्वत और विद्याधरकुलोंसे सुन्दर हैं।

घत्ता—क्षेत्रोंके अन्तर्गत वक्षार गिरीन्द्र, कुण्डल, रुचकगिरि और सुकारगिरि हैं जो अपने विविध शिखरोंपर श्रीको धारण करते हैं ॥६॥

७

जम्बूद्वीपके बाहर, अपने स्वभावको नहीं छोड़नेवाले बहुत-से अन्तर्द्वीप हैं। पहला सुसंकीर्ण, दूसरा रुन्द। वे शराव (सकोरे) के आकारके हैं, और उत्तम, मध्यम तथा जघन्य इन तीन भेदोंसे युक्त कर्मभूमिके भावसे (अपनी चेष्टासे फलादिका आहार ग्रहण करनेवाले) विभक्त हैं। लवण समुद्रमें अड़तालीस और कालोद समुद्रमें भी उतने ही देश हैं। सैकड़ों योजनोंके मानसे विशिष्ट, कुभोगभूमियोंके आवास वहाँ हैं। रतिमें अनुरक्त वहाँ दो-दो स्त्री-पुरुष हैं, भद्रस्वभाव और सुन्दर शरीरवाले, आभरण और वस्त्रोंसे रहित, काले-सफेद-हरे और लाल। रम्य-सौम्य और नित्यप्रसन्न, जिनका जिननाथने शास्त्रोंमें कथन किया है।

घत्ता—वहाँ कोई एक रोमधारी है तो कोई पूँछ और सींग धारण करनेवाला है। ये पूर्व दिशामें शोभित होते हैं। उत्तर दिशामें निर्भाष (बिना भाषाके) मनुष्य होते हैं ॥७॥

८

शष्कुलिके समान कानवाले, कानोंके आच्छादनवाले, लम्बे कानवाले और खरगोशके कानवाले खोटे मनुष्य भी रहते हैं। अश्वमुख, गजमुख और मत्स्यके समान श्याम मुख, दर्पणमुख, मेघमुख, वानरमुख, सिंहमुख, मेषमुख और वृषमुखवाले, जो सत्रह प्रकारके फलोंका आहार ग्रहण करते हैं। सभी अत्यन्त सीधे और कमलके समान आँखोंवाले, एक पैरवाले पहाड़ी मिट्टीका भोजन करते हैं। अठारह जातियोंवाले ये छियानबे क्षेत्रोंमें विभक्त हैं। ये एक ही पल्य जीवित रहते हैं और मरकर भवनवनवासी होते हैं। हरित, सफेद, लाल और पीले रंगोंके रत्नोंसे विजड़ित तीस भोगभूमियाँ फैली हुई हैं जिनमें हार, डोर, कंकण और कुण्डलोंको धारण करनेवाले दिव्य वस्त्रधारी सिरपर शेखर बाँधे हुए देव रहते हैं। मद्यांग, वीणा-पटहांग (तूर्यांग), विविध भूषणांग, ज्योतिरंग, भाजनांग, भोजनांग, भवनांग, अम्बरदीपांग (प्रदीपांग) और कुसुममाल्यांग, कल्पवृक्षोंसे, जिसकी धरती शोभित है। और जहाँ मनुष्य निरन्तर भोग करते रहते हैं। अधम, मध्यम और उत्तम सुखोंसे युक्त सुन्दर स्वभाववाले और सुन्दर अंगोंवाले होते हैं। एक-दो या तीन पल्य जीवित रहकर और च्युत होकर कल्पवासमें उत्पन्न होते हैं।

घत्ता—तीसविह[12] पउत्त भोयभूमि धुअ मणुय जिह ।
सइं कालवसेण [13]अद्धुव दहविह होंति तिह ॥८॥

९

दहपंचविह कम्मभूमाणुस अज्ज मेच्छ इच्छाभाणियरस ।
मेच्छ चीण हुण पारस वब्बर[1] भासारहिय णिरुह णिरंबर ।
इड्ढिअणिड्ढिवंत अज्जणवर इड्ढिवंत जिणवर चक्केसर ।
वासुएव बलएव महाबल चारण विज्जाहर उज्जलकुल ।
होंति अणिड्ढिवंत णाणाविह लिविदेसीभासावत्तण बुह ।
जिणु अहमेण जियइ बाहत्तरि अहिउ[2] सहसु वरिसइं[3] जीवइ हरि ।
तहु अहिययरउ सीरि पउत्तउ सत्तसयाइं चक्कि णिक्खुत्तउ ।
पुव्वहं चउरासीलक्खेयहं परमाउसु जिणहरिबलरायहं[4] ।
पुव्वकोडिसामण्णु वि थिरकरु जीवइ कम्मभूमिजायउ णरु ।
पक्खु मासु अयणइं संवच्छर के वि जियंति कईवय वासर ।
णर णिसट्टद[5]वियंगकउग्गम ते सज्जो मरंति संमुच्छिम ।
गब्भेसु वि गलंति तणु लेप्पिणु अवर वि कइवय दियह जिएप्पिणु ।
उत्तमेण धणुलयहं[6] णिसीहा पंच संवायइं[7] सयइं पईहा ।
सत्तहत्थ चउहत्थ तिहत्थ वि णिक्किट्ठेण पउत्त दुहत्थ वि ।
तम्हाओ हि होंति लहुययरा अइरहस्स वामण खुज्जयरा ।

घत्ता—मणुएसु ण होंति सत्तममहिणारय[8] विसम ॥
जिह ए तिह ते उ वाउकायकयभावतम ॥९॥

१०

होंति के वि दूसहणिड्डावस जोइसवणभवणंतहिं तावस ।
चरय[1]परिवायय बंभामर आजीव वि सहसारालय सुर ।
जंति[2] तिरिक्ख वि तं जि जि वयहर[3] णर सम्मत्ताराहणतप्पर ।
सावयवयहलेण सोलहमउ सग्गु लहइ माणुसु दुहविरमउ ।
रिसिवएहिं विणु पुणु तहु उप्परि को वि ण भुंजइ अहमिंदहं सिरि ।
सत्तुमित्तुतणमणिसमचित्तें संजमेण सुद्धें चारित्तें ।
जिणलिंगेण होंति वयभरधर अभविय उवरिमगेवज्जामर ।
आ सव्वत्थ[4]सिद्धि णिग्गंथहं होइ सूइ सम्मत्तपसत्थहं ।

---

१२. P तीस वि इह उत्त । १३. MBP अद्धुय ।

९. १. P वच्छर; but it records a *p* वब्बर । २. M अहउ । ३. M वरिसइं । ४. MBP °बल-एवहं । ५. B णिसट्ट°; P विसट्ठ° । ६. M धणुण्णयहं । ७. MB सवाइं सयाइं; P सयाइं सवाइं । ८. MB णाराय ।

१०. १. MBPT चारय । २. MP जंत तिरिक्ख तं जि जि । ३. MBP वयधर । ४. MBP सव्वट्ठ° ।

घत्ता—जिस प्रकार मनुष्योंकी तीस भोगभूमियाँ निश्चित रूपसे बतायी गयी हैं, उसी प्रकार उससे आधी अर्थात् पन्द्रह कर्मभूमियाँ होती हैं ॥८॥

९

पन्द्रह कर्मभूमियोंके मनुष्य, आर्य और म्लेच्छ होते हैं, जो अपनी इच्छाके अनुसार रसका भोग करते हैं। म्लेच्छ चीन, हूण, पारस, बर्बर, भाषा रहित, निर्वस्त्र और विवेकहीन। आर्य लोग ऋद्धि सहित और ऋद्धि रहित होते हैं। इनमें ऋद्धिसे परिपूर्ण जिनेश्वर और चक्रवर्ती होते हैं। वासुदेव, बलदेव, महाबल, चारण और विद्याधर आर्यकुलमें होते हैं। ऋद्धियोंसे रहित मनुष्य नाना प्रकारके होते हैं, जो लिपि और देशी भाषा बोलनेवाले और पण्डित होते हैं। जिन (अर्थात् अन्तिम तीर्थंकर महावीर) बहत्तर वर्ष जीवित रहते हैं, हजारसे अधिक वर्ष नारायण जीते हैं, उससे अधिकतर वर्ष बलभद्रका जीना कहा गया है। उससे सात सौ वर्ष अधिक चक्रवर्ती निश्चित रूपसे जीते हैं। जिन, नारायण और बलभद्रकी परम आयु चौरासी लाख वर्ष पूर्व होती है। कर्मभूमिमें उत्पन्न हुआ स्थिरकर मनुष्य एक पूर्वकोटि सामान्य जीवन जीता है। कोई मनुष्य पक्ष, मास, छह माह और एक वर्ष तथा कुछ दिन जीते हैं। शरीरके पसीने आदिसे उत्पन्न होनेवाले जो सम्मूर्च्छन जीव होते हैं, वे जल्दी मर जाते हैं। कुछ शरीर लेकर गर्भमें गल जाते हैं, दूसरे कुछ दिन जीवित रहकर मर जाते हैं। दूसरे नृसिंह (नरश्रेष्ठ) सवा पाँच सौ धनुष ऊँचे होते हैं, निकृष्ट रूपसे सात हाथ, चार हाथ, तीन हाथ और दो हाथ भी होती है। इससे भी छोटे कदके मनुष्य होते हैं, अत्यन्त लघु, बौने और कुबड़े।

घत्ता—सातवें नरकके विषम जीव सीधे मनुष्ययोनिमें उत्पन्न नहीं होते। जिस प्रकार ये, उसी प्रकार वायुकायिक और अग्निकायिक जीव भी सीधे मनुष्ययोनिमें जन्म नहीं लेते ॥९॥

१०

कोई तापस असह्य निष्ठाके कारण ज्योतिष और व्यन्तर भवनोंमें उत्पन्न होते हैं। आहिडक, परिव्राजक, ब्रह्म स्वर्गमें देव होते हैं और आजीवक सहस्रार स्वर्गमें उत्पन्न होते हैं। व्रत धारण करनेवाले तिर्यंच भी वहीं जाते हैं। सम्यक्त्वकी आराधना करनेमें तत्पर मनुष्य श्रावक व्रतोंके फलसे सोलहवाँ स्वर्ग प्राप्त करता है और दुःखसे विश्राम पाता है, लेकिन उसके ऊपर मुनिव्रतोंके बिना कोई भी अहमिन्द्रकी श्रीका भोग नहीं कर सकता। अपने चित्तमें शत्रु और मित्रके प्रति समता भाव धारण करनेवाले संयम और शुद्ध चारित्र्य और जिनलिंगसे, व्रतोंका भार धारण करनेवाले अजन्मा, ग्रैवेयक स्वर्गमें देव होते हैं, सम्यक्त्वसे प्रशस्त निर्ग्रन्थोंकी उत्पत्ति

णारउ मरिवि ण णारउ जायइ सुरु वि ण सुरु मुणिणाहु विवेयइ ।
अमरु ण णरयहु णारउ सग्गहु वच्चइ सविहिविहंसियमग्गहु ।
होइ तिरिक्खु वि चउगइगामिउ जिह तिह माणउ [5]दुक्खायामिउ ।
पमियावहुं तिरिवहुं तिरियत्तणु अविरुद्धउ मणुयहुं मणुयत्तणु ।
घत्ता—तिहिं गइहिं ण होंति मणुय तिरिक्ख सोक्खचुयहिं ॥
पलिओवमजीवि सग्गु लहंति [6]सइंभुवहिं ॥१०॥

११

संखाउस जे जीवाहारिय अण्णोण्णेण वियारिय मारिय ।
[1]सरिसव जंति पढम वीयावणि पक्खि तइय [2]वालुप्पह दुहखणि ।
पुहइ चउत्थी जंति [3]महोरय पंचमियहि केसरि [4]मयमारय ।
महिलउ [5]छट्ठहि वि [6]हुरक्कमियहि होंति मणुय मेच्छ वि सत्तमियहि ।
आयउ सव्वविहि लहइ णरत्तणु को वि अरिट्ठहि [7]देसवयत्तणु ।
णिग्गउ अंजणाहि किर णिव्वुइ को वि कहिं मि पावइ पंचमगइ ।
सेलहि वंसहि घम्महि आइउ होइ को वि तित्थयरु [8]महाइउ ।
णर तिरिया सलायपुरिसत्तणु णउ लहंति णिम्मलु जसकित्तणु ।
सव्वत्थ वि [9]माणुसु उप्पज्जइ एम पवत्तइ सुत्तु पउंजइ ।
राम उड्ढगइ सोक्खहु सामिय केसव सव्व अहोगइगामिय ।
घत्ता—पडिसत्तु कयंत णउ णारायण पीणकर ॥
णरयहु णिग्गिवि होंति ण हलहर चक्कहर ॥११॥

१२

तिहिं कायहिं णरत्तु ण विरुद्धउ तिरियत्तु वि जिणवुद्धें बुद्धउ ।
वायरपुहइ तोय [1]पत्तेयहं [2]देवं चवेवि होंति किर एयहं ।
णउ लहंति सुरणियर सतामस [3]पुण्णसिलोयत्तणु आजोइस ।
अक्खमि णरयवासु भीसावणु णाणादुक्खलक्खदरिसावणु ।
पढमासीयहिं [4]सिट्ठु सहासहिं पुणु बत्तीसहिं अट्ठावीसहिं ।
चउवीसहिं वीसहिं विहिं अट्ठहिं [5]अट्ठहिं णाणसहाउवइट्ठहिं ।
एम सहससंखाहिउ घणु भणु खरपंकयलक्खु जि मंदत्तणु ।
आयामु वि असंखु संखेवें पुहइहि पुहइहि अक्खिउ देवें ।

५. T दुक्खायासिउ । ६. MT सयंभुवहिं ।

११. १. P विमणस सरढ पढम° । २. K वालुयपह । ३. P महोयर । ४. MP मिगमारय; B मियमारय । ५. MBP छट्ठिहि । ६. MP हुरक्किमयहि । ७. K देसवइत्तणु । ८. P महावउ । ९. K माणउ सु ।

१२. १. B पत्तेय वि । २. M देवत्तणु वि होइ किर एयहुं; B होंति समागय देवत्तहु कि वि; P देवत्तणु ण होइ किर एयहं । ३. MBPT पुण्णसलायत्तणु । ४. B सिद्धु समासहिं । ५. MB केवलणाण°; M records a *p* अट्ठहिं for केवल° । ६. B omits this foot ; P reads it after 8 *b* । ७. MBP add after this : सोलह चोरासी सहस जि गुणु, एक्केक्कउ जि लक्खु रुंदत्तणु ।

सर्वार्थ-सिद्धि तक होती है। नारकीय मरकर नरकमें नहीं जाता। और देव मरकर देव नहीं बनता, यह विवेचन मुनिनाथ करते हैं। जीव नरकसे सीधे स्वर्ग नहीं जाता और स्वर्गसे नरक नहीं जाता। क्योंकि वे अपनी विधिसे मार्ग (पुण्य और पापका मार्ग) नष्ट करनेवाले होते हैं। तिर्यंच चारों गतियोंमें जानेवाला होता है, जिस प्रकार तिर्यंच, उसी प्रकार दुःखसे पीड़ित मनुष्य चारों गतियोंमें जा सकता है। सीमित आयुवाले तिर्यंचोंका तिर्यंचत्व और मनुष्योंका मनुष्यत्व अविरुद्ध है, अर्थात् एक दूसरेकी योनिमें जा सकते हैं।

घत्ता—सुखसे च्युत मनुष्य और तिर्यंच, अपने द्वारा उपार्जित पुण्यसे तीन गतियों (नरक, तिर्यंच और मनुष्य में उत्पन्न नहीं होते, एक पल्यके बराबर जीकर स्वर्ग प्राप्त करते हैं ॥१०॥

११

जो संख्यात आयुका जीवन धारण करनेवाले हैं और एक दूसरेको विदारित करते और मारते हैं ऐसे सरीसर्प पहले और दूसरे नरकमें जाते हैं। पक्षी दुःखकी खान तीसरे बालुकाप्रभ नरकमें जाते हैं। महोरग चौथे नरकमें जाते हैं। पशुओंको मारनेवाले सिंह पाँचवें नरकमें जाते हैं। महिलाएँ दुःखसे व्याप्त छठे नरक तक जाती हैं। म्लेच्छ और मनुष्य सातवें नरक तक जाते हैं। कोई छठे नरकसे आकर मनुष्यत्व प्राप्त करता है। कोई पाँचवें नरकसे आकर देशव्रत धारण करता है। कोई चौथे नरकसे आकर निर्वेदको धारण करता है। कोई मोक्ष गति प्राप्त करता है। तीसरे-दूसरे और पहले नरकसे आया हुआ कोई जीव, महान् तीर्थंकर होता है। मनुष्य और स्त्रियाँ निर्मल यश और कीर्ति तथा शलाकापुरुषत्वको प्राप्त नहीं कर सकते। मनुष्य सब कहीं उत्पन्न हो सकता है। सूत्र रूपमें यह बात कही जाती है। जितने राम (बलभद्र) हैं वे ऊर्ध्व गतिवाले और सुखके स्वामी हैं, जितने केशव (नारायण) हैं, वे नरकगामी हैं।

घत्ता—जो यमकी तरह प्रतिशत्रु हैं, (प्रति नारायण) और स्थूलकर नारायण नहीं हैं, वे नरकसे निकलकर हलधर और चक्रधर नहीं होते ॥११॥

१२

तीन कायिक (अर्थात् पृथ्वी, जल और वनस्पति कायिक) जीवोंके लिए मनुष्यत्व विरुद्ध नहीं है, और तिर्यंचत्व भी नहीं, ऐसा जिनबुद्धने ज्ञात किया है। पृथ्वी, जल और प्रत्येक वनस्पतिमें देव च्युत होकर जन्म ले सकते हैं। ज्योतिष पर्यन्त तामसिक देवसमूह शलाका-पुरुषत्वको प्राप्त नहीं कर सकता। अब मैं भीषण नरकावासका कथन करता हूँ जो भीषण और नाना प्रकारके लाखों दुःखोंको दिखानेवाला है। इनमें प्रथम नरकका विस्तार एक लाख अस्सी हजार योजन है। फिर क्रमशः बत्तीस हजार, अट्ठाईस हजार, चौबीस हजार, बीस हजार, सोलह हजार और आठ हजार योजन विस्तार है जो केवल ज्ञानियों द्वारा उपदिष्ट है। इस प्रकार

रयणसक्करप्पह वालुयपह   पंकप्पह धूमप्पह तमपह ।
अवर वि अंतिमिल्ल तमतमपह   णिच्चपउंजियबहुणारयवह ।
एयउ घणतमजालणिरुद्धउ   सत्त णरयधरणीउ पसिद्धउ ।
घत्ता—पुहईसु बिलाइं होंति सहावभयंकरइं ॥
घणतिमिरहराइं अगणियजोयणवित्थरइं ॥१२॥

१३

तीस पुणु वि पणवीस जि लक्खइं   पुणु पण्णारह दावियदुक्खइं ।
दह पुणु तिण्णि एक्कु पंचूणउं   लक्खु बिलाहं पंच अहिठाणउं ।
णारइयहं तहिं भत्थायरइं   दंसियहरिकरिरूववियारइं ।
महिमयाइं परिमउलियवत्तइं   हेट्ठामुहओलंबियगत्तइं ।
लोहकीलकंटालिकरालइं   दुग्गंधइं दुग्गमतिमिरालइं ।
एसु सुकिण्हणीललेसावस   उप्पज्जंति तिरिय अह माणुस ।
लेंति देहु सहसत्ति मुहुत्तें   वेउव्विउ णिउत्त हुंडत्तें ।
हवइ विहंगणाणु तहिं मेच्छहं   अवहिसहावें जिणमयदच्छहं ।
कालिंगालपुंजसंणिहयर   पयडियदंतपंति दट्ठाहर ।
विरइयभीमभिउडि रोसुब्भड   कबिलकेस परमारणकक्खड ।
जिह जिह ते मुणंति अप्पाणउं   तिह तिह तं तं संभवठाणउं ।
दाढाभीसणु मुहुं णिव्वायइ   अहवा पाउ किं ण किर घायइ ।
घत्ता—हेट्ठामुह झत्ति ते पडंति असिपत्तवणे ॥
सइं अण्णु हणंति अण्णहिं पडिहम्मंति रणे ॥१३॥

१४

णउ मज्झत्थु मित्तु उवयारिउ   जो जो दीसइ सो सो वइरिउ ।
खेत्तसहाउ तेत्थु किं भण्णइ   जं सुयकेवलिसमु वि ण वण्णइ ।
सूइणिह तणु दुच्चरु भूयलु   उण्हु सीउ दुद्धरु चंडाणिलु ।
जं करेण लेंतहुं जि मरिज्जइ   वइतरणीविसु विसु किं पिज्जइ ।
खंडियकरचरणाणणगत्तइं   रुक्खहं खग्गसमाइं पत्तइं ।
फलइं वज्जमुट्ठि व्व कढोरइं   वरि पडंति णिद्दलियसरीरइं ।
महिहरकुहरहिं विप्फुरियाणण   खंति विउव्वणाइ पंचाणण ।
कुहिणिउ जलणजालपज्जलियउ   जहिं वच्चइ तहिं खलयणु मिलियउ ।

---

८. MBP रयणप्पह सक्कर वालुप्पह । ९. B °भयंकरइं । १०. MB °वित्थरइं ।

१३. १. P विलासइं । २. MPT अहठाणउं; B अहिठाणइं । ३. M णरइयहं; BP णेरइयहिं । ४. B omits this foot. ५. omits this line. ६. P °कंटाल° । ७. P सुमरइ ठाणउं । ८. P कं ण । ९. MB अण्ण ।

१४. १. P दुत्तरु । २. MBP जें । ३. MBP कठोरइं । ४. M वर; P उवरि । ५. MBP महिकुहरंतरि ।

खर और पंकभाग (रत्नप्रभा नरक) का हजार अधिक एक लाख योजन पिण्डत्व (विस्तार) है। प्रत्येक भूमिका असंख्य आयाम है, जिसे देवने संक्षेपमें कहा है। रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और भी अन्तिम तमतमःप्रभा है जिसमें नित्य नारकीयोंका वध किया जाता है। इस प्रकार ये अत्यन्त सघन तमजालसे निबद्ध सात नरकभूमियाँ प्रसिद्ध हैं।

घत्ता—इन भूमियोंके बिल स्वभावसे भयंकर होते हैं, सघन अन्धकारोंके घर अगणित योजनोंके विस्तारवाले होते हैं ॥१२॥

१३

इनके क्रमशः, तीस और फिर पच्चीस लाख और फिर दुःख देनेवाले पन्द्रह लाख, फिर दस लाख, तीन लाख, फिर पाँच कम एक लाख अर्थात् निन्यानबे हजार नौ सौ पंचानबे, और अन्तिम नरकके पाँच बिल होते हैं। इनमें नारकीय जीव भस्त्राकारके होते हैं, सिंहों और हाथियोंके रूपोंका विदारण दिखाते हुए। जहाँ राजाओंके मुख सब ओरसे बन्द हैं, अधोमुख लटके हुए शरीरवाले। लोहेकी कीलों और काँटोंसे भयंकर। दुर्गन्धित और दुर्गम अन्धकारसे भरे हुए। इनमें अत्यन्त कृष्ण लेश्याके कारण मनुष्य या तिर्यंच उत्पन्न होते हैं। सहसा एक मुहूर्तमें शरीर धारण करते हैं, जो हुंडक आकार वैक्रियक शरीर होता है। वहाँ अवधिज्ञानके स्वभावसे जिनमतका उच्छेद करनेवाले म्लेच्छोंका विभंगज्ञान होता है। काले अंगारोंके समूहके समान काले, दाँतोंको प्रगट करनेवाले और ओठोंको चबानेवाले, अपनी भौंहें भयंकर करनेवाले और क्रोधसे उद्धत, कपिल बालोंवाले और दूसरोंको मारनेमें कठोर। जिस प्रकार वे अपने बारेमें सोचते हैं, उस प्रकार वह स्थान उनके लिए उत्पन्न हो जाता है। दाढ़ोंसे भयंकर अपना मुँह फाड़ते हैं, अथवा पाप किसका क्या घात नहीं करता।

घत्ता—अधोमुख होकर वे शीघ्र असिपत्रपर गिर पड़ते हैं। स्वयंको मारते हैं, दूसरेको मारते हैं और युद्धमें दूसरेके द्वारा मारे जाते हैं ॥१३॥

१४

उनका कोई मध्यस्थ या उपकार करनेवाला मित्र नहीं होता। जो-जो दिखाई देता है वह दुश्मन होता है। वहाँके क्षेत्रस्वभावको क्या कहा जाय ? जो श्रुतकेवलीके समान है, उसके द्वारा भी वर्णन नहीं किया जा सकता। सुईके समान तृण हैं और चलनेमें कठिन धरती। उष्ण शीत और प्रचण्ड पवन। जिसे हाथमें लेने मात्रसे जीव मर जाता है, वैतरणी नदीका ऐसा वह जल, विष है, उसे क्या पिया जा सकता है। जहाँ वृक्षोंके पत्ते हाथ पैर मुख और शरीरको खण्डित कर देनेवाले तलवारके समान हैं। जिनके फल वज्रकी मूठकी तरह कठोर हैं। शरीरको चूर-चूर कर देनेवाले वे ऊपर गिरते हैं। पहाड़ोंकी गुफाओंमें से तमतमाते हुए मुखवाले विक्रियासे निर्मित सिंह खा जाते हैं। जहाँके मार्ग अग्निज्वालाओंसे प्रज्वलित हैं, वह जहाँ जाता है, उसे दुष्ट

ण्हाइ जहिँ जि तहिँ दुमियपिंडइं[6] पूयरुहिरकिमिभरियइं कोंडइं[7] ।
बिहिँ तिहिँ पंचहिँ पीडिवि धरियहु ण्हायहु पूयदहहु णीसरियहु ।
घत्ता—उक्कत्तिवि तासु दिज्जइ कंत्ति[8] णियासणउं ।
आयसवलयाइं सिहितावियइं[9] विहूसणउं ॥१४॥

१५

पेच्छइ जहिँ[1] जि तहिँ जि जमसासणु बइसइ जहिँ जि तहिँ जि सूलासणु ।
भुंजइ जहिँ जि तहिँ जि दुग्गंधइं णीरसाइं फरुसाइं विरुद्धइं ।
आहरियइं पुग्गलइं अकामहु असुहत्तेण जंति परिणामहु ।
णिसुणइ जहिँ जि तहिँ जि दुव्वयणइं फंसइ जहिँ जि तहिँ जि खरसयणइं ।
जं चक्खइ तं तं विरसिल्लउ जं चिंतइ तं तं मणसल्लउ ।
जं अग्घायइ तं कुणिमंगउ[2] णारयखेत्ति[3] णउ काइं मि चंगउ ।
उद्धसासु[4] अइखासु जलायरु अच्छिकुच्छिसिरवियण महाजरु ।
संभवंति दुक्कियहलगेहइ सव्वउ वाहिउ णारयदेहइ ।
घत्ता—अणुमीलणु[5] कालु सोक्खु ण लब्भइ किं पि जहिँ ।
सारीरउं[6] दुक्खु काइं कहिज्जइ राय तहिँ ॥१५॥

१६

हउं णारायणु पडिणारायणु हउं महिवइ होंतउ सुहभायणु ।
एम भणंतु कयंतु व कुप्पइ माणसिएं दुक्खें संतप्पइ ।
दाणवणिवहहिँ पडिचोइज्जइ जुज्झमाणु सो एम भणिज्जइ ।
तुहुं अणेण चिरभवि सरदारिउ वरमहिमहिलाकारणि मारिउ ।
विंझमहागिरिगेरुयपिंजरु सीहें एण हयउ तुहुं कुंजरु ।
पक्खि एण गिलिउ तुहुं विसहरु महिसें णेण दलिय तुहुं अयवरु ।
अविरलखरणहरेहिँ णिरुद्धउ वग्घेणेण हरिणु तुहुं खद्धउ ।
हणु हणु एहु एम पच्चारिउ णं वाएण जलणु संचारिउ ।
जुज्झइ णारउ णारय गोंदलि णिवडमाणु कोंतासणि[1] सव्वलि ।
घत्ता—कंपणकणएहिँ[2] लंगलमुसलहिँ रिउ दलइ ।
णियदेहु जि ताहं पहरणरूवहिँ परिणमइ[3] ॥१६॥

---

६. MBPT दुम्मिय° । ७. MBP कुंडइं । ८. MBP कित्ति । ९. MBP °तावियउं ।

१५. १. P जहिँ तहिँ जि । २. MBP कुणियंगउ । ३. MB णरयखेत्ति । ४. MBP उद्धखासु ।
५. BP अणुमीलणकालु । ६. MBP सारीरिउ ।

१६. १. MBP कुंतासणि । २. MBPK कप्पण°, but GT कंपण° । ३. MP परिणवइ ।

मिलता है। जहाँ वह स्नान करता है वहीं पीप रुधिर और कीड़ोंसे भरे हुए कुण्ड और पीड़ित शरीर मिलते हैं। दो तीन पाँच व्यक्तियों द्वारा पीड़ित कर वह पकड़ लिया जाता है और पीपके सरोवरसे नहाकर (उसे)—

घत्ता—काटकर चमड़ेका परिधान दिया जाता है। तपाये हुए लोहेके कड़े, उसके आभूषण होते हैं ॥१४॥

१५

वह जहाँ देखता है, वहीं यम शासन है। जहाँ बैठता है वहींपर शूलासन है। जहाँ भोजन करता है, वहीं दुर्गन्ध है। नीरस कठोर और विरुद्ध। जो चखता है वह विरस लगता है, जो सोचता है वही मनकी चिन्ता बन जाता है। जो सूँघता है वह बुरी गन्धवाला होता है, नारकीय क्षेत्रमें कुछ अच्छा नहीं होता। ऊर्ध्व श्वास, अति खाँसना, जलोदर, आँखों, पेट और सिरका दर्द तथा महाज्वर ये सब होते हैं। पापोंके फलोंके घर नारकीयकी देहमें सब कुछ व्याधि है।

घत्ता—पलक मारनेके समय तकका भी सुख जहाँ नहीं मिलता, हे राजन्, वहाँ शरीरके दुःखका क्या वर्णन किया जाय ? ॥१५॥

१६

"मैं नारायण हूँ, मैं प्रतिनारायण हूँ, मैं सुखभाजन राजा हूँ" ऐसा कहते हुए उसपर यम क्रुद्ध हो जाता है; और वह मानसिक दुःखसे सन्तप्त हो उठता है। दानव समूहके द्वारा वह प्रेरित किया जाता है और युद्ध करते हुए; उससे उस प्रकार कहा जाता है, 'तुम्हारा इसके द्वारा सिर फाड़ा गया था; श्रेष्ठ महिला और धरतीके लिए मारे गये थे। इस सिंहके द्वारा विंध्य महागिरिके गैरिक (गेरु) से पिंजर तुम गज मारे गये थे। तुम विषधर इस गरुड़के द्वारा निगले गये थे। तुम अश्ववर इस भैंसेके द्वारा विदीर्ण हुए थे। बाघके द्वारा उसके अविरल नखोंसे तुम हरिण खाये गये थे। इस प्रकार तुम इसको मारो मारो, वह इस प्रकार बोला, मानो वायुने ज्वालाको प्रज्वलित कर दिया हो। नारकीयोंको लड़ाईमें नारकीय लड़ते हैं और भालोंके आसन तथा सब्बलों पर गिरते हैं।

घत्ता—कप्पण कमक (?) हलों और मूसलोंसे वह शत्रुको नष्ट करता है। उसका शरीर उन अस्त्रोंके रूपोंमें परिणमित हो जाता है ॥१६॥

१७

अण्णें अण्णु सुसेल्लें[1] सल्लिउ अण्णें अण्णु मुसुंढिइ[2] पेल्लिउ ।
अण्णें[3] अण्णु तिसूलें भिण्णउ अण्णें अण्णु रहंगें छिण्णउ ।
अण्णें अण्णु हुआसणि घित्तउ अण्णें अण्णु पसु व्व विहित्तउ[4] ।
अण्णें अण्णु खुरुप्पें खंडिउ अण्णें अण्णु वियारिवि छंडिउ ।
अण्णहु अण्णें खग्गु विहाइउ तहु केरउ जि मासु तहु ढोइउ ।
लेइ[5] लइ एवहिं काइं णिरिक्खहि मृग[6] वराय मारिवि किं भक्खहि ।
तउ अउ तंबउ सीसउ ताविउ अण्णहु मज्जु भणेप्पिणु दाविउ ।
पिवसु पिवसु अरहंतु ण याणइ चंगउ कउलु तुज्झु वक्खाणइ ।
घत्ता—उम्मग्गें जंति ण णिवारिय णिद्धम्ममइ ॥
परघरिणि रमंति जिह पइं रमिय णिबद्धरइ ॥१७॥

१८

अग्गिवण्ण तत्तिय[1] अइरत्ती लोहविणिम्मिय णं तुह रत्ती ।
तिह एवहिं आलिंगहि माणिणि एह करिंदकुंभपीणत्थणि ।
मण्णिवि णवजोव्वण परवाली अवरुंडहि सामरि कंटाली ।
खेत्तुब्भउ माणसु[2] तणुजायउ असुरोईरिउ अण्णोण्णायउ ।
एउ एम पावोहें लइयहं पंचपयारु दुक्खु णारइयहं ।
तेत्थु ण णारि ण पुरिसु सुयंसउ णग्गउ णिंदु असेसु णउंसउ ।
पढमहि पुढविहि[3] णारयगत्तइं भयधणुतिरयणिछंगुलमेत्तइं ।
बीयहि पण्णारस[4] दोवारहं धणुरयणिउ अंगुलइं वियारहं ।
घत्ता—भवहरदेहाउ पहरंतहु रणि रणरणइ ॥
गरुयारउ होइ णारयदेहु विउव्वणइ ॥१८॥

१९

तइयहि एक्कतीसधणुतुंगइं एक्करयणि भणु कयदुरियंगइं ।
चोत्थियाहि रयणीदुयजुत्तइं[1] धुउ चावइं बासट्ठि पउत्तइं ।
पंचमियहि धणुसउ पणवीसउ वड्ढिउ वउ आवइ आभीसउ ।
छट्टियाहि चावेंहं[2] जिणभणियइं दोण्णि सयइं पण्णास जि गणियइं ।
देहुच्छेहु दुहोहदुग्गमियहि[3] पंचसयाइं होंति[4] सत्तमियहि ।
एक्कु पहिल्लइ दुक्खियदुज्जइ जलहिपमाणइं तिण्णि दुइज्जइ ।

१७. १. MBP सुसेल्लें । २. MBP मुसंढिइ । ३. MBP read this line as अण्णें अण्णु रहंगें छिण्णउ, अण्णें अण्णु तिसूलें भग्गउ । ४. MBP विहत्तउ । ५. MP लइ तइ एवहिं । ६. MBP मिग ।
१८. १. MBP तत्ती । २. MBP माणुस । ३. MBP पुहरहि । ४. MBP पण्णारह ।
१९. १. B रयणीअजुत्तइं । २. MBP चावइं । ३. B °दुग्गमियहि । ४. PK होइ ।

१७

एकके द्वारा दूसरा सेलसे पीड़ित किया गया, एकके द्वारा दूसरा भुशुण्डिसे ठेला गया। एकके द्वारा दूसरा त्रिशूलसे छेद दिया गया। एकके द्वारा दूसरा चक्रसे काट दिया गया। एकके द्वारा दूसरा आगमें फेंक दिया गया, एकके द्वारा दूसरा पशुके समान काट दिया गया। एकके द्वारा दूसरा खुरपेसे खण्डित कर दिया गया, एकके द्वारा दूसरा विदीर्ण करके छोड़ दिया गया है। एकके द्वारा दूसरा तलवारसे विभक्त कर दिया गया और उसीका मांस उसे खानेको दिया गया कि लो-लो, इस समय क्या देखते हो, तुमने बेचारे पशुओंको मारकर क्यों खाया था? तप्त लोहा, तांबा, और सीसा तपाया गया, और एक दूसरेके लिए मद्यके रूपमें दिखाया कि पियो पियो, तूँ अरहन्तको नहीं जानता, तुम्हारा कौल सुन्दर व्याख्यान देता है।

घत्ता—धर्महीन मति खोटे मार्गपर जाते हुए तुमने अपना निवारण नहीं किया। और जिससे तुमने रति बाँधकर दूसरीकी स्त्रीका रमण किया है ॥१८॥

१८

अग्निवर्णा, संतप्त अत्यन्त लाल लोहेसे बनी हुई। मानो यह तुममें अनुरक्त हो। गजराजके कुम्भके समान पीन स्तनोंवाली मानिनीका आलिंगन करो, नवयौवना परबाला मानकर इस कटीली शाल्मलीका आलिंगन करो। क्षेत्रसे उत्पन्न मानसिक शरीरसे उत्पन्न असुरोंसे प्रेरित और अन्यके द्वारा उन्नमित पाँच प्रकारका दुख पापोंके समूहसे गृहीत नारकीयोंको होता है। वहाँ न नारी है, न पुरुष है, और न सुन्दर शरीरावयव है, नंगा, निन्दनीय और अशेष नपुंसक। प्रथम भूमिमें नारकीयका शरीर सात धनुष तीन हाथ और छह अंगुलका होता है। दूसरी भूमिमें पन्द्रह धनुष छह हाथ और बारह अंगुल होता है।

घत्ता—अरतिजनक युद्धमें जन्मको धारण करनेवाली देहसे प्रहार करते हुए विक्रियाके द्वारा नारकीयका शरीर भारी हो जाता है॥१८॥

१९

तीसरी भूमिमें इकतीस धनुष एक हाथ और दो अंगुल ऊँचा शरीर होता है। चौथी भूमिमें बासठ धनुष और दो हाथ ऊँचा। पाँचवीं भूमिमें पच्चीस धनुष ऊँचा शरीर·········छठी भूमिमें जिनेन्द्र भगवान्‌के द्वारा कथित दो सौ पचास धनुष ऊँचाई होती है। दुःखके समूहसे दुर्गम सातवीं भूमिमें शरीरकी ऊँचाई पाँच सौ धनुष होती है। दुष्कुलोंसे अजेय पहले नरकमें एक सागर प्रमाण

तिज्जइ णरइ सत्त चोत्थइ दह सायराइं पंचमि सत्तारह ।
छट्ठइ पुणु बावीस ण रहियइं सत्तमि तीस तिअहियइं कहियइं ।
घत्ता—कंदंत कणंत महिहि घुलंत सुहंतरिय ॥
जीवंति हयास णारय तिलु तिलु कप्परिय ॥१९॥

२०

ते जियंति अहमेण अरम्महि फुडु दहवरिससहासइं घम्महि ।
जं घम्महि [1]उत्तिमु तं वंसहि आउ जहण्णउं दलियसुहंसहि ।
जं वंसहि उत्तिमु तं सेलहि आउ जहण्णउं रउर[2]वरोलहि ।
जं सेलहि उत्तिमु णिद्दिट्ठउ अंजणाहि तं किर णिकिट्ठउ ।
जं अंजणाहि परमु पवियप्पिउ तं जि अरिट्ठहि अहमु वियं[3]प्पिउ ।
जं जि अरिट्ठहि किर परमाउसु तं मघविहि देसिउ अचिराउसु ।
जं पूरउ मघविहि दुहतवियहि तं आसण्णु मरणु माघवियहि ।
विकिरियासरीरविण्णासइं होंति[4] अहोहो दीहावासइं ।
होंति[5] अहोहो रुंदइं विवरइं होंति अहोहो मंदइं तिमिरइं ।
होंति अहोहो रणइं दुवेक्खइं[6] होंति अहोहो तिव्वइं दुक्खइं ।
घत्ता—जुज्झंतहं ताहं पहरणकोडिहिं णिद्दलिय ॥
तणुलव लग्गंति सूं[7]यलवा इव संमिलिय ॥२०॥

२१

अक्खमि सुर दहवसुपंचविह वि सोलह दु णव पंचविह पुणरवि ।
एयहिं रयणप्पहहिं धरित्तिहि[1] विवरंतरि बहुरइरसथत्तिहि ।
असुर[2]वरहं चउसट्ठि समक्खइं णायघरहं चउरासीलक्खइं ।
बाहत्तरि[4] लक्खाइं सुवण्णहं भवणहं भूरिभासमा[3]इण्णहं ।
दीवसमुद्दथणियतडिणामहं आसाणलकुमारवरधामहं ।
एक्केक्कहु लक्खाइं छहत्तरि अक्खइ एम मयणमयकेसरि ।
लक्खइं णवइ लेसाहिय धीरहं आवासाहं समीरकुमारहं ।
कोडिउ सत्त दुहत्तरि लक्खइं पिंडीकयइं होंति पच्चक्खइं ।
भावणभवणइं एम पउत्तइं चउ[5]दह सोलह सहस णिरुत्तइं[6] ।
भूयरक्खसावासविसेसइं वीणावेणुपणवणिग्घोसइं ।
अवराइं मि प[7]विमलसिरिहारइं वणगयणयलजलहिसरतीरइं[8] ।
वेंतर[9]णयरइं [10]अयरमणीयइं होंति गणंतहं संखाईयइं ।

२०. १. MBP उत्तमु and also elsewhere in this kadavaka. २. P °लोलहि। ३. MBP पयंपिउ । ४. B omits this foot. ५. B omits this line. ६. MBP दुपेक्खइं । ७. P पारलवा ।
२१. १. MBP घरत्तिहि । २. MBP असुरघरइं । ३. MBP °भाइण्णहं । ४. M बहत्तरि । ५. K चोद्दह । ६. K णिउत्तइं । ७. MB परिमल° । ८. MBP सरितीरइ । ९. MBP वितर° । १०. MBP अइ°; K अय° but eorrects it to अइ° ।

आयु होती है, दूसरेमें तीन सागर, तीसरे नरकमें सात सागर, चौथे नरकमें दस सागर, पाँचवें नरकमें सत्तरह सागर, छठे नरकमें बाईस सागर प्रमाण रहते हैं और सातवें नरकमें तैंतीस सागर प्रमाण आयु होती है।

घत्ता—आक्रन्दन करते, चिल्लाते हुए सुखसे रहित नारकीय जीव हताश होकर जीते हैं, और तिल-तिल एक दूसरेको काट देते हैं ॥१९॥

२०

वे नारकीय उस असुन्दर घर्मा धरतीमें जघन्य आयुसे दस हजार वर्ष जीवित रहते हैं। जो घर्माभूमिकी उत्तम आयु है वह सुखोंके आशयोंको नष्ट करनेवाली वंशाभूमिकी जघन्य आयु है। जो वंशाभूमिकी उत्तम आयु है वह रौरव ध्वनियोंसे युक्त मेघाकी जघन्य आयु है। जो मेघाकी उत्तम आयु बतायी गयी है वह अंजनाकी निकृष्ट आयु है। जो अंजनाकी उत्तम आयु कही गयी है वह अरिष्टाकी उत्तम आयु कही गयी है। जो आयु अरिष्टाकी उत्तम है वही मघवीकी अचिरायु (जघन्य) कही गयी है। दुःखसे सन्तप्त मघवीकी जो पूरी (उत्कृष्ट) आयु है, वह माघवी नरकभूमिमें आसन्नमरण (जघन्य आयु) है। इस प्रकार (ऊपरसे) नीचे-नीचे विक्रिया शरीरकी रचना और दीर्घ आयुवाले बिल होते जाते हैं। नीचे-नीचे बड़े-बड़े बिल होते हैं, नीचे-नीचे सघन अन्धकार हो जाता है। नीचे-नीचे दुर्दर्शनीय युद्ध होता है। नीचे-नीचे तीव्र दुःख होता है।

घत्ता—युद्ध करते हुए उनके करोड़ों शस्त्रोंसे दलित शरीरकण, मिले हुए पारद कणोंकी तरह प्रतीत होते हैं ॥२०॥

२१

मैं दस, आठ, पाँच, सोलह, दो, नौ और फिर पाँच प्रकारके देवोंका वर्णन करता हूँ। प्रचुर रतिरसकी स्थितिवाली इस रत्नप्रभा भूमिके विवरके भीतर (खर और पंक भागमें) अवधिज्ञानियों या सर्वज्ञोंके लिए प्रत्यक्ष असुरवरोंके चौसठ लाख एवं नागकुमारोंके चौरासी लाख भवन हैं। सुपर्णकुमारोंके प्रचुर आभासे व्याप्त बहत्तर लाख, द्वीपकुमारों, उदधिकुमारों, स्तनितकुमारों, विद्युत्कुमारों, दिक्कुमारों और अग्निकुमारोंके नौ लाख साठ हजार भवन हैं। इस प्रकार भवनवासियोंके कुल मिलाकर सात करोड़ बहत्तर लाख प्रत्यक्ष भवन हैं। भवनवासी देवोंका इस प्रकार कथन किया गया है। भूतों और राक्षसों, वीणा, वेणु और प्रणवके निर्घोषोंसे युक्त सोलह और चौदह हजार आवास विशेष होते हैं। दूसरे विशिष्ट तथा विमल लक्ष्मीको धारण करनेवाले देव वन, आकाशतल, समुद्र और सरोवरोंके किनारोंपर निवास करते हैं। व्यन्तरोंके सुन्दर निवास गिनती करनेपर संख्यातीत हैं।

घत्ता—जोयण सय सत्त अण्णु वि णवइ मुएवि धर।
णहि जोइसवास ते णरलोयहु उवरिचर ॥२१॥

२२

अद्धकविट्ठसरिससंठाणइं संखारहियइं होंति विमाणइं।
पंचवण्णरयणावलिखइयइं बोहल्लत्तें[1] पुणरवि रइयइं।
जोयणसइं[2] खेत्तम्मि दहोत्तरि अयलइ माणुसलोयहु बाहिरि।
अवरइं[3] लंबियघंटायारें थियइं असंखदीववित्थारें।
बत्तीस जि लक्खइं सोहम्मइ अट्ठावीसीसाणि सुरम्मइ।
दुदहँ[4] सणकुमारि माहिंदइ अट्ठलक्ख परिभमियसुरिंदइ।
अत्थि विमाणहं उवणियसोक्खइं बंभि सबंभुत्तरि[5] चउलक्खइं।
पण्णास जि लंतवि काविट्ठइ[6] सहसइं होंति जिणाहिवसिट्ठइ।
सुक्कमहासुक्कइ चालीस जि छह सयारसहसारहिं सहस जि।
आणय पाणय आरण अच्चुय चउकप्पहिं सत्तसय[7] संथुय।
हेट्ठिमगेवज्जइ एयारह अवरु वि सउ सुरपवरागारहं।
सत्तुत्तरु मज्झिमहि भणिज्जइ णवइ एक्कु उवरिमहि गणिज्जइ।
णव जि णउत्तरि पंचाणुत्तरि पंच विमाणइं सोक्खणिरंतरि।
चउरासीलक्खाइं णिकेयहं सत्ताणउदीसहासइं[8] एयहं।
एक्कीकयइं ण लेक्खि[9] विरुद्धइं [10]अण्णु वि तेवीसइं[11] लइ लद्धइं।

घत्ता—गेहहं तुंगत्तु बिहिं कप्पहिं कवडेण विणु।
जोयणहं सयाइं छडुमाणइं वज्जरइ[12] जिणु ॥२२॥

२३

पंचसयाइं बिहिं मि उवरिल्लहिं चउ अड्ढे[1] जि बिहि ताहं पहिल्लहिं[2]।
उप्परि बिहिं चत्तारि सउद्धइं घरइं वरइं णाणामणिणिद्धइं।
पण्णासयइं तिण्णि बिहिं अक्खमि सयइं तिण्णि पुणु बिहिं जि णिरिक्खमि।
पुणु चउकप्पहं हम्मुच्छेहउ अड्ढाइज्जसयाइं सरेहउ[3]।
पुणु[4] दुइ दुइं दियड्ढ[5] पुणरवि सउ पुणु पण्णास समीरिउ उच्छउ।
पुणु उद्धत्तें उवरि विमाणइं पंचवीसजोयणइं पहाणइं।
सव्वट्ठहु चूलिय लंघेप्पिणु बारहजोयणाइं जाएप्पिणु।
तम्मि तिलोयहु सिहरि णिसण्णी पणयालीसलक्खवित्थिण्णी।

---

२२. १. MBPT वाहालत्तें पर ण वि and gloss in T परेण न विरचितानि केनापि। २. MBP जोयणसय°। ३. K अवरें। ४. MBP दोदह सणकुमारि। ५. MBP सुबंभोत्तरि। ६. P कापिट्ठइ। ७. MBP सत्तसयइं। ८. MP सत्ताणवदि°। ९. MBP लेक्खविरुद्धइं। १०. P अण्णु वि पुणु तेबीसइं लद्धइं। ११. K तेवीस जि लइ। १२. K वज्जरिइ।

२३. १. MBP अद्ध। २. MBP पइल्लहिं। ३. MBP सुरेहउ; K सुरेहउ but corrects it to सरेहउ। ४. MBP पुणु। ५. MBP दिवड्ढु।

घत्ता—आकाशमें सात सौ नब्बे योजनकी ऊँचाईपर ज्योतिषदेवोंका वास है। ये मनुष्य-लोकके ऊपर विचरण करते हैं ॥२१॥

२२

इनके आधे कवीट (कपित्थ) के समान आकारवाले संख्याहीन विमान होते हैं जो पाँच प्रकारकी रंगावलियोंसे विजड़ित और प्रचुरतासे निर्मित एक सौ दस योजनके पटलक्षेत्रमें, मनुष्यलोकके बाहर अतल लोकमें स्थित हैं। दूसरे विमान (वैमानिक देवोंके विमान) लम्बे घण्टोंके आकारवाले तथा असंख्य द्वीपोंमें विस्तारवाले जिनचैत्य हैं। सौधर्म स्वर्गमें बत्तीस लाख, सुन्दर ईशान स्वर्गमें अट्ठाईस लाख, सनत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गमें (जिनमें इन्द्र परिभ्रमण करते हैं) क्रमशः बारह लाख और आठ लाख, ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें सुखपूर्ण चार लाख, लान्तव और कापिष्ठ स्वर्गमें पचास हजार जिन-चैत्यघर हैं। शुक्र और महाशुक्रमें चालीस हजार, शतार और सहस्रारमें छह हजार होते हैं; आनत और प्राणत स्वर्गों तथा आरण-अच्युतमें सात सौ कहे जाते हैं।[1] अधोग्रैवेयकमें एक सौ ग्यारह, मध्य ग्रैवेयकमें एक सौ सात, ऊर्ध्व ग्रैवेयकमें इक्यानबे, नौ अनुदिशोंमें नौ और सुखसे निरन्तर भरपूर पाँच अनुत्तरोंमें पाँच (चैत्यगृह हैं)। इस प्रकार चौरासी लाख सन्तानबे हजार तेईस निकेतन हैं। इनको एकीकृत करनेमें विरोध नहीं है।

घत्ता—बिना किसी प्रकारके कपटके जिन भगवान् कहते हैं कि दोनों स्वर्गोंकी ऊँचाई सात सौ योजन है ॥२२॥

२३

ऊपरके दो स्वर्गोंकी पाँच सौ योजन, उनसे पहलेके स्वर्गोंकी साढ़े चार सौ योजन, उसके ऊपरके विमानोंकी चार सौ योजन ऊँचाई है, जिनमें नाना मणियोंसे स्निग्ध श्रेष्ठ विमान हैं। उनके ऊपरके तीन स्वर्ग साढ़े तीन सौ योजन ऊँचे हैं। उसके ऊपरके विमान तीन सौ योजन ऊँचे देखता हूँ। फिर चार कल्पस्वर्गके विमान शोभासहित अढ़ाई सौ योजन ऊँचे हैं, फिर दो-दो सौ योजन, फिर दोका आधा, सौ योजन, फिर उनकी ऊँचाई पचास योजन है। फिर उसके ऊपर प्रधान विमान पचास योजन ऊपर हैं। सर्वार्थसिद्धिकी चूलिकाको लाँघकर बारह योजन जाने-

१. ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर ४ लाख (क्रमशः १९००० + १०४०००), लौकान्तिक और कापिष्ठ (क्रमशः २५०४२ + २४५८ = ५०००) शुक्र-महाशुक्र (२००२० + १९९८०) शतार और सहस्रार (३०१९ + २९८१) आणत-प्राणत आरण और अच्युत (पहले दो ४४० + अन्तिम दो २६० = ७००)।

ससहरहिमणिहछत्तायारी सिद्धथत्ति भव्वयणपियारी ।
जोयणाइं जोइय णीसल्लें अट्ठमपुहइ अट्ठ [6]बाहल्लें ।

घत्ता—सविमाणहु मज्झि [7]सयणि महारुहि समयमणु ॥
उववादसहावे भिण्णमुहुत्तें लेंति तणु ॥२३॥

२४

मउडेहिं हारेहिं केऊर[1]दोरेहिं ।
कंचीकलावेहिं मंजीररावेहिं ।
भूसा[2]पहासेहिं अइसुरहिसासेहिं ।
वेउव्वियंगेहिं लक्खणपसंगेहिं ।
चउरंसठाणेहिं माणवणिवाणेहिं ।
[3]अणमिसहिं णयणेहिं ससिसो[4]म्मवयणेहिं ।
विच्छिण्ण[5]तावेण पुण्णप्प[6]हावेण ।
कणयं व गयलेव [7]जायंति खणि देव ।
णक्खाइं चम्माइं ण सिराउ रोमाइं ।
रत्ताइं पित्ताइं ण पुरीसमुत्ताइं ।
मीसियउ मासाइं ण वलासकेसाइं ।
मत्थिक्कसुक्काइं णउ अत्थि वोक्काइं ।
सोहग्गगेहम्मि देवाण देहम्मि ।
उवहरकवाडाइं सइं होंति वियडाइं ।
हरिसेण वग्गंति सहस त्ति णिग्गंति ।
सुरजोणिसंपुडहु मणिकिरणपायडहु ।
जय देव देविंद जय णाह [8]चिरु णंद ।
एवं पघोसंति परियणइं तूसंति ।
सव्वहिं मि तणुमाणु उद्दिट्ठु जिणणाणु ।

घत्ता—असुरहं पणवीस दह सेसाहं सवेंतरहं ॥
देहहु दीहत्तु सत्त जि धणु जोइससुरहं ॥२४॥

२५

बिहिं रयणीउ सत्त बिहिं छह भणु [1]पुणु बिहिं पंच समुण्णउ सुरयणु ।
पुणु चउहुं मि चत्तारि जि गीयउ पुणरवि आहुट्ठ जि बिहिं णीयउ ।
तिण्णेव य रयणिउ सवियप्पहिं दहपंचमसोलहमयकप्पहिं ।
दो पुण अड्ढ पढमगेवज्जहि मज्झरिथयहि दोण्णि [2]जगपुज्जहि ।

---

६. MBP बाहुल्लें । ७. MPT सयणु ।

२४. १. P ˚डोरेंहि । २. P ˚पसाहेंहि । ३. MBP अणिमिसहिं । ४. MBP सोम˚ । ५. MBP ˚तावेंहि । ६. MBP ˚प्पहावेंहि । ७. MK जायंत । ८. M णिरु ।

२५. १. MBP पुणु चहुं; T पुंणु बिहि । २. MBP जगि पुज्जहि ।

पर वहाँ त्रिलोकके ऊपर शिखरपर स्थित पैंतालीस लाख योजन विस्तीर्ण चन्द्रमा और हिमके समान छत्राकार भव्यजनोंके लिए प्यारी सिद्धोंकी भूमि अर्थोंसे प्रचुर आठवीं पृथ्वी है।

घत्ता—अपने विमानके भीतर अत्यन्त मूल्यवान् शयनमें एक समयसे लेकर उपपाद स्वभावसे जो भिन्न मुहूर्तमें शरीर ग्रहण कर लेता है ॥२३॥

२४

उसमें मुकुटों, हारों, केयूरों, दोरों, कांचीकलापों, मंजीर शब्दों, वेशभूषाके प्रसाधनों, अतिसुरभित साँसों, वैक्रेयक शरीरों, लक्षण प्रसंगों, समचतुरस्र संस्थानों, मानवी आकारों, अपलक नेत्रों, चन्द्रमाके समान सौम्य मुखों और सन्तापशून्य पुण्य प्रभावोंसे स्वर्णके समान विकारसे रहित देव एक क्षणमें उत्पन्न होते हैं। सौधर्म स्वर्गके देवोंके शरीरमें नखचर्म और सिरमें रोम नहीं होते। न रक्त न पित्त, और न पुरीष और न मूत। न मसें न मांस और न दाढ़ी केश होते हैं। न उनके मस्तिष्कमें शुष्कता होती है और न कलेजा (यकृत) होता है। उनके वासगृहोंके किवाड़ स्वयं खुल जाते हैं। (इस प्रकार) मणिकिरणोंसे आलोकित देवयोनि-विमानोंसे देव अचानक निकल पड़ते हैं और हर्षसे उछलने लगते हैं, 'हे देव-देवेन्द्र, आपकी जय, हे स्वामी, आपकी जय। आप प्रसन्न हों" यह घोषणा करते हैं और परिजनोंको सन्तुष्ट करते हैं। इन सबके शरीरोंका मान जिनज्ञानके द्वारा निर्दिष्ट है।

घत्ता—भवनवासियोंमें असुरकुमारोंकी ऊँचाई पच्चीस धनुष और व्यन्तरों सहित शेष देवोंके शरीरकी ऊँचाई दस धनुष तथा ज्योतिष देवोंके शरीरकी सात धनुष है ॥२४॥

२५

(वैमानिक देवोंमें) सौधर्म और ईशान इन दोनों स्वर्गोंमें शरीरकी ऊँचाई सात हाथ, सनत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गमें छह हाथ, फिर ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर, लान्तव और कापिष्ठ स्वर्गोंमें पाँच हाथ ऊँचे देवजन होते हैं। शुक्र, महाशुक्र, शतार और सहस्रार स्वर्गमें चार हाथ, और फिर आनत और प्राणत स्वर्गमें साढ़े तीन हाथ होते हैं; आरण और अच्युत इन दो स्वर्गोंमें तीन हाथ। प्रथम ग्रैवेयक (अधोग्रैवेयक) के विमानोंमें (३) ढाई हाथ; विश्वपूज्य मध्यम ग्रैवेयकके विमानोंमें

होइ दियड्ढ रयणि उवरिल्लहि अमरबोंदि[3]परिमाणु सुहिल्लहि ।
णव पंचाणुत्तरहं मि सारउ एक्कु[4] जि रयणि पउत्तु सरीरउ ।
अणिमामहिमालघिमापत्तिहिं ईसत्तणवसित्तगइ[5]सत्तिहिं ।
जुत्तकामरूवें कामाउर कीलालोललील सय[6]रामर ।
णउ खुज्जय वा[7]मण वड हुंडय णारी पुरिस जि णउ ते पं[8]डय ।
आईसाणकप्पसंभवणउं जावच्चुउ ता देविहिं गमणउं ।
भावणाइं णाणातणुधारा आईसाण [9]कप्पपडिचारा ।
घत्ता—फासें पडिचारु सणकुमारमाहिंदरुह ।
रूवेण करंति उवरिम चउकप्पय विबुह ॥२५॥

२६

पुणु चउकप्पसमुब्भव सुरवर होंति सद्दपडिचार सुहंकर ।
वरि चउकप्पहिं मणपडियारा एत्तो उवरिम णिप्पडियारा ।
सप्पडियार णिएवि अणिंदहु अ[1]तुलसोक्खु णिहिलहु अहमिंदहु ।
अहमिंदहु पासाउ जिणिंदहु गयरायहुं तिरा[2]यवइवंदहु ।
कहमि आउ तियसहं सुहसंगमु असुर जियंति एक्कु सायरसमु ।
णायहुं पल्लइं तिण्णि वियाणसु वणदेवहुं पल्लु जि परमाउसु ।
अड्ढाइज्ज पल्ल सोवण्णहं दीवहं दोण्णि पुं[3]ण्णपरिपुण्णहं ।
सेसहं होइ दिवड्ढु णिरुत्तउ चंदु जियइ लक्खें संजुत्तउ ।
एक्कु पल्लु सहुं सहसें वरिसहुं जीवइ दिणयरु वड्ढियहरिसहुं ।
एक्कु जि सुक्कु सएण समेयउ तारारिक्खहुं ऊणउ णेयउ ।
पंच सत्त पुणु णव एयारह तेरह पण्णारह सत्तारह ।
एक्कुण एक्कवीस तेवीस वि पंचवीस भणु सत्तावीस वि ।
च[4]उत्तीसेक्कताल अड[5]दाल वि पंचावण्ण जि पल्लइं जगरवि ।
सोहम्माइहिं भणइ सतिलयहं आउ [6]अच्चुयंतहं सुरविलयहं ।
घत्ता—बे सत्त दसेव चो[7]द्दहठारह वि ॥
वीस जिं बावीस [8]उड्ढ एक्कु वड्ढिमु क[9]ह वि ॥२६॥

२७

ताम जाम तेत्तीसे[1]समुद्दइं सव्व[2]ट्ठम्मि आउ कयभद्दइं ।
कप्पहं कप्पाईयइं एहउ अक्खमि णाणविसेसु वि जेहउ ।
सक्कीसाणहं अवहि पधावइ जाम पढम[3]महिमंतु विहावइ ।

३. MBP परमाणु । ४. MBP एक्क । ५. MB °मइसत्तहिं । ६. MBP सयलामर । ७. MBP वावण । ८. M संढय । ९. MBP कायपडि° ।

२६. १. MBPK अतुलु । २. MB णिराय° । ३. MBP पल्ल परिपुण्णहं । ४. MBP चउतीसे° । ५. MBP अडताल । ६. P सच्चुयंतहं । ७. MBP चउदह छद्दह अट्ठारह । ८. MBP उद्धु एक्कु । ९. K कहमि ।

२७. १. MBP तेतीस° । २. MBPT सव्वट्ठहंमि । ३. MBP °महिअंतु ।

दो हाथ। ऊपरके अर्थात् अन्तिम ग्रैवेयकके तीन सुखद विमानों और (अनुदिशों) के देवसमूहका परिमाण डेढ़ हाथ, विजयादिक पाँच अनुत्तर विमानोंका श्रेष्ठ शरीर एक हाथ प्रमाण कहा गया है। अणिमा, महिमा, लघिमादि शक्तियाँ ईशित्व, वशित्व और गतिशक्तिके द्वारा, युक्त कामरूपसे आतुर समस्त देव क्रीड़ासे चंचल लीलावाले होते हैं। वे कुबड़े, वामन, न्यग्रोध संस्थानवाले और हुंड (विकलावयववाले) नारी-पुरुष और नपुंसक नहीं होते। च्युति (च्यवन) पर्यन्त देवांगनाओं-के साथ गमन आदि ऐशान स्वर्ग तक सम्भव है। नाना शरीर धारण करनेवाले भवनवासी देवोंसे लेकर ईशान स्वर्ग तक शरीरसे कामसेवन किया जाता है।

घत्ता—सनत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गमें स्पर्शसे कामसेवन होता है; उससे ऊपरके चार स्वर्गों (पाँचवेंसे आठवें स्वर्ग तक) में देव रूप देखकर कामकी शान्ति करते हैं ॥२५॥

२६

फिर चार स्वर्गों (नौवेंसे लेकर बारहवें तक) में शुभ शब्द-कामसेवन होता है। उसके बाद चार स्वर्गों (१६वें स्वर्ग तक मनके विचारोंसे कामसेवन होता है। यहाँसे ऊपरके देव कामसे रहित होते हैं। कामको नियन्त्रित कर अनिन्द्य निखिल अहमिन्द्रोंको अतुल सुख होता है। अहमिन्द्रोंकी तुलनामें गतराग और त्रिभुवनपतियों द्वारा वन्दनीय जिनेन्द्रका सुख होता है। देवोंको सुखका संगम करानेवाली आयुका कथन करता हूँ। असुर एक सागरके बराबर जीते हैं। नागकुमारोंको तीन पल्य आयु जानो। व्यन्तर देवोंकी उत्कृष्ट आयु एक पल्य ही है। सुपर्ण-कुमारोंकी आयु ढाई पल्य होती है। पुण्यसे परिपूर्ण द्वीपकुमारोंकी दो पल्य होती है। और शेषकी डेढ़ पल्य होती है। चन्द्रमा एक लाख वर्ष अधिक एक पल्य जीवित रहता है। सूर्य हर्षको बढ़ाने-वाले एक हजार वर्ष अधिक एक पल्य जीवित रहता है। सौ वर्ष अधिक एक पल्य शुक्र जीता है, ताराओं और नक्षत्रोंकी कुछ कम एक पल्य (अर्थात् नक्षत्रोंकी आधा पल्य, तारोंकी चौथाई पल्य) जानो। फिर सौधर्मादि स्वर्गोंके प्रत्येक युगलमें क्रमशः सौधर्म-ऐशानमें कुछ पाँच सागर (अधिक दो-सागर) सानत्कुमार-माहेन्द्र स्वर्गमें सात सागर, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरमें नौ (दस), लान्तव और कापिष्ठमें ग्यारह (चौदह), शुक्र-महाशुक्रमें तेरह (१६ सागर), शतार और सहस्रारमें पन्द्रह (अठारह), आनत-प्राणतमें सत्रह (बीस), आरण और अच्युतमें उन्नीस (बाईस), चौंतीस, इकतालीस, अड़तालीस सागर और पचपन पल्य आयु होती है। इस प्रकार विश्वसूर्य जिन भगवान् सौधर्म आदि स्वर्गोंकी वनिताओं और अच्युतादि स्वर्गोंकी देवांगनाओंकी आयुका कथन करते हैं।

घत्ता—दो, सात, दस, चौदह, अठारह, बीस, बाईस, उससे एक ऊपर कुछ अधिक ॥२६॥

२७

वहाँ तक कि जहाँ तक, सर्वार्थसिद्धिमें कल्याण करनेवाले देवोंकी तैंतीस सागर आयु है। कल्प और कल्पादिक स्वर्गके देवों जैसा ज्ञान विशेष है, वैसा कथन करता हूँ। सौधर्म और ईशान स्वर्गके देवोंके अवधिज्ञानकी गति वहाँ तक है कि जहाँ तक पहली भूमि घर्माका अन्त है। फिर

पुणु दोसग्ग देव बीयहि तलु पेच्छंति वि जाणंति वि णिम्मलु।
भणु चउकप्प तियस तइयावणि चउसंभूय चउत्थी मेइणि।
आणयपाणय सुर पंचमियहि आरणच्चुयामर छँट्ठमियहि।
णव गेवज्ज मुणंति महंतउ ताम जाम सत्तमणरयंतउ।
सुद्धइ ओहिइ अणुदिस सुंदर तिजँगणाडि पेक्खंति अणुत्तर।
उप्परि णियविमाणचूडामणि जा ता देव मुणंति महागुणि।
पंचवीस जोयणइं वणेसहं संखाजुत्तइं जोइसवासहं।
अवँरु वि हवँइ ओहि कयसमरहं गणियउ जोयणकोडिउ असुरहं।
जिह असुरहं तिह रिक्खँहं तारहं चंदहं सूरहं गुरुअंगारहं।
सुक्कहु पुणु मंइं अक्खिउ भल्लउ [10]संखाहिउ ओहिविसउल्लउ।

घत्ता—णारय वि मुणंति जोयणेक्कं[11] रयणप्पहहि ॥
गाउय अद्धद्धु होइ हाणि सेसहि[12] महिहि ॥२७॥

२८

कम्माहारु असेसहं जीवहं णोकम्माहरु वि भवभावहं।
लेवाँहारु वि दीसइ रुक्खहं कवलाहारु णरोहतिरिक्खहं।
ओजाँहारु पक्खिसंघायहं मणभोयणु चउदेवणिकायहं।
अहमिंद वि करंति तेत्तीसहिं वोलीणहिं वरवरिससहासहिं।
वत्तीसेक्कँत्तीस पुणु तीसहिं एक्कुणतीसहिं अट्ठावीसहिं।
एक्केक्कउ जि एम पडिहँम्मइ सोलँहमे बावीसहि जिम्मइ।
आउँणिबंध महोवहिसंखहिं णीससंति तेत्तियहिं जि पक्खहिं।
पल्लजीवि पुणु भिण्णमुहुत्तें णीससंति अँह ताहं पुहत्तें।
ऊससंति केइँ वि पक्खेण जि असुर असंति अहिय सहसेण[10] जि।
सरसइं सुरहियाइं अइमिट्ठइं सुहुमइं सुद्धइं णिद्धइं इट्ठइं।
आहरंति दवियाइं सइत्तें परिणमंति सहस त्ति तणुत्तें।

घत्ता—संसारिय जीव चउविह चउगइभिण्ण जिह ॥
इंदियभेएण पंचपयार पउत्त तिह ॥२८॥

---

४. K छमियहि। ५. P ते जिगणाडी। ६. MBP अवर। ७. P वहइ। ८. MB तिक्खहं। ९. MBP सइं। १०. MP संखाई ओहीविसयल्लउ; B संखाईउ ओहिविसयल्लउ। ११. MBP जोयणेक्कु। १२. M णीसेसहि।

२८. १. B लोवाहारु। २. MBPK ओजाहारु। ३. MBP तेतीसहिं। ४. MBP °सेक्कतीस। ५. MBP पविहम्मइ। ६. MBPK सोलहमइ। ७. MBP आउ णिबद्धु। ८. MBP पुणु। ९. MBP केइ जि पक्खेण वि। १०. MBP सहसेण वि।

दो स्वर्गके देव (सानत कुमार और माहेन्द्र) दूसरी नरकभूमि तक निर्मल देखते हैं और जानते हैं, फिर चार स्वर्गके देव (ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव और कापिष्ठ), तीसरी भूमि फिर चार स्वर्गोंसे सम्भूत (शुक्र, महाशुक्र, सतार, सहस्रार) देव चौथी भूमि, आणत-प्राणत स्वर्गके देव पाँचवीं धरतीको, आरण-अच्युत स्वर्गके देव छठी भूमि तक जानते हैं। नौ ग्रैवेयकके महान् देव वहाँ तक जानते हैं जहाँ तक सातवाँ नरक है। अनुदिशके सुन्दर देव त्रिजगकी नाड़ीको अपने शुद्ध अवधि-ज्ञानसे जान लेते हैं। महागुणवान् अनुत्तरदेव ऊपर, अपने विमानके शिखर तक जानते हैं। व्यन्तर देवोंका अवधिज्ञान पच्चीस योजन तक जानता है। ज्योतिषदेवोंका अवधिज्ञान संख्यायुक्त होता है; और भी युद्ध करनेवाले असुरदेवोंका अवधिज्ञान एक करोड़ योजन होता है। जिस प्रकार असुरोंका उसी प्रकार नक्षत्रों और तारों, चन्द्रों, सूर्यों, गुरु और मंगल ग्रहोंका। शुक्रका भी मैंने संख्याधिक विशेष अवधि बताया।

घत्ता—नारकीय भी रत्नप्रभा भूमिमें एक योजन तक देख लेते हैं, शेष भूमिमें आधी-आधी गव्यूतिकी हानि होती है ॥२७॥

२८

कर्मका आहार सब जीवोंके लिए होता है, शरीरयुक्त जीवोंका नोकर्मका आहार (छह पर्याप्तियों और तीन शरीरोंके योग्य पुद्गलोंका ग्रहण) होता है। लेपाहार वृक्षोंमें भी दिखाई देता है। मनुष्यों और तिर्यंचोंका कवलाहार होता है। औद्य आहार पक्षीसमूहका होता है। चारों देव-निकायोंका मानसिक आहार होता है। अहमिन्द्र भी क्रमशः तैंतीस हजार उत्तम वर्ष बीत जानेपर मानसिक आहार ग्रहण करते हैं। फिर बतीस, इकतीस, तीस, उनतीस, अट्ठाईस, बाईस और सोलह हजार वर्षोंमें देव (भूखसे) आहत होते हैं और आहार (मानसिक) ग्रहण करते हैं। जितने सागरोंकी संख्यामें उनकी आयु होती है, उतने ही पक्षोंमें वे निश्वास लेते हैं। पल्यजीवी देव एक भिन्न मुहूर्तमें अथवा भिन्न मुहूर्तोंमें तीन मुहूर्तोंसे ऊपर और नौ मुहूर्तोंके नीचे, कभी, निश्वास लेता है। कोई एक पक्षमें श्वास लेते हैं। असुर एक हजार वर्षमें भोजन करते हैं। सरस-सुरभित अत्यन्त मीठा सूक्ष्म शुद्ध स्निग्ध इष्ट जो द्रव्य चित्त खाये जाते हैं वे शीघ्र ही शरीररूपमें परिणत हो जाते हैं।

घत्ता—संसारी जीव जिस प्रकार चार गतियोंसे भिन्न होनेके कारण चार प्रकारके होते हैं, उसी प्रकार इन्द्रियभेदसे पाँच प्रकारके होते हैं ॥२८॥

२९

काएं [1]छव्विह चवलथिरेण वि तिविह तिविहजोएं वेएण वि ।
जलणिहिविह[2] वि कसाएं[3] जाया अट्ठभेय-णाणें विण्णाया ।
संजमदंसणेण तिचउव्विह लेसापरिणामेण वि छव्विह ।
भव्वत्तेण विविह सम्मत्तें सण्णि असण्णी[4] दो सण्णित्तें ।
आहारें आहारिय जे जे चउसु वि गइसु परिट्ठिय ते ते ।
केवलिसमुहय विग्गहगइगय अरुह अजोइ सिद्ध परमप्पय ।
ते ण लेंति आहारु वियारिय सेस जीव जाणहि आहारिय ।
मग्गणठाणइं चोद्दह[5]भेयइं णिसुणहि गुणठाणाइं मि एयइं ।
मिच्छादिट्ठि[6] पहिल्लउं गीयउं सासणु बीयउं मीसु वि तीयउं ।
अविरयसम्माइट्ठि चउत्थउं पंचमु विरयाविरउ पसत्थउ ।
छट्ठउ पुणु पमत्तसंजमधरु[7] सत्तमु अप्पमत्तु गुणसुंदरु ।
अट्ठमु होइ अउव्वु अउव्वउं अणियट्टिल्लउ[8] णवमु अगव्वउं ।
दहमउं सुहुमराउ जाणिज्जइ एयारहमुवसंतु भणिज्जइ ।
बारहमउ [9]परिखीणकसायउ तेरहमउ सजोइजिणु जायउ ।
उज्झियतिविहसरीरभरंतरु उवरिल्लउं अजोइ परु अक्खरु ।

घत्ता—णारय चत्तारि चत्तारि जि पुणु सुरपवर ॥
तिरियंच वि पंच णीसेसम्मि[10] चउंति णर ॥२९॥

३०

कम्मविहम्ममाण ससरीरा सासयकरणुज्जय विवरेरा ।
दंसणणाणसहावपहट्ठा होंति जीव उक्किट्ठणिकिट्ठा ।
ताहं चेट्ठ जा होइ समासम सा तहलियगहणभावक्खम ।
जेम तेल्लु सिहिसिहपरिणामहु तेम कम्मपोग्गलु[1] वि णिसामहु ।
जीवें लइयउ जाइ जियत्तहु[2] तिव्वकसायरसेहिं पमत्तहु ।
जिह सिहिभावहु वड्ढइ इंधणु तिह कम्मेण जि कम्महु बंधणु ।
असुहें असुहु सुहें सुहु संधइ सिद्धभडारउ[3] किं पि ण बंधइ ।
अभव जीव जिणणाहें इच्छिय एक्कु ण ते वि अणंत णियच्छिय ।
मइसुओहि[4]मणपज्जव केवल णाणावरणविमुक्क सुणिक्कल[5] ।
णिद्दाणिद्दा पयलापयला थीणगिद्धि णिद्दा पुणु पयला ।

---

२९. १. MBP छव्विह थिरेण तसेण वि; T चवलछिरेण चपलस्वभावानां स्थिरपृथिव्यादीनाम् । २. MBP °विह व । ३. MB कसायं । ४. MBP असण्णि दोण्णि । ५. MBPK चउदह° । ६. MBPK मिच्छाइट्ठि । ७. MBP °संजमहरु । ८. MBP अणियट्टिल्लउं णवउं । ९. MBP परिहीण° । १०. MBP णीसेसहं मि ।

३०. १. MBP कम्मु पोग्गलु । २. MB जाय जियत्तहु; P जियंतहु । ३. MBP सिद्धु भडारउ; K सिद्धभडारउ but corrects it to सिद्धु । ४. MBP °सुइओहि° । ५. MBP सुणिम्मल ।

२९

जीव चपल और स्थिर स्वभाववाले योगसे छह प्रकारका, तीन प्रकारके योगों और वेदों (पुल्लिग आदि) से तीन प्रकारका और कषायोंसे चार प्रकारका होता है। ज्ञानसे उसके आठ भेद हैं। संयम और दर्शनसे तीन और चार भेद हैं, लेश्याओंके परिणामसे भी छह प्रकार हैं। भव्यत्व और सम्यक्त्वके विचारसे दो-दो भेद हैं (भव्य-अभव्य, सम्यक्दृष्टि-असम्यग्दृष्टि), संज्ञासे संज्ञी और असंज्ञी दो भेद हैं। जो-जो शरीरसे आहार ग्रहण करनेवाले हैं, वे चारों गतियोंमें प्रतिष्ठित हैं। समुद्घात[1] करनेवाले और विग्रहगतिमें जानेवाले अर्हन्त, अयोगी सिद्ध, परमात्मा होते हैं, वे आहार ग्रहण नहीं करते। शेष जीवोंको आहारिक समझना चाहिए। मार्गणा और गुणस्थानोंसे भी जीवके चौदह भेद होते हैं। अब इन गुणस्थानोंको सुनिए—इनमें मिथ्यादृष्टि पहला गाया जाता है। सासन—सासादन दूसरा, मिश्र तीसरा, अविरत (असंयत) सम्यक् दृष्टि चौथा, देश-संयत पाँचवाँ। प्रमत्त संयम धारण करनेवाला छठा। गुणोंसे सुन्दर अप्रमत्त सातवाँ, अपूर्व-अपूर्वकरण आठवाँ, गर्वरहित अनिवृत्तिकरण नौवाँ, सूक्ष्म-साम्परायको दसवाँ समझना चाहिए, उपशान्त कषाय ग्यारहवाँ कहा जाता है। परिक्षीणकषाय बारहवाँ कहा जाता है, तेरहवाँ संयोग-केवली कहा जाता है, तीन प्रकारके शरीरभारसे रहित (औदारिक, तैजस और कार्मण) सबसे ऊपर अयोगकेवली परम सिद्ध होता है।

घत्ता—चार प्रकारके नारकीय होते हैं, और देव भी चार प्रकारके। तिर्यंच पांचवें गुणस्थानों तक चढ़ सकते हैं। मनुष्य समस्त गुणस्थानोंमें चढ़ सकता है ॥२९॥

३०

कर्मोंसे आहत होकर संसारी जीव, शाश्वत परिणामोंमें उद्यत होते हुए भी विपरीत आचरणवाला हो जाता है। इस प्रकार दर्शन, ज्ञान और स्वभावसे प्रमृष्ट जीव उत्कृष्ट और निकृष्ट दो प्रकारके होते हैं। और इससे जो उनकी सम-विषम चेष्टाएँ होती हैं जीव उस प्रकारके भावोंको ग्रहण करनेमें सक्षम होता है। (तरह-तरहके कर्मपरिणामोंको ग्रहण करता है)। जिस प्रकार तेल, आग और उसकी ज्वालाओंके अनुसार परिणमन करता है, उसी प्रकार कर्म पुद्गल भी भावोंके अनुरूप परिणमन करते हैं। इस प्रकार तीव्र कषायोंके रसोंसे प्रमत्त जीवनको यह जीव धारण करता है, जिस प्रकार इंधन अग्निभावको प्राप्त होता है, उसी प्रकार कर्मसे कर्मका बन्धन होता है। अशुभकर्मसे अशुभकर्मका और शुभकर्मसे शुभकर्मकी सन्धि होती है परन्तु सिद्ध भट्टारक कुछ भी बन्धन नहीं करते। जिननाथके द्वारा अभव्यजीव भी चाहे (सम्बोधित किये) जाते हैं, वे एक नहीं, अनेक देखे जाते हैं। मति श्रुति अवधि मनःपर्यय तथा केवलज्ञाना-वरण। केवलज्ञान जो अत्यन्त निष्कल और नाना आवरणोंसे मुक्त है। निद्रा, अनिद्रा, प्रचला

१. दण्ड-कपाट-प्रतर-पूरणके द्वारा जब केवली त्रैलोक्यका भरण करते हैं उस समय वह अनाहारक होते हैं।

चक्खुअचक्खुदंसणावरणउ अवही केवलदंसणवरणउ।
तेहिं विणासिउ णवसंखायउ वेयणीयदुगु सायासायउं।
दंसणमोहणीउ सम्मत्तु वि मिच्छत्तु वि सम्मामिच्छत्तु वि।
दुविहु चरित्तमोहु विक्खायउ णोकसाउ णामेण कसायउ।
तं कसायजायउ सोलहविहु इयरु भणेसमि पच्छइ णवविहु।
पढमकसायचउक्कु सुभीसणु सत्तमणरयगामि दिहिदूसणु।

घत्ता—अइकोहु समाणु माया लोहु वि दुत्थयरु[7]॥
उवसमहुं ण जाइ जइ वि पबोहइ तित्थयरु॥३०॥

३१

अवरु अपच्चक्खाणु गुरुक्कउ पच्चक्खाणु चउक्कु[1] विमुक्कउ।
संजलणु वि जलंतु उल्हाविउ[2] थीपुंसंढराउ [3]उड्डाविउ।
[4]भयरइयरइदुगुंछउ जित्तउ हासु वि [5]सहुं सोएण णिहित्तउ[6]।
सुर णर [7]णरय तिरिय चउआउ वि बायालीसविहेयउं णाउं वि।
गइणामउ वि [8]जाईणामु वि भणु तणुणामउं पुणु तणुहि णिबंधणु।
तणुसंघाउ तणुहि संठाणउं [9]तणुअंगोअंगु वि णामाणउं।
तणुसंघडणु[10] [11]वण्णगंधिल्लउं रसणामउं अवरु वि फासिल्लउं।
[12]आणुपुव्वि अगुरुलहु लक्खिउ उवघाउ वि परघाउ वि अक्खिउ।
ऊसासु वि [13]आदावुज्जोयउ अण्णु विहायगइ वि तसकायउ।
थावरु थूलसुहुमु पज्जत्तउ अण्णु वि मण्णिउं [14]अप्पज्जत्तउ।
पत्तेयंगणाउं साहारणु थिरु अथिरु वि सुहणाउं सकारणु।
असुहु सुभगु दुब्भगु सुसरिल्लउ दुस्सरु आदेज्जउ जगि भल्लउ।
णाउं अणादेज्जउ जसकित्ति वि तित्थयरत्तु णिमिणु मलकित्ति वि।

घत्ता—चउगइजम्मेण गइणामउं अट्ठद्धविहु॥
इंदियइं गणेवि जाइणामु भणु पंचविहु॥३१॥

३२

हणिवि पंच णामइं पंचविहइं एक्कु तिभेयउ दो[1] दो दुविहइं।
दो छह पुणु दो चउ अट्ठविहइं उब्बारुयइं जाइं एक्कविहइं।
समलामलइं दोण्णि जगि गोत्तइं ताइं मि जेहिं दूरि परिचत्तइं।
दाणभोयउवभोयणिवारउ वीरियलाहु हेउसंघारउ।

---

६. MBP °दंसणहरणउं। ७. K दुक्खयरु but corrects it to दुत्थयरु।

३१. १. MBP चउक्क। २. P उण्हाविउ। ३. MBPT उद्दाविउ। ४. MBP भइरइअरइं°। ५. MBP सह। ६. P विहित्तउ। ७. P णिरय। ८. MBP जाइणाउं। ९. MBP तणुअंगोवंगु वि णिम्माणउ। १०. K संधदणु। ११. P वण्णु गंधिल्लउ। १२. MBP अणुपुव्विय अगरुगलहु। १३. MBP आदा-उज्जोयउ। १४. MB अप्पज्जत्तउ।

३२. १. M दो पुण दुविहइं। २. MBP °लाह°; K लाहु but corrects it to लाह।

अप्रचला, स्त्यानगृद्धि, निद्राप्रचला, चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरण उन्होंने नष्ट कर दिया। सातावेदनीय और असातावेदनीयके दुर्गको, दर्शनमोहनीय (सम्यक्त्व प्रकृति, मिथ्यात्व प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति), चारित्र मोहनीय दो प्रकारका विख्यात है (कषाय वेदनीय और नोकषाय वेदनीय) उसमें कषाय वेदनीय सोलह प्रकारका है, और दूसरेका, जो नौ प्रकारका है, मैं बादमें वर्णन करूँगा। पहला जो कषाय चक्र (अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ) है, वह भाग्यके लिए दूषण और सातवें नरकका कारण है।

घत्ता—अत्यन्त क्रोध, मान, माया और लोभ भी अत्यन्त दुस्तर होता है। वह उपशमको प्राप्त नहीं होता, भले ही तीर्थंकर उसको सम्बोधित करें ॥३०॥

३१

दूसरा अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभकषाय भी भारी होती है। प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया और लोभ भी चार हैं। उन्होंने जलते हुए-से ज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभको भी शान्त कर दिया। स्त्रीत्व और पुरुषत्वके भावको उड़ा दिया। भय, रति, अरति, जुगुप्साको उन्होंने जीत लिया। शोकके साथ हास्यको भी समाप्त कर दिया। सुर, नर, नरक और तिर्यंच इन चार आयु कर्मोंको भी और बयालीस भेदवाले नाम कर्मको भी, गतिनाम और जातिनाम, शरीरनाम और शरीरसंरचना, शरीर संस्थान, शरीर अंगोपांग और निर्माण, शरीरका बन्धन, वर्ण-गन्ध, रस-स्पर्श, आनुपूर्वी, अगुरुलघु भी लक्षित किया। उपघात और परघात भी कहा गया। उच्छ्वास, आतप, उद्योत, विहायोगति, त्रसकाय, स्थावर, स्थूल, सूक्ष्म, पर्याप्त और भी अपर्याप्त माना जाता है। प्रत्येकशरीर, साधारण शरीर, स्थिर-अस्थिर, सकारण शुभ-अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर और दुस्वर। आदेय भी जगमें भला होता है, अनादेय यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति और तीर्थंकरत्व।

घत्ता—चार गतियोंमें जन्मके नामसे गति नामकर्म आठका आधा चार होता है। इन्द्रियोंके लेनेसे जाति नामकर्म पाँच प्रकारका है ॥३१॥

३२

इस प्रकार पांच प्रकारके पांच नामों [अर्थात् (१) औदारिक आदि पाँच शरीरोंका संघात, (२) कृष्ण-नील-पीतादि पाँच वर्ण, (३) कटु-तिक्त आदि पाँच रस, (४) औदारिकादि शरीर-निबन्ध, (५) औदारिकादि पाँच शरीर, औदारिक वैक्रियक और आहारक शरीरके अंगोपांग (एकके त्रिभेद) दो प्रकार दो (सुभग, दुर्भग, प्रशस्त, अप्रशस्त), दो छह, (समचतुरस्र, वल्मीक न्यग्रोध कुब्ज वामन हुंड संस्थान और वज्रर्षभनाराच, वज्रनाराच, नाराच असंप्राप्त अस्पृष्ट आदि संघट्टन), दो-चार (नरकादि गतियाँ और गत्याद्यनुपूर्वियाँ), आठ प्रकार (कर्कश-मृदु-गुरु-लघु, शीतोष्ण-स्निग्ध-सूक्ष्म और स्पर्श नाम), की प्रकृतियाँ जो नाम उच्चारण करनेपर एक-एक प्रकारकी हैं। संसारमें गोत्र भी ऊँच-नीच दो प्रकारका है, जिनको उन्होंने दूरसे त्याग दिया है। दान भोग उपभोगका निवारण करनेवाला, वीर्य और लाभके कारणोंका संहार करने-

अंतराउ पंचविहु धुणेप्पिणु अडयालीसउं सउ वि[3]हुंणेप्पिणु ।
पयडिहिं माणवंगु मेल्लेप्पिणु सु[4]द्धसहाउ स[5]इंभु लहेप्पिणु ।
जे गय[6] जीव परमणिव्वाणहु दु[7]हविरहिहु सासयठाणहु ।
चरमसरीरमाण किंचूणा ववगयरोयसोय अविलीणा ।
णिम्मल णिरुवम णिरहंकारा जीवदव्वघण णाणसरीरा ।
उ[8]ड्ढंगमणसहावें गंपिणु उड्ढलोउ सयलु वि लंघेप्पिणु ।
अ[9]ट्ठमपुहईवट्ठि णिविट्ठा अभव जीव जिणदेवें दिट्ठा ।

घत्ता—ते साइ अणाइ दुविह अणंत जि विविहदुहे ॥
ते पुणु ण मरंति णउ पडंति संसारमुहे ॥३२॥

३३

णउ बाल णउ वुड्ढ णउ मुक्ख सुवियड्ढ ।
णी[1]साव णित्ताव[2] णिग्गाव णिप्पाव ।
णाणंग णिम्मेह णिण्णेह णिद्देह ।
णिक्कोह णिल्लोह णिम्माण णिम्मोह ।
णिव्वेय णिज्जोय णीराय णिब्भोय ।
णिद्धम्म णिकम्म णिच्छम्म णिज्जम्म ।
णीराम णिक्काम णिब्बाह णिद्धाम ।
णिव्वेस णिल्लेस णिग्गंध णिप्फास ।
णीरस महाभाव णीसद्द णीरूव ।
अव्वत्त चिम्मेत्त णिच्चिंत णिव्वित्त ।
ण छुहाइ घेप्पंति ण तिसाइ छिप्पंति ।
ण रु[3]याइ झिज्जंति ण रईइ सिज्जंति ।
णाहारु भुंजंति[4] ओसहु ण जुंजंति ।
ण मलेण लिप्पंति ण जलेण धुप्पंति ।
णिद्दं ण गच्छंति अ[5]णयणा वि पेच्छंति ।
अमणा वि जाणंति सयरायरं झत्ति ।
सिद्धाण जं सोक्खु तं कहइ चम्मक्खु ।
किं माणवो को वि सु[6]रु खयरु देवो वि ।

घत्ता—पंचिंदियमुक्कु परमप्पइ हू[7]यउं विमले ।
जं सिद्धहं सोक्खु तं ण[8] वि कासु वि भुवणयले ॥३३॥

---

३. MBP विहुणेप्पिणु । ४. B सिद्धसहाउ । ५. MBP सयंभु । ६. MB गय परम जोव । ७. MBP दुक्खविमुक्कहु । ८. K उड्ढें गमणु । ९. K अट्ठमि ।

३३. १. P णीसास । २. MBP णीताव । ३. MBP रुवाइ । ४. B भुंजंति; P हुंजंति and gloss योजयन्ति । ५. MBP अणयण जि । ६. MBP सुरु । ७. MBP हूयइ । ८. MBP णउ ।

वाले पाँच प्रकारके अन्तरायको नष्ट कर, इस प्रकार एक सौ अड़तालीस प्रकृतियोंको ध्वस्त कर, प्रकृतियोंसे मानवशरीरको मुक्त कर, स्वयम्भू शुद्ध स्वभाव प्राप्त कर, जो जीव दुःखसे विरहित शाश्वत स्थानमें गये हैं, वे चरमशरीरी किंचित् न्यून, रोग-शोकसे रहित सिद्ध स्वरूप नहीं छोड़ते हुए निर्मल अनुपम निरहंकार जीव द्रव्यसे सघन और ज्ञानशरीरी, ऊर्ध्वगमन स्वभावसे जाकर समस्त ऊर्ध्वलोकको लांघकर आठवीं धरतीकी पीठ (मोक्षपीठ) पर आसीन हो गये, ऐसे अजन्मा जीवोंको जिन भगवान्‌ने देख लिया।

घत्ता—अनन्त वे आदि और अनादिके भेदसे दो प्रकारके विविध दुःखवाले संसारके मुखमें फिरसे नहीं पड़ते, उनकी मृत्यु नहीं होती ॥३२॥

३३

वहाँ न बालक हैं, न वृद्ध, न मूर्ख हैं और न पण्डित हैं, जो शाप और तप रहित। गर्व और पापसे रहित, काम और इन्द्रियबोधसे शून्य, देहचेतना और स्नेहसे रहित, क्रोध और लोभसे रहित, मान और मोहसे रहित, वेद और योगसे रहित, नीराग और निर्भोग, निर्धर्म-निष्कर्म, क्षमा और जन्मसे रहित, स्त्री और कामसे रहित, बाधा और घरसे रहित, द्वेष और लेश्यासे दूर, गन्ध-स्पर्शसे शून्य, नीरस महाभाववाले, शब्द और रूपसे हीन, अव्यक्त चिन्मात्र, निश्चिन्त निर्वृत्त, जो भूखसे ग्रहण नहीं किये जाते, जो प्याससे नहीं छुए जाते, जो रोगोंके द्वारा क्षीण नहीं होते और न रतिसे दुःखको प्राप्त होते हैं। आहार नहीं लेते, औषधिका प्रयोग नहीं करते। मलसे लिप्त नहीं होते और न जलसे धुलते हैं, नींदको प्राप्त नहीं होते, जो बिना आँखोंके भी देखते हैं, बिना मनके जान लेते हैं, शीघ्र ही सचराचर विश्वको। सिद्धोंको जो सुख है क्या उसे कोई चर्म चक्षुओंवाला मनुष्य, देव या विद्याधर कह सकता है।

घत्ता—पाँच इन्द्रियोंसे मुक्त विमल परम पदोंमें सिद्धोंको जो सुख होता है वह सुख विश्वतलमें किसीको भी नहीं होता ॥३३॥

३४

एहा दुविह जीव मइं अक्खिय कहमि अजीव वि जेम णिरिक्खिय ।
धम्मु अधम्मु दो वि रूवुज्झिय आयासें कालें सहुं बुज्झिय ।
गइठाणोग्गहवत्तणलक्खण के वि मुणंति सुणाण वियक्खण ।
संतु अणाइ समउ वट्टंतउ तीउ कालु अगामि अणंतउ ।
तासु ठाणु भण्णइ णरलोयउ धम्माधम्महं सव्वतिलोयउ ।
जिहिं मि लोयणहमाण वियप्पउ आयासु वि अणंतु सुसिरप्पउ ।
तं जि अलोउ जोइपण्णत्तउ पोग्गलु होइ पंचगुणवंतउ ।
सद्दें गंधें रूवें फासें जुत्तउ भिण्णवण्णविण्णासें ।
खंधु देसु अद्धद्धपएसु वि परमाणुउ अविहाइ असेसु वि ।

घत्ता—तं सुहुमु वि थूलु थूलुसुहुमु पुणु थूलु भणु ।
थूलाण वि थूलु चउपयारु महुं मुणइ मणु ॥३४॥

३५

गंधु वण्णु रसु फासु संसइउ सुहुमु थूलु वज्जरइ समइउ ।
थूलुसुहुमु जोण्हाछायाइउ थूलु सलिलु वीरेण णिवेइउ ।
थूलुथूलु पुणु धरणीमंडलु सग्गविमाणपडलु मणिणिम्मलु ।
सुहुमइं कम्माइयइं सणामइं मणभासावग्गणपरिणामइं ।
वण्णाइयहिं रसेहिं अणेयहिं परिणमंति संजोयविओयहिं ।
पूरणगलणसहावणिउत्तइं पोग्गलाइं विविहाइं पउत्तइं ।
भासिज्जंतउ परमजिणिंदें णिसुणिवि धम्मु सुधम्माणंदें ।
वसहसेणु सुहभावें लइयउ पुरिमतालपुरवइ पावइयउ ।
सोमप्पहु सेयंसणरेसरु थिउ पव्वज्ज लेवि हयमयजरु ।
इय रिसहहु परिमुक्कविसाया णिव चउरासी गणहर जाया ।
बम्ही सुंदरि अज्जियसंघहु कंतियाउ जायाउ महग्घहु ।
दंसणमोहणीयपडिरुद्धउ एक्कु मरीइ णेय पडिबुद्धउ ।
तावस कंदाहारु मुएप्पिणु थिय कच्छाइय रिसिरूवउ लेप्पिणु ।
मोक्खमग्गगामिहिं परमेसरु हुयउ अणंतवीरु अग्गेसरु ।

---

३४. १. MBP रूउज्झिय । २. P वड्ढंतउ । ३. MB तीयउ; P तइयउ । ४. MBP धम्माहम्महं सयलु । ५. MBPK माणु वि अप्पउ; T लोयणमाणु । ६. MBP अद्धद्धु । ७. M सुहुमसुहुमु तह सुहुमु वि पुणु; B चउपयारु सुहु मुणइ मणु; P सुहुमु सुहुमु तह सुहुमु पुणु ।

३५. १. M सुसद्दउ । २. MBP add after this : सुहुमसुहुमु परिमाणुविसेसइं; लग्गहिं णिवडवि अप्पपएसइं । ३. P पव्वइयउ । ४. MBP सेयंसु णरेसरु । ५. MBP बंभी । ६. K °परिरुद्धउ ।

३४

इस प्रकार दो प्रकारके जीवोंका मैंने कथन किया। अब मैं अजीवका कथन करता हूँ कि जिस प्रकार मैंने देखा है। धर्म और अधर्म दोनों रूपसे रहित हैं, आकाश और कालके साथ, यह समझना चाहिए। गति, स्थिति, अवगाहन और वर्तना लक्षणवाले इनको कोई विलक्षण सुज्ञानी ही जानते हैं। काल सान्त और अनादि है। वर्तमान आगामी और भूत—ये कालके तीन भेद हैं। उसका (व्यवहार काल) समस्त नरलोक स्थान है। धर्म और अधर्म समस्त त्रिलोक है। उन दोनोंसे लोकाकाश व्याप्त है। आकाश भी अनन्त है और शुषिरके स्वरूपवाला है। अलोकाकाश वह है जो योगियोंके द्वारा ज्ञात है। पुद्गल पाँच गुणवाला होता है। शब्द गन्ध रूप स्पर्श और भिन्न-भिन्न रंग-रचनाओंसे युक्त स्कन्ध देश-प्रदेशके भेदसे तीन प्रकारका है। स्वयं अशेष अविभाज्य है।

घत्ता—उसे सूक्ष्मस्थूल, स्थूलसूक्ष्म और फिर स्थूल कहो। और स्थूलोंका भी स्थूल, वह चार प्रकारका है ऐसा मेरा मन सोचता है ॥३४॥

३५

गन्ध-वर्ण-रस-स्पर्श-शब्द सूक्ष्म स्थूल मार्दववाला कहा जाता है। स्थूल सूक्ष्म ज्योत्स्ना छाया और आतप, स्थूल जैसे पानी ऐसा वीर (महावीर) ने कहा है स्थूलस्थूल धरतीमण्डल मणि निर्मल स्वर्ग विमान पटल हैं। सूक्ष्म नाम सहित सभी कर्म मन भाषा वर्गणा और परिणामों, अनेक रसों-रंगों, संयोग-वियोगोंसे परिणमन करते हैं। पूरण-गलन आदि स्वभावसे युक्त पुद्गल अनेक प्रकारके कहे गये हैं—इस प्रकार परमजिनेन्द्र द्वारा कथित धर्मको धर्मके आनन्दसे सुनकर, वृषभसेनने शुभ भावसे ग्रहण किया। उसने पुरिमतालपुरमें प्रव्रज्या ग्रहण की। सोमप्रभ श्रेयांस नरेश मदज्वरको नष्ट करनेवाली प्रव्रज्या लेकर स्थित हो गये। इस प्रकार विषादसे रहित चौरासी गणधर ऋषभ जिनवरके हुए; ब्राह्मी-सुन्दरी जैसी कान्ताएँ महाआदरणीय संघकी आर्यिकाएँ बनीं। लेकिन दर्शन मोहनीय कर्मसे अवरुद्ध एक मरीचि नामका भरतका पुत्र प्रतिबुद्ध नहीं हो सका। वह उन्हें छोड़कर कन्दका आहार करनेवाला कच्छादिका मुनिपद ग्रहण कर तपस्वी बन गया। लेकिन मोक्षमार्गपर चलनेवालोंमें अनन्तवीर्य सबसे अग्रणी हुआ।

घत्ता—सावउ सुयकित्ति सावइ देवि पियंवइय ॥
भरहेण वि पुज्ज पुप्फयंत एँह जिणि रइय ॥३५॥

इय महापुराणे तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारे महाकइपुप्फयंतविरइए महाभव्वभरहाणुमण्णिए महाकव्वे महावत्थुणिद्देसो णाम एयारहमो परिच्छेओ सम्मत्तो ॥ ११ ॥

॥ संधि ॥ ११ ॥

७. MBP पह; K पह but corrects it to एह and gloss एतस्मिन् जिने ।

घत्ता—श्रावक श्रुतकीर्ति और श्राविका देवी प्रियंवदा। जिसमें रत नक्षत्र-पल्य ये लोग भरतके द्वारा भी पूज्य हैं ॥३५॥

इस प्रकार त्रेसठ महापुरुषोंके गुणालंकारोंसे युक्त इस महापुराणमें महाकवि पुष्पदन्त द्वारा विरचित और महाकव्य भरत द्वारा अनुमत ग्यारहवाँ परिच्छेद समाप्त हुआ ॥११॥

संधि १२

अरिवरणिद्दारणि खत्तु[1]द्धारणि तिजगलच्छिविजयाणउं ॥
विहलियसाहारणि मेइणिकारणि भरहें दिण्णं[2] पयाणउ ॥१॥

१

छुडु छुडु सरयागमि अप्पमाणु   णहु णाइं धोयहरिणीलभाणु ।
णं दीसइ ओ[3]मैत्थिउ अएण   सरयब्भदहियखंडहुं कएण ।
णं जगहरि णीलुल्लोउ बद्धु   तारामोत्तियझुंबुक्कणिद्धु ।
अइ दस[4] वि दिसा सइं गयरयाइं   णं चारित्तइं सज्जणकयाइं ।
ससिकुंभगलियजोण्हाजलेण   पक्खालियाइं णं णिम्मलेण ।
णिड्डहे[5]इ कमलु सरए ससंकु   तहु तेण जि लग्गउ पिंडपंकु[6] ।
सो अज्ज वि दीसइ मलविरुद्धु   णियडिंभपराहवि को ण कुद्धु ।
तेण जि रोसें रवि तिव्वु तवइ   सररुहसुहि किं चिक्खिल्लु खवइ ।
पंकक्खइ सुँ[7]क्कइ णलिणणालु   अइउग्गत्तणु बंधवहं कालु ।
कुवलयदिहिं[8]गारउ णाइं राउ   कयबंधुजीवसुं[9]च्छायभाउ ।
तरु कुसुमामोएं महमहंति   रयकविलइं सलिलइं वणि वहंति ।
अलि रुणुरुणंति [10]पावाहपिंड   महुमत्ता णं गायंति सोंड ।

घत्ता—सारयमयलंछणु रुइरंजियजणु जइ [11] मयमलिणु ण होंतउ ॥
तो [12]हउं कयसंतिहि जिणजसयंतिहि एहु जि उप्पउं देंतउ ॥१॥

२

पणवेप्पिणु लेप्पिणु सिद्ध सेस   अवठंभिवि रुंभिवि सयल देस ।
आवेप्पिणु पइसेप्पिणु अउज्झ   परचक्कसुक्कपहरणदुगेज्झ ।
मणु ढोयवि जोयवि तणयवयणु   परियंचिवि अंचिवि चक्करयणु ।
दालिद्दु रउद्दु पवासियाहं   काणीणहं दीणहं देसियाहं ।
णिहणिवि वरेण चामीयरेण   णाणाविलाससंतोसायरेण ।
मंतिवि अहंगु पंचंगु मंतु   को सत्तु मित्तु को तव्विरत्तु ।
परियाणिवि माणिवि वुड्ढ चारु   ओहारिवि धारिवि रज्जभारु ।
अइवग्गिउ मग्गिउ को ण कप्पु   भणु केण ण केण वि मुक्कु दप्पु ।

---

१. १. MPT खेत्तुद्धारणि but gloss क्षत्रियधर्मप्रकटने । २. MBP दिण्णु । ३. P ओम्मत्थिउ । ४. P अइदिस° । ५. MBP णिद्दहइ । ६. MBP विवि पंकु । ७. MBP सुक्खइ । ८. T दिहिहारउ धृतेरपहारको धरकश्च । ९. MBP °सच्छाय° । १०. P पावोह°; T पायोह° । ११. MP जइय । १२. MBP हं ।

सन्धि १२

शत्रुवरोंके निर्दलन, क्षात्रधर्मके उद्धार, विकलित जनोंके सहारा देने, ढाढस और धरतीके लिए भरतने त्रिलोक लक्ष्मी और विजयका प्राप्त करानेवाला प्रस्थान किया ॥१॥

१

शीघ्र ही शरद् ऋतुके आगमनपर धुल गये हैं सूर्य-चन्द्र जिसमें ऐसा आकाश अप्रमाण (सीमाहीन) हो उठा, जो ऐसा दिखाई देता है मानो शरद्के मेघरूपी दही खण्डके लिए ब्रह्माके द्वारा झुका दिया गया हो। मानो विश्वरूपी घरमें तारारूपी मोतियोंके गुच्छोंसे स्निग्ध नील चन्दोवा बाँध दिया गया हो, दशों दिशाएँ रजसे इस प्रकार अत्यन्त शून्य हो गयीं, (निर्मल हो गयीं); मानो सज्जनोंके निर्मल चरित्र हों। मानो वे चन्द्ररूपी घड़ेसे प्रगलित ज्योत्स्नारूपी निर्मल जलसे प्रक्षालित कर दी गयी हों। शरद्में शशांक—चन्द्रमा कमलको जलाता है, इसीलिए उसका (कमलका) शरीर-पंक उसीको (चन्द्रमाको) लग गया। वह (सूर्य) आज भी मल विरुद्ध दिखायी देता है, अपने बच्चेके पराभवसे कौन क्रुद्ध नहीं होता ? क्या इसी क्रोधसे सूर्य तीव्र तपता है, और कमलबन्धु (सूर्य) कीचड़को सुखाता है, कीचड़के सूखनेसे कमलोंके नाल (मृणाल) सूख जाते हैं, अत्यन्त उग्रता बन्धुओंके लिए भी काल सिद्ध होती है ? जिसने अपने बन्धुओंके प्राणोंके लिए सुन्दर छायाका भाव किया है, ऐसा चन्द्रमा राजाकी तरह कुवलय (कुमुदों और पृथ्वीरूपी मण्डल) के लिए भाग्यकारक होता है। कुसुमोंके आमोदसे वृक्ष महक रहे हैं। परागसे पीले जल वनमें बह रहे हैं। पापके समान रंगवाले अर्थात् काले रंगके भ्रमर गुनगुना रहे हैं, मानो मधुसे मत्त मद्यप गा रहे हों।

घत्ता—अपनी कान्तिसे जनोंको रंजित करनेवाला शरद्का चन्द्रमा, यदि मृगके लांछनसे मैला नहीं होता, तो मैं (कवि पुष्पदन्त) उसकी शान्तिका विधान करनेवाले जिन भगवान्के यशरूपी चन्द्रमासे उपमा देता ॥१॥

२

सिद्धोंको प्रणाम कर और शेष तिल (निर्माल्य) लेकर समस्त देशोंपर बलपूर्वक आक्रमण कर, उन्हें स्थापित कर और शत्रुमण्डलके द्वारा छोड़े गये अस्त्रोंके लिए दुर्ग्राह्य अयोध्यामें प्रवेश कर, मनको लगाकर, पुत्रका मुख देखकर और चक्ररत्नकी परिक्रमा और अर्चना कर प्रवासियों परदेशियों और कन्यापुत्रोंका भयंकर दारिद्र्य, स्वर्णदानके द्वारा समाप्त कर, अभंग पंचांग मन्त्रकी मन्त्रणा कर कौन शत्रु है, कौन मित्र है, और कौन विरक्त (मध्यस्थ) है ? यह जानकर वृद्ध मन्त्रियोंके आचारको मानकर और विचारकर राज्य-भार देकर (वह चला) बताओ, उसने

भुयदंडचंडविक्कमभएण छक्खंडमंडलावणिकएण ।
गंभीरतूरलक्खइं हयाइं दुप्पेक्खइं रक्खइं हयमयाइं ।
कयसमरहं अमरहं थरहरंति गत्तइं सोत्तइं बहिरत्तु जंति ।
असुरिंदहं णाइंदहं पियाइं पायालइं विउलइं कंपियाइं ।
तुट्टइं फुट्टइं गिरिमहियलाइं झलझ[2]लियइं [3]वलियइं सरिजलाइं ।
थिरभावहं देवहं जाय संक [4]रवपेल्लिय डोल्लिय[5] रवि ससंक ।
घत्ता—तहु तिजगविमद्दहु तूरणिणद्दहु मिलिउ दुग्गणिव्वाहणु ।
परमंडल[6]साहणु गहियपसाहणु खणि चउरंगु वि साहणु ॥२॥

३

णिग्गयं णिवबलं धरियहलसव्वलं
कणयकुंतु[1]ज्जलं चंदणसुपरिमलं ।
सरसघुसिणारुणं ख[2]यंतरणिदारुणं ।
तुरुतुरियकाहलं सुहडकोलाहलं ।
मुक्कहुंकारयं फुं[3]सियअसिधारयं ।
बद्धतोणीरयं अहियखोणीरयं ।
गहियसंणाहयं णवियणियणाहयं ।
वलइयसरासणं परिहियविहूसणं ।
वू[4]ढजंपाणयं चोइयविमाणयं ।
जंतजक्खामरं चलियचलचामरं ।
खुहियणाणाणिवं जणियगमणुच्छवं ।
कामिणीसुललियं किंकिणीमुहलियं ।
रहियवाहियरहं छत्तछाइयणहं ।
वंदिवण्णियगुणं दिण्णमणिकं[5]चणं ।
पवणधुयधयवडं गिरिगरुयगयघडं ।
गहियमयगारवं रणियघंटारवं ।
परिभमियमहुयरं मुक्कढक्कासरं ।
मलियफणिसेहरं काललीलाहरं ।
णडियसु[6]रणरणडं चडुलहयवरथडं ।
बहलधूलीरयं धुलियमणिहारयं ।
घत्ता—कयरिउवहुविरहें जगजस[7]भरहें चलियएण पधाइ[8]उ ।
वररह[9]मायंगहिं भडहिं तुरंगहिं सेण्णु ण कत्थइ [10]माइउ ॥३॥

---

२. १. MBP भयगयाइं । २. MB झलिझलियइं । ३. MBP चलियइं । ४. MBP रह° । ५. MP जेल्लिय । ६. M परमंडलु ।

३. १. MB °कंतुज्जलं । २. MBP खयतरणि° । ३. MP फुरिय° । ४. M रूढ° । ५. MBP °कंचणं । ६. MBP °सुरवरणइं । ७. MBP °जयभरहें चल्लंतेण; T जगजसभरहें but records a p जगजयेति पाठे जगति जयेनोपलक्षितो भरतस्तेन । ८. P पधाइयउ । ९. MBP वररहवरमायंगहिं । १०. P माइयउ ।

अतिगर्वित किससे कर नहीं माँगा, किस-किसने गर्व नहीं छोड़ा ? भुजदण्डोंके प्रचण्ड विक्रम और मदवाले उसके द्वारा छह खण्ड धरतीमण्डलके लिए लाखों गम्भीर तूर्य बजवा दिये गये, दुर्दर्शनीय रक्षक आहतमद हो उठे। युद्ध करनेवाले देवोंके शरीर थरथर काँप उठे। उनके कान बहरे हो गये। असुरेन्द्रों और नागेन्द्रोंकी प्रियाएँ और विपुल पाताललोक काँप उठे। पहाड़ और धरतीतल टूट-फूट गये। नदियोंके चमकते हुए जल मुड़ गये। स्थिर भाववाले देवोंको शंका उत्पन्न हो गयी। शब्दोंसे आहत सूर्य और चन्द्रमा डोल उठे।

घत्ता—त्रिजगका विमर्दन करनेवाले उस तूर्य शब्दके साथ दुर्गोंको ध्वस्त करनेवाला, शत्रुमण्डलको सिद्ध करनेवाला, साधनोंसे युक्त चतुरंग सैन्य भी जा मिला ॥२॥

३

जिसने हल-सब्बल ग्रहण किया है, जो स्वर्णकुन्तलोंसे उज्ज्वल है, जो चन्दनसे सुरभित है, सरस केशरसे आरक्त है, प्रलयकालके सूर्यके समान भयंकर है, जिसमें तुरु-तुरिय और काहल वाद्य बज रहे हैं, सुभटोंका कोलाहल हो रहा है, हुंकार शब्द छोड़ा जा रहा है, तलवारकी धारें चमक रही हैं, जो तूणीर (तरकस) बाँधे हुए हैं, जो शत्रुमें अत्यन्त आसक्त है, जिसने कवच धारण कर रखे हैं, जिसने अपने स्वामीके लिए प्रणाम किया है, जिसने धनुषको मोड़ रखा है, जिसने आभूषण पहन रखे हैं, जो जंपाण धारण किये हुए हैं, जो विमानोंको प्रेरित कर रही है, जिसमें यक्ष और देव चल रहे हैं, जिसमें चंचल चमर चल रहे हैं, जिसने अनेक राजाओंको क्षुब्ध किया है, जिसने प्रस्थानका उत्सव किया है, जो स्त्रियोंसे सुन्दर है, किंकिणियोंसे मुखर है, जिसमें सारथियोंके द्वारा रथ हाँके जा रहे हैं, जिसमें छत्रोंसे आकाश आच्छादित है, जिसमें चारणोंके द्वारा गुणोंका गान किया जा रहा है, जिसमें मणिकंकणोंका दान किया जा रहा है, पवनसे ध्वजपट उड़ रहे हैं, जिसमें गजघटा गिरिवरके समान भारी है, जिसने मदके गौरवको ग्रहण किया है, जिसमें घण्टोंका शब्द हो रहा है, जिसमें भ्रमर घूम रहे हैं, जिसमें ढक्काकी ध्वनि हो रही है, जिसमें नागोंके फणामणि चूर-चूर हो गये हैं, जो कालकी लीलाको धारण करता है, जिसमें देवरूपी नट नचाये जाते हैं, जिसमें श्रेष्ठ अश्वोंकी घटा चंचल है, जिसमें अत्यधिक धूलिरज है, जिसमें मणिमय हार व्याप्त हैं, ऐसा राजसैन्य चल पड़ा।

घत्ता—जिसने शत्रुवधुओंको विरह उत्पन्न किया है और जो विश्वयशसे भरित है, ऐसे राजाके चलते ही सैन्य दौड़ा और श्रेष्ठ रथों, गजों, भटों और अश्वोंके द्वारा वह कहीं भी नहीं समा सका ॥३॥

४

मणी कागणी कामिणी दंडरण्णं णिसीसक्कमाणिक्कभाभारभिण्णं ।
रहंगं णरिंदंगतुंगं पहारं अजेयं सुतेयं करालं किवाणं ।
पियं छत्तचम्मं सुरम्मं महंतं महावीरखंधारवित्थारवंतं ।
हरीकीरपिंछोह[1]कंतिल्लकाओ करी णिज्जियाणिंददेविंदणाओ ।
पुरोहो णिरोहो व्व भीमावयाणं णिवासो पयासो पयासंपयाणं ।
समे वेसमं वेसमे सामकारी चमूपुंगवो दुग्गमग्गावहारी ।
गिही[2] को वि देवो महिड्ढीसमिद्धो[3] महंतेण पुण्णेण रायस्स सिद्धो ।
सुरागारकिम्मीरकम्मावयारो परो को वि अण्णो णिकेऊहकारो ।

घत्ता—इय साहियभुवणहिं चोद्दहरयणहिं[4] सहुं णरणाहहु इच्छइ ॥
हयगयरहवाहणु चल्लिउ साहणु सयलु रहंगहु पच्छइ ॥४॥

५

मणिरहवरे चडिउ णं इंदु णहि[1] वडिउ ।
दढकढिणभुयजुयलु अइवियडवच्छयलु ।
किं भणमि पुरिसहरि बलतुलियकुलसिहरि ।
सद्दूलवरखंधु बहिरंधजणबंधु ।
अलिणीलधम्मेल्लु[2] तेलोक्कपडिमल्लु ।
दूवंकुरालेण दहिचंदणालेण ।
उक्खित्तसेसेण मंगलणिघोसेण ।
संचलिउ भरहेसु णं मयणु णरवेसु ।
धउ धइण पडिखलिउ णरु हरिहिं दरमलिउ[3] ।
भेसिउ अहद्देण करहस्स सद्देण ।
करि धुणइ णियकंठु महि णिवडिओ मेंठु[4] ।
भरओ रउद्देण घित्तो वलद्देण ।
भग्गाइं भायणइं चुण्णाइं गोहणइं ।
णवणलिणणेत्ताइ वेसरि[5] णिहित्ताइ ।
परिगलियचेलाइ हा भणिउ बालाइ ।
खरवडणपडियाइ[6] महुसीहुघडियाइ ।
रसवणिय जूरंति कह कह व वियरंति ।
अच्चंतपोढेण तेल्लोक्करूढेण ।
थिरथोरबाहेण सेणाहिणाहेण[7] ।
पप्फुल्लवयणेण दढदंडरयणेण[8] ।

४. १. B °पिच्छोह° । २. M गिरी । ३. MBP महद्धी । ४. MP चउदह° ।

५. १. MB णहवडिउ । २. MBP °धम्मिल्लु । ३. P दलमलिउ । ४. MBP मेट्ठु । ५. MBPK वेसर° । ६. MBPT खरचडुल° । ७. MBP add after this : णवणलिणणयणेण । ८. MP add after this : वज्जेण घडिएण ।

४

काकणी मणि, कामिनी, दण्डरत्न, सूर्यकान्त और चन्द्रकान्त मणियोंकी कान्तियोंसे मिश्रित चक्रवर्तीके शरीरकी ऊँचाईवाली भारी अजेय तेजस्वी भयंकर कृपाण, पीत छत्र, महावीरके स्कन्धावारके समान विस्तारवाला महान् सुन्दर चर्म, हरे कीरोंके पंखोंके समूहके समान कान्तिवाला, और देवेन्द्रके अनिन्द्य नागराजको जीतनेवाला गज, भयंकर आपत्तियोंका निरोध करनेवाला और प्रजाओंकी सम्पदाओंका निवास और प्रकाशित करनेवाला पुरोहित, समतामें विषमता और विषमतामें समता स्थापित करनेवाला तथा दुर्गमार्गोंका अपहरण करनेवाला सेनापति, महाऋद्धियोंसे समृद्ध कोई देव गृहपति, महापुण्यसे राजाको सिद्ध हुआ। देवगृहोंके लिए विचित्र कर्मोंका अवतरण करनेवाला श्रेष्ठ कोई सूत्रधार अर्थात् स्थपति उसे सिद्ध हुआ।

घत्ता—जिसने चौदह भुवनोंको सिद्ध किया है, ऐसे चौदह रत्नोंके साथ, राजाके चक्रके पीछे हय-गज और रथ वाहन हैं जिसमें ऐसी समस्त सेना इच्छापूर्वक चली ॥४॥

५

मणियोंके रथवरपर आरूढ़ राजा ऐसा जान पड़ता था मानो नभमें इन्द्र हो। जिसका बाहुयुगल दृढ़ और कठोर है, वक्षस्थल अत्यन्त विकट है, जिसने अपने बलसे कुलपर्वतको तोल लिया है, उस पुरुषसिंहके विषयमें क्या कहूँ। उसके कन्धे सिंहके समान हैं जो बहरे और अन्धोंका बन्धु है, जिसके केश भ्रमरके समान नीले हैं जो त्रिलोकका प्रतिमल्ल है, ऐसा वह भरतेश, दूर्वांकुर, दही, चन्दन और शेषाक्षत (तिल) तथा मंगलघोषके साथ इस प्रकार चला मानो मनुष्यके रूपमें कामदेव हो। ध्वजसे ध्वज प्रतिस्खलित हो गया। मनुष्य अश्वोंसे कुचल गया। गज अपना कण्ठ धुनने लगा। महावत धरतीपर गिर पड़ा। भयसे भरा हुआ, बैलके द्वारा फेंका गया। पात्र टूट-फूट गये। गोधन चूर्ण-चूर्ण हो गये। जिसके नेत्र नवनलिनके समान हैं, जिसकी साड़ी खिसक गयी है, ऐसी खच्चरपर बैठी हुई बालाने 'हा' कहा। गधेके पतनसे गिरी हुई तथा मधुसुरासे चेष्टा करनेवाली उस बालाके द्वारा लोग कामसे घायल होते हैं और बड़ी कठिनाईसे चल पाते हैं। अत्यन्त प्रौढ़, त्रिलोकमें प्रसिद्ध स्थिर स्थूल बाहुवाले प्रफुल्लमुख सेना-

गिरिणो दलिज्जंति मग्गा रइज्जंति ।
दूरं समग्गेण चक्काणुमग्गेण ।
संतोसपुण्णाइं गच्छंति सेण्णाइं ।
णयणाहिरामाइं गामाइं सीमाइं ।
विसमाइं मंठाइं[9] विंझोवकंठाइं ।
हलहरणिवासाइं लंघंतु देसाइं ।
पविसंतु रोहंतु[10] अहिणो विरोहंतु ।
णिक्खवियणियसत्तु सुरवरसरिं पत्तु ।

घत्ता—पंडुर गंगाणइ महियलि घोलइ किंणरसरसुहभंतहो[11] ॥
अवलोइय राएं छुडु छुडु आएं साडी णं हिमवंतहो ॥५॥

६

णं सिहरिघरारोहणणिसेणि णं रिसहणाहजसरयणखाणि ।
णिम्मल णावइ जिणणाहवाय मयरंकिय णं वम्मेहवडाय[1] ।
णं विसमविडंप्पभउत्तसंति[2] धरणीयलि लीणी चंदकंति ।
णं णिद्धंधोयकलहोयकुहिणि[3] णं कित्तिहि केरी लहुय बहिणि ।
गिरिरायसिहरपीवरथणाहि णं हारावलि वसुहंगणाहि ।
विर्यलियकंदरदरिवडिय सच्छ[4] धरणिहरकरिंदहु णाइं कच्छ ।
सिय कुडिल तहु जि णं भूइरेह णं चक्कवट्टिजयविजयलीह ।
आयासहु पडिय धरित्तियाइ सुपडिच्छिय णं पियसहि पियाइ ।
पक्खलइ वलइ परिभमइ ठाइ णियठाणभंसचिंताइ णाइं ।
णिग्गय णयवम्मीयहु सवेय विसपउर णाइं णाइणि सुसेय ।
हंसावलिवलयविइण्णसोह [5]उत्तरदिसिणारिहि णाइं बाह ।

घत्ता—बहुरयणणिहाणहु सुट्ठ सुंलोणहु[6] धवलविमलमंथरगइ ।
सायरभत्तारहु सइं गंभीरहु मिलिय गंपि गंगाणइ ॥६॥

७

जहिं मच्छेपुच्छपरियत्तियाइं[1] सिप्पिउडुच्छेंलियइं[2] मोत्तियाइं ।
घेप्पंति तिसाहयगीयएहिं जलबिंदु भणिवि वेंप्पीहएहिं[3] ।
जलरिद्धहिं पिज्जइ जलु सुसेउ तमपुंजहिं णावइ चंदतेउ ।
सोहइ रत्तुप्पलदलरुईइ पुणु सो ज्जि णाइं संझारुईइ ।
जहिं कीरउलइं कीलारयाइं दहिकुट्टिमि णावइ मरगयाइं ।
जहिं कंकहारणीहारछाय कल्लोल हंसपक्ख वि ण णाय ।

---

९. MBP संठाइं । १०. MB गेहंतु । ११. P °भत्तहो ।

६. १. MBP वम्महपडाय । २. P विडप्पइ भउ तसंति । ३. G सिद्ध° but gloss स्निग्ध । ४. MBP विवरिय° । ५. MBP उत्तरदिस° । ६. MBP सलोणहु ।

७. १. MBPK °पुंछ° । २. B °उडच्छलियइं । ३. MBP वव्वीहएहिं ।

पतिने दण्डरत्नसे पहाड़ोंको विदीर्ण किया तथा मार्गोंका निर्माण किया। चक्रका अनुगमन करते हुए सन्तोषसे परिपूर्ण सैन्य अपने मार्गसे दूर तक जाता है, नेत्रोंके लिए सुन्दर ग्राम—सीमाओं, विषम निम्नोन्नत भूमियों, विन्ध्याके उपकण्ठों, कृषकोंके निवासभूत देशोंको लाँघता हुआ, घरोंमें प्रवेश करता हुआ, नागोंको विरुद्ध करता हुआ, तथा जिसने अपने शत्रुका नाश कर दिया है ऐसा सैन्य गंगा नदीपर पहुँचा।

घत्ता—सफेद गंगानदीको आगत राजाने इस प्रकार देखा मानो वह किन्नरोंके स्वरसुखसे भ्रान्त धरतीपर फैली हुई हिमवन्त की साड़ी (धोती) हो ॥५॥

६

मानो वह पहाड़के घरपर चढ़नेकी नसैनी हो, मानो ऋषभनाथके यशरूपी रत्नोंकी खदान हो, मानो जिननाथकी पवित्र वाणी हो; मानो मकरोंसे अंकित कामदेवकी पताका हो; मानो राहुके विषम भयसे पीड़ित चन्द्रमाकी कान्ति धरतीतलपर व्याप्त हो, मानो स्निग्ध निर्मल चाँदीकी गली (पगडण्डी) हो; मानो कीर्तिकी छोटी बहन हो, हिमालयके शिखर जिसके स्तन हैं, ऐसी वसुधारूपी अंगनाकी मानो वह हारावली हो; प्रगलित विवरों और घाटियोंमें गिरती हुई स्वच्छ वह (गंगा) ऐसी मालूम होती है, मानो पहाड़रूपी करीन्द्रकी कच्छा हो। सफेद और कुटिल वह मानो उसकी भूतिरेखा हो, मानो चक्रवर्तीकी विजयलेखा हो, मानो आकाशसे आयी हुई प्रिय धरतीकी चिर प्रतीक्षित सखी हो। वह स्खलित होती है, मुड़ती है, परिभ्रमण करती है, स्थित होती है, जैसे मानो अपने स्थानसे भ्रष्ट होनेकी चिन्ता उसे हो। वह मानो सफेद नागिनके समान, पर्वतकी वाल्मीकि (बिल) से वेगपूर्वक निकली है, और विष (जल/जहर) से प्रचुर है। जिसे हंसावलियोंके वलय शोभा प्रदान कर रहे हैं, ऐसी वह मानो उत्तर दिशारूपी नारीकी बाँह हो।

घत्ता—जो अनेक रत्नोंका विधान है और अत्यन्त सुन्दर है, ऐसे गम्भीर समुद्ररूपी पतिसे, धवल, पवित्र और मन्थर चालवाली गंगानदी स्वयं जाकर मिल गयी ॥६॥

७

जहाँ मत्स्योंकी पूँछोंसे आहत, सीपियोंके सम्पुटोंसे उछले हुए मोती, प्याससे सूखे कण्ठवाले चातकोंके द्वारा जलबिन्दु समझकर ग्रहण कर लिये जाते हैं, जलकाकों द्वारा सफेद जल दिया जाता है मानो अन्धकारोंके समूहोंके द्वारा चन्द्रमाका प्रकाश पिया जा रहा हो। फिर वही (जल) लाल कमलोंके दलोंकी कान्तिसे ऐसा शोभित होता है, मानो सन्ध्यारागकी कान्तिसे शोभित हो। जहाँ क्रीड़ारत कीरकुल ऐसे जान पड़ते हैं, मानो स्फटिक मणियोंकी भूमिपर मरकत मणि हों। जिसकी लहरें कंकहार और नीहारकी कान्तिवाली हैं, उनमें हंस पक्षी भी ज्ञात नहीं होते।

जहिँ पाणिइ पंडुरु अच्छराइ उप्परियणु दिट्ठु[४] ण जंतु जाइ।
परिहाणु सहत्थें धरिउ ताइ जंपिउ हो ण्हाणें एत्थु माइ।
मायंगहुं दाणें वहइ णेहु जा तहु घिवंति तवसि वि सुदेहु[५]।
जडसंगें विउसु वि जडु जि होइ कमलावासेसु सुयंति भोइ।
सिररयण धणासइ धरइ ते वि धणवंत बहुप्पिय[६] सविस जेवि।
दिव्वंगणघणथणजुयलखलिय जिणण्हवणारंभदिणम्मि गलिय।
उच्छलियबहलसीयलतुसार णं खीरमहोवहिखीरधार।

घत्ता—एयँहि[७] महिणारिहि भुवणजणेरिहि ससिमणिरइयपहुज्जल।
सायरगिरिरायहिँ धरिवि सरायहिँ णाइं णिबद्धी मेहल ॥७॥

८

सरि पेच्छिवि महिपरमेसरेण[१] पुच्छिउ सारहि भरहेसरेण।
झसणयणी विब्भमणाहिगहिर णवकुसुमविमीसियभमरचिहुर।
मज्जंतकुंभिकुंभत्थणाल सेवालणीलणेत्तंचलाल।
तडविडविगलियमहुघुसिणपिंग चलजलभंगावलिवलितरंग।
सियघोलमाणडिंडीरचीर पवणुद्धय[२]तारतुसारहार।
वित्थिण्णमणोहरपुलिणरमण णइ णाइं विलासिणि मंदगमण।
कवणेह भणसु सियकोमलंगि रइ जणइ विहंगहं णं विहंगि।
तं णिसुणिवि रहिएं वुत्तु एम कमणीयसुकामिणिकामएव[३]।
धरणीसमउडमणिकिरणराइ रुइरंजियचरणणरेसराइ।
दालिद्दपंकसोसणदिणेस भुयबलकंपावियतिहुयणेस।
पणईयणपत्थणियपरमपणय णिसुणसु णरिंद णाहेयतणय।
सुधराधरिंदभेयणसमत्थ[४] णं मंतिहि केरी मइ महत्थ।
गंभीर पसण्ण सुलक्खणाल णं सुकइहि केरी कव्वलील[५]।
रहवरसिरि व्व दरिसियरहंग किं ण वियाणहि णामेण गंग।
हिमवंतपोमसरणिग्गयंगि णं महिवहुयहि परियाणभंगि[६]।

घत्ता—गिरिणहधरणियलहिं जलणिहिविवरहिं[७] वहइ छाय ससिदित्तिहि ॥
भुवणत्तयगामिणि जणमणरामिणि एह सरिस तुह कित्तिहि ॥८॥

९

वणे जक्खिणी जक्खकीलावियारे तओ तम्मि गंगाणईचारुतीरे।
पधावंतमायंगदाणंबुगंधं घुलंतुद्धपालिद्धयं चारुचिंधं।
विसंकं[१] जसंकं कयारिंदसंकं बलं रायसेणाहिवाणाइ थक्कं।

---

४. MBP जंतु ण दिट्ठु। ५. MBPK सदेहु। ६. MBPT बहूपिय। ७. MBP एत्तहि।

८. १. M परमेसरेण। २. MBP पवणुद्धुय°। ३. MBP कमणीयकामिणी°। ४. MB सधरा°। ५. MBP कव्वमाल। ६. MBPK परिहाण° and gloss in PK परिधानं। ७. MBPT °विवलहिं।

९. १. MBP झसंकं।

जहाँ, जो अप्सरा पानीसे सफेद अपने बहते हुए दुपट्टेको नहीं देख पाती, उसके द्वारा परिधान अपने हाथसे पकड़ लिया जाता है और कहती है—"हे माँ, यहाँ स्नान हो चुका।" जिसमें मातंगों (गजों और चाण्डालों) को दानका स्नेह (चिकनापन और राग) बहता है, और जिसमें तपस्वी भी अपने शरीरको डालते हैं। जड़ (मूर्ख और जल) के साथ विद्वान् भी मूर्ख हो जाता है, जहाँ लक्ष्मीके आवासमें साँप शयन करते हैं। जो साँप और धनवान् सविष तथा बहुप्रिय (वधुओंके प्रिय या अनेकके प्रिय) हैं, उन्हें भी वह धनकी आशासे धारण करती है। जिन भगवान्के जन्माभिषेकके समय दिव्यांगनाके घन स्तनयुगलसे निकली हुई जो जिनेन्द्र भगवान्के स्नानाभिषेकके प्रारम्भिक दिनसे बह रही है, जिसमें प्रचुर शीतल हिमकण उछल रहे हैं, ऐसी वह मानो क्षीरसमुद्रकी क्षीरधाराके समान जान पड़ती है।

घत्ता—सरागी समुद्र और हिमालय दोनोंने मानो मिलकर चन्द्रकान्त मणियोंकी प्रभासे उज्ज्वल इसे (गंगाको) पकड़कर विश्वको जन्म देनेवाली इस धरतीरूपी नारीसे मेखलाके रूपमें बाँध दिया है ॥७॥

८

नदीको देखकर धरतीके परमेश्वर भरतेश्वरने सारथिसे पूछा, "मत्स्योंके नेत्रवाली, जलावर्तोंकी नाभिसे गम्भीर, नवकुसुमोंसे मिले हुए भ्रमरोंके केशोंवाली, डूबते हुए गजोंके कुम्भोंके स्तनोंवाली, शैवालके नीले नेत्रांचलोंसे अंचित, किनारोंके वृक्षोंसे विगलित मधुकेशरसे पीली, चंचल जलोंकी भृंगावलीसे मुड़ी हुई तरंगोंवाली, सफेद और फैले हुए फेनके वस्त्रोंवाली, हवासे हिलते हुए स्वच्छ हिमकणोंके हारवाली, विस्तृत सुन्दर पुलिनोंसे सुन्दर, यह नदी मन्द चलनेवाली विलासिनीके समान जान पड़ती है, यह श्वेत कोमलांगी कौन है ? बताओ। यह विहंगी (पक्षिणी) की तरह विहंगोंसे प्रेम करती है।" यह सुनकर सारथि बोला—"हे सुन्दर कामिनियोंके लिए कामदेवके समान, राजाओंके मुकुटमणियोंकी किरणोंसे शोभित, कान्तिसे रंजित प्रथम चक्रवर्ती राजन्, दारिद्र्यरूपी कीचड़के शोषणके लिए दिनेश्वर, अपने भुजबलसे त्रिभुवन ईशको कँपानेवाले, प्रणयिनी स्त्रियोंसे परम प्रणय करनेवाले हे नाभेयतनय राजन्, सुनिए—क्या आप नहीं जानते कि यह गंगा नामकी नदी है, मन्त्रीकी महार्थवाली मतिकी तरह जो पृथ्वीके धरणीन्द्रों (राजाओं-पर्वतों) का भेदन करनेमें समर्थ है; गम्भीर, प्रसन्न और सुलक्षणोंवाली जो मानो सुकविकी काव्यलीलाके समान है ? और रथश्रीकी तरह रथांग (चक्रवाक और चक्र) को दिखानेवाली है ? हिमवन्त सरोवरसे निकलनेवाली जो मानो धरतीरूपी वधूके चलनेकी भंगिमा है।

घत्ता—यह पर्वत, आकाश, धरणीतलों और समुद्रके विवरोंकी शोभा धारण करती है। तीनों लोकोंमें परिभ्रमण करनेवाली जनमनोंके लिए सुन्दर यह चन्द्रमाकी दीप्तिवाली तुम्हारी कीर्तिके समान है ॥८॥

९

जिसमें यक्षिणियों और यक्षोंका क्रीड़ाविकार है ऐसे उस वनमें, गंगानदीके सुन्दर तटपर राजसेनाध्यक्षकी आज्ञासे सैन्य ठहर गया। वह सैन्य दौड़ते हुए महागजोंके मदजलसे गन्धयुक्त था, उड़ती हुई तथा बाँसमें लगी हुई पताकाओंसे सहित था, जो बैलों और यशसे अंकित था। उसके

पक्कीरंति दूरं समा भूमि एसा तडिज्जंति दूसाइं चंदोवहासा।
गवक्खंतणिग्गंत[2]धूमोहवासा रइज्जंति संचारिमा भूरिवासा।
विमुच्चंति पल्लाणभारा हयाणं गयाणं पि ढक्कारवेणागयाणं।
भरुम्मुक्कदेहा जहिच्छं वैलद्दा[3] गया रासहा रासहीदिण्णसद्दा।
तरूणं तणाणं प[4]धावंति दासा पलिप्पंति चुल्लीणिहित्ता हुयासा।
पइज्जंति णाणाविहा भक्खभेया णरा के वि भुंजेवि णित्तंगसेया।
सरिच्छेण दीहेण पंथेण भग्गा पसुत्ता सुहं गेहिणीकंठलग्गा।
वलिज्जंति दिज्जंति गासा करीणं तणं भोयणं खोणलोणं[5] हरीणं।
पपेच्छंति[6] अण्णे धयं[7] साहिणाणं पयंपंति अण्णे पईहं पयाणं।
[8]णं संसंति अण्णे णरिंदस्स कामं[9] भमामो कहं णिच्च गामाउ गामं।
इमो वेसरो वेसरी लेउ चारं परेणेव वुत्तो परो वारवारं।
[10]कउद्धुद्धगीवा वणंते पयट्टा लयापल्लवं पागियं लेंति उट्टा[11]।
हले होउ जत्ताइ पत्ता णिविग्घं पिए पेच्छ दूसाइं आगच्छ सिग्घं।
[12]इणं जत्थ केणावि रीणेण वुत्तं सवेसाणिवासं सचिंधोववत्तं।
सहट्टं सटेंटं सदेवं समिद्धं इमं एव राएण ठाणं णिबद्धं[13]।

घत्ता—णियथवइ विरइयइ मणिगणखइयइ सइं सग्गहु उत्तइण्णउ ॥
णं [14]सुरवरसुंदरु देउ पुरंदरु पहु सउहयलि [15]णिसण्णउ ॥९॥

१०

सामंत महासामंत जेवि मंडलिय महामंडलिय तेवि।
सेणाहिवसिट्ठद्देसणिलइ थिय रायपसायविइण्णपुलइ।
हुय रयणि पुणु वि उग्गमिउ भाणु सगभत्थिजालजज्जल्लमाणु।
गयमयमलेण मइलिज्जमाणु हरिलालाणीरें धुप्पमाणु।
छत्तंधयारछाइज्जमाणु पहरणविप्फुरणहिं दीसमाणु।
झल्लरिभेरीरवगज्जमाणु मणहरकामिणियणगिज्जमाणु।
णग्गोररेणुधवलिज्जमाणु [1]वणधूलियाइ कवलिज्जमाणु।
मरगयपहाइ णीलिज्जमाणु[2] [3]सोणंदु सविक्कमु साहिमाणु।
[4]अंसहंतिइ भडयणभरु महंतु णं वसुहावणियइ पित्त[5] वंतु।
[6]अणडुहवज्जरखरमाणिएण णरणियरकरहसंदाणिएण।
णाणावाहणरहसंकडेण चल्लियउ तुरिउ गंगातँडेण[7]।

---

२. MB णिग्गंति। ३. MB वलिद्दा। ४. MBP पवच्चंति। ५. M खाणपाणं। ६. K ण पेच्छंति। ७. वयंसाहिणाणं। ८. M णमंसंति। ९. MBP णरिंदं सकामं। १०. MB कओउद्धगीवा; P कओवुद्ध°। ११. PK उंटा। १२. MBP इमं। १३. BP विबद्धं। १४. MBP सुरवरु सुंदरु देव पुरंदरु। १५. M णिसण्णिउ।

१०. १. MBP णव°। २. B omits णीलिज्जमाणु। ३. B omits this foot. ४. B omits this line. ५. MP धित्तु वंतु। ६. B omits अणडुह। ७. MBP गंगायडेण।

समतल भूमि दूर-दूर तक फैली हुई थी। कपड़ोंके तम्बू और मण्डप फैला दिये गये थे। जिनके गवाक्षोंसे धूम-समूह निकल रहा था, ऐसे तथा संचार योग्य प्रचुर गन्धवाले निवास बनाये गये। अश्वोंके जीन खोल दिये गये। और ढक्कार शब्दोंसे आते हुए गजोंके भी। भारसे मुक्त है शरीर जिनका, ऐसे बैल भी इच्छापूर्वक चले गये। गधीके लिए शब्द करते हुए गधे भी चल दिये। वृक्षों और घासके लिए दास दौड़ रहे थे। चूल्हों में दी गयी आग जल उठी। नाना प्रकारके भक्ष्य-भेद बनाये जाने लगे। कितने ही लोग भोजन कर, तथा शरीरके पसीनेसे रहित होकर, समान दीर्घ पथसे थके हुए, गृहिणियोंके गलेसे लगकर सुखसे सोये हुए थे। हाथियोंको घास देकर सन्तुष्ट किया जा रहा था। घोड़ोंके लिए तृण, भोजन और खाननमक दिया जा रहा था। कोई अपने साथियोंसे पूछ रहा था, कोई लम्बे मार्गके बारेमें बात कर रहा था। कोई राजाके कामकी प्रशंसा नहीं करते हुए कह रहे थे कि हम दिन प्रतिदिन एक गाँवसे दूसरे गाँव कहाँ तक घूमें। यह खच्चर और खच्चरी और चारा लो, ऐसा एकने दूसरेसे कहा। अपनी गरदनें ऊपर करके ऊँट जंगलमें चले गये और वहाँ लताओंके पत्ते तथा पानी लेने लगे। "हे प्रिय, अच्छा हुआ, यात्रासे निर्विघ्न आ गये। तम्बुओंको देखो और शीघ्र आओ।" वेश्याओंके निवाससे सहित, अपने-अपने चिह्नोंसे उपयुक्त, हर्षयुक्त, तम्बुओं और देवोंसे सहित, यह इस प्रकारका स्थान राजाने बनवाया है। इस प्रकार किसी खिन्न व्यक्ति (सैनिक) ने कहा।

घत्ता—अपने स्थपतिके द्वारा विरचित और मणिसमूहसे विजड़ित सौधतलपर बैठा हुआ राजा भरत ऐसा मालूम हो रहा था, मानो स्वर्गसे स्वयं उतरकर सुरवरोंमें सुन्दर इन्द्रदेव आकर बैठा हो ॥९॥

१०

जितने भी सामन्त और महासामन्त, एवं महामाण्डलीक राजा थे वे भी इकट्ठे हुए। सेनाध्यक्षके द्वारा निर्दिष्ट और राजप्रसादसे पुलकित वे निवासमें ठहर गये। रात हुई, फिर अपनी किरणोंके जालसे चमकता हुआ सूर्य उग आया। गजमद-मलसे मैला होता हुआ, घोड़ोंके लारजलसे गीला होता हुआ, छत्रोंके अन्धकारसे आच्छादित हुआ, शस्त्रकी चमकमें दिखाई देता हुआ, झल्लरी और भेरीके शब्दोंसे गरजता हुआ, सुन्दर कामिनी जनोंके द्वारा गाया जाता हुआ, कपूरकी धूलसे धवल होता हुआ, वनकी धूलोंसे ग्रस्त होता हुआ, मरकत मणियोंसे नीला होता हुआ, सानन्द पराक्रमी और स्वाभिमानी वह सैन्य जो महान् भटजनके भारको सहन न करनेके कारण मानो वसुधारूपी वनिताके द्वारा पित्तकी तरह उगल दिया गया हो। जो बैलों, खच्चरों और गधोंके द्वारा मान्य है, नरसमूहों और ऊँटोंके द्वारा अवलम्बित है, और नाना वाहनों तथा

चक्कीसचमूवइपेरियंगु चक्कहु पच्छइ बलु चाउरंगु ।
आरुहिवि विजयगिरिवरकरिंदि केसरिकिसोरु[8] णं गिरिवरिंदि ।
खंधोवबद्धतोणीरजुयलु करणिहिय[9]चावगुणरावमुहलु ।
संचलिउ विजयदुंदुहिणिणाउ सुरवइदिसाइ रायाहिराउ ।
घत्ता—उल्लंघिवि भीयरु उवरयणायरु पुणु थलमग्गें आइउ ॥
[10]महिहरदरिवासइं गोहणघोसइं पहु गोउलइ पराइउ ॥१०॥

११

जहिं मंथिज्जइ अइथद्धु[1] दहिउं थद्धत्तणु[2] कासु वि होइ ण हिउं ।
जहिं कड्ढिउ मंथउ गोवियाइ दीहें गुणेण णं पिउ पियाइ ।
चप्पेवि धरिउ मंदीरएण[3] परिभमइ णाइं घणथणकएण ।
हो हो हलि [4]गोविणि मइं जि रमइ मंथाणु ण तुह कामग्गि समइ ।
मा कड्ढहि केयाकड्ढणीइ इय गज्जिउ जहिं णं मंथणीइ ।
अइमहणें सिढिलीहूउ[5] देहु किं दहिउं ण अण्णु वि मुयइ णेहु ।
तक्कइं एमेव जि जहिं घिवंति गामीयण[6] तक्कहिं किं करंति ।
घयदुद्धइं जहिं[7] पंथिय पियंति गयपहसम सुहु[8] णिद्दइ सुयंति ।
जहिं गोविउ पेच्छिवि णरपहाणु वच्छुल्लउ [9]मेल्लिवि बद्धु साणु ।
मूरविउ[10] तक्कु [11]अविचित्तियाइ घिउ छड्डिउ[12] तग्गयणेत्तियाइ ।
महिवइमुहपंकयरमणतण्ह जहिं संठिय णीसासुण्ह सुण्ह ।
जहिं कुणरिंदहं रिद्धीउ जेम [13]महिसिउ खलेहिं [14]दुज्झंति तेम ।
काहलियवंससइं सुणंति ण करइ घरकम्मु[15] वि सिरु धुणंति ।
वच्चइ संकेयहु गोवि का वि मज्झण्हएसि बहुडिंभया वि ।
जहिं देंति तालु कीलापयासु[16] मंडलिय [17]गोव गायंति रासु ।
जहिं सिंगसमुक्खयतरुवरेहिं [18]ढक्कारिउ धीरु धुरंधरेहिं ।
घत्ता—तं गोट्ठु मुयंतें गहणि चरंतें हरिणसिंगखयकंदहिं ।
मयमासाहारइं कुहरागारइं दिट्ठइं [19]सवरपुलिंदहिं ॥११॥

१२

दुवई—[1]वामणथद्ध[2]थोरव[3]लवलियकलेवरसंधिबंधणा ।
कढिणतिकंडचंडकोदंडकमागयजणणकुलहणा ॥१॥

---

८. MP केसरकिसोरु । ९. MB करि णिहिय° । १०. MBPT °दरवासइं ।

११. १. MBP अइथड्ढ । २. MBP थड्ढत्तणु । ३. B मीदीरएण । ४. MBP गोमिणि । ५. MBP सिढिलीहूय । ६. B गामीणय । ७. MBP पंथिय जहिं । ८. B सुहणिद्दइ । ९. MBP मण्णिवि । १०. MBP सूरविउ । ११. MBP अवचित्तियाइ । १२. M छंडिउ । १३. MBP महिसीउ खलहिं । १४. MBPK दुब्भंति । १५ M घरकम्मु वि सिरं; BP घरकम्मु सिरं । १६. MBP कीलावयासु । १७. M गीय । १८. MBP ढेक्कारिउ चारु । १९. M समरपुरिंदहिं ।

१२. १. M has before this : छंद पद्धडिका । २. MBP थड्ढ । ३. MBP °चलवलिय° ।

रथोंसे संकीर्ण है ऐसे गंगातटके किनारे-किनारे, चक्रवर्तीके सेनापतिके द्वारा प्रेरित चतुरंग सेना रथके पीछे-पीछे चली। राजाधिराज भरत भी गिरिवरपर सिंहकिशोरकी तरह, विजयगिरि नामक गजवरपर आरूढ़ होकर, अपने कन्धोंपर तूणीरयुगल बाँधे हुए और हाथमें लिये हुए धनुषकी प्रत्यंचाके शब्दसे मुखर होता हुआ नगाड़ोंके शब्दोंके साथ पूर्व दिशाकी ओर चला।

घत्ता—भयंकर उपसमुद्रको पार कर वह फिर स्थलमार्गपर आया। वह राजा पहाड़ोंकी घाटियोंमें बसे हुए गोधन घोषवाले गोकुलोंमें पहुँचा ॥१०॥

११

जहाँ अत्यन्त गाढ़ा दही बिलोया जाता है। अत्यन्त घनत्व किसीके लिए भी हितकारी नहीं होता। जहाँ गोपीने मन्थक (मथानी) को खींच लिया है, वैसे ही जैसे गुणोंसे प्रियाके द्वारा प्रिय खींच लिया जाता है। सघन शब्द करते हुए मंदीरक (सांकल) से चाँपकर पकड़ा हुआ वह मन्थानक घूमता है। "हो-हो, हला, गोपी मेरे साथ रमण करती है; लेकिन यह मथानी तुम्हारी कामपीड़ा शान्त नहीं कर सकती, इसे मत खींच।" रस्सीसे खींची गयी मथानीके द्वारा, मानो इस प्रकार गाया जाता है? अत्यन्त मथे जानेसे शिथिल शरीर क्या केवल दही ही स्नेह छोड़ देता है, दूसरा कोई स्नेह नहीं छोड़ता? जहाँ तक्र (छाछ) इसी प्रकार छोड़ दिया जाता है। ग्रामीण जन तक्र (तर्क, विचार, और छाछ) से क्या करते हैं? जहाँ पथिक घी-दूध पीते हैं, और पथके कामसे मुक्त होकर सोते हैं। जहाँ गोपीने नरप्रमुखको देखकर बछड़ेकी जगह कुत्तेको बाँध दिया। अपचित्त (अस्त-व्यस्त चित्त) और प्रियमें लीन हुई गोपीने घी छोड़ दिया, और तक्र तपा दिया। जहाँ राजाके मुखरूपी कमलसे रमण करनेकी इच्छा रखनेवाली वधू गर्म उच्छ्वासोंके साथ बैठी हुई थी। जहाँ खोटे राजाओंकी ऋद्धिके समान भैसें, खलों (खलों और दुष्टों) के द्वारा दुही जाती हैं। कोई गोपी काहल और वंशीका शब्द सुनती है, वह घरका काम नहीं करती और सिर धुनती हैं। कोई गोपी कृशोदरी और अनेक बच्चोंवाली होकर भी संकेत स्थानके लिए जाती है। जहाँ क्रीड़ाका अवकाश देनेवाली ताली बजाते हुए गोप मण्डलाकार होकर रास गाते हैं। जहाँ अपने सींगोंसे तरुवरोंको उखाड़नेवाले वृषभोंके द्वारा गम्भीर ढेक्का शब्द किया जाता है।

घत्ता—ऐसे उस गोकुलको छोड़कर, हरिणके सींगों और उखाड़ी हुई जड़ोंवाले शबर पुलिन्दोंसे गहन वनमें जाते हुए उन्होंने पशुओंके मांसाहारों और पहाड़ोंके मकानोंको देखा ॥११॥

१२

बौने तथा सघन स्थूल बलसे, जिनके शरीरोंके जोड़ गठित हैं; कठोर बाणोंसे प्रचण्ड धनुष जिनका कुलक्रमागत पितृकुलधन है; छोटे स्थूल और विरल दाँतोंसे उज्ज्वल, जिनके मुखपर,

सुमडहथूलविरलदसणुज्जलमुहसिहिपिच्छें[4]णिवसणा ।
गयमयपउरपंकचें[5]चिक्कियगुंजादामभूसणा ॥२॥
झंपडकविलकेसरुहिरारुणदारुणतंबणयणया ।
तिक्खखुरुप्पपहरपवियारिय[6]मारियमोरहरिणया ॥३॥
इसुहयदंतिदंतकयमंदिरसंचियचारुचोरया ।
तलतरु[7]वत्तरत्तणीलुप्पलविरइयकण्णपूरया ॥४॥
दिसिपसरंतविमलससियरणिहणरवइजसभयंगया ।
वंसविसेसजायमुत्ताहलचमरीरुहकरग्गया ॥५॥
पीयसुसीयकुसुमरयसुरहियमहिहरकंदरंभया ।
सबरीवयणकमलरसलंपडखंधुद्धरियडिंभया ॥६॥
हरगलगरलमलिणणवजलहरछविसारिच्छकायया ।
आया पहुसमीवि मउलियकर विविहकिरायरायया ॥७॥
गुरुभयवसणिहित्तणियदेहमहीयललग्गभालया ।
ते अवलोइऊण करुणेण णवंतवणंतवालया ॥८॥
णहंततरंतजक्खिथणघुसिणामोयमिलंतमहुयरं ।
चंचलसंगलंतकल्लोलगलत्थियखयरवहुवरं ॥९॥
कच्छवसुंसुयारमयरोहरपुंछुच्छलियणीरयं ।
पत्तो परियणेण सह महिवइ सुरवरसरिदुवारयं ॥१०॥
घत्ता—आवासिउ साहणु वणि सुपसाहणु णिसि पणविवि परमेसरु ।
णं जिणु जिणसासणि थिउ[8] दब्भासणि उववासेण णरेसरु ॥१२॥

१३

अहिवासिउं राएं चक्करयणु जिह तं तिह अवरु वि दंडरयणु ।
सुयवण्णु अहंगु तुरंगरयणु करिरयणु लोहेंवलयं[1]करयणु ।
उग्गमिउ णहंगणि दुमणिरयणु आरूढउ संदणि पुरिसरयणु ।
कइवयणरेहिं सह सूरसंसु णं माणसपंकइ रायहंसु ।
पहरणपरि[2]पुंण्णु महामहंतु परिभमियचक्कचिक्कारु देंतु ।
चलपंचवण्णधयवडललंतु णाणामणिकिरणहिं पज्जलंतु ।
ओलंबियकिंकिणिरणझणंतु तियसिंदह मणि विम्ह[3]उ जणंतु ।
सलिलणिहिसलिलें[4]धोइयपएहिं मुहसंमुहघुलियतरंगएहिं ।
तक्कारिचम्मलट्ठीहएहिं रहु कड्ढिउ मारुयजवहएहिं ।
छक्खंडपुहइवलयाहिवेण अवलोइउ जणणिहि पत्थिवेण ।
घत्ता—हरिसेण व गज्जइ भरहु ण भज्जइ पहु ण कासु किर रुच्चइ ॥
मरुहयकल्लोलहिं चलभुयडालहिं रयणायरु णं णच्चइ ॥१३॥

---

४. MBP °पिछ । ५. P °चिञ्चिक्कय° । ६. MBP °यारियतित्तिरमोर° । ७. M तिलतरु°; T तिलतरु but gloss ताडवृक्ष° । ८. MBP ठिउ ।

१३. १. P °वलियंक° । २. MP °परिपुण्ण° । ३. MBP विभउ । ४. MBP °सलिलसुणिहियपएहिं ।

मयूर पंखका आच्छादन है, गजमदकी प्रचुर कीचड़में सनी हुई गुंजामालाएँ ही जिनके आभूषण हैं, जो घुँघराले और कपिल केशों तथा खूनसे लाल और भयंकर आताम्र नेत्रोंवाले हैं; जिन्होंने तीखे खुरपोंके प्रहारोंसे विदीर्ण कर मोरों और हरिणोंको मार डाला है; जिन्होंने, तीरोंसे आहत हाथियोंके दाँतोंसे निर्मित घरोंमें अचार और बेर इकट्ठे कर रखे हैं, जिन्होंने ताल वृक्षके पत्तों, लाल और नीले कमलोंके फर्णफूल बना रखे हैं, जो दिशाओंमें फैले हुए विमल चन्द्रके समान राजाके यशसे भयभीत हैं, जिनके हाथोंमें वंश-विशेषमें उत्पन्न मोती और चमरी गायके बाल हैं, जो सुशीतल और कुसुमरजोंसे सुरभित महीधरोंकी गुफाओंका जल पीते हैं, जो शबरियोंके मुखरूपी कमलोंके रसके लम्पट और कन्धों-पर अपने बच्चोंको उठाये हुए हैं, जो शिवके कण्ठविषके समान मलिन (श्याम) और नवमेघोंकी छविके समान शरीरवाले हैं, ऐसे विविध किरातराज हाथ जोड़े हुए राजा भरतके पास आये। भारी भयसे जिन्होंने अपने शरीर और भालतलको धरतीपर लगा रखा है, तथा जो अपने बालकोंको झुका रहे हैं, ऐसे उन भील राजाओंको करुणापूर्वक देखकर वह राजा अपने परिजनके साथ उस गंगा नदीके द्वारपर पहुँचा, कि जिसमें नहाती और तैरती हुई यक्षिणियोंके स्तन-केशरके आमोदसे भ्रमर इकट्ठे हो रहे हैं, जिसमें चंचल और संघटित लहरोंके द्वारा विद्याधर-वधुओंको उछाल दिया गया है। जिसमें कच्छप, शिशुमार, मगर और मत्स्योंकी पूँछोंसे जल उछल रहा है।

घत्ता—सुन्दर प्रसाधनोंसे युक्त सैन्य वनमें ठहर गया। रात्रिमें परमेश्वरको प्रणाम कर राजा भरत उपवासपूर्वक दर्भासनपर इस प्रकार बैठ गया, मानो जिन भगवान् जिनशासनमें स्थित हो गये हों ॥१२॥

१३

राजाने चक्ररत्नकी पूजा की। जिस प्रकार उसकी, उसी प्रकार दूसरे दण्डरत्नकी पूजा की। शुकके रंगवाले अभंग अश्वरत्न, और लौह शृंखलाओंसे अलंकृत गजरत्नकी (पूजा की)। आकाशमें सूर्य निकल आया। वह पुरुषरत्न (भरत) अपने रथपर आरूढ़ हो गया। वीरोंके द्वारा प्रशंसनीय, कतिपय मनुष्योंके साथ, (मानो जैसे मानसरोवरके पंकमें राजहंस हो) प्रहरणों (शस्त्रों) से परिपूर्ण, अत्यन्त महान् घूमते हुए रथचक्रोंसे चिक्कार करता हुआ, चंचल फहराते हुए पंचरंगे ध्वजोंसे सुन्दर, नाना मणिकिरणोंसे आलोकित, लटकती हुई किंकिणियोंसे रुनझुन करता हुआ, देवेन्द्रोंके मनमें भय उत्पन्न करता हुआ, वह रथ, जिन्होंने समुद्रके जलमें अपने पैरोंको धोया है, जिनके मुँहके सम्मुख तरंगें व्याप्त हैं (आन्दोलित हैं); जो सारथिकी चर्मयष्टियों (कोड़ों) से आहत हैं, ऐसे हवाके वेगवाले अश्वोंके द्वारा खींचा गया। छह खण्ड धरतीके स्वामी राजा भरतने समुद्रको देखा।

घत्ता—वह समुद्र हर्षसे गरजता है, भरतको सेवा करता है। प्रभु किसके लिए अच्छे नहीं लगते। पवनसे आहत लहरोंरूपी अपनी सुन्दर हाथरूपी डालोंसे मानो रत्नाकर नृत्य कर रहा है ॥१३॥

१४

उक्खिवइ व मोत्तियतंदुलाइं तोयइं णं अग्घंजलिजलाइं ।
भीएण व रायहु लइय वेल दावइ व विउलसलिलंतसेल ।
णं ढोयइ जलमयगल सरंत जलणरकिंकरकररुहफुरंत ।
माणिक्कइं पवरपवालयाइं णं दरिसइ तीरलयालयाइं ।
णं बोहइ वडवाणलपईवु णं वेढिवि रक्खइ जंबुदीवु ।
संखाऊरउ जिह संखु धरइ पहुआणइ किंकरु किं ण करइ ।
उम्मुक्कविविहजलयरसणेहिं णं जंपइ पायालाणणेहिं ।
किं विद्दुमराएं तुहुं जि राउ तेलोक्कपियामहु जासु ताउ ।
मा जोयहि महिवइ तिक्खभल्लि तउ तणिय वाय मज्जायवेल्लि ।
होएप्पिणु अच्छउं एत्थु ताम णउ लंघमि महियलि वसमि जाम ।
तुह मुद्दइ अंकिउ हउं समुद्दु मा किं पि करहि मच्छरु रउद्दु ।
घत्ता—खारत्तु ण मेल्लइ जणु किं बोल्लइ णत्थि सहावहु ओसहु ॥
जसु णामु जि सायरु अवसें सायरु सो संभासइ णिययपहु ॥१४॥

१५

तरुणीअंगाइं व सलवणाइं अहिसिंचियतीरलयावणाइं ।
लंघेप्पिणु रयणायरवणाइं पइसेप्पिणु बारहजोयणाइं ।
ठाएप्पिणु पुणु तेत्तियहिं तेहिं तंबेहिं सरोसहिं लोयणेहिं ।
रिउभवणु पलोइवि णिववरेण अप्फालिउ धणुहुं धणुद्धरेण ।
अंदोलिय तारागहपयंग महि चलिय विवरणिग्गयभुयंग ।
अच्छोडियबंधण विवलियंग णिण्णासिय तासिय रवितुरंग ।
थरहरिय धराहर धरण वरुण आसंकिय जम वइसवण पवण ।
संचालिय सरिसरसायरंभ गय मयगल मुडियालाणखंभ ।
णिवडिय पुरवर पायार गेह मुय कायर णर भयभंतदेह ।
वरवीरहिं खग्गहु दिण्ण दिट्ठि अवर वि चवंति हा णट्ठ सिट्ठि ।
दप्पिट्ठ दुट्ठ भुयबलविमद्दु भडभीयरु भावइ भीमु सद्दु ।
किं मंदरसिहरु सठाणल्हसिउ किं जगु कवलिवि कालेण हसिउ ।
घत्ता—पायालि फणिंदहिं महिहि णरिंदहिं सग्गि सुरिंदहिं कंपिउ ॥
धणुगुणटंकारें अइगंभीरें कासु हूयउं विप्पिउ ॥१५॥

१४. १. P ढोयइ । २. MBP रसंत; K सरंत but corrects it to रसंत । ३. BP दरसइ । ४. MBP °पईउ । ५. MBP जंबुदीउ । ६. MBP संखाऊरिउ । ७. MBP तेल्लोक° । *८. MBP होएविणु अच्छमि । ९. ण हु ।

१५. १. MBP धराधर । २. M आसंकय; BP आसंकइ । ३. P भयवंत । ४. MBP मुट्ठि । ५. MBP भीमसद्दु । ६. B °ण्हसिउ । ७. MBP णं जगु । ८. PK कंपियउ । ९. P विप्पियउ ।

१४

जैसे वह मोतीरूपी अक्षत फेंक रहा है, जल ऐसा मालूम होता है मानो अर्घांजलिका जल हो। भयके कारण जैसे उसने राजा (भरत) की मर्यादा ग्रहण कर ली हो, जैसे वह पानीके भीतरके पहाड़ दिखा रहा हो। मानो चलते हुए और जल-मानवरूपी अनुचरोंकी अंगुलियोंसे स्फुरित जलमदगज, प्रवर प्रवाल और माणिक्य उपहारमें दे रहा हो; मानो किनारोंके लतागृह दिखा रहा हो, मानो बड़वानलरूपी प्रदीप जला रहा हो, मानो घेरकर जम्बूद्वीपकी रक्षा कर रहा हो। जिस प्रकार शंखोंको बजाता है, उसी प्रकार शंखोंको धारण करता है, प्रभुकी आज्ञासे किंकर क्या नहीं करता ? जिसमें विविध जलचरोंके शब्द हो रहे हैं, मानो ऐसे बड़वामुखोंसे वह कहता है कि हे राजन् ! आपको विद्रुमकी ललिमासे क्या प्रेम ? कि जिसके पिता त्रिलोक पितामह हैं। हे महीपति, आप अपनी तीखी भल्लिकाकी ओर न देखें, आपकी बात मेरे लिए मर्यादाकी रेखा है। मैं जबतक यहाँ स्थिर होकर रहता हूँ तबतक महीतलका उल्लंघन नहीं करूँगा। मैं अब आपकी मुद्रासे अंकित समुद्र हूँ। इसलिए मुझपर कुछ भी भयंकर ईर्ष्या नहीं करिए।

घत्ता—वह अपना खारापन नहीं छोड़ता। लोग यह क्यों कहते हैं कि स्वभावकी दवा नहीं होती। जिसका नाम समुद्र है (सायर—सागर); वह अवश्य ही अपने स्वामीसे सायर (सादर) बात करता है ॥१४॥

१५

जो तरुणियोंके अंगोंकी तरह सलवण (लावण्यमय, सौन्दर्यमय) है, और जिसके किनारोंके लतावन सिंचित हैं, ऐसे समुद्रजलोंमें बारह योजन तक प्रवेश कर और वहीं स्थित होकर अपने लाल-लाल तथा क्रोधसे भरे हुए नेत्रोंसे शुभ भवनको देखकर धनुर्धारी राजाने अपने धनुषको आस्फालित किया। उससे तारा ग्रह और पतंग (सूर्य) आन्दोलित हो उठे। जिसमें बिलोंसे नाग निकल आये हैं, ऐसी धरती चलित हो गयी। अपने बन्धनोंको खींचते हुए और काँपते हुए शरीरवाले सूर्यके घोड़े त्रस्त होकर नष्ट हो गये। पवंत धरण (इन्द्र) और वरुण थर्रा उठे। यम, वैश्रवण और यम आशंकित हो उठे। नदी, सरोवर और समुद्रका जल संचालित हो उठा, जिनके आलानस्तम्भ मुड़ गये हैं ऐसे मैगल हाथी भाग गये; पुरवर, परकोटे और घर गिर पड़े। भयसे भ्रान्त-शरीर कायर नर मर गये। श्रेष्ठ वीरोंने अपनी तलवारोंपर दृष्टि डाली। दूसरे कहने लगे कि हा, सृष्टि नष्ट हो गयी। दर्पिष्ठ, दुष्ट ! बाहुबलका मर्दन करनेवाला, योद्धाओंको डरानेवाला वह भयंकर शब्द ऐसा लगता है कि क्या मन्दराचलका शिखर अपने स्थानसे खिसक गया है ? क्या विश्वको निगलनेके लिए कालने अट्टहास किया है ?

घत्ता—पाताललोकमें नागेन्द्र और धरतीपर नरेन्द्र तथा स्वर्गमें सुरेन्द्र काँप उठे। अत्यन्त गम्भीर धनुषकी डोरीकी टंकारसे किसका हृदय भयाक्रान्त नहीं हुआ ? ॥१५॥

१६

धणुवेयजाणुं परिछिण्णमाणु   बंधेप्पिणु णिरुवमु किं पि ठाणु ।
णं कालें भासुरु कालदंडु   णरणाहें पेसिउ वज्जकंडु ।
धम्मुज्झिउ पलयहुयासलीलु   गुणकोडिविमुक्कउ णं कुसीलु ।
पिच्छंचिउ चंचलु णं विहंगु   उज्जुयगइ णं सुयणंतरंगु ।
अइदूरगामि णं परमणाणु   अइसुद्धिवंतु णं सुक्कझाणु ।
अइदीहायारउ णं सुयंगु   अइप्राणहारि णं खलपसंगु ।
अइगुणिहि परंमुहुं होवि गयउं   णं माणुसु कुसमयभंत्तिहयउ ।
अइलोहघडिउ णं लुद्धचित्तु   अइगयणगमणु णं खेयरत्तु ।
अइमोक्खगामि णं चरमदेहु   अइकढिणभेइ णं णइपवाहु ।
णावालउ णं तच्चिय महंतु   हुंकारें चोइउ णं सुमंतु ।

घत्ता—मागहहु णिहेलणि हरिणीलंगणि खुत्तु कणयपुंखुज्जलु ॥
रुइणिज्जियकज्जलि जउंणाणइजलि णं पप्फुल्लिउ सयदलु ॥१६॥

१७

भूभंगभीसभिउडीहरेण   विप्फुरियदसणडसियाहरेण ।
सुरसमरसहासभयंकरेण   दुणिरिक्खविवक्खखयंकरेण ।
देवेण समुद्दपरिग्गहेण   तं पेक्खिवि गज्जिउं मागहेण ।
भणु केणुप्पाडिय जमहु जीह   भणु केण लुहिय खयकाललीह ।
णायउलवलयविलुलंतु गीढु   भणु केण णिसुंभिउ धरणिवीढु ।
भणु केण कलिउ मंदरु करेण   उट्ठाविउ सुत्तउ सीहु केण ।
भणु केण खलिउ णहि भाणु जंतु   णिठ्ठिवण्णउ प्राणहं को जियंतु ।
भणु कासु करोडिहि रिट्ठु रसिउ   भणु को कयंतदंतंति वसिउ ।
भणु केण विहंडिउ मज्झु माणु   केणेहु विसज्जिउ कुलिसबाणु ।

घत्ता—जेणेउं वियंभिउं रणु पारंभिउं सो महु अज्जु ण चुक्कइ ॥
णिब्भंगु जमाणणु भीयउ काणणु बिहिं वि एक्कु ध्रुवु ढुक्कइ ॥१७॥

१८

इय भणिवि तेण कड्ढिउ करालु   धाराल‍उ णावइ मेहजालु ।
पडुताडणखंडियभडवमालु   असि अरिकरिमोत्तियदंतुरालु ।
दढमुट्ठिणिव्वीडियउ वहइ वारि   दासु व विंझइरि व वंसधारि ।
वसुणंदउ ससिमंडलसरिच्छु   उरि चप्पिवि उट्ठिउ लोहियच्छु ।

---

१६. १. MB °जाण । २. MBP उज्जुय° । ३. MBP अइसिद्धिवंतु । ४. MBP पाण° । ५. MBP होइ । ६. MBP °भंति° । ७. MBP लुद्धरत्तु ।

१७. १. MBP विलुलंत । २. M धरणिपीढु । ३. MBP पाणहं । ४. B रिद्धु । ५. P दंतंतवसिउ । ६. MBP धुउ ।

१८. १. MBP °कवालु ।

१६

धनुर्वेदके अनुसार ज्ञात और निश्चित मानवाला बाण राजा भरतने किसी अनुपम स्थान-को लक्ष्य बनाकर प्रेषित किया, मानो कालने भास्वर कालदण्ड प्रेषित किया हो। प्रलयकी आगकी लीलावाला वह बाण धम्मुज्झित (धर्म और डोरीसे मुक्त), कुशीलकी तरह मानो गुणकोटि से (गुणोंकी परम्परासे मुक्त, डोरी और धनुषसे मुक्त), विमुक्त वह (बाण) मानो विहंग (पक्षी) की तरह, पिच्छ (पंख और पुंख) से सहित था, सुजनके हृदयकी तरह अत्यन्त सीधी गति-वाला था, परम ज्ञानकी तरह अत्यन्त दूर तक गमन करनेवाला था। शुक्लध्यानकी तरह अत्यन्त शुद्धिवाला था, भुजंगकी तरह अत्यन्त बड़े आकारवाला था, दुष्टके प्रसंगकी तरह प्राणोंका अत्यन्त अपहरण करनेवाला था। वह बाण अत्यन्त गुणी (मुनि और धनुषसे) से विमुख होकर इस प्रकार गया मानो खोटे शास्त्रोंकी भक्तिसे आहत मनुष्य हो, लोभीके चित्तके समान वह अति लोह घडिउ (अत्यन्त लोभ, और लोहेसे रचित) था। वह विद्याधरत्वकी तरह मानो आकाशमें अत्यन्त गमन करनेवाला था। मानो चरमशरीरीकी तरह शीघ्र मोक्षगामी था। मानो नदीप्रवाहकी तरह अत्यन्त कठिन भेदनवाला था, वही (तच्चिय) नदीप्रवाह और महान् तात्त्विककी तरह ठाणालउ (नावोंसे युक्त और नमनशील) था, वह मानो हुंकारसे प्रेरित सुमन्त्र था।

घत्ता—भरतने हरित और नीले मणियोंसे रचित मागधराजके घरमें स्वर्णपुंखसे उज्ज्वल तीर फेंका, जो ऐसा लग रहा था मानो अपनी कान्तिसे काजलको पराजित करनेवाले यमुना नदीके जलमें शतदल कमल खिला हुआ हो ॥१६॥

१७

भौंहोंके भंगसे भयंकर भृकुटी धारण करनेवाला, विस्फुरित दाँतोंसे ओठोंको चबाता हुआ, हजारों देवयुद्धोंमें भयंकर दुर्दर्शनीय शत्रुओंको क्षय करनेवाला और समुद्रका परिग्रह करनेवाला वह मागधदेव उस तीरको देखकर गरज उठा। वह बोला—"बताओ यमकी जीभ किसने उखाड़ी, बताओ क्षयकालकी रेखाको किसने पोंछा ? बताओ नागकुलके वलयके द्वारा गृहीत धरिणीपीठको किसने नष्ट कर दिया ? बताओ किसने हाथसे मन्दराचल उठाया ? सोते हुए सिंहको किसने जगाया ? बताओ आकाशमें जाते हुए सूर्यको स्खलित किसने किया ? कौन जीते जी अपने प्राणोंसे विरक्त हो गया ? बताओ किसके सिरपर कौआ बोला है ? बताओ यमके दाँतोंके भीतर कौन बसा हुआ है ? किसने मेरे मानको भंग किया है ? किसने यहाँ यह वज्रबाण छोड़ा है ?

घत्ता—जिसने यह तीर फेंका है और युद्ध प्रारम्भ किया है, वह आज मुझसे नहीं बच सकता, अनिष्ट यममुख या भयंकर कानन, दोनोंमें-से एक, निश्चित रूपसे उससे भेंट करेगा ॥१७॥

१८

यह कहकर उसने कुशल आघातसे जिसने योद्धासमूहको नष्ट किया है, जो शत्रुरूपी गजके मोतीरूपी दाँतोंवाली है, ऐसी भयंकर तलवार इस प्रकार निकाल ली जैसे धारावर्षी मेघजाल हो। मजबूत मुट्ठियोंसे पीड़ित जो दासकी तरह जल धारण करती है, जो विन्ध्याचलके समान वंश (बाँस और कुटुम्ब) को धारण करनेवाली है, चन्द्रमण्डलके समान उस तलवारको अपने

पहु पेच्छिवि केण वि लइउ कोंतु[2] आरुट्ठु को वि हणु हणु भणंतु ।
मोग्गरु मुसुंढि [3]पैरसु वि तिसूलु केण वि करि लइयउ भिंडि[4]मालु ।
वा[5]वेल्लु सेल्लु झसु सत्ति मुसलु हलु सव्वलु कं[6]पणु जुज्झकुसलु ।
केण वि भुयंगु केण वि विहंगु केण वि तुरंगु केण वि मयंगु ।
केण वि अलियल्लि घुलंतजीहु केण वि खरणहरुक्केरु सीहु ।
केण वि संचोइउ करहु सरहु कु वि आहवि धाइउ जाम सरहु ।

घत्ता—ता मागहमंतिहिं कयकुलसंतिहिं पणवेप्पिणु उब्बाइउ ॥
छणससहरवयणहिं तारहिं णयणहिं रायसिलिम्मुहु जोइउ ॥१८॥

१९

तेहिं लिहियइं दिट्ठइं अक्खराइं सुरमणुयखयरदेसंतराइं ।
जिणतणयहु विविहणिहीसरासु णियकाल[3]वट्टसंधियसरासु ।
रायहु भरहहु ण णवंति [4]जेइं णिच्छउ दोहाइं मरंति तेइं ।
मणु रंजिवि जुंजिवि अवहिणाणु दक्खविउ ससामिहि गंपि बाणु ।
पुणु अक्खिउ खलयणमइयवट्टि उप्पण्णउ महियलि चक्कवट्टि ।
भो मागह किं जुज्झग्गहेण मुइ पहरणु किं विणडिउ गहेण ।
जइ अज्जु ण इच्छहि तासु सेव तो तुम्हइं णउ अम्हइं मि देव ।
तुहुं एक्कु ण अवरइं सुरसयाइं तहु मंदिरि दासत्तणु गयाइं ।
लिहियहु किं [6]किरि कीरइ विसाउ दीसइ पणविवि रायाहिराउ ।
तें वयणें सो [7]परिमुक्कदप्पु थिउ मंतपहावें णाइं सप्पु ।
अवलोयवि [8]सरलिविपंतियाउ भावेप्पिणु मंतिपउत्तियाउ[9] ।

घत्ता—मागहिण अगावें [10]सविणयभावें चक्केण व दिवसेसरु ।
पणविवि थुइवयणहिं णाणारयणहिं पूइवि दिट्ठु णरेसरु ॥१९॥

२०

सविहवविम्हा[1]वियसयमहेण विहसेप्पिणु वोल्लिउ मागहेण ।
जय भरह महागयलीलगामि तुहुं इह जम्महु महु परमसामि ।
तुहुं इंदु इंदरिद्धीसणाहु तुहुं हुयवहु अरिवरदिण्णडा[2]हु ।

---

२. MBP कुंतु । ३. MBPK पट्टिसु तिसूल । ४. P भिंडमालु । ५. MBP वावल्ल । ६. MBP कप्पणु ।

१९. १. P तिहिं and gloss बाणे । २. MBP लेहियइं । ३. M °कालवट्टि । ४. M जे वि । ५. M ते वि । ६. B किंकर । ७. K पविमुक्क° । । ८. MBP सरलियपंतियाउ । ९. MP add after this भरहेसरायणामंकियाउ, सुरणरखेयरभय (M सय) गारियाउ, ता तेण वि चित्ति चमक्कियाउ, वाएप्पिणु अक्खरपंतियाउ; B adds : भरहेसरायणामंकियाउ, जुइणिज्जियरवियरकंतियाउ, ता तेण वि चित्ति चमक्कियाउ, चक्कवइभरहणामंकियाउ । १०. M अकुडिल° ।

२०. १. MBP °विभाविय° । २. MBP °दाहु ।

उरमें चाँपकर, लाल-लाल आँखोंवाला मागधेश वसुनन्द उठा। स्वामीको देखकर किसीने भाला ले लिया, कोई 'मारो-मारो' कहता हुआ क्रुद्ध हो उठा। किसीने मुद्गर, भुशुण्डी, फरसा, त्रिशूल, हल और भिन्दिमाल अपने हाथमें ले लिया। किसीने बावल्ल, सेल, झस, शक्ति, मूसल, हल, सव्वल और युद्धकुशल कम्पन ले लिया। किसीने भुजंग, किसीने विहंग (गरुड़), किसीने तुरंग, किसीने मातंग (गज), किसीने जीभ हिलाता हुआ बाघ, किसीने तीव्र नखोंके समूहवाला सिंह, किसीने ऊँट और श्वापदको प्रेरित किया। कोई तबतक रथसहित युद्धमें दौड़ा।

घत्ता—जिन्होंने कुलकी शान्ति स्थापित की है ऐसे मागध-मन्त्रियोंने प्रणाम कर उस तीरको उठाया और पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाले उन्होंने स्वच्छ नेत्रोंसे राजा भरतके उस तीरको देखा ॥१८॥

१९

उसने (मागधेश वसुनन्दने) उसमें लिखे हुए हस्ताक्षर देखे—"जो देव, मनुष्य, विद्याधर और देशान्तरके विविध निधियोंके स्वामी तथा अपने कालपृष्ठ नामक धनुषपर तीर साधे हुए, ऋषभनाथके पुत्र राजा भरतको नमस्कार नहीं करते, वे निश्चित ही दो खण्ड होकर मरेंगे।" तब अवधिज्ञानका प्रयोग कर और अपने मनमें प्रसन्न होकर, उन्होंने अपने स्वामीको जाकर वह तीर दिखाया और कहा कि "दुष्टजनोंको चूर-चूर करनेवाला चक्रवर्ती राजा धरतीपर उत्पन्न हो गया है। हे मगधराज, युद्धके आग्रहसे क्या? शस्त्र छोड़ो, क्यों ग्रहसे प्रवंचित होते हो। यदि आज आप उसे स्वीकार नहीं करते, तो हे देव, न तो तुम हो और न हम लोग। तुम अकेले नहीं, हे देव, दूसरे भी सैकड़ों देवोंने उसके घरमें दासता स्वीकार कर ली है, जो भाग्यमें लिखित है, उसका क्या विषाद करना? प्रणाम करके राजाधिराजसे भेंट की जाये।" इन शब्दोंसे उसने अपना घमण्ड वैसे ही छोड़ दिया जैसे मन्त्रके प्रभावसे साँप स्थित हो गया हो। बाणकी सरल पंक्तियाँ पढ़कर तथा मन्त्रियोंके वचनोंका विचार कर—

घत्ता—गर्वरहित मागध नरेशने विनयभावसे प्रणाम कर और नाना रत्नों और स्तुति-वचनोंसे पूजा कर राजाको उसी प्रकार देखा, जिस प्रकार चक्रवाकके द्वारा सूर्य देखा जाता है ॥१९॥

२०

अपने वैभवसे इन्द्रको विस्मित करनेवाले मगधने हँसकर कहा, "हे महागजलीलागामी आपकी जय हो, आप मेरे इस जन्मके स्वामी हैं, इन्द्र और कुबेरके स्वामी आप इन्द्र हैं। शत्रुप्रवर-

तुहुं जमु जमकरणु ण का विभंति तुहुं वरुणु सयलजणविहियसंति ।
तुहुं धणउ [३]धणउ सुहिणिहियकामु तुहुं पवणु पबलबलदलणथामु ।
ईसाणु [४]महेसरणवियपाउ तुहुं एक्कु जि जगि रायाहिराउ ।
[५]तुह असिजलधारइ हरियछाय [६]अरिणरवइ तरु के के ण जाय ।
[७]तुह असिजलधारइ [८]उद्धसासु वड्डारिउ भुवणंतरि ण कासु ।
तुह असिजलधारइ परिल्हसंति बहुसलिल वि रयणायर तसंति ।
तुह असिजलधारइ अइहुयाइं रिउबहुणयणंसुयबिंदुयाइं ।
तुह असिजलधारइ कुलि असोउ हूयउ णिच्चं चिय भुत्तभोउ ।

घत्ता—तुहुं भरह पयावइ [९]पढमसहीवइ महिणाहहिं मणि भाविउ ।
ताराणक्खत्तहिं पय पणवंतहिं [१०]पुप्फदंतु जिह सेविउ ॥२०॥

इय महापुराणे तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारे महाकइपुप्फयंतविरइए महाभव्वभरहाणुमण्णिए महाकव्वे मागहपसाहणं णाम बारहमो परिच्छेओ सम्मत्तो ॥ १२ ॥

॥ संधि ॥ १२ ॥

३. MBP धणइं । ४. MBP महीसर° । ५. B omits this line. ६. MPK अहिणरवइ । ७. B omits this line. ८. MP उड्ढसासु । ९. MBP पढमु । १०. M पुप्फयंतु; BP पुप्फयंत ।

को दाह देनेवाले आप अग्नि हैं, आप दम और यमकरण हैं, इसमें किसी प्रकारकी भ्रान्ति नहीं है। सुधियोंके लिए निहितकाम, आप धन देनेवाले कुबेर हैं, प्रबल शत्रुदलका दलन करनेकी क्षमता रखनेवाले पवन हैं? राजाओंको अपने चरणोंमें झुकानेवाले ईशानेन्द्र हैं। आप ही विश्वमें एकमात्र राजाधिराज हैं। तुम्हारी असिवररूपी जलधारासे कौन-कौन, शत्रुराजारूपी वृक्ष हरियछाय (जिनकी छाया / कान्ति छीन ली गयी है, ऐसे तथा हरी-भरी कान्तिवाले) नहीं हुए। आपकी असिजलधारासे विश्वमें किसकी साँस (श्वास और सस्य) नहीं बढ़ी ? आपकी असिरूपी जलधारासे अत्यधिक जलवाला होते हुए भी समुद्र त्रस्त हो उठता है और अपना गर्व छोड़ देता है। आपकी असिरूपी जलधारासे शत्रुओंकी अनेक आँखोंके अश्रुबिन्दु और अधिक हो गये। तुम्हारी असिरूपी जलधारासे कुलमें नित्य ही अशोक मुक्त-भोग हो गया।

घत्ता—हे भरत प्रजापति और प्रथम महीपति, पृथ्वीनाथोंके द्वारा चाहे जाते, चरणोंमें प्रणाम करते हुए उनके द्वारा आप वैसे ही सेवित हैं, जैसे कि ताराओं और नक्षत्रोंके द्वारा जिन तथा सूर्यचन्द्र सेवित हैं ॥२०॥

इस प्रकार त्रेसठ महापुरुषोंके गुणालंकारोंसे युक्त महापुरुषमें महाकवि पुष्पदन्त
द्वारा विरचित एवं महाभव्य भरत द्वारा अनुमत महाकाव्यका मागध
प्रसाधन नामका बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥१२॥

संधि १३

सोहिवि मागहु गं[2]हविसमु णविवि पसिद्धसिद्धिणेयारहो ॥
रुंजिवि सीहु व वरतणुहि भरहराउ गउ दाहिणदारहो ॥ ध्रुवकं ॥

१

धरणीसरो चलइ गरुडद्धओ घुलइ ।
सिमिरं समुल्ललइ धूली णहे मिलइ ।
सु[3]रसिरिहरं कमइ पडिवलइं उवसमइ ।
हरिवयणलालाइ करिदाणवेलाइ ।
जणजणियसंकेण तंबोलपंकेण ।
चरणाइं लिप्पंति हारेहिं गुप्पंति ।
अइगरुयभारेण सामंतचारेण ।
दसदिसिवहं भमइ पुहईयलं णमइ ।
णाइणिहिं णउ रमइ विसवाणियं वसइ ।
कह कं[4]ह व भरु सहइ मउ मुयइ गइ महइ ।
फणिपुंगमो तसइ लवण्णवो रसइ ।
णरवइभुए वसइ रणजयसिरी हसइ ।
परणिवबलं गसइ विसमत्थलिं कसइ ।
वरवाहिणी चरइ दुं[5]ग्गं पि पइसरइ ।
जलदुग्गमं तरइ तरुदुग्गमं हरइ ।
गिरिदुग्गमं समइ गयणंगणं कमइ ।
भडथडहिं तुरएहिं संदणहिं दुरएहिं ।
अमरेहिं खयरेहिं रिउवग्गखयरेहिं ।
छव्विह वि संकमइ अं[6]रिपत्थिवे दमइ ।
रायस्स वसि करइ अवसो भिसं रमं[7]इ ।

MBP give, at the commencement of this Samdhi, the following stanza :—

तीव्रापद्दिवसेषु बन्धुरहितेनैकेन तेजस्विना
संतानक्रमतो गतापि हि रमा कृष्टा प्रभोः सेवया ।
यस्याचारपदं वदन्ति कवयः सौजन्यसत्यास्पदं
सोऽयं श्रीभरतो जयत्यनुपमः काले कलौ सांप्रतम् ॥

GK do not give it.

१. १. P साहेप्पिणु । २. MB गहिवि समु; P महिवि समु । ३. P सुरसिहरि संकमइ । ४. MBP कह वि । ५. M दुग्गे पि । ६. MBP परपत्थिवे । ७. MBP मरइ; K रमइ, but writes above it मरइ ।

सन्धि १३

आक्रमण करनेमें विषम मागधराजको सिद्धकर तथा प्रसिद्ध सिद्धिके नेता जिन भगवान्‌को प्रणामकर, सिंहके समान गर्जनाकर, राजा भरतने दक्षिण द्वारके वरदामा तीर्थके लिए प्रस्थान किया।

१

राजा चलता है। गरुड़ध्वज फहराता है। सेनाएँ तेज गतिसे चलती हैं, धूल आकाशमें छाती है। सुरलक्ष्मीके घरका अतिक्रमण करती हैं। वह घोड़ोंके मुखोंकी लारों, हाथियोंकी मद-जल-रेखाओंसे प्रतिबल सेनाओंको शान्त करती हैं। लोगोंको शंका उत्पन्न करनेवाले पानों (ताम्बूलों) की कीचड़से पैर लथपथ हो जाते हैं, हारोंमें उलझ जाते हैं। अत्यन्त भारी भारसे तथा सामन्तोंके चढ़नेसे दसों दिशापथ घूमने लगते हैं, पृथ्वीतल झुक जाता है। नागिनें रमण नहीं करतीं, विषकी ज्वाला उगलने लगती हैं। किसी प्रकार भार सहन करती हैं, मद छोड़ देती हैं, कहीं भी जाना चाहती हैं। नागराज त्रस्त होता है। लवणसमुद्र गरजता है। रण-विजय-श्री राजाके हाथमें निवास करती है और हँसती है। शत्रु-राजाओंके सैन्यको ग्रस्त करती है, विषम-स्थलोंको चूर-चूर करती है; श्रेष्ठ सेना चलती है, दुर्गमें प्रवेश करती है, जलदुर्गको पार करती है, तरुदुर्गोंका अपहरण करती है। गिरिदुर्गमोंको शान्त करती है। गगनांगनका अतिक्रमण करती है; भटघटाओं, घोड़ों, रथों, गजों, देवों, विद्याधरों, शत्रुवर्गके विद्याधरोंके द्वारा छह प्रकारकी सेना संक्रमण करती है और शत्रुराजाका दमन करती है, राजाको वशमें लाती है। जो सेना वशमें नहीं होती वह प्राणोंसे वियुक्त होती है।

घत्ता—काणणि वईजयंतिणियडे बलु आवासिउ परगहणायरु ॥
गज्जइ गज्जंतहिँ गयहिँ पलयकालि णं खुहियउ सायरु ॥१॥

२

उवजलहिजलहितीराइयउ गिरिगेरुयरेणुयराइयउ ।
सालालइ णट्टसालसहिउ तालालइ तूरतालमहिउ ।
उत्तुंगमङ्कि कयमंडवरु रत्तासोयंकि असोयधरु ।
कंचणवंतइ कंचणफुरिउ पुण्णायपउरि पुण्णायरिउ ।
ससिरीसि सिरीसपसाहियउ बहुवंसि णिवंसविराइयउ ।
संठियँसुवेसि वेसाभवणु सभुयंगइ भमियभुयंगगणु ।
सिहिगलरवि मंगलरवगहिरु सरिवहरिसु कूरवइरिवहिरु ।
सविसायइ अविसायउ सविहु माइंदथइइ मायंदणिहु ।
कइलुकइ कइहिँ पसंसियउ थिय हरिवरि हरिवरभूसियउ ।
परलच्छीगहणुक्कंठियउ वणि साहणु सयलु वि संठियउ ।
अत्थमिउ सूरु तमभरियदिसि थिउ णिसि उववासें रायरिसि ।
घत्ता—महिणाहेण समच्चियइं णियकुलचिंधइं चावइं चक्कइं ।
झाइउ मंतु महारिहरु [10] दीवकवाडइं विहडिवि थक्कइं ॥२॥

३

तहिँ अवसरि दिणयरु उग्गमिउ भरहेसें जिणवरिंदु णमिउ ।
रहु वाहिउ सहसा तेण किह संपुण्णमणोहरु पुण्ण जिह ।
कसपहरतुरियपेरियतुरउ मरुफंसफारफरहरियधउ ।
विरसियरहंगरोसियउरउ पहरणपरिपुण्णसुवण्णमउ ।
मणिघंटाजालहिँ झणझणइ भडभारक्कंतउ णं कणइ ।
कइवयजोयणइं महासरहो जलु लंघिवि पुणरवि सायरहो ।
पव्वालंकरियउ णं वरिसु कोडीसरु किं ण जणइ हरिसु ।
सुविसुद्धवंसु गुणणमियतणु सुकलत्तु व पहुणा लइउ धणु ।
गुणु कड्ढिवि लीलइ जे णियउ करु सवणि ससि व्व सहइ थियउ ।
रेहइ सरु दिणयरणिम्मलहो णवणालु व कुंडलसयदलहो ।
घत्ता—कहइ व जाइवि णरवइहि महु संगेण वि वहइ खलत्तणु ।
गुणथिरकरपरियड्ढियउ कण्णालग्गु चावकुडिलत्तणु ॥३॥

---

८. MPT वइजयंत°; B वइजयंते ।

२. १. M मेरुय°, but records a *p* °गेरुय° । २. P °रेणुविराइयउ । ३. दूसासाल° । ४. MB छत्तुंगमङ्कि । ५. MB °मड्डवरु; P मडवरु । ६. P रत्तासोयंकियसोय° । ७. MP संठिउ । ८. MBP सरिवहिरिसु; K °वहरिसु but corrects it to वहिरिसु । ९. MBP हरिवरेहिं हरि भूसियउ । १०. MBP दो वि ।

३. १. MBP °मणोरह । २. MBP जोज्जियउ । ३. MBP °लग्गचाव° ।

घत्ता—वैजयन्तके निकट वनमें उसने शत्रुको ग्रहण करनेवाली सेनाको ठहरा दिया, जो गजोंके गरजनेपर इस प्रकार लगती है, मानो प्रलयकालमें समुद्र क्षुब्ध हो उठा हो ॥१॥

२

उपसमुद्र वैजयन्त और समुद्रके किनारोंपर ठहरा हुआ पहाड़की गेरूकी धूलसे शोभित वह सैन्य शाल वृक्षोंके घरोंमें नृत्यशालाओंसे सहित था, तालवृक्षोंके घरमें तूर्योंके तालोंसे महनीय था, ऊँची अटवीमें वह बलात्कार करनेवाला था, रक्ताशोक वृक्षकी गोदमें अशोकको धारण कर रहा था। चम्पक वृक्षोंमें वह स्वर्णसे युक्त था। पुन्नागप्रवरमें श्रेष्ठ चरितवाला था। शिरीष वृक्षोंमें शिरीष (मुकुट) से प्रसादित था। अनेक वंशवृक्षोंमें जो नृवंशोंसे विराजित था, अपने सुन्दर रूपमें स्थित वह वेश्याभवनके समान था, भुजंग वृक्षोंसे सहित होनेपर उसमें लम्पट घूम रहे थे, मयूरोंके सुन्दर शब्दोंमें वह मंगल ध्वनिसे गम्भीर था। नदियोंके कूटतटोंपर वह क्रूर शत्रुओंके वधमें आदर करनेवाला था। शाकवृक्षोंसे सहित होनेपर प्रभुके साथ वह विषादहीन था। मातंग (आम्रवृक्ष) में स्थित होनेपर वह लक्ष्मी और चन्द्रमाके समान था। कवि (राजा विशेष) के छिपनेपर वह कवियोंके द्वारा प्रशंसनीय था, जो हरिवरके निकट होनेपर हरिवरसे भूषित था। दूसरोंकी लक्ष्मीको ग्रहण करनेमें उत्कण्ठित समस्त सैन्य इस प्रकार वनमें ठहर गया। सूर्य अस्त हो गया। दिशाएँ अन्धकारसे भर उठीं। राजा रातमें उपवासमें स्थित हो गया।

घत्ता—पृथ्वीके स्वामीने निज कुलचिह्नों, धनुषों और चक्रोंकी पूजा की। महान् शत्रुओंका हरण करनेवाले मन्त्रका ध्यान किया। उस द्वीपके किवाड़ खुलकर रह गये ॥२॥

३

उसी अवसरपर सूर्य उग आया। भरतेशने जिनवरेन्द्रको नमस्कार किया। उसने शीघ्र अपना रथ इस प्रकार हाँका कि जैसे सम्पूर्ण सुन्दर पुण्य हो। कोड़ोंके प्रहारोंसे घोड़े शीघ्र प्रेरित हो गये, हवाके स्पर्शके विस्तारसे ध्वज फहरा उठे। शब्द करते हुए चक्रोंसे साँप क्षुब्ध हो उठे। रथ प्रहरणोंसे परिपूर्ण और स्वर्णमय था। मणियोंके घण्टाजालोंसे जो झनझना रहा था, मानो योद्धाओंके भारसे आक्रान्त होकर शब्द कर रहा हो, महासर (जल या स्वर) वाले समुद्रके जलको कई योजनों तक लाँघनेके बाद राजाने धनुष हाथमें ले लिया। कोटीश्वर (धनुष) क्या पर्वकी तरह, पर्वालंकृत (उत्सवोंसे अलंकृत / गाँठोंसे अलंकृत) हर्ष उत्पन्न नहीं करता। वह सुकलत्रकी तरह सुविशुद्ध वंश (कुलीन बाँस) था, तथा उसका शरीर गुणोंसे (दया नम्रतादि गुण / डोरी) से नमित था। डोरी खींचकर कानों तक लीलापूर्वक ले जाया गया हाथ ऐसा शोभित हो रहा था, मानो श्रवण नक्षत्रमें चन्द्रमा स्थित हो। उसपर तीर इस प्रकार सोह रहा था जैसे सूर्यसे निर्मल (विकसित) कुण्डलरूपी शतदलपर नव दण्ड नाल हो।

घत्ता—डोरी और स्थिर हाथसे आकर्षित कानों तक लगा हुआ वह (तीर) जैसे जाकर राजाओंसे धनुषकी कुटिलता कहता है कि वह मेरे साथ भी दुष्टता धारण करता है ॥३॥

४

[1]जीयोविमुक्कु जीवियहरणु णं दिणयरु खरपसरियकिरणु ।
बहुलक्खगाहि मो मग्गणउ णं पेसिउ [2]दूयँउ अप्पणउ ।
णिवडिउ सहमंडवि वरतणुहि कह कह व ण लग्गउ [3]तँहु तणुहि ।
कंचण[4]पुंक्खेणुजोइयउ सो तेण लएवि पलोइयउ ।
सुरदणुयदप्पलीलाहरइं दिट्ठइं णरवइणामक्खरइं ।
अरविंदचंदविमलाणणहो महु आइजिणेसरणंदणहो ।
भरहहु जो जो ण सेव करइ सो सो अहि णरु अमरु वि मरइ ।
ता तेण जि तं जि समिच्छियउ थोवउ णियपुण्णु दुगुंछियउ ।
गउ तहिं जहिं सइं अच्छइ भरहु मयरहरमज्झि खंचियसरहु ।

घत्ता—अक्खिवि णाउं सगोत्तु कुलु पणविउ सो [5]महिवइभत्तारहु ।
[6]सुरहं मि तुच्छधम्मफलिण लग्गइ सिरि करु परपडिहारहु ॥४॥

५

इंदीवरलोयणु सच्छमणु पभणइ वरतणुमहिलुलियतणु ।
तुह विग्गहु णिग्गहु विग्गहहो [1]तुंह संधाणु जि कारणु महहो ।
पइं सामिय [2]संधिउं जासु सरु [3]वउसंधिउ भक्खइ तहु खयरु ।
पिउ जासु अणिंदु जिणिंदु सइं पुण्णहिं विणु पहु को लहइ पइं ।
लइ लइ एयउ हारावलिउ णं महिघुलियउ तारावलिउ ।
लइ सुरधरणीरुहसंभवइं कुसुमइं णिच्चं चिय णवणवइं ।
लइ णेउराइं लइ कंकणइं लइ दिव्वइं सत्थइं घणघणइं ।
लइ [4]दिव्वंगइं वत्थइं वरइं लइ खीरतरंगइं चामरइं ।
धम्मु व जीवहु अब्भुद्धरणु परमेसर तुहुं जि मज्झु सरणु ।
तं णिसुणिवि भरहें बोल्लियउ एउ वि अवरु वि [5]मोकल्लियउ ।
जज्जाहि लएप्पिणु णिययवरु अच्छहि महु होइवि आणयरु ।

घत्ता—पूरइ महु महिवइ जसेण दविण[6]विलासु वासु किं वण्णिउ ॥
उत्तमु जगि [7]अहिमाणु धणु एउ वयणु किं [8]पइं णायण्णिउ ॥५॥

६

पप्फुल्लियदुमरसदावणिय [1]सुयपिंछरिंछकोड्डावणिय ।
वरतणु सुरु जिणिवि सुहावणिय वेइय धरेवि दीवहु तणिय ।
पुणु जयदुंदुहिसद्दहु मिलिउ सहुं राएं साहणु संचलिउ ।
[2]पच्छिमदिसि संमुहु धाइयउ सव्वत्थ जि कहिं मि ण माइयउ ।

---

४. १. MBP जीयाइ मुक्क । २. MBP दूवउ । ३. M तउ । ४. MP °पुंखेणु° । ५. MBP महिवहु-भत्तारहु । ६. MBP सुरहम्मि धम्मतुच्छफलिण ।

५. १. MBP तुहुं । २. B संधिय । ३. M चउसंधिउ । ४. MBP देवंगइं । ५. MP मोकल्लियउ । ६. M विलास । ७. MBP अहिमाण° । ८. MBP पइं किं ।

६. १. MP सुयरिच्छपिच्छ°; B सुयरिछपिछ° । २. B °दिससंमुहु ।

४

ज्या (प्रत्यंचा) से विमुक्त जो जीवनका हरण करता है, मानो प्रखर प्रसरित किरणोंवाला सूर्य हो। वह मानो मार्गण (बाण / याचक) है जो बहुलक्ष्यग्राही है। मानो अपना प्रेषितदूत है। वह जाकर वरदामतीर्थके राजाके सभामण्डपमें गिर पड़ा। उसके शरीरमें किसी प्रकार लगा भर नहीं। स्वर्णपुंखसे आलोकित उसे राजाने उठाकर देखा। देवों और दानवोंकी दर्पलीलाका अपहरण करनेवाले राजाके नामके ये अक्षर उसने उसमें देखे—"अरविन्द और चन्द्रमाके समान विमलमुख आदि जिनेश्वरके पुत्र मुझ भरतकी जो-जो सेवा नहीं करता, वह चाहे नाग, नर और अमर हो, मुझसे मरेगा।" तब उस राजाने भी इसकी इच्छा की और अपने थोड़े पुण्यकी निन्दा की। वह स्वयं वहाँ गया जहाँ राजा भरत सागरके मध्यमें तीरोंसे अंचित था।

घत्ता—अपना नाम, गोत्र और कुल बताकर उसने शत्रुका प्रतिहार करनेवाले धरतीके राजाको प्रणाम किया। देवोंको भी तुच्छ धर्मके फलसे लक्ष्मी हाथ लग जाती है ॥४॥

५

इन्दीवरके समान नेत्रवाला स्वच्छ मन वरतनुकी धरतीपर अपने शरीरको झुकाते हुए वह कहता है—"तुम्हारा शरीर युद्धोंका निग्रह करनेवाला है, तुम्हारा सन्धान पूजाका कारण है। हे स्वामी, तुमने जिसपर सर-सन्धान किया है उसके शरीरकी सन्धियाँ गीध खा जाता है। जिसका पिता स्वयं अनिन्द जिनेन्द्र हैं, हे स्वामी! पुण्योंके बिना तुम्हें कौन पा सकता है? लो यह हारावलि, स्वीकार करो, मानो यह धरतीपर पड़ी हुई तारावलि है। लो देवभूमिके वृक्षों (कल्पवृक्षों) से उत्पन्न नित्य नव-नव पुष्प लीजिए। नूपुर लें, कंकण लें, घन-घन दिव्य शस्त्र लें। श्रेष्ठ दिव्यांग वस्त्र लें, दूधकी तरंगोंकी तरह चामर स्वीकारें, जिस प्रकार जीवके लिए अभ्युद्धरण है, उसी प्रकार तुम्हीं मेरे लिए शरण हो।" यह सुनकर भरतने कहा, "इसे और दूसरेको मैंने बन्धनमुक्त किया, इसे लेकर अपने घर आओ और मेरे आज्ञाकारी होकर रहो।"

घत्ता—"मेरा राजा यशसे पूरित रहता है, द्रव्यविलास और नाशका क्या वर्णन करूँ। विश्वमें अभिमान धन ही उत्तम है, क्या यह वचन तुमने नहीं सुना" ॥५॥

६

खिले हुए वृक्षोंके रसको दरसानेवाली, शुकसमूहके पंखोंकी कतारसे कुतूहल उत्पन्न करनेवाली, द्वीपकी सुहावनी सीमाओंको ग्रहण कर, वरतनु देवको जीतकर, फिर जयके नगाड़ोंके शब्दोंसे मिली हुई सेना राजाके साथ चली। वह पश्चिम दिशाके सम्मुख दौड़ी। सर्वत्र वह कहीं

हयमुहपयलियफेणुज्जलउ सव्वत्थ जि [3]भँडथडसंकुलउ।
सव्वत्थ जि गयमयसिंचियउ सव्वत्थ जि धयमालंचियउ।
सव्वत्थ जि गेज्जावलिरणिउ सव्वत्थ जि [4]बंदिविंदझुणिउ।
सव्वत्थ जि छत्तणिरुद्धदिसु सव्वत्थ जि सुरहिगंध[5]सरसु।
सव्वत्थ जि भमियम[6]मिरभमरु सव्वत्थ जि चलियचवलचमरु।
सव्वत्थ जि परि[7]धाँइयअमरु सव्वत्थ जि संचरंतखयरु।
सव्वत्थ जि कामिणिगीयसरु सव्वत्थ जि विलसियकुसुमसरु।
घत्ता—रुक्ख मलंतु दलंतु गिरि जलु सोसंतु णिवेण णि[8]वेइउ ॥
साहणु एम चलंतु पहे सिंधुमहाणइदारु पराइउ ॥६॥

७

अवलोइय राएं सिंधु किह विब्भमधारिणि वरवेस जिह।
दावियमय णावइ हत्थि[1]हंड विवुहासिया वि संगहियजड।
गिरितवसिहि णं परिघुलियजड रणवित्ति व सोहइ झसपयड।
अइकुडिल णाइं सुर[2]मंतिमइ मल[3]णासणि णं पंचमिय गइ।
धणुलट्ठि य दीसइ मुक्कसर बहुरायहंसपिय णाइं धर।
कमलेण को[4]सेलच्छि व धरइ जा महिवइसत्तिहि अणुहरइ।
चलसारसजुयलपयोहरिय कणइल्लपक्खिपंतिहिं हरिय।
रंगंतबयावलिपंडुरिय पवहंतकुसुमरयपिंजरिय।
णं गहियविचित्तव[5]रुत्तरिय अहवा णं मंडणकब्बुरिय।
गयहयचंदणरसपरिमलिय [6]चंदकवकलावसुकोंतलिय।
जा मिलिय गंपि रयणायरहो रत्ती धुत्ति व रय णायरहो।
घत्ता—ताहि तीरि मुक्कउ सिमिरु तामत्थइरिसि[7]हरु संपत्तउ ॥
णं [8]वारुणिदिसिकामिणिहि णिवडिउ मित्तु णिरारिउ रत्तउ ॥७॥

८

अत्थमिइ दिणेसरि जिह सउणा तिह पंथिय थिय माणियसउणा।
जिह फुरियउ दीव[1]यदित्तिउ तिह कंताहरणहदित्तियउ।
जिह संझाराएं रंजियउ तिह वेसाराएं[2] रंजियउ।
जिह भुवणुल्लउ संतावियउ तिह चक्कउलु वि संतावियउ।
जिह दिसि दिसि तिमिरइं मिलियाइं तिह दिसि दिसि जारइं मिलियाइं।
जिह रयणिहि कमलइं मउलियइं तिह विरहिणिवयणइं मउलियइं।

३. B णडथड° । ४. M वंदविंद° । ५. MBP °गंधरसु । ६. MBP ° भमरिभमरु । ७. M परिधाविय° । ८. B विओइउ; P णिवोइउ ।

७. १. B हत्थिघड । २. P सुरमंतमइ । ३. MP °णासिणि पंचमिय° ।। ४. MBP कोसु । ५. P °बहुत्तरिय । ६. MBP चंदक्क° । ७. MBP °सिहरि । ८. MBP वारुणदिसि° ।

८. १. P दीवउ । २. B omits this foot.

भी नहीं समा सकी। घोड़ोंके मुखोंसे निकलते हुए फेनसे उज्ज्वल वह सर्वत्र भटघटा व्याप्त भी। सर्वत्र हाथियोंके मदजलोंसे सिंचित थी। सर्वत्र ध्वजमालाओंसे अंचित थी। सर्वत्र गीतावलिसे मुखरित थी। सर्वत्र चारण समूहसे ध्वनित थी। सर्वत्र छत्रोंसे दिशाएँ अवरुद्ध थीं। सर्वत्र सुरभि-का रसगन्ध प्रसरित था। सर्वत्र भ्रमर मँड़रा रहे थे, सर्वत्र चंचल चमर चल रहे थे। सर्वत्र विद्याधरोंका संचार हो रहा था। सर्वत्र स्त्रियाँ गीत गा रही थीं। सर्वत्र ही कामदेव विलसित था।

घत्ता—वृक्षोंको मलते, पहाड़ोंको दलते, जलको सोखते हुए राजाके द्वारा निवेदित सैन्य रास्तेमें चलता हुआ सिन्धु महानदीके द्वारपर पहुँचा ॥६॥

७

भरतने सिन्धुनदीको इस प्रकार देखा, जैसे विभ्रमको धारण करनेवाली वरवेश्या हो। जैसे मदका प्रदर्शन करनेवाली हस्तिघटा हो, विबुधों (देवों/पण्डितों) के आश्रित होते हुए भी जिसने जड़ (मूर्ख / जल) संगृहीत कर रखा है। वह वनकी आगकी तरह है जो परिधुलियजड (जिसमें जड़ नष्ट हो गया/जल घुल गया है), वह युद्धवृत्तिकी तरह झसपयड (जिसमें प्रकट है मछली और तलवार) शोभित है। जो मानो बृहस्पतिकी मतिकी तरह अत्यन्त कुटिल है, जो मानो मोक्षगतिकी तरह मलका नाश करनेवाली है, जो धनुर्यष्टिकी तरह मुक्तसर (मुक्त बाण और मुक्त तीर) है, जिसके लिए धराकी तरह अनेक राजहंस (श्रेष्ठ राजा और हंस) प्रिय हैं, जो कमलकी तरह कोशलक्ष्मीको धारण करती है, जो राजाकी शक्तिका अनुसरण करती है, चंचल सारसरूपी पयोधरोंको धारण करनेवाली जो शुकके पंखोंकी कतारोंसे हरित है (हरी है) खेलते हुए बलाकाओंसे जो सफेद है, बहते हुए कुसुमोंके परागोंसे जो नीली है, मानो जिसने विचित्र श्रेष्ठ उत्तरीय धारण कर रखा है, अथवा जो शृंगारके कारण रंग-बिरंगी है। गज, अश्व और चन्दनके रससे *मिश्रित और मयूरपिच्छोंके कुन्तलोंवाली* जो जाकर रत्नाकरसे उसी प्रकार मिल जाती है, जिस प्रकार कोई धूर्त स्त्री रत नागरजनसे मिल जाती है।

घत्ता—उसके किनारे भरतने डेरा डाला, इतनेमें सूर्य अस्ताचलपर पहुँच गया। मानो पश्चिम दिशारूपी कामिनीमें अत्यन्त अनुरक्त मित्र (सूर्य) गिर पड़ा हो ॥७॥

८

दिनेश्वरके अस्त होनेपर जिस प्रकार पक्षी स्थित हो गये उसी प्रकार शकुनको मानने-वाले पथिक भी स्थित हो गये। जिस प्रकार दीपकोंकी दीप्तियाँ स्फुरित हो उठीं उसी प्रकार कान्ताओंके अधरों और नखोंकी दीप्तियाँ भी। जिस प्रकार सन्ध्यारागसे लोक रंजित हो उठा, उसी प्रकार वह वेश्यारागसे। जैसे विश्व सन्तापित हुआ, उसी प्रकार चक्रकुल भी। जिस प्रकार दिशा-दिशामें अन्धकार मिल रहे थे, उसी प्रकार दिशा-दिशामें जार मिल रहे थे। जिस प्रकार रात्रिमें कमल मुकुलित हो गया, उसी प्रकार विरहिणियोंके मुख मुकुलित हो गये थे। जिस

जिह घरहं कवाडइं दिण्णाइं तिह बद्धहखेवइं[3] दिण्णाइं।
जिह चंदें णियकरपसरु किउ तिह पियकेसहिं करपसरु किउ।
जिह कुवलयकुसुमइं वियसियइं तिह कीलियमिहुणइं वियसियइं।
जिह पीयइं पाणइं महुराइं तिह [4]अहरइं महुरसमहुराइं।
जिह जिह गलंति जामिणिपहर तिह तिह विहुण्ण मउरइपहर।
जिह णहि [5]सुक्कुग्गमु दरिसियउ तिह विडि सुक्कुं[6]ग्गमु दरिसियउ।

घत्ता—ता चक्कउलहं पंकयहं तंबकिरणपूरियभुवणोयरु।
विरयहं णरणारीयणहं जीविउ देंतु समुग्गउ दिणयरु ॥८॥

९

सिंधूसरिदारइ सुरहिसमीरइ सुरभवणे
कोइलकुलकलयलि वियसियसयदलि रंभवणे।
उववासु करेप्पिणु जिणु पणवेप्पिणु पीणभुउ
णरवइ जयमायरु कयणियमायरु रिसहसुउ।
जमभउंहाभावइं चक्कइं चावइं जियरणइं
अहिअंचिवि दिव्वइं हयरिउगव्वइं पहरणइं।
णं भूरिपहायरु चंडु दिवायरु णहवडिउ।
मणिगणवेयडियइ कंचणघडियइ रहिं चडिउ।
पेरिय जोत्तारें हरि हुंकारें तिक्खमइ[1]
मणपवणमहाजव अमुणियखुररव गयणगइ।
कयभडकडवंदं[2]णु वाहियसंदणु [3]धवलधउ
करिमयररउद्दहु [4]लवणसमुद्दहु मज्झि गउ।
ता खंचिउ[5] रहवरु भेसियजलयरु सलिलवहे
जोयंति सुरासुर किंणर खेयर अक्खं[6] णहे।
राएं सुइसोक्खर णियणामक्खरभूसियउ
थिरु ठाणु णिबंधिवि सरु गुं[7]णि संधिवि पेसियउ।
अवरण्णवणाहहु लच्छिसणाहहु पडिउ घरे
तडिदंडु व भीसणु काणणणासणु गिरिसिहरे।
सो णिवडिउ महियलि सहसा करयलि ढोइयउ
सुर[8]वइसंकासें बाणु पहासें जोइयउ।
ता तम्मि विसिट्ठइं लिहियइं दिट्ठइं अक्खरइं
णं मत्ताचित्तइं मत्ताजुत्तइं णायरइं।

---

३. MBP °खेमइं। ४. MB अवरइं महरइं; M records a *p* महुरइं; for महरइं; P अहरइं महुरइं। ५. MP सुक्कग्गमु। ६. MP सुक्कग्गमु।

९. १. M चिक्कमइ; B चिकमइ। २. P °मद्दणु। ३. MBP धवल°। ४. MBP मज्झि समुद्दहु सो जिज गउ। ५. MBP खंचिय°। ६. MBP चक्क। ७. P गुणु। ८. MBPK सुरवर°।

प्रकार घरोंमें किवाड़ दे दिये गये थे, उसी प्रकार प्रियोंको आलिंगन दिये गये थे। जिस प्रकार चन्द्रमा अपनी किरणोंका प्रसार कर रहा था, उसी प्रकार प्रियाके केशोंमें करप्रसार किया जाता था। जिस प्रकार कुमुद कुसुम विकसित हो गये, उसी प्रकार क्रीड़ा करते हुए जोड़े विकसित थे। जिस प्रकार मधुर पानी पिया जाता था, उसी प्रकार मधुरसके समान मधुर अधर पिये जाते थे। जिस-जिस प्रकार रात्रिके प्रहर समाप्त हो रहे थे, उसी-उसी प्रकार कोमल रतिके प्रहर भी बीत रहे थे। जिस प्रकार आकाशमें शुक्र नक्षत्र उगा हुआ दिखाई दे रहा था, उसी प्रकार विटमें शुक्र (वीर्य) का उद्गम दिखाई दे रहा था।

घत्ता—तब चक्रकुलों, पंकजों और विरत नर-नारीजनोंको जीवनदान देता हुआ तथा अपनी रक्त किरणोंसे भुवनलोकको आपूरित करनेवाला सूर्य उदित हुआ ॥८॥

९

सिन्धु नदीके द्वारपर सुरभित पवनवाले सुरभवनमें कोकिलकुलके कलकलसे पूर्ण तथा खिले हुए कमलदलवाले रम्भावनमें, उपवास कर और जिनकी वन्दना कर स्थूलबाहु विजय-लक्ष्मीका सम्पादन करनेवाला, अपने ऐश्वर्यको बढ़ानेवाला ऋषभपुत्र राजा भरत, यमकी भौंहोंके समान भयंकर चक्र और युद्धको जीतनेवाले धनुष और शत्रुओंका गर्व हरण करनेवाले प्रहरणोंकी पूजा कर मणिसमूहसे जड़ित और स्वर्णनिर्मित रथपर इस प्रकार चढ़ गया मानो अत्यन्त प्रकाश फैलाता हुआ प्रचण्ड सूर्य आकाशमें आ पड़ा हो। जोतनेवालोंसे प्रेरित, हुंकारोंसे तीक्ष्णमति, मन और पवनके समान महावेगवाला, खुरोंके शब्दोंको नहीं गिननेवाला गगनगति, भटसमूहका मर्दन करनेवाला चपलध्वज, रथको भगाता हुआ अश्व, जलगज और मगरोंसे रौद्र लवण समुद्रके मध्य गया। तब जलचरोंको भयभीत करता हुआ रथ जलपथमें स्थित हो गया। आकाशमें सुर, असुर, किन्नर, विद्याधर और यक्ष देखने लगे। राजाने कानोंके लिए सुखकर अपने नामाक्षरोंसे विभूषित तीर स्थिर स्थानको लक्ष्य बनाकर और डोरीपर चढ़ाकर प्रेषित किया। वह लक्ष्मीसे सनाथ पश्चिम समुद्रके घरमें जाकर इस प्रकार गिरा, जिस प्रकार वनका नाश करनेवाला भीषण विद्युद्दण्ड गिरिशिखरपर गिरा हो। धरतीपर पड़े हुए तीरको सहसा हाथमें ले लिया और इन्द्रके समान राजा प्रभासने बाणको देखा। तब उसने उसमें लिखे हुए विशिष्ट अक्षरोंको

हउं दाणवमद्दणु कासवणंदणु चक्कवइ
मह्‌ु भरहहु केरी जगभयगारी सेव जइ ।
तुहुं करहि पियारी परिहवगारी तो[9] जियहि
णं तो असिबाणिउ जयसिरिमाणिउ [10]ध्रुवु पियहि ।
इय तेण पवाइउ कज्जु विवेइउ गयउ तहिं
अमरिंदसमाणउ पुहइहि राणउ थियउ जहिं ।
पविमुक्कपहासें[11] दिट्ठ पहासें भरहु किह
भवियं सपणामें सुहपरिणामें अरेहुं[12] जिह ।

घत्ता—कुसुमइं कप्परुक्खफलइं [13]वाहणइं मि वरवाहणवाहहो ।
रयणइं वत्थइं भूसणइं दिण्णइं तेण वसुंधरिणाहहो ॥९॥

१०

सुरसिंधुसरिहिं देहलिय[1] धरिवि पइसरणु करिवि ।
पुव्वावरेसु परिसंठियाइं वइरट्ठियाइं ।
वेयड्ढगिरिहि ओइल्लयाइं सुधणिल्लयाइं[2] ।
चंडाइ मेच्छखंडाइं ताइं दोसाहियाइं ।
करवालें णिज्जिउ अज्जखंडु पट्ठविवि दंडु ।
मालव मागह वंगंग गंग कालिंग कोंग[3] ।
पारस बब्बर गुज्जर वराड कण्णाड लाड ।
आहीर कीर गंधार गउड णेवाल चोड ।
चेईस चेर मरु दुद्दरंडि[4] पंचाल पंडि ।
कोंकण केरल कुरु कामरूव सिंहल पहूय ।
जालंधर जायव पारियाय णिज्जिणिवि राय ।
पच्चंतवासि णीसेस लेवि णियमुद्द देवि ।
हेलाइ[5] तिखंडावणि हरेवि असि करि करेवि ।
विजयद्धहु संमुहु चलिउ राउ सेणासहाउ ।
दियहिहिं पत्तु तं[6] सिहरि केम मणि[7] मोक्खु जेम ।
दिट्ठउ महिहरु सुसरेण[8] सुसरु कुहरेण कुहरु ।
सरहेण विहंडिय भीमसरहु समहेण समहु ।
कडयंकिएण कडयंकियंगु[9] तुंगेण तुंगु ।
गुरुवंसु गरुयवंसुब्भवेण थावरु थिरेण ।

---

९. MBP ता । १०. MBP धुउ । ११. MBP °सहासें and T स्वोपहासेन स्वमाहात्म्येन वा । १२. MBP अरुहु । १३. P वाहणाइं वर° ।

१०. १. M देहल; BPT देहलि । २. MBP सुवणिल्लयाइं । ३. MBP कुंप । ४. MBP दद्दुरंडि । ५. M हेलाइ वि खंडावाणि । ६. MBP तहुं । ७. MBP मुणि; K मणि but corrects it to मुणि । ८. MB ससुरेण ससुरु । ९. B कडियंकियंगु ।

पढ़ा जो मानो मात्रावृत्तवाले मात्राओंसे युक्त नागर अक्षर हों। "मैं दानवोंका मर्दन करनेवाला ऋषभका पुत्र चक्रवर्ती हूँ। यदि तुम मुझ भरतको विश्वमें भय उत्पन्न करनेवाली प्रियकारी और पराभव करनेवाली सेवा करते हो तो जीवित रह सकते हो, नहीं तो तुम विजयश्रीको माननेवाले मेरी तलवारके पानीको निश्चित रूप पिओगे।" उसने उसे इस प्रकार बाँचा और अपना काम समझ लिया। वह वहाँ गया जहाँ देवेन्द्रके समान पृथ्वीका राणा स्थित था। अपनी कान्तिको छोड़ देनेवाले राजा प्रभासने भरतको इस प्रकार देखा जिस प्रकार शुभ परिणाम भव्यने प्रणामपूर्वक अरहन्तको देखा हो।

घत्ता—श्रेष्ठ वाहनोंमें चलनेवाले उस वसुन्धरानाथको कुसुम, कल्पवृक्षोंके फल, रत्न, वस्त्र और भूषण उसने प्रदान किये ॥९॥

१०

गंगा और सिन्धु नदियोंके द्वारा अपनी सीमा निश्चित कर पूर्व और पश्चिम दिशामें प्रवेश कर उसने वैरभाव धारण करनेवालोंको परिस्थापित किया। विजयार्ध पर्वतके ऊपर स्थित अत्यन्त सम्पन्न, दोषोंसे प्रचुर उन म्लेच्छ खण्डोंको तलवारसे जीतकर, आर्यखण्डमें दण्ड स्थापित कर मालव, मागध, बंग, अंग, गंग, कलिंग, कोंग, पारस, बब्बर, गुर्जर, वराड, कण्णाड (कर्णाटक), लाट, आभीर, कीर, गान्धार, गौड़, नेपाल, चोड (चोल), चेदीस, (चेदि), चेर, मरु, दुन्तरणी, पांचाल, पण्डि (पाण्डु ?), कोंकण, केरल, कुरु, कामरूप, सिंहल, प्रभूत, जालन्धर, यादव और पारियात्रके राजाओंको जीतकर, समस्त प्रत्यन्तवासियोंको लेकर, अपनी मुद्रा देकर, खेल-खेलमें तीन खण्ड धरती जीतकर, तलवार अपने हाथमें लेकर सेनाको सहायतासे भरत विजयार्द्ध पर्वतके सम्मुख चला। कुछ दिनोंमें वह उस पर्वतके शिखरपर इस प्रकार पहुँचा जैसे मन मोक्षपर पहुँचा हो। उसने पर्वत देखा। सुस्वर उसने सुसरोवर, और पर्वतने राजाको देखा। रथ सहित उसने भीमसरोवर (मानसरोवर) नष्ट कर दिया, और पूजा सहित उसने मधुयुक्त को। कटक (सेना) से अंकित उसने कण्टकित भागको, तुंग उसने तुंगको, गुरु (महान्) वंशमें उत्पन्न उसने

गज्जियगउ पडिगज्जियगएण[10] उब्भियधएण ।
हिंसियय[11]तुरंगु सतुरंगएण सरओरएण ।
अखंतससावउ सावएण पालियवएण ।
आसंधिउ पत्थिउ पत्थिवेण विजयहु कएण ।
घत्ता—गिरि सोहइ दीहत्तणेण पुव्वावरसमुद्दु[12] संपत्तउ ॥
तिहिं तिहिं खंडहिं मेइणिहि मेरादंडु व दइवें घित्तउ ॥१०॥

११

तहिं [1]अवसरि गुहदारहु दूरें सुरतरुवरकरढंकियं[2]सूरें ।
आवासिउ गहणि स[3]डंगु बलु करिदसणपहरकलुसियउ जलु ।
महिसउलमरकंद[4]विउ सरु कम्मयरकुढारहिं छिण्ण तरु ।
आलुंखियाइं पिक्कइं फलइं णिल्लूरियाइं सदलदलइं ।
गोमंडलेहिं चिण्णइं तणइं मुसुमूरियाइं अंबयवणइं ।
उड्डावियाइं कोइलकुलइं भयतसियइं रसियइं णाहलइं ।
णिल्लुक्कइं [5]मुक्कइं सयदलइं दसदिसु गयाइं सउयणकुलइं ।
मयवंदइं रुंदइं णिग्गयइं एत्तहि तेत्तहि स[6]हसा गयाइं
सुत्तइं रत्ताइं [7]रईहरहिं णरमिहुणइं णववे[8]ल्लीहरेहिं ।
णिवकरिहिं वियारिय विंझकरि सुहडेहिं णिहय रुंजंति[9] हरि ।
घत्ता—वणसिरि उव्वासिय सुइरु एवहिं जणवएण णिरु णिवसइ ॥
पेच्छिवि भरहाहिवणिवइ [10]कुंदपुप्फयंतहिं णं विहसइ ॥११॥

इय महापुराणे तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारे महाकइपुप्फयंतविरइए महाभव्वभरहाणुमण्णिए महाकव्वे तिखंडवसुंधरापसाहणं णाम तेरहमो परिच्छेओ समत्तो ॥ १३ ॥

॥ संधि ॥ १३ ॥

१०. GK add after it उब्भूयधउ । ११. MBPT सतुरंगवयणु । १२. MB समुद्द° ।

११. १. MBP अवरगुहादारहु सदूरि । २. MBP °ढंकियइ सूरि । ३. MB सडंग° । ४. MBP कद्दमिउं । ५. MBPK सुक्कइं । ६. MBP सहसइं । ७. MBP रईयरेहिं । ८ MBP °वल्लीहरेहिं । ९. MB रुजंत; P रुजंति । १०. BPK पुप्फदंतहिं ।

गुरुवंशको, स्थिरने स्थावरको, प्रतिगर्जन करनेवाले गजने गरजते हुए गजको, ऊर्ध्वध्वज और तुरंग सहित उसने हिनहिनाते अश्वको, प्रतिज्ञा पालन करनेवाले उस श्रावकने अत्यन्त श्वापदोंको और राजाने राजाको विजयके लिए नष्ट कर दिया।

घत्ता—पूर्व और पश्चिम समुद्र तक फैला हुआ पर्वत अपनी लम्बाईसे ऐसा शोभित है, मानो तीन-तीन खण्डोंके लिए दैवने भूमिका सीमादण्ड स्थापित कर दिया हो ॥१०॥

११

उस अवस पर गुहाद्वारसे दूर, जहाँ सुर-तरुवरोंके कारण सूर्य ढका हुआ था, ऐसे गहन वनमें षडंग सेना ठहरा दी गयी। वहाँ जल हाथियोंके दाँतोंके प्रहारसे कलुषित था, सरोवर भैंसोंके समूहके मर्दनसे कीचड़मय था, वृक्ष काटनेवालोंके कुठारोंसे छिन्न थे। पके फल चख लिये गये, आर्द्र पत्ते तोड़ लिये गये, गोमण्डलोंके द्वारा घास चर लिया गया, आम्रवन मसल दिये गये, कोकिलकुल उड़ा दिये गये, भयसे त्रस्त होकर भील चिल्लाने लगे। कमल तोड़कर छोड़ दिये गये। भ्रमरकुल उड़कर दसों दिशाओंमें चले गये। सुन्दर मृगकुल भाग गये, यहाँ-वहाँ सहसा तितर-बितर हो गये। रतिघरोंमें और नवलताघरोंमें अनुरक्त नरमिथुन सो रहे थे। राजाके हाथियोंने विन्ध्याके गजको विदीर्ण कर दिया। और गरजते हुए सिंहको सुभटोंने मार डाला।

घत्ता—वनश्री अच्छी तरह उजाड़ दी गयी इस समय जनपद यहाँ निवास करेगा, यह देखकर भरताधिप राजा मानो कुन्दपुष्पोंके द्वारा हँस रहा था ॥११॥

इस प्रकार त्रेसठ महापुरुषोंके गुणालंकारवाले इस महापुराणमें महाकवि पुष्पदन्त द्वारा रचित और महाभव्य भरत द्वारा अनुमत महाकाव्यका त्रिखण्ड वसुन्धरा प्रसाधक नामका तेरहवाँ परिच्छेद समाप्त हुआ ॥१३॥

संधि १४

वरतणुमयमहेण जियमागहेण भुयबलणिद्दलियपहासें ।
हयपरमहिवइहि सेणावइहि आएसु दिण्णु भरहेसें ॥ध्रुवकं॥

१

दुवई—[1]ससिविरु जाम [2]तेत्थु पहु णिवसइ सिद्धतिखंडमंडलो ।
ता पत्तो मयासि मणिसेहरु सवणविलंबिकुंडलो ॥१॥

सो पभणइ पणवियसिरु सुहरिसु मुहससिकिरणप[3]सरधवलियदिसु ।
णवघ[4]णथणियमहुरमणह[5]रगिरु सुयणु सुयणभरधरु णिरुवमु णिरु ।
भो कयविजयविजयगिरि उत्तर· दिसि अवर वि सुर णर रवि तुह घर ।
सा[6] वि तिखंड चंडरिउखंडण भो णाहेयतणय कुलमंडण ।
सिहरिगुहादुवारु उग्घाडहि कुलिसदंडखरपहरें ताडहि ।
जइ [7]तो मग्गु भडारा होसइ पुण्णु तुहारउ गरुयउ दीसइ ।
जयगिरिवरसिह[8]रग्गणिकेयउ जासु अहं पि दासु संजायउ ।
ता चमुपमुहहु वयणु णिरिक्खिउ जसवइपुत्तें पेसणु अक्खिउ ।
भो सेहेसर क[9]रहि महुत्तउ हणहि गिरिंदकवाडु णिरुत्तउ ।
णिविडु विहंडिवि पडउ विसट्टउ जिह हयदुज्जणमणु तिह फुट्टउ ।
सपहुमणोरहकरणुक्कंठिउ सो पसाउ पभणंतु समुट्ठिउ ।
[10]परिणयसुयतणुमरगयहरियइ णाणागमणविलासहुं भरियइ ।
वरभडसंगरपहरणपोढउ चडुलतुरंगरयणि[11] आरूढउ ।
जाएवि पट्ठि देवि गिरिदारहु धरिवि तुरउ संमुहुं खंधारहु ।
घत्ता—अवहत्थिवि छलेण णियभुयबलेण हुंकारिवि णिरु रत्तच्छें ।
परणरपडिखलणु[12] महिहरदलणु उम्मुक्कु दंडु परिहच्छें ॥१॥

MBP give, at the commencement of this Samdhi, the following stanza :—

केलासुब्भासिकन्दा धवलदिसिगउग्गिण्णदन्तङ्कुरोहा
सेसाहीबद्धमूला जलहिजससमुब्भूयडिण्डीरवत्ता ।
बम्भण्डे वित्थरन्ती अमयरसमयं चन्दबिम्बं फलन्ती
फुल्लन्ती तारओहं जयइ णवलया तुज्झ भरहेस कित्ती ॥

M however reads °पिण्डीर° for °डिण्डीर° । GK do not give it.

१. १. MB संपइ जाम; P एत्तहि जाम । २. P सुहरिसु । ३. B °पसरि° । ४. MBPT °घणझुणिय° । ५. K °मणहरि । ६. MBP साधि । ७. MBP तउ । ८. P °सिहरणिकेयउ । ९. MBP करि महु वुत्तउ । १०. M परियण° । ११. MB °रयणआरूढउ । १२. P °परिखलणु महिहरदलमलणु ।

सन्धि १४

जिसने मगधराजको जीता है और अपने भुजबलसे प्रभासको दलित किया है, ऐसे वरतनुके मदको चूर करनेवाले भरतेशने परम शत्रु-राजाओंको नष्ट करनेवाले सेनापतिको आदेश दिया।

१

दुवई—तीन खण्ड धरतीको जीतनेवाला राजा जब अपने शिविरके साथ निवास कर रहा था, तभी कानोंमें कुण्डल पहने हुए मणिशेखर नामका देव वहाँ आया। अपने मुखरूपी चन्द्रमाकी किरणोंसे दिशाओंको धवलित करनेवाला वह प्रणामपूर्वक बोला, "नवमेघके समान गूँजती हुई मधुर और सुन्दर वाणीवाले तथा भुवनका भार उठानेवाले हे अत्यन्त अद्वितीय सज्जन, तथा विजयार्ध पर्वतपर विजय करनेवाले हे देव, उत्तरदिशामें जो देव मनुष्य-सूर्य और तीन खण्ड धरती है वह भी तुम्हारी है। प्रचण्ड शत्रुओंको खण्डित करनेवाले कुलमण्डन हे नाभेयतनय देव, तुम यदि पर्वतके गुहाद्वारको खोलते हो, वज्रके तीव्र दण्डप्रहारसे उसे प्रताड़ित करते हो, तो हे आदरणीय, मार्ग हो जायेगा! तुम्हारा पुण्य महान् दिखाई देता है कि विजयार्ध पर्वतके शिखरके अग्रभागपर रहनेवाला मैं भी, जिसका दास हो गया हूँ।" तब राजा भरतने सेनापतिका मुख देखा। यशोवतीके पुत्रने उसे आदेश दिया, "हे मेघेश्वर, मेरा कहा करो। निश्चित रूपसे तुम पहाड़के किवाड़को प्रताड़ित करो। वह अच्छी तरह विघटित होकर, उसी प्रकार खुल जाये जिस प्रकार आहत दुर्जनका मन फूट जाता है।" अपने स्वामीके मनोरथको पूरा करनेके लिए उत्कण्ठित वह (सेनापति) 'जो प्रसाद' यह कहता हुआ उठा। तरुण तोतेके शरीर और पन्नेके समान हरे तथा नाना प्रकारके गमनके विलासोंसे भरे हुए उस चंचल अश्वरत्नपर श्रेष्ठ योद्धाओंके युद्धमें प्रहारोंसे प्रौढ़ वह सेनापति आरूढ़ हो गया। जाकर गिरिद्वारको पीठ देकर स्कन्धावारके सम्मुख अश्वको थामकर—

घत्ता—लाल-लाल आँखोंवाले उसने हुंकारते हुए (उस दरवाजेको) हटानेके लिए शत्रुमनुष्योंको प्रतिस्खलित और पहाड़को चूर-चूर करनेवाला वह दण्डरत्नपूरे वेगसे फेंका ॥१॥

२

दुवई—मुक्कइ पहरणम्मि हरि णिग्गउ खुरदरमलियकाणणो ।
बलपुंगमु वि णविउ णरणियरहिं जगजयपहसियाणणो ॥१॥

ता दंडरयणणिट्ठुरपहारविहडियकवाडकिंकारसद्दसंमद्दखुद्दविद्दवियसप्पमुहमुक्कफारफुक्कारजालियविसेसिसिहिजालं ।

जालामालाकलावहेलापलित्तणासंतमत्तकरिचरणपेल्लणुल्ललियमणिसिलावडणकुद्धरुंजंतसद्दूलरोलभीमं ।

भीमुब्भापब्भारभरियकुहरंतणिग्गयाहिंदसुंदरीमुक्कसिचयपयडियपयोहरुल्लिहियहियरइरसियतावसुद्धरियचरियभारहारं ।

हारवमुयंतसवरीपुलिंदसिसुदीसमाणकेसरिकिसोरणहकुलिसकोडिदारियकुरंगरुहिरंभवाहदुग्गं जायं गुहादुवारं ।

घत्ता—डज्झंतहं खगहं महिहरमगहं घोसेणप्पाणउं णिंदइ ।
अमुणियवेयणु वि णिच्चेयणु वि णं दंडें ताडिउ कंदइ ॥२॥

३

दुवई—ता मंजीरहारकेऊरकिरीडफुरंतभूसणो ।
अमरो अमरसमरसंघट्टविहट्टियवइरिसासणो ॥१॥

छड्डियावलेवो इच्छियंविसेवो ।
रिद्धिबुद्धिवंतो आगओ तुरंतो ।
भूयभत्तिकामो तम्गिरिंदणामो ।
सेलसिंगवासो सुद्धसेयवासो ।
वंदिओ णरिंदो तेण वीरचंदो ।
हारमिंदुधामं दिव्वपुप्फदामं ।
कंकणं किरीडं कुंभसंभणीडं ।
पंडुरं पसत्थं चारु हारि वत्थं ।
कुंजरारिवूढं हेमरण्णवीढं ।
हित्तकंजलीलं भम्मदंडणालं ।
सव्वलोयमोल्लं कित्तिवेल्लिफुल्लं ।
चामरेण जुत्तं णिम्मलायवत्तं ।
हासहंसवण्णं राइणो विइण्णं ।
मंगलं पहाणं तित्थतोयण्हाणं ।
रुक्खरोहियासे तम्मि भूपएसे ।

२. १. MBP °जणिय° । २. M विसग्गिसिहि° । ३. MBP °वडणरुट्ठरुंजंत (P रुजंत) मत्तसद्दूल° । ४. MBP भीमुण्हा° । ५. B °ल्लिहियरइ° । ६. B °रियभार° । ७. P हाहारव° । ८. G °दुग्गं । ९. MBP °मिगहं ।

३. १. MB °संहट्ट° । २. MB छंडिया° । ३. P भूप° । ४. MB वीरवंदो । ५. MB °मंडणीडं । ६. MBP हेमवण्ण° ।

२

अस्त्रके फेंके जानेपर अपने खुरोंसे वनको रौंदता हुआ अश्व चला। जिसका मुख विश्व-विजयके लिए हँसता हुआ है, ऐसा बलमें श्रेष्ठ भी वह नरसमूहके द्वारा नम्र बना दिया गया। तब दण्डरत्नके निष्ठुर प्रहारसे विघटित किवाड़ोंके किंकार शब्दके कोलाहलसे क्षुब्ध और दलित सांपोंके मुखोंसे छोड़ी गयी फूत्कारोंसे विषाग्निकी ज्वाला जल उठी, ज्वालामालाओंसे एक साथ प्रदीप्त और नष्ट होते हुए, हाथियोंके पैरोंकी चपेटसे उछलती हुई मणिशिलाओंके पतनसे क्रुद्ध और गरजते हुए सिंहोंके शब्दोंसे जो भयंकर हो उठा। भयंकर तापके भारसे भरित गुफाओंके भीतरसे निकलती हुई अहीन्द्र सुन्दरियों (नागिनों) के द्वारा मुक्त सिचय (वस्त्र, कंचुल) से प्रकट हुए स्तनोंसे विदारित हृदयवाले रतिरसिक तपस्वियोंके चरित्रभारके हरणको जो धारण किये हुए है। 'हा' रव (शब्द) कहते हुए शबरी पुलिन्दोंके शिशुओंके द्वारा देखे गये सिंह किशोरोंके नखरूपी वज्र कोटिके द्वारा विदारित हरिणोंके रक्तरूपी जलके प्रवाहसे वह गुहाद्वार दुर्गम हो उठा।

घत्ता—दग्ध होते हुए पक्षियों, पहाड़ोंके पशुओंके घोषसे वह (सेनापति) अपनी निन्दा करता है कि वेदनाको नहीं जाननेवाला अचेतन भी यह दण्डरत्नसे ताड़ित होनेपर आक्रन्दन करता है ॥२॥

३

तब मंजीर, हार, केयूर और किरीटके चमकते हुए आभूषणोंवाला तथा देवताओंके युद्धमें संघर्षके द्वारा जिसने शत्रुशासन समाप्त कर दिया है, ऐसा देव अहंकार छोड़कर चरणोंकी सेवा चाहता हुआ ऋद्धि और बुद्धिसे सम्पन्न शीघ्र वहाँ आया। प्रचुर भक्तिका अभिलाषी विजयार्ध नामक, शैलके अग्रभागका निवासी और शुद्ध श्वेत वस्त्रधारण करनेवाला। उसने वीरश्रेष्ठ नरेन्द्रकी वन्दना की। चन्द्रमाकी तरह स्वच्छ हार, दिव्यपुष्पदाम, कंकण मुकुट, जलका नीड घट, सफेद धवल प्रशस्त सुन्दर उत्तम वस्त्र, स्वर्णनिर्मित सिंहासन, कमलकी लीलाका हरण करनेवाला स्वर्णदण्डनाल, चामरोंसे सहित निर्मल आतपत्र कि जो मानो कीर्तिरूपी लताका फूल था, जिसका मूल्य समस्त लोक था और जो हास और हंसके रंगका था, राजाको दिया। तीर्थमें जलका स्नान ही मुख्य और मंगलमय होता है। वृक्षोंसे आच्छादित देवदार वृक्षवाले उस भूमिप्रदेशमें वह राजा

अच्छिओ छमासं देवदारुवासं ।
वल्लरीललंतं माणियं वणंतं ।
णिग्गयग्गिजालं मंदधूममालं ।
मुक्कदीहसासं णं महीहरासं ।
दावियंधयारं तं गुहादुवारं ।
णट्ठताववेयं सिद्धमग्गभेयं ।
लग्गसीयवायं सीयलं च जायं ।

घत्ता—चंदणचच्चियउ कुसुमंचियउ ता पेसिउ पालियखत्तें ॥
आरासयफुरियउ सुरपरियरिउ संचलियउ चक्कु पयत्तें ॥३॥

४

दुवई—पुणु चक्काणुमग्गलग्गंतमहाभडकरितुरंगयं ।
चलियं साहणं पि रहभमियरहंगाहयभुयंगयं ॥१॥
वसहकरहखरवरवलइयभरु हरिखुरदलियमलियवणतणतरु ।
मयगलमयजलपसमियरयमलु दसदिसिमिलियमणुयकयकलयलु ।
कसझसमुसलकुलिससरकरयलु जणवयपयभरपणवियमहियलु ।
असिवरसलिलपवहधुयपरिहवु सतिलयविलयवलयखणखणरवु ।
मसिणघुसिणरससुपुसियउरयलु पवणपहयधयचयचियणहयलु ।
चवलचमरवियलणपसरियकरु परिमललुलियललियमहुलिहसरु ।
मरुवहविगयखयरसुरवरघरु अमरिसकसणपिसुणजयसिरिहरु ।
सहपरिभमियजिमियसुरमियसहु पहुसुहजणणकहियमणहरकहु ।
पहरविहुरु सुमरिवि मयभययरु णिवबलु गिलइ व गुहमुहगिरिवरु ।
घत्ता—तेण जि रिउमहहो मग्गियपहहो घरु आयहु फणिबहुलालिउ ॥
भरहहु भयवसेण सगुहामिसेण [10]णियहियवउं दक्खालिउ ॥४॥

५

दुवई—कज्जलणीलबहलतमपडलविणासियणयणमग्गए ।
वच्चइ वाहिणीह ण सुहेण महीहरकुहरदुग्गए ॥१॥
इय चिंतिवि करि ढोइवि कागणि चमुपमुहेण लिहिय ससि दिणमणि ।
ते सोहंति विवरघरभित्तिहि णावइं णयणइं णरवइकित्तिहि ।
करणियरेण ताहं तमु सारिउ णिसि दिवसइं सोहंति णिरारिउ ।
वहइ सेण्णु जयदुंदुहि वज्जइ पलयकालि णं जलणिहि गज्जइ ।

७. MBP सिद्धमग्ग° ।

४. १. B °मग्गलग्गं महा° । २. B °खरखुरवलइय° । ३. MBP °पणमिय° । ४. B °चुवपरि° । ५. M धयचयवियणहलु; P °धयचुंबियणहलु । ६. P °वियलिण । ७. MBP पहसुह° । ८. MBP °विहुर । ९. MBP घर । १०. MBP °हियवउं णं दक्खालिउं ।

छह माह रहा। लताओंसे शोभित उस वनका उसने आनन्द लिया। जिसकी अग्निज्वाला शान्त हो चुकी है, धूममाला मन्द पड़ चुकी है, जो दीर्घ साँसे छोड़ रहा है मानो पर्वतका मुख हो, जो अन्धकारको दिखा रहा है, ऐसे उस गुहाद्वारका तापवेग समाप्त हो गया, उसमें मार्गका भेद बन गया, हवा ठण्डी लगने लगी और वह शीतल हो गया।

घत्ता—तब चन्दनसे चर्चित, फूलोंसे अंचित सौ आराओंसे चमकता हुआ देवोंसे घिरा हुआ चक्र उसने भेजा। वह भी प्रयत्नपूर्वक चला ॥३॥

४

चक्रके पीछे लगे हुए महाभट, हाथी और तुरंग हैं जिसमें, ऐसी तथा रथोंके घूमते हुए पहियोंसे सर्पोंको आहत करती हुई सेना चली। जिसमें बैलों, ऊँटों और खच्चरों द्वारा भार ढोया जा रहा है, घोड़ोंके खुरोंसे वनके तृण-तरु चकनाचूर हो गये हैं, मदवाले गजोंके मदजलसे रजोमल शान्त हो गया है, दसों दिशाओंमें मिले हुए लोगोंका कलकल शब्द हो रहा है, जिसके हाथमें कशा, झस, मूसल और तीर हैं, जिसने जनपदोंके पदभारसे धरतीको झुका दिया है, असिवरोंके जलप्रवाहमें पराभव धो दिया गया है, तिलक सहित चूड़ियोंके समूहका खन-खन शब्द हो रहा है, मसृण केशररससे उरतल सुपोषित है, जिसमें पवनसे आहत ध्वजसमूहसे आकाश आच्छादित है, चंचल चामरोंको हिलानेके लिए हाथ उठे हुए हैं, परिमलपर झूमते हुए सुन्दर भ्रमरोंका स्वर हो रहा है, आकाशमार्गसे जिसमें देवों और विद्याधरोंके घर (विमान) छोड़ दिये गये हैं, जो अमर्ष, कठोर और दुष्टोंकी विजयश्रीका अपहरण करनेवाली है, जिसमें सुरसभा साथ रहती, घूमती और खाती है, जिसमें स्वामीके लिए शुभ करनेवाली कथाएँ कही जा रही हैं, प्रहारसे जो विधुर है, ऐसा मद और भय उत्पन्न करनेवाला राजाका सैन्य स्मरण कर गुहाके मुख-विवरको जैसे निगल रहा है।

घत्ता—इसी कारण मानो रास्ता भोगनेवाले शत्रुओंमें महान् और घर आये हुए भरतके लिए डरकर अपनी गुहाके बहाने बहुतसे नागोंसे सुन्दर उसने अपना हृदय दिखा दिया ॥४॥

५

काजल और नीलके समान प्रचुर तमपटलसे जिसमें नेत्रोंका मार्ग नष्ट हो गया है, महीधरके ऐसे गुहादुर्गमें सेना सुखसे नहीं जा पा रही थी—यह सोचकर कागणी मणि लेकर सेनाप्रमुखने सूर्य-चन्द्र अंकित कर दिये। वे विवरकी दीवालोंपर इस प्रकार शोभित हुए मानो जैसे राजाकी कीर्तिकी आँखें हों। किरणसमूहसे उन्होंने अन्धकार-समूह हटा दिया और रात्रिमें दिन अत्यन्त रूपसे सोहने लगा। सेना चलती है। जयका नगाड़ा बजता है, मानो प्रलयकालमें समुद्र गरज रहा

उग्गमंतपडिरवगंभीरहिं दुरयघडाघंटाटंकारहिं ।
संदणमुक्कचक्कचिक्कारहिं धाविरवीरधीरहुंकारहिं ।
महिहरविवरमग्गु णं फुट्टइ रोलें तिहुयणु णाइं विसट्टइ ।
इंदु वरुणु वइसवणु विसूरइ मेइणि कह व भारु साहारइ ।
सायरु कह व ण महीयलु रेल्लइ मंदरु कह व ण ठाणहु चल्लइ ।
चंदाइच्चजुयलु णहि झुल्लइ णीलुं णिसढु केलासु वि हल्लइ ।
एम सेण्णु गच्छंतउ दिट्ठउ अद्धगुहाधरणियलि पइट्ठउ ।

घत्ता—रायहु केरएण परिवारएण पहि जंतें परमयसाडें ।
मणि आसंकियउ मुहुं वंकियउ फणिसंखकुलियकंकोडें ॥५॥

६

दुवई—किंणरगरुडभूयकिंपुरिसमहोरयजक्खरक्खसा ।
पहुणो तणिवासि संजाया वेंतर के ण के वसा ॥१॥
तओ दोण्णि भूमीहरंते णईओ सुकारंडभेरुंडलीलारईओ ।
समुम्मग्गणिम्मग्गणामालियाओ जलावत्तकीलंतमीणालियाओ ।
तडालग्गडिंडीरपिंडुग्गयाओ गिरिंदस्स गुज्झंतरा णिग्गयाओ ।
विसुल्लोलवेलावलीवंकियाओ पहंस्संतरे राइणो थक्कियाओ ।
महाणायरायस्स णं णाइणीओ झसुप्पिच्छसिंधुस्सरीजाइणीओ ।
अभग्गाइं दुग्गाइं णित्थारएणं सविण्णाणिणा संकमेणं कएणं ।
सरीसारतीराइं संदाणिऊणं पुरो भिच्चसंचारयं जाणिऊणं ।
दरीमाणियं पाणियं लंघिऊणं परं पारमाधारमासंघिऊणं ।

घत्ता—गिरिकुहरंतरहो रमियामरहो णिग्गंतउ सालंकारउ ।
सहइ महारुहहो वियलिउ मुहहो बलु कव्वु व सुकइहि केरउ ॥६॥

७

दुवई—ता णिग्गंति भरहि भेरीरवकंपियमेच्छमंडलं ।
परबलदलणवीरकोलाहलमिच्छियसमरगोंदलं ॥१॥

जं गुलुगुलंतचोइयमयंगपयभूरिभारभारिज्जमाणभूकंपणमियणाइंदमुक्कपुक्कार-
रावघोरं ।

जं हिलिहिलंतवाहियतुरंगखरखुरखयावणीचलियधूलिणासंततियसतरुणीविचित्त-
घोलंतचेलचित्तं ।

---

५. १. MBP धीरवीर° । २. MBP वि जूरइ । ३. B णीलि णिसहु; K णीलणिसहु । ४. K धरणियलु । ५. P कंकोड़ें ।

६. १. MBP विंतर । २. M पहासंतरे; B पहाभंतरे । ३. MB झसुप्पत्तिसिंधूसरी°; P झसोपित्थ सिंधूसरी°; T उपित्थ उल्बण । ४. BP पारमावार° ।

७. १. MBPK °णविय° । २. MP °फुंकार°; B सुंकार; K °पुंकार° । ३. MP °खुरखरखयावणी° ।

है। उठते हुए प्रतिशब्दोंसे गम्भीर गजघटाके घण्टोंकी टंकारों, रथोंसे छोड़ी गयी चीत्कारों, दौड़ते हुए हुंकारोंके द्वारा मानो महीधरका विवरमार्ग फूट पड़ता है और कोलाहलसे त्रिभुवन जैसे ध्वस्त होना चाहता है। इन्द्र-वरुण-वैश्रवण अफसोस करते हैं, धरती किसी प्रकार भारको सहन करती है। समुद्र किसी प्रकार धरतीपर नहीं बहता, मन्दराचल किसी प्रकार अपने स्थानसे नहीं डिगता, चन्द्रमा और सूर्य दोनों आकाशमें काँपते हैं। नीला असहाय कैलास भी हिलने लगता है। इस प्रकार चलता हुआ सैन्य दिखाई देता है, वह आधी गुफाके धरतीतलपर पहुँच जाता है।

घत्ता—शत्रुके मदका नाश करनेवाले राजाके परिवारके पथमें जानेपर नाग, शंख, कौलिय और कर्कोट जातिके नागोंको मनमें शंका हो गयी और उन्होंने अपना मुख टेढ़ा कर लिया ॥५॥

६

वहाँ निवास करनेवाले किंनर, गरुड़, भूत, किंपुरुष, महोरग, यक्ष, राक्षस और व्यन्तर कौन-कौन देवता प्रभुके वशमें नहीं हुए। उस समय पर्वतके मध्यमें, जिनमें सुन्दर कारण्ड (हंस) और भेरुण्ड लीलामें रत हैं, जलोंके आवर्तोंमें मीनावलियाँ क्रीड़ा कर रही हैं, जो तटमें लगे हुए फेनसमूहसे उग्र हैं, ऐसी समुन्मग्ना और निमग्ना नामवाली पर्वतराजके मध्यसे निकलनेवालीं, जलकी लहरावलियोंसे वक्र दो नदियाँ राजाके रास्तेके बीच आकर इस प्रकार स्थित हो गयीं, मानो जैसे महानागराजकी दो नागिनें हों जो मानो मत्स्योंसे उत्कट सिन्धु नदीके लिए जा रही हों। तब अभग्न दुर्गोंसे निस्तार दिलानेवाले, कुशल स्थपतिरत्नके द्वारा निर्मित सेतुबन्धसे नदियोंके श्रेष्ठ तीरोंको बाँधकर, नगरमें सेनाका संचार जानकर, घाटियोंके द्वारा मान्य पानीको लाँघकर श्रेष्ठ उस पारके आधारको पार कर—

घत्ता—जिसमें देव रमण करते हैं ऐसी पहाड़की गुफामें-से निकलता हुआ अलंकार सहित सैन्य इस प्रकार शोभित हो रहा था, जैसे मुँहसे निकलता हुआ महायोग्य सुकविका काव्य हो ॥६॥

७

भरतके निकलनेपर नगाड़ोंकी ध्वनियोंसे म्लेच्छ मण्डल काँप उठा। शत्रुसेनाके दलनके लिए वीरोंमें कोलाहल होने लगा, युद्धकी भिड़न्त चाही जाने लगी। चिग्घाड़ते हुए और चलाये जाते हुए हाथियोंके पैरोंके भूरिभारके दबावसे उत्पन्न भूकम्पसे नमित नागराजोंके द्वारा मुक्त फूत्कार शब्दोंसे जो भयंकर हो उठा है। हिनहिनाते हुए और चलाये गये घोड़ोंके तीखे खुरोंसे खोदी गयी धरतीसे उठी हुई धूलसे नष्ट होती हुई देवांगनाओंके वस्त्र और चित्र-विचित्र हो रहे हैं।

जं [4]हणुभणंतपक्कलपदुक्कपाइक्कमुक्कल[5]ल्लक्कहक्करिउसुहडविहडणुग्घुट्ठरोलफुट्टंतगयणभायं ।

जं रहियमुक्कपग्गहविसेसरंगंत[6]रहरसाचलण[7]पंडियगुरुसिहरिसि[8]हरचुण्णजायचंदणकुचंदणोहं ।

जं हारदोरकेऊरकडयकंचीकलावमउडावलंबिमंदारदामसोभंतजक्खजक्खीविमाणछण्णं ।

जं भीयेरं[9] वराराकरालचक्काणुगामिमंडलियसूरसामंतकोंतकरवालचावसंघायसंकडिल्लं ।

जं दंतिदाणधारापवाहपसमंतरेणुदीसंतदसदिसाणणभरंतसेणाणरुद्धरियविविहछत्तचिंधं ।

जं भिच्चदेहपरियलियसेयणीसंदबिंदुहयफेणसलिलचिक्ख[10]ल्लतल्लखुप्पंतसयडसंकिण्णकुहिणिदेसं ।

घत्ता—तं पेच्छिवि पवलु उत्थरिउ बलु बोल्लिज्जइ[11] मेच्छकुलेसहिं ॥
एवहिं को सरणु ढुक्कउ मरणु रिउ धाइय चउहुं मि पासहिं ॥७॥

८

दुवई—गिरिदरिसरिमुहाइं जो लंघइ पहु सामत्थवंतओ ।
सो अम्हारिसेहिं किं जिप्पइ णिज्जियदह[1]दियंतओ ॥१॥

बहुकालहु दइवेण णिवेइउ — हा हा पलयकालु सं[2]प्राइउ ।
वयणु सुणिवि आवत्तचिलायहं — मेच्छमहामंडलमहिरायहं ।
धीरें मंतें एउ पवुच्चइ — आव[3]इकालइ धाह ण मुच्चइ ।
सव्वु सहिज्जइ जं जिह ढुक्कइ — हयविहिविहियहु को वि ण चुक्कइ ।
जहिं भंडणु तहिं अवसें खंडणु — धीरत्तणु जि मणूसहु मंडणु ।
विसहर परणरसेण्णवियारा — ते तुम्हहं कुलदेव भडारा ।
सुमरहु सामिसाल सब्भावें — किं भएण किं किर बलगावें ।
तेहिं मि ए आलाव वि[4]वेईय — णाय [5]मेहमुंह मणि णिज्झाइय ।
वियडफडाकडप्पदप्पुब्भड — गरलाणलपलित्तगिरितडवड ।
उज्झलंत[6]तंदूधूममलीमस — सिरमणिगणमऊहदीवियदिस ।
अग्घकुसुमरसवासुद्धाइय — [7]चलवलंत ते झत्ति पराइय ।

घत्ता—बोल्लिउ उरगइणा विसहरवइणा किं पाडमि गहणक्खत्तइं ॥
कीलियसुरवरहो माणससरहो णिल्लूरमि किं सयवत्तइं ॥८॥

---

४. MBP हणुहणुभणंत° । ५. MBP °ललक्क° । ६. P °रंगंततुरयरह° । ७. MP °चलणवडिय°; B °चलणचडिय° । ८. MBP °सिहरसयचुण्ण° । ९. MB भीयरंबदाढाकराल°; P भीयरावदाढाकराल° । १०. MBP °चिक्खिल्ल° । ११. MBP वोलिज्जइ ।

८. १. MBP °दहदिहंतओ । २. MBP संपाइउ । ३. MBP आवइकालि धाह णउ मुच्चइ । ४. MBP णिवेइय । ५. °मेहमुह । ६. MBP उल्ललंतबहुधूम° । ७. K चलचलंत ।

मारो-मारो कहते हुए समर्थ और प्रौढ़ पैदल सेनाके द्वारा मुक्त भयंकर हुंकारोंसे शत्रुसुभटोंके विघटनसे उठे हुए शब्दोंसे आकाशमार्ग विदीर्ण हो गया है। रथिकों द्वारा छोड़ी गयी विशेष-लगामसे चलते हुए रथोंसे डगमगाती हुई धरतीपर गिरे हुए पहाड़ोंके शिखरोंसे चन्द्रमा और रक्त चन्दन वृक्षोंका समूह चूर्ण-चूर्ण हो गया है। हार-दोर-केयूर-कटक-करधनी-कलाप और मुकुटोंपर अवलम्बित मन्दार मालाओंसे शोभित यक्ष तथा यक्षिणियोंके विमानोंसे जो आच्छादित है; जो श्रेष्ठ आराओंसे कराल चक्रोंका अनुगमन करते हुए माण्डलीक सूर सामन्त भालों, तलवारों और चाप-समूहसे संकीर्ण और भयंकर है। गजोंके मदजलके धाराप्रवाहसे धूलके शान्त हो जानेपर, दिखाई पड़नेवाले दसों दिशाओंके मुखोंको भरते हुए सैनिक नरों द्वारा विविध छत्रचिह्न उठा लिये गये हैं। जहाँ अनुचरोंके शरीरसे परिगलित स्वेद निर्झरकी बूँदों और अश्वोंके फेन-जलोंसे गीले तलभागमें गड़ते (खचते हुए) शकटोंसे मार्गप्रदेश संकीर्ण हो चुका है।

घत्ता—(ऐसी) उस प्रबल सेनाको आक्रमण करते हुए देखकर म्लेच्छकुलके राजाओंने कहा—"अब कौन शरण है, मरण आ पहुँचा है, चारों ओर शत्रु दौड़ रहा है ॥७॥

८

जो सामर्थ्यवान् राजा गिरिघाटी और नदियोंके मुखोंका उल्लंघन करता है, दसों दिग्गजोंको जीतनेवाला है, ऐसा राजा हम-जैसे लोगोंसे कैसे जीता जा सकता है। हा-हा, बहुत समयके बाद दैवसे निवेदित प्रलयकाल आ पहुँचा।" इस प्रकार म्लेच्छ महामण्डलके अधिराजों, आवर्त तथा किलातोंके वचन सुनकर धीर मन्त्रीने कहा,—"आपत्तिके समय 'हा' नहीं करना चाहिए, जिस प्रकार जीवनमें जो प्राप्त हो, उस सबको सहन करना चाहिए, हतभाग्य विधातासे कोई नहीं बचता। जहाँ युद्ध होगा, वहाँ मारकाट अवश्य होगी। इसलिए धैर्य ही मनुष्यका मण्डन है। दूसरेकी सेनाका विदारण करनेवाले जो विषधर हैं, वे तुम्हारे आदरणीय कुलदेव हैं। हे स्वामी-श्रेष्ठ, तुम उनका सद्भावसे स्मरण करो। भयसे क्या, और बलके गर्वसे क्या ?" उन म्लेच्छ-राजाओंने भी इन वचनोंको समझ लिया। उन्होंने मेहमुख नामक नागोंका अपने मनमें ध्यान किया, जो विकट फनोंके समूहसे उद्भट, विषकी ज्वालाओंसे गिरितटके वटवृक्षोंको दग्ध करनेवाले उठते हुए धुएँके समान मैले, अपने शिरोमणियोंकी किरणोंसे दिशाओंको आलोकित करनेवाले थे। अर्घ्य पुष्पोंकी रसवाससे दौड़कर आते हुए वे शीघ्र चिलबिलाते हुए वहाँ पहुँचे।

घत्ता—विषधरोंके राजा सर्पने कहा, "क्या ग्रह-नक्षत्रोंको गिरा दूँ ? जिसमें सुरवर क्रीड़ा करते हैं ऐसे मानसरोवरके क्या कमल तोड़ लाऊँ" ॥८॥

९

दुवई—ता मेच्छाहिवेण भणिया फणिणो गज्जंतगयवरं ।
णिहणह[1] वेरिसेण्णमिणमो तरुणीकरचलियचामरं ॥१॥

खंधावारहु उप्परि अहणिसु ता णायहिं वेउव्विउ पाउसु ।
मयउलु तसइ रसइ वरिसइ घणु पीयलु सामलु विलसइ सुरधणु ।
महिणीहरिउ हरिउ वड्ढइ तणु पवसियपियहि पियहि तप्पइ मणु[2] ।
फुल्लकलंबतंबु[3] दीसइ वणु तिम्मइ तम्मइ मणि जूरइ जणु ।
तडि तडयडइ पडइ रुंजइ हरि तरु कडयडइ फुडइ विहडइ गिरि ।
जलु परियलइ घुलइ घुम्मइ दरि अइरय सरइ भरइ पूरें सरि ।
जलु थलु सयलु जलु जि संजायउ मग्गु अमग्गु[4] ण किं पि वि णायउ ।
सरु कुसुमसरु णिरारिउ संधइ विरहें मंथिय पंथिय विंधइ ।
घत्ता—पाणिउ णीयगइ विज्जु वि डहइ धणु णिग्गुणु कुडिलु सुरिंदहो ।
पाउसु हयमणहो समु दुज्जणहो जो वरिसइ उवरि णरिंदहो ॥९॥

१०

दुवई—सलिलु[1]त्थल्लरेल्लपडिपेल्लणहयदुमविगयरिंछओ ।
णवघणरावमुइयचंदक्ककलावुद्धसियपिंछओ ॥१॥

दीसइ लग्गउ वासारत्तउ सेणामहिलहि णावइ रत्तउ ।
असिजलि णिवडिवि जलु पुणु धावइ भडभुयदंडहु संमुहुं आवइ ।
तहिं तं ण मिलइ गमणु जि मग्गइ लोहें गिलियहु को किर लग्गइ ।
धुवइ किं पि अलिपिंछहिं दलियउ वहुमुहलिहियउ पत्तावलियउ ।
को मंडणु विसहइ रिउघरिणिहि ढालइ सिरसिंदूरइं करिणिहिं ।
वंस वंस तुहुं मइं वड्ढारिउ एवहिं परचिंधें वेयारिउ ।
महु सरु प्राणहारि[2] णावइ सरु इय गज्जंतु व पभणइ जलहरु ।
धोयइ मयमायंगहं दाणइं दुम्मेहहं रुच्चंति ण दाणइं ।
थक्क सचक्कवाय रह णं सर तोइ तरंति ण के के किर णर ।
ता[3] पभणइ णरणाहपुरोहिउ लोउ देव उवसग्गें रोहिउ ।
एयहु पडिविहाणु लहु किज्जइ अईणु[4] वारिवारणु चिंतिज्जइ ।
ता राएं बलवइमुहुं जोइउ तेण वि पेसणु झत्ति विवेइउ ।
घत्ता—णियमणि चिंतियउ तेलि चित्तियउं[5] तं चम्मरयणु जणभरधरु ।
उप्परि पुणु थविउ जगगउरविउ धवलायवत्तु[6] जियससहरु ॥१०॥

---

९. १. MB णिहणिवि । २. MBP तणु । ३. BP °कलंबु तंबु । ४. MBP अमग्गु वि किं पि ण णायउ ।
१०. १. K सलिलुच्छल्ल° । २. MB पाणहारि; P पाणिहारि । ३. MBP ताम भणइ । ४. M अयणु ।
५. MBP घत्तियउ । ६. K °आयपत्तु जिह ससहरु ।

९

तब म्लेच्छराजने नागोंसे कहा—'जिसमें गजवर गरज रहे हैं, और तरुणीजन द्वारा स्वर्ण चामर ढोरे जा रहे हैं, ऐसी इस शत्रुसेनाको मार डालो।" तब नागोंने स्कन्धावारके ऊपर विद्यासे दिन-रात वर्षा शुरू कर दी। पशुकुल त्रस्त होता है, घन-कुल गरजता है और बरसता है, पीला और श्यामल इन्द्रधनुष शोभित है। मही निखर उठी है, हरी घास बढ़ रही है, प्रोषित-पतिकाओंका मन पियके लिए सन्तप्त हो रहा है, बान खिले हुए कदम्ब वृक्षोंसे आरक्त दिखाई देते हैं, गीला-गीला होकर जन-मनमें खेदको प्राप्त होता है, बिजली तड़तड़ पड़ती है, सिंह गरजता है, वृक्ष कड़कड़ करके टूटते हैं, पहाड़ विघटित होता है। जल बहता है, फैलता है, घाटीमें घूमता है। वेगसे दौड़ता है, नदी पूरसे भरती है, जल और थल सब कुछ जलमय हो गया। मार्ग-अमार्ग कुछ भी नहीं मालूम पड़ता। कामदेव अपने तीरका अच्छी तरह सन्धान करता है और विरहसे पीड़ित पथिकको विद्ध करता है।

घत्ता—पानी निम्नगति है, बिजली भी जलाती है, देवेन्द्रका धनुष निर्गुण और कुटिल है। पावस हतमन दुर्जनके समान है कि जो राजाके ऊपर बरस रहा है ॥९॥

१०

जिसमें जलकी धाराओंकी रेलपेलसे वृक्ष आहत है और पशु चले गये हैं, जिसमें नवमेघोंकी ध्वनिसे अपने चन्द्रकलाप फैलाकर मयूर नाच रहे हैं, ऐसी वर्षा ऋतु आ गयी दिखाई देती है, जैसे वह सेनारूपी महिलापर आसक्त हो। तलवारके जलपर गिरकर पानी फिर दौड़ता है, और योद्धाओंके भुजदण्डोंके सम्मुख आता है, वह वहाँ भी नहीं ठहरता और वहाँसे जाना चाहता है, लोभसे ग्रस्त कौन किससे लगता है, वह भ्रमरोंके पंखोंसे दलित होकर वधुओंके मुखोंपर लिखित पत्रावलीको कुछ-कुछ धोता है। शत्रुकी गृहिणीके मण्डनको कौन सहन करता है, वह हथिनियोंके सिरोंका सिन्दूर ढोर देता है। "हे ध्वजदण्ड, तुम्हें मैंने बड़ा किया है इस समय दूसरोंके ध्वज-चिह्नोंसे शोभित हो, मेरा सर (स्वर) अब प्राणहारी (प्राण धारण करनेवाला / प्राण हरण करनेवाला) सर (सर/तीर) के समान है।" मानो मेघ गरजते हुए इस प्रकार कह रहा है। वह मैगल गजोंके मदजलको धोता है, मानो दुष्ट मेघोंके लिए दान अच्छा नहीं लगता। चक्रवाक सहित रथ ठहर गये हैं मानो सरोवर हों, पानीमें कौन-कौन मनुष्य नहीं तिरते। राजाका पुरोहित तब कहता है—"हे देव, लोक उपसर्गसे अवरुद्ध है, इसका कोई प्रतिविधान करना चाहिए, पानीका निवारण करनेवाले चर्मरत्नकी चिन्ता की जाये।" तब राजाने सेनापतिका मुख देखा, वह भी शीघ्र आदेश समझ गया।

घत्ता—अपने मनमें विचारकर, जनोंके भारको धारण करनेवाले चर्मरत्नको उसने तलभागमें डाल दिया। और ऊपर जगके गौरव, चन्द्रमाको जीतनेवाले धवल आतपत्र स्थापित कर दिया ॥१०॥

११

दुवई—बारहजोयणाइं वित्थारें सिविरु कुलीरमाणिए।
पविउलछत्तचम्मकयसंपुडि थिउ वेरिसंतु पाणिए ॥१॥

गयणयलु धरणियलु गिरिसिहरु रेल्लियउ पडिएण पउरेण तोएण पेल्लियउ।
अइणायवत्तेहिँ रइए समुग्गम्मि णिवसंति णरवइणरा णाइं सग्गम्मि।
ते दोण वरिसंति ते णेय जाणंति इट्ठाइं मिट्ठाइं सोक्खाइं माणंति।
रयणोयरे साहणं जाम संचरइ अरविंदगब्भम्मि अलिउलु व रइ करइ।
खलबलहरोवाय हिययम्मि संभरइ कागणिकयाइच्चससियरहिँ वावरइ।
सत्ताहरत्ते गए णवर कुद्धेहिँ चूडामणिल्लेहिँ मारणविरुद्धेहिँ।
इंगालहरिणीलकालिंदिकालेहिँ मुहकुहरणिम्मुक्कगरलग्गिजालेहिँ।
उत्तुंगभूभंगभंगुरियभालेहिँ सिसुससहरायारदाढाकरालेहिँ।
णिट्ठवियपरदंडजमदंडदीहेहिँ आरत्तलोलंतचलजमलजीहेहिँ।
गरुयाहिमाणेहिँ परिगहियमेच्छेहिँ कलहिच्छदुप्पेच्छरोसारुणच्छेहिँ।
णीसासविसलवमलालित्तचंदेहिँ मरु मरु भणंतेहिँ मरुगासिवंदेहिँ।
हरिकरिमहाजोहसामंतपब्भारु विउणयरु तिउणयरु वेढियउ खंधारु।
रामाहिरामेण संगामधुत्तेण रूसेवि देवाहिदेवस्स पुत्तेण।

घत्ता—परणरदुज्जयहो राएं जयहो वीरपट्टु सइं बद्धउ।
सो विसहरवरहं णवजलहरहं जुगखयकयंतु णं कुद्धउ ॥११॥

१२

दुवई—ता सोलहसहासजक्खामरविरइयगंधवाहिणं।
भग्गा सलिलवाह पीलू विव चलयरहरिणाहिणं ॥१॥

चक्कें वइरिमहाभड छिण्णा दइवें णाइं दिसाबलि दिण्णा।
तं अवलोयवि गय भयवस फणि गय णवघण गय सा सोदामणि।
मेच्छणरिंदहिँ सकरुणु रुण्णउं दोजीयहुं किं किर पडिवण्णउं।
विसभरियहं किं किर सुयणत्तणु वंकगइल्लहं किं गुणकित्तणु।
छिद्दग्गेसिहिँ को रंजिज्जइ अणिलासिहिँ किं परु पोसिज्जइ।
चरणविवज्जिउ को जसु पावइ णिव्वभुयंगहं णिच्चु जि आवइ।
रणजइ जउ गज्जिउ घणणाएं घणणाउ जि सो कोक्किउ राएं।

---

११. १. MBP वरिसंत। २. MBP °विलुद्धेहिं। ३. B °ससिहरापार°। ४. MBPK °घोलंत°। ५. MBP °मलालित्तदेहेहिं। ६. MBP मरुगासिभंडेहिं। ७. P °देवेसपुत्तेण। ८. MBP सइं वीरपट्टु सिरि बद्धउ। ९. MB °धरहं; P °धारहं। १०. °हारहं; GK omit णवजलधरहं। ११. MBP जुगखइ कयंतु।

१२. १. MBP सोलस°। २. MBP दोजीहहिं। ३. MB किंकर। ४. P विसहरियहं। ५. P छिद्दाणेसिहिं। ६. MBP कोक्किउ सो।

११

मत्स्योंके द्वारा मान्य पानीमें वह शिविर बारह योजन तक, विस्तृत विशाल छत्र और चर्म निर्मित सम्पुटमें वर्षाकालके समय स्थित हो गया। गिरते हुए प्रचुर पानीके दबावसे आकाशतल, धरणीतल और गिरिशिखर जलमय हो गये। लेकिन चर्मरत्न और आतपत्रोंके सम्पुटमें राजाके लोग इस प्रकार रह रहे थे, मानो स्वर्गमें स्थित हों। मेघ बरसते हैं, वे यह नहीं जानते। वे इष्ट और मीठे सुखोंको मानते हैं। रत्नोंके भीतर सेना चलती है और जो कमलोंके गर्भमें भ्रमरकुलकी तरह रति करती है। वह शत्रुकी शक्तिके हरणका उपाय अपने मनमें सोचता है और कागणीके द्वारा निर्मित सूर्य और चन्द्रकी किरणोंका प्रयोग करता है। सात दिन-रात बीत जानेपर चूड़ामणि धारण करनेवाले मारनेके लिए विरुद्ध, कोयला हरि नील कालिन्दी और कालके समान काले, मुँहरूपी कुहरसे विषाग्नि ज्वालाओंको ऊँचे भ्रूभंगोंसे भंगुरित (टेढ़े) भालवाले शिशु चन्द्रमाके आकारकी दाढ़ोंसे विकराल, दूसरोंके दण्डको नष्ट करनेवाले यमदण्डके समान दीर्घ, आरक्त चंचल लपलपाती दो जीभोंवाले, भारी अभिमानवाले, म्लेच्छोंका परिग्रहण (आश्रय) लेनेवाले, कलहके इच्छुक दुर्दर्शनीय और क्रोधसे आरक्त नेत्रोंवाले, निश्वासोंके विषकणोंके भालसे चन्द्रमाको आलिप्त करनेवाले, मारो-मारो कहते हुए साँपोंके द्वारा, अश्वगजों, महायोद्धाओं और सामन्तों के प्रभारवाले स्कन्धावार दुहरा-तिहरा घेर लिया गया। तब रमणियोंके लिए सुन्दर संग्राममें चतुर—देवाधिदेवके पुत्र भरतने क्रुद्ध होकर—

घत्ता—शत्रुपुरुषके लिए अजेय जयका वीरपट्ट (राजाने) स्वयं बाँध लिया, मानो विषधरवरों और नवजलधरोंपर युगका क्षय करनेवाला कृतान्त ही क्रुद्ध हो उठा हो ॥११॥

१२

तब सोलह हजार यक्षामरोंके द्वारा विरचित पवनोंके द्वारा मेघ उसी प्रकार नष्ट हो गये, जिस प्रकार चंचल हरिणोंके स्वामी (सिंह) से गज नष्ट हो जाते हैं। चक्रसे शत्रु महायोद्धा इस प्रकार छिन्न हो गये, मानो देवने दिशावलि छिटकी हो। यह देखकर नाग डरकर भाग गये। नवघन चले गये और वह बिजली चली गयी। तब म्लेच्छ राजाओंने करुणापूर्वक रोना शुरू कर दिया कि द्विजिह्वोंने यह क्या किया? जो विषसे भरे होते हैं उनमें क्या सज्जनता हो सकती है? जो टेढ़ी गतिवाले हैं उनका क्या गुणकीर्तन? छिद्रोंका अन्वेषण करनेवालोंसे कौन प्रसन्न हो सकता है? जो हवाका पान करते हैं, उनसे दूसरोंका क्या पोषण होगा? चरण (चारित्र पैर) से रहित कौन यश पा सकता है? नित्य भुजंगों (गुण्डों और साँपों) को नीचता ही आ सकती है। युद्धके

सिरचूलाचुंबियभूभायहिं दूरंतरहु णमंसियपायहिं ।
दिण्णहिरण्णवत्थसंघायहिं दिट्ठु राउ आवत्तचिलायहिं ।
साहिवि मेच्छराउ गंजोल्लिउ अणुतीरें सिंधुहि पुणु चल्लिउ ।
पहु हिमवंतु पराइउ जावहिं आइय सिंधु भडारी तावहिं ।
देवय दिव्वदेह णउ सा सरि सिंधुकूडवासिणि परमेसरि ।
राउ णिहालिवि कलसविहत्थइ लहु भद्दासणि णिहिउ पसत्थइ ।

घत्ता—सिंधूँदेवयए जलयरधयए अहिसिंचिवि थुउ मउलिवि कर ॥
दिण्णी माल तहो भरहाहिवहो णवपुप्फयंतथियमहुयर ॥१२॥

इय महापुराणे तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारे महाकइपुप्फयंतविरइए महाभव्वभरहाणुमण्णिए महाकव्वे आवत्तचिलायपसाहणं णाम चोद्दहमो परिच्छेओ सम्मत्तो ॥ १४ ॥

॥ संधि ॥ १४ ॥

---

७. P सिंधुवदेवइ । ८. B °पियमहुयर ।

जीत लेनेपर राजा घननाद गरजा, राजाने घननादको भी बुलाया। अपने सिरोंके चूड़ामणियोंसे भूमिका भाग छूते हुए, दूरसे पैरोंमें नमस्कार करते हुए, हिरण्य वस्तु-समूहका दान करते हुए आवर्त और किरात राजाओंने राजासे भेंट की। इस प्रकार म्लेच्छराजको साधकर हर्षसे उछलता हुआ वह सिन्धु नदीके किनारे-किनारे फिरसे चला। जब राजा हिमवन्तके निकट पहुँचा तब आदरणीय सिन्धु देवी आयी। वह नदी नहीं, दिव्य स्वरूप धारण करनेवाली देवी थी, जो परमेश्वरी सिन्धुकूटमें निवास करती थी। राजाको देखकर उसे भद्रासनपर बैठाकर कलश हाथमें लिये हुए प्रशस्त—

घत्ता—जलचर ध्वजवाली सिन्धु देवीने अभिषेक कर दोनों हाथ जोड़कर उसकी स्तुति की। और उस भरताधिपके लिए नवपुष्पोंपर स्थित मधुकरोंवाली पुष्पमाला अर्पित की ॥१२॥

इस प्रकार त्रेसठ महापुरुषोंके गुणों और अलंकारोंवाले इस महापुराणमें महाकवि पुष्पदन्त द्वारा विरचित एवं महाभव्य भरत द्वारा अनुमत महाकाव्यमें आवर्त-किलात प्रसाधन नामका चौदहवाँ परिच्छेद समाप्त हुआ ॥१४॥

संधि १५

मेल्लिवि सिंधुसरि पणवेप्पिणु रिसहजिणिंदहो ॥
पुणु संचलिउ पहु भयरसु जणंतु अमरिंदहो ॥ १ ॥ ध्रुवकं ॥

१

सेणासेणाहिवपरियरिय हिमवंतु धरेप्पिणु संचलिय ।
सोहइ गच्छंती पुव्वमुह कुरुवंसणाहपत्थिवपमुह ।
दीसइ सेलत्थलि काणणउं महिसीदुद्धु व साद्दाघणउं ।
णाणामहिरुहफलरसहरइं कत्थइ किलिगिलियइं वाणरइं ।
कत्थइ रइरत्तइं सारसइं कत्थइ तवतत्तइं तावसइं ।
कत्थइ झरझरियइं णिज्झरइं कत्थइ जलभरियइं कंदरइं ।
कत्थइ वीणियवेल्लीहलइं दिट्ठइं भज्जंतइं णाहलइं ।
कत्थइ हरिणइं उल्ललियाइं पुणु गोरीगेयहु वलियाइं ।
कत्थइ हरिणहरुक्कत्तियइं करिकुंभुच्छलियइं मोत्तियइं ।
कत्थइ सुम्मइ जक्खिणिझुणिउं खयरीकरवीणारणरणिउं ।
कत्थइ भसलउलहिं रुणुरुणिउं कत्थइ सुएण किं किं भणिउं ।
घत्ता—कत्थइ किंणरहिं गाइज्जइ सवणपियारउ ॥
रिसहणाहचरिउ फणिणरसुरलोयहु सारउ ॥१॥

२

णिक्खित्तसुरासुरइणियले हिमवंतकूडतलधरणियले ।
णवचंपयकुसुमावासियउ साहणु सव्वंगु आवासियउ ।
बहुदोरहिं दूसइं ताडियइं रणवडहसहासइं ताडियइं ।

MBP give, at the commencement of this Samdhi, the following stanza:—

त्यागो यस्य करोति याचकमनस्तृष्णाङ्कुरोच्छेदनं
कीर्तिर्यस्य मनीषिणां वितनुते रोमाञ्चचर्चं वपुः ।
सौजन्यं सुजनेषु यस्य कुरुते प्रेमान्तरां निर्वृतिं
श्लाघ्योऽसौ भरतः प्रभुर्वत भवेत्त्वाभिर्गिरां सूक्तिभिः ॥

MB read प्रेम्णोऽन्तरां for प्रेमान्तरां. G does not give it.

U K give it at the commencement of Samdhi XCV.

१. १. MB °महिरुहरुहरस°; P °महिरुहफलरस°, but records a *p* °महिरुहरुहरस° । ४. MBI किलिकिलियइं । ३. MBP °कुंभत्थलियइं ।

सन्धि १५

सिन्धु नदीको छोड़कर और ऋषभ जिनेन्द्रको प्रणाम कर राजा भरत अमरेन्द्रोंको भयरस उत्पन्न करता हुआ चला।

१

सेना और सेनापतिसे घिरा हुआ हिमवन्तको अपने अधीन कर वह चल पड़ा। जिसमें कुरुवंशके स्वामी राजा प्रमुख हैं ऐसी सेना पूर्वकी ओर मुख किये हुए शोभित है। शैलके स्थलमें कानन इस प्रकार दिखाई देता है, मानो महिषीके दूधके समान साहाघन (शाखाओं और दुग्ध-धारासे सघन) है, कहींपर नाना वृक्षोंके फलरसको चखनेवाले वानर किलकारियाँ भर रहे हैं, कहीं सारस रतिमें रक्त हैं, कहीं तपस्वी तपसे सन्तप्त हैं, कहीं निर्झर झर-झर बह रहे हैं, कहीं गुफाएँ जलसे भरी हुई हैं, कहीं झुके हुए बेलफल हैं जो भीलोंके द्वारा भग्न होते हुए दिखाई देते हैं, कहीं हरिण चौकड़ी भर रहे हैं, फिर गौरीके गीतसे मुड़ते हैं, कहींपर सिंहके नखोंसे उखाड़े गये मोती हाथियोंके गण्डस्थलोंसे उछल रहे हैं। कहीं पर यक्षणियोंकी ध्वनिलहरी सुनाई देती है, कहींपर विद्याधरीके हाथोंकी वीणा रुनझुन कर रही है। कहींपर भ्रमरकुलोंके द्वारा गुंजन किया जा रहा है, और कहींपर शुक 'किं किं' बोल रहा है।

घत्ता—कहींपर किन्नरियोंके द्वारा कानोंको प्रिय लगनेवाला नाग, नर और सुरलोकमें श्रेष्ठ ऋषभनाथ चरित गाया जा रहा है ॥१॥

२

जहाँ सुर-असुरोंकी रति शृंखलाएँ निक्षिप्त हैं ऐसे हिमवन्तके कूटतलके धरातलपर नव-चम्पक कुसुमोंसे सुवासित छह अंगोंवाले सैन्यको ठहरा दिया गया। बहुत-सी रस्सियोंसे तम्बू ठोक दिये गये, हजारों युद्धपटह बजा दिये गये। गजशाला और नाट्यशालागृह और प्रवरशाला-

करिसालाणडसालाहरइं उब्भियइं पउरसालाहरइं ।
हरिवरमंदुरउ समुंडियउ णं घडदासीउ सुमुंडियउ ।
ठवियइं मणिमंडवियासयइं अवराइं मि दिव्वइं आसयइं ।[1][2]
दुव्वारवइरिमयपहरणइं अहिवासिवि भूसिवि पहरणइं ।
दक्खालियससहररयणियहिं[3] पोसहु पडिवज्जिवि रयणियहिं ।
कुससयणि पसुत्तउ सइं भरहु उग्गमिउ दिणाहिवु णहि भरहु ।
करि धरिउ सरासणु राणएण बहु विहरिउ मंडलराणएण ।
आरुहिवि रहंगि[4] ण संकियउ वइसाहठाणु सइं संकियउ ।
जो लोहवंतु परमग्गणउ सो गुणि संणिहियउ मग्गणउ ।
किं अच्छइ णवर उद्धु[5] गयउ हिमवंतकुमारहु णं गयउ ।

घत्ता—पडिउ सपंगणए[6] उप्पुंखु[7] बाणु अवलोइउ ॥
चिंतिउ तेण मणे को एहउ कालें चोइउ ॥२॥

३

किं पाणि पसारिउ फणिमणिहे तडयडिहे णहि सोदामणिहे ।
दीहरजालामालाजलिउ पलयाणलु केण पडिक्खलिउ[1] ।
केसरिकेसरु उल्लूरियउ कालाणिलु[2] केण वियारियउ ।
किउ केण गरुडपक्खाहरणु भणु केण णिसुंभिउ जमकरणु ।
दलवट्टिउ माणु पुरंदरहो किं सिहरु पलोट्टिउ मंदरहो ।
णियहत्थें णिम्मंथिउ[3] जलहि पडिकूलिउ केण हवंतु[4] विहि ।
दिट्ठीविसवयणु णिरिक्खियउ कें[5] हालाहलु विसु भक्खियउ ।
जगि केण भाणु णित्तेइयउ महु केण रोसु उप्पाइयउ ।
को पारु पराइउ णहयलहो को सुपहुत्तउ णियभुयबलहो ।
किं ण मरइ करवालेण हउ ण वियाणहुं किं सो वज्जमउ ।
सरु मज्झु वि केण विसज्जियउ खयडिंडिमु[6] कासु पवज्जियउ ।

घत्ता—जेण विमुक्कु[7] सरु अइदीहु समाणु फणिंदहो ॥
सो महु मरइ रणे जइ पइसइ सरणु सुरिंदहो ॥३॥

---

२. १. P reads after this : मिहुणइं रमंति रत्तासयइं, अवराइं मि दिव्वइं आसयइं, णियपहणिज्जयदेवासयहिं । २. MB read after this : मिहुणइं रमंति रत्तासयइं, णियपहणिज्जियदेवासयइं । ३. BP ससिहररयणियहिं । ४. P रहंगि । ५. MBP उद्धगयउ । ६. M पपंगणए; B पसंगणए । ७. MB उप्पंखु ।

३. १. MBPK पडिखलिउ । २. MBP कालाणलु । ३. M णिमत्थिउ; BP णिम्मत्थिउ । ४. P हणंतु । ५. MBP किं । ६. MBP खयडिंडिमु । ७. M विमुक्क सरु ।

गृह खड़े कर दिये गये। दोनों ओर उत्कीर्ण काष्ठोंसे युक्त अश्वशाला ऐसी मालूम होती थी मानो सुमुण्डित घटदासी हो। मणिमय मण्डपोंके घर स्थापित कर दिये गये, और भी दूसरे घर निर्मित कर दिये गये। दुर्वार वैरियोंके मदपर प्रहार करनेवाले अस्त्रोंको अधिष्ठित और भूषित कर दिया गया। अपने चन्द्रमारूपी चूड़ामणिको दिखानेवाली रात्रिमें उपवास स्वीकार कर स्वयं भरत कुशासन पर सो गया। सवेरे आकाशमें नक्षत्रोंको ढकनेवाला दिनाधिप उग आया। राजाने धनुष अपने हाथमें ले लिया, मण्डल राणाने खूब क्रीड़ा की। रथके अग्रभागपर चढ़ते हुए उसने शंका नहीं की। उसने स्वयं वैशाख-स्थान किया।[1] जो लोहवन्त (लोभ और लोहेसे युक्त) ऐसे उस मग्गण (बाण और याचक) को गुणि (डोरी / गुणी व्यक्ति) पर रख दिया गया। क्या वह रहता है, नहीं केवल वह ऊपर गया मानो हिमवन्त कुमारके पास गया हो।

घत्ता—अपने आँगनमें पड़े हुए पुंख सहित बाणको उसने देखा और अपने मनमें विचार किया यह कौन है जिसे कालने प्रेरित किया है ? ॥२॥

३

क्या उसने नागमणिके लिए हाथ फैलाया है, या आकाशमें कड़कती हुई बिजलीके लिए ? दीर्घ ज्वालमालाओंसे प्रज्वलित प्रलयाग्निको किसने छेड़ा है ? सिंहकी अयालको किसने उखाड़ा है ? कालानलको किसने क्षुब्ध किया है ? किसने गरुड़के पंखोंका अपहरण किया है ? बताओ किसने जमकरणको नष्ट करना चाहा है ? किसने देवेन्द्रका मान चूर-चूर किया है, क्या उसने मन्दराचलके शिखरको उलटाया है ? किसने अपने हाथसे समुद्रका मन्थन किया है, होते हुए भाग्यको किसने प्रतिकूल कर लिया है ? दृष्टि और विषमुख किसने देखा है ? किसने हालाहल विष खाया है ? विश्वमें सूर्यको निस्तेज किसने बनाया ? मुझे किसने क्रोध उत्पन्न किया है ? आकाशतलके पार कौन जा सका है ? अपने बाहुबलके लिए अत्यन्त पर्याप्त कौन है ? क्या वह तलवारसे आहत होकर भी नहीं मरता ? हम नहीं जानते कि क्या वह वज्रमय है ? मुझे किसने यह तीर विसर्जित किया ? किसका क्षयका नगाड़ा बज उठा है ?

घत्ता—जिसने नागेन्द्रके समान अति दीर्घ लम्बा तीर छोड़ा है वह युद्धमें मुझसे मरेगा, भले ही वह देवेन्द्रकी शरणमें चला जाये ? ॥३॥

---

१. बायें पैर और घुटनेको धरतीपर रखकर, दूसरेके ऊपर उठाना वैशाख स्थान कहलाता है।

४

इय तेण गज्जियउं पुणु कज्जु सज्जियउं ।
पिंछेहिं पत्तियउ दित्तीइ दित्तीयउ ।
चित्तेण चित्तियउ मंतेण मंतियउ ।
हिययम्मि चिंतियउ राएण घत्तियउ ।
गंधेहिं चच्चियउ फुल्लेहिं अंचियउ ।
पुण्णेहिं संचियउ केण वि ण वंचियउ ।
हयवेरिसंताणु अवलोइओ बाणु ।
ता तम्मि लिहियाइं सुरणियरमहियाइं ।
णिज्जियदियंताइं परिछेयवंताइं ।
वाईसिअंगाइं छंदाणुलग्गाइं ।
बिंदुयहिं चप्पियइं मत्तावियप्पियइं ।
वेल्लीहिं वलियाइं अक्खरइं ललियाइं ।
गाढं विसिट्ठाइं सरसाइं मिट्ठाइं ।
इट्ठाइं दिट्ठाइं हियए पयट्ठाइं ।
अरिसीहसरहस्स आणाइ भरहस्स ।
जो जियइ सो जियइ इयरस्स खयणियइ ।
अइरेण अवयरइ वइवसु वि ध्रुवुं मरइ ।
पुणु पुणु वि जोएवि इय तेण वाएवि ।
सह समियसमरेहिं अंवरहिं मि अमरेहिं ।

घत्ता—दिट्ठउ चक्कवइ चमरहिं चामीयरदंडहिं ॥
रयणहिं मोत्तियहिं पणवंतें णियभुयदंडहिं ॥४॥

५

णरणाहें रयणहिं पुज्जियउ हिमवंतु कुमारु विसज्जियउ ।
सो किंकरत्तु मणि धरिवि गउ राणउ पुणु तिहुयणलद्धजउ ।
हरिसद्दसुभीमगुहाहरहो सइं आइउ वसहमहीहरहो ।
दीसइ गिरिमेहलघुलियघणु णं धरणिहि केरउ एक्कु थणु ।
णिज्झरजलदुद्धपवाहधरु णिरु णाहलडिंभहं सोक्खयरु ।
रइगारउ णावइ कुसुमसरु मयवंतु णाइ कुपुरिसपसरु ।
रसवंतु णाइं णच्चणु पवरु बहुणाबालंकिउ बहुविवरु ।
बहुविद्दुमोहु णं मयरहरु बहुफलपयासि णं पुण्णभरु ।
बहुकंकणु णं महिमहिलियरु बहुओसहिल्लु णं भिसयवरु ।

४. १. MK चिंतियउ । २. M अच्चियउ । ३. MP परिच्छेयवत्ताइं । ४. MBP पइट्ठाइं । ५. MBP धुउ । ६. MBP अवरेंहि । ७. MBP पणवंतहि ।

५. १. MBP हिमवंत° । २. B किं करंतु । ३. MBP आयउ । ४. M एक्क । ५. MBP णच्चण° । ६. MBP महिलयरु ।

४

उसने इस प्रकार गर्जना की और फिर अपना काम सम्हाला। उसने वैरी परम्पराका अन्त करनेवाले बाणको देखा, जो पुंखोंसे पत्रित, दीप्तिसे दीप्त, चित्रसे चित्रित और मन्त्रसे मन्त्रित था, जो हृदयमें सोचा गया और राजा (भरत) के द्वारा छोड़ा गया था। गन्धसे चर्चित, फूलोंसे अंचित और पुण्योंसे संचित उसे कोई नहीं बांच सका। तब उसमें लिखे हुए सूरसमूहके द्वारा महनीय, दिग्गजोंको जीतनेवाले निर्णायक वागेश्वरी देवीके अंगस्वरूप छन्दोंमें रचित, बिन्दुओंसे युक्त मात्राओंसे रचित, पंक्तियोंमें मुड़े हुए सुन्दर, सघन रूपसे लिखे गये सरस और मीठे और इष्ट, सुन्दर अक्षरोंको उसने देखा। वे हृदयमें प्रवेश कर गये। "शत्रुरूपी सरभके लिए सिंहके समान भरतकी आज्ञासे जो जीता है वही जीता है, दूसरेका क्षयकाल शीघ्र आ जाता है, यम भी निश्चित रूपसे मरता है।" बार-बार उस पत्रको देखकर और इस प्रकार उसे पढ़कर युद्धको शान्त करनेवाले दूसरे देवोंके साथ—

घत्ता—चामरों, स्वर्णदण्डों, रत्नों, मोतियोंके द्वारा और अपने भुजदण्डोंसे प्रणाम करते हुए उसने चक्रवर्तीसे भेंट की ॥४॥

५

राजाने रत्नोंसे पूजा कर हिमवन्त कुमारको विसर्जित कर दिया। वह दासता स्वीकार कर चला गया। त्रिभुवनमें जय प्राप्त करनेवाला राजा भरत सिंहकी गर्जनासे भयंकर गुहारूपी घरवाले वृषभ महीधरके निकट आया। पहाड़की मेखलासे व्याप्त घन ऐसा दिखाई देता है, मानो धरतीका एक स्तन हो। निर्झरके जलरूपी दूधके प्रवाहको धारण करनेवाला जो भीलोंके बच्चोंके लिए अत्यन्त सुखकर है, कामदेवके समान रतिकारक है, कुपुरुषके प्रसारके समान मदवाला है, प्रवर नृत्यके समान रसमय है, बहुत-से नागोंसे अलंकृत बहुविवर (बहुछिद्रवाला, बहुत श्रेष्ठ पक्षियोंवाला) है। जो मानो बहुविद्रुमोघ (प्रवालौघ, विशिष्ट द्रुमौघ) वाला समुद्र है, जो मानो बहुपुण्य प्रकाशित करनेवाला पुण्यका भार है, मानो अनेक कंकणवाला धरतीरूपी महिलाका

हरिसेविउ णं जिणु परमपरु ।
करिदसणमुसलणिब्भिण्णतणु णं को वि महाभडु रइयरणु ।
सुरदाणवरमणीप्राणपिउ[7] णं णिवजससासणखंभु थिउ ।

घत्ता—तहु महिहरउ तडु पच्छाइउ चउहुं मि पासहिं ।
णरलिहियक्खरहिं गयपत्थिवणामसहासहिं ॥५॥

६

जहिं दीसइ तहिं अक्खरसहिउ मोक्खु व गिरिंदु मुणिगणमहिउ ।
चिंतइ भरहाहिउ बहुगुणउ कहिं णामु लिहिज्जइ महु तणउ ।
अण्णण्णहिं रायहिं भुत्तियइ इह[1] एयइ वसुमइधुत्तियइ ।
वोलाविय के के णउ णिवइ मोहंधहु मुज्झइ तो वि मइ ।
धण्णउ परमेसरु एक्कु पर जो हुउ पव्वइयउ मुएवि धर ।
बहुणरवइकरयललालियइ हउं विणडिउ सिरिपुण्णालियइ ।
सत्तंगरज्जभारेण[2] हय मयमइरइ मत्ती मुच्छ गय ।
धारागलंतलीलावयहिं अहिसिंचिय मंगलघडसयहिं ।
जा विज्जिय चलचमरहिं जियइ जा छत्तें छाइय णउ णियइ ।
असिवाणियकक्कसत्तु[3] महइ अंकुससंगें वंकिम वहइ ।
चवलत्तणु कुलधयवड्ढवरहो[4] गुणु मेल्लिवि गमणु पासि सरहो[5] ।
सिक्खियउ जाइ तहि गोमिणिहि आसत्तपुरिस[6] णरयावणिहि ।
णिवडंति महंत वि झत्ति किह वारिहि करिणीरय पीलु जिह ।

घत्ता—ताएं भुत्त चिरु पुणु पुत्तें सहुं सुहुं अच्छइ ।
वसुमइ झेंदुलिय[7] जगि केण वि समउ ण गच्छइ ॥६॥

७

णक्खहु वि ण लब्भइ यत्ति जहिं किं णाउं लिहिज्जइ एत्थु तहिं ।
मई जेहा पत्थिव को गणइ जे जे गय ते पुरोहु भणइ ।
परमेस महायणु जेण गउ सो पंथु जयम्मि ण केण कउ[1] ।
परु फेडवि जिह घेप्पइ पुहइ तिह णामु वि फेडिज्जइ णिवइ ।
ता बालमराललीलगइणा वीलामलमलिणेण[2] वि पइणा ।
राएं रायहु ओहारियउ अण्णहु कासु वि उत्तारियउ ।
करकागणिरेहादावियउ णियणाउं[3] गिरिंदि चडावियउ ।
रिसहहु रइरमणखयंकरहो हउं पुत्तु पढमें[4] तित्थंकरहो ।

---

७. MBP °पाणपिउ ।

६. १. MBP इय । २. MB °रज्जहारेण । ३. MBP असिपाणिय° । ४. MBP °वडधरहो । ५. MBP परहो । ६. MF आसत्तु पुरिसु; B आसत्तपुरिसु । ७. MBPT झिंदुलिय ।

७. १. P किउ । २. MB °मलिणाणण वि पइणा; P °मलिणाणणपइणा । ३. MBP णियणामु । ४. MB पदमु ।

हाथ है, जो मानो वैद्यकी तरह कई औषधियोंवाला है। जो मानो हरि सेवित (देवेन्द्र और सिंह) जिनवर हो। हाथियोंके दाँतोंके मूसलोंसे आहत शरीर जो मानो कोई युद्ध करनेवाला महासुभट हो। देव, दानव और मनुष्योंकी पत्नियोंके लिए प्राणप्रिय जो मानो जिनवरके शासनका स्तम्भ स्थित हो।

घत्ता—उस महीधरका तट चारों ओरसे मनुष्योंके द्वारा लिखे गये अक्षरों और विगत राजाओंके हजारों नामोंसे आच्छादित था ॥५॥

६

जहाँ दिखाई देता है वहाँ अक्षर सहित है, वह पर्वत मोक्षकी तरह मुनिगणके द्वारा पूज्य है। बहुगुणी भरत अपने मनमें सोचता है कि मेरा नाम कहाँ लिखा जाये ? दूसरे-दूसरे राजाओंके द्वारा भोगी गयी इस धूर्त धरतीके द्वारा कौन-कौन राजा अतिक्रमित (त्यक्त) नहीं हुए ? तब भी मोहान्ध मेरी मति मूछित होती है ? केवल एक परमात्मा धन्य हैं जो धरती छोड़कर प्रव्रजित हुए। अनेक राजाओंके हाथोंसे खिलायी गयी इस लक्ष्मीरूपी वेश्यासे मैं प्रवंचित किया गया। सप्तांग राज्यभारसे यह आहत है, मदरूपी मदिरासे मत्त और मूर्छाको प्राप्त है। धाराओंमें गिरते लीलारूपी जलोंवाले सैकड़ों मंगल घटोंसे अभिसिंचित है, जो चंचल चमरोंके द्वारा हवा की जाती हुई जीवित रहती है, जो छत्रोंसे आच्छादित होनेके कारण नहीं देख पाती, तलवारके जलकी कर्कशताको महत्त्व देती है। अंकुशके साथ टेढ़ी चलती है, कुलध्वजोंके श्रेष्ठ पदोंकी जो चंचलताको धारण करती है, और जो गुण छोड़कर दूसरेके पास जाती है। शिक्षित भी पुरुष इस धरतीमें आसक्त होकर नरकभूमिमें जाता है। बड़े-बड़े लोग भी शीघ्र किस प्रकार गिर पड़ते हैं जिस प्रकार हथिनीमें अनुरक्त हाथी गड्ढेमें गिर पड़ता है।

घत्ता—पिताके द्वारा बहुत समय तक भोगी गयी, यह फिर पुत्रके साथ सुखपूर्वक रहती है। यह धरती वेश्याके समान किसीके भी साथ नहीं जाती ॥६॥

७

जहाँ एक नखके लिए भी स्थान नहीं है, वहाँ यहाँ मैं अपना नाम कहाँ लिखूँ ? मेरे-जैसे राजाको कौन गिनेगा, जो-जो राजा जा चुके हैं, उन्हें पुरोहित कहता है ? जिस रास्ते परमेश्वर महाजन (ऋषभ) गये हैं, जगमें उस मार्गका अनुसरण किसीने नहीं किया। दूसरेको नष्ट कर जिस प्रकार धरती ग्रहण की जाती है हे राजन्, उसी प्रकार नाम भी मिटाया जाता है। तब बालहंसके समान लीलागतिवाले तथा लज्जारूपी मलसे मलिन स्वामी राजाने किसी राजाकी अवधारणा अपने मनमें की और किसी दूसरे राजाका नाम उतार दिया (मिटा दिया), तथा हाथके कागणी मणिकी रेखासे प्रदीप्त अपना नाम पहाड़पर चढ़वा दिया कि "मैं कामका क्षय

णामेण भरहु भरहाहिवइ बोल्लउ परु महियलि अत्थि जइ ।
हिमवंतजलहिपेरंत सइं छक्खंड वि णिज्जिय वसुह मइं ।
ता तियसहिं साहुक्कारियउ भरहेसरु जयजयकारियउ ।
पइं जेहउ को वि ण चक्कवइ को एम ससंकि णाउं थवइ ।
केंहु[5] अग्गइ धावइ कमलकरि कमलालय कमलाणणिय सिरि ।
दालिद्दहारि[6] किर कासु वसु तिजगत्तगामि[7] किर कासु जसु ।
असि कासु वइरिविद्धंसयरु[8] पइं मेल्लिवि को किर कप्पयरु ।
पइं मेल्लिवि णाणहु कवणु घरु परमप्पु[9] कासु देउ पियरु ।
घत्ता—रूवें विक्कमेण गोत्तें वलेण[10] [11]णयजुयत्तें ॥
तुज्झु समाणु तुहुं किं अण्णें माणुसमेत्तें ॥७॥

८

सरवरजलकीलियसारसयं दरिसावियचंपयसारसयं ।
काणणपरिहिंडियकुंजरयं गयणंगणविगयणिकुंजरयं ।
फलभारोणयसुरतरुविडवं रइयरेंणिलयहिं[1] खेयरविडवं ।
ओसहिओसारियविसहरयं वणसुरहिसमीहियविसहरयं[2]
मोत्तूण[3] तममलं धरणिहरं सधयं सेण्णं परंधरणिहरं[4] ।
चलियं सह पहुणा पउरहयं सारहिकरकसचोइयरहयं ।
अहिमाणवंतु णीसंकमइ पुव्वदिसभाएं संकमइ ।
हिमवंततलेण जि चिक्कमइ दियहेहिं जंतु वसुहं कमइ ।
गोगइदहहरिकरिमहिसयल अवठंभिवि रुंभिवि महि सयल ।
णियवइहि णिहालिवि चंदवलु मंदाइणिपुलिणइ थियउ वलु ।
जगसंसियअसिधारासियहिं अणुयहिं[5] णिवखंधारासियहिं ।
घत्ता—दीसइ पंडुरउ हिमवंतसिहरि सिंगग्गउं ॥
णं भरहहु तणउं जसविलसिउं सग्गि विलग्गउं ॥८॥

९

ससिरयणमए परिभमियमए ।
उववणगहिरे घणविहुरहरे ।
खगणियरहरे सुरसरिसिहरे ।
णिवसइ गुणिणी अमरवइरमणी[1] ।

---

५. P वहुअग्गइ । ६. M दारिद्दहरि । ७. MBP तिजगंत° । ८. MBP वइरिवीरंतयरु । ९. MBP परमप्पु । १०. MB कुलेण । ११. MBP णयजुत्तें ।

८. १. MBPT °णिलएहिं । २. MP add after this : सिंगग्गवत्तु धुयविसहरयं, जं सहइ चक्किजसविसहरयं; सइं सेवियविसहरसेहरयं, महिवहुसिरि णं मणिसेहरयं B adds after this : सइं सेवियविसहरसेहरयं, सिंगग्गवत्तु धुयविसहरयं; जं सहइ चक्किजसविसहरयं, महियहुसिरि णं मणिसेहरयं । ३. MBP मोत्तूणं तलमलधरणिहरं । ४. MP परयरणिहरं । ५. MBP मणुयहिं ।

९. १. MK अमरवररमणी but T अमरवइरमणी ।

करनेवाले प्रथम तीर्थंकर ऋषभ जिनका पुत्र हूँ, नामसे भी भरत, जो धरतीतलपर श्रेष्ठ भरताधिपति कहा जाता है, और मैंने हिमवन्त समुद्र पर्यन्त छह खण्ड धरतीको स्वयं जीता है।" तब देवोंने साधुकार किया और भरतका जयजयकार किया कि तुम्हारे समान कोई चक्रवर्ती नहीं है, कौन इस प्रकार चन्द्रमामें अपना नाम अंकित करता है, कमल हाथमें लिये कमलमें निवास करनेवाली और कमलमुखी लक्ष्मी किसके आगे-आगे दौड़ती है? किसका धन दारिद्र्यका अपहरण करनेवाला है? किसका यश त्रिलोकगामी है? किसकी तलवार शत्रुका ध्वंस करनेवाली है? तुम्हें छोड़कर कौन कल्पवृक्ष है? तुम्हें छोड़कर ज्ञानका घर कौन है? और किसका पिता परमात्मा देव है?

घत्ता—रूप, विक्रम, गोत्र, बल और न्याय-युक्तिमें तुम तुम्हारे समान हो दूसरे मनुष्य मात्रसे क्या? ॥७॥

८

जिसमें (पर्वतमें) सारस सरोवरोंमें क्रीड़ा कर रहे हैं, चम्पक वृक्षोंकी लक्ष्मी दिखाई दे रही है, काननमें गज परिभ्रमण कर रहे हैं, कुंजोंका पराग आकाशके आँगनमें छा गया है, कल्पवृक्ष फलोंके भारसे नत हो गये हैं, सुखकर लतागृहोंमें विद्याधर विट हैं, औषधियोंसे नाग हटा दिये गये हैं, वन सुरभियाँ (गायें) वृषभरतिको चाह रही हैं, ऐसे उस स्वच्छ पर्वतको छोड़कर, ध्वज सहित दूसरोंकी धरती छीननेवाली, प्रचुर अश्वोंवाली और सारथियोंके द्वारा हाँके गये रथोंसे युक्त सेना अपने प्रभुके साथ चली। अभिमानी और निःशंक मति वह पूर्व दिशाकी ओर प्रस्थान करता है। वह हिमवन्तके तलभागसे जाता है। और जाते हुए कुछ ही दिनोंमें धरतीका अतिक्रमण कर जाता है। जिसमें गौ, गर्दभ, गज और महिषदल हैं, ऐसी समस्त भूमिका आश्रय लेकर और रौंधकर सैन्य अपने स्वामीका चन्द्रबल देखकर मन्दाकिनी नदीके किनारे ठहर गया। विश्वमें प्रसिद्ध तलवारोंकी धाराओंके समान निर्मल राजाकी छावनियोंमें स्थित अनुगामी सैनिकोंसे—

घत्ता—हिमवन्त पहाड़के शिखरका सफेद अग्रभाग ऐसा दिखाई देता है मानो भरतका स्वर्गमें लगा हुआ यशविलास हो ॥८॥

९

जो चन्द्रकान्त मणियोंसे युक्त है, जिसमें पशु विचरण करते हैं, जो उपवनोंसे गम्भीर है, जिसमें बादलोंसे रहित घर हैं, जो पक्षि-कुलको धारण करती है, ऐसी गंगाके शिखरपर गुणी

चलहारमणी जणमणदमणी ।
छणससिवयणा कुवलयणयणा ।
वरगयगमणा कयजिणण्हवणा ।
पविउलरमणा पी[2]वररसिहिणा ।
पं[3]कयचलणा सिरकयसुमणा ।
पसरियपुलया वणसुरकुलया ।
विरइयतिलया मणसियणिलया ।
णरणवियपया चलमयरधया ।
मुणिमइविमला हिमकरधवला ।

घत्ता—गंगा णाम सइ सुरसुंदरि णयणपियारी ।
रूवें जोव्वणेण देवाहं मि वि[4]म्हयगारी ॥९॥

१०

णरवइचरियं गुणविप्फुरियं
हि[1]यए धरियं चलिया तुरियं ।
तिवलितरंगा देवी गंगा ।
णिवसामीवं पीणियभावं ।
पत्ता धीरा सालंकारा ।
भुवणपसत्था मंगलहत्था ।
दुत्थियमित्तो परहियजुत्तो ।
जगगुरुपुत्तो पंकयणेत्तो ।
उत्तमसत्तो गुरु[2]यणभत्तो ।
जायविवेओ भावियभेओ ।
ढोइयदाणो कयसंमाणो ।
खलकुलचंडो दावियदंडो ।
भासियसामो ससिरविधामो ।
रामाकामो पायडणामो ।
हयसिरिविरहो दिट्ठो भरहो ।
भत्तिभराए कुसुमकराए ।
थोत्तगिराए णवियसिराए ।
दिण्णासीए पुणरवि तीए ।

घत्ता—वरुणदिसासियहो णं पुण्णिमाइ ससिकंदहो ।
अमयभरिउ कलसु पल्हत्थिउ सीसि णरिंदहो ॥१०॥

२. K omits पीवरसिहिणा । ३. K omits पंकयचलणा । ४. MBP विंभय° ।

१०. १. MBP हियवइ । २. K गुणयणभत्तो ।

इन्द्राणी निवास करती है। चंचल हारमणिवाली जो लोगोंके मनका दमन करनेवाली है। पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान मुखवाली जो कमलनयनी है। उत्तम गजके समान चलनेवाली, जिनेन्द्र भगवान्‌का अभिषेक करनेवाली, अत्यन्त सुन्दरी स्थूल स्तनोंवाली, कमलोंके समान चरणवाली, सिरमें फूल गूँथनेवाली, प्रसरित पुलकवाली, व्यन्तरकुलमें उत्पन्न हुई, तिलककी रचनावाली, कामदेवकी घर, जिसके चरणोंपर नर नत हैं, ऐसी चंचल मकरध्वजवाली, मुनियोंकी बुद्धिके समान पवित्र हिम-किरणोंकी तरह धवल—

घत्ता—गंगा नामकी नेत्रोंको प्यारी लगनेवाली सती सुरसुन्दरी थी, जिसने अपने रूप और यौवनसे देवोंको आश्चर्यमें डाल दिया था ॥९॥

१०

नरपतिके गुणोंसे विस्फुरित चरितको हृदयमें धारण कर, त्रिवली तरंगोंवाली देवी गंगा तुरन्त चली। सालंकार धीर भुवनमें विख्यात मंगल हाथमें लेकर वह प्रीतिभावसे राजाके समीप पहुँची। दुःस्थितोंके मित्र, परकल्याणसे युक्त विश्वगुरुके पुत्र, कमलनयन, उत्तम सत्त्ववाले, गुरुजनोंके भक्त, विवेकशील, भेदको जाननेवाले, दानकर्ता, संग्राम करनेवाले, दुष्टकुलके लिए प्रचण्ड, दण्डका प्रदर्शन करनेवाले, कान्ति और लक्ष्मीके स्वामी, रमणियोंके द्वारा काम्य, प्रकट-नाम, लज्जाकी श्रीसे रहित भरतको उसने देखा। फिर भक्तिसे भरी हुई कुसुम हाथमें लिये हुए, स्तोत्रोंकी वाणीमें प्रणाम करते हुए, आशीर्वाद देते हुए उस स्त्रीने—

घत्ता—राजाके सिरपर अमृतसे भरा हुआ कलश इस प्रकार उड़ेल दिया मानो पश्चिम दिशामें स्थित चन्द्रमापर पूर्णिमाने कलश उड़ेल दिया हो ॥१०॥

११

कडउल्लउ कडयोणंदु[1] करे कर मउलिवि मंउलु[2] वि णिहिउ सिरे ।
मणहारु[3] हारु णीहारणिहु उरबंधु बंधु माणिक्कसिहु ।
हिमवंतसिहरिसिहरे[4]सरिए दिण्णउ देविइ सुरवरसरिए ।
जिह बंभसुत्तु तिह बंभसुए ण सहइ परम्मि आयारचुए ।
रसणा महुरसणा घंटियहिं मालो[5] अलिमालारुंटियहिं ।
सोहंती दिण्णी णरवइहि उल्लंघियचउसायरवइहि ।
पंतीउ[6] विइण्णउ सुरयणहं रंजिउ हियउल्लउ सुरयणहं ।
छत्तइं सयवत्तइं सिरिलयहे वत्थइं णेवत्थइं भणमि तहे ।

घत्ता—इय गेण्हिवि विवेण मणहरमरालल्लीलागइ ।
पुज्जिवि पट्ठविय णियभवणु गय गंगाणइ ॥११॥

१२

पहु विजयलच्छिआलंगियउ[1] भणु केण ण दंसणु मग्गियउ ।
सुरसरि साहेप्पिणु णीसरइ बलु दिण्णदाणु[2] कयणीसरइ ।
सरितीरेण जि पुणु संचरइ हा हरिणवंदु[3] तहिं किं चरइ ।
जहिं धूलि होंति गिरि[4] तरुवर वि उल्ललियरओहें रहिउ रवि ।
सरि छज्जइ उग्गयपंकयहिं बलु छज्जइ चित्तछत्त[5]सयहिं ।
सरि छज्जइ हंसहिं जलयरहिं बलु छज्जइ धवलहिं चामरहिं ।
सरि छज्जइ संचरंतझसहिं बलु छज्जइ करवालहिं झसहिं ।
सरि छज्जइ चक्कहिं[6] संगयहिं बलु छज्जइ रहचक्कहिं गयहिं ।
सरि छज्जइ सरतरंग[7]भरहिं बलु छज्जइ जलतुरंगवरहिं ।
सरि छज्जइ कीलियजलकरिहिं[8] बलु छज्जइ चल्लियमयकरिहिं ।
सरि छज्जइ बहुजलमाणुसहिं बलु छज्जइ किंकरमाणुसहिं ।
सरि छज्जइ सयडहिं सोहियहिं बलु छज्जइ सयडहिं वाहियहिं ।

घत्ता—जिह जलवाहिणिय तिह [10]महिवइवाहिणि सोहइ ॥
[11]महिहरभेयणिहिं [12]एयहिं किं किर को णउ बीहइ ॥१२॥

---

११. १. MBP कडयाणंद । २. B मउलिवि । ३. MB मणहार । ४. MB °सिहरसिहरे° । ५. B मालइ । ६. B पत्तीउ ।

१२. १. MBP °आलिंगियउ । २. MBP दिण्णदाण । ३. MBP हरिणविंदु किं तहिं । ४. MBP गय । ५. MBP चिंधछत्त° । ६. M चक्कहि हंसगयहिं । ७. P °तरंगतरहि, but gloss तरङ्गसमूहैः । ८. M adds after this : बलु छज्जइ कीलियजलकरिहिं, which obviously is the scribe's mistake, ९. MB किं किर । १०. MBP णिववर° । ११. M महिहरभोयणिहि । १२. MBP एयहं किर ।

११

सैन्यको आनन्द देनेवाला कड़ा हाथमें, और हाथ जोड़कर सिरपर मुकुट रख दिया। नीहारके समान सुन्दर हार और माणिक्योंका ब्रह्मसूत्र हिमवन्त पर्वतकी शिखरेश्वरी देवी गंगा नदीने दिया। जिस प्रकार ब्रह्मसूत्र ब्रह्मपुत्रको शोभा देता है, आचारसे च्युत दूसरे आदमीको शोभित नहीं होता। दी गयी क्षुद्रघण्टिकाओंसे गूँजती हुई करधनी, भ्रमरमालासे निनादित सुमन-माला, चारों समुद्रपतियोंका अतिक्रमण करनेवाले राजाको शोभा देती है। देवरत्नोंकी मालाएँ दी गयीं। देवजनोंके हृदय प्रसन्न हो गये। कमल ही उस लक्ष्मीलता गंगाके छत्र, वेष और वस्त्र थे।

घत्ता--इस प्रकार उन्हें ग्रहण कर राजाने सुन्दर हंसके समान चालवाली गंगानदीकी पूजा कर उसे भेज दिया, वह अपने घर चली गयी ॥११॥

१२

विजयरूपी लक्ष्मीसे आलिंगित उस स्वामीका दर्शन बताओ किस-किसने नहीं माँगा। गंगानदीको प्रसन्न कर दरिद्रोंसे प्रेम करनेवाला और दान देनेवाला सैन्य वहाँसे कूच करता है। हरिणसमूह वहाँ क्या चर सकता है, कि जहाँ वृक्ष और पेड़ धूल हो जाते हैं, उछलती हुई धूलसे सूर्य ढक गया है। उगे हुए कमलोंसे नदी शोभा पाती है और सेना रंग-बिरंगे सैकड़ों छत्रोंसे। नदी, हंसों और जलचरोंसे शोभा पाती है, और सेना धवल चमरोंसे। नदी शोभित है, तैरती हुई मछलियोंसे, और सेना शोभित है तलवारों तथा झस अस्त्रोंसे। नदी शोभित है संगत जलावर्तोंसे, सेना शोभित है रथचक्रों और गजोंसे। नदी शोभित है स्वरों और तरंगोंके भारसे, सेना शोभित है श्रेष्ठ जल तुरंगोंसे। नदी शोभित है क्रीड़ा करते हुए जलगजोंसे, सेना शोभित है चलते हुए मेंगल गजोंसे। नदी शोभित है बहु जलमानुसोंसे, सेना शोभित है किंनर मानुसोंसे। नदी अपने तटोंसे शोभित है, सेना शोभित है चलाये हुए शकटोंसे।

घत्ता—जिस प्रकार जलवाहिनी (नदी) शोभित है, उसी प्रकार महीपतिवाहिनी (राजाकी सेना) शोभित है। महीधरों (पर्वतों) का भेदन करनेवाली इन दोनोंसे कहाँ कौन नहीं डरता ? ॥१२॥

१३

अक्खिउ णिग्गमणपवेसु जहिं पत्तउ णरणाहु दिणेहिं तहिं ।
वेयड्ढगिरिंदहु पच्छिमहे जिह आसि तिमीसहि दुग्गमहे ।
भिंगमग्गलग्गअलियच्छियहि कंदयगुहाहि पुव्विल्लियहि ।
तहि णियडउ सेण्णु णिसण्णु किह ण विलग्गइ गिरिकुहरम्हि जिह ।
णिहिणाहें भणिउ बलाहिवइ तुहु जोग्गउ पेसणु दिण्णु लइ ।
हणु दंडें पुंणु वि कवाडु तिह विहडेप्पिणु वच्चइ झत्ति जिह ।
पच्चंतु पसाहिवि एहि लहु जज्जाहि तुरयसेण्णेण सहु ।
छम्मास वसेवउ एत्थु मइं जाएसमि पडिआएण पइं ।
असिजलधाराधुयजसवडेण ता चमुपमुहेण महाभडेण ।

घत्ता—पुव्वकमेण पुणु हरिरयण चडेवि पयंडे ॥
आरूसिवि हयउ गिरिगुहकवाडु पविदंडें ॥१३॥

१४

जिणदंसणि जिह दुक्कियपडलु जिह दिवसयरुग्गमि तिमिरमलु ।
जिह सुद्धसहावें मयणसरु जिह पिसुणें दूसिउ णेहभरु ।
सुकइंदसमागमि कुकइ जिह विहडिउ कवाडु फुडु झत्ति तिह ।
तहिं सद्दु भीमु जो णीहरिउ तहु भइयइ को[2] वि ण थरहरिउ ।
तेत्थु जि सिहरत्थलि रइयपुरु सिरिणट्टमालि णामेण सुरु ।
पडिहारें रायहु दरिसियउ कमकमलालोयणहरिसियउ ।
बलवइणा साहिय मेच्छमहि वसि हूई तहु जयलच्छिसहि ।
आवेवि णमंसिय पहुहि पय तहिं णिवसंतहुं छम्मास गय ।

घत्ता—ण वर गुहाकुहरु णरवइगइजोग्गउ जायउ ॥
सव्वहं सीयलउ णं दीसइ कज्जु परायउ ॥१४॥

१५

ता मंतिहिं गुज्झे ण रक्खियउ परमप्पयतणयहु अक्खियहु अक्खियउ ।
तुह माउयाहि मंथरगइहि ते दोण्णि वि भायर जसवइहि ।
णामें णमि विणमि कुमारवर गंभीर धीर रणभारधर ।
णहयरवइ हूया अवियलहे णिवसंति एत्थु गिरिमेहलहे ।
हल्लियसाहाफुल्लियवणइं पण्णास सट्ठि खगपट्टणइं ।

---

१३. १. M णिग्गमणु । २. MBP मिग° । ३. MBPK तिह । ४. MB °कुहरंभ; P कुहरंभु; K कुहरम्हि । ५. MBP पुव्वकवाडु । ६. P जाजाहि । ७. MBP तुरिय सेण्णेण । ८. MBP हरिरयणि ।

१४. १. MBP णीसरिउ । २. MBP को व ण । ३. MBP °लोयणि । ४. MBP णिवसंतहिं । ५. P °जोग्गा ।

१५. १. MBP गुज्झु ।

१३

जहाँपर निर्गम प्रवेश कहा जाता है, कुछ दिनोंमें राजा वहाँ पहुँचा। विजयार्ध पर्वतकी दुर्गम पश्चिम दिशामें जहाँ तिमीस गुहा थी। मृगोंके मार्गमें लगे हुए हैं व्याघ्र जिसमें ऐसी पूर्वकी कंडय गुहाके निकट सैन्य इस प्रकार ठहर गया, मानो जैसे गिरिकुहरकी ऊष्मा हो। निधियोंके स्वामीने सेनापतिसे कहा—'लो तुम्हारे योग्य आदेश दे रहा हूँ, दण्डरत्नसे किवाड़को फिर इस प्रकार आहत करो जिससे वह खुलकर रह जाय। तुरग सेनाके साथ शीघ्र जाओ और इस प्रत्यन्त देशको सिद्ध कर शीघ्र आओ। मैं यहाँ छह माह रहूँगा और तुम्हारे लौटनेपर जाऊँगा।" तब असिधाराके जलसे अपने यशरूपी वस्त्रको धोनेवाले सेनाप्रमुख महायोद्धाने—

घत्ता—पूर्व क्रमके अनुसार अश्वरत्नपर चढ़कर और क्रुद्ध होकर वज्रदण्डसे गिरिगुहाके किवाड़को आहत किया ॥१३॥

१४

जिस प्रकार जिन भगवान्‌के दर्शनसे पापपटल, जिस प्रकार सूर्यके उद्गमसे अन्धकार-मल, जिस प्रकार शुद्ध स्वभावसे काम, जिस प्रकार दुष्टतासे स्नेहभार दूषित होता है, जिस प्रकार सुकवीन्द्रके समागमसे कुकवि विघटित हो जाता है, उसी प्रकार शीघ्र वह किवाड़ विघटित हो गया। वहाँ जो भयंकर शब्द हुआ उसके भयसे कौन नहीं थर्रा उठा? वहीं शिखरस्थल पर श्रीनृत्यमाल नामका देव अपना घर बनाकर रहता था। प्रतिहारने उसे राजाको दिखाया, वह चरणकमलोंको देखकर प्रसन्न हो गया। सेनापतिने म्लेच्छ धरती सिद्ध कर ली और उसे विजय-लक्ष्मीकी सहेली सिद्ध हो गयी। आकर उसने प्रभुके चरणोंमें नमस्कार किया। वहाँ रहते हुए भरतके छह माह बीत गये।

घत्ता—लेकिन वह गुहाकुहर राजाके जानेके योग्य नहीं हो सका। उसे सब कुछ शीतल दिखाई दिया, जैसे पराया कार्य हो ॥१४॥

१५

तब मन्त्रियोंने राजासे कुछ भी छिपाकर नहीं रखा और परमात्मा (ऋषभ) के पुत्र (भरत) से कहा, "तुम्हारी मन्थरगतिवाली माता यशोवतीके वे दो भाई हैं, कुमारवर, नामसे नमि और विनमि, धीर-वीर और युद्धभार उठानेमें समर्थ। वे इस अविचल गिरिमेखला (पर्वत-

उद्दामइं गामइं तेत्तियउ कोडिउ धरणेण विहत्तियउ।
भुंजंति रमंति गमंति दिणु पणवंति तुहारउ जणणु जिणु।
तं णिसुणिवि भूसियसमरधुर पहुणा पेसिय गणबद्ध सुर।
गय तेहिं भणिय खयराहिवइ छक्खंडमंडलावणिविजइ।
महियलि उप्पण्णउ चक्कवइ जो रिसहणाहु भुवणाहिवइ।
तहु पुत्तु भरहु लहु अणुसरहो अहिमाणु मडप्फरु परिहरहो।

घत्ता—पत्थिववित्ति जइ णउ सयणवित्ति पडिवज्जइ॥
गुरुहुं सडिंभेहं[2] मि दोसिल्लहं दंडु पउंजइ॥१५॥

१६

तो[1] बंधुणेहभउ भावियउ खयरिंदहिं कज्जु विहावियउ।
हियउल्लउ धीरु वि कंपियउ पणएण णएण पयंपियउ।
तणुतेयपूरपिंगलियणहु जिह देवदेउ तिह पुणु भरहु।
अम्हहं आराहणिज्जु हवइ भणु तवणहु उप्परि को तवइ।
भणु जलणहु उप्परि को जलइ भणु पवणहु उप्परि को चलइ।
भणु मोक्खहु उप्परि कवण गइ भणु भरहहु उप्परि को णिवइ[2]।
इय घोसिवि ताइं विसज्जियइं आयइं अमरउलइं पुज्जियइं।
तूरइं गुरुरवइं वियंभियइं कुलचिंधसयाइं समुब्भियइं।
चोइय हरिकरिवरसंदणइं[3] आहूयइं णियणियपरियणइं।
खणि वे वि सहोयर णीहरिय[4] दिढिभत्ति[5]चित्तजाणहिं भरिय।

घत्ता—खेयरकिंकरहिं परिवारिय देव समाणहिं॥
जहिं णिवसइ णिवइ तहिं आइय रयण[6]विमाणहिं॥१६॥

१७

मउलियकरेहिं पणवियसिरेहिं पहु बोल्लिउ णमिविणमीसरेहिं।
अम्हारउ णिव कुलसामि तुहुं पइं दिट्ठइ णयणहं होइ सुहुं।
पइं दिट्ठइ आवइ[1] ओसरइ पइं दिट्ठइं घरि सिरि पइसरइ।
तुह तायहु हयवम्मीसरहो आएसें परमजिणेसरहो।
चामीयरमणिणिम्मियघरइं अइरम्मइं खेयरपुरवरइं।
अहिराएं आसि विइण्णाइं जइ एवहिं पइं पडिवण्णाइं।
तो भुंजहुं णं तो तुहुं[2] जि लइ अम्हहं पुणु दइयं[3]बरिय गइ।
तं णिसुणिवि राएं भासियउ अप्पाणउं जं[4] ण विणासियउ।
महु[5] आणावयणु ण णिरसियउ तं तुम्हहिं चंगउ ववसियउ।

---

२. P सडिभरहं।

१६. १. MBP ता। २. MBP णिवइ। ३. P दंसणइं। ४. MBP णीसरिय। ५. M दिहिभित्तिचित्त°; B दिहिचित्तिचित्त°; P दिब्भित्तिहि। ६. MBP अमरविमाणहिं।

१७. १. M आवय। २. MBP तुहुं मि लइ। ३. MB दईयंबरिय। ४. B णु। ५. B पहु°।

श्रेणी) के विद्याधरपति होकर रहते हैं। झुकी हुई शाखाओं और खिले हुए वनोंवाली यहाँ पचास साठ विद्याधर पट्टियाँ हैं। और वह उतने ही करोड़ उद्दाम गाँवोंको धारण करनेके कारण विभक्त हैं। वे (दोनों भाई) वहाँ भोग करते हैं, रहते हैं, दिन बिताते हैं और तुम्हारे पिता ऋषभ जिनको प्रणाम करते हैं।" यह सुनकर राजा भरतने युद्धकी धुरासे अलंकृत गणबद्ध सुर वहाँ भेजे। वे गये। और उन्होंने विद्याधरपतिसे कहा कि छह खण्ड भूमिमण्डलका विजेता चक्रवर्ती राजा भूमितलपर उत्पन्न हो गया है। और जो भुवनाधिपति ऋषभनाथ है, उसके पुत्र भरतका तुम शीघ्र अनुगमन करो, अभिमान और घमण्ड छोड़ दो।

घत्ता—यदि पार्थिववृत्ति नहीं, तो स्वजनवृत्ति स्वीकार कर लो, क्योंकि दोषी चाहे गुरु हों या अपने गोत्रवाले, वह दण्ड प्रयोग करता है ॥१५॥

१६

तब वे बन्धुके स्नेह और भयको समझ गये। विद्याधर राजाओंने अपना काम समझ लिया। उनका धीर हृदय भी काँप गया। उन्होंने प्रणय और न्यायसे निवेदन किया—"अपने शरीरके तेजके प्रवाहसे आकाशको पीला कर देनेवाले देवदेव ऋषभ जिस प्रकार हैं, उसी प्रकार भरत भी हम लोगोंके लिए आराध्य हैं, बताओ सूर्यके ऊपर कौन तपता है? बताओ आगके ऊपर कौन जलता है? बताओ पवनके ऊपर कौन चलता है? बताओ मोक्षके ऊपर कौन-सी गति है? बताओ भरतके ऊपर कौन राजा है?" यह घोषित करनेपर उसके द्वारा विसर्जित पूजनीय अमर-कुल आये, महाशब्दवाले नगाड़े बज उठे। सैकड़ों कुलचिह्न उठा लिये गये; अश्व, गज और रथ हाँक दिये गये। अपने-अपने परिजनोंको बुला लिया गया। शीघ्र ही वे दोनों भाई निकले, दिशारूपी दीवालोंके चित्रयानोंसे भरे हुए।

घत्ता—विद्याधरोंके अनुचरों, घिरे हुए अपने रत्नविमानोंसे मानवाले वे वहाँ आये, जहाँ राजा निवास कर रहा था ॥१६॥

१७

हाथ जोड़े हुए और सिरसे प्रणाम करते हुए नमि और विनमि राजाओंने राजासे कहा—हे नृप, आप हमारे कुल स्वामी हैं, आपको देखनेसे हमारी आँखोंको सुख मिलता है, आपको देखनेसे आपत्ति दूर हो जाती है, आपको देखनेसे लक्ष्मी घरमें प्रवेश करती है। कामदेवको नष्ट करनेवाले परम जिनेश्वर तुम्हारे पिताके आदेशसे स्वर्ण और मणियोंसे निर्मित घरोंवाले अत्यन्त रमणीय विद्याधर-पुरवर, अत्यन्त स्नेहके कारण, हमें दिये गये थे, यदि इस समय आप इन्हें देते हैं तो हम इनका भोग करते हैं, नहीं तो आप ही इनको ले लें, हम फिर दिगम्बर दीक्षा ग्रहण करते हैं।" यह सुनकर राजा बोला, "जो तुमने अपनापन नष्ट नहीं किया, मेरे आज्ञावचनको नहीं

जिह मउडुग्गयचूडामणिणा चिरयालि महायरेण फणिणा।
तिह एवहिं मइ वि समप्पियइं पालहि खेयरणयरइं पियइं।
घत्ता—जिणवरणंदणहो बलवंतहु रिद्धिसणाहहो ॥
णमिविणमीसरेहिं पडिवण्ण सेव णरणाहहो ॥१७॥

१८

रायहु कंपा[1]वियतिहुयणहो पणवेप्पिणु गय सणिहेलणहो।
ते बंधव सिरिधव पट्ठविवि रण[2]धीरइं वइरइं णिट्ठविवि।
संचल्लइ डोल्लइ धरणियलु उद्धरियसूलकरवालहलु।
मरुचलियलुलियचलचिंध[3]बलु गुहदारि उदा[4]रि ण माइ बलु।
णउ जंपइ कंपइ फणिणिवहु पहु वच्चइ[5] णच्चइ तियसवहु।
पउ गुप्पइ घिप्पइ आहरणु परिघोलइ लोलइ पंगुरणु।
अइमल्हइ मेल्लइ सद्दु करि रहु थक्कइ वंकइ कंठु[6] हरि।
तहु दाणें फेणें समिय रय चिक्खल्लइं[7] खोल्लइ खुत्त पय।
घत्ता—बंदिण पढिएहिं जयणंदवड्ढ[8]णिग्घोसहिं ॥
गज्जइ[9] गिरिविवरु वज्जंतहिं पडहसहासहिं ॥१८॥

१९

जणु जूरइ पूरइ मग्गु ण वि णरलिहियउ णिहियउ चंदु रवि।
कागि[1]णियइ घणियइ मट्टियइ अंधारवियारविहट्टियइ।
उज्जोयउ जायउ उज्जलउ खंधारु वीरु धारियपुलउ।
संक[2]मेण कमेण जि संचरइ सर[3]भरियउ सरियउ उत्तरइ।
तहु कुहरहु कुहरहु णिग्गयउ केलासगिरीसहु लहु गयउ।
सुरणियरहिं खयरहिं परियरिउ णिज्झरझरंतवारिहिं भरिउ।
गंधव्वहिं भव्वहिं सेवियउ सिहिजालहिं चवलहिं तावियउ।
तरुजालहिं णीलहिं छाइयउ कइबुक्कारेहिं णिण्णा[4]इयउ।
घत्ता—सो महिहरपवरु दीसइ गयणंगणि लग्गउ ॥
णं महिकामिणिहि भुयदंडु पदंसियसग्गउ ॥१९॥

२०

जो अच्छरचित्तालिहियसिलु विसहरसिररयणारुणियबिलु।
जो दरिसियसीहसिलिंबमुहु[1] सद्दूलपसाहियरुंदगुहु।
जहिं दिट्ठइं[2] दुमसाहागयइं किंणरवीसरियहारसयइं।

---

१८. १. P कंपाविउ। २. MBP रणवीरइं। ३. P °चिंधउलु। ४. MBT उयारि, P उयरि। ५. B वंचइ णंचइ। ६. M खंधु; BP कंधु। ७. MBP चिक्खिल्लइ। ८. MBP वद्ध। ९. P गिज्जइ।
१९. १. MBP कागणियइ मणिमइ। २. MB सकमेण। ३. MBP जलभरियउ। ४. MB णिण्णाइयउ।
२०. १. MBP °मुहु। २. MBP दीसहिं दुम°।

टाला, यह तुमने अच्छा किया। मुकुटमें उत्पन्न है चूड़ामणि जिसके, ऐसे महादरणीय धरणेन्द्रने पूर्वकालमें जिस प्रकार समर्पित किये थे, उसी प्रकार मैं भी समर्पित करता हूँ, अपने प्रिय विद्याधर नगरोंका तुम पालन करो।"

इस प्रकार नमि और विनमीश्वरके द्वारा जिनवरके पुत्र बलवान् और ऋद्धिसे सम्पन्न नरनाथ भरतकी सेवा स्वीकार कर ली गयी ॥१७॥

१८

वे दोनों त्रिभुवनको कँपानेवाले राजाको प्रणाम कर अपने घर चले गये। लक्ष्मीके स्वामी अपने उन दोनों भाइयोंको भेजकर तथा युद्धमें धीर शत्रुओंको नष्ट कर जिसने शूल, करवाल और हल उठा रखा है और जो हवासे चलते—उड़ते चंचल ध्वजोंवाला है, ऐसा सैन्य चलता है, धरती हिल जाती है। उधर गुहाद्वारमें सैन्य नहीं समाता। नागसमूह काँप उठता है परन्तु कुछ कहता नहीं। प्रभु चलता है, देववधू नृत्य करती है। पैर जमाती है, आभरण ग्रहण करती है, घूमती है, साड़ी हिलाती है। हाथी धीरे-धीरे चलता है, और शब्द करता है, रथ रुक जाता है, और घोड़ा गर्दन टेढ़ी करता है। गजके दान (मदजल) और घोड़ेके फेनसे रज शान्त हो जाती है। परन्तु कीचड़-भरे गड्ढेमें पैर फँस जाता है।

घत्ता—वन्दीजनोंके द्वारा पठित जय हो, प्रसन्न रहो, बढ़ो, आदि शब्दोंके घोषों और बजते हुए सहस्रों नगाड़ोंसे गिरिविवर गरजने लगता है ॥१८॥

१९

लोग पीड़ित हो उठते हैं, परन्तु मार्ग समाप्त ही नहीं होता। तब मनुष्यके द्वारा लिखित सूर्य-चन्द्र रख दिये गये, अन्धकारके विकारको नष्ट करनेवाली मट्टिय कठिन कागणीमणिके द्वारा उजला प्रकाश कर दिया गया। स्कन्धावार और वीर भरत पुलकित हो उठा। वह सेतुबन्धके द्वारा क्रमसे चलता है और जलसे भरी हुई नदी पार करता है। उस पर्वतकी गुफासे निकलकर शीघ्र ही वह कैलास गिरीशपर पहुँच गया। सुरसमूहों और विद्याधरोंसे घिरा हुआ निर्झरोंके झरते हुए जलोंसे भरा हुआ भव्य गन्धर्वोंके द्वारा सेवित, चंचल अग्निज्वालाओंसे सन्तप्त, हरे वृक्ष-समूहोंसे आच्छादित वानरोंकी आवाजोंसे निनादित—

घत्ता—वह प्रवर महीधर आकाशसे लगा हुआ ऐसा दिखाई देता है मानो धरतीरूपी कामिनीका स्वर्गको दिखानेवाला भुजदण्ड हो ॥१९॥

२०

जिसकी चट्टानें अप्सराओंके चित्रोंसे लिखित हैं, जिसके बिल विषधरोंके शिरोमणियोंसे आलोकित हैं, जो सिंह शावकोंको सुख देनेवाला है, जिसकी विशाल गुफाएँ सिंहोंसे प्रसाधित हैं,

अलि झंकारेहिं ण रडि मुयइ जहिं णाहलडिंभउ सुहुं सुअइ ।
जहिं सलहिज्जंति अमच्छरहिं सवरीरूवाइं वि अच्छरहिं ।
जहिं मणिभित्तिहि पेच्छिवि सयणु महिसिहिं कीरइ पडिवक्खमणु ।
जहिं दोमवीढु मणिणवि तरुणु मरगयवट्टहु धावइ हरिणु ।
जहिं चंदणमहिरुहु परिहरिवि णहयरबहु सुत्ती संभरिवि ।
मुहसासवासु विसहरु पियइ अवरहु वि भुयंगहु एह मइ ।
घत्ता—पेच्छिवि जममहिसु जहिं जक्खिणिसीहु ण रूसइ ॥
जिणमाहप्पएण पडिवक्खपक्खि खम दीसइ ॥२०॥

२१

जहिं इंदणीलरुइरंजियउ सिहि मज्जारें ण विभंजियउ ।
किं मोत्तिउ किं वं तुसारकणु जहिं संकइ संजउ सीलहणु ।
जहिं ओसहिदीवउ पज्जलइ रयणिहिं पुलिंदु सुहुं संचलइ ।
जहिं जायउ गुणगणमंडियउ मुणिसंगें सुयउलु पंडियउ ।
जिणणाहें घोसियं जीवदय जहिं पसु वि चिलाय वि धम्मरय ।
सुरहत्थिणि सेवइ जासु तडु जहिं हिंडइ चक्केसरिगरुडु ।
पोमावइहंसु कडक्खियउ जहिं वरुणहु मयरु णिरिक्खियउ ।
जसु तीरइ पवणहु तणउ मउ सिहि मेसें सहुं कीलाणिरउ ।
बारहकोट्ठेहिं अहिट्ठियउ जहिं समवसरणु सइं संठियउ ।
घत्ता—तहु गिरिवरहु तले धरणीसें सिविरु विमुक्कउं ॥
णावइ मंदरहो चउदिसु तारायणु थक्कउं ॥२१॥

२२

मणिमउडपट्टभूसणहरिहिं सुरवरकरिकरदीहरकरहिं ।
कंठोलंबियमुत्तावलिहिं रुयाइयणवकुसुमंजलिहिं ।
तणुतेउज्जलियवणत्थलिहिं उवसमवंतहिं पसमियकलिहिं ।
कइवयणिवेहिं सहुं सुद्धमइ पहु गिरिसिहरारोहणु करइ ।
आवंतहु रायहु सो सिहरि णिज्झरजलधाराभरियदरि ।
सीहासणचमरीचामरइं छायादुमछत्तइं सुंदरइं ।
मयणिब्भर वर गज्जंत गय वणयर किंकर गंडय गवय ।
णं दरिसणु अग्गग्गइ ठवइ णं कोइल कलरवेण लवइ ।
घत्ता—तरुवत्तें गिरिणा फलु फुल्लु पत्तु णं दिण्णउं ॥
महिहरु महिहरहु अवसें पालइ पडिवण्णउं ॥२२॥

---

३. M °झंकारेण णं रडि; B °झंकारण णं रडि; P °झंकारेण ण रडि । ४. MB अमरच्छरहिं । ५. MBP °रूवाइं वरच्छरहिं । ६. MBP दोवपीढ । ७. MBP °महिरुह ।

२१. १. B मज्जारेण । २. MBPT विहंडियउ and gloss in T विवेचितः । ३. P च । ४. MBP पोसिय । ५. P सिमिरु । ६. MBP पमुक्कउ । ७. B थक्कइ ।

२२. १. MBP °हरहिं । २. B °णउकुसुम° । ३. MBP सह । ४. MBP सिहासण° । ५. MB तरुवंतें ।

जहाँ वृक्षोंकी शाखाओंपर किन्नरोंके द्वारा विस्तृत सैकड़ों हार दिखाई देते हैं, जहाँ भ्रमर झंकारोंसे अपना गान नहीं छोड़ता, जहाँ भीलका बच्चा सुखसे सोता है, जहाँ अप्सराओंके द्वारा बिना किसी ईर्ष्याभावके शबरियोंके रूपकी सराहना की जाती है, जहाँ मणिभित्तियोंमें अपने ही प्रिय (स्वजन) को देखकर पट्टरानियोंके द्वारा सापत्न्यभाव धारण किया जाता है। जहाँ मरकतमणिके पृष्ठ (खण्ड) को दूबका समूह मानकर तरुण हरिण दौड़ता है, जहाँ साँप चन्दनवृक्षको छोड़कर सोती हुई विद्याधर वधूको (चन्दनवृक्ष) जानकर उसके मुखके श्वासवास-को पीता है दूसरे भुजंगकी भी यही बुद्धि हो रही है।

घत्ता—जहाँ यममहिषको देखकर यक्षिणीका सिंह क्रोध नहीं करता, जिन भगवान्‌के माहात्म्यसे प्रतिपक्ष और पक्षमें क्षमाभाव दिखाई देता है ॥२०॥

२१

जहाँ इन्द्रनील मणिकी कान्तिसे रंजित मयूरको मार्जार नहीं जान सका। जहाँ शीलधन-वाले संयमी मुनिको भी यह शंका होती है कि यह मोती है या हिमकण। जहाँ औषधिरूपी दीप प्रज्वलित है, और रात्रिमें शबरसमूह सुखसे चलता है। जहाँ मुनियोंके संगसे शुक समूह गुणगणसे मण्डित और पण्डित हो गया है। जहाँ जिननाथने जीवदया घोषित कर दी है, जहाँ पशु भी और किरात भी धर्ममें रत हैं। जिसके तटकी सेवा देवहथिनी करती है, जहाँ चक्रेश्वरीका गरुड़ भ्रमण करता है। पद्मावतीका हंस कटाक्ष मारता है। जहाँ वरुणका मगर देखा जाता है, जिसके तीरपर पवनका मृग और मयूर मेंढेके साथ क्रीड़ानिरत हैं। जहाँ बारह कोठोंसे अधिष्ठित स्वयं समवसरण स्थित है।

घत्ता—उस कैलास गिरिवरके नीचे धरणीशने अपना शिविर ठहरा दिया मानो मन्दराचलके चारों ओर तारागण स्थित हों ॥२१॥

२२

तब शुद्धमति राजा भरत मणि, मुकुट, पट्ट और भूषण धारण करनेवाले ऐरावतकी सूँड़के समान दीर्घ बाहुवाले, कण्ठमें मुक्तामालाएँ धारण किये हुए, नव कुसुमोंकी अंजलियोंको उठाये हुए, अपने शरीरके तेजसे वनस्थलीको उजला बनाते हुए, शान्त और कलहका शमन करते हुए कुछ राजाओंके साथ कैलास पर्वतके शिखरपर आरोहण (चढ़ाई) करता है। निर्झरोंकी जलधाराओंसे जिसकी घाटी भरी हुई है, ऐसा वह पर्वत आते हुए राजाके लिए सिंहासन, चमरी, चामर, सुन्दर छायाद्रुमरूपी छत्र, मदनिर्भर गरजते वर गज, गंडक (गेंड़े)-गवय आदि वनचर-रूपी किंकरोंको उपहाररूपमें आगे-आगे स्थापित करता है, मानो कोयल कलरवमें आलाप करती है।

घत्ता—वृक्षवाले गिरिने मानो फल-फूल और पत्ते उसे दे दिये मानो महीधर (राजा) महीधर (पर्वत) की स्वीकृतिका अवश्य पालन करता है ॥२२॥

२३

आरुहिवि धरोहरवरसिहरु अइरुंदचंदकररासिहरु।
परमप्पय पयपइ पइसरइ जिणसमवसरणि तहिं पइसरइ।
दिट्ठउ परमेसरु णिहेयसरु तिसिएण व हरिणें कमलसरु।
भरहें बहुछंदपसंगिरए थुउ सुद्ध सँलक्खणाइ गिरए।
अरहंत अणंत भव्वभवइ तुह सेवइ सोक्खु समुब्भवइ।
तिट्ठासरितीरु पराइयउ तुहुं कामें पर ण पराइयउ।
पइं रोसँजलणु उवसामियउ तुहुं रिसि भुवणत्तयसामियउ।
पइं पेच्छिवि देउ अहिंसवरु ण हणइ दंडेण अहिं सवरु।
णं वि भक्खइ तं कया वि णउलु महिसंतयारि वग्घहं ण उलु।
घत्ता—पइं संबोहियइं केलासवासँव्वउ लेप्पिणु॥
थक्कइं खेयरइं केलासवास मेल्लेप्पिणु॥२३॥

२४

तुह वयणु विणीसिउ काणणए णिसुणेप्पिणु इह गिरिकाणणए।
ण पवत्तइ कत्थ वि जीववहु जय संदरिसियपरलोयपहु।
सीहु वि सरहु वि एक्कहिं वसइ सिहिचुयपिच्छइं सवरी वसइ।
कलुँ गेउ ण गायइ सावयहो सामिय पइं लाइय सा वयहो।
पइं मंसगिद्धि मज्जारयहं सोडत्तणु महुमज्जारयहं।
परँयारु वि वारिउ जारयहं तुहुं णाहु सुद्धु विज्जारयहं।
जं अणुहरियउ अलियंजणहो तं गाढु पाउ अलियं जणहो।
मुहणिग्गंतउ पइं खंचियउ तुह संभवि देवहिं खं चियउ।
घत्ता—इय भरहेण थुउ परमेसरु जियपंचिंदिउ॥
अमरासुरमणुयखगपुप्फदंतफणिवंदिउ॥२४॥

इय महापुराणे तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारे महाकइपुप्फयंतविरइए महाभव्वभरहाणुमण्णिए महाकव्वे उत्तरभरहपसाहणं णाम पण्णरहमो परिच्छेओ समत्तो॥ १५॥

॥ संधि ॥ १५ ॥

---

२३. १. MBP धराधर°। २. MB परमप्पय पइपइ पयसरइ; T पयपइ प्रजापतिः; P परमप्पय पयवइ पइसरइ and gloss परमात्मपादौ प्रजापतिर्भरतः स्मरति। ३. BP णिहियसरु। ४. MBP सुलक्खणाइ। ५. K रोसु जलणु। ६. K णउ। ७. MBP °वासवउ।

२४. १. MBP तुहु। २. K° लोयवहु। ३. MBPK °पिंछइं। ४. MBP कलगेउ। ५. B सा चिय; P सा विय; T साविय स्वामिन्, अथवा साविय श्राविका; K सा मि य and gloss सा शबरी। ६. P मंजारयहं। ७. MBP परदारु णिवारिउ। ८. B जिउ पंचिं°। ९. KBP °पुप्फयंत°।

२३

अत्यन्त विशाल चन्द्रमाकी किरणराशिका हरण करनेवाले पर्वत शिखरपर चढ़कर परमात्माका पुत्र प्रवेश करता है और जहाँ समवसरण है वहाँ पहुँचता है। कामदेवका नाश करनेवाले परमात्माको उसने इस प्रकार देखा जैसे प्यासे हरिणने कमलसरोवरको देखा हो। तब भरतने तरह-तरहके छन्दोंके प्रस्तारवाली सुलक्षण वाणीमें खूब स्तुति की, हे अरहन्त अनन्त, भव्यरूपी नक्षत्रोंके चन्द्रजिन, तुम्हारी सेवासे सुख होता है, तुम तृष्णारूपी नदीके तीरपर आ गये, परन्तु काम तुम्हारे पास नहीं पहुँचा। तुमने क्रोधकी ज्वालाको शान्त कर दिया है। हे ऋषि, तुम भुवनत्रयके स्वामी हो, हे अहिंसाश्रेष्ठ देव, तुम्हें देखकर शबर दण्डसे साँपको नहीं मारता। उसे नकुल भी कभी नहीं खाता और व्याघ्रोंका समूह, महिषोंका अन्त करनेवाला नहीं होता।

घत्ता—हे कैलासवासी, आपके द्वारा सम्बोधित खेचर कैलासपर रहनेका व्रत लेकर, कैलासवास (मद्यभाजन और मद्य पीनेकी आशा) छोड़कर स्थित हैं ॥२३॥

२४

हे ब्रह्मन्, तुमसे निकले हुए वचन सुनकर इस गिरि-काननमें कहीं भी वध नहीं होता। हे परलोक पथको दिखानेवाले आपकी जय हो। यहाँ सिंह और शरभ एक साथ रहते हैं, मयूरोंके च्युत पंखोंमें शबरी निवास करती है। हे स्वामी, उसने आपसे व्रत ग्रहण कर लिया है अतः वह श्वापदोंके लिए (वधके) गीत नहीं गाती। हे स्वामी, तुमने मार्जारोंको मांसगृद्धि (लोभ) और मधु (सुरा) के मार्जारों (मद्यपों) को मदिरा, जारोंको परदाराका निवारण कर दिया। तुम विद्यारतोंके अच्छे स्वामी हो। हे स्वामी, आदमीका जो पाप और झूठ भ्रमर और अंजनका अनुकरण करता है (पाप लिप्त होता है) उसे मुँहसे निकलते ही तुम पकड़ लेते हो। हे देव, आपके होनेपर आकाश देवताओंसे व्याप्त हो जाता है।

घत्ता—इस प्रकार अमरों, असुरों, मनुजों, पक्षियों, नक्षत्रों और नागोंके द्वारा वन्दित पंचेन्द्रियोंको जीतनेवाले परमेश्वरकी भरतके द्वारा स्तुति की गयी ॥२४॥

इस प्रकार त्रेसठ महापुरुषोंके गुणालंकारोंसे युक्त इस महापुराणमें महाकवि पुष्पदन्त द्वारा विरचित तथा महाभव्य भरत द्वारा अनुमत महाकाव्यका उत्तर भरत प्रसाधन नामक पन्द्रहवाँ परिच्छेद समाप्त हुआ ॥१५॥

संधि १६

पणवेप्पिणु जिणवरकमकमलु ओयरेवि कइलासहो ॥
साकेयहु संमुहुं संचलिउ धरणिणाहु णियवासहो ॥ ध्रुवकं ॥

१

आरणालं—रविणिहकण्णकुंडला रयणमेहला मउडपट्टधारा ।
चलिया मंडलेसरा खेयरसुरणरा कंठबद्धहारा ॥१॥

होइ गिरित्थलु णिविसें[2] समथलु — किं ण किं ण किर कद्दमियउं[3] जलु ।
किं ण किं ण किर संचूरिउ[4] वणु — किं ण किं ण धूली जायउ तणु ।
किं ण किं ण देसंतरु लंघिउ — किं ण किं ण दुग्गु वि आसंघिउ ।
किं ण किं ण पहरणु अवलोइउ — किं ण किं ण पडिसेण्णु णिवाइउ ।
किं ण किं ण वरवाहणु वाहिउ — किं ण किं ण परमंडलु साहिउ ।
कणयदंडमंडियपडिहारें — आवेंतें पहुखंधावारें ।
पुरणारिहिं आहरणु लइज्जइ — मउ देवंगवत्थु परिहिज्जइ ।
कुंकुमेण छडउल्लउ दिज्जइ — कप्पूरें रंगावलि किज्जइ ।
घिप्पइ कुसुमकरंबु ससँडयणु — बज्झइ सुरतरुपल्लवतोरणु ।
घरि घरि गाइज्जइ जिणणंदणु — दोवंदहियसिद्धत्थयचंदणु ।
[10]दप्पणु कलसु धरिज्जइ अण्णहिं — उग्घोसिउ मंगलु सुरकण्णहिं ।
सलहिज्जंतु महंतु सुरिंदहिं — सहुं जक्खिदखगिंदणरिंदहिं ।
करिवरकंधरत्थु [11]मणहारिहिं — विज्जिज्जंतउ चामरधारिहिं[12] ।

घत्ता—महि सयल वि खग्गें णिज्जिणिवि कयदिग्विजयविलासहिं[13] ॥
उज्झहि [14]भरहाहिउ पइसरइ सट्ठिहिं वरिससहासहिं ॥१॥

GMBP give, at the commencement of this Samdhi, the following stanza :-

प्रतिगृहमटति यथेष्टं बन्दिजनैः स्वैरसंगता वसति ।
भरतस्य वल्लभा सा कीर्तिस्तदपीह चित्रतरम् ॥

MBP read स्वैरसंगमा for स्वैरसंगता; and वल्लभासौ for वल्लभा सा । K does not give it.

१. १ MBP खयरणरसुरा । २. M अवसें; B णिवसें; P णिवसि and gloss निमेषेण; T णिविसें । ३. कद्दावियउं । ४. M संचूलिउ । ५. MBP आवंतें । ६. M देवंगु वत्थु । ७. P ससयडणु but gloss सषट्चरणः । ८. MBP घाइज्जइ । ९. MB दुव्व°; P दोव्व° । १०. MP दप्पण । ११. M मणिहारिहिं । १२. MBP °धारहिं । १३. MBP विलासिहिं । १४. MBP भरहेसरु ।

सन्धि १६

जिनवरके चरणकमलोंको प्रणाम कर और कैलाससे उतरकर पृथ्वीका स्वामी भरत अपने निवास साकेतके सम्मुख चला।

१

सूर्यके समान कर्णकुण्डल और रत्नोंकी मेखलावाले, मुकुटपट्ट धारण किये हुए और गलेमें हार पहने हुए मण्डलेश्वर, विद्याधर, सुर और मनुष्य चले। गिरि-स्थल एक पलमें समतल हो गया। कौन-कौन जल-कीचड़मय नहीं हुआ? कौन-कौन-सा वन चूर-चूर नहीं हुआ? कौन-कौन तृण धूल नहीं हुआ। किस-किस देशान्तरको उन्होंने नहीं लांघा? किस-किस दुर्गका आश्रय नहीं लिया? किस-किस आयुधको नहीं देखा? किस-किस शत्रुसेनाका प्रतिपतन नहीं किया? किस-किस श्रेष्ठ वाहनको नहीं चलाया? किस-किस शत्रुमण्डलको नहीं साधा? स्वर्णदण्डोंसे अलंकृत है प्रतिहार जिसमें, प्रभुके ऐसे स्कन्धावारके आनेपर पुरस्त्रियाँ अपने आभरण ग्रहण कर रही हैं। कोमल देवांग वस्त्र पहने जा रहे हैं। केशरका छिड़काव किया जा रहा है। कपूरसे रांगोली की जा रही है। भ्रमर सहित कुसुम फेंके जा रहे हैं, देववृक्षों (कल्पवृक्षों) के पल्लव-तोरण बाँधे जा रहे हैं। घर-घरमें जिनपुत्रका गान किया जा रहा है। दूध, दही, तिल और चन्दन, दर्पण, कलश धारण किये जा रहे हैं। दूसरी देव कन्याओं द्वारा मंगलघोष किया जा रहा है। यक्षेन्द्र, खगेन्द्र और मानवेन्द्रोंके साथ सुरेन्द्रोंके द्वारा प्रशंसा की जा रही है। गजवरके कन्धेपर बैठा हुआ सुन्दर चमर धारण करनेवाली स्त्रियोंके द्वारा हवा किया जाता हुआ—

घत्ता—समस्त धरतीको तलवारसे जीतकर साठ हजार वर्षों तक दिग्विजय-विलास करनेके बाद भरत राजा अयोध्या नगरीमें प्रवेश करता है ॥१॥

२

आरणालं—णउ पइसरइ पुरवरे रयण[1]मेयहरे जयसिरीवरंगं ॥
भंगुरभा[2]सुरारयं णिसियधारयं राइणो रहंगं ॥१॥
थक्कउ चक्कु ण पुरि परिसक्कइ कुकइहि कव्वु व णउ चिम्मक्कइ ।
णं कोवाणलजालामंडलु णं पुरलच्छिइ परिहिउ कुंडलु ।
भरहपयावें [3]कायरिजायउ भाणुबिंबु णं छज्जइ आयउ ।
इंदचंदपडिकूलणसीलउ धगधगंतु खयहुयवहलीलउ ।
एहु जि चक्कवट्टि अवलोयहु णयरें [4]दीवु धरिउ णं लोयहु ।
मणिमऊहमाला[5]वेलोवलु रायदिवायरपुण्णयरुजलु ।
सुरहिगंधु सिरिसेविउ सभसलु णं णहसरि वि[6]हंसिउ रत्तुप्पलु ।
वलयायारहु णिरु सच्छायहु अवसें देइ धरणि [7]कर आयहु ।
घत्ता—तं चक्कु ण णयरिहि पइसरइ वेसहि जणियवियारउ ॥
[8]हियउल्लउ कवडसयहं भरिउ णावइ धुत्तहं केरउ ॥२॥

३

आरणालं—फणिणरसुरपसंसियं जसविहूसियं गुणगणोहदित्तं ।
णं दुविणीय[1]माणसे पिसुण[2]माणुसे सुयणसच्छवित्तं[3] ॥१॥
अक्क[4]मियंकउ बाहिरि थक्कउ णावइ दइवें खीलिवि मुक्कउ ।
णउ पइसइ पुरि चक्कु [5]णिरुत्तउ [6]सुइंघरि णं अण्णायविढत्तउ ।
परपुरिसाणुराइ सइचित्तु व परदासत्तणम्मि सवसित्तु व ।
मायाणेहणिबंधणि मित्तु व पत्तदाणि पाविट्ठहु चित्तु व ।
चुणयविलीणइ दिण्णउ भत्तु व रइरसतुरियइ णवउ कलत्तु व ।
सुद्धसिद्धमंडलि जमकरणु व पत्थणिसेविरि रुवविलथरणु व ।
[7]णिव्वलणीसणिहेलणि सरणु व दुरियमलिणमणि पंडियमरणु व ।
[8]उवसमिझि सामरिसायरणु व णिव्वियारि तणु[9]भूसायरणु व ।
णिसिसमयागमि रविउग्गमणु व वुड्ढत्तणि तरुणीयणरमणु व ।
पुण्णहीणि जिणगुणसंभरणु व णिद्धणि णिग्गुणि विहलुद्धरणु व ।
घत्ता—थिउ चक्कु ण पुरवरि पइसरइ णावइ केण वि धरियउ ॥
ससिबिंबु व णहि [10]तारायणहिं सुरवरेहिं परियरियउ ॥३॥

---

२. १. MBP °मयहरे । २. MB भासुराययं । ३. MBP कायरु जायउ । ४. MBP धरिउ दीउ । ५. K °वेलाजलु । ६. MBP वियसिउ । ७. MBPKT करु । ८. M हियडुल्लउ ।

३. १. M °माणुसे । २. B पिसुणु माणुसे । ३. M °चित्तं । ४. B °मियंकओ । ५. MP णिरुत्तउ । ६. M सुइघणि । ७. M णिच्चल°; BP णिव्वल° । ८. B reads this foot after 11*a*. ९. K भूसा-करणु । १०. MBP तारासयहिं सुरणरेहिं ।

२

विजयश्रीकी लीला धारण करनेवाला, क्षण-क्षणमें प्रदीप्त होनेवाला, और पैनी धारवाला राजाका चक्र रत्ननिर्मित पुरवरमें प्रवेश नहीं करता। चक्र स्थित हो गया, वह नगरमें प्रवेश नहीं कर सकता, कुकविके काव्यकी तरह चमत्कार उत्पन्न नहीं करता। मानो कोपरूपी आगका ज्वालामण्डल हो, मानो नगरलक्ष्मीने कुण्डल पहन लिया हो। भरतके प्रतापसे कायर हुआ मानो आया हुआ भानुबिम्ब शोभित है। इन्द्र और चन्द्रमाको प्रतिकूल करनेवाला मानो धकधक करता हुआ प्रलय कालकी लीलाके समान है। इस चक्रवर्तीको देख लो मानो लोकने (इसके लिए) नगरमें दीपक रख दिया है। मणियोंकी किरणमालाओंके ठहरनेका तट, राजारूपी दिवाकरके पुण्यरूपी हाथों (करों) से उज्ज्वल, सुरभित गन्ध और लक्ष्मीसे सेवित तथा भ्रमर सहित जो चक्र मानो आकाशरूपी नदीका रक्त कमल है। वलयकी आकृतिवाले सुन्दर कान्तिसे युक्त इसके लिए धरती अवश्य कर देगी।

घत्ता—वह चक्र नगरीमें प्रवेश नहीं करता उसी प्रकार, जिस प्रकार सैकड़ों कपटोंसे भरा हुआ धूर्तका विकारग्रस्त हृदय वेश्यामें प्रवेश नहीं करता ॥२॥

३

मानो जैसे नाग-नर और देवों द्वारा प्रशंसित, यशसे विभूषित और गुणमण समूहसे दीप्त, सज्जनका स्वच्छ चरित्र, दुर्विनीत मानसवाले दुष्ट मनुष्यमें प्रवेश नहीं करता। सूर्यका अतिक्रमण करनेवाला वह चक्र बाहर ऐसा स्थित हो गया, मानो दैवने उसे कीलित करके छोड़ दिया हो। निश्चित रूपसे चक्र घरमें प्रवेश नहीं करता, मानो अन्यायसे उपार्जित धन पवित्र घरमें प्रवेश नहीं कर रहा हो, जैसे सतीका चित्तपर पुरुषके अनुरागमें, जैसे स्वतन्त्रता दूसरोंकी दासतामें, जैसे मायावी स्नेह बन्धनमें मित्रके समान, पात्रदानमें पापीके चित्तके समान, अरुचिसे पीड़ित व्यक्तिमें दिये गये भातके समान, रतिसे व्याकुल मनुष्य की नयी विवाहित दुलहिनके समान, शुद्ध सिद्ध मण्डलमें यमकरणके समान, पथ्यका सेवन करनेवालोंमें रोगके विस्तारके समान, दुर्बल और धनहीनके घरमें शरणके समान, पापसे मलिन मनमें पण्डितमरणके समान, उपशान्त व्यक्तिमें क्रोधपूर्ण आचरणके समान, निर्विकारमें शरीरकी भूषाके समान, निशा समयके आगमनमें सूर्योदयके समान, बुढ़ापेमें तरुणीजनके रमणके समान, पुण्यहीनमें जिनगुणोंके स्मरणके समान, निर्धन और निर्गुण व्यक्तिमें विह्वलके उद्धारके समान—

घत्ता—चक्र स्थिर हो गया, पुरवरमें वह प्रवेश नहीं करता। जैसे किसीने उसे पकड़ लिया हो। सुरवरोंसे घिरा हुआ वह ऐसा लगता है जैसे तारागणोंसे घिरा हुआ आकाशमें चन्द्रमा हो ॥३॥

४

आरणालं—ता भणियं णिराइणा रूढराइणा चंडवाउवेयं।
किं थियमिह रहंगयं णिच्चलंगयं तरुणतरणितेयं ॥१॥
तं णिसुणेप्पिणु भणइ पुरोहिउ जेणेयहु गइपसरु णिरोहिउ।
अक्खमि तं णिसुणहि परमेसर देवदेव दुज्जय भरहेसर।
भुयजुयबलपडिबलचिवइवणहं पयभरथिरमहियलकंपवणहं।
तेओहामियचंददिणेसहं जणणदिण्णमहिलच्छिविलासहं।
कित्तिसत्तिजणमेत्तिसहायहं को पडिमल्लु एत्थु तुह भायहं।
सेव करंति ण णहभाईवइं णउ णवंति तुह पयराईवइं।
देंति ण करभरु केसरिकंधर पर मुहियइ भुंजंति वसुंधर।
अज्ज वि ते सिज्झंति ण जेण जि पइसइ पट्टणि चक्कु ण तेण जि।
घत्ता—रइवरु परमेसरु उच्छुधणु धरणिहरणरणपरियरु॥
कासवतणुरुहु णवणलिणमुहु भुवणुद्धरणधुरंधरु॥४॥

५

आरणालं—विलसियकुसुममग्गणो गरुयगुणगणो तरुणिहियथेणो।
असरिसविसमसाहसो वसि हयालसो णिहयवेरिसेणो ॥१॥
अण्णु वि जसवइतणयहं जेट्ठउ पुत्तु सुणंदहि तुज्झु कणिट्ठउ।
सायरु जिह तिह मयरधयालउ चावहं चारुवंयणु चरियालउ।
पंचसयाइं सवायइं तुंगउ भण्णइ संपहिं सो ज्जि अणंगउ।
बालु बंभसुंदरिहि सहोयरु पिउपयपयरुहरयरउ महुयरु।
हरियदेहु णं मरगयगिरिवरु अरिकरिदसणमुसलपसरियकरु।
विमलकुलालवालसुरतरुवरु चरमदेहु सासयसुहसिरिहरु।
गुरुचरणारविंदरइरसवसु मंदरकंदरंतगाइयजसु।
दुत्थियदीणाणाहहं दिहियरु णरहरिसरणागयपविपंजरु।
लीलादलियमहीयलमयगलु कढिणबाहु बाहुबलि महाबलु।
घत्ता—सो अच्छइ उवसमु धरिवि मणे जइ रणि कह वि वियंभइ॥
तो सहुं चक्के सहुं साहणेण पइं मि णरिंद णिसुंभइ॥५॥

६

आरणालं—जो जिप्पइ ण हारिणा कुलिसधारिणा पयडसुहडरोलें।
सो णिम्महइ माणवे जिणइ दाणवे देव कलहकाले ॥१॥

---

४. १. MBP पयथिरभर°।

५. १. MBP °वयण। २. MBP संपइ। ३. M बाल। ४. B पिउपयरुह°। ५. MBP हरियवण्णु। ६. K चरिम°। ७. BPK °महियलु। ८. MBP कह व।

४

तब प्रसिद्ध मनुष्यराजा भरतने कहा, "प्रचण्ड वायुके समान वेगवाला, तरुण तरणिके समान तेजवाला यह चक्र निश्चलांग क्यों हो गया ?" यह सुनकर पुरोहित बोला, "जिस कारणसे इसके गति प्रसारका निरोध हुआ है उसे मैं बताता हूँ। हे नरेश्वर, देव-देव, हे दुर्जेय भरतेश्वर, सुनिए, जिन्होंने अपने बाहुबलसे शत्रुओंका दमन किया है, पैरोंके भारसे धरतीतलको कँपाया है, तेजसे सूर्य और चन्द्रको पराजित किया है, पिताने जिन्हें महीलक्ष्मीका विलास दिया है तथा कीर्ति, शक्ति और जनमात्रा जिनकी सहायक है, ऐसे तुम्हारे भाइयोंका यहाँ प्रतिमल्ल कौन है ? नखोंकी कान्तिसे प्रदीप्त तुम्हारे चरणकमलोंको वे नमस्कार नहीं करते। सिंहके समान कन्धोंवाले जो तुम्हें कर नहीं देते, वे व्यर्थ ही धरतीका उपभोग करते हैं। जिस कारणसे वे आज भी सिद्ध नहीं हो सकते हैं, उसी कारण चक्र नगरमें प्रवेश नहीं कर रहा है।

घत्ता—कामदेव परमेश्वर इक्षुधनुषसे युक्त धरतीके अपहरण और युद्धके परिकरवाला, कासवका पुत्र, नवकमलमुखी और भुवनके उद्धारमें धुरन्धर—॥४॥

५

कामदेवसे विलसित, भारी गुणोंसे युक्त, युवतियोंके हृदयको चुरानेवाला, असामान्य विषम साहसवाला, वशी, आलस्यको नष्ट कर देनेवाला और शत्रुसेनाको समाप्त कर देनेवाला। और भी यशोवतीके पुत्रोंसे जेठा परन्तु तुमसे छोटा, सुनन्दाका पुत्र, जिस प्रकार कामदेव, उसी प्रकार, मकरध्वजालय (मकररूपी ध्वजोंका घर, कामदेवका घर), सुन्दर मुख, चरित्रका आश्रय, और सवा पाँच सौ धनुष ऊँचा, उसीको इस समय कामदेव कहा जाता है, ब्राह्मी सुन्दरीका भाई, पिताके चरणरूपी कमलोंमें रत भ्रमर, श्याम शरीर जैसे मरकतका पहाड़ हो, शत्रुरूपी गजोंके दांतोंरूपी मूसलोंके लिए हाथ फैलानेवाला, पवित्र कुलरूपी आलबाल (क्यारी) का कल्पवृक्ष, चरमशरीरी, तथा शाश्वत सुखश्रीको धारण करनेवाला, गुरुके चरणकमलोंके प्रेमरसके अधीन, पर्वतोंकी गुफाओं तक जिसका यश गाया जाता है, दुस्थित दीन और अनाथोंका भाग्यविधाता, मनुष्यश्रेष्ठ, शरणागतोंके लिए वज्रपंजर (वज्रकवच), महापर्वतों और मदवाले महागजोंको खेल-खेलमें दलित कर देनेवाला। दृढ़बाहु और महाबली बाहुबलि।

घत्ता—वह मनमें उपशम भाव धारण कर स्थित है। यदि वह कहीं भी युद्धमें भड़क उठता है तो चक्रके साथ, सेनाके साथ हे राजन्, वह तुम्हें भी नष्ट कर देगा ॥५॥

६

प्रकट है सुभट शब्द जिसका, ऐसे उत्तम वज्र धारण करनेवालेसे जो नहीं जीता जा सकता, हे देव जो कलहकालमें मनुष्यमें सम्मान पाता है और दानवको जीतता है। जिसने

हित्तभिण्णमहिवइसामंतें दसदिसिवहपेसियसामंतें ।
रूवरिद्धिरंजियरामोहें अइपरिवड्ढियसुधरामोहें ।
णियभुयसत्तिपरज्जियभरहें तं णिसुणेवि पयंपिउ भरहें ।
जमहु जमत्तणु को दरिसावइ मइं मुएवि किर कवणु रसावइ ।
एम को वि किं जगि संतावइ को किर सिहिसिहाहि[1] सं तावइ ।
कहु महु तणउं पहुत्तु ण भावइ कें[2] पडिखलिउ जंतु णेहि[3] भावइ ।
केर महारी को णावज्जइ एह पुहइ को[4] किर णावज्जइ ।
आसमुद्दमेइणिकरवालहु को णासंकइ महु करवालहु ।
को किर भिच्च महारा मारइ को विणिवारइ मज्झु वि मारइ ।
किं किरे[5] वण्णिएण कंदप्पें अणवंतहु णिवडइ कं दप्पें ।

घत्ता—इय जंपिवि राएं णिक्करुणु अविणयविहियमणोज्जहं ॥
सयलहं मि सयलसंपयंधरहं[6] लेहु दिण्णु दाइज्जहं ॥६॥

७

आरणालं—ता विगया [1]बहुयरा जणमणोहरा णिवकुमारवासं ।
दुमदललें[2]लियतोरणं रसियवारणं छिण्णभूमिदेसं ॥१॥

तेहिं भणिय ते विणउ करेप्पिणु सामिसालतणुरुह पणवेप्पिणु ।
सुरणरविसहरभयइं जणेरी करहु केर णरणाहहु केरी ।
पणवहु किं बहुवेण[3] पलावें पुहइ ण लब्भइ मिच्छागावें ।
तं णिसुणेवि कुमारगणु घोसइ [4]तो पणवहुं जइ वाहि ण दीसइ ।
तो पणवहु जइ सुसुइ[5] कलेवरु तो पणवहु जइ जीविउ सुंदरु ।
तो पणवहु जइ जरइ ण झिज्जइ तो पणवहु जइ पुट्ठि ण भज्जइ ।
तो पणवहु जइ बलु णोहट्टइ तो पणवहु जइ सुइ ण विहट्टइ ।
तो पणवहु जइ मयणु ण तुट्टइ[6] तो पणवहु जइ कालु[7] ण खुट्टइ ।
कंठि कयंतवासु[8] ण [9]चुहुट्टइ तो पणवहु जइ रिद्धि ण तुट्टइ ।

घत्ता—जइ जम्मजरामरणइं हरइ चउगइदुक्खु[10] णिवारइ ॥
[11]तो पणवहु तासु णरेसहो[12] जइ संसारहु तारइ ॥७॥

६. १. MB °सेहाहि । २. MBP किं । ३. P णहु । ४. MBP किर को । ५. M करि । ६. MBP °संपयहरहं ।

७. १. MBP वओहरा; T वउहरा दूताः । २. BPK °लुलिय° । ३. MBP बहुएण । ४. MBP तइ and throughout elsewhere in this Kadavaka । ५. MBP सुथिरु but T सुसुइ । ६. MBP फिट्टइ । ७. MBP आउ । ८. MBP कयंतपासु । ९. MBP चहुट्टइ । १०. MBP °दुक्खइं वारइ । ११. MP ता; B तहो । १२. MBPK णरेसरहो ।

महीपति सामन्तोंको पकड़ लिया है और उखाड़ दिया है, जिसने दसों दिशाओंमें अपने सामन्त भेजे हैं, जिसने अपनी रूपऋद्धिसे रमणी समूहको रंजित किया है, जिसमें पृथ्वीका मोह अत्यन्त बढ़ रहा है, जिसने अपने बाहुबलसे भरत क्षेत्रको पराजित कर दिया है, ऐसे भरतने यह सुनकर कहा—"यमको यमत्व कौन दिखाता है ? मुझे छोड़कर पृथ्वीपति कौन है ? इस प्रकार जगमें कौन सन्ताप पहुँचा सकता है ? आगको ज्वालाओंसे कौन अपने आपको सन्तप्त करना चाहता है, किसे मेरी प्रभुता अच्छी नहीं लगती, आकाशमें स्खलित होकर जाते हुए किसे अच्छा लगता है ? कौन मेरी सेवा नहीं ग्रहण करता, यह धरती कौन नहीं अर्जित करना चाहता, समुद्र पर्यन्त धरतीसे कर वसूल करनेवाली मेरी तलवारसे कौन आशंकित नहीं होता, कौन मेरे अनुचरोंको मारता है ? कौन प्रतिकार करता है और मुझे भी मारता है ? कामदेवका वर्णन करनेसे क्या ? नहीं प्रणाम करते हुए किसका सिर दर्पसे गिरता है ?"

घत्ता—यह कहकर राजाने अविनयके कारण अमनोज्ञ समस्त सब प्रकारकी सम्पत्ति धारण करनेवाले शत्रुओंको कठोर लेख दिया ॥६॥

७

तब जनोंके लिए सुन्दर दूत, जहाँ द्रुमदलोंके सुन्दर तोरण हैं, गज चिग्घाड़ रहे हैं, और जिनका भूमिप्रदेश ढका हुआ है, ऐसे नृपकुमारोंके आवासपर गये। स्वामीश्रेष्ठके उन पुत्रोंको प्रणाम करते हुए उन्होंने विनयके साथ निवेदन किया, "सुर-नर और विषधरोंमें भय उत्पन्न करनेवाली राजाकी सेवा करो और उन्हें प्रणाम करो, बहुत प्रलापसे क्या ? मिथ्या गर्वसे धरती प्राप्त नहीं की जा सकती।" यह सुनकर कुमारगण घोषित करता है—"हम तब प्रणाम करते हैं यदि उसमें कोई व्याधि दिखाई नहीं देती। तब प्रणाम करते हैं यदि उसका शरीर पवित्र है, तब प्रणाम करते हैं यदि उसका जीवन सुन्दर है। तब प्रणाम करते हैं यदि वह जरासे क्षीण नहीं होता। तब प्रणाम करते हैं यदि वह पीठ देकर नहीं भागता, तो प्रणाम करते हैं यदि उसका बल नष्ट नहीं होता, तो प्रणाम करते हैं यदि उसकी पवित्रता नष्ट नहीं होती, तो प्रणाम करते हैं यदि कामदेव नष्ट नहीं होता, तो प्रणाम करते हैं यदि काल समाप्त नहीं होता, तो प्रणाम करते हैं यदि गलेमें यम नहीं लगता और ऋद्धि समाप्त नहीं होती।

घत्ता—यदि वह जन्म-जरा और मरणका अपहरण करता है, चार गतियोंके दुःखका निवारण करता है, और संसारसे उद्धार करता है तो हम उस राजाको प्रणाम करते हैं।" ॥७॥

८

आरणालं—पुणरवि तेहिं गहिरयं सवणमहुरयं एरिसं पउत्तं ।
आणापसरधारणे धरणिकारणे[1] पणविउं ण जुत्तं ॥१॥
पिंडिखंडु महिखंडु महेप्पिणु किह पणविज्जइ माणु मुएप्पिणु ।
वक्कलणिवसणु कंदरमंदिरु वणहलभोयणु वर[2] तं सुंदरु ।
वर[3] दालिद्दु[4] सरीरहु दंडणु णउ[5] पुरिसहु अहिमाणविहंडणु ।
परपयरयधूसर किंकरसिरि[6] असुहाविणि[7] णं पाउससिरिहिरि[8] ।
णिवपडिहारदंडसंघट्टणु को विसहइ करेण उरलोट्टणु ।
को जोयइ मुहुं भूभंगालउ[9] किं हरिसिउ किं रोसें कालउ ।
पहु आसण्णु लहइ धिट्ठत्तणु पविरलदंसणु णिण्णेहत्तणु ।
मोणें[10] जड्डु भड्डु खंतिइ कायरु [11]अज्जवु पसु पंडियउ पलाविरु ।
अमुणियहिययचारुगरुयत्तें कलहसीलु भण्णइ सुहडत्तें ।
महुरपयंपिरु चाडुयगारउ केम वि गुणि ण होइ सेवारउ ।
घत्ता—अइतिक्खहं धम्मगुणुज्झियहं [12]वम्मवियारणवसणहं ॥
को बाणहं संमुहुं थाइ रणे को महिवइघरि पिसुणहं ॥८॥

९

आरणालं—अहवा तेहिं किं हयं जं समागयं दुल्लहं णरत्तं ।
तं जो विसयविसरसे[1] थिवइ परवसे[2] तस्स कि बुहत्तं ॥१॥
कंचणकंडें जंदुउ विंधइ मोत्तियदामें मंकडु[3] बंधइ ।
खीलयकारणि देउलु मोडइ सुत्तणिमित्तु दित्तु[4] मणि फोडइ ।
कप्पूरायरुक्खु[5] णिसुंभइ कोद्दवछेत्तहु वइ पारंभइ ।
तिलखलु पयइ डहिवि चंदणतरु विसु गेण्हइ सप्पहु ढोयवि[6] करु ।
पीयइ कसणइं लोहियसुक्कइं तक्कें विक्कइ सो माणिक्कइं ।
जो मणुयत्तणु भोएं णासइ तेण वसाणु हीणु को सीसइ ।
चित्तु समत्तणि णेय णियत्तइ पुत्तु कलत्तु वित्तु संचिंतइ ।
मरइ रसणफंसणरसदड्ढउ मे मे मे करंतु जिह मेंढउ[7] ।
खज्जइ पलयकालसद्दूलें डज्झइ दुक्खहुयासणजालें ।
मंजरु कुंजरु महिसउ मंडलु होइ जीउ मक्कडु[8] माहुंडलु ।

---

८. १. B omits धरणिकारणे; P महिहि कारणे । २. MBP वरि । ३. MBP वरि । ४. M दारिद्दु । ५. MBP ण हि । ६. MBP °सिरि and a long note in M: यथा वर्षाकालनदी परः अन्यहीनस्थाना झिल्लरादिपयैः (?) मलिनै रजोभिः धूसरिता मलिना प्रवहति हिरि अतिलज्जाकारिणी, तथा किंकरश्रीः शोभा परपदरजोभिः धूसरिता । ७. MBP असुहावणि । ८. MBP °हिरि; K °हिरि but corrects it to °हरि । ९. P भूसंगा° । १०. MBP मउणें । ११. MBP अज्जउ । १२. KBP मम्म° ।

९. १. P °रसो । २. P परवसो । ३. MBP मक्कडु । ४. MBP दित्तमणि । ५. MBP कप्पूरायरुक्ख । ६. MBP अप्पइ परु । ७. M मिंढउ; BP मेढउ । ८. MBP मंकडु ।

८

उन्होंने और भी गम्भीर कानोंके लिए मधुर इस प्रकार कहा कि धरतीके लिए और आज्ञाका प्रसार करनेके लिए प्रणाम करना उचित नहीं है। शरीरखण्ड या धरतीके खण्डको महत्त्व देकर और मान छोड़कर क्यों प्रणाम किया जाये। वल्कलोंका पहनना, गुफाओंका घर, और वनफलोंका भोजन, यह सुन्दर है। दारिद्र्य और शरीरका खण्डन अच्छा, परन्तु मनुष्यका अभिमानको खण्डित करना ठीक नहीं। किंकररूपी नदी दूसरोंके पदरजसे धूसरित है। पावसकी श्रीको धारण करनेवाली असुहावनी है। राजाओंके प्रतिहारोंके दण्डोंका संघर्षण और हाथ उरको स्पर्श करना कौन सहे? भौंहोंसे टेढ़ा मुख कौन देखे कि वह प्रसन्न है या क्रोधसे काला है, यदि राजाके निकट है तो वह ढोठपनको प्राप्त होता है, यदि कभी-कभी दर्शन करता है तो स्नेहहीन समझा जाता है, मौन रहनेसे जड़ (मूर्ख) और शान्तिसे रहनेपर कायर, सीधा रहने-पर पशु और पण्डित होनेपर प्रलाप करनेवाला, अपने हृदयकी सुन्दर गुरुताको न समझनेवाली शूरवीरतासे कलहशील कहा जाता है और मीठा बोलनेपर चापलूस। इस प्रकार सेवामें रत व्यक्ति किसी भी प्रकार गुणी नहीं होता।

घत्ता—अत्यन्त तीखे धर्मरूपी गुणसे रहित/डोरीसे रहित, वम्म (मर्म/कवच) के विदारणके स्वभाववाले बाणोंके सम्मुख रणमें और दुष्टोंके सम्मुख राजाके घरमें कौन खड़ा रह सकता है ॥८॥

९

अथवा उनसे क्या, जिन्होंने प्राप्त दुर्लभ मनुष्यत्वको नष्ट कर दिया। और जो उसे परवश होकर नष्ट करता है, उसका क्या पाण्डित्य? वह स्वर्णके तोरसे सियारको बेचता है, मोतीकी मालासे बन्दरको बाँधता है, कीलके लिए देवकुलको तोड़ता है, सूत्रके लिए दीप्त मणिको फोड़ता है, कपूर और अगुरु वृक्षको नष्ट करता है और (उनसे) कोदोंके खेतकी बागर बनाता है। चन्दन वृक्षको जलाकर तिल खलोंकी रक्षा करता है। साँपको हाथमें लेकर उससे विष ग्रहण करता है, पीले, काले, लाल और सफेद माणिक्योंको छाछमें बेचता है, जो मनुष्यत्वको भोगमें नष्ट करता है, उसके समान हीन व्यक्ति कौन कहा जाता है। जो अपने चित्तको समतामें नियोजित नहीं करता, पुत्र-कलत्र और धनकी चिन्ता करता है, रसना और स्पर्शरसमें दग्ध होकर उसी प्रकार मर जाता है, जिस प्रकार मे-मे-मे करता हुआ मेंढक मरता है। प्रलयकालरूपी सिंहके द्वारा खाया जाता है, दुःखरूपी आगकी ज्वालासे जला दिया जाता है। यह जीव मार्जार, कुंजर, महिष, कुक्कुर, बन्दर और सर्प विशेष उत्पन्न होता है।

घत्ता—केलासहु जाइवि तवयरणु ताएं भासिउ किज्जइ ॥
जेणेह सुदूसहतावयरि संसारिणि तिस छिज्जइ ॥९॥

१०

आरणालं—इय भणियं[1] कुमारया मारमारया समरंसा[2] पसण्णा ।
दरिवियरियवराहयं सवरराहयं[3] काणणं पवण्णा ॥१॥

दिट्ठु तेहिं केलासि[4] जिणेसरु संथुउ रिसहणाहु परमेसरु ।
जय रिसिणाह वसह वसहद्धय जय तियसिंदमउलिलालियपय ।
जय जाणियपरमक्खरकारण जय जिण मोहमहातरुवारण ।
जय सुहवास दुरासावारण जय ससहरसियवारिणिवारण ।
पुणु वि पंच परमेट्ठि णवेप्पिणु पंचमुट्ठि सिरि लोउ करेप्पिणु ।
पंचमहारिसिवयइं लएप्पिणु[5] पंचासवदारांइं[6] पिहेप्पिणु ।
पंचिंदियपमाउ वज्जेप्पिणु पंच वि सर मयणहु तज्जेप्पिणु ।
पंचायारसारु पावेप्पिणु पंचपंचविहु धम्मु धरेप्पिणु ।

घत्ता—दढगुणि मणमग्गणु संणिहिउ मोक्खहु संमुहुं पेसिउं[7] ॥
संतहिं अरहंतहु तणुरुहहिं अप्पउ चरिएं भूसिउं[8] ॥१०॥

११

आरणालं—ता पत्तो चरो पुरं णिवइणो घरं[1] भणइ सुणसु राया ।
इसिणो तुह सहोयरा सीलसायरा अज्जु देव जाया ॥१॥

एक्कु जि पर बाहुबलि सुदुम्मइ[2] णउ तउ करइ ण तुम्हहं पणवइ ।
तं णिसुणेवि पुरोहें उत्तउं[3] भडसामंतमंतिसंजुत्तउं ।
कोसु देसु[4] परियणु[5] पयभत्तउ मणहरु अंतेउरु अणुरत्तउ ।
कुलु छलु बलु सामत्थु सुइत्तणु णिहिलजणाणुराउ जसकित्तणु ।
विणउ वियारहारि बुहसंगमु[6] पोरिसु बुद्धि[7] रिद्धि दइवुज्जमु ।
कुंजर णावइ महिहर जंगमु अत्थि तासु रह करह तुरंगमु ।
अत्थसत्थु जावज्ज वि ण सरइ जाम सहायसहासइं ण करइ ।
जाम ण लग्गइ खलसंसग्गो खत्तधम्मणिम्महणुम्मग्गो ।

घत्ता—जावज्ज वि चाउ ण करि धरइ तोणाजुयलु ण बंधइ ॥
णिम्मज्जिए[8] भालसेयलवहिं जाम ण गुणि सरु संधइ ॥११॥

---

१०. १. MBP भणिओ । २. MBP समरमापवण्णा and gloss in MP उपशमलक्ष्मीं प्राप्ताः । ३. MP सवररायहं, but T सवरराहयं शबराणां भासो भा यत्र । ४. MP केलास° । ५. B लहेप्पिणु । ६ B °दारइं रुंभेप्पिणु । ७. MBP पेसियउ । ८. MBP भूसियउ ।

११. १. MBP हरं । २. MBP स दुम्मइ । ३. MBP वुत्तउं । ४. MBP दोसु । ५. MB परयणु । ६. MBP वुह° । ७. M रिद्धि बुद्धिदइउज्जमु । ८. MBP णिम्मज्जिय° ।

घत्ता—पिताके द्वारा कहे गये तपको कैलास पर्वतपर जाकर करना चाहिए, जिसके कारण अत्यन्त सन्तापकारी संसारके प्रति तृष्णा क्षीण होती है ॥९॥

१०

यह कहकर कामको मारनेवाले उपशमरूपी लक्ष्मीके धारक और प्रसन्न कुमार, जिसकी गुहाओंमें वराह विचरण करते हैं और जो शवरोंकी शोभासे युक्त है ऐसे वनमें चले गये। उन्होंने कैलास पर्वतपर जिनेश्वरके दर्शन किये और परमेश्वर ऋषभकी स्तुति की—"हे वृषभ वृषभध्वज, आपकी जय हो। देवोंके मुकुटोंसे ललितचरण आपकी जय हो। परम अक्षयपदके कारणस्वरूप आपकी जय हो। मोहरूपी महावृक्षका निवारण करनेवाले हे जिन आपकी जय हो। सुखमें वास करनेवाले, दुराशाका निवारण करनेवाले आपकी जय हो। चन्द्रमाके समान श्वेत छत्रवाले आपकी जय हो।" फिर पाँच परमेष्ठियोंको नमस्कार कर, पाँच मुट्ठी केशलोंच कर, पाँच महामुनियोंके पाँच महाव्रत लेकर, पाँच आस्रवके द्वारोंको रोककर, पाँच इन्द्रियोंके प्रमादोंको छोड़कर, कामदेवके पाँच बाणोंको त्यागकर, पाँच आचारश्रेष्ठोंको पाकर, दस प्रकारके धर्मोंको धारण कर—

घत्ता—मनरूपी तीरको दृढ़ गुण (गुण डोरी) में रखकर मोक्षके सम्मुख प्रेषित किया। इस प्रकार अरहन्त ऋषभके सन्त पुत्रोंने आत्माको चारित्रसे विभूषित किया ॥१०॥

११

तब दूत राजा भरतके घर आया और बोला—"हे राजन् सुनो, शीलके सागर तुम्हारे भाई, हे देव आज ही मुनि हो गये हैं, एक बाहुबलि ही दुर्मति है, न तो वह तुम्हें प्रणाम करता है और न तप करता है।" यह सुनकर पुरोहितने भट, सामन्त और मन्त्रियोंके लिए उपयुक्त यह कहा, उसके (बाहुबलिके) पास कोश, देश, पदभक्त,. परिजन, सुन्दर अनुरक्त अन्तःपुर, कुल, छल-बल, सामर्थ्य, पवित्रता, निखिलजनोंका अनुराग, यशकीर्तन, विनय, विचारशील बुधसंगम, पौरुष, बुद्धि, ऋद्धि, देवोद्यम, गज, राजा, जंगम, महीधर, रथ, करभ और तुरंगम हैं। जबतक वह अर्थशास्त्रका अनुसरण नहीं करता और जबतक सैकड़ों सहायकोंको नहीं बनाता, जबतक दुष्टोंकी संगति और क्षात्रधर्मके निर्मूलनके मार्गमें नहीं लगता।

घत्ता—जबतक वह धनुष हाथमें नहीं लेता, तरकस युगलको नहीं बाँधता और भाल तथा कान तक निमज्जित होनेवाली डोरपर तीरका सन्धान नहीं करता ॥११॥

१२

आरणालं—ण हु मारइ महाहवे जा महाहवे दाइओ समत्थो ।
जा ण हरइ णिराउलं तुह महीयलं तिक्खखग्गहत्थो ॥१॥
ताम तासु दूयउ[1] पेसिज्जइ   जइ पइ पणवइ तो पालिज्जइ ।
णं तो पुणु बाहुबलि धरिज्जइ   बंधिवि कारागारि णिहिज्जइ ।
एम मंतु जं तेण पउंजिउ   ता राएं तहु दूउ विसज्जिउ ।
णियवइरत्तु संत्तुविद्धंसणु[2]   सुहडु सुलक्खणु सोमु सुदंसणु ।
देसजाइकुलसुद्धु पसिद्धउ   पंडिउ पडु पहुलच्छिसमिद्धउ ।
विविहविसयभासाभासिल्लउ   दिट्ठुत्तरु महिमाइ महल्लउ ।
तेयवंतु रक्खियपहुतेयउ   महुरवाणि आदेउ[3] अजेयउ ।
गउ[4] दूयउ परिचोइयपत्तउ   पोयणपुरु बहुदिवसहिं[5] पत्तउ ।
जहिं वणतरुसाहहिं महु वियलइ   चलकंकेल्लीपल्लवु[6] विलुलइ ।
अइदीहरपवासममहियहिं   पइसंतहिं वि समंतहिं[7] पहियहिं ।
रसविसेसधारामहमहियइं   जहिं खज्जंति फलाइं सुरहियइं[8] ।
पुप्फहिं [9]गुप्फइ माल विहिंडिर[10]   चउदिसु रुणुरुणंति इंदिंदिर ।
घत्ता—सरु मेल्लिवि करेण णियड्ढियउ रत्तु पवड्ढुलु[11] रसियउ ।
बिंबीफलु[12] अहरु व वणसिरिहे जहिं कणइल्लें डसियउ ॥१२॥

१३

आरणालं—वरकेदारदारए[1] सालिसारए कसणधवलपिच्छा[2] ।
अणुझणझणियघणकणं कणिसमणुदिणं जहिं [3]चुणंति रिंछा ॥१॥
णिद्धणत्तु जहिं चंदें दाविउ   माणुसि कत्थइ णेय विहाविउ ।
जहिं विहारु पासाउ पियारउ   णउ णारियणकंठु[4] रइगारउ ।
उववासु वि चउएण रइज्जइ   णउ रोएं दुक्कालिं किज्जइ ।
जहिं केण वि कीरइ ण सुरागमु   होइ गुणीण गुणेहिं सुरागमु ।
दिट्ठु सिहाछेउ वि रिसिदिक्खहि   णउ माणिक्कमऊहपरिक्खहि ।
असिलाहवरूउं[5] जहिं लेप्पइ   णउ विसिट्ठमारणसंकप्पइ ।
वहइ सया णवत्तु वणु[6] जोव्वणु[7]   णउ णिरुव्वद्दउ णिवसंतउ जणु ।
जेत्थु कुसादूसणु[8] णीसंगइ[9]   णासवारि णउ रायवयं गइ ।
[10]थद्धत्तणु णिवडणु थणउल्लइ   धरणु णिव्वीडणु जहिं अहरुल्लइ ।

---

१२. १. MBP दूवउ । २. M पत्तु विद्धंसणु । ३. MBP आदेय । ४. MBP गयउ दूउ । ५. MBP °दियहहिं । ६. MBP पल्लउ । ७. MBP समत्तहिं । ८. MP add after this : णं कामिणिवयणइं अइसरसइं, पुणु पिज्जहिं जलाइं सरिसरसहिं । ९. MBP गुंफइ । १०. MBP विहंडिर । ११. MBP पवट्टलु । १२. MBP बिंबीहलु ।

१३. १. MBP वर; T केयार° । २. MBP °पिछा । ३. MBP चरंति । ४. MBP णारियणदेहु । ५. MBP °हवरूवउं; K °हवरूवउं but corrects it to °रूउं । ६. MBPT धणु । ७. MBP जोव्वणु । ८. MT कुसादूसण । ९. P णीसरगइ । १०. MBP थद्दत्तणु ।

१२

जबतक महायुद्धमें समर्थ शत्रु तुम्हें युद्धमें नहीं मारता और जबतक तीखी तलवार हाथमें लिये हुए वह तुम्हारी निराकुल धरतीका अपहरण नहीं करता, तबतक आप उसके पास दूत भेजें। यदि वह प्रणाम करता है तो उसका पालन किया जाये, नहीं तो फिर बाहुबलिको पकड़ लिया जाये और बाँधकर कारागारमें डाल दिया जाये।" जब उसने (पुरोहितने) यह मन्त्रणा दी तो राजाने उसके पास दूत भेजा। वह दूत अपने स्वामीमें अनुरक्त शत्रुका विध्वंस करनेवाला सुभट, सुलक्षण, सौम्य, सुदर्शन, देश-जाति और कुलसे सिद्ध-प्रसिद्ध, पण्डित, चतुर, प्रभुकी लक्ष्मीसे समृद्ध, विविध विषय और भाषाओंका बोलनेवाला, उत्तरको देख लेनेवाला और महिमासे महान्, तेजस्वी, प्रभुका तेज रखनेवाला, मधुरभाषी, आदरयुक्त और अजेय था। अपने वाहनको प्रेरित कर दूत चल दिया और कई दिनोंमें पोदनपुर नगर पहुँचा। जहाँ वनतरुओंकी शाखाओंसे मधु निकल रहा था, चंचल अशोक वृक्षोंके पत्ते हिल रहे थे। अत्यन्त लम्बे प्रवासके श्रमसे सब ओरसे प्रवेश करते हुए पथिकोंके द्वारा रस विशेषकी धारासे महकते हुए जहाँ सुरभित फल खाये जाते हैं। पुष्पोंके द्वारा मालाएँ गूँथी जाती हैं और भ्रमणशील मधुकर चारों दिशाओंमें गुनगुना रहे हैं।

घत्ता—जहाँ शब्द करके और चोंचरूपी करसे खींचकर रसीले लाल-लाल वनश्रीके अधरके समान कुंदरु फलको शुकने काट खाया ॥१२॥

१३

धान्यके श्रेष्ठ खेतोंके मार्गमें काले और सफेद बालवाले रीछ झनझनाते हुए घन कणोंवाले धान्यको प्रतिदिन चुगते हैं। जहाँ निर्धनता (स्निग्धत्व) चन्द्रमाके द्वारा दिखायी जाती है मनुष्यमें निर्धनता दिखाई नहीं देती। जहाँ विहार शब्द प्रासादोंमें प्रियकारक होता है, प्रेम उत्पन्न करनेवाला नारीजनके कण्ठ विहार (हार रहित) नहीं है। जहाँ चटकके द्वारा (गौरैया) उपवास (गृहोंके भीतर वास) किया जाता है, वहाँके लोग रोग और दुष्कालके कारण उपवास नहीं करते। जहाँ किसीके द्वारा सुरागम नहीं किया जाता (मदिरापान), गुणियोंके गुणोंसे सुरागम (देवागम) होता है। जहाँ मुनि दीक्षामें ही शिखाउच्छेद होता है माणिक्योंकी किरण परीक्षामें शिखाच्छेद नहीं होता है। जहाँ लेपकर्ममें असिलाभवरूप (अमूर्तसे उत्पन्न रूप) होता है, विशिष्ट मारण संकल्पमें नहीं। जहाँ वन और यौवन सदैव नवत्व धारण करते हैं, निरुपद्रव रूपसे रहता जन नवत्व धारण नहीं करते (पुरानी व्यवस्थाका त्याग नहीं करते)। जहाँ अनासंग (संसारसे विरक्त) मुनियोंके लिए कुसादूषणु (पृथ्वी और लक्ष्मी दूषण है) अश्वारोही और राज्यपदको प्राप्त व्यक्तिके लिए पृथ्वी और लक्ष्मी दूषण नहीं है। जहाँ स्तनोंमें सघनता और पतन है, वहाँ लोगोंमें सघनता और पतन नहीं है। जहाँ अधरोंमें धरण (पकड़ा जाना) और निष्पीड़न है, वहाँके जनोंमें ये बातें नहीं हैं।

घत्ता—पुक्खरिणिहिँ कीलागिरिवरहिँ जलखाइयपायारहिँ ।।
जं सोहइ मोत्तियतोरणहिँ मंडिउ चउहुं मि दारहिँ ।।१३।।

१४

आरणालं—तहिं सुरगुरुसुरूयओ[1] रायदूयओ पट्टणे पइट्ठो ।
रायालयदुवारए[2] हिययहारए णायरेहिँ दिट्ठो ।।१।।
कणयदंडयरु[3] भल्लउ भाविउ   तहिं पडिहारु तेण बोल्लाविउ ।
बुद्धिवंतु अब्भसुयभूयउ   भणु अच्छइ दुवारि पहुदूयउ ।
तं णिसुणिवि गउ लट्ठिविहत्थउ   कहइ कुमारहु पणमियमत्थउ[4] ।
अच्छइ दारि[5] णरिंदवओहरु   अत्थि णत्थि भणु सामिय अवसरु ।
ता कंदप्पें भणिउं म वारहि   भायरकिंकरु लहु पइसारहि ।
ता कट्ठियहरेण जसणिम्मलु   पइसारिउ पसण्णमुहमंडलु ।
बाहुबलीसु देउ कयमंडलु   दूएं दिट्ठउ णं आहंडलु ।
संथुउ मउलियपंजलिपोमें   को वसि ण कियउ तुह परिणामें ।
घत्ता—तुह धणुगुणटंकारएण[6] केण[7] ण माणु णिहित्तउ ।।
पइं वम्मह पंचहिँ मग्गणहिँ सयलु वि तिहुयणु जित्तउ ।।१४।।

१५

आरणालं—पियवयणं पि भासियं सुइसुहासियं मुत्तकामभोया ।
तुह जयवडहसद्देणं[1] जगविमद्देणं णउ सुणंति लोया ।।१।।
जय कुसुमाउह रइरमणीवर   अलिमालाजीयासंधियसर ।
पइं पेच्छिवि घोलइ उप्परियणु   वियलइ णारिहि णीवीबंधणु ।
चिहुरभारु दढबंधु वि पसिढिलु[2]   हवइ रयंबु सवइ सोणीयलु ।
चलइ वलइ लोयणजुयलुल्लउ   दीसइ अंगु वूढसेउल्लउ ।
रंभा णवरंभा इव डोल्लइ   रइवाएं आहल्ल वि हल्लइ ।
देवँ[3] तिलोत्तिम तिलु तिलु खिज्जइ   विरहें उव्वसि[4] उव्वेइज्जइ ।
मेणई[5] मीणि व थोवइ पाणिइ   पिय संतप्पइ रवियरमाणिइ ।
एम थुणंतहु दिण्णउं आसणु   णिवसणु भूसणु किउ संभासणु ।
हिमइरिजलहिमज्झि महिरायहु   कुसलु खेउं भरहहु मज्झु भायहु ।
कुसलु खेउं कुरुवंसणरेसहु   कुसलु खेमु जलहरणिग्घोसहु ।
कुसलु खेमु णमिविणमिकुमारहु   कुसलु खेउं पत्थिवपरिवारहु ।
दूवें वुत्तउ कुसलु णरिंदहु   कुसलु णाह णिहिलहु णिवविंदहु ।
एक्कु जि अकुसलु सुहिउक्कंठिउ   जं तुहुं देवँ[6] दूरि परिसंठिउ ।

१४. १. MBPT सरूयओ । २. MB सयालए । ३. MBP °दंडकरु । ४. MBP पणमियं° । ५. MBP बारि । ६. M °टंकारवेण । ७. MBP केणहिमाणु ण चत्तउ; T णिहित्तउ त्यक्तः ।

१५. १. MB जयवडसद्देण । २. B सिढिलु । ३. P देवि । ४. MBP उव्वस । ५. MBP मीणइ । ६. MBP दूरि देव ।

घत्ता—जो पुष्करिणियों, क्रीड़ागिरिवरों, जलखाइयों, प्राकारों तथा मोतियोंके तोरणोंवाले चारों द्वारोंसे अलंकृत–शोभित है ॥१३॥

१४

ऐसे उस पोदनपुर नगरमें बृहस्पतिके समान रूपवाला प्रवेश करता हुआ राजदूत राज्यालयके सुन्दर द्वारपर लोगोंके द्वारा देखा गया। वहाँ स्वर्णदण्ड धारण करनेवाले सुन्दर विचारशील आश्चर्यचकित एवं बुद्धिमान् प्रतिहारसे वह बोला, "राजासे कहो कि द्वारपर प्रभुका दूत खड़ा है।" यह सुनकर लाठी हाथमें लिये हुए मस्तकसे प्रणाम कर प्रतिहार कुमारसे कहता है, "द्वारपर राजाका दूत स्थित है, हे स्वामी अवसर है कि 'हाँ-ना' कुछ भी कह दें।" तब कामदेव बाहुबलिने कहा, "मना मत करो। भाईके अनुचरको शीघ्र प्रवेश दो।" तब यष्टि धारण करनेवाले प्रतिहारीने यशसे निर्मल प्रसन्न मुखमण्डल दूतको प्रवेश दिया। सभाके बीच बैठे हुए बाहुबलीश्वरको दूतने इस रूपमें देखा मानो इन्द्र हो। हस्तकमलोंकी अंजलि जोड़कर उसने संस्तुति की—"तुमने अपने परिणामसे किसको वशमें नहीं कर लिया।"

घत्ता—तुम्हारी धनुष-डोरीके टंकारसे किसने मान नहीं छोड़ दिया। हे कामदेव, तुमने अपने पाँच ही तीरोंसे समस्त त्रिलोकको जीत लिया ॥१४॥

१५

"काम और भोगोंको जिन्होंने भोगा है ऐसे लोग, कहे गये श्रुतिमधुर प्रिय वचन और जगका विमर्दन करनेवाले तुम्हारे विजयके नगाड़ोंका शब्द नहीं सुनते। हे रतिरूपी रमणीके वर कामदेव, आपकी जय हो। भ्रमरबालाकी डोरीपर सर-सन्धान करनेवाले आपको देखकर नारीके ऊपरका वस्त्र गिर जाता है, और नीवि-निबन्धन खुल जाता है। पक्का बँधा हुआ भी केशभार खुल जाता है, रज होने लगता है, श्रोणीतल खिसक जाता है। नेत्रयुगल चंचल होकर मुड़ने लगता है, शरीर पसीना-पसीना हो जाता है। रम्भा नवकदलीकी तरह हिलने लगती है, रतिकी हवासे और अधिक कँपने लगती है। हे देव, तिलोत्तमा क्षण-क्षण खेदको प्राप्त होती है और विरहसे उर्वशी खेदको प्राप्त होती है। हे स्वामी, मेनका थोड़े पानीमें मछलीकी तरह सूर्यकी किरणोंके सन्तापसे सन्तप्त हो उठती है।" इस प्रकार स्तुति करते हुए दूतको उसने आसन, वसन और भूषण दिये और सम्भाषण किया—"हिमगिरिसे लेकर समुद्र पर्यन्त, महीराज मेरे भाई भरतका कुशल-क्षेम तो है? कुरुवंशके राजाका कुशल-क्षेम तो है, समुद्रके समान निर्घोषवाले (उनका) कुशल-क्षेम तो है। नमि-विनमि कुमारका कुशल-क्षेम तो है, राजाके परिवारका कुशल-क्षेम तो है।" दूत बोला—"हे राजन्, कुशलक्षेम है, समस्त राजसमूहका कुशलक्षेम है? सुधीजनोंमें उत्कण्ठा पैदा करनेवाला एक ही अकुशल है और वह यह कि हे देव आप बहुत दूर हैं?

घत्ता—दूरत्थहं बंधुहुं णेहु जइ णासइ पिसुणकयंतरु ॥
रवि मेल्लइ किरणइं पंकयहं ताइं णिवारइ जलहरु ॥१५॥

१६

आरणालं—भो भो दणुयणिम्मेहा[1] सुणसु वम्महा कुणसु चारु चित्तं ।
सह गुरुएण[2] भाइणा तिजगताइणा रूसिउं ण जुत्तं ॥१॥
को ससहरु को किर करमेलउ को समुद्द को जलकल्लोलउ ।
को तुहुं भरहु कवणु किर वुच्चइ एहउ बुहहं वियप्पु ण रुच्चइ ।
कप्परुक्खु किं कुसुमहिं अंचमि रयणायरु करसलिलें सिंचमि ।
सूरहु अग्गइ दीवउ बोहमि हउं[3] णिहीणु किं पइं संबोहमि ।
तायहु अच्छइ भरहु जि राणउ तुहुं जुयराउ जगेक्क[4]पहाणउ ।
माणें[5] मरट्टु विसट्टु मुएप्पिणु जीवहु एक्कमेक्क अणुणेप्पिणु ।
तरुणिकंठकंदइयपवेट्ठहिं[6] अरिवरदंतिदंतपरिहट्ठहिं ।
आयड्ढियपईह[7]कोदंडहिं आलिंगियउ जेहिं भुयदंडहिं ।
तेहिं ण पुणरवि रणि जुज्झिज्जइ गुरुयणि[8] अविणएण लज्जिज्जइ ।
घत्ता—कुलसामि महाबलु सुयणु गुणि णउ णवंति जे राणउ ॥
घरि ताहं होइ दालिद्दडउ अह जमपुरिहि पयाणउं ॥१६॥

१७

आरणालं—जो वरचरमकुलयरो पढमणिववरो पंकयच्छियाए ।
जिणवंसो पयासिओ जेण भूसिओ रायलच्छियाए ॥१॥
जासु चक्कु रिउचक्कु णिसुंभइ जासु दंडु परदंडु णिरुंभइ ।
जासु पुरोहु पुराइउ पेच्छइ तुरउ तुरिउ हियएं सहुं गच्छइ ।
कागणि दिणमणि ससि वि दुगुंछइ थवइ थवइ तिहुयणु जइ इच्छइ ।
छायइ छत्तु होंतु विवरेरउ असि असु कड्ढइ सत्तुहुं केरउ ।
चम्मु चमू धरंतु अइभासइ[1] सेणावइ सेणावइ णासइ ।
मागहु वरतणु जेण पहासु वि णिज्जिउ सुरु वेयड्ढणिवासु वि ।
जेण तिमीसकवाडु विहड्डिउ सिंधुदेविअहिमाणु पलोट्टिउ ।
दिण्ण केर हिमवंतकुमारहु पुणु आइउ वसहइ[2]रिसुतीरहु ।
तहिं अप्पणउं णाउं संणिहियउ छाहिल्लेण व ससिणा गहियउ ।
तं तहिं दीसइ ण उण कलंकउ णिवणा[3]मंकिउ भमइ ससंकउ ।
विसहरउलइं सविसहरवरिसइं जित्तइं मेच्छउलइं[4] सामरिसइं ।
णं पालेययसेलकिरीडहु पुणु भउ जणियउं गंगाकूडहु ।

---

१६. १. M °णिम्मुहा । २. MBP गरुएण । ३. MB हउं मि हीणु । ४. MP जगेक्कु पहाणउ । ५. MBPK माणु मरट्टु विसट्टु । ६. P परिवट्टहिं and gloss परिघृष्टैः । ७. MBP °पयंड° । ८. MBP गुरुयण° ।

१७. १. MBP अइहासइ । २. MBP वसहइरिउ तीरहु । ३. MBP °णामंकउ । ४. MBP मिच्छाउलइं ।

घत्ता—दुष्टोंके द्वारा अन्तर पैदा कर देनेपर दूरस्थ भाइयोंका स्नेह नष्ट हो जाता है, सूर्य कमलोंके लिए किरणें भेजता है परन्तु जलधर उनका निवारण कर देता है ॥१५॥

१६

हे दानवोंको नष्ट करनेवाले कामदेव, सुनो और अपना चित्त सुन्दर बनाओ। त्रिलोकको सतानेवाले अपने बड़े भाईसे रूठना ठीक नहीं। चन्द्रमा कौन और उसकी किरणोंका समूह कौन? समुद्र कौन और उसकी जलतरंगें कौन? तुम कौन और भरत कौन? पण्डितोंको यह विकल्प (या भेदभाव) अच्छा नहीं लगता। क्या मैं कल्पवृक्षकी फूलोंसे पूजा करूँ? क्या समुद्रको हाथके जलसे सीचूँ? क्या सूर्यके आगे दीप जलाऊँ, मैं हीन हूँ क्या तुम्हें सम्बोधित करूँ? तात (ऋषभ) के बाद भरत राजा है और तुम भुवनमें एकमात्र प्रधान युवराज हो। अतः चित्तभेद मान और अहंकार छोड़कर जीवको एकमेक मानकर, तरुणीजनोंके कण्ठोंको कण्टकित करनेवाले, शत्रुरूपी गजोंके दाँतोंको परिभ्रष्ट करनेवाले, प्रदीर्घ धनुषोंको आकर्षित करनेवाले जिन बाहुओंसे (जिस भरतका) आलिंगन किया है उन्हीं बाहुओंसे उसके साथ युद्धमें नहीं लड़ा जाना चाहिए, गुरुजनमें अविनयसे लज्जित होना चाहिए।

घत्ता—जो राजा, कुलस्वामी, महाबल, सुजन और गुणी व्यक्तिको नमस्कार नहीं करते उनके घरमें दरिद्रता बढ़ती है और उनका यमपुरीके लिए प्रस्थान होता है ॥१६॥

१७

जो परम चरमशरीरी कुलकर है, पहला राजा है, जिसने जिनके वंशको प्रकाशित किया है, और कमलनयनी राजलक्ष्मीसे भूषित किया है। जिसका चक्र शत्रुचक्रको नष्ट कर देता है, जिसका दण्ड शत्रुदण्डको रोक देता है, जिसका मन्त्री आगेकी बात देख लेता है, जिसका तुरग हृदयके साथ दौड़ता है, जिसका कागणी मणि सूर्य और चन्द्रमाकी भी अपेक्षा नहीं रखता, जिसका स्थपति चाहे तो त्रिभुवनकी रचना कर सकता है। विरुद्ध होनेपर वह छत्र छा लेता है, और शत्रुओंके तलवारसे प्राण निकाल लेता है। चमू (सेना) को पकड़ते हुए उसका वर्म अत्यन्त शोभित होता है, जिसने मागध और वरतनुको जीत लिया है और विजयार्ध पर्वत निवासी देवको भी जीत लिया है। जिसने तिमिस्राके किवाड़ोंको विघटित कर दिया और सिन्धु देवीका अभिमान चूर-चूर कर दिया। हिमवन्त कुमारको आज्ञा (अधीनता) देकर फिर वह कैलास पर्वतके तटपर आया। वहाँ उसने अपना नाम लिखा, जिसे छायाके छलसे चन्द्रमाने ग्रहण कर लिया, वही नाम चन्द्रमामें दिखाई देता है वह कलंक नहीं है, राजा भरतके नामसे अंकित होकर चन्द्रमा सशंकित परिभ्रमण करता है। मेघकुलोंको बरसानेवाले नागकुलों और अमर्षसे भरे हुए म्लेच्छकुलोंको जिसने जीत लिया है, और मानो जिसने हिमशिखरके मुकुटवाले गंगाकूटको भी भय उत्पन्न कर दिया है।

घत्ता—ढुक्की मंदाइणि कलसकर लोएं[५] दीसइ केही ॥
थिय ण्हाणकरणमणणिवणियडि मज्जणवालिणि जेही ॥१७॥

१८

आरणालं—जस्सायासगामिणो खयरसामिणो विहियंहियय[१]सल्ला ।
णमिविणमीसणामया णिरह णिम्मया जायया वसिल्ला ॥१॥
पुणु वेयड्ढहु कुलिसें ताडिउ पुव्वेकवाडु[२] जेण उग्घाडिउ ।
णट्टमालि साहिउ मालायरु पयजुइ पाडिउ णं पायडणरु ।
असमु वइरु किं तेण समाणउं जं[३] माणुसु रिसउ उत्ताणउं ।
पिंछकमंडलु[४]मंडियहत्थहु रोसु जणइ तं मुणिवरसत्थहु ।
चक्कवट्टि गुणमणिरयणायरु आउ जाहुं अवलोयहि भायरु ।
मा पज्जलउ तासु कोवाणलु मा णिड्डहउ[५] तुहारउ भुयबलु ।
हा मा दुरयरएहिं विहिज्जउ[६] पोयणपुरपायारु दलिज्जउ ।
मा उच्छलउ छइयदिसमेरउ हरिखुर[७]खयखोणीधूलीरउ ।
मा धावंतु महंत महारह मा पिसुणहं पूरंतु मणोरह ।
काउ कंदलावलिहि म विरसउ पलयकालु सोणिउं मा करिसउ[८] ।
देहि कप्पु णिइप्पु[९] हवेप्पिणु पेक्खु भरहु भावें पणवेप्पिणु ।
तं णिसुणेप्पिणु बाहुबलीसें पडिजंपिउं भूभंगविहीसें ।
घत्ता—कंदप्पु अदप्पु ण होमि हउं दूययकरउ णिवारिउ ॥
संकप्पें सो महु केरएण पहु उज्झिहइ णिरारिउ ॥१८॥

१९

आरणालं—जं[१] दिण्णं महेसिणा दुरियणासिणा णयरदेसमेत्तं ।
तं मेंह[२] लिहियसासणं कुलविहूसणं हरइ को पहुत्तं ॥१॥
केसरिकेसरु वरसइ[३]थणयलु सुहडहु सरणु मज्झु धरणीयलु ।
जो हत्थेण छिवइ सो केहउ किं कयंतु कालाणलु जेहउ ।
हउं सो पणवमि[४] को सो भण्णइ महिखंडेण कवण परमुण्णइ ।
किं जम्मणि देवहिं अहिसिंचिउ किं मंदरगिरिसिहरि समच्चिउ ।
किं तहु अग्गइ सुरवइ णच्चिउ सिरिसइरिणियइ[५] किं रोमंचिउ ।
चक्कु दंडु तं तासु जि सारउ महु पुणु णं कुंभारहु केरउ ।

---

५. M records a *p* राएं for लोएं ।

१८. १. MB विहय° । २. M पुव्विकवाडु । ३. MP णं माणसु; B माणुसु । ४. MBP °कमंडल° । ५. MBP णिद्दलउ । ६. B वहिज्जउ । ७. BP हयखुर । ८. MBP वरिसउ । ९. MBP णियदप्पु हरेप्पिणु ।

१९. १. MBP दिण्णउं । २. B omits तं मह लिहियसासणं । ३. M वरहइ, but records a *b* वरसइ° । ४. MBP पणवउं । ५. MBP °सइरिणियइ सो रोमंचिउ । ६. BP add after this : हरिगद्दहकिंकरछेलयणिह ।

घत्ता—कलश हाथमें लेकर गंगानदी वहाँ पहुँची, लोगोंको वह ऐसी दिखाई दी जैसे स्नान करनेकी इच्छा रखनेवाले राजाके निकट स्नान करानेवाली दासी खड़ी हो ॥१७॥

१८

आकाशगामी नमि-विनमि नामके विद्याधर स्वामी हृदयमें शल्य धारण कर, बिना किसीके मदके जिसके वशीभूत हो गये, जिसने फिर विजयार्ध पर्वतको वज्रसे आहत किया, जिसने पूर्व-किवाड़का उद्घाटन किया, जिसने नृत्यमालको सिद्ध किया और मालाकरको एक प्राकृत जनकी तरह अपने दोनों पैरोंमें गिरनेके लिए बाध्य किया। उसके साथ असम (विषम) वैर क्या, जो ऊर्ध्वमुख मनुष्यको रिक्त करता है वह पिच्छी और कमण्डलसे मण्डित हाथवाले मनुवर-समूहको भी क्रोध उत्पन्न कर देता है। वह गुणरूपी मणियोंका समुद्र चक्रवर्ती है। आओ भाईको चलकर देखें। उसके क्रोधकी आग न भड़के और तुम्हारा बाहुबल न जले, हा तुम हाथीके दाँतोंसे विभक्त न हो, पोदनपुरके परकोटे नष्ट न हों, दिशाकी मर्यादाओंको आच्छादित करनेवाला, घोड़ोंके खुरोंसे क्षत धरतीका धूल-समूह न उछले, महान् महारथ न दौड़े, दुष्टोंके मनोरथ पूरे न हों। मनुष्योंके कपालके ऊपर कौआ न बोले। प्रलयकाल रक्तको न खींचे? इसलिए दर्पहीन होकर कर दो, और भावपूर्वक प्रणाम कर भरतसे मिलो। बाहुबलीश्वरने यह सुनकर भौंहोंके संकोचसे भयंकर वह बोला—

घत्ता—मैं कन्दर्प (कामदेव) हूँ, अदर्प (दर्पहीन) नहीं हो सकता। मैंने दूत समझकर मना किया। मेरे संकल्पसे वह राजा निश्चित रूपसे दग्ध होगा ॥१८॥

१९

पापोंको नाश करनेवाले महर्षि ऋषभने जो सीमित नगर देश दिये हैं वह मेरे कुलविभूषित लिखित शासन है, उस प्रभुत्वका कौन अपहरण करता है? सिंहकी अयाल, उत्तम सतीके स्तन-तल, सुभटकी शरण और मेरे धरणीतलको जो अपने हाथसे छूता है, मैं उसके लिए यम और कालानलके समान हूँ? मैं उसे प्रणाम करूँ, वह कौन है? धरतीखण्डसे कौन-सी परम उन्नति कही जाती है। क्या जन्मके समय, देवोंने उसका अभिषेक किया? क्या सुमेरु पर्वतपर उसकी पूजा की गयी? क्या उसके सामने सुरपति नाचा। वह स्वेच्छाचारिणी लक्ष्मीसे इतना रोमांचित क्यों है? वह चक्रदण्ड उसीके लिए श्रेष्ठ हो सकता है, मेरे लिए तो वह कुम्हारका चक्का है। हाथी-

करिसूयररहवरडिंभयरेंहं णर णिहणमि रणि जे वि महारह ।
भरहु हरइँ[7] किं मज्झु मुयाभरु[8] तइँ[9] चुक्कइ जइ [10]सुयरइ जिणवरु ।
घत्ता—तहु मेइणि महु पोयणणयरु आइजिणिंदें दिण्णउं ॥
अब्भिडउ पडउ असि सिहिसिहहिं जइ ण सरइ [11]पडिपवण्णउं ॥१९॥

२०

आरणालं—ता दूएण जंपियं किं सुविप्पियं भणसि भो कुमारा ।
बाणा भरहपेसिया पिंछभूसिया होंति दुण्णिवारा ॥१॥
पत्थरेण किं मेरु दलिज्जइ किं खरेण मायंगु खलिज्जइ ।
[1]खज्जोएं रवि णित्तेइज्जइ किं घुट्टेण जलहि सोसिं[2]ज्जइ ।
गोप्पएण किं णहु माणि[3]ज्जइ अण्णाणें किं जिणु जाणिज्जइ ।
वायसेण किं गरुडु णिरुज्झइ णवकमलेण कुलिसु किं विज्झइ ।
करिणा किं मयारि मारिज्जइ किं वसहेण वग्घु दारिज्जइ ।
किं हंसें ससंकु धवलिज्जइ किं मणुएण कालु कवलिज्जइ ।
डेंडुहेणं[4] किं सप्पु डसिज्जइ किं कम्मेण सिद्धु वसि किज्जइ ।
किं णीसासें लोउ णिहिप्पइ किं पइं भरहे[5]णराहिउ जिप्पइ ।
घत्ता—हो होउ पहुप्पइं[6] जंपिएण राउ तुहुप्परि वग्गइ ॥
करवालहिं सूलहिं सब्बलहिं परइ रणंगणि[7] लग्गइ ॥२०॥

२१

आरणालं—ता भणियं सहेउणा मयरकेउणा एत्थ कहिं मि जाया ।
जे परदविणहारिणो कलहकारिणो ते जयम्मि राया ॥१॥
वुड्ढउ जंबुउ सिवें[1] सहिज्जइ पण णाइं महु हासउ दिज्जइ ।
जो बलवंतु चोरु सो राणउ णिब्बलु[2] पुणु किज्जइ णिप्राणउ[3] ।
हिप्पइ मृगहु[4] मृगेण जि आमिसु हिप्पइ मणुयहु मणुएण जि वसु ।
रक्खाकंखइ जूहुं[5] रएप्पिणु एक्कहु केरी आण लएप्पिणु ।
ते णिवसंति तिलोइं[6]गविट्ठउ सीहहु केरउ वंदुं[7] ण दिट्ठउ ।
माणभंगि वरं[8] मरणु ण जीविउ एहउ दूय सुट्ठु मइं भाविउ[9] ।
आवउ [10]भाउ घाउ तहु दंसमि संझाराउ व खणि विद्धंसमि ।

---

७. MBPT भरइ । ८. M भुयातरु; T भुयाहरु बाहुसामर्थ्यम् । ९. MBP ता । १०. M सुमरइ । ११. MBP पडिवण्णउं ।

२०. १. MBPK कि खज्जोएं । २. P सोखिज्जइ । ३. P मण्णिज्जइ । ४. MBP डिंडुहेण । ५. MBP भरहु । ६. MBP पहुच्चइ । ७. K रणंगणु मग्गइ ।

२१. १. MBP सिउ । २. M णिब्बल । ३. MBP णिप्पाणउ । ४. MBP मिगहु मिगेण । ५. MBP वूहु । ६. B तिलोउ° । ७. MBP विंदु । ८. MBP वरि । ९. M भामिउ । १०. MBPK राउ; G भाउ but writes above it राउ in second hand.

रूपी सुअरों और रथवररूपी छकड़ोंके जो भी महारथी मनुष्य हैं, उनको मैं मारूँगा ? भरत मेरे भुजाभारका क्या अपहरण करेगा ? वह तभी बच सकता है कि जब जिनवरकी याद करता है ?

घत्ता—उसकी धरती और मेरा पोदनपुर नगर, दोनों आदिजिनेन्द्रने दिये। यदि वह स्वीकार किये हुएको नहीं मानता, तो वह तलवारसे लड़ता हुआ, अग्निकी ज्वालामें पड़ेगा ? ॥१९॥

२०

तब दूतने कहा, "हे कुमार, यह अप्रिय क्या कहते हो ? भरतके द्वारा प्रेषित पुंखविभूषित तीर दुर्निवार होंगे ? पत्थरसे क्या सुमेरु पर्वत दला जा सकता है ? क्या गधेसे हाथी स्खलित किया जा सकता है ? जुगनूके द्वारा क्या सूर्य निस्तेज किया जा सकता है ? क्या घूँटसे समुद्र सोखा जा सकता है, गोपदसे क्या आकाश मापा जा सकता है ? अज्ञानसे क्या जिनको जाना जा सकता है, कौएके द्वारा क्या गरुड़ रोका जा सकता है ? नवकमलसे क्या वज्रको वेधा जा सकता है ? हाथीके द्वारा क्या सिंह मारा जा सकता है ? क्या बैलके द्वारा बाघ विदीर्ण किया जा सकता है ? क्या मनुष्यके द्वारा काल कवलित किया जा सकता है ? मेंढकके द्वारा क्या साँप डसा जा सकता है, क्या कर्मके द्वारा सिद्धको वशमें किया जा सकता है ? क्या विश्वाससे लोकको आहत किया जा सकता है ? क्या तुम्हारे द्वारा भरत नराधिप जीता जा सकता है।

घत्ता—हो-हो, बकनेसे क्या समर्थ हुआ जा सकता है ? राजा तुम्हारे ऊपर आक्रमण करता है, करवालों शूलों और सब्बलोंके द्वारा सबेरे तुमसे खांगणमें मिलेगा ॥२०॥

२१

तब कामदेव बाहुबलि युक्तिके साथ कहता है—"चाहे यहाँ, या और कहीं विश्वमें जो कलह करनेवाले और दूसरोंका धन अपहरण करनेवाले हैं, वे ही राजा हुए हैं ? बूढ़ा सियार शिवकी बात करता है, जैसे यह मुझे हँसी प्रदान करता है, जो बलवान् चोर है, वह राजा है, और जो निर्बल हैं वे निष्प्राण कर दिये जाते हैं। पशुके द्वारा पशुका मांस अपहृत किया जाता है और मनुष्यके द्वारा मनुष्यके धनका अपहरण किया जाता है। रक्षाकी आकांक्षासे व्यूह रचकर, एककी आज्ञा लेकर वे राजा निवास करते हैं। लेकिन यह बात त्रिलोकमें गवेषित है कि सिंहका कोई समूह दिखाई नहीं देता। मानभंग होनेपर मर जाना अच्छा है, जीना नहीं।" हे दूत, यह बात मुझे बहुत अच्छी लगती है। भाई आये, मैं उसे आघात दिखाऊँगा और सन्ध्यारागकी तरह

सिहिसिंहाहं[11] देविंदु वि ण सहइ महु मणसियहु विसिह[12] को विसहइ ।
एक्कु जि परउव्वारु णरिंदहु जइ पइसरइ सरणु[13] जिणयंदहु ।

घत्ता—संघट्टमि लुट्टमि गयघडहु दलमि सुहड रणमग्गइ ॥
पहु आवउ दावउ बाहुबलु महु बाहुबलिहि अग्गइ ॥२१॥

२२

आरणालं—ता दूउ[1] विणिग्गओ णियपुरं गओ तम्मि णिवणिवासं ।
सो विण्णवइ सायरं सारसायरं पणविउं[2] महीसं ॥१॥

विसमु देव बाहुबलि णरेसरु णेहु ण संधइ संधइ गुणि सरु ।
कज्जु ण बंधइ बंधइ परियरु संधि ण इच्छइ इच्छइ संगरु ।
पई णउ पेच्छइ पेच्छइ सुयबलु आण ण पालइ पालइ णियछलु ।
माणु ण छंडइ छंडइ भयरसु दयवु[3] ण चिंतइ चिंतइ पोरिसु ।
संति ण मण्णइ मण्णइ[4] कुलकलि पुहइ ण देइ देइ बाणावलि ।
तुज्झु ण णवइ णवइ मुणितंडउ अंगु ण कड्ढइ कड्ढइ खंडउ ।
देव ण देइ भाइ तुह पोयणु पर जाणमि देसइ रणभोयणु ।
ढोयइ रयणइं णउ करिरयणइं ढोएसइ ध्रुवु[5] णरउररयणइं ।

घत्ता—संताणु कुलक्कमु गुरुकहिउ खत्तधम्मु णउ बुज्झइ ॥
मज्जायविवज्जिउ सामरिसु अवसें दाइउ जुज्झइ ॥२२॥

२३

आरणालं—ता परिल्हसिउ दिणमणी णं सिरोमणी गयणकामिणीए ।
अत्थं पडि णिवेइओ रुइविराइओ णाइ जामिणीए ॥१॥

मावेसहि भणेवि अइरत्तउ दिवसहु दिण्णु दीवु[1] सिहितत्तउ ।
णं चउपहरहिं वणु अहिकंतिहि जायउ लोहियद्दु णहदंतिहि ।
णाइं पवालकुंभु[2] दिसणारिइ धरिवि मुक्कु[3] दिक्करिगणियारिइ ।
पउलिवि तलिवि[4] दलिवि दलवट्टिवि जीवरासि जगभायणि घट्टिवि ।
दंडरहियजणलोहियलित्ती कालें[5] विव दिसिवहिं[6] घित्ती ।
उग्घाडिवि ससहरमुह णिद्धहि संमुहियहि तियसासामुद्दहि ।
णं सिंदूरकरंडु झसच्छिइ दाविउ लवणजलहिजललच्छिइ ।
मयरंदुल्लोलु व जगकमलहु णिउ वाएण वरुणमुहकमलहु ।
गोमिणीइ हरिरइरसभरिउं[7] पोमरायवत्तु[8] व वीसरिउं[9] ।
अत्थमियउ जाइवि अवरासइ रत्तु मित्तु णं गिलियउ वेसइ ।

११. M सिहसिहहिं देविंदु ण वि ण सहइ । १२. MT विसह । १३. MBPK जिणइंदहु ।

२२. १. MBP दूवउ । २. MB पणवउ; P पणविओ । ३. MBP दइउ । ४. BPP मग्गइ मग्गइ । ५. MBP धुउ ।

२३. १. MBP दीउ । २. MBP कुंभ । ३. MBP मुक्क । ४. MBP मलिवि । ५. B कालि दाविय । ६. MB दिसवहि; P दिवसहि । ७. MBP °भरियउ । ८. MBP °पत्तु । ९. MBP वीसरियउ ।

एक क्षणमें उसे नष्ट कर दूँगा ? आगकी ज्वालाओंको देवेन्द्र भी नहीं सह सकता, मुझ कामदेवके बाणको कौन सहता है ? राजाका एक ही परोपकार हो सकता है कि यदि वह जिनेन्द्रकी शरण में चला जाये।

घत्ता—संघर्ष करूँगा, गजघटाको लोटपोट करूँगा और रणमार्गमें सुभटोंको दलन करूँगा। राजा आये और मुझ बाहुबलिके आगे बाहुबल दिखाये ? ॥२१॥

२२

तब दूत अपने नगरके लिए गया और वहाँ राजाके निवासपर लक्ष्मी और पृथ्वीके आकर राजासे सादर निवेदन करता है—"हे देव, बाहुबलि नरेश्वर विषम है, वह स्नेह नहीं बांधता, गुणपर तोर बांधता है (संधान करता है) वह कार्य नहीं बांधता, अपना परिकर बांधता है, वह सन्धि नहीं चाहता, युद्ध चाहता है। वह तुम्हें नहीं देखता, अपना भुजबल देखता है, आज्ञाका पालन नहीं करता, अपने कौशलका पालन करता है, मान नहीं छोड़ता, भयरस छोड़ता है, देवकी चिन्ता नहीं करता, वह अपने पौरुषकी चिन्ता करता है, वह शान्ति नहीं चाहता, वह गृहकलह चाहता है, वह धरती नहीं देता, बाणावलि देता है, वह तुम्हें प्रणाम नहीं करता, मुनिसमूहको प्रणाम करता है, वह अंग नहीं निकालता, अपनी तलवार निकालता है, हे देव, भाई तुम्हें पोदनपुर नगर नहीं देता, परन्तु मैं जानता हूँ कि वह रण भोजन देगा, वह रत्नों और गजरत्नोंको उपहारमें नहीं देता वह मनुष्य-वक्षोंके रत्नोंको लेगा।

घत्ता—वह परम्परा कुलक्रम गुरु द्वारा कथित क्षात्रधर्म नहीं समझता, मर्यादा विहीन सामर्थ वह शत्रु अवश्य युद्ध करेगा ॥२२॥

२३

इतनेमें दिनमणि (सूर्य) खिसक गया, मानो गगनरूपी कामिनीका चूड़ामणि हो, जैसे यामिनीने शान्तिसे शोभित उसे अस्ताचलके प्रति निवेदित किया हो। 'प्रवेश मत करो' यह कहनेके लिए जैसे उसने दिवसके लिए आगसे सन्तप्त दीप दिया हो, मानो चार प्रहर तक अभिक्रान्त करते हुए नभरूपी गजसे वन लोहूसे लाल हो उठा। जैसे दिशारूपी नारीने प्रवालोंका घड़ा धारण कर दिग्गजकी हस्तिनीके ऊपर फेंक दिया हो, मानो विश्वरूपी भाजनमें फैलकर तलकर दलकर चूरचूरकर और घोंटकर, कालने, दण्डरहित जनरक्तसे लिप्त जीवराशि दिशापथमें फेंक दी हो, मानो सामने आयी, स्निग्ध पूर्वदिशारूपी मुग्धाका चन्द्रमुख उघाड़कर, मछलियोंकी आँखोंवाली लवणसमुद्रकी जलरूपी लक्ष्मीने उसे सिन्दूरका पिटारा दिया हो, मानो पवनने वरुणके मुख कमल, और विश्वरूपी कमलके चंचल पराग उड़ा दिया हो अथवा गोपिनीके द्वारा कृष्णकी क्रीड़ा रससे भरा हुआ पद्मरागपात्र भुला दिया गया हो, पश्चिम दिशामें जाकर लाल सूर्य अस्त हो गया, जैसे वेश्याने उसे निगल लिया हो।

घत्ता—पुणु दीसइ संझारायएण भुवणु असेसु वि रत्तउ ॥
सहुं [१०]गिरिदरिसरिणंदणवणहिं लक्खारसि णं घित्तउ ॥२३॥

२४

आरणालं—आसोसियखमारसो खवियतावसो तरुणिदंसणाओ ।
णं णरमणि ण माइओ दिसहिं धाइओ सहइ मयणराओ ॥१॥

संझारायजलणु जो भमियउ सो तमजलकल्लोलहिं समियउ ।
संझारायघुसिणु जं[१] संकिउ तं तमोहमयणाहें ढंकिउ ।
संझारायविडवि जो फुल्लिउ सो तमतंबेरमवइपेल्लिउ ।
चंदमइंदें तमकरि भग्गउ किं जाणहुं सो तासु जि लग्गउ ।
मयणिद्देण दीसइ सुहयारउ तप्पवेसु वइरिहिं[२] भल्लारउ ।
विसइ गवक्खहिं थणयलि घोलइ वहुहारु व ससितेउ[३] णिहालइ ।
[४]रंधायारु[५] थियउ अंधारइ दुद्धसंक पयणइ मज्जारइ ।
रइपासेयबिंदु तेणुज्जलु दिट्ठु भुयंगहि णं मुत्ताहलु ।
दिट्ठउ कत्थइ दीहायारउ घरि पइसंतउ किरणुक्केरउ ।
मोरें पंडरु सप्पु वियप्पिवि मुद्धें कह व ण गहिउ झडप्पिवि ।

घत्ता—गंगासरि हंसपक्खदलइं पिय[६]विरहिणिगंडयलइं ॥
जायइं ससियरपक्खालियइं धवलाइं जि णिरु धवलइं ॥२४॥

२५

आरणालं—मम्मणमणियजंपिरं[१] मयणकंपिरं पणयविणयवंतं ।
रइरसरहंसरंजियं पिययमा पियं रमइ णिसि रमंतं ॥१॥

केण वि घणथणि णिहियउ करयलु कणयकलसि णावइ रत्तुप्पलु ।
काइ वि को वि [२]सुहउ आलिंगिउ [३]मंडमड्डुमुहचुंबणु मग्गिउ ।
णीहरंति पडिवहुरोसुब्भवि केण वि का वि धरिय करपल्लवि ।
पणयकलहि रमणीचरणंगउ को वि सकुंकुमेण पाएं हउ ।
सोहइ विडु अहरा रिउ संकिउ णं मयरद्धयमुद्दइ अंकिउ ।
हारें बद्ध का वि सयणालइ ताडिय णाहें चंपयमालइ ।
बिंबाहररसघयसंसित्तउ [४]काहं वि मयणहुयासु पलित्तउ ।
उल्हाविउ रइसलिलपवाहें काइ वि किलिकिंचिउ उच्छाहें ।
का वि रया[५]वसाणसमरीणी चंदणकद्दमवाविहि लीणी ।
को वि का वि सवहहिं रंजइ गुणि अक्कसमाण मज्झु परपणइणि ।

---

१०. MBP गिरिसरसरि° ।

२४. १. MBP जं । २. P वेरिहि । ३. M सियतेउ । ४. B omits this foot । ५. M रंधायार ।
६. M पियविरहिणं ।

२५. १. B रहसजंपियं । २. MBPK सुहडु । ३. MBP मंडमंड । ४. MBP कासु । ५. P °रयावसाणि ।

घत्ता—पुनः अशेष भुवन सन्ध्यारागसे आरक्त दिखाई देता है, मानो पहाड़ों, घाटियों, नदियों और नन्दनवनोंके साथ वह लाक्षारसमें डुबा दिया गया हो ॥२३॥

२४

क्षमारूपी रसको सोख लेनेवाला, तापसोंका नाशक, युवतियोंको पीड़ित करनेवाला मदनराज चूँकि मनुष्यमनमें नहीं समाता हुआ, मानो दिशाओंमें दौड़ रहा है। सन्ध्यारागरूपी जो आग घूम रही थी, उसे अन्धकाररूपी जलतरंगोंके द्वारा शान्त कर दिया गया, जिस सन्ध्यारागरूपी केशरकी आशंका की गयी थी, उसे तमःसमूहरूपी सिंहने ढक दिया। सन्ध्याराग-रूपी जो वृक्ष खिला हुआ था उसे अन्धकाररूपी गजराजने उखाड़ डाला, चन्द्रमारूपी मृगेन्द्रने अन्धकाररूपी गजको भगा दिया। क्या जाने वह उसीको लग गया जो मृगलांछनके रूपमें शुभ करनेवाला दिखाई देता है। तल्पवेशमें जो शत्रुओंको अच्छा लगता है। गवाक्षोंसे प्रवेश करता है, स्तनतलपर गिरता है, शशिका तेज अनेक हारोंके समान दिखाई देता है, अन्धेरेमें रन्ध्राकार दिखाई देता है, और मार्जारोंके लिए दूधकी आशंका उत्पन्न करता है, उससे (चन्द्रमा) रतिका प्रस्वेदजल उज्ज्वल दिखाई देता है, जो मानो सर्पिणीके मोतीके समान जान पड़ता है। कहीं पर घरमें दीर्घ आकारमें प्रवेश करता हुआ किरण-समूह दीख पड़ता है, मयूरने उसे सफेद साँप समझकर किसी प्रकार झपटकर खाया भर नहीं।

घत्ता—गंगा नदी, हंसोंके पक्षदल और प्रियसे विरहिताओंके गण्डतल एक तो धवल थे ही, परन्तु चन्द्रमाकी किरणोंसे प्रक्षालित होकर वे और भी धवल हो उठे ॥२४॥

२५

अपने मनमें कामदेवका जाप करते हुए कामसे काँपते हुए प्रणयसे विनीत रतिरस और हर्षसे रंजित, रमणशील प्रियसे प्रियतमा रातमें रमण करती है। किसीने सघन स्तनपर अपना करतल रख दिया, मानो स्वर्णकलशपर लाल कमल हो। किसीके द्वारा कोई सुभग (प्रिय) आलिंगित किया गया, और बलपूर्वक मुख चुम्बन माँगा गया। प्रतिवधू (सपत्नी) के कारण क्रोध उत्पन्न होनेके कारण बाहर जाती हुई किसीको किसीने करपल्लवमें पकड़ लिया। प्रणयकलहमें रमणी चरणमें पड़ा हुआ कोई केशर सहित पैरसे आहत किया गया। थोड़ी देरके लिए शत्रुके रूप-में शंकित किया गया कोई विट शोभित है, मानो वह कामदेवकी मुद्रासे अंकित हो। शयनतलमें हारसे बँधी हुई कोई प्रिया, स्वामी द्वारा चम्पकमालासे ताड़ित की गयी। बिम्बाधरोंके रसरूपी घीसे सींची गयी किन्हींकी कामाग्नि भड़क उठी, जिसे रतिरूपी जलके प्रवाहसे शान्त किया गया। किसीने उत्साहसे किलकिंचित् किया। कोई रतिके अवसानमें श्रमसे खिन्न चन्दनकी कीचड़की बावड़ीमें लीन हो गयी। कोई गुणी किसीको शपथोंसे समझाता है कि दूसरीकी प्रणयिनी मेरे लिए

जाम पहु वेसाणरु अच्छइ तावण्णहि को वयणु णियच्छइ ।
जणणि महेली मणि अवहारमि गुरुपय छिवमि ण पइं अवहेरमि ।
घत्ता—इय कवडकूडमउजंपियहिं दाणेण वं[6] वसिहूयउ ॥
णारीयणु रमिउ विडाहिवहिं वेढिवि णिरुवमरूवउ ॥२५॥

२६

आरणालं—दीहा वि रयमिहुणहं चक्कवियणहं पहियवंदयाणं ।
मउहा हवइ रयणिया चंदवयणिया रयविडिंदयाणं ॥१॥
ता उग्गमिउ सूरु पुव्वासइ रइरंगु[1] व दरिसिउ कामासइ ।
किंसुयकुसुमपुंजु णं सोहिउ णं जगभवणि पईवु[2] पबोहिउ ।
चारु सूरु[3] वंसहु णं कंदउ लोहिउ ससि रोसेण दिणिंदउ[4] ।
मज्झु परोक्खइ आवइ पाविय कमलिणि वेल्लि भणिवि संताविय ।
एम भणंतु व गयणि व लग्गउ णं रयणियरहु पच्छइ लग्गउ ।
तंबु[5] करोहउ रुहिरु[6] णिसाडें चिंतिउ एंतु सछिद्दकवाडें ।
कुंकुमलोलु व मण्णिउं घरिणिइ रत्तु दुवंकुरु कंदरहरिणिइ ।
मिलियउ सोहइ विद्दुममहियलि मिलियउ सोहइ कंकेल्लीदलि[7] ।
मिलियउ सोहइ रत्तइ सयदलि मिलियउ सोहइ रमणीकरयलि ।
मिलियउ सोहइ जण अहरुल्लइ महिहरतीर धाउ जलरेल्लइ ।
राउ मुयंतु जि गुणसंजुत्तउ अरहंतु व रवि उण्णइं पत्तउ ।
घत्ता—हयतिमिरें भरहपयासएण रविणा किं ण वि दाविउ[8] ॥
सिरिरामासेवियसच्छसरपुप्फयंतु वियसाविउ[9] ॥२६॥

इय महापुराणे तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारे महाकइपुप्फयंतविरइए महाभव्वभरहाणुमण्णिए महाकव्वे बाहुबलिदूयसंपेसणं णाम सोलहमो परिच्छेओ सम्मत्तो ॥ १६ ॥
॥ संधि ॥ १६ ॥

६. MBP वि ।
२६. १. MBP रइ° । २. MBP पईवउ बोहिउ । ३. MBP सूर° । ४. MBP दिणंदउं । ५. MB तंब । ६. M रुहिर । ७. MBP कंकेल्लिहि दलि । ८. MBP दावियउ । ९. MB वियसावियउ ।

माताके समान है। जब तक यह वेश्यावर है, तबतक अन्यका मुख कौन देखता है। अन्य महिलाको मैं मनमें माताके रूपमें धारण करता हूँ, गुरुके चरणको छूता हूँ कि तुम्हारी उपेक्षा नहीं करूँगा।"

घत्ता—इस प्रकार विटराजों द्वारा कपट कूट और कोमल उक्तियों तथा दानसे वशीभूत कर अनुपमरूपवाला नारीजनका आलिंगनकर रमण किया गया ॥२५॥

२६

रमण करते हुए जोड़ों, चक्रवाक पक्षियों और पथिकसमूह और रत विटराजके लिए चन्द्रमुखी लम्बी भी रात छोटी लगी। तब पूर्वदिशामें सूरज उग आया, जो कामकी आशासे रतिरंग (कामदेव) के समान दिखाई दिया, मानो पलाशपुष्पोंका समूह शोभित हो, मानो विश्वरूपी भवनमें प्रदीप प्रबोधित कर दिया गया हो, सुन्दर सूर्य मानो वंशका अंकुर हो। मानो दिनेश चन्द्रमाके क्रोधसे लाल हो उठा हो कि यह पापी (चन्द्रमा) मेरे परोक्षमें आता है और कमलिनोको लता कहकर (समझकर) सताता है। ऐसा कहकर जैसे वह आकाशसे लग जाता है मानो निशाचरोंके पीछे लग गया हो। निशाचरने लाल किरण-समूहको रुधिर समझा, लेकिन गृहिणीने छेदवाले किवाड़ोंसे आते हुए उसे (किरण-समूह) केशरपराग माना, गुफामें रहनेवाली हरिणीने लाल दूर्वांकुर समझा। लाल कमलमें मिला हुआ वह शोभित है, अशोकके पत्तोंमें मिला हुआ शोभित है। जनोंके अधरोंमें मिला हुआ शोभित है, वह राग (लाल रंग) महीधरोंके तट और जलकी लहरियोंमें दौड़ा। इस प्रकार 'राग' (रागभाव और लालिमा) छोड़ते हुए और गुणोंसे संयुक्त अरहन्तके समान सूर्य भी उन्नतिको प्राप्त हुआ।

घत्ता—भरतके प्रसादसे अन्धकारको नष्ट करनेवाले सूर्यने क्या नहीं दिखाया। लक्ष्मीरूपी रमासे सेवित स्वच्छ सरोवर और पुष्पोंको विकसित कर दिया ॥२६॥

इस प्रकार त्रेसठ महापुरुषोंके गुण और अलंकारोंवाले इस महापुराणमें महाकवि पुष्पदन्त द्वारा विरचित और महाभव्य भरत द्वारा अनुमत महाकाव्य का बाहुबलि दूत संप्रेषणवाला सोलहवाँ परिच्छेद समाप्त हुआ ॥१६॥

संधि १७

[1]दूवागमि रविउग्गमि चलकरवाललावियजीहहो ॥
जाइवि णंदाणंदणहो भिडिउ भरहु रणि सीहु व सीहहो ॥ध्रुवकं॥

१

ता समरचित्तु विसरिसु विरुद्धु   [2]विप्फुरियदसणडसियाहरुद्धु ।
कढिणयरपाणिपीडियकिवाणु   [3]उद्धुयमीसियहयभउंहकोणु ।
तिवलीतरंगभंगुरियभालु   णं सीहु कुडिलदाढाकरालु ।
अरुणच्छिछोहरंजियदियंतु   णं पलयजलणु धगधगधगंतु ।
[4]दूययवयणहिं वड्ढियकसाउ   जंपइ सरोसु रायाहिराउ ।
[5]सुयरेप्पिणु तायहु तणउं चारु   जइ [6]कहं व ण मारमि रणि कुमारु ।
तो धरिवि [7]णिरुंभैवि करमि तेम   अच्छइ [8]करि जिह णियलत्थु जेम ।
महु कुद्धहु रणि देव वि अदेव   सो ण करइ किं महु तणिय सेव ।
इय गज्जिवि असितासियसुरिंदु   जा उट्ठिउ भरहु महाणरिंदु ।
[9]ता मउडबद्ध मंडलिय [10]चलय   केऊरसकंठाहरणघुलिय ।
महिवडियकणयकंचीकलाव   अइभीसण थिय णं कालभाव ।
एक्केक पहाण [11]गिरिंदधीर   सहुं राएं लहु संणद्ध [12]वीर ।
घत्ता—[13]संणज्झंतहु तहु भडयणहु का वि णारि पभणइ जइ जाणहि ॥
किं पि महारउ [14]उवयरिउ तो पिययम सुररमणि म माणहि ॥१॥

२

वहु का वि भणइ हत्थागएण   किं कीरइ मणिकंकणसएण ।
अरिकरिदंतुब्भउ एक्कु जइ वि   वलउल्लउ सोहइ हत्थि तइ वि ।
तं धवलउ तुह पोरिसजसेण   आणेज्जसु पिय महु रइवसेण ।

MBP give, at the commencement of this Samdhi, the following stanza:–

वलिभङ्गकम्पिततनु भरतयशः सकलपाण्डुरितकेशम् ।
अत्यन्तवृद्धगतमपि भुवनं बम्भ्रमति तच्चित्रम् ॥

M reads °तनुवरं and B reads कम्पितवरं for कम्पिततनु; MP read विभ्रमति for बम्भ्रमति। GK do not give it.

१. १. MBP दूयागमि रविउग्गमणे। २. MBP विप्फुरियडसणु डसिया°। ३. M records a *p* for this foot: धणुगुणे रोवि दिढवज्जबाणु। ४. MBP दूयहि वयणें। ५. MBP सुमरेप्पिणु। ६. P कह वि। ७. MB णिरुंभिवि; B णिरुंजिवि। ८. P करिवरु णियलत्थु। ९. MBP तो। १०. MBP चलिय। ११. MBP णरिंद। १२. B धीर। १३. MBP संणज्झंतहु भडयणहु। १४. K उवरिउ but gloss उपकृतम्।

सन्धि १७

दूतके आगमन और सूर्यका उदय होनेपर, जिसकी चंचल तलवाररूपी जीभ लपलपा रही है नन्दानन्दन (बाहुबलि) से भरत रणमें उसी प्रकार भिड़ गया, जिस प्रकार सिंहसे सिंह भिड़ जाता है।

१

तब युद्धके लिए कृतमन, अद्वितीय विरुद्ध, विस्फारित दाँतोंसे नीचेका ओठ चबाता हुआ, अपने कठोरतर हाथसे कृपाणको पीटता हुआ, उद्धत मिली हुई आहत भौंहोंके कोणवाला, त्रिबलि-तरंगसे भंगुरित भालवाला वह ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो कुटिल दाढ़ोंसे कराल (भयंकर) तथा अपनी लाल-लाल आँखोंकी आभासे दिगन्तको रंजित करनेवाला सिंह हो। मानो धकधक करती हुई प्रलयकी ज्वाला हो। दूतके शब्दोंसे जिसका क्रोध बढ़ गया है ऐसा वह राजाधिराज क्रोधसे कहता है—"पिताके सुन्दर वचनोंकी याद कर, यदि मैं किसी प्रकार कुमारको रणमें मारता नहीं हूँ, तो उसे पकड़कर और अवरुद्ध कर उसी प्रकार कर दूँगा जिस प्रकार बेड़ियोंसे जकड़ा हुआ हाथी रहता है। मेरे क्रुद्ध होनेपर देव और अदेव मेरी सेवा करते हैं, फिर वह मेरी सेवा क्यों नहीं करता?" इस प्रकार गरजकर, अपनी तलवारसे देवेन्द्रको त्रस्त करनेवाला महान् नरेन्द्र भरत उठा। तब मुकुटबद्ध तथा केयूर और कण्ठाभरणोंसे आन्दोलित माण्डलीक राजा चले। जिनके स्वर्णके करधनी-समूह धरतीपर गिर रहे हैं ऐसे अत्यन्त भीषण वे इस प्रकार स्थित हो गये जैसे कालस्वरूप ही हों। एकसे एक प्रमुख गिरीन्द्र की तरह धीर वे वीर शीघ्र राजाके साथ तैयार हो गये।

घत्ता—तैयार होते हुए उस योद्धाजनसे कोई स्त्री कहती है, "यदि तुम मेरा कोई उपकार मानते हो तो हे प्रियतम, सुर रमणीको मत पसन्द करना" ॥१॥

२

कोई वधू कहती है—"हाथमें आये हुए सैकड़ों मणिकंकणोंसे क्या, हाथीदाँतका बना एक कड़ा यदि हाथमें सोहता है, उस धवल कड़ेको हे प्रिय तुम अपने पौरुष और यश तथा मेरे प्रेमके

वहु का वि भणइ एहु वि सुतारु किं तुज्झ पसाएं णत्थि हारु ।
तुह करणिच्चिसुक्कत्तिएहिं [1]परकुंभिकुंभचुयमोत्तिएहिं ।
हउं कित्तिलया इव कुसुमियंगि [2]छेज्जमि दाविज्जं[3]सु एह भंगि ।
वहु का वि भणइ महिमाहरेण मइं विज्जहि किं चीरें[4] करेण ।
रिउचाम[5]रु पिय उवयारकारि आणेज्जसु रयसमसेयहारि ।
वहु का वि भणइ अहिमाणगाहि लग्गिज्जसु पिय पडिवक्खणाहिं ।
ऊ[6]णेण हुएण वि णत्थि लाहु उडुगणहु ण रूसइ तेण राहु ।
जिम मिहर[7]हु जिम हिमयरहु भिडइ [8]बलिणा हुएण जसु चंदि चडइ ।
वहु का वि भणइ णीसंकयाइं तावियपिसुणइं पावियजयाइं ।

घत्ता—कइणा क[9]व्वें मणोहरए जेण भडेण महाभडगोंदलि ॥
दिण्णइं पयइं सुइज्जुयइं तासु कित्ति भमइ[10] महिमंडलि ॥२॥

३

ता रायवयणेण रणतूरलक्खाइं किंकरक[1]राहयइं तासियविवक्खाइं ।
सुरदंतिखयजलयजलणिहिणिणायाइं थ[2]गिथगिगिदुगिदुगिगि संदिण्णघायाइं ।
पडुपडहमद्दलमहारावरोलाइं किंकरक[3]रुब्भमियसल[4]सलियतालाइं ।
मुहपव[5]णतुरुतुरियकाहलवमालाइं गज्जंतभेरीहिं हल[6]मुहलबोलाइं ।
तडिवडणतडयडियगु[7]रुकरडटिविलाइं विरसंतझल्लरिसरोसरियसेलाइं ।
णीसासभारेण पूरियइं विमलाइं हुहुहुयंताइं वरसंखज[8]मलाइं ।
अव[9]रइं वि पहयाइं परियलियसंखाइं जयविजयसिरिकामिणीसोक्खकंखाइं ।
रुंजंतरुंजाइं [10]भंभंतभंभाइं हल्लावियाहिंदमहिसायरब्भाइं[11] ।
चलियाइं सेण्णाइं संणाहसोहाइं वरकुंजरारूढरणरूढजोहाइं ।
णरकरविमुक्कासखुरखयधरग्गाइं चलधूलिकविलाइं[12] [13]विप्फुरियखग्गाइं ।
परिमिलियमंडलियबलसारवंताइं [14]धावंतपाइक्ककरधरियकोंताइं[15] ।
रहचक्कचिक्कारभेसियसुयंगाइं णिवछत्तछाहीहिं छाइयपयंगाइं ।
जक्खिदखयरिंदभूमिंदभीमाइं [16]खयकालकीलाहि [17]कीलाविरामाइं ।

---

२. १. MBP अरिकुंभि° । २. P पहिरेसमि सामिय एत्थ भंगि, but records a *p* छिज्जमि दाविज्जसु । ३. MBP दाविज्जसि । ४. B वीरें करेण । ५. MBP रिउचामर । ६. MBP किं जणेण हुएण । ७. MBP मिहिरहु । ८. MBP इय णाहुएण, but M records a *p* in the Margin बलिणा हुएण । ९. M कव्वेण । १०. MBP हिंडइ ।

३. १. B °करहयइं । २. MBP ठगिदुगिगिठगिदुगिगि । ३. MBP °करब्भमिय° । ४. B °सललिय° । ५. MBP ° पवणहयकुहर (P कुहय) तुरुतुरियकाहलइं । ६. P °हलमुसल° । ७. MBP °खरकरड° । ८. MBP °जुयलाइं । ९. MBP अवराइं पहयाइं । १०. MBP भंभंतभंभाहिं । ११. MBP °सायरं-भाइं । १२. BP °कवलाइं । १३. MBP विप्फरिय° K विप्फरियं but corrects it to विप्फुरिय° । १४. P धावंति । १५. MBP °कुंताइं । १६. MBK °कालकालाहि । १७. B कीराहिरामाइं ।

वशसे ले आना।" कोई वधू कहती है—"यह स्वच्छ हार क्या तुम्हारे प्रसादसे मेरे पास नहीं है? तुम्हारे हाथकी तलवारके द्वारा उखाड़े गये और शत्रुगजोंके कुम्भस्थलोंसे गिरे हुए मोतियोंसे कुसुमित अंगोंवाली मैं कीर्तिलताकी तरह शोभित होऊँ, तुम मुझे यह भंगिमा दिखाओ।" कोई वधू कहती है—"महिमाका हरण करनेवाले चीर या हाथसे मुझे हवा क्यों करते हो? हे प्रिय रजश्रम और स्वेदका हरण करनेवाला शत्रुका चामर ले आना।" कोई वधू कहती है—"तुम अभिमानी शत्रुपक्षके स्वामीसे लड़ना। छोटे आदमीको मारनेमें कोई लाभ नहीं, यही कारण है कि राहु नक्षत्रगणोंसे रुष्ट नहीं होता। वह इसीलिए सूर्यसे लड़ता है, इसीलिए चन्द्रमासे लड़ता है, बलवान्‌के मारे जानेपर यश चन्द्रमापर चढ़ता है। कोई वधू कहती है कि निशंक दुष्टोंको सतानेवाले ही जय प्राप्त करनेवाले होते हैं।

घत्ता—जिस कविने सुन्दर काव्यमें और भटने महासुभटोंके युद्धमें अपने सरल पद-उद्यत पद दिये हैं उसीकी कीर्ति महीमण्डलमें घूमती है ॥२॥

३

तब राजाके आदेशसे अनुचरोंके हाथोंसे आहत विपक्षको सन्त्रस्त करनेवाले लाखों रणतूर्य बज उठे। ऐरावत प्रलयमेघ और समुद्रके स्वरोंवाले धगधग गिदुगिदु गिगि करते हुए आघात दिये जाने लगे। पटु-पटह और मृदंगके महाशब्दोंका कोलाहल हो रहा था, किंकरोंके हाथोंसे घुमाये हुए सुन्दर ताल होने लगे, मुँहकी हवासे तुर-तुर करते हुए काहलोंका कोलाहल होने लगा, गूँजती हुई भेरियोंके साथ हल-मूसलोंके बोल होने लगे। बिजलीके गिरनेसे तड़तड़ करते हुए विशाल करट और टिविलि (बज उठे)। बजती हुई झल्लरियोंके स्वरसे पर्वत उखड़ने लगे। निश्वासोंके भारसे पूरित विमल और श्रेष्ठ शंखयुगल हू-हू-हू करने लगे। और भी, जय-विजय श्रीकामिनी और सुखकी आकांक्षा रखनेवाले और भी असंख्य शंख बजा दिये गये। शब्द करते हुए रुंज-शंख, भें-भें करते हुए भेंभा शंख बज उठे। नाग, मही, समुद्र और मेघोंको हिलाती हुई कवचोंसे शोभित सेनाएँ चलीं। योद्धाओंके द्वारा मुक्त अश्वखुरोंसे धरतीका अग्रभाग आहत हो उठा। चंचल धूलिसे कपिल रंगकी तलवारें चमक रही थीं। बलमें श्रेष्ठ योद्धा मिले हुए और मण्डलाकार थे। हाथमें भाले लिये हुए पैदल सिपाही दौड़ रहे थे। रथोंके चक्रोंकी चिक्कारोंसे भुजंग भयभीत हो उठे। नृपछत्रोंकी छायासे सूर्य आच्छादित हो गया। जो यक्षेन्द्रों, विद्याधरेन्द्रों और मानवेन्द्रोंसे भयंकर और क्षयकालकी क्रीड़ाको अपनी क्रीड़ासे विराम देनेवाली थी।

घत्ता—इय [18]भरहाहिउ णीसरिउ जाम समउ मंतिहिं सामंतहिं ॥
ता वेयालियचरणहिं विण्णवियउ बाहुबलि णवंतहिं ॥३॥

४

परियणजलेण णहु महि विहंतु उत्तुंगतुरंगतरंगवंतु ।
करिमयरपसारियचंडसोंडु सियपुंडरीयडिंडीरपिंडु ।
लायण्णपउरगंभीरघोसु [2]दुग्गउं चोद्दहरयणाहिवासु ।
संदणबोहित्थसमूहचवलु पंचंगमंतपायालविउलु ।
जसमोत्तियमंडियतिजगतीरु आणंदियणियकुल कुइहीरु ।
धयवडजलयरपरिघुलणरंगु दूरयरणिहित्तमलोहसंगु ।
तुज्झुवरि देव असिझसरउद्दु उत्थल्लिउ णरवइ बलसमुद्दु ।
सुविचित्तपत्तपत्तियसरेण ता वुच्चइ बाहुबलीसरेण ।
हउं एकु वइरि किं पउर भणहि किं कालहु अग्गइ जीव गणहि ।
किं डज्झइ हुयवहु तरुवरेहिं किं खज्जइ खगवइ विसहरेहिं ।
किं कुसुमबाण जिणमणु हरंति गोमाउ मइंदहु किं करंति ।
छाइज्जइ किं भयणेहिं भाणु पउर वि रिउ महु ण मलंति माणु ।
घत्ता—एकु वि पउ ण समोसरमि णायायारहिं पंथु णिरुंभमि[10] ॥
आवंतहु णिवसायरहो[11] सरवरपंतिहिं [12]वरणु णिबंधमि[13] ॥४॥

५

गज्जंतु एम पलयक्कतेउ संणज्झइ सिरिबाहुबलिदेउ ।
जोयंतहु णियभुयथामसंचु[1] कासु वि वड्ढिउ रोमंचु उंचु[2] ।
हियवइ संणाहु ण माइ केम बहुलोहवंतु काउरिसु जेम ।
केण वि बद्धी जयकामएण असिधेणुय रसणादामएण ।
केण वि इच्छिय संगामदिक्ख सरमोक्खहु केरी परमसिक्ख ।
केण वि गुणु वलइउ कहिं वि चावि चप्पिवि णं खलयणि कुडिलभावि ।
केण वि णिबद्धु तोणीरजुयलु णं गरुडें दाविउ पक्खजमलु ।
केण वि कड्ढिउ करवालु चंडु णं मेहें दरिसिउ विज्जुदंडु ।

---

१८. भरहणराहिउ ।

४. १. MB महि णहु । २. MB दुग्गमु । ३. MBP चउदह° । ४. P पायालि । ५. MB °कुलछुद्धहीरु ; P °कुलु छुद्धहीरु; K °कुलकुद्दहीरु but corrects it to °छुद्धहीरु T चद्दहीरु चंद्रारंगुस्थानम् । ६. MBP °वुलियरंगु । ७. K उत्थल्लउ । ८. MBP °वत्तपत्तिय° । ९. MBP जणहि । १०. BP णिरुंभिवि । ११. MBP °सायरबलहो । १२. MB वरुणु । १३. B णिबंधिमि; K णिरुंभमि ।

५, १. G संतु; K थावसंचु । २. MP उच्चु । ३. MBP असिधेणुव । ४. MBP लाविउ । ५. MBP चप्पेविणु खलयणकुडिलभावि । ६. M पक्खजुयलु; BP पंखजुयलु । ७. P दाविउ ।

घत्ता—इस प्रकार जब भरताधिप मन्त्रियों और सामन्तोंके साथ निकला, तब वैतालिकों और चारणोंने प्रणाम करते हुए बाहुबलिसे निवेदन किया ॥३॥

४

"हे देव, तुम्हारे ऊपर सैन्यरूपी समुद्र उछल पड़ा है, जो परिजनरूपी जलसे धरती और आकाशको ढकता हुआ, उत्तुंग तुरंगरूपी तरंगोंसे युक्त, हाथीरूपी मगरोंसे अपनी प्रचण्ड सूँड़ उठाये हुए, श्वेत छत्रोंके फेन समूहसे युक्त लावण्य (सौन्दर्य और खारापन) के प्रचुर गम्भीर घोषवाला, दुर्गम चौदह रत्नोंसे अधिष्ठित, रथोंके बोहित्थ-समूहसे चपल, पंचांग मन्त्ररूपी पातालसे विपुल, यशरूपी मोतियोंसे त्रिजगरूपी तीरको मण्डित करनेवाला, अपने कुलरूपी चन्द्रको आनन्दित करता हुआ, ध्वजपटोंके जलचरोंसे व्याप्त-शरीर, अन्यायरूपी मल समूहको दूर करनेवाला तथा तलवाररूपी मत्स्योंसे भयंकर है।" तब सुविचित्र पुंखोंसे विभूषित तीरोंवाले बाहुबलीश्वरने कहा—"ऐसा क्यों कहते हो कि मैं अकेला हूँ और शत्रु बहुत हैं ? क्या तुम कालके आगे जीवकी गिनती करते हो, क्या आग तरुवरोंके द्वारा जलायी जा सकती है ? क्या नागोंके द्वारा गरुड़ खाया जा सकता है ? क्या कामके बाण जिनमनका हरण कर सकते हैं ? सियार सिंहका क्या कर सकते हैं ? क्या नक्षत्रोंके द्वारा सूर्य आच्छादित किया जा सकता है ? प्रवर शत्रु भी मेरा मान मलिन नहीं कर सकता।

घत्ता—मैं एक भी पैर नहीं हटूँगा, और नागके आकारके तीरोंसे मार्गको अवरुद्ध कर लूँगा। आते हुए राजारूपी समुद्रके लिए मैं सरवरोंकी कतारोंसे तट बाँध दूँगा" ॥४॥

५

प्रलयसूर्यके समान तेजस्वी श्री बाहुबलीश्वर देव गरजते हुए तैयार होते हैं। अपने बाहुबलकी स्थिरता और बनावट देखकर किसी योद्धाका रोमांच ऊँचा हो गया, उसके हृदयमें लोहवंत (लोहेसे निर्मित और लोभयुक्त) कवच उसी प्रकार नहीं समा सका जिस प्रकार कापुरुष। जयके अभिलाषी किसीने छुरी अपनी करधनीके सूत्रसे बाँध ली। किसीने संग्राम दीक्षाकी इच्छा की और किसीने तीर चलानेकी परम शिक्षाकी। किसीने धनुषकी डोरीको कहीं चाँपा, मानो कुटिलभाववाले खलजनको चाँपा हो। किसी योद्धाने तरकस युगल इस प्रकार बाँध लिया मानो गरुड़ने अपने पक्षयुगलको दिखाया हो ? किसीने अपनी प्रचण्ड तलवार निकाल ली

भडु को वि भणइ परु हणमि अज्जु णिक्कंटउ सामिहि देमि[9] रज्जु।
पहु तुच्छु पउर रिउ हउं वि धीरु भणु सुंदरि किं कीरइ वियारु।
अवरुंडहि लहु दे देहि हत्थु को जाणइ पुणु संजोउ केत्थु।
आयड्ढिउ पहुहि पसाउ जेहिं रणि जुज्झमि अज्जु मुएहिं तेहिं।

घत्ता—भासइ को वि महासुहडु मुइ मुइ कंति ण एवहिं[10] °मज्झमि।
णिग्गवि रायहु तणउ रिणु अज्जु सीसदाणेण विसुज्झमि ॥५॥

६

भडु को वि भणइ कयवणमुहेहिं जइ भिज्जइ उरु करिमुहरुहेहिं।
जइ खज्जइ आमिसु रक्खसेहिं जइ पिज्जइ सोणिउं वायसेहिं।
जइ अंतइं गिद्धेइं लइवि जंति तो मरणमणोरह मेहु सरंति।
भडु को वि भणइ हलि हत्थु देमि गयदंतमुसलु कड्ढेवि लेमि।
कंडवि णरकण अवर वि करेणु उड्डावमि अयसतुसोहरेणु।
भडु को वि भणइ हुइ खंडखंडि महु करु पेक्खेज्जेसु पक्खितोंडि।
सुंदरि गयणंगणि लंबमाणु अविमुक्कवेरि दावियकिवाणु।
अह धरणिघुलिउ लइ रिउ विहत्तु तुह मंगलंसुकज्जलविलित्तु।
जं पेच्छहि बहुरुहिरें किलिण्णु परिमुक्कदीहणारायभिण्णु।
वच्छयलु महारउ तं जि लेहि सघुसिणु करयलु अँहिणाणु देहि।
हलि सामलंगि उप्फुल्लवयणु जंइ णिवडिउं पेच्छहि तंबणयणु।

घत्ता—तो[10] मेरउ सिरु तरुणि तुहुं चित्ततुलारोहेण विवेयहि ॥
सहुं पत्थिवपरिवालिएण सरिसउ किं व ण सरिसउ जोयहि ॥६॥

७

छुडु गज्जिय गुरु संगामभेरि णं मुक्किय तिहुयणु गिलिवि मारि।
छुडु णिग्गउ भुयबलि साहिमाणि छुडु एत्तहि पत्तउ चक्कपाणि।
छुडु कालें णीणिय दीह जीह पसरिय माणुसमंसासणीह।
थिय लोयवाल जीवियणिरीह डोल्लिय गिरि रुंजिय गहणि सीह।
छुडु भडभारें ढलहलिय धरणि छुडु पहरणफुरणें हसिउ तरणि।
छुडु चंदबलाइं पलोइयाइं छुडु उहयबलाइं पधावियाइं।
छुडु मच्छरचैरियइं वड्ढियाइं छुडु कोसहु खग्गइं कड्ढियाइं।

---

८. K हणिवि। ९. MBP करमि। १०. MBP मुज्झमि and gloss in MP मोहं करोमि; K मज्झमि but मुज्झमि in second hand.

६. १. MBP गिद्ध। २. B मय। ३. K °मुसल। ४. M पेक्खिज्जहि। ५. MBP पक्खितुंडि। ६. MBP परमुक्क°; M records a *P* सरु मुक्क°। ७. M अहिणाहु। ८. MBP ओफुल्ल°। ९. M जं णियडउ; BP जं णियडिउं। १०. MBP सो। ११. MBP परिणपालिए।

७. १. MB °मंसाण सीह। २. MBP गहणसीह। ३. MBP ढलढलिय। ४. MBP चंड°। ५. MBP उभय°। ६. MBP °चडियइं।

मानो मेघने विद्युद्दण्डका प्रदर्शन किया हो। कोई योद्धा कहता है आज मैं शत्रुको मारूँगा और स्वामीको निष्कण्टक राज्य दूँगा। स्वामी तुच्छ है और शत्रु प्रवर है, तो मैं भी धीर हूँ, हे सुन्दरी, क्या विचार करना ? जल्दी अपना हाथ दो और आलिंगन करो; कौन जानता है फिर संयोग कहाँ हो ? मैंने अपने जिन हाथोंसे प्रभुका प्रसाद लिया है आज मैं उन्हीं हाथोंसे युद्ध करूँगा ?

घत्ता—कोई महासुभट कहता है कि हे कान्ते छोड़ो-छोड़ो मैं कुछ भी सुन्दर नहीं करूँगा। बाहर निकलकर मैं अपने शिरके दानसे राजाके ऋणका शोधन करूँगा ॥५॥

६

कोई सुभट कहता है कि जिनके मुखमें घाव कर दिये गये हैं, ऐसे गजसूँड़ोंसे यदि मेरे उरतलका भेदन कर दिया जाता है, यदि राक्षसोंके द्वारा मेरा आमिष खा लिया जाता है, यदि कौओंके द्वारा रक्त पी लिया जाता है, यदि गीध आँतोंको लेकर चले जाते हैं तो मेरे मरणका मनोरथ पूरा हो जाता है। कोई सुभट कहता है कि लो मैं हाथ देता हूँ, मैं गजदाँतोंके मूसल निकालकर लाऊँगा। योद्धा समूह और हाथियोंको चूर-चूर कर मैं अयशरूपी भूसाकी धूल उड़ाऊँगा ? कोई सुभट कहता है हे सुन्दरी, आकाशरूपी आँगनमें लम्बमान (लम्बा फैला हुआ) जिसने शत्रुको नहीं छोड़ा है, और तलवारका प्रदर्शन किया है, ऐसे मेरे हाथको, टुकड़े-टुकड़े होनेपर तुम पक्षीके मुखमें देखोगी ? अथवा शत्रुके द्वारा विभक्त, धरतीपर पड़े हुए तुम्हारे मंगलाश्रुओं और काजलसे लिप्त, अत्यधिक रुधिरसे आर्द्र, छोड़े गये लम्बे-लम्बे तीरोंसे विदीर्ण यदि तुम मेरे वक्षःस्थलको देखो तो उसे ले लेना और अपने केशर सहित हाथकी पहचान देना। हे श्यामलांगी, यदि तुम मेरे खिले हुए चेहरे और रक्तनेत्रोंवाले—

घत्ता—मेरे सिरको गिरा हुआ देखो, तो तुम उसे अपने चित्तरूपी तराजूपर तौलकर पहचान लेना और स्वयं देख लेना कि वह राजाका परिपालन करनेवालेके सदृश है—या सदृश नहीं है ? ॥६॥

७

शीघ्र ही संग्रामभेरी बज उठी मानो सारी त्रिभुवनको निगलनेके लिए भूखी हो उठी हो। स्वाभिमानी बाहुबलि शीघ्र ही निकल पड़ा। शीघ्र ही इस ओर चक्रवर्ती आ गया। शीघ्र ही कालने अपनी लम्बी जीभ प्रेरित की और मनुष्योंके मांसको खानेकी इच्छासे उसे फैला लिया। जीवनसे निरीह होकर लोकपाल स्थित हो गये। पर्वत हिल उठे और जंगलमें सिंह दहाड़ उठे। शीघ्र ही योद्धाओंकी मारसे धरती डगमगा गयी। शीघ्र ही अस्त्रोंकी प्रभासे सूर्यका उपहास किया जाने लगा। शीघ्र ही प्रचण्ड सेनाएँ देखी गयीं, शीघ्र उभयबल दौड़ने लगे। ईर्ष्यासे भरे

छुडु चक्कइं हत्थुग्गामियाइं छुडु सेल्लइं भिच्चहिं भामियाइं ।
छुडु कोंतइं धरियइं संमुहाइं धूमंधइं[7] जायइं दिम्मुहाइं ।
छुडु मुट्ठिणिवेसियं[8] लउडिदंड[9] छुडु पुंखुज्जल[10] गुणि णिहिय[11] कंड[12] ।
छुडु गय कायर थरहरियप्राण[13] छुडु ढोइय[14] संदण णं विमाण ।
छुडु [15]मेंठचरणचोइयमयंग छुडु आसवारवाहियतुरंग ।
घत्ता—छुडु छुडु कारणि वसुमइहि सेण्णइं जाम हणंति परोप्परु ॥
अंतरि ताम पइट्ठ तहिं मंति चवंति समुब्भिवि णियकरु[16] ॥७॥

८

बिहिं बलहं मज्झि जो मुयइ[1] बाण तहु होसइ रिसहहु तणिय आण ।
तं णिसुणिवि सेण्णइं सारियाइं चडियइं चावइं उत्तारियाइं ।
तं णिसुणिवि रहसाऊरियाइं वज्जंतइं तूरइं वारियाइं ।
तं णिसुणिवि धारापहसियाइं करवालइं[2] कोसि णिवेसियाइं ।
तं णिसुणिवि णिद्धंगइं[3] घणाइं णिम्मुक्कइं कवयणिबंधणाइं ।
तं णिसुणिवि मय मायंग रुद्ध पडिगयवरगंधालुद्ध कुद्ध ।
तं णिसुणिवि मच्छर[4]भावभरिय हरि फुरुहुरंत[5] धावंत धरिय ।
रह खंचिय कड्ढिय पग्गहोह वारिय विंधंत अणेय[6] जोह ।
घत्ता—परिसेसियरणपरियरइं गुरुयणचरण[7]सवहसंणिहियइं ॥
सेण्णइं उज्झियकलयलइं थक्कइं कुड्डि[8] णाइं आलिहियइं ॥८॥

९

पणमियसिरेहिं मउलियकरेहिं बाहुबलि भरहु महुरक्खरेहिं ।
उग्गामियरोसपसमंतएहिं[1] बिण्णि वि विण्णविय महंतएहिं ।
तुम्हइं[2] विण्णि वि जण चरमदेह तुम्हइं बिण्णि वि जयलच्छिगेह ।
तुम्हइं बिण्णि वि अखलियपयाव तुम्हइं बिण्णि वि गंभीरराव ।
तुम्हइं बिण्णि वि जगधरणथाम तुम्हइं बिण्णि वि रामाहिराम ।
तुम्हइं बिण्णि वि सुरहं मि पयंड महिमहिलहि[3] केरा बाहुदंड ।

---

७. MB धूवंधइं । ८. M °णिवेसिउ । ९. M °दंडु । १०. MBP पंखुज्जलु । ११. M णिहिउ । १२. M कंडु । १३. MBP °पाण । १४. P ढोयइ । १५. MBP मेंठु° । १६. M वररकरु; BP वरकरु ।

८. १. MBP मुवइ । २. MBP खग्गइं पडियारि । ३. MBP णद्धंगइं; T णिद्धंगइं दीप्राणि णद्धंगइं वां श्रद्धानि ।

४. MB मच्छरभावरहिय; P मच्छरभारभरिय । ५. MB फुरफुरंत । ६. MB अणंत । ७, M चरण-सवहसल्लिहियइं; B °चरणवसहसंणिहियइं; T सवहसंणिहियइं । ८. P कोड्डि ।

९. १. MBP उग्गमिउ रोसु । २. MBP read: तुम्हइं बिण्णि वि जयलच्छिगेह, तुम्हइं बिण्णि वि जण चरमदेह । ३. MB महियल केरा ।

चरित बढ़ने लगे। शीघ्र ही म्यानोंसे तलवारें निकाल ली गयीं, शीघ्र ही चक्र हाथसे चलाये जाने लगे, शीघ्र ही भृत्योंके द्वारा सेल घुमाये जाने लगे। शीघ्र ही भाले सामने धारण किये गये, दिशाओंके मुख धुएँसे अन्धे हो गये। शीघ्र ही मुट्ठीमें लकुटदण्ड ले लिये गये, शीघ्र ही पुंख सहित तीर डोरीपर चढ़ा लिये गये। शीघ्र ही महावतोंके पैरोंसे हाथी प्रेरित कर दिये गये। शीघ्र ही घुड़सवारोंसे तुरंग चला दिये गये।

घत्ता—शीघ्र ही धरतीके लिए सेनाएँ जबतक एक दूसरेपर आक्रमण करती हैं तबतक अपने हाथ उठाकर मन्त्री उन दोनोंके भीतर प्रविष्ट हुए और बोले ॥७॥

८

"दोनों सेनाओंके बीच जो बाण छोड़ता है, उसे श्री ऋषभनाथकी शपथ।" यह सुनते ही सेनाएँ हट गयीं और चढ़े हुए धनुष उतार लिये गये। यह सुनकर हर्षसे आपूरित बजते हुए तूर्य हटा लिये गये। यह सुनकर धाराओंका उपहास करनेवाली तलवारें म्यानके भीतर रख ली गयीं। यह सुनकर चमकते हुए सघन कवच-निबन्धन खोल दिये गये। यह सुनकर मतवाले प्रतिगजोंकी वरगन्धसे लुब्ध और क्रुद्ध गज अवरुद्ध कर लिये गये। यह सुनकर ईर्ष्याभावसे भरे हुए फड़फड़ाते हुए अश्व रोक लिये गये। रथ रह गये, लगाम खींच ली गयी। बेधते हुए अनेक योद्धाओंको मना कर दिया गया।

घत्ता—युद्धकी साज-सामग्रीको दूर हटाती हुई, गुरुजनोंकी शपथसे रोकी गयी दोनों सेनाएँ कलकल शब्दको छोड़कर इस प्रकार स्थित हो गयीं, जैसे दीवालपर चित्रित कर दी गयी हों ॥८॥

९

अपने सिरोंसे प्रणाम करते हुए, दोनों हाथ जोड़े हुए, उत्पन्न होते हुए क्रोधको शान्त करते हुए मन्त्रियोंने मधुर शब्दोंमें दोनोंसे निवेदन किया, "आप दोनों चरमशरीरी हैं, आप दोनों विजयलक्ष्मीके घर हैं, आप दोनों अस्खलित प्रतापवाले हैं, आप दोनों गम्भीर वाणीवाले हैं, आप दोनों विश्वको धारण करनेकी शक्तिवाले हैं, आप दोनों ही रमणियोंके लिए सुन्दर हैं, आप

तुम्हइं बिण्णि वि णिवणायकुसल णियतायपायपंकरुहभसल ।
तुम्हइं बिण्णि वि जण जणहु चक्खु इच्छहु अम्हारउ धम्मपक्खु ।
खरपहरणधारादारिएण किं किंकरणियरें मारिएण ।
किर काइं वराएं दंडिएण सीमंतिणिसत्थें रंडिएण ।
दोहं मि केरा मज्झत्थ होवि ओउहु मेल्लिवि खमभाउ लेवि ।

घत्ता—अवलोयंतु धराहिवइ एत्तिउ किज्जेउ सुत्तु सुजुत्तउ ॥
तुम्हहं दोहं मि होउ रणु तिविहु धम्मेणाएण णिउत्तउ ॥९॥

१०

पहिलउ अवरोप्परु दिट्ठि धरह मा [1]पेत्तलपत्तणचलणु करह ।
बीयउ हंसावलिमाणिएण अवरोप्परु सिंचहु पाणिएण ।
तइयउ पुणु णहि जोयंतु देव [2]करु करि घिवंतें[3] सुरदंति जेंव ।
जुज्झह बिण्णि वि णिवमल्ल ताम एक्केण तुलिज्जइ एक्कु जाम ।
अवरोप्परु जिणिवि परक्कमेण गेण्हहु[4] कुलहरसिरि विक्कमेण ।
तणुसोहाहसियपुरंदरेहिं ता चिंतिउ दोहिं मि सुंदरेहिं ।
किं दूहवियहि णवजोव्वणेण किं फलिएण वि कडुएं वणेण ।
किं सलिलें चंडोलंकिएण किं दासें पेसणसंकिएण ।
किं राएं गुरुपडिकूलएण सुविणीयसुयणसिरसूलएण ।

घत्ता—जे ण करंति सुहासियइं मंतिहिं भासियाइं णयवयणइं ॥
ताहं णरिंदहं रिद्धि [6]कंओ कहिं सीहासणछत्तइं रयणइं ॥१०॥

११

इय चिंतिवि इच्छिउ मंतिमंतु बुड्ढाणुगामि णीसेसु संतु ।
अवलंबिउ रोसु ण परियणेहिं आयंबकसणसियलोयणेहिं ।
सकसायभाव आसंण्णु[1] ढुक्कु दोहिं मि अवलोइउ एक्कमेक्कु[2] ।
उद्धाणणु पहु भुयबलिहि तोंडु[3] पेच्छई[4] रविबिंबु व किरणचंडु ।
हेट्ठिल्ल दिट्ठि उवरिल्लियाइ णिज्जिय दिट्ठिइ अविहल्लियाइ ।
णं होंति कुगइ पंचमगईइ[5] विसयासा इंव[6] मुणिवरमईइ[7] ।
णं तावसि भग्गी विडरईइ णं सेलभित्ति गंगाणईइ ।
णं कमलपंति ससियरतईइ[8] [9]कुमुओलि व मउलिय रविरुईइ ।

---

४. MBP आउह । ५. MBP किज्जइ सुट्ठु । ६. MBP धम्मु णाएण ।

१०. १. MP पत्तलयत्तणु चवलु; B पत्तलयत्तणु चलणु; T पत्तलयत्तणु । २. B करि करु । ३. MBP घिवंतु । ४. MBP अणुहुंजहु मेइणि । ५. T चंडालट्ठिएण । ६. MBP कहिं कहिं । ७. MB सिंघासण°; P सिंहासण° ।

११. १. MBP आसण्ण ढुक्क । २. MBP एक्कमेक्क. ३. MBP तुंडु । ४. MBP पेक्खिवि । ५. P पंचमगयाइ । ६. MBP विव । ७. P °मयाइ । ८. P °रुईइ । ९. M णं कुमुउलि वररवियररुईइ; B णं कुमुउण्णिव णवरवि°; P णं कुमुउलिव णवरवि° ।

दोनों देवोंसे भी प्रचण्ड हैं, आप दोनों धरतीरूपी महिलाके बाहुदण्ड हैं। आप दोनों राजाके न्यायमें कुशल हैं, आप दोनों अपने पिताके चरणरूपी कमलोंके भ्रमर हैं, आप दोनों ही जनताके नेत्र हैं। इसलिए आप हमारे पक्षको पसन्द करें। तीखे आयुधोंकी धारसे विदीर्ण अनुचर समूहके मारे जानेसे क्या? उन बेचारोंको दण्डित करने और नारी समूहको विधवा बनानेसे क्या? दोनोंके बीच मध्यस्थ होकर आयुध छोड़कर और क्षमाभाव धारण करें।

घत्ता—हे राजन्, देखिए और युक्तियुक्त कहा हुआ इतना कीजिए। तुम दोनोंमें धर्म और न्यायसे नियुक्त तीन प्रकारका युद्ध हो ॥९॥

१०

पहला—एक दूसरेपर दृष्टि डालो, कोई भी अपने पक्ष्मकी पलकोंको न हिलाये, दूसरा—हंसावलीके द्वारा सम्मानित पानीके द्वारा एक दूसरेको सींचो, तीसरे—आकाशमें देवता देखते हैं और जिस प्रकार ऐरावत सूँड़को पकड़ता है, आप दोनों राजमल्ल तबतक मल्लयुद्ध करें कि जबतक एकके द्वारा दूसरा हरा न दिया जाये। पराक्रमसे एक दूसरेको जीतकर पराक्रमसे कुलगृह-श्रीको ग्रहण करें।" तब अपने शरीरकी शोभासे इन्द्रका उपहास करनेवाले दोनों सुन्दरोंने अपने मनमें विचार किया कि अनिष्ट करनेवाले नवयौवनसे क्या? फले हुए कड़ुवे वनसे क्या? चाण्डालसे अलंकृत जलसे क्या? आदेशसे शंकित रहनेवाले दाससे क्या, गुरुसे प्रतिकूल और अत्यन्त विनीत सुजन शिरको पीड़ा पहुँचानेवाले राजासे क्या?

घत्ता—जो मन्त्रियोंके द्वारा भाषित, सुभाषित और नीतिवचन नहीं करते उन राजाओंकी ऋद्धि कहाँ, और सिंहासन, क्षत्र एवं रत्न कहाँ? ॥१०॥

११

यह विचारकर उन्होंने मन्त्रीकी मन्त्रणा पसन्द की। वृद्धाश्रित सब कुछ उत्तम होता है। लाल, सफेद एवं श्वेत लोचनवाले परिजनोंने क्रोधका आलम्बन नहीं लिया। कषायभावसे वे एक दूसरेके निकट पहुँचे, दोनोंने एक दूसरेको देखा। राजा भरत ऊँचा मुख किये बाहुबलिका मुख देखता है, जैसे किरण प्रचण्ड रविबिम्बको देखता है। ऊपरको अविचलित दृष्टिसे नीचेकी दृष्टि जीत ली गयी, मानो होती हुई कुगति पाँचवीं गतिसे, मानो मुनिवरोंकी मतिसे, विषयाशा मानो, विटकी रतिसे तपस्विनी और मानो गंगानदीसे पर्वतकी दीवार भग्न हो गयी हो। मानो चन्द्रकिरणोंकी परम्परासे कमलपंक्ति, मानो रविकी कान्तिसे कुमुदोंकी पंक्ति मुकुलित हो गयी हो।

घत्ता—ठिउ हेट्ठामुहुं चक्कवइ णिज्जिउ पडिभडदिट्ठिपहावहिं ॥
घल्लियणवकुसुमंजलिहिं णंदातणुरुहु संथुउ देवहिं ॥११॥

१२

मओमत्तमायंगलीलावहारा रमावासवच्छत्थलोलंतहारा ।
फणिंदेण चंदेण इंदेण दिट्ठा पुणो दो वि राया सरंते पइट्ठा ।
सरंतेहिं आलोइयं सच्छणीरं विसालं गहीरं तुसारोहतारं ।
महापोमसुत्ताहिमाणिक्कदित्तं मरुद्धूयतिंगिच्छिधूलीविलित्तं ।
महीरंगरंगंतकल्लोलमालं मरालीपहालग्गलीलामरालं ।
सिरीणेउरालावणच्चंतमोरं भिसाहारपूरंतचंचूचऊरं ।
तरंतामरं रोयरारद्धकीलं जलुब्भंतमीणं लयापत्तणीलं ।
ससीछाहिसारंगडेवंतसीहं[४] समुत्तुंगफेणावलीछण्णतूहं ।
झुणंतालिकोलाहलं सारसिल्लं झुणुम्मुक्कपायावलीफुल्लफुल्लं ।
सुयाणेयपक्खिंदजक्खिंदसद्दं पमज्जंतहत्थिंदसोंडाविमद्दं ।
घत्ता—तहिं बिण्णि वि जण ओयरिय पहुणा घित्त जलंजलि भायहु ॥
वियलइ उप्परि मेहलहे णं मंदाइणि हिमइरिरायहु ॥१२॥

१३

वच्छत्थलु पाविवि पुणु वि वलिय हेट्ठामुह खलमेत्ति व घुलिय ।
कडियलि धावंती सुंदरासु दीसइ तारालि व मंदरासु ।
णं मरगयमहिहरि चंदकंति णं णीलमहीरुहि हंसपंति ।
डेवंती दीसइ सलिलधार णं कंठभट्ठ कंठिय सुतार ।
णं सुरसरि चवलतरंगफार गयणुल्ललंत झससुंसुमार ।
आरूसिवि पुणु भरहहु विमुक्क णंदातणए गुरुजलझलक्क ।
पच्छाइउ चउदिसु ताइ राउ धवलइ जिणकित्तिइ णं तिलोउ ।
कणयइरि व सरयब्भावलीइ णं उययसिहरि ससहररुईइ ।
सलिलें णवसोत्तइं पूरियाइं बहुपरियणसयणइं जूरियाइं ।
उग्घोसिउ विजउ महासरेहिं बाहुबलिणराहिवकिंकरेहिं ।
घत्ता—सीसु धुणंतु मुयंतु छलु सरवरवारिपवाहें सित्तउ ॥
पडिओसारियउ पुहइवइ णाइं करिंदु करिंदे जित्तउ ॥१३॥

१२. १. MBP वच्छत्थलोलंबि° । २. M °तिगिच्छ°; B तिगिंछि°; P तिग्गिछ° । ३. MB गेयपारद्ध°; P खेयरारद्ध°; T रोयरं चक्रवालं । ४. MBP °सिंहं । ५. M सारिसिल्लं । ६. MP °पेक्खंत° । ७. MBP णिमज्जं° । ८. MBP सुंडा° । ९. MBP वियरइ ।

१३. १. MB पुणु वलिया । २. MBP घुलिया । ३. MBP तारावलि मंदरासु । ४. MP महिरुहि; B महीहरि । ५. MBP धवल° । ६. MBPK मुणंतु । ७. MBP °ओसरियउ ।

घत्ता—प्रतिभटकी दृष्टिके प्रभावोंसे पराजित चक्रवर्ती नीचा मुख करके रह गया, नव-कुसुमांजलियाँ डालते हुए देवोंने सुनन्दाके पुत्र बाहुबलिकी संस्तुति की ॥११॥

१२

मतवाले गजोंकी लीलाका अपहरण करनेवाले तथा लक्ष्मीके निवासघरस्वरूप जिनके वक्षपर हार आन्दोलित हैं ऐसे वे दोनों राजा फिर सरोवरके भीतर प्रविष्ट हुए और उन्हें नागेन्द्रों, चन्द्र और इन्द्रने देखा। प्रवेश करते हुए स्वच्छ नीर देखा, जो विशाल गम्भीर और हिमकणोंके समूहकी तरह निर्मल था। हवासे उड़ती हुई पराग-धूलिसे लिप्त था, जिसकी तरंगमाला भूमि-रूपी रंगमंचपर क्रीड़ा कर रही थी, जहाँ लीलामें हंस हंसनियोंके पथमें लगे हुए थे, लक्ष्मीके नूपुरोंके अलापपर मयूर नृत्य कर रहे थे, जहाँ मृणालके आहारसे चकोरकी चोंच भरी हुई थी, भ्रमर तैर रहे थे, जिसमें सुन्दर क्रीड़ा प्रारम्भ की गयी थी, जलसे मछलियाँ निकल रही थीं, जो लतापत्रोंसे नीला था, जिसमें चन्द्रमाके प्रतिबिम्बके हरिणपर सिंह झपट रहा था। उठती हुई फेनावलीसे तट ढके हुए थे, गूँजते हुए भ्रमरोंका कोलाहल हो रहा था, जो सारसोंसे भरा हुआ था, सूर्यसे मुक्त किरणावलीसे फूल खिले हुए थे, जिसमें अनेक पक्षीन्द्रों और यक्षेन्द्रोंको शब्द सुनाई दे रहा था और जो डूबते हुए गजोंकी सूँडोंसे मर्दित था।

घत्ता—ऐसे उस सरोवरमें वे दोनों उतरे। स्वामीने अपने भाईके ऊपर जलकी धारा छोड़ी मानो हिमालयसे गंगानदी धरतीके ऊपर आ रही हो ॥१२॥

१३

वक्षस्थल पाकर वह फिर मुड़ी और दुष्टकी मित्रताकी तरह नीचा मुख कर गिर पड़ी। उस सुन्दरके कटितटपर दौड़ती हुई ऐसी मालूम हो रही थी, जैसे मन्दराचलपर तारावली हो। मानो मरकत महीधरपर चन्द्रमाकी कान्ति हो, मानो नील वृक्षपर हंसपंक्ति हो, हिलती हुई धारा ऐसी मालूम होती थी, मानो कण्ठसे भ्रष्ट स्वच्छ हार हो, मानो चंचल लहरोंसे विस्फारित गंगानदी हो, कि जिसमें आकाश तक मत्स्य और शिशुमार उछल रहे थे। तब क्रुद्ध होकर सुनन्दाके पुत्र बाहुबलिने भरतके ऊपर भारी जलधारा छोड़ी। उसने राजाको चारों ओरसे आच्छादित कर लिया, मानो जिनेन्द्र भगवान्‌की कीर्तिने तीनों लोकोंको ढक लिया हो, मानो शरद्‌की मेघावलीने स्वर्णगिरिको, मानो चन्द्रमाकी किरणमालाने उदयाचलको ढक लिया हो। जलसे नवस्रोत पूरे हो गये, बहु परिजन और स्वजन पीड़ित हो उठे। तब बाहुबलि राजाके अनु-चरोंने महास्वरोंमें विजयकी घोषणा कर दी।

घत्ता—अपना सिर पीटता और छल छोड़ता हुआ तथा सरोवरके जलप्रवाहसे अभि-सिंचित पृथ्वीपति भरत हटाया गया। पृथ्वीपति भरत उसी प्रकार जीत लिया गया, जिस प्रकार हाथीसे हाथी जीत लिया जाता है ॥१३॥

१४

जलभरियसुणासावंसएण वड्ढियपडिभडबलसंसएण ।
व[1]ज्जियमंडलियकुरंगएण परिहच्छें सरतीरंगएण ।
रोसारुणच्छिरंजियदिसेण सप्पेण व अइआसीविसेण ।
सीहेण व उद्धुयकेसरेण णिब्भच्छिउ भाइ णरेसरेण ।
पीलिज्जइ तेरउ उच्छुचाउ रसु पिज्जइ खज्जइ गुलु सुसाउ ।
फुल्लसर वि कयध[2]म्मेल्लसोह पई जेहा कहिं लब्भंति जोह ।
अवियाणियखत्तियधम्मसार महिलाण गोहहो मोट्टियार ।
किं कि[3]रें वयणेण पलोइएण जीवंतहं सलिलें ढोइएण ।
ए एहि देहि भुय[4]जुज्झु तेम अज्जु जि एयंतरु होइ जेम ।
ता भणइ जइणि णिप्फलु जि भसहि धणुबाण महारा काइं हसहि ।
जाणंतु वि दे[5]वि णिरत्थु भणहि पियविरहुव्वेइउ किं क[6]णहि ।
महिलाण गो[7]हुं हउं सयणमग्गि गोहाण गोहु कड्ढियइ खग्गि ।

घत्ता—जइ सयणत्तणु मण्णियउं तो किं मग्गहि पुहइ भडारा ॥
णियधणक[8]णमयकयविवस पत्थिव सयल होंति विवरेरा ॥१४॥

१५

तओ भुयमंडणि भायर लग्ग णरिंदसिरोमणि घ[1]ट्ठपयग्ग ।
कुलीण कुकारणि माणमहल्ल पहाण महाबल बिण्णि वि मल्ल ।
[2]सुकंचणकुंडलमंडियगंड पसारियबाहु सरोस पयंड ।
चिराउस चंदचडावियणाम सुविक्कमवंत णराहिवकाम ।
समत्थ सिरीण रईण णिकेय महारह भा[3]रह भक्खरतेय ।
असंक खगंक झसंक विपंक जसंसुपसाहियपुण्णससंक ।
मिलंति मिलेप्पिणु हत्थि धरंति धरेप्पिणु देह घ[4]डेवि पडंति ।
प[5]डंत जि गाहणिबंधणु देंति कडीयलु कंठु णिरुंभिवि ठंति ।
वि[6]रुद्ध वि गाह बलेण मुयंति मुएप्पिणु उड्डिवि झं[7]त्ति वलंति ।
अलंभुयजुज्झविहाणसयाइं प[8]चप्पणकड्ढणवेढणयाइं ।
करंति वि धीर अविद्धवियंग णिरंकुस णाइं मयंध मयंग ।
पयाणभरस्स धरित्ति ण तिण्ण विमुक्क रवेण दिसाकरि [9]वुण्ण ।
फलोणयपायवपिट्ठु व छुण्ण णहे गय पक्खि वणेयर रुण्ण ।
ण चल्लिय कुंचिय कूर फणिंद दरीकुहरेसु णिलीण पुलिंद ।
तओ हयमाणिणिमाणमएण णरामरसंगरलद्धजएण ।

---

१४. १. MBPK तज्जिय° । २. MBP °धम्मिल्ल° । ३. MB किंकरवयणेण । ४. P भुयजुयलु । ५. BK देव । ६. MBP कुणइ । ७. M मोहु, but records a *p* गोहु । ८. P कणयमय° ।

१५. १. K °घुट्ठ° and gloss घृष्ट । २. P सकंचण° । ३. MBP बारहभक्खर° । ४. MBP घडेण । ५. MBP पडंति जि गाढ° । ६. MBP णिरुद्धु वि बाहु; K णिरुद्ध वि गाह । ७. MBP जंति । ८. MBP पचंपण° । ९. PK चुण्ण ।

१४

जिसकी नाककी नली जलसे भर गयी है, जिसे प्रतियोद्धाके बलमें संशय बढ़ गया है, जिसने माण्डलीक राजारूपी भी हरिणोंको छोड़ दिया है, ऐसे नरेश्वर भरतने वेगसे तीरपर जाकर क्रोधसे लाल आँखोंसे दिशाको रंजित करते हुए अत्यन्त विषदाढ़वाले सर्पके समान अथवा अयाल उठाये हुए सिंहके समान भाईकी भर्त्सना की—"जो अपने ईखके धनुषको पीड़ित कर उसका रस पीता है, और सुस्वादु गुड़ खाता है और जिसके पुष्परूपी तीर भी चोटीकी शोभा करनेवाले हैं ऐसा तुम्हारे जैसा योद्धा कहाँ पाया जा सकता है। क्षत्रियोंके श्रेष्ठ धर्मको नहीं जाननेवाले, महिलाओं और अपने ग्रामप्रमुखका अहंकार रखनेवाले तुम्हें मेरा मुख देखनेसे क्या, जीवितोंको पानी देनेसे क्या ? ओ आओ और मुझे इस तरह बाहुयुद्ध दो जिससे दोनोंका अन्तर स्पष्ट हो जाये।" तब जिनपुत्र बाहुबलि बोला—"तुम व्यर्थं बोलते हो, मेरे धनुष-बाणका उपहास क्यों करते हो, हे देव जानते हुए भी तुम व्यर्थं बोलते हो, प्रियविरहसे उद्विग्नके समान तुम क्यों नहीं रोते। महिलाओंका साथी मैं स्वजनमार्ग (शयनमार्ग) में हूँ, लेकिन तलवार निकल आनेपर मैं योद्धाओंका योद्धा हूँ।"

घत्ता—यदि तुम स्वजनत्व मानते हो तो हे आदरणीय, धरती क्यों माँगते हो, हे राजन् अपने धनकणोंके मदसे विवश किये गये सभी लोग विपरीत हो उठते हैं ? ॥१४॥

१५

उस समय महेन्द्र शिरोमणि दोनों भाई अपने पैरोंके अग्रभागको रगड़ते हुए बाहुयुद्ध करने लगे। दोनों ही कुलीन और मानमें महान् पृथ्वीके कारण (लड़ गये)। दोनों ही प्रधान और महाबल-मल्ल। दोनों ही संकुचित कुण्डलोंसे अलंकृत कपोल, दोनों ही क्रुद्ध और प्रचण्ड अपने बाहु फैलाये हुए, चिरायु, चन्द्रमाके समान प्रसिद्ध नाम, विक्रमसे युक्त नराधिपकी कामनावाले और समर्थ, लक्ष्मी और रतिके आश्रय, महारथी आभासे युक्त और सूर्यकी तरह तेजस्वी। शंका-रहित गरुड़ और मत्स्यके चिह्नवाले, पंकसे रहित, और यशकी किरणोंसे पुण्यरूपी चन्द्रमाको प्रसाधित करनेवाले थे। वे दोनों मिलते हैं, मिलकर हाथ पकड़ते हैं। हाथ पकड़कर देहसे लगकर गिरते हैं। गिरते हुए मजबूत पकड़ करते हैं और कमर और गलेको रुद्ध कर रह जाते हैं। विरुद्ध भी पकड़को बलसे छुड़ा लेते हैं, छूटकर उठकर शीघ्र मुड़ते हैं, और समर्थ बाहुयुद्धके सैकड़ों विधान (दावँपेंच) जैसे चाँपना, काढ़ना, बेठन (लिपटना) आदि करते हैं। दोनों ही धीर और अस्खलित अंगवाले तथा निरंकुश हैं, जैसे मदान्ध महागज हों। पैरोंके भारसे धरती उन्होंने नहीं छोड़ी। शब्दसे दिग्गज दुःखी हो गये, फलोंसे उन्नत वृक्षोंकी पीठ छिन्न हो गयी, पक्षी आकाशमें चले गये, वनचर खिन्न हो उठे, क्रूर नागराज वहीं संकुचित हो गये—चल नहीं सके, और भील घाटियों और गुफाओंमें छिप गये। उस समय मानिनियोंके मान और मदका हनन करनेवाले

सुरिंदकरीकरथोरभुएण   अणिंदजिणिंदसुणंदसुएण ।
पहुस्स करेण करा परतावि   परेण थिरेण धरेण[10] कमावि ।
घत्ता—कुंअरें[11] राउ समुद्धरिउ णायणियंबिणिसेवियकंदरु ॥
कयइच्छाकोउहलेण किं ण[12] पुरंदरेण गिरि मंदरु ॥१५॥

१६

उद्धरिउ सुपुत्तें णं सुवंसु   कमलायरेण णं रायहंसु ।
णं सुहपरिणामें जीवें[1] भव्वु   णं सुयणसमूहें सुकइकव्वु ।
णं मुणिवरणाहें वयविसेसु   णं णरवरिंदणाएण देसु ।
णं गमेंण[2]वियारें बालभाणु   णं वाएं चंपयकुसुमरेणु ।
णं कामुयसत्थें कामचारु   णं सो जि तेण संसारसारु ।
खयरामरमाणविमद्दणेण   पढमेण पढमजिणणंदणेण ।
अइलुद्धें बहुमं[3]णिणयधणेण   कुद्धें अवगणियसज्जणेण ।
परिपालियसयलवसुंधरेण   ता चिंतिउ चक्कु सुकंधरेण ।
जमदाढावलयहु अणुहरंतु   उद्धाइउ चंचलु विप्फुरंतु ।
रविबिंबेण व जियविसमवेउ[4]   तें परियंचिउ बाहुबलिदेउ[5] ।
थिउ दाहिणभुयदंडहु समीउ   को एहउ किर णियकुलपईउ ।
को सुरयधुत्तिचित्ताणुवट्टि   को एम जिणइ जगि चक्कवट्टि ।
घत्ता—विंभिउ भरहणराहिवइ बाहुबलीसु जगेण पसंसिउ ॥
गयणभाउ सुरमुक्कियहिं पुप्फदंत[6]पंतिहिं णं पहसिउ ॥१६॥

इय महापुराणे तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारे महाकइपुप्फयंतविरइए महाभव्वभरहाणुमण्णिए महाकव्वे भरहबाहुबलिजुज्झवण्णणं णाम सत्तारहमो परिच्छेओ समत्तो। ॥ १७ ॥

॥ संधि ॥ १७ ॥

---

१०. P धरेवि । ११. MBP कुमरें । १२. M णाइं, but T किं गिरिमंदरो पुरंदरेण नोद्धृतः ।
१६. १. MBP जीउ । २. MBP गयण° । ३. BP बहुमाणिय° । ४. K °विसमवेरु । ५. K बाहुबलि मेरु । ६. MBP पुप्फयंत° ।

मनुष्यों और देवोंके संग्राममें जय प्राप्त करनेवाले, ऐरावतकी सूँड़के समान बाहुवाले अनिन्द्य जिनेन्द्र और सुनन्दाके पुत्रने प्रभुके हाथको हाथसे पीड़ित कर दूसरे स्थिर हाथसे पकड़कर आक्रमण कर—

घत्ता—कुमारने राजाको उसी प्रकार उठा लिया, जिस प्रकार नागोंकी स्त्रियों (नागिनों) से जिसकी गुफाएँ सेवित हैं, ऐसे मन्दराचलको अपनी इच्छाके कुतूहल मात्रसे इन्द्रने उठा लिया हो ॥१५॥

१६

मानो सुपुत्रने अपने वंशका उद्धार किया हो, मानो कमलाकरने राजहंसको उठा लिया हो, मानो शुभ परिणामने भव्य जीवको, मानो सुजन समूहने सुकविके काव्यको, मानो मुनिवर स्वामीने व्रत विशेषको, मानो किसी श्रेष्ठ राजाने देशको, मानो गमनव्यापारने बालसूर्यको, मानो पवनने चम्पक कुसुमकी धूलको, मानो कामशास्त्रने कामाचारको, या मानो उसीने संसारके सारको उठा लिया हो। तब विद्याधर और अमरोंके मानका मर्दन करनेवाले, अत्यन्त लोभी, धनको सब कुछ समझनेवाले, सज्जनकी अवहेलना करनेवाले, समस्त धरतीके पालक अच्छे कन्धोंवाले जिनेन्द्रके प्रथम पुत्र भरतने चक्रका ध्यान किया। वह यमके दंष्ट्रावलयका अनुकरण करता हुआ चंचल और स्फुरायमान हो उठा और रविबिम्बके समान उसने विषम वेगको जीतनेवाले बाहुबलिके देहकी प्रदक्षिणा की, तथा उनके दायें हाथके पास जाकर स्थित हो गया। ऐसा अपने कुलका प्रदीप कौन हुआ है? सुरतिमें धूर्त चित्रोंका अनुकरण करनेवाला कौन है? इस प्रकार विश्वमें चक्रवर्तीको कौन जीत सकता है?

घत्ता—भरत नराधिप विस्मित हो उठा। बाहुबलीश्वरकी विश्वने प्रशंसा की। देवोंके द्वारा बरसाये गये कुन्दकुसुमोंकी पंक्तियोंसे मानो आकाशका भाग हँस उठा ॥१६॥

इस प्रकार त्रेसठ महापुरुषोंके गुणालंकारोंसे युक्त इस महापुराणमें महाकवि पुष्पदन्त द्वारा विरचित और महाभव्य भरत द्वारा अनुमत महाकाव्यका भरत-बाहुबलि-युद्ध-वर्णन नामका सत्रहवाँ परिच्छेद समाप्त हुआ ॥१७॥

संधि १८

णहु लंघिउ सुरगिरि चालियउ धीरें सायरु मवियउ ॥
करडिंमु व वंभहु तणउं सुउ [1]उव्वाइवि पुणु थवियउ ॥ ध्रुवकं ॥

१

णं कमलसरु [2]हिमोहयकायउ   [3]दवदड्ढउ रुक्खु व विच्छायउ ।
जं [4]ओहुल्लियमुहु पहु दिट्ठउ   तं बलि भणइ हउं जि णिक्किट्ठउ ।
चक्कवट्टि णियगोत्तहु सामिउ   जेणु [5]महंत भाइ ओहामिउ ।
हा किं किज्जइ भुयबलु मेरउ   जं [6]जायउ सुहिदुण्णयगारउ ।
महि पुण्णालि व केण ण भुत्ती   रज्जहु पेडउ बज्जु समसुत्ती ।
रज्जहु कारणि पिउ मारिज्जइ   [7]बंधवहुं मि विसु संचारिज्जइ ।
जिह अलि गंधें गउ संघारहु   तिह रज्जेण जीउ तंवारहु ।
भडसामंतमंतिकयभायउ   चिंतिज्जंतउ सव्वु परायउ ।
तंडुलपसयहु कारणि राणा   णरइ पडंति काइं अवियाणा ।
डज्झउ रज्जु जि [8]दुक्खु गुरुक्कउ   जइ सुहु तो किं ताएं मुक्कउ ।
सुहणिहि भोयभूमि [9]संपयंयर   कहिं सुरतरु कहिं गय ते कुलयर ।
घत्ता—[10]दुल्लंघहु दुक्कियलंछणहो [11]दूसहदुक्खदुरंतहो ॥
भणु दाढापंजरि पडिउ णरु को उव्वरिउ कयंतहो ॥१॥

२

कालभुयंगहु को वि ण चुक्कइ   सुयणत्तणु जि एक्कु पर थक्कइ ।
मईं पइ जेहा बहु वेहाविय   पुहइइ पुहइपाल वोलाविय ।
एयहि अइअहिलासु ण गम्मइ   जणणि जणणु भायरु किह हम्मइ ।
पडिवण्णउं ण केम पालिज्जइ   किह हियवउ कलुसें मइलिज्जइ ।

MBP give, at the commencement of this Samdhi, the following stanza :-

शशधरबिम्बात्कान्ति तेजस्तपनाद्गभीरतामुदधेः ।
इति गुणसमुच्चयेन प्रायो भरतः कृतो विधिना ॥

GK do not give it.

१. १. P उच्चाविवि । २. P हिमहय° but gloss हिमाहत । ३. P दवदद्ठु व । ४. B ओहुल्लिय महुं । ५. MBP महंतु । ६. P हा जं जायउ । ७. P बंधवाहुं विसु । ८. B दुक्खगुरुक्कउ । ९. P संपयघर । १०. B दुल्लंघियदुक्किय° । ११. MB दूसहो ।

सन्धि १८

उस वीरने आकाश लाँघ लिया, मन्दराचलको चला दिया, सागरको माप लिया और ब्रह्माके (आदिनाथके) पुत्र भरतको हाथमें बालककी तरह उठाकर फिरसे स्थापित कर दिया।

१

जब बाहुबलिने प्रभुको अधोमुख देखा तो उसे लगा मानो हिमसे आहत शरीर कमल सरोवर हो, जैसे दावानलसे दग्ध कान्तिरहित वृक्ष हो, वह कहता है "मैं ही निकृष्ट हूँ जिसने अपने ही गोत्रके स्वामी भरतको अपमानित किया। हा ! मेरे बाहुबलने क्या किया कि जो वह सुधियोंका दुर्नय करनेवाला बना। धरतीरूपी वेश्याका उपभोग किसने नहीं किया ? यह उक्ति ठीक ही है कि राज्यपर वज्र पड़े। राज्यके लिए पिताको मारा जाता है, भाई लोगोंमें विषका संचार किया जाता है, जिस प्रकार भ्रमर गन्धसे नाशको प्राप्त होता है, उसी प्रकार राज्यसे जीव विनाशको प्राप्त होता है। भट, सामन्त, मन्त्र, मन्त्री आदिके रूपमें किया गया विभाजन विचार करनेपर सब पराया प्रतीत होता है। चावलोंके माड़के लिए अज्ञानी राजा नरकमें क्यों पड़ते हैं। इस राज्यमें आग लगे, यही सबसे बड़ा दुःख है। यदि इसमें सुख होता तो पिताजी इसका परित्याग क्यों करते ? सुखकी निधि भोगभूमि, सम्पत्ति पैदा करनेवाले वे कल्पवृक्ष और वे कुलकर राजा कहाँ गये ?

घत्ता—दुर्लंध्य पापोंसे लांछित असह्य दुःखों और पापोंवाले यमकी दाढ़ोंमें पड़ा हुआ कौन मनुष्य उबर सका है ? ॥१॥

२

कालरूपी महानागसे कोई नहीं बचता, केवल एक सुजनत्व बच रहता है। मैंने तुम-जैसे बहुतोंको प्रवंचित किया है। पृथ्वीके लिए पृथ्वीपालोंपर अतिक्रमण किया है। फिर भी इसमें अभिलाषा समाप्त नहीं होती। इसके लिए जननी, जनक और भाईकी हत्या क्यों की जाती है, जो स्वीकार कर लिया है, उसका परिपालन क्यों नहीं किया जाता। अपने हृदयको पापसे मैला

जं माणुसु धम्मेण ण भिज्जइ [1]सो णिक्किट्टु तेण किं किज्जइ ।
देव मज्झु खमभाउ करेज्जसु जं पडिकूलिउ तं म रूसेज्जसु ।
अप्पउ लच्छिविलासें रंजहि लइ महि तुहुं जि णराहिव भुंजहि ।
णहणिवडियणीलुप्पलविट्ठिहि हउं पुणु सरणु जामि परमेट्ठिहि ।
तं णिसुणिवि भरहेसें वुच्चइ परिहवदूसिउ रज्जु ण रुच्चइ ।
घत्ता—अंतेउरसयणहं परियणहं णीसेसहं मि णियंतहं ॥
हउं जित्तउ पइं तुहुं सइ [2]खंविउं खम भूसणु गुणवंतहं ॥२॥

३

जइ पइं णियभुएहिं अंदोलिउ [1]भूमंडलि तडत्ति अप्फालिउ ।
तो किं चक्कु[2] रयणु मइं रक्खइ पुणु जीयंतु को वि किं पेक्खइ ।
पइं जित्ती खमा वि खमभावें पइं तासिउ कंडसिउ सपयावें ।
पइं जिह तेयवंतु ण दिवायरु णउ गंभीरु होइ रयणायरु ।
पइं दुज्जसकलंकु पक्खालिउ णाहिणरिंदवंसु उज्जालिउ ।
पुरिसरयणु तुहुं जगि एक्कल्लउ जेण कयउ मह्रु बलु वेयल्लउ ।
को समत्थु उवसमु पडिवज्जइ जगि जसढक्क कासु किर वज्जइ ।
पइं मुएवि तिहुयणि को चंगउ अण्णु कवणु पच्चक्खु अणंगउ ।
अण्णु कवणु जिणपयकयपेसणु अण्णु कवणु रविखयणिवसासणु ।
घत्ता—ससि सूरहो मंदरु मंदरहो इंदहु इंदु अणीयउ ॥
पर एक्कहु णंदाएविसुय तुह ण णिहालमि बीयउ ॥३॥

४

जं तुहुं दुरुवयणेहिं णिब्भच्छिउ जं दिट्ठीइ सरोसु णियच्छिउ ।
जं सरवाणिएण णिरु सित्तउ जं जुज्झंतें पेल्लिवि घित्तउ ।
तं एवहिं खेम[2] करि महुं बंधव जिणवरतणय तिजगमणसंभव ।
आउ जाहु उज्झाउरि पइसहि अज्जु जि तुहुं सिंहासणि बइसहि ।
पट्टु णिबंधमि भालि तुहारइ अक्ककित्ति जीवउ तुह केरइ ।
एवहिं रज्जु करंतउ लज्जमि एवहिं परमदिक्ख पडिवज्जमि ।
एवहिं इंदियछंदु विवज्जमि एवहिं पुण्णु ण पाउ समज्जमि ।
एवहिं कम्मणिबंधेण[3] भंजमि एवहिं जोएं प्राणें विसज्जमि ।
घत्ता—बंधव वणवासहु पट्ठविवि धरणिमोहरसभत्तें ॥
मइं एवहिं दुज्जसभायणेण भायर काइं जियंतें ॥४॥

२. १. MBP णिक्किउ काइं तेण किर किज्जइ; K णिक्किट्ठु तेण काइं किर किज्जइ; but corrects it to सो णिक्किट्ठु तेण किं किज्जइ । २. MBP खमिउ ।

३. १. MBP महिमंडलि । २. MBP चक्करयणु । ३. MB पुणु वि जयंतु; PK पुणु वि जियंतु । ४. MB तोसिउ । ५. M पोउसिउ; B कोसिउ ।

४. १. MBP जं दुव्वयणेहिं । २. M महुं खम करि । ३. MBPK °णिबंधणु । ४. MBP पाण ।

क्यों किया जाता है ? यदि मनुष्य धर्ममें अनुरक्त नहीं होता तो वह निकृष्ट है, उससे क्या होगा ? हे देव, मुझपर क्षमाभाव कीजिये और जो मैंने प्रतिकूल आचरण किया है उसपर क्रुद्ध मत होइए। अपनेको लक्ष्मीविलाससे रंजित कीजिए, यह धरती आप ही लें, और इसका भोग करें। मैं, जिनपर आकाशसे नीलकमलोंकी वृष्टि हुई है, ऐसे परमेष्ठी आदिनाथकी शरणमें जाता हूँ।" यह सुनकर भरतेश्वरने कहा—"पराभवसे दूषित राज्य मुझे अच्छा नहीं लगता।"

घत्ता—अन्तःपुर, स्वजनों, परिजनों और शेष लोगोंके देखते हुए मैं तुम्हारे द्वारा जीता गया और तुम्हारे द्वारा स्वयं क्षमा किया गया। तुम गुणवानोंमें क्षमाभूषण हो ॥२॥

३

जब तुमने मुझे अपने बाहुओंसे आन्दोलित किया और लड़ करके भूमिपर पटक दिया, तो चक्ररत्न मेरी क्या रक्षा करता है ? फिर जीवित रहते हुए कोई क्या देखता है ? तुमने अपने क्षमाभावसे क्षमाको जीत लिया, तुमने अपने प्रतापसे कौशिक (इन्द्र) को भी सन्तुष्ट कर लिया। तुम जितने तेजस्वी हो, उतना दिखाकर भी तेजस्वी नहीं है। तुम्हारे समान समुद्र भी गम्भीर नहीं है। तुमने अपयशके कलंकको धो लिया है और नाभिराजके कुलको उज्ज्वल कर लिया है। तुम विश्वमें अकेले पुरुषरत्न हो जिसने मेरे बलको भी विकल कर दिया। कौन समर्थ व्यक्ति शान्तिको स्वीकार करता है। विश्वमें किसके यशका डंका बजता है। तुम्हें छोड़कर त्रिभुवनमें कौन भला है ? दूसरा कौन प्रत्यक्ष कामदेव है। दूसरा कौन जिनपदोंकी सेवा करनेवाला है और दूसरा कौन नृपशासनकी रक्षा करनेवाला है।

घत्ता—शशि सूरसे, मन्दर मन्दराचलसे और इन्द्र इन्द्रसे उपमित किया जाता है, परन्तु हे नन्दादेवी-पुत्र, एक तुम्हारा दूसरा प्रतिमान (उपमान) दिखाई नहीं देता ॥३॥

४

"जो तुमने दुर्वचनोंसे मेरी निन्दा की, जो दृष्टिसे क्रोधपूर्वक देखा, जो सरोवरके पानीसे मुझे सिक्त किया, और जो लड़ते हुए ठेलकर गिरा दिया; हे मेरे भाई, उसके लिए तुम मुझे क्षमा करो, आओ और अयोध्याके लिए जाओ, तुम आज भी सिंहासनपर बैठो, मैं तुम्हारे भालपर पट्ट बांधूगा। यह अर्ककीर्ति तुम्हारा जीवन होगा। इस समय राज्य करते हुए मैं लजाता हूँ। अब मैं परम दीक्षा ग्रहण करूँगा। इस समय इन्द्रियोंके प्रपंचको छोड़ूँगा। मैं इस समय पुण्य या पापका आदर नहीं करूँगा। इस समय कर्मोंके निबन्धनको नष्ट करूँगा। इस समय योगसे प्राणोंका विसर्जन करूँगा।

घत्ता—हे भाई, मैं वनवासमें प्रवेश करूँगा। धरतीके मोह रससे भ्रान्त अपयशके भाजन इस जीवनको जीनेसे क्या ?" ॥४॥

५

सज्जणकरुणें सज्जणु कंपइ तं णिसुणिवि भरहाणुउ जंपइ ।
जइयहुं हउं सिसुत्ति सहकीलिउ तइयहुं पइं वि किं ण परितोलिउ ।
मज्झु वि तुज्झु वि कवणु पराहउ मज्झु वि तुज्झु वि कवणु महाहउं[2] ।
जे गय ते सयल वि मग्गिवि भिसु भावइ भोउ ताहं णावइ विसु ।
तेत्थु ण काइं वि दोसु तुहारउ वंदणिज्जु तुहुं जगि गरुयारउ ।
जइ एवहिं धरित्ति ण समिच्छहि ता[3] जें दिण्णी तहु जि पयच्छहि ।
तहिं अवसरि वयणेंहि णिरोहिउ मंतिहिं भूमिणाहु संबोहिउ ।
सुउ संताणि थवेवि महाबलि गउ केलासु परायउ भुयबलि ।
घत्ता—वणु जंतु मुयंतु णरिंदसिरि महि महंतु अहिमाणिउ ।।
साकेयहु राउ विसण्णमणु मंतिहिं मंडइ आणिउ ।।५।।

६

एत्तहि गिरिवरि बाहुबलीसें अइदूराउ पणावियसीसें ।
णिट्ठाणिट्ठउ णट्ठाणट्ठउ दिट्ठउ भट्ठदुट्ठकम्मट्ठउ ।
अइदट्ठोट्ठरुट्ठपाविट्ठहिं हेट्ठाकोट्ठगयहिं दप्पिट्ठहिं ।
जो णउ दीसइ कुंठियवायहिं मंसासिहिं मज्जवहिं सवायहिं ।
वयणुग्गयगहीरजयकारें सो जिणु संथुउ तेण कुमारें ।
रोसु तुज्झु रोसेण व णिग्गउ राउ ण याणहुं संझहि लग्गउ ।
पइं मेल्लिवि दोसु[3] वि दोसायरि थियउ कलंकमिसेण व ससहरि ।
तुह झाणग्गिभएण व णट्ठउ मोहु मोहणोसेंहिहिं पइट्ठउ ।
पइं तासिउ वड्ढारियसंगउ लोहु वि सव्वलोहभावं गउ ।
कंदप्पहु वि दप्पु पइं साडिउ कालहु उप्परि कालु भमाडिउ ।
तुहुं णिग्गंथु अणीहियगंथउ तवणियमं थउ दावियपंथउ ।
विज्जा णावइं पइं जम्मंबुहि उल्लंघिउ तुहुं रवि हरि हरु विहि ।
एम देउ गरु भत्तिइ वंदिवि मिच्छादुक्किउ गरहवि णिंदिवि ।
णावइ भवतरुमूलुप्पाडणु करिवि ससिरवरि चिहुरुप्पाडणु ।
घत्ता—सर पंच वि घल्लिय वम्महेण धणु रइ बिण्णि वि मुक्कइं ।।
पडिवण्णइं पंच महव्वयइं पयजुयपाडियसक्कइं ।।६।।

---

५. १. MBP किं ण पइं मि । २. P adds after this : तुहुं जि जेट्ठु महु सामि महारउ । ३. MPK तो । ४. MBP मंडइं ।

६. १. MBP पणामिय° । २. G कुट्ठिय° । ३. P दोसु दोसायरि । ४. MP मोहणोसहहिं । ५. MB सव्वु लोह° । ६. MBT °मत्थउ; T records a *p* : तेम णिमत्थउ इति पाठे ज्ञानावरणविनाशकः । ७. MB गरहेवि; P गिरिहिं वि । ८. MBP ससिरि वरचिहुरु° ।

५

"सज्जनकी करुणासे सज्जन द्रवित होता है।" यह सुनकर भरतानुज बाहुबलि कहता है—"जब मैं शैशवमें तुम्हारे साथ खेलता था, तब क्या तुमने मुझे नहीं उठाया था। मेरा और तुम्हारा कौन-सा पराभव। मेरा-तुम्हारा कौन-सा महायुद्ध। जितने भी लोग गये हैं वे बहानेकी खोज करके गये हैं, उनको भोग ऐसे लगे जैसे विष हो। वहाँ भी तुम्हारा कोई दोष नहीं है, तुम जगमें महान् और वन्दनीय हो। यदि इस समय तुम धरतीकी इच्छा नहीं करते तो जिसने तुम्हें यह दी है, वह उसीको दो।" उस अवसरपर मन्त्रियोंने मना किया, और भूमिनाथको अपने शब्दोंमें सम्बोधित किया। महाबलि अपने पुत्रको परम्परामें स्थापित कर चले गये और कैलास-पर जा पहुँचे।

घत्ता—नरेन्द्रश्री और धरतीको छोड़ते हुए और वनको जाते हुए महान् अभिमानी विषण्णमन राजा भरतको मन्त्रियों द्वारा बलपूर्वक अयोध्या ले जाया गया ॥५॥

६

यह कैलास पर्वतपर अत्यन्त दूरसे सिरसे प्रणाम करते हुए बाहुबलीश्वरने निष्ठामें निष्ठ, अनिष्टका नाश करनेवाले, दुष्ट आठ कर्मोंके नाशक जिनवरको देखा। बड़ी-बड़ी दाढ़ों-ओठोंवाले क्रोधी और पापियों, अधोमुख बैठे हुए घमण्डियों, कुण्ठित प्रमाणवादियों और मांस खानेवाले, मद्य पीनेवाले चाण्डालोंके द्वारा जो नहीं देखे जाते, ऐसे जिन भगवान्की शब्दोंसे निकलती हुई जय-जयकार ध्वनि करनेवाले कुमारने स्तुति की—"हे देव, क्रोध तुम्हारे क्रोधसे ध्वस्त हो गया, राग भी मैं जानता हूँ सन्ध्यासे जा लगा, दोष भी तुम्हें छोड़कर चन्द्रमामें स्थित हो गया है, वह उसमें कलंकके रूपमें दिखाई देता है। तुम्हारी ध्यानरूपी अग्निके भयसे नष्ट हुआ मोह औषधियोंमें प्रवेशकर गया है। तुमने शत्रुसंगमको बढ़ानेवाले, सबके (स्वर्णादि के) प्रति लोभ बढ़ानेवाले लोभको सन्त्रस्त कर दिया है। कामदेवके दर्पको तुमने नष्ट कर दिया, और कालके ऊपर कालको घुमा दिया। आप परिग्रहको नहीं चाहनेवाले निर्ग्रन्थ हैं, आप तपके नियममें स्थित और पथ-प्रदर्शक हैं। विद्यारूपी नावसे तुमने जन्मरूपी समुद्रको लाँघ लिया, तुमने रवि, हरि, शिव और ब्रह्माको पार कर लिया।" इस प्रकार भारी भक्तिसे वन्दना कर मिथ्यादुष्कृतियोंको बुरा-भला कह और निन्दित कर, जैसे संसाररूपी वृक्षके मूलको उखाड़नेके लिए अपने सिरके बालोंको उखाड़कर—

घता—उन्होंने अपने पाँचों बाण डाल दिये, काम और रति दोनोंको छोड़ दिया, और जिनसे इन्द्र चरणोंमें आकर पड़ता है, ऐसे पाँच महाव्रतोंको उन्होंने स्वीकार किया ॥६॥

७

णत्थि उवाणहाउ सयणासणु मुक्कउं छत्तु असेसु विहूसणु ।
विसहइ दंसमसयसीउण्हइं[1] छुहजणदुव्वयणाइं संयण्हइं ।
चरिय णिसेज्ज सेज्ज रइ अरइ वि वहबंधणु गयजण वणवसइ वि ।
सीह सरह तणु लग्ग ण वारइ मुणि जच्चिवण्णेहि[2] चित्तु ण पेरइ ।
जल्लमलेहिं मि लित्तउ अच्छइ वउसक्कारु किं पि ण समिच्छइ ।
असुहसुहेसु समत्तणु मण्णइ विविहातंक रोय अवगण्णइ ।
लोयकएहिं ण मुज्झइ दोहिं मि सक्कारेहिं पुरक्कारेहिं मि ।
अइंसण[3] अलाहु रिसिसारउ पण्णपरीसह सहइ भडारउ ।
वयसमिदिंदियरुंभणु लोउ वि अच्चेलकावासयजोउ[4] वि ।
ण्हाणविवज्जणु महिसंसोवणु दंताधोवणु[5] कयठिदिभोयणु ।
घत्ता—वणि णिवसइ दुक्खसयइं सहइ ण चवइ थोवउ जेंवइ ॥
परमित्ति करइ णिद्द वि जिणइ मणु वेरग्गें भावइ ॥७॥

८

एम चरंतु चरित्तु सुदुच्चरु[1] महि विहरंतु पइट्ठु वणंतरु ।
तहिं थिउ एक्कु वरिसु लंबियकरु वेल्लीवलयहिं वेढिउ णं तरु ।
जासु अंगि पयघट्टियसिंगहं कंडुविणोउ सरइ सारंगहं ।
जासु वच्छि फणिमणि पविराइउ बहुसो विसहरेहिं हाराइउ ।
जासु गत्तु कयमयजलण्हवणउं जायउ करिहिं करडकंडुयणउं ।
चरणंगुट्ठयणक्खि णिहिज्जइ सरहलु वणयरणरहिं णिसिज्जइ ।
देहि चडंति जासु सुरघरिणिहिं उलूरिय लय णहयरतरुणिहिं ।
तणुकंतीइ जासु हयछाया हंस वि हरियवण्ण संजाया ।
जासु रत्तकंदासिइ[3] वट्टइ पण्हिय सूयरु घोणइ[4] घट्टइ[5] ।
घत्ता—आसण्णइं जासु मुणीसरहो तवपहावउवसंतइं ॥
करि केसरि णउलइं फणिउलइं सह हिंडंति रमंतइं ॥८॥

९

एक्कहिं दियहि पउत्तु सपत्तिइ[1] तासु भरहु गउ वंदणहत्तिइ ।
थुणइ णराहिउ पयपडियल्लउ पइं मुएवि जगि को वि ण भल्लउ ।
पइं कामें अकामु पारद्धउ पइं राएं अराउ कउ णिद्धउ ।

---

७. १. MBP सतण्हइं; T सयण्हइं । २. B जच्चिवहे । ३. MBP अद्दंसणु । ४. M अच्चेलक्क आवासय-जोइ वि; B अच्चेलक्क पवासयजोउ वि । ५. MP दंताधोयणु; B दंताभोयणु ।
८. १. BP सुदुद्धरु । २. MBP णं वेढिउ । ३. MBPK कंदासइ । ४. MB घोणें; P घोणिहि । ५. B घुट्टइ ।
९. १. BP °भत्तिइ ।

७

न तो उनके पास जूते हैं, न शयन और आसन। उन्होंने अशेष आभूषण और छत्र भी छोड़ दिये। वह दंशमशक, शीत और उष्णता सहन करते हैं। क्षुधा, लोगोंके दुर्वचन (क्रोध) और तृष्णा सहन करते हैं। चर्या, निषद्या, शय्या, स्त्री, अरति, लोगोंके चले जाने और वनमें रहनेपर, वधबन्धन, सिंह-शरभ और तृणके शरीरसे लगनेपर भी वह निवारण नहीं करते, मुनि याचनामें भी अपने चित्तको नहीं लगाता, सूखे पसीने और मलसमूहसे लिप्त होनेपर भी वह स्थित रहते हैं, व्रतसत्कार वह कुछ भी नहीं चाहते। अशुभ और शुभमें वह समता भाव धारण करते हैं, विविध आतंक और रोगोंकी अवहेलना करते हैं, लोगोंके द्वारा लगाये गये दोषोंसे भी वह मूच्छित नहीं होते। मुनियोंमें श्रेष्ठ अदर्शन और अलाभ (परीषह) प्रज्ञा परीषह भी वह आदरणीय सहन करते हैं। व्रत-समिति और इन्द्रियोंका निरोध, केशलोंच अचेलकत्व वासयोग, स्नानका त्याग, धरतीपर शयन, दाँत नहीं धोना और मर्यादाके अनुसार भोजन करना।

घत्ता—वनमें निवास करते हैं, सैकड़ों दुःख उठाते हैं, सहते हैं, बोलते नहीं, थोड़ा खाते हैं। सीमित नींद लेते हैं, मनको जीतते हैं, वैराग्यकी भावना करते हैं ॥७॥

८

इस प्रकार कठोर चरितका आचरण करते हुए धरतीपर वह विहार करते हुए वनके भीतर प्रविष्ट हुए। वहाँ वह एक वर्षपर हाथ लम्बे करके स्थित रहे। मानो लताओंके वेष्टनोंसे वृक्षको घेर लिया हो। उनके अंगपर पैरोंसे सींग घिसते हुए हरिणोंका खाज खुजलाना होता है। उनके वक्षपर नागमणि विराजित है, और बहुत-से विषधरोंसे हारकी तरह आचरण कर रहा (हार-जैसा लग रहा है)। उनका शरीर हाथियोंकी मदजलोंसे स्नान करनेवाली सूँड़ोंके खुजानेका साधन हो गया। उनके चरणोंके अँगूठोंके नखपर तीरफलक रखे जाते हैं और वनचर मनुष्यों द्वारा पैने किये जाते हैं। सुरबालाएँ और नभचर तरुणियाँ उनके देहपर चढ़ जाती हैं और लताओंको तोड़ती हैं। उनकी शरीरकी कान्तिसे निष्प्रभ होकर हंस भी हरे रंगके हो गये हैं। उसकी रक्त कन्दशयके समान एड़ी है जिससे सूअर अपनी नाक रगड़ता है।

घत्ता—उस मुनीश्वरके तपके प्रभावसे शान्त पास बैठे हुए सिंह और गज, नागकुल और नकुल साथ-साथ रमण करते हैं और घूमते हैं ॥८॥

९

एक दिन पुत्र भरत अपनी पत्नीके साथ उन बाहुबलिकी वन्दना-भक्तिके लिए गया। पैरोंमें पड़कर राजा उसकी स्तुति करता है—"आपको छोड़कर जगमें दूसरा अच्छा नहीं है, आपने कामदेव होकर भी अकामसाधना प्रारम्भ की है। स्वयं राजा होकर भी अराग (विराग) से

पइं बालें अबालगइ जोइय पइं अपरेण वि [2]परि मइ ढोइय ।
पइं णियभुयबलेण हउं जोक्खिउ पइं जि पुणु वि कारुण्णें रक्खिउ ।
पइं महु दिण्णी पुहइ [3]संहत्थें तुहुं [4]परमेसरु जगि परमत्थें ।
पर[5]उवयारि धीर दमवंता महि मुएवि णियमेणुवसंता ।
पइं जेहा जगगुरुणा जेहा एक्कु दोण्णि जइ तिहुयणि तेहा ।
अत्थि रसणफंसणरसलालस अम्हारिस घरि घरि जि कुमाणुस ।
रोसवंत हियपर विस्संभर पावबहुल परवस अप्पंभर ।

घत्ता—हा मइं बहुकम्मपरव्वसेण विसयबलाइं ण महियइं ॥
एक्कहो णियजीवहु कारणिण जीवसयाइं वि वहियइं ॥९॥

१०

इंदचंदवंदारयवंदें तहिं अवसरि बाहुबलिमुणिंदें ।
एक्कु जीवहु गुण मणि भाविय [1]राय रोस दोण्णि वि उड्डाविय ।
तिण्णि वि सल्लइं हियउद्धरियइं तिण्णि वि रयणइं लहु [2]संभवियइं ।
तिण्णि वि [3]डंभ मुक्क संखेवें गारव तिण्णि विवज्जिय देवें ।
चउगइकम्मणिबंधण[4]रमियउ सण्णउ चत्तारि वि उवसमियउ ।
पंचमहव्वयाइं अविहंडइ पंचासवदारइं [5]णिच्छड्डइ ।
पंचिंदियइं कयाइं णिरत्थइं पंच वि णाणावरणइं गंथइं ।
[6]छावासयउज्जमु [7]संविसेसिउ छज्जीवहं दयभाउ पयासिउ ।
छह लेसहं [9]परिणामु [8]वइट्टइं छ वि दव्वइं पच्चक्खइं दिट्ठइं ।
सत्त भयाइं हयाइं गहीरें सत्त यि तच्चइं णायइं धीरें ।
अट्ठ वि मय णिट्ठविय अदुट्ठें अट्ठ सिद्धगुण भरिय वरिट्ठें ।
णवविहु बंभचेरु परिपालिउ णवपयत्थपरिमाणु णिहालिउ ।

घत्ता—[10]दसविहु जिणधम्मु [11]वियाणियउ एयारह हयजडिमउ ॥
[12]अवियारहं धीरहं सावयहं बारह भिक्खुहुं पडिमउ ॥१०॥

११

तेरह किरियाठाणइं मुणियइं तेरहभेय चरित्तइं गणियइं ।
[1]चोद्दह गंथमला वि समुज्झिय चोद्दह भूयगाम सइं बुज्झिय ।
पण्णारह पमाय मेल्लंतें पुण्णपावभूमिउ जाणंतें ।

---

२. B सरे मइ । ३. M समत्थें, but records a *p* सहत्थें । ४. MB परमेसर । ५. MBP °उवयार° ।

१०. १. BP राय दोस । २. MBP संभरियइं; K संभवियइं but corrects it to संभरियइं । ३. MBP वेय । ४. P रसियउ । ५. BP णिच्छंडइ । ६. B छावासउ । ७. PK सुविसेसिउ । ८. B उवट्ठइ । ९. MBP परिणामु । १०. MB दहविहु । ११. MP वियारियउ । १२. M अविबारह, but records a *p* अवियारहं ।

११. १. B चउदह ।

स्नेह किया है, बालक होते हुए भी आपने पण्डितोंकी गतिको देख लिया है। अपर (जो पर न हो) होते हुए भी आपने पर (अरहन्त) में अपनी मति लगायी है। तुमने अपने बाहुबलसे मुझे माप लिया है। और तुम्हींने फिर करुणाभावसे मेरी रक्षा की है। तुमने अपने हाथसे मुझे धरती दी है, वास्तवमें तुम्हीं जगमें परमेश्वर हो। दूसरोंका उपकार करनेमें धीर और शान्त। जो धरतीका परित्याग कर अपने नियममें स्थित हो गये। तुम्हारे-जैसे और विश्वगुरु ऋषभनाथ-जैसे मनुष्य इस दुनियामें एक या दो होते हैं। लेकिन हम-जैसे रसना और स्पर्शकी लालसा रखनेवाले खोटे मानुष घर-घरमें हैं। क्रोधी, दूसरोंका हरण करनेवाले, विषसे भरे पापबहुल, पराधीन और अपनेको भरनेवाले।

घत्ता—हा ! मैंने बहुकर्मोंके परवश होकर विषयबलोंको नष्ट नहीं किया और एक अपने जीवके लिए सैकड़ों जीवोंका बध किया ॥९॥

१०

उस समय इन्द्र, चन्द्र और देवोंके द्वारा वन्दनीय बाहुबलि मुनीन्द्रने एक जीवके ही गुणका चिन्तन अपने मनमें किया। राग ओर द्वेष दोनोंको उड़ा दिया। हृदयसे तीनों शल्योंको निकाल दिया। और तीन रत्नों (सम्यक्दर्शन, ज्ञान और चारित्र्य) को अपने मनमें उत्पन्न किया। संक्षेपमें उन्होंने तीनों प्रकारके दम्भ छोड़ दिये। देवने तीन गौरव छोड़ दिये। चार गतियों और कर्मोंके निबन्धनमें रमनेवाली चारों संज्ञाओंको शान्त कर दिया। उनके पाँच महाव्रत अखण्डित थे और पाँच आस्रव-द्वार नष्ट हो चुके थे। उन्होंने पाँचों इन्द्रियोंको व्यर्थ कर दिया था और पाँच ज्ञानावरणकी ग्रन्थियोंको भी। विशेष रूपसे छह आवश्यकोंमें उद्यम किया था। छह प्रकारके जीवोंमें दयाभाव प्रकाशित किया था। छहों लेश्याओंके परिणाम शान्त हो गये, छहों द्रव्य प्रत्यक्ष दिखाई देने लगे। गम्भीर उन्होंने सातों भयोंको समाप्त कर दिया, उस धीरने सातों तत्त्वोंका ज्ञान प्राप्त कर लिया। सदय उसने आठों मदोंका नाश कर दिया, उस वरिष्ठने आठों सिद्ध गुणोंका स्मरण कर लिया। उसने नौ प्रकारके ब्रह्मचर्यका परिपालन किया, नवपदार्थ-परिमाणको देख लिया।

घत्ता—दस प्रकारके जिनधर्मको और अविकारी धीर श्रावकोंकी जड़मतिको नष्ट करने-वाली ग्यारह प्रतिमाओं तथा मुनियोंकी बारह प्रतिमाओंको जान लिया ॥१०॥

११

उन्होंने तेरह प्रकारके क्रिया स्थानोंको समझ लिया और तेरह प्रकारके चारित्रोंको गिन लिया, चौदह परिग्रह मलोंको छोड़ दिया, प्राणियोंके चौदह भेदोंको जान लिया है। पन्द्रह प्रमादोंको छोड़ते हुए पुण्य-पापकी भूमिको जानते हुए सोलह प्रकारकी कषायोंको शान्त करते

सोलहविह कसाय पसमंतें सोलहविहवयणेसु रमंतें ।
अवि य असंजमोह सत्तारह जाणिवि संपराय अट्ठारह ।
इउणवीस वि णाहज्झयणइं वीसविहइं असमाहीठाणइं ।
एक्कवीस सबल वि णिरु णीसहं सहिवि दुवीस[3] दुसज्झ परीसह ।
तेतीस वि सुत्तयडइं सुत्तइं चउवीस वि जिणतित्थइं होंतइं ।
पंचवीस भावणउ धरंतें छव्वीस वि पुहवीउ णियंतें ।
सत्तवीस जइगुण सुमरंतें[6] ।
अट्ठवीस णियचित्ति समप्पिवि पवँरायारकप्प पवियप्पिवि ।
एउणतीस वि दुक्कियसुत्तइं तीस मोहठाणइं बलवंतइं ।
एक्कतीस मलवाय थुणंतें जिणुवएस बत्तीस मुणंतें ।
घत्ता—थिरु सुक्कझाणु आऊरियउ घाइचउक्कु पणट्ठउ ॥
उप्पाइउ केवल मणिवरेण लोयालोउ वि दिट्ठउ ॥११॥

१२

तो सुर चल्लिय समउ सुरिंदें तारायणु चल्लिउ सहुं चंदें ।
णरवइ धाइय समउ णरिंदें उरय समागय सहुं धरणिंदें ।
तेहिं कसायविसायवियारउ संथुउ सिरिबाहुबलि भडारउ ।
रायचक्कु पइं तणु परिगणियउं कम्मचक्कु झाणाणलि हुणियउं ।
देवचक्कु तुह अग्गइ धावइ चक्कु वि चक्किहि रमणु ण भावइ ।
पइं दिट्ठइं रिसि[3] राउ ण वड्ढइ पइं मुएवि को णरयहु कड्ढइ ।
जीवरासि णिब्भँरु विहडंती विहुरंभोहिविवरि णिवडंती ।
भोयासत्तएण मुहंईसरु दिक्ख लेवि णिज्जिउ चक्कीसरु ।
को किर भणइ तुज्झ समाणउ तुहुं जि मुंडकेवलिहिं पहाणउ ।
एम थुणंतें बुद्धिसमिद्धें इंदें वेउव्वियउ खणद्धें ।
घत्ता—पउमासणु चवलु चमरजुयलु एक्कु जि छत्तु मणोहरु ॥
दीसइ पप्फुल्लिउ पंडुरउ णं तवसरि इंदीवरु ॥१२॥

---

२. MBP °वयणें सुमरंतें । ३. P दुसज्झ दुवीस । ४. MBP संतइं । ५. P सुअरंतें । ६. MBP add after this : पुणु वि तेण मुणिणा भयवंतें । ७. P एम ण यारकप्प । ८. MBP जिणउवएस । ९. P लोयालोय ।

१२. १ MBP read the first two lines as : ता सुर चल्लिय समउ सुरिंदें, उरय समागय सहुं धरणिंदें; णरवइ धाइय समउं णरिंदें, तारायणु चल्लिउ सहुं चंदें । २. MB वयणु; P रयणु; T रमणु रमणीयम् । ३. MBP सिरिराउ । ४. MBP णिरु भवि हिंडंती । ५. MBK विवडंती । ६. P सुहईसरु । ७. BPK णिज्जिउ । ८. K भण्णउं and gloss भणामि । ९. MBP हरियासणु धवलु ।

हुए, सोलह प्रकारके वचनोंमें रमण करते हुए और भी सत्तरह असंयम मोहनीय, अट्ठारह सम्पराय मोहनीय, उन्नीस प्रकारके नाह-ध्यान (नाथध्यान), बीस असमाधिस्थानों, इक्कीस मन्द अपवित्र कार्यों और बाईस असाध्य परिसहोंको सहकर। तेईस सूत्रकृतांग-सूत्र और चौबीस जिनतीर्थोंमें होते हुए, पच्चीस भावनाओंको धारण करते हुए, छब्बीस क्षेत्रोंको देखते हुए, सत्ताईस मुनिगुणोंको स्मरण करते हुए अट्ठाईस मूलगुणोंको अपने मनमें समर्पित कर प्रवर आचारकल्पके प्रति अर्पित कर, उनतीस दुष्कृत सूत्रों, तीस बलवान् मोहस्थानों और इकतीस मलपापोंको नष्ट करते-हुए और बत्तीस जिनगुणोंका मनन करते हुए—

घत्ता—स्थिर शुक्लध्यानकी अवतारणा कर चार घातिया कर्मोंको नष्ट कर दिया। मुनिवरको केवलज्ञान उत्पन्न हो गया और उन्होंने लोकालोकको देख लिया ॥११॥

१२

तब देवेन्द्रके साथ देव चले। तारागण चन्द्रमाके साथ चले। राजा लोग नरेन्द्रके साथ दौड़े। साँप धरणेन्द्रके साथ आये। उन्होंने कषाय और विषादको नष्ट करनेवाले आदरणीय बाहुबलिकी स्तुति की—"आपने राजचक्रको तिनकेके समान समझा, कर्मचक्रको ध्यानाग्निमें आहुत कर दिया और देवचक्र आपके सामने दौड़ता है, चक्रवर्तीका चक्र सुन्दर नहीं लगता। हे मुनि, आपको देखनेसे राग नहीं बढ़ता, आपको छोड़कर कौन निश्चित रूपसे नष्ट होती हुई और विधुर समुद्रके विवरमें पड़ती हुई जीवराशिको नरकसे निकाल सकता है? पृथ्वीश्वरने कामकी आसक्तिसे दीक्षा लेकर कामदेवको जीत लिया। तुम्हारे समान किसे कहा जा सकता है, आप मुण्ड केवलियोंमें प्रमुख हैं।" इस प्रकार बुद्धिसे समर्थ इन्द्रने स्तुति करते हुए आधे पलमें विक्रियासे—

घत्ता—पद्मासन चपल चमरयुगल एक ही सुन्दर छत्र जो ऐसा दिखाई देता है मानो तप-रूपी नदीमें इन्दीवर हो ॥१२॥

१३

पयणियजणणमरणविड्डमरइ संसमंतु भावग्गयतिमिरइं ।
देंतु देसजइजइवरचरियइं संबोहंतु भव्वपुंडरियइं ।
पायपोमपाडियसंकंदणु[1] भूमि भमंतु सुणंदाणंदणु ।
गउ केलासहु पावपरंमुहु समवसरणि णियतायहु संमुहु ।
आसीणउ पसण्णु पसमियकलि देउ समाहि बोहि महु सुयबलि ।
भायरणाण[2]लंभसंतुट्ठउ एत्तहि णरणा[3]रीयणदिट्ठउ ।
उज्झाणयरिहि भरहु पइट्ठउ उरपमाणि हरिवीढि बइट्ठउ ।
वज्जंतहिं जयवज्जणिहायहिं गाइयणारयतुंबुरुगेयहिं ।
दरिसियमेइणिरिद्धिविहोयहिं उव्वसिरंभाणट्टविणोयहिं ।
मंडलियहिं मंडिय[4]णियचक्खहिं अहिसिंचिउ मंगलघडलक्खहिं ।
घत्ता—चउसट्ठि सरीरइ लक्खणइं बहु[5]वंजणइं अणिंदहो ॥
जं णिहिलहं भारहणर[6]वइहिं तं बलु भरहणरिंदहो ॥१३॥

१४

वण्णु तत्ततवणीयपहायरु सासणु जासु चक्क[1]लच्छीहरु ।
वज्जरिसहणारायणिबंध[2]उ समचउरंसु ठाणु रुइरिद्धउ ।
पुण्णपहावें अतुलु वि लद्धउ छ[3]क्खंडु वि महिमंडलु सिद्धउ ।
दोण्णि तीस सहसाइं सुदेसहं दोसत्तरि पुरवरहं पयासहं ।
णवइ णव जि दोणामुहसहसइं पट्ट[4]णाहं अडदाल सहरिसइं ।
खेडहं सोलह ताइ पउत्तइं चोद्दह संवाह[5]णहं णिरुत्तइं ।
कलवकणिसभरभारियसीमहुं छण्णवइ जि कोडिउ वरगामहुं ।
सत्तसयाइं कुकुच्छिणिवासहं पंच[6] तहं मि धरियपरिहासहं ।
अट्ठवीस वणदुग्गइं रिद्धइं छप्पण्णंतरदीवइं सिद्धइं ।
सहसट्ठारह मेच्छ[7]णरेसहं बत्तीस जि मंडलिय[8]महीसहं ।
घत्ता—देवीहिं दुतीस बत्तीस पुणु मेच्छ[9]णराहिवदिण्णहं[10] ॥
बत्तीससहस [11]अवरुद्धियहं णिरु णिरुवमलायण्णहं ॥१४॥

---

१३. १. MBPT सक्कंदणु । २. MBP णाणलंभि । ३. MBP °णारीयणि । ४. MBP खंडियसवि-वक्खहिं । ५. M बहुवेंजणइं; BP बहुविंजणइं । ६. M °णरवरहिं ।

१४. १. MBP चक्कु । २. MBP °णिबद्धउ । ३. MBP छक्खंड । ४. MP पट्टणाइं । b ५. MBP संवाहणइं । ६. MBP पच्चंतहं । ७. M मेंछ° । ८. P °सहासहं । ९. M मेंछ° । १०. MBP °कण्णहं । ११. MP अवरुद्धियहं ।

१३

जन्म और मृत्युके प्रेम और भयको नष्ट करनेवाले भावोंमें उत्पन्न होनेवाले अन्धकारको शान्त करते हुए, एकदेशचरित्र और सकलदेशचरित्र प्रदान करते हुए, भव्यरूपी कमलोंको सम्बोधित करते हुए, चरणकमलोंमें इन्द्रको झुकाते हुए, सुनन्दानन्दन पापसे पराङ्मुख बाहुबलि भूमिपर विहार करते हुए कैलास पर्वतपर गये। अपने पिताके समवसरणमें सम्मुख बैठे हुए पापको नष्ट करनेवाले हे बाहुबलि मुझे ज्ञान और समाधि प्रदान करें। तब भाईके ज्ञानलाभसे सन्तुष्ट और नरनारीजनके द्वारा देखे गये भरतने अयोध्या नगरीमें प्रवेश किया और अपने वक्षःस्थलके समान ऊँचे सिंहासनपर बैठ गया। बजते हुए जयविजय वाद्यों, गाये जाते हुए नारद तुम्बुरुके गीतों, दिखाये जाते हुए धरतीके ऋद्धि विभागों, उर्वशी और रम्भाके नृत्य विनोदोंके साथ एकत्रित हुए राजाके पक्षसमूहोंके द्वारा लाखों मंगल-कलशोंसे उसका अभिषेक किया गया।

घत्ता—अनिन्द्य शरीरपर चौसठ लक्षण और बहुत-से व्यंजन चिह्न थे, जो समस्त भारत-नरेश्वरोंका बल था, उतना बल अकेले भरतराजके पास था ॥१३॥

१४

जिसका रंग तपे हुए स्वर्ण और सूर्यके समान था, जिसका शासन चक्र और लक्ष्मीको शोभा धारण करता था, जिसका शरीर वज्रवृषभ नारायण बन्ध और समचतुरस्र संस्थानवाला तथा कान्तिसे समृद्ध था। पुण्यके प्रभावसे उसने अतुलको प्राप्त कर लिया और छह खण्ड धरती भी सिद्ध हो गयी। साठ हजार सुदेश थे, बहत्तर हजार श्रेष्ठ नगर थे। निन्यानबे हजार द्रोणा-मुख गाँव थे और अड़तालीस हजार पट्टन थे। सोलह हज़ार खेड़े और निश्चित रूपसे संवाहन, धान्यके अग्रभागोंके भारसे दबे हुए क्षेत्रवाले छियानबे करोड़ उत्तम गाँव थे। सात सौ रत्नोंको खदानें, उनमें-से पाँच तो दूसरोंका उपहास करनेवालीं, अट्ठाईस हजार समृद्ध वनदुर्ग थे और छप्पन अन्तरद्वीप सिद्ध हुए। अठारह हजार म्लेच्छ राजा और बत्तीस हजार माण्डलीक राजा।

घत्ता—म्लेच्छ नराधिपोंके द्वारा दी गयीं बत्तीस (दो और तीस) फिर बत्तीस हजार और भी अत्यन्त अनुपम लावण्यवती, अविरुद्ध म्लेच्छ राजाओंके द्वारा दी गयीं बत्तीस हजार स्त्रियोंसे युक्त था ॥१४॥

१५

घरि भावाणुविभावपयासइं णडहं [1]णडंति दुतीससहासइं ।
चउरासीलक्खइं[2] मायंगहं तेत्तीय[3] जि रहाहं सरहंगहं[4] ।
तइं[5]कोडिउ किंकरहं अहंगहं अट्ठारह भणियाउ तुरंगहं ।
चुज्झिहिं कोडि रसायणरसियहं सट्ठइं[6] तिण्णि सयइं भाणसियहं ।
करिसणि णंगर[7]कोडि पयट्टइ फलभारेण धरित्ति[8] विसट्टइ ।
कालणामु णिहि देइ विचित्तइं वीणावेणुपडहवाइत्तइं ।
णिवहु महाकालु वि संजोयइ पंडु[9] देइ णाणाविहवण्णइं ।
[10]सालिवीहिपमुहइं बहुधण्णइं असिमसिकिसिउवयरणइं ढोयइ ।
णेसप्पु वि सयणासणभवणइं वत्थइं पोमु पिंगु आहरणइं[11] ।
अत्थइं सत्थइं [12]माणवु देंतउ संखु ण थाइ सुवण्णु वहंतउ
सव्वरयणणिहि सव्वइं रयणइं देइ सिरीवहु उरयलि णयलइं

घत्ता—असि चक्कु दंडु छत्तु वि धवलु पहरणसालहि जायइं ॥
कागणि मणि चम्मु वि सिरिभवणे[13] सइं णरणाहहु आयइं ॥१५॥

१६

रुप्पयमहिहरि सोहियवयणहं संभउ हरिकरिणारीरयणहं ।
पच्छइ पुणु संपत्तइं णरवइ घर[1]वइ थवइ पुरोहिउ बलवइ ।
चत्तारि वि हूयइं साकेयइ घरसिरधयवारियरवितेयइ ।
णव णिहि ते वि तहिं जि संभूया संपाइयइच्छियहलरूया ।
णिच्चमेव तणुरक्खालुद्धहं सोलहसहस सुरहं गणबद्धहं ।
विविहं[2]घरइं कणयधरणियलइं विविहासणइं विविहसयणयलइं ।
विविहइं छत्तइं मुत्ता[3]दामइं विविहइं आहरणाइं सकामइं[4] ।
विविहइं वत्थइं कयवं[5]डसोक्खइं विविहइं सरसइं भोयणभक्खइं ।
को सो[6] वंसु कासु सुकइत्तणु को वण्णइ चक्कवइपहुत्तणु ।

---

१५. १. M णडंतिउ; B णडंतिहुं । २. MBP लक्खहं । ३. MBP तेत्तियइं । ४. MBP सारंगहं । ५. M तईयकोडिउ । ६. B सड्ढइं । ७. MBP लंगल° । ८. M धरत्ति° । ९. MBP omit this foot । १०. MBP omit this foot । ११. MBP add after this : सव्वइं धण्णइं सव्वरसोहइं, पंडु वि णिहि वि देइ अविरोहइं । १२. MBP माणउ । १३. M °भुवणे ।

१६. १. MB घर घर । २. MBP विविहइं घरइं । ३. P मोत्तिय° । ४. MP संकामइ । ५. MB कयउवसोक्खइं । ६. M सइ ।

१५

उसके घर भाव और अनुभावका प्रदर्शन करनेवाले बत्तीस हजार नट नृत्य करते थे। चौरासी लाख हाथी, तैंतीस लाख चक्रसहित रथ, तीन करोड़ अभंग अनुचर, अठारह करोड़ घोड़े, एक करोड़ चूल्हे, तीन सौ साठ सुन्दर रसोई बनानेवाले रसोइये। खेतीमें एक करोड़ रथ चलते थे। फलोंके भारसे धरती फूटी पड़ती थी। काल नामकी निधि विचित्र वीणा, वेणु और पटह आदि वाद्य देती थी। महाकाल भी राजाके लिए असि, मषी, कृषि आदि उपकरणोंका संयोजन करती थी। पाण्डुक निधि नाना रंगके व्रीहि (शालि) प्रमुख अनेक प्रकारके धान्य प्रदान करती थी। नैसर्प निधि शयन, अशन और भवन। पद्म वस्त्रोंको, पिंग आभरणोंको अस्त्र-शस्त्र माणव देती थी। स्वर्ण ढोते हुए शंखनिधि नहीं थकती थी। समस्त रत्ननिधियाँ सब प्रकारके रत्नों और लक्ष्मी उसके उरतलपर अपने नेत्र प्रदान करती थी।

घत्ता—असि, चक्र, दण्ड, धवल छत्र उसकी आयुधशालामें उत्पन्न हुए। कागणी मणि और चर्म मणि भी अपने आप राजाके भाण्डागारमें आ गये ॥१५॥

१६

विजयार्ध पर्वतपर शोभित मुख अश्व, गज और स्त्रीरूपी रत्नोंकी उत्पत्ति हुई। उसके बाद राजाको गृहपति, स्थपति, पुरोहित और सेनापति प्राप्त हुए। अपने गृहशिखरोंके ध्वजोंसे सूर्यके तेजका निवारण करनेवाले ये चार रत्न साकेतमें उत्पन्न हुए। जो नवनिधियाँ थीं वे भी उसे प्राप्त हुईं कि जो अभिलषित फलरूपोंको सम्पादित करनेवाली थीं। जहाँपर देहरक्षामें दक्ष गणबद्ध सोलह हजार देवोंके विविध घर और स्वर्णधरणीतल थे, विविध आसन और विविध शयनतल थे। विविध छत्र, मुक्तामालाएँ, चित्तमें अनुराग उत्पन्न करनेवाले विविध आभरण, शरीरको सुख देनेवाले विविध वस्त्र और विविध सरस भोजन। वह कौन-सा विधाता है, वह

णारी रयणँत्तणविक्खायइ खेयररायवंससंजायइ ।
रूवें सोहग्गें लायण्णें णेहें रइयसुरयणेउण्णें ।
अब्भुयभूयइ जणमणमहइ सुहुं भुंजंतउ समउ सुहद्दइ ।
घत्ता—सिरिरमणीवरघणथणजुयलँसिहरुप्पेल्लियउरयलु ॥
थिउ उज्झहि भरहणराहिवइ [11] पुप्फदंततेउज्जलु ॥१६॥

इय महापुराणे तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारे महाकइपुप्फयंतविरइए महाभव्वभरहाणुमण्णिए महाकव्वे भरहविलासवण्णणं णाम अट्ठारहमो परिच्छेओ समत्तो ॥ १८ ॥

॥ संधि ॥ १८ ॥

७. MBP रयणत्तणि । ८. M समुद्दइ । ९. MB °रवणी° । १०. M °जुयलु । ११. MB पुप्फयंत°; P पुप्फयंतु ।

कौन-सा सुकवित्व है ? चक्रवर्तीकी प्रभुताका वर्णन कौन कर सकता है ? स्त्रीरूपी रत्नत्वके लिए विख्यात, विद्याधर कुलमें उत्पन्न आश्चर्यके रूपमें उत्पन्न जनमनका मर्दन करनेवाली सुभद्राके साथ रूप, सौभाग्य, लावण्य एवं और कामके नैपुण्यकी रचनाके द्वारा सुख भोगता हुआ—

घत्ता—जिसका वक्षःस्थल लक्ष्मीरूपी रमणीके श्रेष्ठ सघन स्तनयुगलके शिखरोंसे पीड़ित है ऐसा भरत अयोध्यामें रहने लगा ॥१६॥

इस प्रकार त्रेसठ महापुरुषोंके गुणालंकारोंसे युक्त महापुराणमें महाकवि पुष्पदन्त द्वारा रचित और महाभव्य भरत द्वारा अनुमत महाकाव्यका भरत-विलास वर्णन नामवाला अठारहवाँ परिच्छेद समाप्त हुआ ॥१८॥

NOTES

[*The references in these Notes are to Saṃdhis in Roman figures and Kaḍavakas and lines in Arabic figures.*]

[The Poet offers homage to Ṛṣabhanātha, the first of the Tīrthaṃkaras, and to the goddess of learning, and declares his intention to compose a Mahāpurāṇa. By way of introduction the poet says that once in the Siddhārtha year (881 of the Śaka era, i. e., 959 A. D.) he arrived at the outskirts of the town of Mepāḍi (Mānyakheṭa, modern Malkheḍ) and being fatigued with a long journey rested there in the grove. Two men of the town, Annaīya and Indarāya, approached him and requested him to visit the minister Bharata who would give him a good reception. The poet was at first unwilling to do so because of his bitter experiences at the court of king Bhairava *alias* Vīrarāja, but these men assured him that Bharata was quite a different person and would receive him well. Accordingly the poet saw Bharata, was well-received, and rested there for a few days. Bharata then requested the poet to compose a Mahāpurāṇa so that he would make the right use of his poetic gifts, and offered him all help. The poet was at first unwilling, because he was afraid of the wicked who criticised even good works. Bharata asked him not to mind them. The poet then modestly said that he was not competent to undertake the task as he was ignorant of the great philosophical systems, works of the poets of the past, works on grammar, rhetoric and metrics, still he would undertake the task out of devotion to the personages figuring in the Mahāpurāṇa. The poet thereupon invoked the aid of Gomukha Yakṣa of Ṛṣabhadeva and of Padmāvatī Yakṣiṇī, the goddess of learning.

The poet proceeds: There is in the Jambūdvīpa a country called Magadha with its capital Rājagṛha. King Śreṇika was one day seated in his court with Cellaṇādevī, when a messenger brought to him the report that Mahāvīra had arrived at the garden outside the city. The king immediately rose form his seat to pay homage to him and recited a prayer glorifying him.]

1. The poet pays homage to Risaha, the first Tīrthaṃkara.

1. *3a* सुपरिक्खिय, सम्यग् ज्ञात्वा, T., having undrstood well the animate and inanimate divisions of the world. *3b* दिव्वतणु, निःस्वेदत्वादिदशातिशयोपेतशरीरम्, T., the Jina possesses a body which is divine, i. e., it possesses ten excellences such as absence of perspiration. The number of atiśayas which a Jina possesses is 34. See Abhidhāna Cintāmaṇi I. 57-64. Of these ten are peculiar to the body of the Jina. See IV. 2. *4a* पयडियसासयपयणयरवहं, प्रकटितः शाश्वतपदनगरस्य मोक्षस्य पन्था मार्गो रत्नत्रयरूपो येन तम्, T., one who preached the path leading to the city of eternal abode, i. e. emancipation or Siddhi. *5a* सुहसीलगुणोहणिवासहरं, शुभाः प्रशस्ताश्च ते शीलगुणाश्च तेषामोघः समूहस्तस्य निवासगृहम्, T., the home of a large number of auspicious qualities. *10a* चित्तलियणहं कर्बुरिताकाशम्, T. The sky was rendered variegated by flowers which Indra dropped down from heaven. *15b* मत्तासमयं, the poet wants to suggest incidently the name of the metre which is मात्रासमक. 17 जासु तित्थि, यस्य तीर्थे, in whose preachings.

2. The poet pays homage to the five dignitories of the Faith, usually called पञ्चपरमेष्ठिन्, viz., तीर्थंकर, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय and साधु, and also invokes the aid of the goddess of learning.

2. *3b* कोमलपयाइं, कोमलानि चक्षुःप्रीतिजनकानि श्रोत्रमनःसुखदानि च, पयाइं पदन्यासाः पदरचनाश्च, T. The poet describes the goddess of learning under the image of a fair woman; all the epithets used are therefore applicable to सरस्वती as well as स्त्री. *5a* छंदेण जंति, going at will (applicable to a lady); moving in a metrical form (applicable to poetry). *6a* चोद्दसपुव्विल्ल, चतुर्दशपूर्वैः युक्ता सरस्वती, स्त्री तु चतुर्दशैः (?) पूर्वैः पूर्वपुरुषैर्युक्ता मात्रन्वये हि सप्त पुरुषास्तत्पतेः (?) पित्रन्वये च सप्तेति, T. The goddess possesses fourteen Pūrva books, ancient texts of the Jainas, now lost; the woman possesses purity of seven ancestors on the mother's side and seven on the father's side. दुवालसंगि; सरस्वती द्वादशाङ्गैर्युक्ता, स्त्री तु—

नलया बाहू य तहा णियं च (णियंब ?) पुट्ठी उरो य सीसं च ।
अट्ठेव दु अङ्गाइं सेस उवङ्गा दु देहस्स ॥

इत्यष्टौ, 'कर्णनासिकानयनोष्ठाश्चत्वार इति द्वादशाङ्गैर्युक्ता, T. The twelve aṅgas are the famous books of the Jain Canon such as आचाराङ्ग etc. The woman's body also is fancifully divided into twelve parts, two legs, two arms, the hips, back, chest, head, ears, nose, eyes and lips. *6b* सत्तभंगि, सरस्वती सप्तभङ्गोपेता स्त्री तु सत्तभंगि धैर्यरहिता प्राणिषु कौटिल्ययुक्ता च, T. It would be better to interpret सत्तभंगि applicable to a woman as सत्त्वभङ्गिनी पुरुषाणां धैर्यनाशिका.

3. 3 *a-b* भुवणक्केरामु तुडिगु, कृष्णराजः तस्येदं बिरुदम् T. We know that the Rāṣṭrakūṭa kings had a number of *Birudas*; we have in Puṣpadanta's works a few others such as Śubhatuṅga (see I. 5. 2a and note thereon) and Vallabhadeva.

तुडिंगु seems to be of Kannaḍa origin. 7*b* मायंदगोंछगोंदलियकीरि, आम्रलुम्बिमीलितशुके, (garden) where parrots have gathered on the blossom of mango trees. गोंदलिय comes from गोंदल, a Deśī word. which means a gathering. Compare गोंधळ, गोंधळी in Marathi. 9*b* खंड means पुष्पदन्त ; so also अहिमाणमेरु in 12*a* below. 14 वर or वरि, an explative of frequent occurrence, means 'it is better,' 'I would rather prefer.' 15 म णिहालउ सूरुग्गमे, let him not see in the morning the face of a king who is under the influence of the wicked.

4. Drawbacks of royalty condemned.

4. 3*a* सत्तंगरज्ज, kingdom with its seven constituents, viz., स्वामी, अमात्य, सुहृत्, कोश, राष्ट्र, दुर्ग, and बल. 4*a* विससहजम्मइ, fortune born along with हालाहल poison at the time of the churning of the ocean.

5. Bharata glorified.

5. 3*a* पाययकइकव्वरसावउद्धु, connoisseur of tha flavour of the poems of Prakrit poets. This epithet has a special significance, probably because Prakrit poetry was not much admired or understood and even ignored altogether at this rime.

6. The poet's reception at the house of Bharata, and his proposal to him to compose a Mahāpurāṇa.

6. 9*a* देवीसुएण, by the son of Devī, i. e., by Bharata.

7. The poet shows his timidity to undertake the task because of the wicked who censure even good works like the Setubandha of Pravarasena.

7. 3a. गोवज्जिएहिं etc. This series of epithets have double meaning : one applicable to घणदिण etc. and the other applicable to the wicked.

8. Bharata assures Puṣpadanta that wicked people are always like that and that the wise should pay no heed to them.

8. 7*b* भुक्कउ छणयंदहु सारमेउ, let the dog bark at the full moon. 9*b* कव्वपिसल्लएण, another epithet of Puṣpadanta; compare कव्वपिसाय, कव्वरक्खस.

9. The poet, by way of modesty, shows that he is not qualified to undertake the Mahāpurāṇa, and yet he does so out of devotion to the adorable persons.

9. 1*a* अकलंक etc. For these writers see notes at the bottom of the page, and also Introduction to Ṇāyakumāracariu, page XXIII. 13*b* कुडवेण मवइ को जलणिहाणु, who can measure the waters of the ocean by means of a Kuḍava, a small measure ? 17 विवरोक्खए किं अक्खइ, why should I say at the back ? i. e.,

I say it openly, I challenge the people to point out drawbacks in my work if they notice any.

10. The poet invokes the aid of Gomuha Yakṣa and Cakkesarī Yakṣiṇī who are the guardian deities of ऋषभ, and of the goddess of learning.

10. 14 जो णरु भसइ णिब्बंधहो, he who barks at my work.

11. The location of the Magadha country.

12. Description of Rājagṛha, its capital.

12. 9*b* मंथामंथियमंथणिरवाइं, मन्थेन रविकया मथितात्द्धिलोडितान्मन्थनीरवाः शब्दा यत्र, T., where there are sweet songs of churning women when they are engaged in the act of churning. It is the practice of cowherd women to sing sweet songs at the time of churning.

13. Description of the outskirts of Rājagṛha.

13. 11*b* संगहु सिरिणयणंजणहु णाइं, it was, as it were, a storehouse, संगहु, of collyrium of श्री. The lotus flower, with a black bee sitting in it, appeared to be a collyrium box of the goddess of beauty.

14. Description of the town of Rājagṛha.

14. 9*b* अण्णाणिय णाइं कुसासणेहिं, like ignorant people who are misled by false doctrines (कु + शासन).

15. Description of Rājagṛha continued.

16. King Śreṇika described.

18. King Śreṇika receives the report of the arrival of Mahāvīra.

18. 6*b* चउदेवणिकाय, the four classes of gods are : भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क and वैमानिक. 7*a* चउतीसातिसय, the Arhats possess thirtyfour atiśayas or excellences which are enumerated in Hemacandra's Abhidhāna Cintāmaṇi and several other works. See page 5, notes of Miss Johnson's Translation of Triṣaṣti. 9*b* अट्ठविहपाडिहेर, these Prātihāryas, miraculous possessions of Arhats, are eight viz., अशोक, सुरपुष्पवृष्टि, दिव्यध्वनि, चामर, सिंहासन, भामण्डल, दुन्दुभि and त्रिछत्र. 10*b* विउलइरि, is a small hill in the neighbourhood of Rājagṛha. 15 पुप्फयंततेयाहिय, the poet puts his name in the last line of a Saṃdhi of each of his three known works. It is thus his अङ्क, or mark, and is interpreted in several ways, but more frequently as चन्द्र and सूर्य, and the Tīrthaṃkara of that name. The term पुप्फयंत is at times paraphrased by पुप्फदसण, कुसुमदसण etc. भरत, the poet's patron, is also mentioned in the Ghattā lines. The term भरत also may be regarded as another अङ्क of the poet and is interpreted as भारतवर्ष or भरत, the first Cakravartin.

II

[King Seṇiya, on hearing the news of the arrival of Mahāvīra, proceeds along with his retinue to see him. After paying his respects to the Jina, the king asked his disciple Goyama to recite to him the Mahāpurāṇa which he does.

Goyama then begins his narration by first mentioning the divisions of time, the Kulakaras and their countribution to the civilization of the Universe. The last of these Kulakaras was Nāhi (Sk. Nābhi), and his queen was Marudevī. Now Indra remembered that a Jina was to be born in their house and therefore ordered Dhaṇaya, i. e., Kubera, to make the town of Ujjhā (Ayodhyā) gay and pleasant so that it should be a fit place for the birth of the Jina.]

1. 6*b* णं वररायवित्ति रिउदारिणि, a lady who took in her hand a कुवलय, i. e., a lotus flower, is compared to royalty (वररायवित्ति) which also holds कुवलय, i. e., the globe of the earth, and chastises the enemies (रिउदारिणि).

2. 13 जणजणणत्तिहर, (Jina) who removes the misery (अत्ति-आर्ति) of birth (जणण) of the people. 14. भुवणंभोरुहदिवसयर, the sun to the lotus, viz., the universe; the Jina gladdens the universe as the sun blooms the lotus.

3. 5–11. These lines contain a long epithet of Jina वरुण...सिरणमणमउडयलमणिसलिलधुयविमलकमकमल, (Jina) who lotus-like feet are washed by waters flowing from the gems in the coronets of वरुण and other gods when they bend their heads (सिरणमण) before him. 35 मइं णेज्जसु पंचमगइहे, you will please lead me to the fifth गति, i. e., सिद्धावस्था, emancipation from संसार, the first four गतिs being देव, नारक, तिर्यक् and मनुष्य.

4. 7*a* णाइ णंतु भाविणिहि णिरुत्तउ, there is no beginning (न + आदि) and no end (न + अन्त) to the list of the coming Jinas, i. e., the number of the future Jinas is infinite. 8–9 कालु अणाइउ etc. Time has no beginning and no end; i. e., it is infinite. Time is an associating cause of change in the Universe. It has no flavour, no odour, no colour and no weight. Time in abstract (निश्चयकाल) is marked by its fleeting i. e., constantly passing (प्रवर्तन). 12 ववहारकालु, Time as understood in our daily practice.

5. 3*b* पियकारिणितणएं, by महावीर who is the son of प्रियकारिणी, popularly known as त्रिशला. Compare कल्पसूत्र, 109, where the name given is पीइकारिणी. 10*a* ताडिज्जइ, गुण्यते, T., is multiplied.

6. 10*a* भेज्जउ, भेद्य; divisible, to be divided.

8. 4–5 उच्छप्पिणि, i. e., उत्सर्पिणीकाल is defined as one in which strength, prosperity, height of the body, piety, knowledge, gravity and courage are on

the increase; ओसप्पिणि, i. e., अवसर्पिणीकाल is one in which these qualities are on the decrease. 7*b* दहविहविडवि, the ten कल्पवृक्षs, enumerated in the foot-notes.

9. 3*a* पडिसुइ, the first कुलकर of the Jain mythology. 4*a* अममभियाउ, having life of the length of an अमम, a large number. The other कुलकरs or मनुs mentioned in 9 and 10 are : सम्मइ, खेमंकर, खेमंधर, सीमंकर, सीमंधर, विमलवाहु, चक्खुभउ (चक्षुष्मान्), जसस्सि, अहिचंद, चंदाह, मरुदेव, पसेणइ and णाहि (नाभि).

11. 1 The first कुलकर explained to the world, i. e., discovered for the first time, the functions of the sun and the moon who were not noticed by the people upto this time because the world was full of the light supplied by the कल्पवृक्षs. The second discovered the stars and planets. Similarly each कुलकर contributed something towards the human civilization. The last कुलकर i. e. नाभि, discovered the method of cutting the नाल of children, and also discovered clouds which, by rain, rendered the earth full of various crops so that nobody felt the absence of the कल्पवृक्षs. He also discovered fire, the art of cooking and weaving for the benefit of humanity.

17. 5*b* सुयरइ सुरवइ णियमणि तइयहुं, Indra, on learning that a तीर्थंकर is to be born at a particular place, orders Dhaṇaya, i. e. Kubera, to make the city beautiful and rich, so that it becomes fit for the birth of a Jina.

19. 1*a* छुडु छुडु—Hemacandra in his grammar under IV. 422 gives छुडु as a substitute for यदि. I do not think that छुडु always means यदि; in fact the usual sense of छुडु seems to be क्षिप्रम् which sense suits the context here as well as elsewhere. The marginal notes in Mss. here render it as यदा but I do not think it to be correct.

III

[The birth of a Jina in Jain works is described in such a monotonous way that we are often tempted to think that we are in the field of mythology rather than that of history. When the parents of a Jina are determined, Indra orders Kubera to make the town of his parents beautiful and fit to be worthy of such event. The Jina in the immediately preceding birth is born in heaven. Six months before his period of life in heaven is to end, Indra sends six goddesses, सिरि, हिरि, दिहि, कंति, कित्ती, and लच्छी to the earth to purify the womb of the lady where the Jina is to be born. They then come to the mother of the Jina and wait upon her as her maids. The mother then sees sixteen objects (according to the Śvetāmbara tradition, fourteen) in a dream towards the end of the night. She sees her husband the next morning and tells him that she saw, the previous night, sixteen dreams. The husband then explains to her the

fruit of her dreams which in substance is that she would be the mother of a Jina. The Jina then descends into the womb in the form of some object (in the case of Ṛṣabha, the first Tīrthaṃkara, a white bull). Gods attend this event. There is shower of gems sent by Kubera. Jina is then born in due course. Gods headed by Indra arrive at the birth-place of the Jina, see the Jina born go round him three times, offer him prayers. Indra then hands over to the mother a babe produced by his magic, takes away the Jina to the mountain Meru, puts him on a jewelled seat and gives him a ceremonious bath, the waters of which, flowing over the mountain Meru, are subsequently saluted by all gods. Indra then recites some hymns in praise of the Jina, and then brings him back to his parents. This event is usually called a कल्लाण (Sk. कल्याणक) or more particularly जिनजन्माभिषेककल्याण. These events are almost monotonously described in the life of a Jina, but Puṣpadanta has on every occasion, enlivened the details with his poetic skill. The particulars about Risaha, the first Tīrthaṃkara are :—

(1) Town of birth—Ayodhyā.
(2) Parents—Nābhi and Marudevī.
(3) Descent in the womb—as a white bull.
(4) Date of Descent—month Āṣāḍha, dark half, second day, Uttarāṣāḍhā Nakṣatra.
(5) Date of birth—month Caitra, a dark half, ninth day, Sunday, Uttarāṣāḍhā Nakṣatra, Brahma yoga.
(6) Name—Risaha, Ṛṣabha or Vṛṣabha.]

4. 9*a* णिवप्रंगणंति, in the courtyard of the king. Although Prakrits in general do not allow conjunct consonants with र्, we get such conjuncts in Apabhraṃśa. See Hemacandra IV. 398 and 399. Of our Mss. G and K only give conjuncts with र् while MBP do not. I have therefore considered G and K to preserve older recension of our text on this account as also on account of their retaining forms with ऋ such as मृग, सुय etc. 11 सइ, i. e., मरुदेवी.

5. This Kaḍavaka gives the list of sixteen objects which Marudevī sees in a dream, and which foreshadows the birth of a Jina. The Śvetāmbara tradition differs from the Digambara one in that they mentions only fourteen objects of the dream (चोद्दस महासुमिण). Compare कल्पसूत्र 4, and 32-47.

गय वसह सीह अभिसेय दाम ससि दिणयरं झसं कुम्भं ।
पउमसर सागर विमाणभवण रयणुच्चय सिहिं च ॥
एए चउदस सुविणे सव्वा पासेइ तित्थयरमाया ।
जं रयणिं वक्कमंई कुच्छिसि महायसो अरिहा ॥

These objects, according to the Digambara tradition, are :—

(1) An Elephant breaking open the mountain slopes.
(2) A Bull loudly roaring.
(3) A roaring Lion.
(4) Goddess Lakṣmī being bathed in waters from the trunks of the elephants of the quarters (दिसागअ). The Śvetāmbaras designate this under अभिसेय.
(5) Wreaths, two in number, of fresh flowers.
(6) The rising moon.
(7) The rising sun.
(8) A pair of Fish.
(9) A pair of Jars filled with water.
(10) A fine lotus-pond.
(11) A surging sea.
(12) A royal seat marked which lion's head (सिहासन). The Śvetāmbaras omit this object ftom their list.
(13) A heavenly palace or mansion-house.
(14) A palace of snakes or of the king of snakes (नागभवन); this object is omitted in the list of the Śvetāmbaras.
(15) A heap of Gems.
(16) Burning Fire.

It will be seen from above that the Śvetāmbaras omit 12 and 14 from the above list and thus reduce the number of objects to fourteen.

7. 5*a* सोलह वि तवभावणाओ पहावेवि, having meditated upon the sixteen forms (भावना) of penance such as दर्शनविशुद्धि etc. These भावनाs are :—दर्शनविशुद्धिः, विनयसंपन्नता, शीलव्रतेष्वनतिचारः, अभीक्ष्णं ज्ञानोपयोगः, अभीक्ष्णं संवेगः, शक्तितस्त्यागः, शक्तितस्तपः, साधुसमाधिः, वैयावृत्यकरणम्, अर्हद्भक्तिः, आचार्यभक्तिः, बहुश्रुतभक्तिः, प्रवचनभक्तिः, आवश्यकापरिहाणिः, मार्गप्रभावना and प्रवचनवत्सलत्वम्. Compare also नायाधम्मकहाओ, VIII. 64; तत्त्वार्थाधिगमसूत्र VI. 24.

19. 14 तहु देसहु मइं णेहि, take me to that region where there is no birth etc., i. e., to the region of the Siddhas.

21. 11*a* विसु धम्मु तेण भाइ त्ति, the Jina is called वृषभ because he shines forth (भाइ, भाति) by विस (वृष), i. e., धर्म or piety.

IV .

[Prince Risaha grew in the royal house in ideal surroundings. He possessed ten bodily atiśayás or excellences such as bodily purity, want of

perspiration etc. He grew strong and powerful and young. His father then thought of getting him married. The prince was at first unwilling, but being pressed by the king, agreed to be married to जसवई and सुणंदा, daughters of the kings of Kaccha and Mahākaccha. The marriage was celebrated with great pomp. On the evening of the celebration, under the moon-lit sky, a concert was arranged by celestial nymphs with dance, music and singing. The ceremony was rounded off by gifts which the king made to everybody so as to satisfy all his desires.]

1. 10*a* उत्ताणसेज्ज, lying on his back the young boy was looking up, but the poet fancies that he is watching the path to emancipation which, as it were, goes in the upward direction. 15*a* दर देंतें पयाइं, while walking slowly in the childhood. 16*b* चउसट्ठि वि कलाउ, sixty-four arts, and not seventytwo as with the Śvetāmbaras. For that list see Rāyapaseṇiyasutta or Paēsilahāṇayaṃ, para 39 and my note thereon.

2. The Kaḍavaka mentions some of the atiśayas which a Jina possesses.

3. 10*a* जो कप्परुक्खु सो कट्ठु कट्ठु, the so-called wish-tree is, alas ! a mere log of wood.

4. 14*b* अम्माहीरएण, स्वदेशस्त्रीबालप्रसिद्धरागध्वनिना, T., i. e., lullaby or song to make the baby sleep. 15 होहुल्लरु जो जो, these are the expressions which the mother uses to make the baby sleep.

9. 10*a* चंदोवचीणपट्टेहिं छइउ, covered with fine canopy (चंदोव) of China cloth.

10. 3*a* सुहाइ, सु + भाति shines forth.

17. 2*b* दुद्धुं व धोयउ, दुग्धेनेव धौतः, as if washed or bathed in milk. Note that दुद्धुं is the Inst. sing. from which is obtainable by a confusion of अनुस्वार of the Instr. (Cf. Hemacandra IV. 342) and उ of the Nom. and Acc. 4*a* आउज्जहुं जेण मुहेण वासु, the arrangement of the musical instruments for a concert is described here, which arrangement is called पच्चाहार or प्रत्याहार. 9*b* कम्मारवी is an act of cleaning the musical instruments. 10*b* उद्दिक्खणु किउ हिंदोलएण, the introductory notes of the हिंदोलराग were sung first. 11*b* कउ णच्चणीहिं पुणु तहिं पवेसु, the dancing girls then entered presenting the three methods of keeping time (ताल), viz. वण्ण, छडय and धारा. T adds :—समस्तनाटकार्थवर्णनाद्वर्णतालः, शृङ्गाररसाभिनयश्छटकातालः, वीररसाभिनयो धारातालः.

18. The various technical terms of the art of dancing have been explained and their subdivisions enumerated in T. which I quote fully here :— चारी पदप्रचारः, सा द्वात्रिंशत्प्रकारा, तत्र समपादा स्थितावर्ता सकटास्या अध्यर्द्धिका चापगतिः विच्यवा एलका

क्रीडिता बद्धा उरुद्वृत्ता आदिता उच्छंदिता वा जतिता स्यंदितजिनिता अपस्यंदिता मतुली मत्तली चेति षोडश भौम्यार्यः; अतिक्रांता अपक्रांता पार्श्वक्रांता अर्द्धजानुः सूची नूपुरपादिका दोलापाला पादा आक्षिप्ता आविद्धा उद्घृता विद्युद्भ्रांता आलता भुजंगत्रासिता हरिणप्लुता भ्रमरी चेत्येताः षोडश कांसोद्भवाश्चार्यः. 3*b* अंगवलनं अंगहारः, स च स्थिरहस्तकः सूचीविद्धः आक्षिकः कटीछेदः विष्कंभः अपरातः आस्रोडः भृश्चिकः भ्रमणमदादिविलसित इत्यादिविकल्पात् द्वात्रिंशत्प्रकारः. 4*b* शरीरमनेकधा प्रतिष्ठाप्य क्रियंते इति क र णा नि. तलपुष्पपुटं वर्तितं अपविद्धं लीनं स्वस्तिकं अर्धस्वस्तिकं अर्धस्वस्तिकरेचितं निकूटकं अलातं उन्मत्तं ललाटं तिलमित्याद्यष्टोत्तरशतसंख्यानि. दि ण्णु दत्तानि 5*a* च उ द ह वि सी स. उक्तं च—

अकंपितं कंपितं च धुतं विधुतमेव च ।
परिवाहितमाधूतमथाचितनिकुंचितं ॥
× × × पराहृतमक्लिप्तं चाप्यधोगतं ।
लोलितं प्रकृतं चेति चतुर्दशविधं शिरः ॥

5*b* भू तं ड व इं नृत्यानि सप्त—

आक्षेपः पातनं चेव भ्रुकुटिश्चतुरं भ्रुवोः ।
कुंचितं रेचितं कर्म सहजं चेति सप्तधा ॥ इत्यभिधानात् ।

6*a* ण व गी व उ । तदुक्तं—समानता आनता अस्ता रचिता कुंचिता कंचिता चिता ललिता च निवृता च ग्रीवा नवविधा स्मृता. 6*b* छ त्ती स वि दि ट्ठी उ—तथाहि कांता भयानिका हास्या करुणा अद्भुता रौद्रा वीरा बीभत्सा चेत्यष्टौ रसदृष्टयः; स्निग्धा हृष्टा दीना क्रुद्धा तृप्ता भयान्विता जुगुप्सिता चेत्यष्टौ स्थायिभावदृष्टयः; स्तान्पांमलिना (?) श्रांता सलज्जा ग्लाना शंकिता विषण्णा मुकुला अभितता जिह्मललिता वितर्किता कुंचिता विभ्रान्ता विप्लुता ककिकरा (?) विकोसा त्रस्ता मेदिरा चेति षट्त्रिंशद् दृष्टयः 7*a* अं ति मे त्या दि

शृंगार (?) बीभत्सा हास्यरौद्रभयानकाः ।
करुणाद्भुतशांताश्च........रसा स्मृताः ॥

तत्राष्टौ रसा अंतिमरसवर्जिताः.

ज णि य भा व

रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा ।
जुगुप्सा विस्मयश्चाष्टौ स्थायिभावाः प्रकीर्तिताः ॥
स्तंभस्तनूरुहोद्भेदा (?) द्रुदः स्वेदवेपथू ।
वैवर्ण्यमश्रु प्रलय इत्यष्टौ सात्त्विकाः स्मृताः ॥

तनूरुहोद्भेदो रोमांचः । वेपथुः कंपः, वैवर्ण्यं ग्लानता निर्वेदः, ग्लानता निर्वेदग्लानिः, शंकाभ्रमधृतिजडताहर्षदैन्योग्रचिंतात्रासेर्ष्यामर्षगर्वाः स्मृतिमरणमदाः सप्त निद्राविबोधा व्रीडाऽपस्मारमोह शमनिरलसताऽऽवेगतर्काविहृच्छ्याध्युन्मानादौ विषादौत्सुक्यचपलयुतास्त्रिशादतेत्रयश्च (?) । अपस्मारः उंमारी (?) । तर्कः विमर्शः । उवहित्थ आकारगोपनं युताः संबद्धा इति । 8*a* अ वे त्या दि अपराप्यपूर्वभावेभ्यो विलक्षणाः. भा वा णु भा व भावानुभावेभ्योऽनु पश्चाद्भवतीत्यनुभावाः तच्चतुर्विधा (?) मानो (?) वाग्बुद्धिशरीराश्च य दर्शिताः. 9*a* फु र ण इं स्फुरणानि शरीरगतानि. 10*b* छ ड्डु ण य प ओ एं नृत्योपसंहारहेतुस्तालविशेषश्छड्डुणकप्रयोगस्तेन. The Ms. of T. is illegible at numerous places, but as the contents seemed to me to be important I have reproduced them.

V

[One day Jasavaī, the wife of Risaha, saw in a dream the mount Meru, the sun, the ocean and the entry of the globe into her mouth. She told this dream to Risaha who told her that she would get a son who would be a sovereign ruler. In course of time, Jasavaī bore a son who was named Bharaha (Sk. Bharata). As the boy grew the father himself taught him various arts as also the science of government, duties of different castes and classes, and the principles of inter-state relations. Jasavaī bore ninty-nine more sons, Vasahasena etc., and one daughter named Bambhī. Sunandā also bore one son named Bāhubali and one daughter named Sundarī. Bharaha himself taught both the daughters the various literary and fine arts. Now once it so happened that there occurred a severe famine which worked a havoc on the people. They came to Risaha and asked for relief. He then taught the people various arts and professions. When he attained the age of twenty lacs of pūrva years, he was put on the throne by king Nābhi.]

2. 8*b* छक्खंड वि मेइणि, the six continents of the भारतवर्ष. The भारतवर्ष, according to Jain cosmology is bounded on the North by Himavanta Mountain; right through its centre passes the Veyaḍḍha (Sk. Vaitāḍhya) mountain from east to west; the rivers Gaṅgā and Sindhu pass through it form North to South; it is in this way that it is divided into six Khaṇḍas or continents. A Cakravartin rules over all these six continents of the भारतवर्ष. 10*b* अहमिन्दु or अहमिन्द्र is a god of a very high class residing in the ग्रैवेयक or अनुत्तरविमान heaven.

3. 2 तिहुयणवइजयंकरेहारहियं, The loss of folds on the belly of Jasavaī, as a result of her pregnancy, is here considered by the poet as the wiping off of the marks of victory over the lords of three worlds. It means that the son that is to be born to Jasavaī will wipe off all marks of supremacy so far held by kings whom he will subdue.

5. 7*a* खुल्लउ कीडुल्लउ, a small insect (क्षुद्रः कीटकः).

6. 13*a* चित्तलेप्पसिलवरतरुकम्मइं, painting, plaster-work (लेप्प), sculpture, and wood-work.

7. 2 गिरिथणि....विसयं पयासए, explains (to Bharaha) the subject of governance of his consort, viz., the earth (गिरिथणिघरणि) with mountains standing for her breasts.

8. 12 पढमुवाउ, प्रथमः उपायः, i. e., resolution, resolve.

9. *7a* करेवा, See for the formation of Potential participles Hemacandra IV. 438. *9a* अय तिवरिस जव, the goats to be offered in sacrifices are and should be यव corn three years' old. *13a* जिणपडिमापूयणु, worship of the images of the Jinas. This is clearly an anachronism unless we accept that Risaha means by it not himself but the Jinas of the past. To a Jain his religion has no beginning and there were Jiṇas in the past.

11. *8b* कामुप्पण्णु चउविहु दारुणु, the four व्यसनs or addictions, viz., woman, gambling, wine and hunting.

12. 1 एक्कंतरिउ मित्तु णिरंतरु सत्तु. In the मण्डल or द्वादशराजचक्र, the immediate neighbour is an enemy while the next one is a friend (एकान्तरितं मित्रम्, निरन्तरः शत्रुः). The immediate neighbour is often in conflict with him because of the common boundary, while the next one is to be on good terms with him in order that both of them have the middle one as their common enemy. *8b* अट्ठारहतित्थहं, the eighteen तीर्थs are :—

> सेनापतिर्गणकमन्त्रिपुरोहिताश्च वर्णा बलौघबलवत्तरदण्डनाथाः ।
> श्रेष्ठीमहंमहत्तर इतरश्च महाद्यमात्योऽमात्यो वदन्ति दश चाष्ट च तीर्थमार्याः ॥
>
> —Marginal gloss in K.

The वर्णs in the above list are ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य and शूद्र; the बलौघ is the fourfold division of the army. viz., हस्ती, अश्व, रथ and पादात.

18. *6a* अवहंसउ i. e., अपभ्रंश which is counted as a distinct language. Note the items which were taught to ladies in those days, or even in the days of the poet.

19. 1–2 सयमह...वारिणा धुयकमकमलजुयल परमेसर, O Lord, pair of whose lotus-like feet is washed by water dropped down from the gems in the coronet of Indra. *6a* लग्गणखंभु अण्णु को अम्हहं, who, other than yourself, will be our supporting pillar ?

20. 5–11 पल्लव etc.—This passage gives a long list of the names of the countries or different parts of the भारतवर्ष.

21. 3–5 खेडइं etc.—This passage gives the list of several types of towns, villages, cities etc., such as खेड, कब्बड, मडंब, पट्टण, दोणामुह and संवाहण.

22. 4 घरि उच्छुरसु,—the race was named इक्ष्वाकु because its founder brought to his house the juice of suger-cane for drinking.

VI

[One day, while prince Risaha was enjoying his royal fortune and was engrossed in it, Indra thought of reminding him of the mission that he was expected to fulfil on the earth, viz., the propagation of the Jain faith,

and sent a celestial nymph named Nīlaṃjasā to perform a dance before him. She arrived, performed the dance and at the end of it fell down dead. Risaha, on seeing her dead, was filled with horror at the momentariness of the worldly life.]

2. 3 णियमंति जणं, the porters and peons were regulating the conduct of the people in the court-room. The Kaḍavaka mentions a large number of things which should not be done in the king's presence.

3. 5*a* भुंजंतहु महि तेसट्ठि गय, King Risaha enjoyed his kingship for sixty three lacs of the pūrva years, and still likes these worldly pleasures and is not disgusted with them.

4. 11–12 पुण्णाउस णीलंजस—If नीलंजसा who completed her period of life, dances before him and after that falls dead, the event will cause disgust for wordly life in his mind.

5. 4*b* णाहेयणिहेलणि, to the house of Nābheya, i. e., Risaha, the son of Nābhi. 6*b* वीसंगु वि पुव्वरंगु—The technical terms of dancing and music used in this Kaḍavaka and the two following are explained in T. as follows :— वी स मि त्या दि—नाटकस्येह प्रथमप्रस्तावनावतारः पूर्वरंगस्तस्य च प्रत्याहारोऽवतरणा आद्यारंभ आश्रवणा गीतविधिरुपस्थापना परिवर्तनं रंगद्वारं चारी महाचारी इत्यादीनि विंशतिरंगानि. 7*a* ति पु क्ख रु चर्मविनद्धं वाद्यं पुष्करं तत्त्रिविधं उत्तममध्यमजघन्यभेदेन. 7*b* सो ल ह अ क्ख र उ क ख ग घ ट ठ ड ढ त थ द ध स र ल ह इति षोडशाक्षरं. 8*a* च उ म ग्गु आलिप्त-अर्दित-गोमुख-वितस्ति-भेदात् चतुर्मार्गं; दु ले व णु वामलेपनं ऊर्ध्वलेपनं; छ क्क र णु रूपं कृतं परिति भेदो रूपशेषी उद्यश्चेति षट् वाद्यकरणानि; 8*b* ति य ति ल्ल उ समो श्रोतोगतिः गोपुच्छः चेति त्रियतियुक्तं; ति ल य उ द्रुतमध्यविलंबितास्त्रयो लयाः. 9*a* ति ग य उ तद्धाम नुतं उघ (?) श्चेति त्रीणि गतानि; ति प्र चा रु समप्रचारं विषमप्रचारश्चेति; ति जो य य रु गुरुसंयोगो लघुसंयोगो गुरुलघुसंयोगश्चेति त्रिसंयोगकरं. 9*b* ति क रि ल्ल उ गृहीतोऽर्धगृहीतो गृहीतमुक्तश्चेति त्रयः. 10*a* ति म ज्ज ण उ मायूरी अर्द्धमायूरी कर्मारवी चेति मार्जनकम्; 10*b* वी सा लं का र स ल क्ख ण उं अलंक्रियते वाद्यं यैस्तेऽलंकाराः प्रहारास्तैः सलक्षणं मनोज्ञं चेति विंशत्यलंकारा :—चित्रः समः विभक्तः छिन्नः छिन्नविद्धः अनुविद्धः विद्धः वाद्यसंश्रयः अनुसृतः प्रतिच्युतः दुर्गः अवकीर्णः बद्धावकीर्णः परिक्षिप्तः एकरूपः नियमान्वितः साचीकृतः समेखलः सामवायिकः दृढः चेति. 11*a* अ ट्ठा र ह जा इ हिं तथाहि—सुद्धा दुक्करणा विषमनिष्कंभितैकरूपा च पार्श्वसमापर्यस्ता समविषमकृता विकीर्णा च पर्यवसाने चितिकिसंयुक्ता संप्लुता तथारंभा विगतक्रम चललिगा वंचितिका चैकवाद्या चेत्यष्टादशजातिभिर्मण्डितम्; 12*a* च च्च उ डु चाचपुटस्त्र्यस्रस्त्रिकलतालप्रवृत्तिहेतुः; चा च उ डु चचपुटश्चतुरस्रश्चतुःकलतालप्रवृत्तहेतुः, 12*b* छ प्पि य पु त्ते वि षे (?) धिजापुत्रः (?) कोपि मिश्र उभयतालप्रवृत्तिहेतुः; म ण हा रि चचपुटीदिस्त्रिप्रकारापि (?) मनोहरः; 13*a* इ य इत्यादि एतैश्चचपुटादिभिर्वाद्यतालविषयैस्त्रीभिरलंकृता. 14*a* ओ ण द्ध उ व ज्ज उ व ण्णि य उ इत्थंभूतं यदवनद्धं वाद्यं तत्त्रिप्रकारं वर्णितं वामं ऊर्ध्वं आलिंगकसंज्ञितं चेति. द्विश्रुतिकाः स्वरो जातो निषादो गंधारश्च त्रिभुवसमश्रुतिसंख्यया त्रिश्रुतिकऋषतो धैवतश्च जलि (?) षिमसमसंख्यया चतुःश्रुतिका षडुपंचममध्यमाः. 16 थ व ल हिं स्थितमुक्ताभिः; अ द्ध हिं अर्धमुक्ताभिः कंपमानस्वरूपाभिः; मु क्कि य हिं वंशसुषिरसंधन्व-

रहिताभिः (?); व त्ता व त्तं गु लि य हिं उक्तविशेषणविशिष्टाभिव्यक्तव्यक्तांगुलिभिः व्यक्तांगुलि स्थित-स्थितांगुलि अव्यक्तांगुलि.

6. *1a* प वि र इ हं इत्यादि—वांशस्वरो जातः; कथंभूते *1b* व ज्जि य मु सि रे वादित. सुषिरे; सु अ त्थ सु इ शाश्वताः श्रुतयश्च; *3a* थि ये त्यादिना चतुःश्रुतिकादिस्वराणामुत्पत्तिप्रक्रियां प्रदर्शयति, स्थितमुक्तांगुलिः स्वरे इव; सु अ ट्ठ सु इ चतुःश्रुतिकः. *4a* कंपमानयांगुल्या उद्गतस्त्रिश्रुतिकः; *4b* मुक्तांगुल्या जातो द्विश्रुतिकः, *5a* व त्तं गु ली त्यादिनोत्पत्तिक्रमेण प्रत्येकं चतुःश्रुतिकादीनां नामानि कथयति, व्यक्तांगुलेः सुषिरोपरिस्थितांगुलेः; *6b* सा म ण्ण स रं त र स ण्णि य ए सामान्यस्वरत्वसंज्ञया युक्तः. *7b* अ द्ध ए मु क्क ए अं गु लि य ए अर्द्धया मुक्तया अंगुल्या; सामान्यसंज्ञितः स्वरो निषादः अंतरसंज्ञितो गांधारः. *9a* तं ती र णि उ वीणावाद्यं तच्च द्विविधं. *9b* णि क्क लु ते प्प वि निष्कलं त्रिपंच. *10a* घ णु इत्यादि—घनं वाद्यं कांस्यतालयुगलादिकं. *10b* स मे त्या दिसमं यौगपद्येन हस्तं दत्त्वा यत्र रंगे वादितं. *12a* उ प्प ण्ण इत्यादि—उत्पद्यमानो हि नादः प्रथमतः उ र ठा णं त र ए उरोलक्षणस्थानकविशेषे उत्पद्यते ततः कंठे ततः शिरसि. *12b* बा वी स वि सु इ उ द्विश्रुतिकयोः द्वयोः चतस्रः श्रुतयः त्रिश्रुतिकयोः षट् चतुःश्रुतिकानां त्रयाणां द्वाविंशतिश्रुतयः; *13a* क म र इ य प मा ण हिं क्रमोच्चरितसप्तेश्वरर (?) प्रमाणैर्न्नंद (?); *13b* व ड्ढं तु मंद्रमध्यमतारभेदेन यथाक्रमं उरसि कंठे शिरसि च वर्धमानो नादः स्वरः श्रुतिर्मंद्रादिरूपतया; *14b* स र स त्त सरिगमादिनामानः सरसतः स्वराः सत्त ते सु तेषु सप्तस्वरेषु; दो ण्णि जि गा म द्वावेव च ग्रामौ, षड्जग्रामो मध्यमग्रामश्च; ग्रामः समुदायः कस्मिन्ग्रामे कियत्यो जातयः संभवंतीत्याह 15 सु रे त्यादि सुरैः पूज्यः स ज्ज ए षड्जग्रामे; जा इ उ जातयः स त्त प उ त्त उ सप्त प्रयुक्ताः शुद्धाश्चतस्रः; जायंते पुष्टिं लभंते स्वरा आभ्य इति जातयः. 16 म ज्झि म ए मध्यमे ग्रामे, तिस्रः शुद्धा अष्टौ संकीर्णाः.

7. *2a* जा इ णि ब द्ध हं तासु जातिषु निबद्धानां. *2b* ल क्ख वि सु द्ध हं गीतप्रयोगविशुद्धानां. *3a* अं स हं अंसानां; स उ चा ली सा हि य उ शतं चत्वारिंशदधिकं. *3b* ए क्कु त्त रू तं पि चत्वारिंशदधिकशतं एक्कोत्तरं; प सा हि य उ प्रसाधिताः. तथा हि अष्टादशजातिषु यथाक्रमसंभवमेको द्वौ त्रयश्चत्वारि पंच षट् सप्त चासंभत्तो (?) मिलिता एक्कोत्तरचत्वारिंशदधिकशतसंख्या भवंति. *4b* गी य उ गीतयः शुद्धेत्यादिनामानः; पं च उ उ प्प णि य उ पंचोत्पन्नाः, किंस्वरूपास्ता इत्याह. *5a b* ऊयु (?) भिर्लतैः शुद्धाः सूक्ष्मैर्व्यक्तैश्च भिन्नकाः । स्वरैर्हृततरैर्गौडी हृतैरेवेति वेसराः । सर्वासां उक्तियोगात् गीतिः साधारणा स्मृता. *6a* त हिं इत्यादि तहिं मट्ठादिगीतिषु तत्संबंधत्वेनापरे परिग्रामरागाः त्रिशद्भणिताः, तत्र शुद्धगीतिसंबंधत्वे सय (?) गणनया सप्तग्रामरागाः भणिताः, भिन्नगीतिसंबंधत्वेन त्रतगण नथा पंच वेसररागाः सप्तैवमेते. *7a* क मे ण जि कथितशुद्धादिगीतिसंबंधक्रमेणैव संगृहीताः समुदितास्त्रिंशत्. *7b* उ डु मा ण ऋतुप्रमाणाः षडेव; *8a* प हि ला र उ तेषु मध्ये प्रथमः ढक्करागः. *8b* अ णु वे क्खा स म भा स हिं सा हि उ द्वादशभाषासमन्वितः; उक्तं च—कोलाहला मालववेसरा च सौराष्ट्रिका च त्रवणोद्भवा च । स्यान्मालवा सैंधविका च ताना ततः परं पंचमलक्षिता च । भाषा मध्यमदेहा च ललिता वेगरंजिका । त्रवणा ढक्करागस्य द्वादशैताः. *9a* अ ट्ठे त्या दि—आभीरी मागधी सैंधवी कौशिकी सौराष्ट्री गौर्जरी दाक्षिणात्या त्रवणा चेत्यादि अष्टभिर्भाषाभिस्सहितः; *9b* बि हि मित्यादि द्वाभ्यामेव विभाषाभ्यां अंधालीभावनिकाभ्यां संविभूषितः. *10a* आ वा हि ये त्या दि—आवाहिता आकारिता, मोहिता विह्वलीकृता जगद्विलयास्त्रियः. *10b* हिंदोलकश्चतसृणां मालववेसरिका गौडी छेवट्टिका कंबोजी चेत्यमीषां निलयः स्थानं. *11a* मा ल वे त्यादि मालवाभ्यां विभाषाभ्याम्. *12a* भि ण्णे त्यादि—भिन्नषड्जोऽपि शुद्धा त्रवण (?) भांगलो सैंधवी ललिता श्रीकंठो दाक्षिणात्येति सप्तभिः भाषाभिः कलितः युक्तः. *12b* क

कु ह इत्यादि ककुभोऽपि, आभीरी रगती भिन्नपंचमी चेति त्रिभिर्भाषाभिः; सं च लि उ संचलितो युक्तः. 13 सु इ ली ण उं श्रुत्यनुप्रविष्टः. 14 म णे त्या दि मनोहरारामकृति मल्लकृतिः डौवकृतिः गोंडकृतिरित्येवमादयः; दा वि य उ दर्शिताः.

8. 1–2 द हे त्यादि—दश चतुर्भिर्गुणिताश्चत्वारिंशत्संख्या समुदितानां भाषाणां भणिता तथा षडपि विभाषाः; 3*b* ए या र हे त्यादि—एकादशा एकविंशति षड्जादिग्रामत्रये प्रत्येकं, सप्त सप्त मूर्च्छना इत्येकविंशति, मूर्च्छंति उच्छ्रयमुन्नति लभन्तेश्चरा (?) आभ्य इति मूर्च्छना, उत्तरमंद्रा उत्तरायता रजनी अश्वक्रांता सौवीरी कालोपनता सुमध्यमाः पौरीवीत्यादयः. 4*a* ए क्कु णे त्या दि—स्वरस्य तननात्प्रयोगविस्तारात्तानाः अग्निष्टोमराजसूय-अश्वमेध-वाजपेयादियज्ञनामानस्वहा(?)नैयपुण्योत्पन्ने, ते च प्रतिग्राममेकोनपंचाशद्भेदाः प्रतिपत्तव्याः, तथा हि सप्ततंत्रीवीणायां प्रत्येकमेकैकतंत्र्या सप्त सप्त स्वराणां तननात्सप्तसप्तगुणिना एकोनपंचाशद्ग्रामे तथा मध्यमग्रामादावपि. उक्तं च-सास(?)श्चयं च सप्तानामेकैका भजते यतः । अत एकोनपंचाशत्के(?) त्याठे सहोदिताः ॥ 5*a* सं जो य ता णु तथा हि षड्जग्रामे समसद्रं(?) नानां षाडवोडंबिता, काकलि अंतरं काकल्यंतरं; स्वरसंयोगे सति पंचत्रिसप्त योगताना भवंति, एवं मध्यमग्रामेऽपि; 7*a* ते र हे त्या दि त्रयोदशाविधं शीर्षं प्रनर्तितं प्राकृतशीर्षं च (?) ज्यंते. 7*b* तथा षट्त्रिंशद्दृष्टिभिर्युक्तमेतच्च प्रागेव व्याख्यातं. 8*a* ण व ता र उ नव ताराकर्माणि । तदुक्तं—भ्रमणं चलनं पातो वलनं संप्रवेशनं । विवर्तनं समुद्गतं निष्कामः प्राकृतं तथा; ॥ 8*b* अ ट्ठ वीत्यादि अष्टौ परिचिता दर्शनगतयः; उक्तं च—सम्मंसप्पनुवृत्तं च आलोकित प्रलोकितोल्लोकितैरवलोकित (?) सा तिर्यक्. (?) 9*b* णं दे त्यादि—नवनंदास्तत्प्रकारं पुइ (?) पक्ष्मपटकर्म दर्शितं उन्मेषश्च निमेषश्च प्रसृतं कुंचितं सर्वातितं सस्फुरितं पिहितं सविताडितं. 10*a* भू स त्त भे य भू सप्तभेदा; 10*b* छव्विहेत्यादि—तत्र नासा षड्विधा, उक्तं च—नता मंदा विकृष्टा च सोच्छ्वासा सविकूणिता । स्वाभाविकी चेति बुधैः षड्विधा नासिकाः स्मृताः ॥ तथा कपोलं षड्विधं-क्षामं फुल्लं च पूर्णं च कंपितं कुंचितं सममित्यभिधानात्; तथा अधरः षड्विधः; तदुक्तं-विवर्तनं कंपनं च विसर्गो विनिगूहनं । संदष्टकं समुद्गश्च षट्कर्माण्यधरस्य च ॥ 11*a* स त्त वि हु चि वु उ सप्तचिबुकं; च उ मु ह हु राय कुट्टनं ख (?) रागाः स्वाभाविकप्रसन्नश्च रक्तः समर्थानुरोधतः प्रयोजनवशात्. 11*b* नव गला नव ग्रीवानृत्यानि उक्तलक्षणानि; च उ स ट्ठि वि क र ण भा व चतुःषष्टिरपि हस्तभेदाः पताकः कर्तरिमुखः अर्द्धचंद्रः आरालः शुकतुंडः खटकामुखः पद्मकोशः चतु (?) रंध भ्रमर इत्यादयः. 12*a* सो ल ह वि हु सर्वहस्तानां षोडशविधं कर्म । तथाहि-आकंपनं कर्षणं च उत्कर्षणमथापि च । परिग्रहो निग्रहश्च आह्वानं नोदनं तथा ॥ संश्लेषश्चदि (?) योगश्च रक्षणं मोक्षणं तथा । छेदनं भेदनं चैव स्फोटनं मोटनं तथा । ताडनं चेति विज्ञेयं ता (?) ज्ञेः कर्मकराश्रितं; तथाहि सर्वोऽपि हस्तप्रचारस्त्रिप्रकारो भवति, तदुक्तं-उत्तानः पार्श्वगश्चैव तथाधोमुख एव च । हस्तप्रचारस्त्रिविधो नाट्यवृत्तसमाश्रयः ॥ च उ वि ह वि सर्वमपि हस्तकर्म चतुर्विधं भवति, उक्तं च-अपवेष्टितमेकं स्यात् उद्वेष्टितमथापरम् । व्यावर्तितं तृतीयं च चतुर्थं परिवर्तितम्॥ 12*b* भु उ द ह वि हु वि भुजवृत्तमार्गो दशविधोऽपि कृतः, उक्तं च-तिर्यग् ऊर्ध्वगतिश्चैव तथाधोमुख एव च । आविद्धश्च प्रविद्धश्च मंडलः स्वस्तिकं तथा ॥ अजितः क्षुभितश्चैव पृष्ठतश्चेति ते दश. 13*a* ऊ रु स र वि हु उरोनृत्यं शरविधं पंचप्रकारं, उक्तं च—नतं समुन्नतं चैव प्रसारितविवर्तिते । तथापसृतमेवं तु पार्श्वकर्मापि पंचधा ॥ 13*b* पो ट्ठु वि पा य डि य उ तं ति वि हु—क्षामं खल्लं च पूर्णं च संप्रोक्तमुदरं त्रिधा । इत्यभिधानात्. 14*a* क डि य लेत्यादि कटीतलजंघाक्रमकमलानि त्रीण्यपि । तत्र कटी तावत्पंचप्रकारा, तथा हि-छिन्नावनिवृत्ता च रेचिता कंपिता तथा । उद्वाहिता चेति कटी नाट्ये वृत्त्यैव पंचधा ॥ तथा जंघा पंचधा । उक्तं च-आवर्तिता अंतःक्षिप्तमुद्वाहितमथापि च । परिवृत्तिस्तथा चैव जंघाकर्मापि पंचधा ॥ तथा क म क म ला इं पंचधा । उक्तं च-उद्वहितः समश्चैव तथाग्रतलसंचरः । अंचितः कुंचितश्चैव पादः पंचविधः स्मृतः ॥ 15*b* च ले त्यादि—चला द्वात्रिंशदंगहारा मिता परिच्छिन्ना यत्र करणान्यंगहाराश्च प्रागेव कथितानि. 16*a* च उ रे य य चत्वारो रेचकाः, तदुक्तं-पादरेचक एकः स्याद्द्वितीयः कटिरेचकः । तृतीयः

कर (?) स्वस्थस्य ग्रीवायां च चतुर्थकः ॥ 16*b* स त्ता र ह पिंडी बं ध कय-ऐश्वरी वा (?) ज्जं भोगिनी सिंहवाहिनी ऐरावती मान्मथी पद्मा पिंडीत्यादि सप्तदश पिंडीनां बंधाः कृताः. 17*a* चा रि उ सो ल ह दुय सं खि य उ चार्यः षोडश द्विकसंख्या द्वात्रिंशत्संख्याः. 18*a*. वी स वि मं ड ल इं प या सि य इं अतिक्रांतं विचित्रं ललितं संचरं आलातकं आक्रांतं आकाशगामि इत्यादि संचारिभिर्भावैः स्थायिभिश्च प्रागुक्तलक्षणैरुद्धृतैरनेकैर्नृत्यति.

VII.

[The death of Nīlaṃjasā brought about a change in Risaha's outlook of the world. He thought that everything in the universe was impermanent, momentary, helpless, solitary; the soul has to pass through a series of births and deaths, and experience sufferings, commits sins and thus prolongs his wanderings in saṃsāra. If the soul therefore wants to secure his good, he should first stop doing sinful activities so that his stock of already acquired acts does not increase, and he should practise penance in order to exhaust the stock of old acts. Thus thinking, Risaha decided to renounce the worldly life Gods at this juncture arrived there to encourage him in his resolve and requested him to propagate the Jain doctrine. Risaha then put his son Bharata on the throne of Ayodhyā, gave Poyaṇapura to Bāhubali, and sat in a palanquin to leave the worldly life. This event was celebrated by gods with their presence on the earth. Risaha was followed by his aged parents and by his wives and his ninety-nine sons. He then went to the forest, sat on a slab of stone, and pulled out five handfuls of hair. The hair was received by Indra in a jewelled plate and were disbursed in the milk-ocean. He then took the five great vows and became a naked monk.]

1. 11 तुयहि लवणु जसु उत्तारिज्जइ, a person over whom salt is passed by women, i. e., one who is so much loved by women, is taken down on a grass-bed on his death. It refers to the practice of passing salt over the body of a person that is dear to them by women in the house. It also refers to the practice of taking down the dead body from its usual bed and of placing it on straw.

2. 6*a* पण्णारहखेत्तुब्भव, born in fifteen कर्मभूमिs, i. e., five in भारतवर्ष, five in ऐरावतवर्ष, and five in विदेह. It is in one of the कर्मभूमिs that a man is able to attain any state after death as a result of his acts. 12 तियरणु चरित्तु, activities of mind, body and speech (त्रिकरणं चरित्रम्).

7. 11–12 पसु फाडिवि etc.—If a person, i. e., a Brahmin, can obtain emancipation by eating the flesh of animals and by drinking wine, what is the use of Dharma ? Wait upon a hunter (who does exactly the same things.)

10. *8a* जाउ मसाणहु तं मणुयत्तणु—Let this human life go to the burial place, as we say in Marathi मसणांत जावो, i. e., I care a straw for the human life.

11. *1a* तिप्पयारसंठाणयं, the world is divided into three sections each having a different shape; the region of demons and creatures in hell has the shape of an earthen plate (शराव) turned downwards : the region of human beings and lower animals has the shape of a वज्रमणि; the region of gods has the shape of a मृदङ्ग. *9a* मोक्खु वि आयवत्तसंणिहयरु, the place of region of emancipated souls has the shape of an umbrella.

12. *4a* पासुलियातुलाहिं, by beams made of ribs.

13. *4a* णाणावरणिउ पंचपयारउ—Acts which obscure knowledge are of five types, viz., मतिज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय, मनःपर्ययज्ञानावरणीय and केवलज्ञानावरणीय. See उत्तराध्ययनसूत्र xxxiii. 4. *5a* णवविहुदंसणु, acts which obscure दर्शन fall under nine heads:—निद्रा, निद्रानिद्रा (deep sleep), प्रचला (drowsiness), प्रचलाप्रचला (heavy drowsiness), स्त्यानर्धि (somnambulism); चक्षुर्दर्शनावरणीय, अचक्षुर्दर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय and केवलदर्शनावरणीय. See उत्तराध्ययन, xxxiii. 5–6. For other divisions of कर्म see the same text and Appendix II in Miss Helen Johnson's translation of Triṣaṣṭi. 13 तिगइ i. e., पाणियुक्ता, लाङ्गली and गोमूत्रिका, straight, curved and zigzag movements.

14. 12–13 पिहियासवदारहु etc.—If a person stops all sources of sin and conducts himself properly, new acts do not enter the soul, and those acts which long remained with it are destroyed by bodily sufferings as they do not get any nourishment.

15. *2b* होमि दियंबरो, I shall be a naked monk. The emphatic and express mention of this term here and also in 26. *15b* below and at several other places shows that the work is written form the point of view of the Digambara Jains. *10b* वेज्जवित्तिसंखाविण्णासहिं by particular permutations and combinations of morsels of food obtained by begging. It refers to the various भिक्षुप्रतिमा*s* in which food is regulated on the basis of counting the दत्ति or dole obtained or the morsels to be eaten. See below 16. *3a*.

16. 12–13 जिह हयणिज्झरणें etc.—Just as a pond is dried up by the rays of the sun, and slso when water already therein is drained and the influx of it is stopped by building dams (बद्धें वरणें), in the same way acts done in various births are exhausted by the control of senses (which prevents the influx of sinful acts) and by the practice of penance (prescribed for a monk).

19. *1b* अणुवेक्खाओ, reflections of twelve types on the momentoriness, impurity etc. see तत्त्वार्थाधिगम, IX. 7.

21. 4*a* सोणंदेयहु, to the son of सुणन्दा, i. e. बाहुबलि. सुणन्दा is the second wife of रिसह.

24. 7*b* जसवइणंदउ, i. e., जसवई and सुणन्दा, the two wives of रिसह.

26. 16 The passage gives the date of the निष्क्रमण which is the ninth day of the dark half of Caitra with उत्तराषाढा नक्षत्र.

VIII

[Risaha thereafter began to practise the life of a Jain monk and observe the rules of conduct prescribed for him. Nami and Vinami, sons of the kings of Kaccha and Mahākaccha and his brothers-in-law, came to him in the forest, and after having greeted him, said that Risaha did not assign to them even a small portion of the earth when he divided it among his sons. Risaha, of course, as a monk, could not make any reply as he had completely dissociated himself from the affairs of the world. The king of snakes at this juncture felt a tremor and learnt by his अवधिज्ञान how Risaha was placed in a difficult situation. He therefore came to him, saw Nami and Vinami standing before him and said to them that Risaha had told him (the king of snakes) before he (Risaha) renounced the worldly life, that when they would come to him and ask for a portion of earrh, the king of snakes should assign to them the southern and northern slopes, belonging to Vidyādharas, of the Vaitaḍhya mountain. The king of snakes then showed to them the various cities situated on the slopes, saved Risaha from the awkward situation and went home.]

1. 9*b* मयसिमिरइं, मदस्य सैन्यानि, T. I think that सिमिर comes form शिबिर, camp of the army, but is loosely used to designate army. 12*b* सुइवइणी, consisting of pure vows (शुचिव्रतयुक्ता). 19 थिउ सग्गहु etc.—He stood, standing as if he was the path leading to heaven as also to emancipation (स + अपवग्गहु).

2. 1–4 विसयवसा etc.—Those great warriors who took vows of asceticism simultaneously with Rishaha, were sinking (भग्गा) in a few days' time as they were unable to bear unpleasant contacts, were frightened by terrific tigers, lions, and Sarabhas, and were overcome by tortures of thirst and hunger.

6. 7*b* सालएहिं, by his brothers-in-law. 9*a* पर तेण विमुक्कु घरत्थकम्मु, but he has left all activities of a householder. 12*a* कूरमुट्ठि, a handful of cooked rice.

7. From line 6 to 20 note the दामयमक or शृंखलायमक. The sets of a large number of दुवईs, constituting a kaḍavaka, is not rare in this work, although normally दुवई forms only its opening couplet. The passage describes the

commotion caused by the coming out from the nether world of the king of snakes. 26 जीहहिं दससयसंखहिं, with his thousand (tentimes hundred) tongues. P reads दुसहसंखहिं which means two thousand tongues as the tongues of snakes are cut into two when they licked nectar lying on the darbha grass on the occasion of its distribution.

11. 8*b* रसवाइ व सइं णिवडियसुवण्णु, like the alchemist who always attempts to prepare gold out of baser metals, the mount वेयड्ढ always showed gold.

12. 15*b* सुय दूयत्तणु हलिणिहि करंति, parrots act as messengers of ploughing women to carry their love-messsages to their lovers.

13. 9*b* The passage gives the list of fifty cities situated on the right side of वेयड्ढ which are assigned to नमि.

14. 5*a* The passage gives the list of cities situated on the left hand side of वेयड्ढ which were assigned to विनमि. The cities are enumerated from west to east (वारुणासामुहाओ).

IX

[Risaha then spent six months in meditation, and controlled the activities of his mind completely. He considered that reduction of food was one of the best means of attaining purity. He therefore decided to accept food which would be free from forty-six flaws, and pure from nine points of view. The principle of his life was that food exhausts the body, this reduction of food constitutes penance, this penance controls senses, the control of senses exhausts all acts which event leads to emancipation. He therefore practised these rules of life, and while wandering on the earth came to Gayapura where king Somaprabha, the son of Bāhubali, was ruling. His younger brother, Seyaṃsa, saw in a dream the previous night objects like sun, moon etc. and told this dream to his brother. The fruit of this dream was that some great person was to visit his house. In fact Risaha did arrive the next day to his house to break his fast. Prince Seyaṃsa thereupon offered him reception and a jar of sugar-cane juice, which Risaha accepted. There was a divine voice to proclaim "what a noble gift !". Risaha thereafter proceeded with his wanderings and in due course obtained the fourth knowledge called Maṇapajjavanāṇa, knowledge by which minds of others are known. He then proceeded to Nandanavana, and under a bunyan tree acquired the Guṇasthānas, and in due course attained kevalajñāna by which he was able to see the entire universe. Gods arrived at this juncture to celebrate the event, and built up a

samavasaraṇa on the occasion. All the thirty-two Indras graced it with their presence. They then offered prayers to Risaha.]

1. 7 उज्झिउ आहाकम्मुद्देसहिं, food which is to be offered to Jain monks should be free from flaws such as आधाकर्म, which the marginal note explains as नीचं कर्म स्वयंपाकादिकम्, but elsewhere it is explained as आधानं आधा साधुनिमित्तं चेतसः प्रणिधानं तस्याः कर्म पाकादिक्रिया, तद्योगाद् भक्ताद्यपि आधाकर्म. 15*a* पाणिपत्ति, in the plate, viz., the palm. 17 ए णर, these men, i. e., his followers who became monks along with him.

3. 3*a* ससिप्पहाणुजम्मिणा, by the younger brother of ससिप्पह, i. e., सोमप्रभ, the son of बाहुबलि. 3*b* भवाणुबद्धधम्मिणा, by one who stored meritorious deeds in the previous births.

4. 15*b* भुवणिबंधु, भुजनिबन्धः, arms.

5. 5*a* भरहहु तुम्हहुं मेइणि दिण्णी, by whom the earth was given to Bharata and to you, i. e., to Somaprabha and Sreyāmsa, of course through their father Bāhubali.

6. 2 सिरिमइवज्जजंघजम्मंतरावयारो, the incidents in the sixth previous birth of Risaha when he was born as वज्जजंघ and his consort was सिरिमई. At that time सेयंस was the charioteer and knew that वज्जजंघ (or वज्रनाभ) was destined to be the first तीर्थंकर. For details see Hemacandra, Triṣaṣṭi, III. 284–287 and also this work XXIV.

7. 16*a* सद्दहाणु णव पंचहुं सत्तहुं, i.e. faith in nine पदार्थs, five अस्तिकायs and seven तत्त्वs. 18*a* देसचरित्तालंकिउ, marked by a partial observance of the vows, as in the case of a householder who takes the अणुव्रतs and not the महाव्रतs.

9. 2 दायपदेज्जपत्तववहारसारमग्गं, principles in essence of the classification of the donor (दायय, दायक), the gift (देज्ज, देय) and the receiver (पत्त, पात्र). 11–12 असणेण तणु etc.—food helps the body to practise penance, penance produces forbearance, forbearance results in the removal of impurities, the removal brings about kevalajñāna, which in its turn secures bliss. Compare for the objects of begging alms :—

वेयण वेयावच्चे इरियट्ठाए य संजमट्ठाए ।
तह पाणवत्तियाए छट्ठं पुण धम्मचिन्ताए ॥
—पिण्डनिर्युक्ति, 662

11. 8–9 तहु दिवसहु etc., the day on which Seyamsa served alms to Risaha was the third day of the bright half of वैशाख, which day, even now, is called अक्षय्यतृतीया. The passage explains the Jain view why the day is so called.

12. *7a* पंचवीसवयमायउ, the mothers of the vows which are the twenty-five भावनाs. Compare तत्त्वार्थाधिगमसूत्र, VII. 4–8.

15. *10b* अप्पमत्ति गुणठाणि व लग्गउ, he stuck to अप्रमत्तगुणस्थान which is the seventh गुणस्थान. This गुणस्थान enables the monk to possess 18000 शीलाङ्गs. The monk is engaged in धर्मध्यान and there is a beginning of शुक्लध्यान. *11b* खणि अउव्वु आरूढउ तावहिं, he then rose to अपूर्वकरणगुणस्थान which is the eighth. शुक्लध्यान is now fully developed here. *13b* अणियट्टिहिं छत्तीस जि जित्तउ, in the अनिवृत्तिबादरगुणस्थान, which is the ninth, he conquered the thirty-six kinds of कर्म. *14a* सुहुमसंपरायउ पावेप्पिणु, having acquired the सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान which is the tenth, he destroyed the संज्वलनलोभ. *15a* पुणु जायउ उवसंतकसायउ, he then pacified his passions. उपशान्तिमोह is the eleventh गुणस्थान. 16 खीणकसायचरिउ पडिवण्णउ, he reached the क्षीणकषाय or क्षीणमोह गुणस्थान which is the twelfth where the second शुक्लध्यान begins. In this गुणस्थान the monk destroys sixteen कर्मप्रकृतिs, viz., five ज्ञानावरणीय, six out of nine दर्शनावरणीय and five अन्तराय. At this stage he attains केवलज्ञान, and becomes a सयोगिकेवली which is the thirteenth गुणस्थान.

20. *7a* अक्खयधारिणि, अक्षयानां सिद्धानां धारिका सिद्धिवधूः, T. *14b* धणए समवसरणु किउ तावहिं, at that time Kubera built a meeting place for gods etc. who arrived there to celebrate the attainment of Kevalajñāna by Risaha.

X

[Indra and other gods glorified Jina on his attaining the Kevalajñāna. Jina also possessed twenty-four more atiśayas or excellences as a result of this knowledge. At this juncture a report was brought to Bharata that his father obtained the kevala, that the cakraratna has made its appearance in his armoury and that his queen got a son.—King Bharata was hesitating for a moment whether he should first see his son, or cakra or father, but ultimately decided to see his father, went to him and praised him and thereafter returned home.

On seeing that the Jina has obtained the kevala, pious persons, desirous of attaining emancipation from saṃsāra went to him. To them the Jina began to describe categories of Jīva and Ajīva. He first explained the six pajjattis, i. e., faculties to develop, then the lower species of animals, then the lower animals with five senses, then the number of dvīpas and samudras and finally the dimensions of their bodies.]

2. 3 अइसय दह etc. The Jina had already ten atiśayas from his birth such as निःस्वेदत्व etc., but when he attained केवल, he got twenty-four more as a result of his knowledge. They are described here and in the following kaḍavaka.

4. *3a* दहकुमार i. e., ten gods belonging to the class of भवनपति.

5. 1–8 The Jina is here described in terms of the epithets of god Siva but is shown superior to him, e.g. वामाविमुक्क, god Śiva is always associated with his consort, but the Jina is devoid of her. 9–13. Similarly the Jina is shown superior to Brahmā, and in 14–17 to Viṣṇu.

9. *4a* चउरासिलक्खजोणिहिं परिभमन्ति, तथा नित्येतरनिगोदयोः पृथिव्यप्तेजोवायुकायानां च प्रत्येकं सप्त योनिलक्षाणि, वनस्पतिकायिकानां दश, द्वित्रिचतुरिन्द्रियाणां प्रत्येकं द्वे द्वे, सुरनारकतिरश्चां चत्वारि, मनुष्याणां चतुर्दशेति, तदुक्तम्—

णिच्चेदरधादु सत्त य तरु दस वियलिंदिएसु छच्चेव ।
सुरणरयतिरिय चदुरो चोद्दस मणुए सदसहस्स ॥ T.

6–7 आहार....पज्जत्ति त्ति भणंति एत्थु. The passage defines पर्याप्ति as a faculty which helps the development. These पर्याप्तिs are six, viz. आहार, eating food and digesting it; सरीर, body; इंदिय, sense-organs; आणापाण, breathing; भासा, speech, and मण, mind.

19. 11 सुहुमणिगोयसमुब्भवहं, of those that spring form the subtle णिगोय or निगोद; this निगोद is a physical body with infinite lives or souls.

XI

[The Jina proceeds further to define the functions of different sense-organs and creatures that posses them. He then mentions the duration of their life. After a general description of the Geography of the Jambūdvīpa and other dvīpas with their rivers and mountains and antaradvīpas, the Jina proceeds to describe the human species with their characteristics and capacities. He then goes on to detail the heavenly regions and gods. He explains the fourteen Guṇasthānas, the various prakṛtis of karman, the characteristics of the Siddhas and their happiness. On hearing the discourse the eighty-four lacs of princes renounced the worldly life and became monks who were then called his Gaṇadharas. Similarly Bambhī and Sundarī became the first nuns of the Order. Only Marīci remained unenlightened. The first lay disciple was Suyakitti and the lady disciple was Piyaṃvayā or Priyaṃvadā. The first disciple to obtain emancipation was Aṇaṇtavīra.]

6. *6b* वयगुणियउ, multiplied by वय i. e. five, because there are five vows.

8. 9–10 मइरंगहिं etc. The passage gives the names of the ten कल्पवृक्षs.

9. *2b* णिरूह, परामर्शशून्याः, T., incapable of guessing or imagination.

10. 4 सावयवयहलेण सोलहमउ सग्गु लहइ माणुसु, a human being obtains the sixteenth heaven as a result of his vows of Śrāvaka. The sixteen heavens

are : सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण and अच्युत. According to the Śvetāmbaras the number of heavens is twelve, which number they obtain by dropping from the above list ब्रह्मोत्तर, कापिष्ठ, शुक्र and शतार.

11. 10 राम उड्ढगइ etc. The passage says that the nine बलदेवs or रामs are destined to obtain heavens while the nine वासुदेवs are destined to go to hells.

17. 8*b* चंगउ कउलु तुज्झु वक्खाणइ, the creatures in hell are made to drink as wine hot liquid juice of metals like copper. When they are so made to drink it, the keepers of hell say to them ironically that they were well taught by the Kāpālikas not to observe the vows and as they followed their advice they suffer the miseries in hell.

22. 1*a* अद्धकविट्ठसरिससंठाणइं, the shape of the heavenly abodes resembles the कपित्थ fruit cut into two.

25. 12 पडिचार, attendance, service, or cure.

26. 3*b* अतुलसोक्खु णिहिलहु अहमिंदहु, all अहमिंद्रs enjoy happiness for which there is no parallel.

29. 8–15 मग्गणठाणइं चोद्दसभेयइं etc. The passage gives the list of fourteen Guṇasthānas. They are :—मिथ्यात्व, सास्वादनसम्यग्दृष्टि, (सासण of our text) सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मीसु of our text), अविरतिसम्यग्दृष्टि, देशविरति (विरयाविरउ of our text), प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकरण (अउव्वउ of our text) अनिवृत्तिबादर (अणियट्टि of our text), सूक्ष्मसंपराय (सुहुमराउ of our text), उपशान्तमोह (उवसंतु of our text), क्षीणमोह (परिखीणकसाय of our text), सयोगिकेवलि (सजोइजिणु of our text), and अयोगिकेवलि (अजोइ of our text). For details see Miss Johnson's Triṣaṣṭi, Appendix III. Pages 429–436.

32. 5*b* अडयालीसउं सउ, i. e. one hundred and thirty-eight प्रकृतिs of कर्म. In the Guṇasthānas form number four to seven, one hundred and thirty-eight कर्मप्रकृतिs are destroyed. They are : ज्ञानावरणीय 5, दर्शनावरणीय 9, वेदनीय 2, मोहनीय 21, आयुः 3 (i. e. नारक, तिर्यक् and देव), नाम 93, गोत्र 2, and अन्तराय 5. The total of these comes to 138 as stated above. 11*a* अट्ठमपुहईवट्ठि, i.e., on the सिद्धभूमि or सिद्धशिला.

35. 12*b* एक्कु मरीइ णेय पडिबुद्धउ, only मरीचि who is the son of भरत and grandson of ऋषभ, was not enlightened as he was overcome by दर्शनावरणीयकर्म and मोहनीयकर्म. The Śvetāmbara version says that he, by his boasting and pride, was not fit to obtain सम्यक्त्व. See Hemacandra, Triṣaṣṭi, VI. 385–390.

XII

[Now Bharata started on a campaign for the conquest of the six continents of the earth or Bhāratavarṣa. In the season of autumn, when the sky was clear and the roads dry, he saluted the holy beings and after going round the cakra, made some gifts to the needy and the poor. He consulted his ministers, took a huge army and, led by the cakra, proceeded to the eastern direction. After crossing the Ganges he went to the shore of the eastern ocean and wanted to conquer the Māgadha Tīrtha. He first observed a fast and then took his bow and discharged the arrow in the direction of that region. The arrow was dropped down in the house of the king who was very much enraged at its sight. He was however pacified by his minister by saying that it was no use thinking of waging war against a Cakravartin, that Bharata was the Cakravartin of the Bhāratavarṣa and that it would be well for all to pay tribute to him and to accept his sovereignty. The king of Māgadha Tīrtha did accordingly.]

1. *3a* छुडु छुडु, immediately, quickly. 15–16 सारयमयलंछणु etc. If the autumnal moon that pleases the heart of men by its lustre, had not been spotted or spoiled by the deer-mark, I would have given it (this very moon) as the simile, i. e., I would have compared, the fame of the Jina to it (the moon).

5. 30 साडो णं हिमवंतहो, the river Ganges looked like the upper garment of the mount Himavat. The next three Kaḍavakas contain a fine description of the river.

12. 12 खंधुद्धरियडिंभया, the Kirāta chiefs carried their children on their shoulders as is the custom with them.

14. 12 णत्थि सहवाहु ओसहु, there is no cure for nature. Compare proverbs like स्वभावास औषध नाहीं in Marathi.

19. *2a* विविहणिहीसरासु, to the master of various Nidhis or treasures. The Nidhis are nine in number and their names are :—नैसर्प, पाण्डुक, पिङ्गल, सर्वरत्नक, महापद्म, काल, महाकाल, माणव and शंखक. For the functions of these Nidhis see Hemacandra, Triṣaṣṭi, IV. 574–782 and also below XVIII. 15. 6–10. *2b* णियकालवट्टसंधियसरासु, to one who has fixed an arrow to his bow named कालवट्ट or कालपृष्ठ. Miss Johnson's note (see page 223 of her Tran. of Triṣaṣṭi) on this word is not justified in view of this evidence which is quite independent of Hemacandra. *7b* तो तुम्हइं णउ अम्हइं मि देव, my lord, in that case there will remain neither we nor you. Compare तुम्हीही नाहीं आणि आम्हीही नाहीं in Marathi.

XIII

[King Bharata then proceeded to the South and arrived at the entrance to the region belonging to Varataṇu (of Varadāma Tīrtha). He again performed a fast, and after it discharged an arrow which fell in the house of Varataṇu. King Varataṇu immediately came to Bharata with a tribute and accepted him as his sovereign. Thereupon Bharata proceeded towards the west, came to the entrance of the river Sindhu. There too he practised a fast, and having penetrated the Lavaṇasamudra, discharged an arrow at the king of Prabhāsa Tīrtha. The king arrived and accepted Bharata as his sovereign. Bharata thereafter conquered different countries such as Mālava etc., and thus established his rule over the entire Aryan region. Thereafter Bharata proceeded to Vijayārdha or Vaitāḍhya mountain to complete his conquest of the remaining three continents or Khaṇḍas.]

1. 4*a* सिमिरं समुल्ललइ, the camp of the army is making rapid movements. 23 वइजयंतिणियडे, in the neighbourhood of वैजयन्ती, i. e., a narrow strip of water or channel of the sea through which access to the sea is possible.

2. 13 दीवकवाडइं विहडिवि थक्काइं, the gates of different dvīpas or islands in the लवणसमुद्र stood opened before him, i. e., as soon as Bharata recollected the holy chant, it was certain that his enemies would be defeated and the dvīpas conquered.

4. 3*a* सहमंडवि वरतणुहि, in the court-room of वरतणु, the king of वरदामतीर्थ. Hemacandra does not mention the name of the king in his Triṣaṣṭi.

9. 20 पहासें, by the king of the Prabhāsa Tīrtha, situated at the confluence of the river Sindhu and the sea.

10. 1*a* सुरसिंधुसरिहि देहलिय धरिवि, i. e., regions standing between the Ganges (सुरसरि) on the east and the Sindhu on the west. 5*a* अज्जखंडु, the continents where the Aryans live. 14*a* विजयद्धु संमुहु, towards the विजयार्ध mountain. This is another name of mountain Vaitāḍhya as can be seen from lines 24–25 below where it is said that the mountain विजय divides the earth into three Khaṇḍas on either side and crosses the continent from east to west.

XIV

[After having conquered the three southern continents King Bharata came to Vaitāḍhya and encamped there. A god arrived there and requested him to strike the opening of a cave in the mountain so that he would obtain passage through it to the other side. Bharata then ordered his general to do

accordingly. When he struck it the cave burst open causing great excitement among its residents. The guardian deity of the mountain came out with presents to Bharata who stayed there for six months. He then directed his disc to proceed through the cave and the army to follow it, but it was very difficult to pass through it because of darkness. The general of the army then took the Kāgaṇi gem and wrote out on the walls of the cave the sun and the moon. With their light the army proceeded further and came to the region of snakes or Nāgas. Two rivers stood on the way of the army but the Sthapati or the engineer prepared a bridge or dam and the army went further. Āvarta and Kirāta, two Mleccha kings, finding that their region was invaded, invoked the aid of the king of the Nāgas called Meghamukha (Clouds in the Mouth), who began to pour down rain over the army continuously for day and night. The priest of Bharata brought to the notice of the king how the army was troubled by heavy rain, when he asked his general to use Carma gem to act as an umbrella for the whole army. The army then attacked Āvarta and Kirāta who then offered tribute to Bharata. Bharata then proceeded towards Himavanta mountain along the course of the river Sindhu, the guardian deity of which offered him a wreath of flowers]

1. 12*b* जसवइपुत्तें पेसणु अक्खिउ, the son of Jasavaī, i. e. king Bharata, then gave orders to his general who is one of the fourteen gems of a Cakravartin.

2. Note that the four lines of the Daṇḍaka have a दामयमक.

3. 5*b* तग्गिरिदणामो, bearing the name of that mountain, viz. विजयार्ध. 26 आरासयफुरियउ, sparkling with a hundred spokes.

5. 3 इय चितिवि etc. The general then took up the कागणि gem, and with it wrote out the moon and the sun.

6. 8*b* सविण्णाणिणा संकमेणं कएणं, with the help of a dam (संकम, संक्रम) or bridge built by the clever engineer, i. e., स्थपतिरत्न.

XV

[Thereafter Bharata proceeded along the Himavanta mountain. Sitting on a seat of darbha grass he observed a fast and at the end discharged his arrow at the guardian deity of that mountain. The deity at first was inclined to wage war with the warrior who discharged the arrow, but on reading the name of Bharata decided to pay tribute to him. He came to Bharata and offered him presents. Bharata also, in return, made some presents to him and sent him away. Proceeding further Bharata came to Vṛṣabha

Mountain. He found that all the four sides of the mountain were filled with names of the king of the past and there was hardly any space there for Bharata to write out his name. He however wrote his name there and thus completed his conquest of the six continents of the Bhāratavarṣa. Gods praised him on the occasion. He proceeded further along the foot of the mountain Himavanta and in due course arrived on the banks of the Ganges. The deity of the Ganges then appeared before Bharata, bathed him with her waters, offered him Presents by way of tribute and was then sent away duly honoured by him in return. He then came to cave Timīsā of the Vaitāḍhya mountain and asked his general to strike open its gates as before and halted there for six months. God Naṭṭamāli who used to stay there, came and paid tributes to Bharata. The cave however did not become passable to Bharata, when his ministers told him that his maternal uncles, Nami and Vinami, lived on the slopes of the mountain as lords of the Vidyādharas, and it was on their account that Bharata could not proceed further till they allowed him passage. Bharata then sent messengers to them who told them to pay tribute to Bharata, if not as kings, at least as his relatives. Both of them agreed to do this and paid homage to Bharata. The Kāgaṇi gem then produced light with the help of which the army was able to proceed. Then Bharata came to the mountain Kailāsa where the Jina, his father, was practising penance. On seeing him he offered him prayers.]

2. 11*b* वइसाहठाणु, a posture in which left knee is placed on the ground and the right knee is half bent with its top up. This posture enables the archer to discharge the bow with the greatest possible force.

4. 9*b* परिछेयवंताइं, well-defined, clearly written, readable. 16*a* जो जियइ सो जियइ etc. he who lives under or abides by the command (of Bharata) (alone) can live, the other will surely die.

6. 15 वसुमइ सेंदुलिय, the earth is like a wanton lady who would not mind going with the father and after him with the son.

7. 12*b* को एम ससंकि णाउं थवइ, who will, like you, put his name, i. e., write his name, on the moon ? It was considered to be the highest glory to write one's name on the moon. 18 तुज्झु समाणु तुहुं, you are like yourself, i. e., there is nobody who is like yourself.

12. 5–14 The passage compares the river, सरि, and the बल or army, both called by a common name वाहिणी, by a series of expressions bringing out their common characteristics.

13. 2*b* तिमीसहि दुग्गमहे, तिमीसा or तमिस्रा is a dark cave through which Bharata had to pass along with his army.

15. 6*b* धरणेण, by धरण, the king of snakes who gave on behalf of ऋषभ, the towns to नमि and विनमि.

17. 7*b* अम्हहं पुणु दइयंबरिय गइ, to us there will be the mode of life peculiar to sky-clad monks. The expression दइयंबरिय indicates the sectarian attitude of the present work along with several other similar expressions like sixteen heavens.

22. 10 महिहरु महिहरहु etc. the mountain (महिहर, महीधर) certainly observes all formalities towards a king (महिहरहु).

XVI

[Having saluted the Jina, Bharata got down from the Kailāsa mountain and then proceeded in the direction of Ayodhyā, and having crossed various countries he came to gates of the city. The disc or Cakra however did not enter the city but stood outside it. His priest then told him that it did not enter the town because Bāhubali, his younger brother, was not yet conquered and thus his conquest of the world remained still incomplete, Bāhubali was very strong and might even defeat Bharata, but he kept quiet so long. Similarly his other brothers also did not pay tribute to him. On hearing this Bharata got angry and sent messengers to his brothers to accept his sovereignty. They declined to do that but went to Kailāsa mountain and become monks. Bāhubali on the other hand would not accept the sovereignty of his brother and challenged Bharata to fight with him].

1. 2 साकेयहु संमुहु, towards Sāketa, i. e. Ayodhyā, of which it is another name. See Geographical Dictionary of Nundo Lal Dey. 12*a* कुंकुमेण छडउल्लउ, sprinking with water mixed with saffron. छडउल्लउ is a Deśī word. Compare सडा in Marathi. 19 सट्ठिहि वरिससहासहि, after sixty thousand years which was the period taken by Bharata for his conquest of the world.

4. 10 अज्ज वि ते etc., in as much as they are not yet won, the cakra does not enter the town. The idea is that the disc cannot enter the town unless the conquest is complete.

6. 12*a* किं किर वण्णिएण कंदप्पें, how can one describe (fully) god of love or Cupid ? Bāhubali, the son of Risaha, looked like god of love and the poet says it is not possible to do justice to his beauty by a description.

7. 11-11 जइ जम्मजरामरणइं हरइ etc.—we shall pay homage to King Bharata if he can ward off birth, oldage and death from us, if he can save us from birth in fourfold species or from saṃsāra.

11. 7b ब्रुहसंगमु, i. e., बुधसंगमः, company of the wise. Note the appearance of रेफ in the word as sanctioned by Hemacandra, IV. 399

18. 12a काउ कंदलावलिहि म विरसउ, let not the crow cry on the skulls of your head. The crying of a crow over the head is considered as a sign of approaching death. 13a देहि कप्पु, pay tribute or homage to Bharata.

21. 4a जो बलवंतु चोरु सो राणउ, he becomes a king who is the strongest or most powerful thief. A successful thief becomes a king while an unsuccessful one is called a robber or traitor.

24. 14 धवलाइं जि णिरु धवलइं, on the sandy banks of the Ganges the wings of swans and cheek of ladies away from their lovers, which are already white, became whiter when bathed in the rays of the moon.

XVII

[Bharata then declared that if he does not kill Bāhubali because it would be an offence to his father, he would hold him firm as an elephant is held in chains. The armies of both Bharata and Bāhubali met and trumpets blown and drums beaten, when Bāhubali said to his ministers that he would not move a step from his place but would stop the progress of Bharata's army. When their armies were about to strike, the ministers stood between them and adjured them not to discharge an arrow, and then requested both Bharata and Bāhubali not to engage themselves into a war which would lead to the destruction of poor soldiers, but that they should fight with each other in three ways, viz., they should fix their gaze on each other so that none would move his eye-lashes, that they should strike each other with water, and that they should go in for a wrestling match till one holds or weighs the other on his arms. Both of them agreed to fight accordingly. But in all the three forms of fight Bāhubali came out victorious. When Bharata was lifted up by Bāhubali, he thought of his cakra which immediately went round Bāhubali and stood by the right hand side of Bharata. Bāhubali thereupon dropped his brother Bharata on the ground.]

1. 2 णंदाणंदणहो, of the son of णंदा, i. e., सुणंदा, i. e., बाहुबलि.

2. 9b पडिवक्खणाहि, with the lord or prominent member of your enemy. 10 ऊणेण हएण etc. There is no gain by killing a low man, and therefore Rāhu, the eclipsing planet does not get angry with stars.

4. 14 सरवरपंतिहिं वरणु णिबंधमि, I shall build a dam (to stop the progress of the army) by a series of arrows, having the shape of snakes (णायायारहिं).

5. 13 ण एवहिं मज्झमि, I do not behave well when I am with you, i. e., it is not right for me to indulge in pleasures when my king is marching against his enemy. विसुज्झमि, shall pay off, shall redeem, shall clear off.

8. 10 कुड्डि णाइं आलिहियइं, as if drawn in picture on a wall.

9. 3a बिण्णि वि जण, both of you. Compare दोघे जण in Marathi. 13 रणु तिविहु, threefold fight, viz., gazing at each other without winking ; splashing water against each other so as to overpower one ; and a wrestling match in which one would weigh the other on his arms.

11. 5 हेट्ठिल्ल दिट्ठि etc., The lower eye, i. e. the eye of Bharata, was conquered by the upper eye, i. e. the eye of Bāhubali, whose glance was steady, fixed and unwinking.

12. 6b भिसाहारपूरंतचंचूचऊरं, in which the beaks of cakora birds were being filled with eatable stalks of lotus. 12 वियलइ उप्परि मेहलहे, would just fall (slightly) above the waist but would not cover his face.

14. 5 पीलिज्जउ तेरउ उच्छुचाउ etc. Let your bow of sugar-cane be crushed, let (people) drink its juice, or let (them) eat the sweet raw sugar (गुलु, गुळ). Bāhubali had his bow made of sugar-cane and hence the reference. 10 ता भणइ जइणि etc., Then the son of Jina i. e. Bāhubali said : why do you talk in vain ? why do you ridicule my bow and arrow ?

15. 10a अलंभुयजुज्झविहाणसयाइं, hundred ways of wrestling.

16. 8b ता चिंतिउ चक्कु सुकंधरेण, then the fine-necked (Bharata) thought of his cakra or disc, saying to himself that he could not in reality be a cakravartin if he was to be so overcome by his younger brother.

XVIII

[Having lifted Bharata on his arms and thus defeated him for the third time, Bāhubali felt that he insulted his elder brother and cakravartin. He therefore asked Bharata to forgive him for the offence and desired to be a monk. Bharata however did not like to have the kingdom when he remembered that he had been defeated by his younger brother in the presence of the army, relatives and women. He therefore offered his kingdom to Bāhubali and desired to renounce the worldly life. Bāhubali could not agree. The ministers also intervened and Bāhubali placed his son on the throne, and went to Kailāsa mount to practise penance. He practised penance there for one year when

Bharata himself came to see him and praised him. Bāhubali however, remained indifferent to the praise and was engrossed in acquiring the qualities which a Jain monk should acquire. In course of time he attained Kevalajñāna. Gods headed by Indra came to him and praised him. Bharata also was glad to hear the news that his brother had become a Kevalin. Thereafter he enjoyed perfect sovereignty over the six continents of the earth.]

2. 11 हउं जित्तउ पइं तुहुं सइ खंविउ, I was defeated by you, and you have once (सइ, सकृत्) forgiven me.

3. 1–3 जइ पइं etc. If you, after having lifted me by your arms, had thrown me on the ground with a crash, if it had not been possible for my disc to save me, would any body have seen me alive ? You have thus won or conquered even earth in forgiveness; you have frightened Indra (कउसिउ, कौशिकः, i. e., इन्द्र) by your valour. 10–11 ससि सूरहो, etc. To the sun there is a counterpart in the moon; to the Mandara mountain there is (small) Mandara ; to Indra there is Pratīndra, but O son of queen Nandā (i. e., सुनन्दा) to you alone I do not see any second or counterpart.

5. 6 जइ एवहिं etc. If even after this (talk) you do not desire to have the earth, i. e., do not desire to rule over the earth, then return it to him who gave it to you, i. e. to Risaha, our father. It means Bāhubali is quite unwilling to rule and asks Bharata to rule as before.

6. 7 पइं मेल्लिवि etc. Hatred (दोसु, द्वेषः), having left you, now stands in the form of a dark spot on the moon who is called दोसायर, दोषाकर (दोस + आयर, आकर).

7. 9a वयसमिदि, i. e. five समितिs viz., इरिया, भासा, एसणा आदाण and उच्चार. Note that the word समिदि often retains द in this book as also ठिदि in the next line. 9b आवासयजोउ, practice or observance of the six आवश्यकs, viz., सामाइय, चउवीसइत्थव, वन्दण, पडिक्कमण, काउस्सग्ग and पच्चक्खाण.

10. This kaḍavaka and the next record that Bāhubali, as monk, acquired the knowledge of certain tenets of Jainism and practised them. These tenets are arranged in numbers from one to thirty-two. A similar mention of these tenets occurs in the Uttarādhyayana Sūtra, XXXI, and also in this book in XXXVII 15–17. I think it is a good occasion for me to treat them here fully.

(1) एक्कहु जीवहु गुण मणि भाविय, he cultivated in his mind the quality of Jīva which is one, i. e., solitariness, as nobody can share the effects of acts done by him. This गुण may be उपयोग as defined in तत्त्वार्थसूत्र II. 8 (उपयोगो

लक्षणम्), or better still, the एकत्वभावना. In the Uttarādhyayana Sūtra however we find:

एगओ विरइं कुज्जा एगओ य पवत्तणं ।
असंजमे नियत्तिं च संजमे य पवत्तणं ॥ XXXI. 2.

i. e., one should practise abstinence in one respect, and advancement in the other; i. e., Jīva should abstain for असंजम, indisciplined life, and advance with self-discipline.

(2) राय रोस दोण्णि वि उड्डाविय, he sent away, (lit : made to fly) both राग and रोष. The Uttarā. however mentions राग and द्वेष which is more in keeping with the usual list. Our text certainly reads रोस in all Mss.

(3) (a) तिण्णि वि सल्लइं हियउद्धरियइं, he removed from his heart the three शल्यs, viz., मायाशल्य, निदानशल्य and मिथ्यादर्शनशल्य.

(b) तिण्णि वि रयणइं लहु संभवियइं, he soon acquired the three jewels, viz., सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन and सम्यक्चारित्र.

(c) तिण्णि वि डंभ मुक्क संखेवें, he left quickly (संखेवें, संक्षेपेण, शीघ्रम्) the three types of crookedness, viz, bodily, verbal and mental. The Uttarā. has मनोदण्ड, वाग्दण्ड and कायदण्ड in place of डंभ of our Text.

(d) गारव तिण्णि विवज्जिय देवें, the divine one, i. e. Bāhubali, avoided three गारवs (गौरव), viz., रिद्धिगारव, रसगारव and सायागारव. The Uttarā. adds three उपसर्गs here :

दिव्वे य जे उवसग्गे तहा तेरिच्छमाणुसे ।
जे भिक्खू सहई जयई न से अच्छइ मण्डले ॥ ५ ॥

(4) चउगइकम्मणिबंधणरमियउ सण्णउ चत्तारि वि उवसमियउ, he suppressed or pacified the four appetites or emotions, viz., आहार, भय, परिग्रह and मैथुन, which take delight as it were in forming कर्म which puts the Jīva in the fourfold संसार, viz., देव, नारक, तिर्यक् and मनुष्य. The Uttarā. has :

विगहाकसायसन्नाणं झाणाणं च दुयं तहा ।
जे भिक्खू वज्जई निच्चं न से अच्छइ मण्डले ॥ ६ ॥

There are four विकथाs, viz., राज्य, देश, भोजन, and स्त्री; there are four कषायs, viz., क्रोध, मान, माया and लोभ; the four संज्ञाs are mentioned above; the four ध्यानs are आर्त, रौद्र, शुक्ल and धर्म out of which first two types are bad.

(5) (a) पंच महव्वयाइं, the five great vows of the monk, viz., अहिंसा, अदत्तादानवर्जन, असत्यवर्जन, परिग्रहत्याग, and ब्रह्मचर्य.

(b) पंचसवदारइं, the five sources of sin, viz., हिंसा, अदत्तादान, असत्य, परिग्रह and मैथुन.

(c) पंचिंदियइं कयाइं णिरत्थइं, he avoided the (enjoyment of) objects of five senses, viz., शब्द, स्पर्श, रूप, रस and गन्ध.

(d) पंच वि णाणावरणइं गंथइं, he (cut off) the knots of five types of ज्ञानावरणीयकर्म viz., श्रुतज्ञानावरणीय, आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय, मनःपर्यय-ज्ञानावरणीय and केवलज्ञानावरणीय.

(6) (a) छावासयउज्जमु सविसेसिउ, he made a special effort to observe the six आवश्यकs viz., सामाइय, चउवीसइत्थव, वन्दण, पडिक्कमण, काउस्सग्ग and पच्चक्खाण.

(b) छज्जीवहं दयभाउ पयासिउ, he manifested kindness or compassion towards six classes of living beings, viz., पृथ्वी, अप्, तेजस्, वायु, वनस्पति and त्रस.

(c) छह लेसहं परिणामुवइट्ठइं, he got stopped the effect of the six लेश्या, viz., कृष्ण, नील, कपोत, तेजस्, पद्म and शुक्ल.

(d) छ वि दव्वइं पच्चक्खइं दिट्ठइं, he saw or realised all the six entities, viz., धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल, जीव and काल.

(7) (a) सत्त भयाइं हयाइं गहीरें, the serene one (i. e. Bāhubali) destroyed the seven fears or risks, viz., इहलोकभय, परलोकभय, आदानभय, अकस्माद्भय, आजीवभय, मरणभय and अश्लोकभय.

(b) सत्त वि तच्चइं णायइं धीरें, the wise one knew all the seven truths, viz., जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जर, बन्ध and मोक्ष.

(8) (a) अट्ठ वि मय णिट्ठविय अदुट्ठें, the unsoiled one exhausted or destroyed all the eight prides, viz., जातिमद, कुलमद, बलमद, रूपमद, तपोमद, ऐश्वर्यमद, श्रुतमद, and लाभमद.

(b) अट्ठ सिद्धगुण भरिय वरिट्ठें, the excellent one remembered the eight qualities of the सिद्ध s, viz.,

सम्मत्तणाणदंसणवीरियसुहुमं तहेव अवगहणं ।
अगुरुलहुमव्वाबाहं अट्ठ गुणा होन्ति सिद्धाणं ॥

—सिद्धभक्ति, २०

शुद्धात्मादिपदार्थविषये विपरीताभिनिवेशरहितः परिणामः क्षायिकसम्यक्त्वमिति भण्यते । जगत्त्रय-कालत्रयवर्तिपदार्थयुगपद्विशेषपरिच्छित्तिरूपं केवलज्ञानं भण्यते । तत्रैव सामान्यपरिच्छित्तिरूपं केवलदर्शनं भण्यते । केवलज्ञानविषये अनन्तपरिच्छित्तिशक्तिरूपं अनन्तवीर्यं भण्यते । अतीन्द्रियज्ञानविषयत्वं सूक्ष्मत्वं भण्यते । एकजीवावगाहप्रदेशे अनन्तजीवावगाहदानसामर्थ्यमवगाहनत्वं भण्यते । एकान्तेन गुरुलघुत्वस्याभाव-रूपेण अगुरुलघुत्वं भण्यते । वेदनीयकर्मोदयजनितसमस्तबाधारहितत्वादव्याबाधगुणश्चेति ॥

—परमात्मप्रकाशटीका

(9) (a) णवविहु बंभचेरु परिपालिउ, he observed the ninefold celibacy, viz.,

इत्थिविसयाहिलासो अङ्गविमोक्खो य पणिदरससेवा ।
संसत्तदव्वसेवा तहिन्दियालोयणं चेव ॥ १ ॥
सक्कारपुरक्कारो अदीदसुमरणमणागदहिलासो ।
इट्ठविसयसेवा वि य णवभेदमिदं अबम्भत्तं ॥ २ ॥

—T. in Ms. K.

Devendra's Com. on Uttarā. XXXI. 10 however gives the nine rules of celibacy as follows :

वसहि कह निसिज्जिन्दिय कुड्डन्तरपुव्वकीलिय पणीए ।
अइमायाहार विभूसणा य नव बम्भगुत्तीओ ॥ १ ॥

(b) णवपयत्थपरिमाणु णिहालिउ, he realised the extent of nine entities, viz., जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, and मोक्ष.

(10) दसविहु जिणधम्मु वियाणियउ, he knew the tenfold qualities of the Jina, viz.,

खन्ती य मज्जवज्जव मुत्ती तव संजमे य बोद्धव्वो ।
सच्चं सोयं आकिंचणं च बम्भं च जइधम्मो ॥१॥

(11) एयारह हुयजडिमउ अवियारहं धीरहं सावयहं....पडिमउ, he also understood the eleven प्रतिमाs, which lay disciples practise. These eleven प्रतिमाs are :—

दंसण वय सामाइय पोसह पडिमा अबम्भ सच्चित्ते ।
आरम्भ पेस उद्दिट्ठवज्जए समणभूए य ॥

For dteails see my notes on Uvāsagadasāo, pages 224–229.

(12) बारह भिक्खुहं पडिमउ, he also knew the twelve प्रतिमाs of the monks. These are described in Devendra's Com. on Uttarā. XXXI 11, as follows :—

मासाई सत्तन्ता पढमा बिइ तइय सत्तराइदिणा ।
अहराइ एगराई भिक्खुपडिमाण बारसगं ॥१॥

The duration of the fitst भिक्षुप्रतिमा is one month, of the second two months and so of the seventh seven months ; of the eighth one week, of the ninth two weeks, of the tenth three weeks, of the eleventh one day and night, and of the twelfth one night. There are several things which the monk practising these प्रतिमाs is called upon to observe. Devendra describes them as follows :—

पडिवज्जइ एयाओ संघयणधिईजुओ महासत्तो ।
पडिमाउ भावियप्पा सम्मं गुरुणा अणुन्नाओ ॥१॥
गच्छे च्चिय निम्माओ जा पुव्वा दस भवे असंपुण्णा ।
नवमस्स तइयवत्थुं होइ जहन्नो सुयाभिगमो ॥२॥
वोसट्ठचत्तदेहो उवसग्गसहो जहेव जिणकप्पी ।
एसण अभिग्गहीया भत्तं च अलेवडं तस्स ॥३॥
गच्छा विणिक्खमित्ता पडिवज्जइ मासियं महापडिमं ।
दत्तेग भोयणस्सा पाणस्स वि तत्थ एग भवे ॥४॥
जत्थत्थमेइ सूरो न तओ ठाणा पयं पि संचलइ ।
नाएगराइवासी एगं व दुगं व अन्नाए ॥५॥
दुट्ठस्सहत्थिमाईण नो भएणं पयं पि ओसरइ ।
एमाइनियमसेवी विहरइ जाखण्डिओ मासो ॥६॥

पच्छा गच्छमईई एव दुमासी तिमासि जा सत्त ।
नवरं दत्तीवुड्ढी जा सत्त उ सत्तमासीए ॥७॥
तत्तो य अट्ठमीया भवई हु पढम सत्तराइंदी ।
तीइ चउत्थचउत्थेणऽपाणएणं अह विसेसो ॥८॥
दोच्चा वि एरिस च्चिय बहिया गामाइयाण नवरं तु ।
उक्कुड लंगडसाई दण्डायय उद्ध ठाइत्ता ॥९॥
तच्चाए वी एवं नवरं ठाणं तु तस्स गोदोही ।
वीरासणमहवा वी ठाएज्जा अंबखुज्जो हु ॥१०॥
एमेव अहोराई छट्ठं भत्तं अपाणयं नवरं ।
गामनगराण बहिया वग्घारियपाणिए ठाणं ॥११॥
एमेव एगराई अट्ठमभत्तेण ठाण बाहिरओ ।
ईसीपब्भारगए अणिमिसनयणेगदिट्ठी य ॥१२॥

(13) (a) तेरह किरियाठाणइं मुणियइं, he understood the thirteen क्रियास्थानs, which are enumerated below :

अट्ठाणट्ठा हिंसाऽकम्हा दिट्ठी य मोसऽदिन्ने या ।
अज्झत्थ माण मेत्ती माया लोभेरियावहिया ॥१॥

For details of these see सूयगड II. 2.

(b) तेरहभेय चरित्तइं गणियइं, he also counted upon the thirteen types of good conduct, viz., पञ्चास्रवसंवर, पञ्चसमिति and गुप्तित्रय.

(14) (a) चोद्दह गंथ, he avoided the fourteen knots which are enumerated in T. as follows :—

मिच्छत्तवेदरागा तहासादिया (?) य छद्दोसा ।
चत्तारि तह कसाया चोद्दह अब्भन्तरा गन्था ॥१॥

(b) (चोद्दह) मला वि समुज्झिय, he avoided the fourteen impurities enumerated in T. as follows :—

नहरोमजन्तुअट्ठी कणकोंडयपूयचम्ममंसरुहिराणि ।
बीय फलकन्दमूलानि मला चोद्दसा होन्ति ॥१॥

(c) चोद्दह भूयगाम सइं बुज्झिय, he understood fourteen groups of creatures. These fourteen groups are enumerated in T. as follows :—

एकेन्द्रियाः सूक्ष्मबादरपर्याप्तापर्याप्तभेदाच्चत्वारः, द्वित्रिचतुरिन्द्रियाः पर्याप्तापर्याप्तभेदात् षट्, पञ्चेन्द्रियाः संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्तभेदाच्चत्वारः इति चतुर्दशविधो भूतग्रामः ।

बादरसुहुमे इन्दियदुतिचतुरिन्दियसन्नीया ।
पज्जत्तापज्जत्ता....चतुदस भूदसंगामा ॥१॥

(15) (a) पण्णारह पमाय मेल्लंतें abandoning the fifteen प्रमादs or flaws, enumerated in T. as follows :—

विकहा तह य कसाया इन्दिय निद्दा य पणयो य ।
चद चउ पण एगेगं होन्ति पमाया हु पण्णरसा ॥१॥

i. e., four types bad talk, viz., राज्यकथा, देशकथा, भोजनकथा and स्त्रीकथा, four कषायs, viz., क्रोध, मान, माया and लोभ, faults of five senses, sleep and drink (पणग, पानक ?).

(b) पुण्णपावभूमिउ जाणंतें, knowing the (fifteen kind of) regions where men act (to acquire merit and demerit), viz., five in each of भारत, इरावत and विदेह.

(16) (a) सोलहविह कसाय पसमंतें, pacifying the sixteen forms of passion. T. notes these as : कषायाः क्रोधमानमायालोभाः प्रत्येकमनन्तानुबन्धिअप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलन-विकल्पाः सन्तः षोडशविधा भवन्ति.

(b) सोलहविहवयणेसु रमंतें taking delight in sixteen types of expressions. T. records them as follows :—काललिङ्गवचनानि प्रत्येकं त्रीणि नव, तथा वि (?) कोनमिश्र-वचनानि त्रीणि समयलोकदृष्टपरोक्षवचनानि चत्वारीति षोडश. The Uttarā. has गाहासोलसएहिं which refers to the sixteen lessons of the first volume of सूयगडं of which the sixteenth is called गाहज्झयणं.

(17) असंजमोह सत्तारह, seventeen types of असंयम, indiscipline; Devendra has enumerated these as follows :—असंयमे सप्तदशभेदे पृथिव्यादिविषये, तत्संख्यात्वं चास्य तत्प्रतिपक्षस्य संयमस्य सप्तदशभेदत्वात् । यत उक्तम्—

पुढवि-दग-अगणि-मारुय-वणप्फई-बि-ति-चउ-पणिन्दिअज्जीवे ।
पेहोपेहमज्जण-परिठवण-मणो-वई-काए ॥

T. has the following explanation : पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियाणामप्रति-लेखन (?) दुष्प्रतिलेखनापहृत्योपेज्ञानि (?) जीवमनोवाक्कायाः अपहृत्य (?) गृहीताण्डादिजन्तून् प्रति-लेख्ये (?) उपेक्षा (?)...। अथवा—

पञ्चासवेहि विरमणं पञ्चिन्दियनिग्गहो कसायजओ ।
तिहि दण्डेहि य विरदी संजमो सत्तरसभेओ ॥

तत्प्रतिषेधादसंयमः सप्तदशविधः ।

(18) जाणिवि संपराय अट्ठारह, having known eighteen types of संपराय viz., ten यतिधर्मs such as क्षान्ति etc., five समितिs and three गुप्तिs.

(19) एउणवीस वि णाहज्झयणइं having known nineteen lessons or chapters of the book on Illustration (नाय-ज्ञात or न्याय ?). This is clearly a reference to the sixth Aṅga of the Jain Canon which in the Śvetāmbara tradition forms the first part of the नायाधम्मकहाओ. This book consists of two parts Nāyas, Jñātas or illustrations and धम्मकहा or sacred narratives. Our Mss. invariably read ह so that our reading is नाहज्झयणइं. This reading is supported by T. also Uttarā. reads नायज्झयणेसु. The change of Sk. त to ह is not unusual, compare भरह for भरत. It also appears that ज्ञात or न्याय constituted at one time an independent work of the Canon to which a small section of धम्मकहा might have been added later. The present text of the नायाधम्मकहाओ in the Śvetāmbara Canon contains nineteen sections called नायs and are named as :

उक्खित्तनाए संघाडे अण्डे कुम्भे यं सेलए ।
तुम्बे य रोहिणी मल्ली मायंदी चन्दिमा इय ॥१॥
दावद्दवे उदगनाए मण्डुक्के तेयली इय ।
नन्दिफले अवरकङ्का आइन्ने सुंसु पुण्डरिए ॥२॥
—Devendra on Uttarā. XXXI. 14.

It appears that in the Digambara tradition there was also a book of the sacred canon called नाह or णाह; it contained nineteen lessons as in the Śvetāmbara tradition, but the names of the Nāhas with the Digambaras had a different order as can be seen from the list given below :—

1. उक्कोडणाग constituted the first अज्झयण. The story as given in T. is as follows :—उक्कोडणाग श्वेतहस्ती । अस्य कथा । उत्तरापथे कनकपुरे राजा कनको, महाराज्ञी कनका । पुत्रो नागकुमारः तपो गृहीत्वा विहरमाणः अटव्यां दावानलेन दह्यमानः समाधिना मृत्वा अच्युतेन्द्रो जातः । तदर्धदग्धकलेवरं दृष्ट्वा तुङ्गभद्रो नाम तत्रत्यो भिल्लो जातपश्चात्तापो मृत्वा तत्रैव श्वेतगजो जातः । सोऽच्युतेन्द्रेण जिनधर्मं ग्राहितः पुनर्दावानलेन दह्यमानं शशकं स्वपादतले स्थितं रक्षित्वा (दह्य) मानोऽपि दृढव्रतो भूत्वा मृत्वा देवो जातः. If we compare this narrative with the one in the first ज्ञात called उत्क्षिप्तज्ञात of the Śvetāmbara version, we shall see that there is no reference there to a Bhilla being taught by अच्युतेन्द्र, although there is agreement in that the elephant saved the life of a rabbit that crept under his foot. It thus appears that the Digambara version of the narrative may have been different from the Śvetāmbara one.

2. कुम्म—This is second in the Digambara tradition, but fourth in the Śvetāmbara one. T. gives the narrative as follows :—कुम्म कूर्माख्यानम् । यथा कूर्मेण मुखचरणसंकोचं कृत्वात्मनो ब्राह्मणामरणं निवारितं तथा मुनिभिरपि पञ्चेन्द्रियसंकुचितैर्मरणपरंपरा निवारयितव्या.

3. अंडय—This is the third ज्ञात in both the versions. T. says :—अण्डज-कथा पञ्चप्रकारा । तद्यथा कुक्कुटकथा माताप्येका पिताप्येकः इति । तापसपल्लिकास्थितशुककथा । चारणाख्यव्याकरणवेदकशुककथा । अगन्धनसर्पकथा । हंसयूथबन्धनमोचक कथा. In the Śvetāmbara version we get only one story of the eggs of a peahen and not five as T. seems to indicate.

4. रोहिणी—This is the seventh story in the Śvetāmbara version while it is fourth in the Digambara one. T. reads : सुपुत्रबलदेवेन सह रोहिणी तिष्ठतीति लोकप्रवादं श्रुत्वा रोहिण्या भणितं यद्यसौ शुद्धा तदा यमुनानदी शौरिपुरं वेष्टित्वा पूर्वाभिमुखं वहत्विति । तन्माहात्म्यात्तथैव जातम् । The story in the ज्ञाताधर्मकथा is altogether different.

5. सेस—This seems to correspond to सेलएं which is the fifth narrative in the Śvetāmbara version. T. reads : शेषे शिष्यकथा यथा चेलिणीपुत्रवारिषेणप्रतिबोधितः पुष्पडालः. The story in the ज्ञाताधर्मकथा is altogether different.

6. तुंब (and not हंब as read in foot-notes)—This is the sixth story in both the versions. T. reads : तुम्बकथा रोषेण दत्तकटुककुभोजनमुनिकथा. The story in the ज्ञाताधर्मकथा is different as can be seen from its summary in the com. which runs as follows :—

जह मिउलेवालित्तं गरुयं तुम्बं अहो वयइ एवं ।
आसवकयकम्मगुरू जीवा वच्चन्ति अहरगयं ॥१॥
तं चेव तव्विमुक्कं जलोवरिं ठाइ जायलहुभावं ।
जह तह कम्मविमुक्का लोयग्गपइट्ठिया होन्ति ॥२॥

7. संघाद—This is called संघाड and is the second in the Śvetāmbara version. T. reads :—संघादे । अस्य कथा । कौशाम्ब्यां नगर्यामिन्द्रदत्तादयो द्वात्रिंशदिभ्याः, तेषां समुद्रदत्तादयो द्वात्रिंशत्पुत्राः परस्परमित्रत्वमुपागताः । सम्यग्दृष्टयस्ते केवलिसमीपे स्वल्पं निजजीवितं ज्ञात्वा तपो गृहीत्वा यमुनातीरे पादोपयान (पादपोपगमन ?) मरणेन स्थिताः । अतिवृष्टौ जातायां जलप्रवाहेणं यमुनामध्ये सर्वेऽपि ते पातिताः । परमसमाधिना कालं कृत्वा स्वर्गं गताः. The narrative in ज्ञाताधर्मकथा is altogether different from the above.

8. मादंगि—It appears that मायन्दी which is the ninth story in the Śvetāmbara version should be the counterpart of मादंगि of the Digambara version. T. seems to make मादंगिमल्लि as one narrative which would however reduce the number of narratives to eighteen. T. reads : मादंगिमल्लिकथा यथा वज्रमुष्टिमहाभटभार्यया मंगि (मादंगि ?) नामायाः मल्लिपुष्पमालाभ्यन्तरस्थितसर्पदष्टायाः कथा. The narratives of the Śvetāmbaras and the Digambaras do not at all agree.

9. मल्लि—This is the eighth narrative in the ज्ञाताधर्मकथा. For remarks see above.

10. चंदिमा—This is the tenth narrative in both the versions. T. says : चंदिमा चन्द्रावधकथा (चन्द्रवृद्धिकथा). Perhaps both the versions give the same narrative.

11. तावद्दव—The eleventh narrative in the Śvetāmbara version is called दावद्दव which is the name of a tree in that version. T. however seems to mean a different story. T. reads : तावद्दव तोपद्रवदेशोत्पन्नघोटकहरणसगरचक्रवर्तिकथा.

12. तिका—It appears that this तिका should correspond with तेयली which is the fourteenth story is the ज्ञाताधर्मकथा. T. reads : तिका मनुष्यकरोडिसमुत्थितवंशत्रिकस्य कर्कण्डमहाराजकृतच्छत्रे ध्वजांकुशदण्डकथा. The Śvetāmbara version of तेयली does not seem to agree with the above.

13. तडाया—This seems to correspond to दद्दुर which is the thirteenth story is the Śvetāmbara version. T. reads : तडाया तडागपाल्यामेकवृक्षकोटरस्थिततपस्विनो गन्धर्वारघनकथितकथा. This has no correspondence with दद्दुर of the Śvetāmbara version.

14. किन्न (आकीर्ण ?)—This seems to be आइण्ण of the Śvetāmbara version which is the seventeenth story there. T. reads : व्राहिमर्दनस्थितकर्षकपुरुषसत्यकथा. This story also does not seem to have any correspondence with the Śvetāmbara version.

15. सुसुकेय—This should correspond with सुंसुमा of the Śvetāmbara version which is the eighteenth story there. T. reads : आराधनाकथितसुंसुमारद्रहनिक्षिप्तपाणकथा. There seems to be agreement between the two versions.

16. अवरकंके—This is called अवरकंका in the Śvetāmbara version where also it is the sixteenth narrative. T. reads : अवरकंकनामपत्तनोत्पन्नजनचोरकथा. There is mention of the town of अवरकंका in the Śvetāmbara version, but beyond this there seems to be no nothing common between the stories in the two versions.

17. नंदिफलं—This is called the same in the Śvetāmbara version but there it is the fifteenth story. T. reads : अटव्यां स्थितबुभुक्षापीडितधन्वन्तरिविश्वानुलोमभृत्यानां किंपाकफलकथा. The narrative seems to be similar in both the versions.

18. उदगनाह—This seems to correspond to उदगनाअ of the Śvetāmbara version which is the twelfth story there. T. reads : उदगनाह उदकनाथ (?) कथा यथा राजामात्यसमक्षगडुककथा. The story seems to be similar in both the versions.

19. पुंडरिगो य—This is the last story in both the versions. T. reads : पुंडरिगो य पुण्डरीकराजपुत्र्याः कथा. The Śvetāmbara version seems to be different from the above as will be seen from the extract from the com.

वाससहस्सं पि जई काऊणं संजमं सुविउलं पि ।
अन्ते किलिट्ठभावो न विसुज्झइ कण्डरीउ व्व ॥
अप्पेण वि कालेणं के वि जहागहियसीलसामण्णा ।
साहिन्ति निययकज्जं पुण्डरीयमहारिसि व्व ॥

T. adds : अथवा—गुण जीवा प(?)जत्तीपाणासायामग्गणा उ य ।
एउणवीसा एदे णाहज्झयणा मुणेयव्वा ॥
अथवा—नव केवललद्धीओ कम्मक्खययं जं हवन्ति दस चेव ।
णाहज्झयणा एए एउणवीसा वियाणेहि ॥

कर्मक्षयजाः घातिकर्मक्षयजाः दशातिशयाः It is clear that the names of the अज्झयणs agree in the two versions largely, but their contents seem to differ widely. Of course this is a mere hypothesis based upon somewhat imperfect evidence of T.

(20) वीसविहइं असमाहीठाणइं—Twenty types or causes of असमाधि, absence of transquility of mind. These twenty causes are given in Devendra's com. as follows :—

1. दवदवचारी–दुयं दुयं वच्चन्तो इहेव अप्पाणं पवडणाइणा अन्ने य सत्ते वावायणाइणा असमाहीए जोयइ, परलोगे य अप्पयं सत्तवहज़णियकम्मुणा असमाहीए जोयइ.

2. अपमज्जिए ठाणनिसीयणाइ करेइ.

3. दुप्पमज्जिए ठाणनिसीयणाइ करेइ.

4. अइरित्ताए सेज्जाए आसणे वा निवसइ.

5. राइणिए परिभवइ.

6. थेरोवघाई–सीलाइदोसेहिं थेरे उवहणइ त्ति वुत्तं भवइ.

7. भूओवघाई–अणट्ठाए एगिन्दियाइए उवहणइ त्ति वुत्तं भवइ.

8. मुहुत्ते मुहुत्ते संजलइ.

9. सइं कुद्धो य अच्चन्तकुद्धो हवइ.

10. पिट्ठिमंसिए हवइ.

11. अभिक्खणमोहारिणिं भासइ जहा दासो तुमं चोरो व त्ति.

12. नवाइं अहिगरणाइं करेइ.

13. उवसन्ताणि य उईरेइ.

14. ससरक्खपाए अथंडिलाओ थण्डिलं संकमइ, ससरक्खेहिं वा हत्थेहिं भिक्खं गेण्हइ.

15. अकाले सज्झायं करेइ.

16. असंखडसद्दं करेइ राईए वा महया सद्देण उल्लवइ.

17. कलहं करेइ, तं वा करइ जेण कलहो हवइ.

18. तारिसं करेइ भासइ वा जेण सव्वो गणो झञ्झविओ अच्छइ.

19. सूरोदयाओ अत्थमणं जाव भुञ्जइ.

20. एसणासमिइं न पालेइ.

T. also gives a similar list of twenty causes, but the text is very corrupt.

(21) एक्कवीस सवल वि, i.e. twentyone impurities or impure and sinful acts (शबल). They are given by Devendra as :—

तं जह उ (१) हत्थकम्मं कुव्वन्ते (२) मेहुणं हु सेवन्ते ।
(३) राइं च भुञ्जमाणे (४) आहाकम्मं च भुञ्जन्ते ॥१॥
(५) तत्तो य रायपिण्डं (६) कीयं (७) पामिच्च (८) अभिहड (९) अछेज्जं ।
(१०) भुञ्जन्ते सबले ऊ पञ्चक्खियऽभिक्ख भुञ्जन्ते ॥२॥
(११) छम्मासब्भन्तरओ गणा गणं संकमं करिन्ते य ।
(१२) मासब्भन्तर तिण्णि य दगलेवा ऊ करेमाणे ॥३॥
मासब्भन्तरओ च्चिय माइट्ठाणाइं तिण्णि कुणमाणे ।
(१३) पाणाइवायाउट्टि कुव्वन्ते (१४) मुसं वयन्ते य ॥४॥
(१५) गिण्हन्ते य अदिन्नं (१६) आउट्टि तह अणन्तरहियाए ।
पुढवीए ठाण सेज्जा निसीहियं वा वि चेएइ ॥५॥
(१७) एवं ससिणिद्धाए ससरक्खाए चित्तमन्तसिललेलू ।
कोलावासपइट्ठा कोलघुणा तेसि आवासो ॥६॥
(१८) सण्डसपाणसबीए जाव उ संताणए भवे तहियं ।
ठाणाइ चेयमाणे सबले आउट्टियाए उ ॥७॥

(१९) आउट्टि मूलकन्दे पुप्फे य फले य बीयहरिए य ।
भुञ्जन्ते सबले ऊ (२०) तह्वेव संवच्छरस्सन्तो ॥८॥
दस दगलेवे कुव्वं तह माइट्ठाण दस य वरिसन्तो ।
(२१) आउट्टिय सीओदगवग्घारियहत्थमत्ते य ॥९॥
दव्वीइ भायणेण य दिज्जन्तं भत्तपाण घेत्तूण ।
भुञ्जइ सबलो एसो इगवीसो होइ नायव्वो ॥१०॥

(22) सहिवि दुवीस दुसज्झ परीसह, having borne twenty-two unpleasant contacts, viz., क्षुत्, पिपासा etc. For details see तत्त्वार्थाधिगमसूत्र IX. 9.

(23) तेवीस वि सुत्तयडइं, i. e. twenty-three chapters of the सूत्रकृताङ्ग, the second Aṅga of the Canon of the Jains, beginning with समयाध्ययन and so forth. T. reads : ससमए वेदालिजोए उवसग्गं इत्थिपरिणामे निरयन्तर वीरथुदी कुसीलपरिभासिए धम्मो य अग्गमग्गे समसरणं तिकालागन्थसाहयए (?) आदा तदित्था (?) पुंडरीको वीरियट्ठाणे पयआराहेयपरिणामे पच्चक्खाण अणगारगुणकित्ती सुद अत्थ णालन्दे सुदयडज्झयणाणि तेवीसं द्वितीयाङ्गश्रुतवर्णनाधिकाराश्च. It we are to trust the text of T. which is admittedly corrupt, the order of adhyayanas in the Digambara version would be different from the Śvetāmbara one.

(24) चउवीस वि जिणतित्थइं—the twentyfour तीर्थ s of the twentyfour Jinas.

(25) पञ्चवीस भावणउ—For details see तत्त्वार्थाधिगम, VII 3–8. T. reads : एकैकस्य परिपालनार्थं वाङ्मनोगुप्तीर्या (?) दानसमित्यादयः पञ्च भावनाः; अथवा, त्रयोदश क्रियाः द्वादश तपांसि च पञ्चविंशतिर्भावनाः.

(26) छव्वीस वि पुहवीउ, the twentysix regions; T. reads : सौधर्मादिमोक्षपर्यन्ता एका (?) पृथ्वी उत्सर्पिण्योर्भरतैरावतयोरवसर्पिण्यां शुद्धा नाम पृथ्वी भवति । उत्सर्पिण्यां च सैव खारा इत्युच्यते इत्येका पृथ्वी । रत्नप्रभो (?) मौखरभागचित्रादयः (?) पङ्कभागादयः सप्त नरकभूमयः इति षड्विंशतिः पृथिव्यः.

(27) सत्तवीस जइगुण, twentyseven vows of a monk, viz., द्वादश भिक्षुप्रतिमाः, अष्टौ प्रवचनमातरः, क्रोधमानमायालोभमोहरागद्वेषणामभावश्च सप्त, T. Devendra however gives a different list :—

वयछक्कमिन्दियाणं च निग्गहो भावकरणसच्चं च ।
खमया विरागया वि य मणमाईणं निरोहो य ॥१॥
कायाण छक्क जोगम्मि जुत्तया वेयणाहियासणया ।
तह मारणन्तियहियासणा य एएऽणगारगुणा ॥२॥

(28) अट्ठवीस पवरायारकप्प—There are twenty-eight (?) मूलगुणs as T. says; but Devendra gives them as : प्रकृष्टः कल्पः यतिव्यवहारो यस्मिन्निति प्रकल्पः, स चेहाचाराङ्गमेव शस्त्रपरिज्ञाद्यष्टाविंशत्यध्ययनात्मकम्.

(29) एउणतीस वि दुक्कियसुत्तइं, twenty-nine books of heretics which they believe to be sacred. T. reads : चित्रकर्मादिसूत्रं गणितसूत्रं वैद्यसूत्रं नृत्यसूत्रं गान्धर्वसूत्रं पटहसूत्रं अगवसूत्रं मद्यसूत्रं द्यूतसूत्रं राजनीतिसूत्रं मजुरंगसूत्रं (?) चतुरंगसूत्रं गजतुरंगसूत्रं पुरुषस्त्रीगोभद्दंगंजनानां (?)

लक्ष (लक्षण ?) सूत्राणि अंगं सरं वंजनलक्खणं च छिण्णं वीभोमंसमिणंतरक्खं (?) इत्यष्टाङ्गनिमित्त-सूत्राणीति एकोनविंशत्यपसूत्राणि । अथवा

अट्ठारह य पुराणा सडंगविण्णा (विज्जा ?) य लोइयाणं तु ।
बुद्धाइ पंच समया परूवणा जा सुदी लोए ॥१॥

Devendra gives a different list :

अट्ठ निमित्तंगाइं दिव्वुप्पायन्तलिक्खंभौमं च ।
अङ्गं सरं लक्खण वंजणं च तिविहं पुणेक्केक्कं ॥१॥
सुत्तं वित्ती तह वत्तियं च पावसुयमउणतीसविहं ।
गन्धव्व नट्ट वत्थं आउं धणुवेयसंजुत्तं ॥२॥

For still another list see नन्दीसूत्र under मिच्छासुयं.

(30) तीसविहइं मोहट्ठाणइं, thirty causes or types of infatuation. T. reads : तथा हि—व्रतविषये पञ्चप्रकारो मोहः । पञ्चप्रकारमनुष्यविषये पञ्चप्रकारमोहः । पञ्चप्रकारमनुष्याः भोगभूमिज-मनुष्याः विद्याधरर्द्धिप्राप्तशलाकापुरुषमनुष्याः पञ्चदशकर्मभूमिजचतुर्थकालोत्पन्नमनुष्याः भरतैरावतेषु दुःकमाति-दुःषमकालोत्पन्नमनुष्याः समुद्रमध्यद्वीपोत्पन्नकर्णप्रोचरणादि (कर्णप्रावरण ?) मनुष्याश्च । जीवाजीवास्रव-संवरनिर्जराबन्धमोक्षपुण्यपापानां स्वरूपे नवप्रकारो मोहः । कर्मबन्धनस्वरूपे एको मोहः । द्वादशविधतपःस्वरूपे एको मोहः । दर्शनस्वरूपे एको मोहः । नैगमसंग्रहव्यवहारऋजुसूत्रशब्दसमभिरूढैवंभूतानां सप्तनयानां स्वरूपे सप्त मोहाः । व्रतविनाशविषये एको मोहः ॥ अथवा—क्षेत्ररत्नस्वरूपा (?) सुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्य-दण्डलक्षणबाह्यग्रन्थविषयो दशप्रकारो मोहः । मिथ्यात्ववेदरागादिलक्षणाभ्यन्तरग्रन्थविषयश्चतुर्दशप्रकारः । पञ्चेन्द्रियदुष्टमनोविषयः षट्प्रकारो मोहः. Devendra's list is altogether different from this for which see his com.

(31) एक्कतीस मलवाय धुणंतें, shaking off the thirty-one types of impure acts. They are given in T. as follows :—तथाहि ज्ञानावरणीयं पञ्चप्रकारं दर्शनावरणीयं नवविधं वेदनीय सातासातरूपतया द्विभेदं मोहनीयं दर्शनमोहनीयचारित्रमोहनीयभेदाद् द्विप्रकारं आयुश्चतुर्भेदं नाम शुभमशुभं च गोत्रमुच्चैः (?) अन्तरायाः पञ्चप्रकाराः.

(32) जिणुवएस बत्तीस मुणन्तें, meditating upon thirty-two preachings of the Jinas. They are given in T. as follows :—

आवासयंगपुव्वा छव्वारसचोद्दसा य ते कमसो ।
बत्तीसमिमे नियमा जिणोवएसा मुणेयव्वा ॥१॥

□

अँगरेजी टिप्पणियोंका हिन्दी अनुवाद

I

[कवि ऋषभनाथकी वन्दना करता है, कि जो तीर्थंकरोंमें प्रथम हैं, तथा सरस्वती भी, जो विद्याकी देवी हैं। वह महापुराणकी रचना करनेका इरादा प्रकट करता है। परिचयके बहाने कवि बताता है कि सिद्धार्थ संवत् (881 शक संवत्; अर्थात् 959 ईसवी सदी) में एक समय, वह मेपाडी (मान्यखेट आधुनिक मलखेड) के बाह्य उद्यानमें पहुँचा और लम्बा रास्ता पार करनेके कारण थका हुआ वह, वहाँ एक गुफामें ठहर गया। नगरके दो आदमी अन्नया एवं इन्दरैया उसके पास पहुँचे और उन्होंने उससे मन्त्री भरतसे भेंट करनेकी प्रार्थना की जो उसका अच्छा स्वागत करेगा। पहले-पहल तो कविने ऐसा करनेमें अपनी अनिच्छा प्रकट की क्योंकि उसका इस विषयमें राजा भैरव (वीर राजा) के दरबारका कड़ुवा अनुभव था। परन्तु उक्त आदमियोंने कविको विश्वास दिलाया कि भरत एकदम भिन्न आदमी है और वह उसकी अच्छी आवभगत करेगा। फलस्वरूप कविने भरतसे भेंट की। उसका अच्छा स्वागत किया गया और वह कुछ समयके लिए वहाँ रहा। तब भरतने कविसे महापुराणके लिखनेकी प्रार्थना की। क्योंकि इससे वह अपनी कवित्व-शक्तिका सही उपयोग कर सकता है, उसने उन्हें सब प्रकार की सहायता देनेका प्रतिवेदन किया। पहले तो कविने अपनी अनिच्छा व्यक्त की क्योंकि वह उन दुष्ट लोगोंसे भयभीत था जो अच्छी रचनाकी भी आलोचना करते हैं। भरतने उनपर ध्यान न देनेकी कविसे प्रार्थना की। तब कविने विनयपूर्वक कहा कि वह महापुराणकी रचना करनेके लिए योग्य है, यद्यपि वह महान् दार्शनिक सम्प्रदायों और अतीतके महान् कवियोंकी रचनाओं, व्याकरण अलंकार और छन्द-सम्बन्धी रचनाओंसे अनभिज्ञ नहीं है, फिर भी महापुराणमें वर्णित महान् व्यक्तित्वोंके प्रति भक्तिके कारण वह महापुराणकी रचना करेगा। इसके बाद कवि गोमुख यक्ष, ऋषभनाथ और पद्मावती यक्षिणी (विद्याकी देवी) से सहायताकी याचना करता है।

कवि महापुराणकी रचना प्रारम्भ करता है : जम्बूद्वीपमें मगध देश है, जिसकी राजधानी राजगृह है। एक दिन जब राजा श्रेणिक मन्त्रियोंके साथ दरबारमें सिंहासनपर बैठा था, तो उद्यानपालने आकर सूचना दी कि भगवान् महावीर नगरके बाहर उद्यानमें ठहरे हुए हैं। राजा तुरन्त सिंहासनसे उठा, उसने वन्दना की तथा उनको गौरवान्वित करनेवाली प्रार्थना की।]

पृष्ठ 418

I. कवि ऋषभनाथकी वन्दना करता है कि जो प्रथम तीर्थंकर हैं।

1. 3*a*. अच्छी तरह परीक्षा कर, अच्छी तरह जानकर; T संसारके जड़-चेतन विभागको अच्छी तरह जानते हुए। 3*b* दिव्यतनु निस्वेदत्व (पसीनेसे रहित) आदि अतिशयोंसे मुक्त शरीरवाले। T जिनेन्द्र भगवान्‌का शरीर दिव्य होता है। उनके शरीरमें दस अतिशय होते हैं जैसे पसीना नहीं आना इत्यादि। इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान्‌के चौंतीस अतिशय होते हैं। देखिए अभिधान चिन्तामणि I. 57-64। इनमें-से जिनेन्द्रके शरीरमें दस विशेष होते हैं। देखिए IV. 2. 4*a* जिन्होंने शाश्वत पदरूपी नगर (मोक्ष) का पथ (रत्नत्रय) प्रकट किया है, ऐसे जिनेन्द्र भगवान्। T., वह जिन्होंने मोक्षको ले जानेवाले पथका उपदेश दिया है जिसे

मुक्ति या सिद्धि कहते हैं। 5*a*— जो शुभ शील और गुण समूहके निवास गृह हैं। 10*a*— जिन्होंने आकाशको रंग-बिरंगा कर दिया है। इन्द्रने स्वर्गसे जो पुष्प बरसाये उनसे आकाश रंग-बिरंगा हो गया। 15*b*— यहाँ कवि प्रसंगवश छन्दका नाम बताता है, जो है मात्रासम। 17 जिसके तीर्थ में—

2. कवि पाँच परमेष्ठियोंकी वन्दना करता है—तीर्थ, सिद्ध, आचार्य, आध्याय और साधु, और विद्याकी देवी सरस्वतीसे सहायताकी याचना करता है।

2. 3*b* कोमल पद (पद = चरण और पैर); कवि विद्याकी देवीका वर्णन करता है; वह एक सुन्दर नारीके प्रतीकके रूपमें। इसीलिए, जो उपमाएँ प्रयुक्त की गयी हैं वे सरस्वती और स्त्रीपर लागू होती हैं। 5*a* अपनी इच्छासे चलती है (स्त्री) सरस्वती भी छन्दसे चलती है। 6*a* चौदह पूर्वोसे युक्त। T सरस्वती चौदह पूर्व ग्रन्थ रखती है, जो जैन वाङ्गमयके प्राचीन ग्रन्थ हैं; जो अब अप्राप्य हैं। सरस्वती द्वादश अंगोंसे युक्त है। द्वादश अंग जैनोंके प्राचीन आकर ग्रन्थ हैं, जैसे आचारांग इत्यादि। सरस्वती सप्तभंगीसे उपयुक्त है।

3. 3 *a-b* हम जानते हैं कि राष्ट्रकूट-राजाके कई विरुद थे। पुष्पदन्तकी रचनाओंमें इसी प्रकारके कुछ और नाम हैं। जैसे शुभतुंग, वल्लभदेव।

पृष्ठ 419

तुडिगु = कन्नडमूलक शब्द प्रतीत होता है। 7*b* = जहाँ आम वृक्षोंके ऊपर तोते इकट्ठे हो रहे हैं? खण्ड = पुष्पदन्त। अहिमाणमेरु = अभिमानमेरु = कविका उपनाम। 14 = वरि, वर = यह अच्छा है; 15 = सूर्योदय न देखें ?

4. राज्यकी बुराइयोंकी निन्दा।

4. 3 *a* सप्तांगराज्य-स्वामी, अमात्य सुहृत, कोश, राष्ट्र, दुर्ग और बल। 4*a* विषके साथ, जिसका जन्म हुआ।

5. भरत (मन्त्री) की प्रशंसा।

5. 3 *a* प्राकृति कवियोंके काव्यरसका आस्वादन करनेवाला। इस उपमाका विशेष महत्त्व है। सम्भवतः इसलिए कि उस समय प्राकृत-काव्यकी विशेष प्रशंसा नहीं की जाती थी या वह समझा नहीं जाता था, और सम्भवतः उसकी उपेक्षा की जाती थी।

6. भरतके भवनमें कविका स्वागत। और भरतका कविसे महापुराणकी रचनाका प्रस्ताव।

6. 9 *a* देवीसुत = भरत।

7. कवि महापुराण लिखनेकी अपनी असमर्थता व्यक्त करता है क्योंकि दुर्जन अच्छी रचनाओंकी भी आलोचना करते हैं जैसे प्रवरसेनके सेतुबन्धकी।

7. 3 *a* उपमाओंकी यह शृंखला दोहरे अर्थ रखती है, जो घनदिन और दुर्जनपर एक साथ घटित होते हैं।

8. भरत पुष्पदन्तको विश्वास दिलाता है कि दुर्जन मनुष्य हमेशा वैसे होते हैं, परन्तु बुद्धिमान् व्यक्तिको उसपर ध्यान नहीं देना चाहिए।

8. 7*b* कुत्तेको पूर्णचन्द्रपर भौंकने दो, काव्यपिशल्ल = पुष्पदन्तका दूसरा उपनाम। काव्य पिशाच/ काव्य राक्षस।

9. आत्मविनयके व्याजसे कवि बताता है कि महापुराणके रचनेकी प्रतिभा उसमें नहीं है, फिर भी आदरणीय व्यक्तियोंके बहाने वह इस काममें प्रवृत्त हुआ है।

9. 1*a* इन लेखकोंके लिए पृष्ठके नीचे देखिए, और साथ ही णायकुमार चरिउका XXIII। 13 *b* कुड़वके द्वारा समुद्रको कौन माप सकता है ? 17 परोक्षमें मुझे क्यों कुछ कहना चाहिए ! मैं लोगोंको अपनी रचनाकी कमियोंको बतानेकी खुली चुनौती देता हूँ।

पृष्ठ 420

10. कवि गोमुख यक्ष और योगिनी चक्रेश्वरीसे सहायताकी प्रार्थना करता है। जो (यक्ष) ऋषभ जिनके शासनदेवता हैं और (चक्रेश्वरी) विद्याकी देवी है।

10. 14 कौन मेरी रचनापर भौंकता है ?

11. मगध देशकी स्थितिका वर्णन।

12. राजगृहका वर्णन, जो मगधकी राजधानी है।

12. 9*b* जिसमें ग्वालिनोंके द्वारा मथानीसे मन्थन करते हुए शब्द हो रहा है। ग्वालिनोंकी यह आदत होती है कि वे दही बिलोते समय मधुर गीत गाती हैं।

13. राजगृहके बाह्य उद्यानका वर्णन।

13. 11*b* यह सौन्दर्यकी देवीका भण्डारगृह।

14. राजगृह नगरका वर्णन।

14. 9*b* जो कुशासनके कारण अज्ञानी हैं।

15. राजगृहका वर्णन जारी है।

16. राजा श्रेणिकका वर्णन।

18. राजा श्रेणिकको भगवान् महावीरके आनेकी सूचना मिलती है।

18. 6*b* देवोंके चार निकाय। भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक। 7*a* चौंतीस अतिशय, अर्हतोंको चौंतीस अतिशय होते हैं जिनका हेमचन्द्रके अभिधान कोश तथा दूसरे ग्रन्थोंमें वर्णन है। कुमारी जानसनके द्वारा अनूदित त्रिषष्ठीशलाकापुरुषका पृष्ठ 5 देखिए। 9*b* अर्हतोंके आठ प्रातिहार्य होते हैं, अशोक, सुरपुष्पवृष्टि, दिव्यध्वनि, चामर, सिंहासन, भूमण्डल, दुन्दुभि, और त्रिछत्र। 10 *b* विपुल गिरि राजगृहकी एक छोटी-सी पहाड़ी है। 15 सन्धिकी अन्तिम पंक्तिमें अपना नाम जोड़ता है (पुप्फयन्ततेयाहिय) इस प्रकार यह उसका चिह्न है, और उसकी कई तरहसे व्याख्या की जाती है। ज्यादातर उसका अर्थ सूर्य और चन्द्र होता है। पुष्पदन्तकी समानता कभी पुष्पदशन और कुसुमदशनसे की जाती है। 'भरत' नामका एक अर्थ भारतवर्ष या भरत भी होता है, जो पहले चक्रवर्ती हैं।

II

पृष्ठ 421

[राजा श्रेणिक, महावीरके आगमनका समाचार सुनकर अपने परिवारके साथ उनके दर्शनके लिए जाता है। जिनवरकी वन्दना-भक्तिके बाद राजा, उनके गणधर गौतमसे महापुराणका वर्णन करनेके लिए कहता है। गणधर कहते हैं। तब गौतम, समयविभागका वर्णन करते हुए अपना कथन प्रारम्भ करते हैं; कुलकरोंका और विश्व सभ्यताके प्रति उनके प्रदेयका वर्णन। इन कुलकरोंमें नाभिराजा पहले थे। मरुदेवी उनकी रानी थी। इन्द्रको याद आया कि जिनवरका जन्म कुलकर नाभिराज और मरुदेवीके घर होना है, इसलिए उसने कुबेरको आदेश दिया कि वह अयोध्या नगरीकी रचना करे। वह इतनी समृद्ध और प्रसन्न हो कि जिससे वह जिनवरके जन्मका उचित स्थान सिद्ध हो सके।]

1. 6b एक स्त्री, जिसने कुवलय अपने हाथमें ले लिया, यह कुवलय (नीलकमल) की तुलना राजवृत्तिसे की गयी है; राजवृत्ति भी कुवलय (पृथ्वीमण्डल) धारण करती है, तथा शत्रुओंका नाश करती है।

2. 13 जो दूसरोंकी पीड़ा दूर करती हैं। भुवनरूपी कमलके विकासके लिए सूर्यके समान। जिनवर विश्वको उसी प्रकार प्रसन्न रखते हैं जिस प्रकार सूर्य कमलको रखता है।

3. 5–11 इन पंक्तियोंमें जिनकी लम्बी उपमा है, कि जिनके कमलके समान चरण, कुबेर और दूसरे देवोंके मुकुटमणियोंकी कान्तिके जलसे धोये जाते हैं कि जब वे जिनवरके चरणोंमें अपना सिर झुकाते हैं। 35 आप कृपा कर मुझे पाँचवीं गति (मोक्ष) में ले जाइए। सिद्धावस्था = संसारसे मुक्ति। पहली चार गतियाँ हैं देव, नरक, तिर्यक् और स्वर्ग।

4. 7a जिनका आदि और अन्त नहीं है। कहनेका तात्पर्य है—भावी तीर्थंकरोंकी संख्या अनिश्चित है। 8–9 समयका न आदि है और न अन्त। वह अनिश्चित है। समय, विश्वमें परिवर्तनका सहायक कारण है; इसमें रूप, गन्ध, रंग और सार नहीं है। समय अपने निश्चयकालमें परिवर्तन द्वारा प्रवर्तन करता है, व्यवहारकाल हमारे दैनिक व्यवहारसे पहचाना जाता है।

5. 3b प्रियकारिणीके पुत्र महावीर; जो त्रिशलाके नामसे प्रसिद्ध हैं। कल्पसूत्र 109 से तुलना कीजिए कि जिसमें प्रीतिकारिणी नाम दिया गया है। 10a गुणा किया जाता है।

6. 10a विभाजन करने योग्य।

8. उत्सर्पिणी काल, जिसमें शक्ति बढ़ती है, शरीरकी ऊँचाई, क्षमता, ज्ञान, पवित्रता, गम्भीरता और साहस। अवसर्पिणी—इसमें योग्यताएँ क्षीण होती हैं। 7b दश कल्पवृक्ष।

पृष्ठ 422

9. 3a प्रतिश्रुति प्रथम कुलकर, जैन पौराणिक कथाके अनुसार। अममके बराबर लम्बाईकी आयु रखनेवाले। अमम (बड़ी संख्या)। दूसरे कुलकर या मनु हैं जो नौ-दसमें वर्णित हैं—सम्मति, क्षेमंकर, क्षेमन्धर, सीमंकर, सीमन्धर, विमलबाहु, चक्षुष्मान्, यशस्वी, अभिचन्द, चन्द्राभ, मरुदेव, प्रसेनजित् और नाभि।

11. 1 प्रथम कुलकरने विश्वकी व्याख्या की, तथा पहली बार उन्होंने सूर्य और चन्द्रमाके कार्योंकी खोज की, जो कि इस समयके पूर्व दूसरे मनुष्योंके द्वारा देखे नहीं गये थे क्योंकि संसार कल्पवृक्षों द्वारा वितरित प्रकाशसे भरपूर था। दूसरेने नक्षत्रों और ग्रहोंकी खोज की। इसी प्रकार प्रत्येक कुलकरने विश्व-मानव सभ्यतामें कुछ न कुछ योगदान दिया। अन्तिम कुलकर नाभिराज थे। उन्होंने बच्चोंके नाल काटनेकी प्रथाकी खोज की। और बादलोंका पता लगाया। धरतीको विभिन्न खाद्यान्नोंसे भर दिया। लोगोंको बुनने और भोजन बनानेकी कला सिखायी। मानव सभ्यताकी भलाईके लिए।

17. 5b यह जानकर कि तीर्थंकरका जन्म किसी स्थान विशेषपर होता है, इन्द्र कुबेरको आदेश देता है कि वह सम्पन्न सुन्दर अयोध्या नगरी बनाये जिससे जिनवर जन्म ले सकें।

19. 1a हेमचन्द्रने अपने व्याकरणमें IV पृष्ठ 422, छुडुको यदिका पर्यायवाची बताया है। परन्तु मैं नहीं समझता कि छुडु सदैव यदिके अर्थमें प्रयुक्त हो। मेरे विचारमें छुडुका अर्थ 'क्षिप्र' है, जो यहाँ उपयुक्त है। और दूसरे जगह भी। नीचे टिप्पणीमें इसका अर्थ 'यदा' किया गया है, परन्तु मेरे विचारमें यह शुद्ध नहीं है।

III

[जैन पुराणोंमें जिनके जन्मका वर्णन इतने एकरूप ढंगसे वर्णित है कि कभी-कभी हमें यह सोचनेके लिए विवश होना पड़ता है कि हम इतिहासके बजाय पौराणिक कथामें हैं। जब जिनवरके माता-पिता कृतसंकल्प होते हैं तो इन्द्र कुबेरको सुन्दर नगरीकी रचना करनेका आदेश देता है; जन्म लेनेके पूर्व वह स्वर्गमें जन्म लेते हैं। उनके जन्मके छह माह पूर्व इन्द्र छह देवियाँ भेजता है; वे जिनेन्द्रकी माताके पास आती हैं और सेवाके लिए प्रतीक्षा करती हैं; माँ सोलह सपने देखती है, (श्वेताम्बर परम्पराके अनुसार चौदह) वह अपने स्वामीसे इनका फल पूछती है दूसरे दिन सवेरे। तब पति उसे फल बताता है।

पृष्ठ 423

उसका सार यह है कि माता ऋषभको जन्म देगी। जिन (प्रथम तीर्थंकर ऋषभ, एक सफेद वृषभके रूपमें) गर्भमें जन्म लेते हैं। देव इस घटनामें उपस्थित होते हैं। कुबेरके द्वारा रत्नोंकी वर्षा की जाती है। उचित समयपर जिनका जन्म होता है। इन्द्रके नेतृत्वमें देवता जन्म-स्थानपर आते हैं और प्रार्थना करते हैं, इन्द्र माताको मायावी बालक देता है और जिनको सुमेर पर्वतपर ले जाता है। उन्हें सिंहासनपर स्थापित करता है; उनका जन्माभिषेक किया जाता है। पहाड़के ऊपर बढ़ते हुए अभिषेक जलका सभी वन्दना करते हैं; जिनेन्द्रकी प्रशंसामें इन्द्र कुछ पद्य पढ़ता है; वह उन्हें वापस माता-पिताके पास लाता है; इस घटनाको सामान्यतः कल्याण कहा जाता है, खासकर जिन-जन्माभिषेक कल्याण, इन घटनाओंका जिनके जीवनमें एकरस वर्णन किया जाता है। परन्तु पुष्पदन्त अपनी काव्य-प्रतिभासे उसे सजीव विस्तार देते हैं। प्रथम तीर्थंकरके जीवनकी प्रमुख विशेषताएँ हैं]

(I) जन्म-स्थान—अयोध्या

(II) मातापिता—नाभि और मरुदेवी।

(III) धवल वृषभके रूपमें गर्भमें अवतार।

(IV) अवतारतिथि आषाढ़ कृष्णपक्ष द्वितीय, दिन रविवार, उत्तरा नक्षत्र, ब्रह्मयोग।

(V) जन्म-तिथि—चैत्र कृष्ण पक्ष नवमी, उत्तरा नक्षत्र, ब्रह्मयोग।

(VI) नाम—ऋषभ या वृषभ।

4. 9*a* णिवपंगणंति = राजाके प्रांगणमें यद्यपि प्राकृत संयुक्त व्यंजनोंकी अनुमति नहीं देती, फिर भी महापुराणमें बहुत-से संयुक्त व्यंजन मिलते हैं। हेमचन्द्रका IV पृष्ठ 398-99 सिद्ध हेम-व्याकरण देखिए। हमारी पाण्डुलिपियों (G और K) में र् के साथ संयुक्त व्यंजन है, जबकि 'MBP' में नहीं है। इसलिए मैंने G और K को अपने टेक्स्टके प्राचीन रूपको सुरक्षित रखनेवाला सोचा है। इस कारण, और ऋ वाले रूपको रखनेके कारण जैसे मृग, सृय इत्यादि।

5. यह कड़वक उन सोलह वस्तुओंके नाम गिनाता है कि जिन्हें जिनेन्द्रकी माता स्वप्नमें देखती है और जो जिनेन्द्रके जन्मका पूर्वभास देती हैं। श्वेताम्बर परम्परा दिगम्बर परम्परासे इस अर्थमें है। वह केवल चौदह स्वप्नोंका उल्लेख करती है। कल्पसूत्र 4, and 32-47.

पृष्ठ 424

दिगम्बर परम्पराके अनुसार ये वस्तुएँ हैं—

(1) पर्वतकी ढालको तोड़ता महागज।

(2) जोरसे गर्जन करता हुआ एक वृषभ।

(3) गरजता सिंह।

(4) महागजों की सूँड़ोंसे अभिषिक्त महालक्ष्मी।
(5) दो पुष्पमालाएँ।
(6) उगता हुआ चन्द्रमा।
(7) उगता हुआ सूरज।
(8) मीन-युगल।
(9) जलसे परिपूर्ण दो कलश।
(10) कमल सरोवर।
(11) गरजता हुआ समुद्र।
(12) सिंहासन।
(13) राजभवन।
(14) नागलोक।
(15) रत्नराशि।
(16) जलती हुई (निर्धूम) आग।

इससे स्पष्ट है कि श्वेताम्बर बारहवें और चौदहवें स्वप्नोंको नहीं मानते। और इस प्रकार कुल संख्या चौदह रह जाती है।

7. 5*a* सोलहकारणभावनाओंका ध्यान करके, तपस्याके द्वारा तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध किया। ये भावनाएँ हैं—दर्शनविशुद्धि, विनयसम्पन्नता, शीलव्रतेषु-अनतिचार; अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग, अभीक्ष्ण संवेग, शक्तितः त्याग, शक्तितः तप, साधुसमाधि, वैयावृत्यकरण, अर्हद्भक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, आवश्यकापरिहाणि, मार्गप्रभावना, प्रवचनवत्सल।

19. 14 मुझे उस देशमें ले जाइए, जहाँ जन्म नहीं है अर्थात् सिद्धोंका क्षेत्र।

21. 11*a* जिन वृषभ इसलिए कहलाते हैं क्योंकि उनका आसन वृष (धर्म) से शोभित है।

पृष्ठ 425

IV

[राजा ऋषभ राजकीय भवनमें बड़े होते हैं, जो आदर्श वातावरणसे अलंकृत था। उनके शरीरमें दस अतिशय हैं, जैसे शरीरकी पवित्रता, स्वेद आदिका न आना। पिता उनका विवाह करनेकी सोचते हैं, पहले राजकुमार ऋषभ मना करते हैं, परन्तु नाभिराजके दबावके कारण उन्हें विवाह करना पड़ा; धूमधामसे विवाह हुआ। उनकी पत्नियाँ यशोवती, सुनन्दा क्रमशः राजा कच्छ और महाकच्छकी कन्याएँ थीं। उत्सवकी सन्ध्यामें चाँदनीसे आलोकित आकाशमें राजकीय सजधजके साथ नृत्य आदिका आयोजन किया गया। उत्सवकी समाप्ति दान आदिके साथ की गयी।]

1. 10*a* अपनी पीठपर लेटा हुआ बालक देख रहा था परन्तु कविकी कल्पना है कि वह तपस्याका मार्ग देख रहा था जो कि ऊँचेकी ओर जा रहा था। 15*a* जब कि वह बचपनमें धीरे-धीरे चलते थे। 16*b* चौंसठ कलाएँ न कि बहत्तर कलाएँ जैसा कि श्वेताम्बर ग्रन्थोंमें उल्लेख है।

2. कडवक कुछ अतिशयोंका उल्लेख करता है।

3. 10*a* जो कल्पवृक्ष है वह काठ-काठ है।

4. 14*b* स्वदेश स्त्री बाल प्रसिद्ध रागध्वनि जो बच्चेको सुलानेके लिए की जाती है!

9. 10*a* चन्दोवा और चीनी वस्त्रसे आच्छादित।

10. 3*a* चमकती है, आलोकित होती है।

17. जैसे दूधसे धोया हो ।

18. नृत्यके विविध पारिभाषिक शब्दोंका उल्लेख ।

पृष्ठ 426

पारिभाषिक शब्द मूल संस्कृतमें दिये गये हैं, अतः अनुवादकी आवश्यकता नहीं ।

पृष्ठ 427

V

[एक दिन ऋषभकी पत्नी यशोवतीने स्वप्नमें सुमेरुपर्वत, सूर्य और समुद्रको देखा, तथा धरतीको अपने मुखमें प्रवेश करते हुए देखा । उसने यह स्वप्न ऋषभको बताया । उन्होंने बताया कि उसे पुत्रकी प्राप्ति होगी । जो सार्वभौम राजा होगा । समयके अन्तरालमें यशोवतीने पुत्रको जन्म दिया, जिसका नाम भरत रखा गया । जैसे ही बच्चा बड़ा हुआ पिताने उसे अनेक विद्याएँ सिखायीं । विभिन्न कलाएँ, प्रशासन चलाना, विभिन्न वर्गों और जातियोंके कर्तव्य, और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहारके सम्बन्धोंका ज्ञान कराया । यशोवतीके ९९ पुत्र और हुए; और एक कन्या ब्राह्मी उत्पन्न हुई । सुनन्दाके भी एक पुत्र बाहुबलि हुआ, और सुन्दरी कन्या । ब्रह्मा (आदिनाथ) ने स्वयं दोनों कन्याओंको साहित्य और विविध कलाओंका ज्ञान कराया । एक बार भयंकर अकाल पड़ा उससे प्रजामें संकट पड़ गया । वे ऋषभके पास आये और उन्होंने राहतकी अपील की । ऋषभने उन्हें व्यवसायकी विविध कलाओंका ज्ञान कराया । जब वे २० लाख पूर्व वर्षके हुए, नाभिराजने उन्हें गद्दीपर बैठा दिया ।]

2. 8*b* भारतवर्षके छह खण्ड । जैन भूगोल विद्याके अनुसार यह भारतवर्ष उत्तरमें हिमवन्त पर्वतसे घिरा है, इसके ठीक बीचोंबीच केन्द्रसे विजयार्ध पर्वत गुजरता है । पूर्वसे पश्चिम गंगा-सिन्धु नदियाँ प्रवाहित हैं । इससे उत्तर-दक्षिण क्षेत्र बनता है । इस रूपमें यह छह खण्डोंमें विभक्त है । चक्रवर्ती इन छह खण्डोंपर शासन करता है । अहमेन्द्र बहुत ऊँचा देव है जो ग्रैवेयक विमानमें रहता है ।

3. 2 गर्भावस्थामें यशोवतीके उदरकी तिरेखाएँ समाप्त हो गयीं । जो तीनों लोकोंके अधिपतियोंपर विजय प्राप्त करनेका प्रतीक है । इसका अर्थ है कि यशोवतीके जो पुत्र उत्पन्न होगा, वह प्रभुताके उन सारे चिह्नोंको पराभूत कर देगा कि जो अभी तक राजा धारण करते थे ।

5. 7*a* छोटा कीड़ा ।

6. 13*a* प्लासिक काम ।

7. पर्वत, जिसके स्तनोंकी जगह स्थित है ।

पृष्ठ 428

9. 7*a* करेवा—पूर्वकालिक क्रियाका रूप बनानेके लिए हेमचन्द्रका IV, 438 देखिए । तीन सालके पुराने जवके लिए 'अज' कहते हैं, जो बलिमें चढ़ाये जाते हैं । जिन-प्रतिमाका पूजन । जैनोंके अनुसार उनका धर्मका कोई प्रारम्भ नहीं है, वह अतीतमें भी था ।

11. 8*b* चार व्यसन हैं—द्यूतक्रीड़ा, स्त्री, शराब और शिकार ।

12. अत्यन्त पासका एक पड़ोसी मित्र होता है और दूसरा शत्रु । अठारह तीर्थ ।

सेनापति, गणक, मन्त्री, पुरोहित, बलौघ, बलवत्तर, दण्ड, नाथ, श्रेष्ठी, महत्तर, महामात्य, अमात्य, आर्य इन तीर्थोंका उल्लेख करते हैं ।

18. अवहंस = अपभ्रंश ।

VI

[एक दिन जब ऋषभनाथ राजसुखोंका भोग कर रहे थे तो इन्द्र उनके बचे हुए कार्यका चिन्तन करता है कि उन्हें इस धरतीको पूर्ण बनाना है, विश्वमें जिनधर्मका उपदेश करना है ।

पृष्ठ 429

उन्होंने नीलांजना अप्सरा नृत्य करनेके लिए भेजी । वह आयी, उसने नृत्य किया और वह मर गयी । उसे मृत देखकर जिनको संसारकी क्षणभंगुरताका बोध हुआ ।]

2. पोर्टर और चपरासी राजभवनमें जीवन नियन्त्रित करते हैं । कवि उन बहुत-सी बातोंका उल्लेख करता है जो राजाके सामने नहीं की जानी चाहिए ।

5. स्पष्ट है ।

पृष्ठ 430

स्पष्ट है ।

पृष्ठ 431

स्पष्ट है ।

पृष्ठ 432

VII

[नीलांजनाकी मृत्युके कारण ऋषभका दृष्टिकोण बदल गया । उन्होंने सोचा कि संसारमें प्रत्येक वस्तु क्षणभंगुर है, असहाय और एकान्त है । आत्माको जन्म और मृत्युकी परम्परामें-से जाना पड़ता है । अनुभव दुःखमें गुजरना होता है । पुण्य-पाप करता है और संसारमें परिभ्रमण करता है । इसलिए यदि आत्मा अपना भला चाहता है, तो उसे सबसे पहले पाप-प्रवृत्तियाँ छोड़नी चाहिए । इससे उसकी पूर्व संचित परम्परा नहीं बढ़ेगी । उसे तप करना चाहिए जिससे उसके पहलेके कर्मकी निर्जरा होगी । इस प्रकार विचार करते हुए उन्होंने तपका निश्चय कर लिया । इस अवसरपर देव आये और उन्होंने उत्साह बढ़ाया और संसारमें जैनधर्मके प्रसारकी प्रेरणा दी । ऋषभने भरतको अयोध्याकी गद्दीपर बैठाया, उन्होंने पोदनपुर बाहुबलिको दिया । वह पद्मासनमें स्थित हो गये और उन्होंने संसारसे सम्बन्ध तोड़ लिया । माता-पिताने इसका अनुकरण किया । देवताओंने तपकल्याण मनाया । वह वनमें तप करने चले गये । पत्नी और पुत्रोंने भी उनका अनुकरण किया । उन्होंने केश लौंच किया । उसने हीरोंकी तश्तरीमें उन्हें रखा तथा उन्हें क्षीर समुद्रमें विसर्जित किया । पाँच महाव्रत धारण करके वह दिगम्बर हो गये ।]

1. 11 जिस मनुष्यपर स्त्रियाँ नमक उतारती हैं अर्थात् वह मनुष्य, जिसे स्त्रियाँ इतना प्यार करती हैं । इसमें उस प्रथाका सन्दर्भ है जिसमें स्त्रियाँ मनुष्यको कितना प्यार करती हैं । यह इस प्रथाको भी सन्दर्भित करती है जिसमें मृत शरीरको नीचे उतारकर लकड़ियोंपर रख दिया जाता है ।

2. पन्द्रह कर्मभूमियोंमें उत्पन्न । मनुष्य अपने कर्मके अनुसार, मृत्युके बाद कोई भी स्थिति प्राप्त कर सकता है ।

7. ब्राह्मण यदि पशुओंका मांस खाकर, शराब पीकर मोक्ष पा सकता है तो धर्मकी क्या आवश्यकता है । शिकारीकी प्रतीक्षा करो ।

पृष्ठ 433

10. यह मानव-जीवन यदि श्मशानमें जाता है तो जाये, जैसा कि हम मराठीमें कहते हैं 'मसणांत' जावो। मैं मानव-जीवनको तिनकेके बराबर समझता हूँ।

11. 1*a*—तिप्पयार संठाणयं शब्द तीन भागोंमें विभक्त है, प्रत्येकका अलग-अलग रूप है; नरकमें राक्षसों और प्राणियोंके क्षेत्रका आकार 'शराव' जैसा है, जो उलटा हुआ है; मनुष्यों और छोटे प्राणियोंके क्षेत्रका आकार वज्रमणिका है। देवोंके क्षेत्रका आकार मृदंगका है।

9*a* मुक्त आत्माओंके क्षेत्रका स्थान छत्रके आकारका है।

14. यदि मनुष्य कर्मोंके आस्रवको रोक देता है और सम्यक् आचरण करता है, तो नये कर्म आत्मामें नहीं आते, और जो कर्म पूर्वसंचित हैं, वे शरीर कष्टसे नष्ट हो जाते हैं और उन्हें कोई प्रश्रय नहीं मिलता।

15. मैं दिगम्बर मुनि बनूँगा। इस शब्दका प्रभावशाली और स्पष्ट वर्णन, यहाँ और २६वें कड़वकमें है।

15*b* नीचे और अन्य स्थानोंके वर्णनसे स्पष्ट है कि इस ग्रन्थकी रचना दिगम्बर जैन मुनिके दृष्टिकोणसे हुई है।

16. 12-13 जिस प्रकार तालाब सूर्यकी किरणोंसे सूख जाता है, और उसमें रहनेवाला पानी भी सूख जाता है उसमें नये पानीके आनेका स्रोत नहीं रहता और तालाबका बनना रुक जाता है उसी प्रकार पूर्वमें अनेक जन्मोंके किये गये कर्म इन्द्रियोंके संयमसे रुक जाते हैं [वह कर्मोंके आगमनके ज्ञानको रोक देता है, और तपस्याके द्वारा (जो मुनियोंके लिए निर्धारित है)]

26. यह अवतरण निष्क्रमणकी तिथिका सूचक है जो उत्तराषाढ़ा नक्षत्र है।

पृष्ठ 434

VIII

[इसके बाद ऋषभनाथने मुनिकी तपस्या प्रारम्भ की। और उसके लिए निर्धारित आचरणके नियमोंका पालन किया। राजा कच्छ और महाकच्छके बेटे नमि और विनमि, तथा ऋषभनाथके साले उनके पास जंगलमें आये, तथा उनकी स्तुति करनेके बाद वे बोले कि ऋषभने उन्हें धरतीका कोई भाग नहीं दिया जबकि अपने पुत्रोंको सारी धरती बाँट दी। दरअसल, मुनिके रूपमें वह कोई उत्तर नहीं दे सकते थे, क्योंकि संसारके कार्योंका उन्होंने पूर्णतः परित्याग कर दिया था। इस अवसरपर नागोंके राजा धरणेन्द्रको कम्पन हुआ और अवधिज्ञानसे उसने जान लिया कि ऋषभ इस समय कठिन स्थितिमें हैं। इसलिए वह उनके पास आया; उसने नमि और विनमिको उनके पास खड़ा देखा। उसने उन लोगोंसे कहा—"ऋषभने दीक्षा लेनेके पहले उससे कहा था कि जब वे (नमि-विनमि) मेरे पास आयें और धरतीका हिस्सा माँगें, तब धरणेन्द्र उन्हें विजयार्ध पर्वतकी उत्तर-दक्षिण श्रेणियाँ दे दें। तब धरणेन्द्रने उन्हें विजयार्धपर स्थित कई नगरियाँ दिखलायीं और इस प्रकार धरणेन्द्र ऋषभ जिनको कठिन स्थितिसे बचाकर घर चला गया।]

1. 9*a* मैं सोचता हूँ सिमिर शिविरसे बना है। अर्थ है सेनाका कैम्प, परन्तु यहाँ सेनाके लिए प्रयुक्त है।

2. 1-4 विसयवसा—वे बड़े राजा (योद्धा) जो ऋषभके साथ संन्यस्त हुए थे । कुछ ही दिनोंमें कठोर तपस्या नहीं सह सकनेके कारण खण्डित होने लगे, और भयंकर सिंहों, तेन्दुओं और शरभोंसे भयभीत हो उठे। भूख और प्यास की वेदनाने उन्हें अतिक्रान्त कर लिया ।

7. ६ से २०वीं पंक्ति तक दामयमक अथवा शृंखलायमक। यह दुवईका लम्बा युग्म है। जो इस रचनामें दुर्लभ नहीं है। यद्यपि साधारणतः दुवई, कड़वकके प्रारम्भमें आती है। यह अवतरण धरणेन्द्रकी प्रार्थनाका वर्णन करता है।

पृष्ठ 435

IX

[ऋषभ तब छह माह तपस्यामें व्यतीत करते हैं और अपने मनकी सारी गतिविधियाँ पूर्णतः नियन्त्रित कर लेते हैं। उन्होंने सोचा कि भोजन कम करना पवित्रता प्राप्त करनेका सबसे उत्तम कारण है; इसलिए उन्होंने वह आहार ग्रहण करना स्वीकार कर लिया जो छयालीस प्रकारके दोषोंसे मुक्त हो—और जो नौ प्रकारके दृष्टिकोणोंसे पवित्र हो। उनके जीवनका सिद्धान्त था कि आहार शरीरको समाप्त कर देता है। भोजनको कम करना तपस्याका अंग है, यह इन्द्रिय चेतनाका नियन्त्रण करता है, और जब इन्द्रिय चेतना समाप्त हो जाती है तो सारी प्रवृत्तियाँ मुक्तिकी ओर ले जाती हैं, इसलिए वे जीवनके इन नियमोंका पालन करते हैं। धरतीपर विहार करते हुए जब वे गयपुर आये, जहाँ कि बाहुबलिका पुत्र सोमप्रभ राजा था। उसका छोटा भाई श्रेयांस था। उसने पूर्व रात्रिमें स्वप्नमें सूर्य-चन्द्रमा आदि चीजें देखीं। उसने यह स्वप्न अपने भाईको बताया। इस स्वप्न दर्शन का फल यह था—कि कोई महान् आदमी उनके घर आयेगा। वास्तवमें दूसरे दिन ऋषभ उनके घर आये, आहार ग्रहण करनेके लिए। तब राजा श्रेयांसने उनका स्वागत किया और उन्हें इक्षुरस का आहार दिया, जो उन्होंने स्वीकार कर लिया। तब आकाशमें दिव्यवाणी हुई कि कितना उत्तम दान है? उसके बाद ऋषभ अपने विहारपर चले गये, और समयके अन्तरालमें उन्होंने चौथा ज्ञान (मनःपर्ययज्ञान) प्राप्त कर लिया, वह ज्ञान जो दूसरोंके मनकी बात जानता है। तब वह नन्दन वनकी ओर गये। वहाँ वटवृक्षके नीचे उन्होंने गुणस्थानोंको प्राप्त किया, और उचित समयमें केवलज्ञान प्राप्त किया, जिससे वह समस्त विश्वको देखनेमें समर्थ हो गये। उस अवसरपर, इस घटनाका महोत्सव मनानेके लिए देव आये। कुबेरने समवसरणकी रचना की। बत्तीसों इन्द्रोंने अपनी उपस्थितिसे इसका महत्त्व बढ़ाया। फिर उन्होंने जिनकी प्रार्थना की।]

1.7 जैन साधुको जो आहार दिया जाये, वह आधाकर्म आदि दोषोंसे मुक्त होना चाहिए।

पृष्ठ 437

X

[इन्द्र और दूसरे देव केवलज्ञान प्राप्त करनेपर ऋषभ जिनकी स्तुति करते हैं, जिनके चौबीस अतिशय और हैं, जो केवलज्ञानके कारण उन्हें उत्पन्न होते हैं। इस महत्त्वपूर्ण अवसरपर, भरतके पास यह खबर पहुँची कि उसके पिताने केवलज्ञान प्राप्त किया है, आयुधशालामें चक्ररत्न प्रकट हुआ है; और यह कि रानीको पुत्र हुआ है; थोड़ी देरके लिए भरत दुविधामें पड़ गया कि वह पहले पुत्रको देखे, या चक्रको या पिताको। परन्तु अन्तमें उसने पिताको देखनेका निश्चय किया। वह उनके पास गया, प्रार्थना की और घर वापस आ गया। यह देखकर कि जिनवरने केवलज्ञान प्राप्त किया है, पवित्र और भव्य लोग संन्यास ग्रहण करनेके लिए ऋषभ जिनके पास गये। उनके लिए उन्होंने जीव-अजीव आदि श्रेणियोंका

उपदेश देना शुरू किया। सबसे पहले उन्होंने पर्याप्तियोंका कथन किया। पर्याप्ति यानी विकासका निकाय। फिर वह निम्न श्रेणीके जीवोंका वर्णन करते हैं; फिर पाँच इन्द्रियोंवाले निम्न श्रेणीके जीवों का। फिर विभिन्न द्वीपों और समुद्रोंका वर्णन करते हैं और अन्तमें उनके विस्तार का।]

पृष्ठ 438

XI

[ऋषभ जिन भगवान्, इसके बाद विभिन्न इन्द्रियोंके कार्यों और प्राणियोंका वर्णन करते हैं कि जो उन्हें धारण करते हैं, फिर उनकी आयुका वर्णन करते हैं। जम्बूद्वीपके सामान्य भूगोलका, उसके द्वीपों-उपद्वीपों और नदियोंका वर्णन करनेके बाद; ऋषभ जिन मानवी विशेषताओं और उनके गुणोंका वर्णन करते हैं। फिर वे स्वर्ग और देवोंका विस्तारसे वर्णन करते हैं, फिर विभिन्न गुणस्थानों और कर्मप्रकृतियों और सिद्धोंकी विशेषताओं और सुखोंका वर्णन करते हैं। जिनेन्द्र भगवान्‌का उपदेश सुनकर चौरासी लाख राजाओंने दीक्षा ग्रहण कर ली। जो उस समय उनके गणधर कहलाते थे। इसी प्रकार ब्राह्मी और सुन्दरी भी साध्वी बन गयीं। अकेला मारीचिको बोध नहीं हो सका। उनके पहले शिष्य सुयक्ती थे और शिष्या पियंवया या प्रियंवदा। उनके पहले मुक्ति प्राप्त करनेवाले शिष्य अनन्तवीर्य थे।]

पृष्ठ 440

XII

[अब भरतने भारतवर्षके छह खण्डोंपर दिग्विजय प्राप्त करनेके लिए कूच किया। शरद् ऋतुमें, जब आसमान स्वच्छ था और सड़कें सूखी थीं। वह पवित्र लोगोंकी वन्दना करता है और चक्रकी परिक्रमा देता है, तथा गरीब एवं जरूरतमन्द लोगोंको दान करता है। उसने अपने मन्त्रियोंसे मन्त्रणा की। उसने बहुत बड़ी सेना ली और चक्रके साथ वह पूर्वी समुद्रके किनारे गया, वह मगध तीर्थपर विजय प्राप्त करना चाहता था। पहले उसने उपवास किया, और तब धनुष ग्रहण कर पूर्वदिशामें तीर चलाया। तीर राजाके घरमें गिरा, राजा उसे देखकर बहुत क्रुद्ध हुआ; परन्तु उसके मन्त्रियोंने किसी प्रकार यह कहकर उसे शान्त किया कि चक्रवर्तीसे युद्ध करनेमें कोई लाभ नहीं है, और यह सबके हितमें होगा कि उन्हें सम्मान देकर उनकी अधीनता स्वीकार कर ली जाये। मगध तीर्थके राजाने ऐसा ही किया।]

XIII

[उसके बाद भरत दक्षिणकी ओर गया और (वरतनु) वरदामा तीर्थके केन्द्रपर पहुँचा। उसने फिर एक उपवास किया, और उसके बाद तीर चलाया; जो वरतनुके घरके आँगनमें गिरा। राजा वरतनु शीघ्र ही भरतके पास प्रणतिपूर्वक आया और उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। उसके बाद भरत पश्चिम दिशाकी ओर गया और सिन्धु नदीके प्रवेशद्वारपर पहुँचा। उसने वहाँ भी उपवास किया। और लवणसमुद्रमें रास्ता बनानेके लिए प्रभास तीर्थके राजापर तीर छोड़ा। राजा आया और उसने भरतकी अधीनता स्वीकार कर ली। उसके बाद भरतने कई देशोंपर विजय प्राप्त की, जैसे मालवा इत्यादि। और इस प्रकार संपूर्ण आर्यावर्तपर अपना साम्राज्य स्थापित किया। उसके बाद भरत विजयार्ध पर्वतपर गया तीन खण्डोंकी अपनी बाकी विजय पूरी करनेके लिए।]

पृष्ठ 441

XIV

[दक्षिणकी तीन खण्ड धरतीकी विजय प्राप्त करनेके बाद वह विजयार्ध पर्वतपर आया। एक देव वहाँ आया और उससे पर्वतके गुहामुखपर प्रहार करनेके लिए कहा जिससे उसे गुफाके दूसरी ओर जानेका रास्ता मिल सके। तब भरतने अपने सेनापतिको तदनुसार आदेश दिया।

जब उसने प्रहार किया तो गुफा फट गयी। उसके निवासियोंमें गहरी उत्तेजना हुई। पर्वतकी अधिष्ठात्री देवी उपहार लेकर भरतके पास आयी। भरत वहाँ छह माह रहे। उसने चक्ररत्नको गुहाके भीतर चलने और सेनाको उसका अनुकरण करनेका निर्देश दिया। परन्तु अन्धकारमें चलना कठिन था। तब सेनाध्यक्षने कागणी रत्न लिया और गुहाकी दीवालपर सूर्य और चन्द्रमाका अंकन किया। उसके प्रकाशमें सेना चली और नागलोकमें जा पहुँची। दो नदियाँ सेनाके सामने अड़ गयीं। परन्तु स्थपति (इंजीनियर) ने पुल बनाया और सेनाने उन्हें पार किया। आवर्त और किरात दो म्लेच्छ राजा अपने क्षेत्रपर आक्रमण होते हुए देखकर मेहमुखसे वर्षा करवाने लगे। उन्होंने एक दिन और रात वर्षा की। पुरोहितने भरतको सूचना दी कि सेना किस प्रकार संकटमें है! तब उसने सेनापतिको चक्ररत्नका उपयोग समूची सेनाके लिए छत्रके रूपमें करनेके लिए कहा। तब सेनाने आवर्त और किरातपर आक्रमण किया। उन्होंने भरतकी अधीनता स्वीकार कर ली। इसके बाद भरत हिमवान् पर्वतकी ओर मुड़ा, सिन्धु नदीके किनारे-किनारे; उसकी अधिष्ठात्री देवीने उन्हें पुष्पमाला समर्पित की।]

XV

[उसके बाद भरत हिमवन्त पर्वतकी ओर गया। दूबपर बैठे हुए उसने उपवास किया, और पर्वतकी अधिष्ठात्री देवीके उद्यानमें तीर छोड़ा। पहले उसने युद्ध करनेका इरादा किया उस योद्धाके साथ जिसने तीर छोड़ा था। परन्तु तीरपर भरतका नाम पढ़कर उसने उसका सम्मान करनेका निश्चय किया। वह आयी और भरतको उसने उपहार दिये। भरतने भी बदलेमें उसे कुछ उपहार दिये, और उसे अपने घर भेज दिया। आगे कूच करते हुए भरत वृषभ पर्वतके पास गया। उसने देखा कि पर्वतपर इतने नाम लिखे हुए हैं कि उसमें एक भी ऐसा स्थान नहीं है कि जहाँ वह अपना नाम लिख सके। किसी प्रकार उसने उसपर अपना नाम लिखा और इस प्रकार छह खण्ड धरतीकी अपनी विजययात्रा पूरी की। देवोंने इस अवसरपर उसकी प्रशंसा की। फिर वह आगे हिमवन्त पर्वतके प्रत्यन्त प्रदेशपर चला और उचित समयपर गंगा किनारे आ गया। तब गंगा देवीने आकर उसका अभिषेक किया और सम्मानके प्रतीकस्वरूप उसे उपहार दिये। भरतने भी उसे उचित सम्मानके साथ उपहार देकर विदा किया। वह विजयार्धकी तमिस गुफाके निकट आया। उसने सेनापतिको आदेश दिया। उसने उसके द्वारपर पहलेकी तरह प्रहार किया। वहाँ वे छह माह रहे। वहाँका निवासी नृत्यमाली देव वहाँ आया, और भरतको कर दिया। गुफा फिर भी भरतको सम्भव नहीं हुई। जब उसके मन्त्रियोंने बताया कि उसके मामा नमि और विनमि विजयार्ध पर्वतके स्वामीके रूपमें पर्वत श्रेणियोंपर रहते हैं और जबतक वे मार्गसे जानेकी अनुमति नहीं देते तबतक भरत आगे नहीं जा सकता। तब भरतने उनके पास सन्देशवाहक भेजा कि वे भरतको कर दें। यदि राजाके रूपमें न सही तो सम्बन्धीके रूपमें सही? दोनोंने यह स्वीकार कर लिया। उन्होंने राजा भरतके प्रति अपना आदर-भाव व्यक्त किया। कागणी मणिने प्रकाश उत्पन्न किया उसके सहारे उसकी सेना आगे बढ़ी। उसके बाद भरत कैलास पर्वतपर आया जहाँपर उसके पिता परमजिन ऋषभ तप कर रहे थे। उनके दर्शन कर उसने प्रार्थना की।]

XVI

[ऋषभ जिनकी वन्दना करनेके बाद भरत कैलास पर्वतसे नीचे उतरा। उसने अयोध्याके लिए कूच किया; कई देशोंको पार कर वह अयोध्याके प्रवेशद्वारपर पहुँचा, उसके चक्रने अयोध्यामें प्रवेश नहीं किया। पुरोहितने बताया कि चक्रने इसलिए प्रवेश नहीं किया क्योंकि तुम्हारा छोटा भाई बाहुबलि अभी तक नहीं जीता गया और इसलिए तुम्हारी विजय अधूरी है। बाहुबलि बहुत बलवान् है और सम्भवतः भरतको हरा सकता है। परन्तु वह शान्त है। और तुम्हारे दूसरे भाई भी तुम्हें कर नहीं देते। यह सुनकर भरत नाराज हुआ। उसने भाइयोंके पास दूत भेजे कि वे उसकी अधीनता स्वीकार कर लें। भाइयोंने यह स्वीकार करनेके बजाय कैलास पर्वतपर जाना उचित समझा। बाहुबलिने अधीनता स्वीकार न करते हुए लड़नेकी चुनौती दे डाली।]

XVII

[भरतने घोषणा की कि यद्यपि वह बाहुबलिको नहीं मारता है क्योंकि यह पिताके प्रति अपराध होगा, फिर भी वह उसे हाथीकी तरह बेड़ियोंमें जकड़ देगा। भरत और बाहुबलिकी सेनाएँ आमने-सामने आ खड़ी हुईं, युद्धके नगाड़े बज उठे। बाहुबलिने अपने मन्त्रीसे कहा कि वह अपने स्थानसे एक भी कदम नहीं बढ़ेगा परन्तु भरतकी सेनाकी प्रगतिको रोक देगा। जब दोनोंकी सेनाएँ टकरानेको थीं, मन्त्रियोंने उन्हें रोक दिया क्योंकि इससे भयंकर विनाशकी सम्भावना थी। उन्होंने दोनोंसे द्वन्द्व युद्ध करनेकी प्रार्थना की। युद्धके तीन प्रकार थे—दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध और मल्लयुद्ध। दोनोंने इसे स्वीकार कर लिया। परन्तु सभी तीनों युद्धोंमें भरत बाहुबलिसे हार गया। जब भरतको बाहुबलिने उठा लिया तो उसने अपने चक्रका ध्यान किया जो शीघ्र बाहुबलिकी परिक्रमा कर उनके दायीं तरफ स्थित हो गया। बाहुबलिने अपने भाई भरतको जमीनपर उतार दिया।]

XVIII

[भरतको अपने बाहुओंपर उठाते हुए बाहुबलिने उसे तीसरी बार पराजित किया। बाहुबलिने अनुभव किया कि उसने अपने बड़े भाईका अपमान किया है जो कि चक्रवर्ती है। इसलिए उसने भरतसे क्षमा माँगी और दीक्षा ग्रहण करनेकी इच्छा प्रकट की। भरतने किसी भी प्रकार भाईका राज्य लेनेकी इच्छा नहीं की, खासकर तब जब उसे यह याद आया कि उसे सेनाके सामने पराजित किया गया है। इसलिए उसने बाहुबलिको राज्य देना चाहा और स्वयं सांसारिक जीवनसे संन्यास लेना चाहा। बाहुबलि इसके लिए तैयार नहीं था। मन्त्रियोंने हस्तक्षेप किया और बाहुबलिने अपने पुत्रोंको गद्दीपर बैठाया। वह कैलास पर्वतपर गया तपस्या करनेके लिए। उसने वहाँ एक वर्ष तप किया। भरत उससे मिलने और प्रशंसा करने आया। बाहुबलि तटस्थ रहे। वह उन योग्यताओंको सम्पादित करनेमें लगे रहे जो एक जैन मुनि अर्जित करता है। समय बीतनेपर बाहुबलिको केवलज्ञान प्राप्त हो गया इससे सभीको प्रसन्नता हुई। भरतको भी प्रसन्नता हुई कि उनका भाई केवली हो गया। इसके बाद भरतने छह खण्ड धरतीपर छह खण्ड राज्यका परिपालन किया।]

□

भारतीय ज्ञानपीठ

उद्देश्य

ज्ञान की विलुप्त, अनुपलब्ध और
अप्रकाशित सामग्री का अनुसन्धान
और प्रकाशन तथा लोक-हितकारी
मौलिक साहित्य का निर्माण

●

संस्थापक
(स्व०) साहू शान्तिप्रसाद जैन
(स्व०) श्रीमती रमा जैन

अध्यक्ष
साहू श्रेयांस प्रसाद जैन

मैनेजिंग ट्रस्टी
श्री अशोक कुमार जैन